श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रंथ

सम्पादक—

रामधारी सिंह 'दिनकर'

कपिल, एम० ए०

कामेश्वर शर्मा 'कमल'

श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-समिति, मुंगेर

सम्पादक

रामधारी सिंह 'दिनकर'

कपिल, एम० ए०

कामेश्वर शर्मा 'कमल'

श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-समिति; मुंगेर

प्रकाशक
विश्वनाथ सिंह, एम० ए०, बी० एल०
मंत्री, श्रीकृष्ण अभिनन्दन समिति,
मुंगेर (बिहार)

सम्वत् २००५, कार्त्तिक शुक्ल

मुद्रक
श्री मणिशंकर लाल
श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना

अभिनन्दन का प्रस्ताव

सन् १९४७ ई० के फरवरी महीने में बड़हिया में होनेवाले मुंगेर जिला राजनैतिक सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में, जिसके उद्घाटनकर्त्ता तत्कालीन राष्ट्रपति आचार्य श्री कृपलानी जी तथा सभापति माननीय श्री कृष्णवल्लभ सहाय थे, श्री विश्वनाथ सिंह जी का निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ:—

"बिहारकेसरी श्री श्रीकृष्ण सिंह जी ने समस्त देश के साथ मुंगेर जिले की जो सर्वाङ्गीण सेवा एवं गौरव-वृद्धि की है, उसका कृतज्ञतापूर्वक आदर करते हुए यह सम्मेलन निश्चय करता है कि उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिए:—

(१) २१ अक्तूबर, १९४७ ई० को उनकी साठवीं जन्मतिथि के अवसर पर उनकी हीरक-जयन्ती मनायी जाय।

(२) इस जयन्ती के स्मारक-स्वरूप एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत करके उनकी ६१ वीं जन्मतिथि के अवसर पर उन्हें समर्पित किया जाय।

(३) उनके शुभ नाम पर मुंगेर नगर में एक सुन्दर भवन का निर्माण किया जाय जिसका नाम "श्रीकृष्ण-सेवा-सदन" रखा जाय तथा जिसका संचालन अभिनन्दन-समिति के द्वारा मनोनीत रजिस्टर्ड ट्रस्टियों के द्वारा किया जाय।

(४) इस सेवा-सदन में एक सुन्दर पुस्तकालय और एक संग्रहालय भी खोले जायँ।

(५) बिहार-केसरी की एक प्रस्तर-प्रतिमा निर्मित करवा कर, उसे सेवासदन या नगर में यथास्थान स्थापित किया जाय।
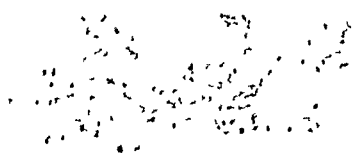
श्रीकृष्ण अभिनन्दन-समिति की कार्यकारिणी के सदस्यगण—

१	श्री नन्दकुमार सिंह	सभापति
२	श्री विश्वनाथ सिंह, एडवोकेट	मन्त्री
३	श्री केदारनाथ गोयनका	कोषाध्यक्ष
४	श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह, आई० सी० एस०	सदस्य
५	रायबहादुर श्री अघोरनाथ बनर्जी, एडवोकेट	,,
६	श्री बनारसी प्रसाद सिंह, चेयरमैन, मुंगेर जिला बोर्ड	,,
७	श्री कृष्ण मोहन प्यारे सिंह, वायसचेयरमैन, मुंगेर डि० बोर्ड	,,
८	माननीय श्री श्यामा प्रसाद सिंह, प्रेसिडेन्ट, बिहार लेजिस्लेटिव कौंसिल	,,
९	श्री केसरी किशोर शरण, प्रिन्सिपल, डी० कालेज मुंगेर	,,
१०	श्री रामगोविन्द सिन्हा, वकील	,,
११	श्री सूर्य प्रसाद सिंह, एम० एल० ए०	,,
१२	श्री द्वारिका प्रसाद जी,	,,
१३	श्री रामगुलाम शर्मा, मन्त्री, मुंगेर जिला का० कमिटी	,,
१४	श्रीयुत रामप्रसाद जी	,,
१५	मौलवी आसिर अली खाँ	,,

अभिनन्दन का इतिहास

बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह का जीवन सच्चे अर्थ में देश के लिए .उत्सर्ग किया हुआ जीवन रहा है। १९२१ से उनके जीवन का श्रेष्ठ भाग जेलो में बीता है और स्वातंत्र्य-संग्राम में समय-समय पर उन्होंने ऐसी वीरता का परिचय दिया है जो किसी भी सत्याग्रही के लिए गौरव की बात हो सकती है।

सन् बयालिस की महाक्रान्ति के बाद जब वे जेल से रिहा हुए, तब उनका स्वास्थ्य एकदम जर्जर था। जेल में ही, एक प्रकार से वे मृत्यु के मुख मे पड़ चुके थे और इसे आयुर्बल का ही प्रताप कहना चाहिए कि वे उस भयानक बीमारी से बच गये। जेल स बाहर आने पर उनकी जीवन-संगिनी का देहावसान हो गया तथा उनके देवतुल्य पूज्य भ्राता भी चल बसे। लेकिन, इन पारिवारिक विपत्तियों और स्वास्थ्य की जर्जरता से भी श्री बाबू की देश-भक्ति मे बाल-बराबर भी बल नही पड़ा और वे निर्बाध रूप से अन्याय का प्रतिकार करते ही गये। विफलता के वातावरण के बीच बिहार-केसरी का वह सिंह-गर्जन और प्रान्त के गवर्नर रदरफोर्ड से उनकी वह मुठभेड़, आज भी लोगो को याद हैं। दमन से ग्रसित प्रान्त मे उस समय श्री बाबू की वाणी ज्योति-सी चमक रही थी और जहाँ-जहाँ दमन का चक्र जोरों से चल रहा था, वहाँ-वहाँ वे अपना अखाड़ा बनाते घूम रहे थे। श्री बाबू को मैं बहुत दिनों से जानता था और पहले से ही मुझे उनका सान्निध्य भी प्राप्त था। किन्तु, चौवालिस-पैंतालिस में उनकी निर्भीकता और वीरता से मै जैसा प्रभावित हुआ, वैसा पहले कभी नही हुआ था। उन्ही दिनों मेरे हृदय में पहले पहल यह भावना जगी कि क्या हम अपने अग्रणी नेता के सम्मान के लिए कुछ भी नही कर सकते। श्री बाबू ने देश के बाद जीवन भर सर्वाधिक प्रेम केवल पुस्तकों से किया है। अतएव, मेरे मन मे पहले यह सीधा-सा भाव आया कि श्री बाबू के नाम पर हम एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना ही क्यों न करे? मुंगेर मे पुस्तकालय की बहुत आवश्यक्ता भी थी।

यों तो बिहार-केसरी बिहार के ही नहो, बरन्, समग्र देश के नेता है। किन्तु, मुंगेर जिला उनका प्रधान क्षेत्र रहा है और इस जिले के सम्पूर्ण जीवन को नये ढग से संवारने की ओर उनकी विशेष रुचि रही है। मुंगेर जिले के राजनैतिक जीवन मे आज जो ठोसपन देखने को मिलता है, उसका निर्माण श्री बाबू ने ही किया है और इस जिले पर उनका जैसा एकछत्र अधिकार है, वैसा अधिकार भी कम ही नेता का किसी एक मंडल या प्रान्त पर होता है। आज श्री बाबू प्रान्त के प्रधान मन्त्री के रूप में विख्यात है; किन्तु, बहुत दिनों तक यह हाल था कि लोग मुंगेर जिले को श्री बाबू का जिला और श्री बाबू को मुंगेर के नेता के रूप मे ही जानते थे। मुंगेर जिला उनकी जन्म-भूमि है और यही जिला उनकी कर्म-भूमि के रूप मे भी प्रसिद्ध है। मुंगेर के साथ उनका कुछ ऐसा गहरा सम्पर्क है कि हम आरंभ से ही यह सोचने लगे कि श्री बाबू का सार्वजनिक सम्मान मुंगेर की ओर से ही होना चाहिए।

मैंने सोच-समझकर अपना विचार मुंगेर जिले के दूसरे प्रसिद्ध नेता श्री नन्दकुमार सिंह तथा बड़हिया के सुयोग्य कार्यकर्त्ता श्री रामरीझन सिंह जी के सामने रखा और उन दोनों सज्जनों ने मेरे विचार का जिस हर्ष और उल्लास के साथ समर्थन किया उससे मेरा हौसला और भी बढ़ गया। लेकिन, सुअवसर की प्रतीक्षा में मेरी योजना बहुत दिनों तक मित्रों तक ही सीमित रही।

सन् १९४७ ई० के फरवरी महीने में, बड़हियाग्राम, में मुंगेर जिला राजनैतिक सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और उस अधिवेशन में मैंने हिम्मत करके अपनी योजना प्रस्ताव के रूप में उपस्थित कराई। इस सम्मेलन में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री कृपलानी जी भी उपस्थित थे। सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने बड़े ही उत्साह के साथ २०-२-४७ को यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत कर लिया और इस प्रकार मेरी भावना प्रस्ताव का रूप धारण कर खड़ी हो गई।

इस प्रस्ताव का सारांश इस प्रकार था —

१—२१ अक्टूबर, १९४७ को श्री बाबू की साठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर उनकी हीरक-जयन्ती मनायी जाय।

२—इस हीरक जयन्ती की स्मृति में "श्रीकृष्ण अभिनन्दन ग्रन्थ" नाम से एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रस्तुत किया जाय जो श्री बाबू की इकसठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर उन्हें समर्पित किया जाय।

३—श्री बाबू के शुभ नाम पर एवं उनके सम्मान में मुंगेर नगर में एक भवन बनवाया जाय जिसका नाम "श्रीकृष्ण सेवा-सदन" रखा जाय तथा जिसका प्रबन्ध और संचालन रजिस्टर्ड ट्रस्टियों के द्वारा किया जाय। इन ट्रस्टियों का चुनाव श्रीकृष्ण अभिनन्दन सभा के द्वारा हो।

४—इस सेवासदन में एक पुस्तकालय एवं एक संग्रहालय की स्थापना की जाय जिनके उपभोग का अधिकार सर्वसाधारण को रहे। संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ, चित्र एवं पुरातत्त्व की सामग्रियाँ जुटायी जायँ तथा जिले के साहित्यिक, राजनैतिक एवं सामाजिक नायकों की स्मृतियों को बचानेवाली वस्तुओं का संग्रह भी संग्रहालय में किया जाय।

५—मुंगेर नगर के बीच किसी योग्य स्थान पर श्री बाबू की एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की जाय।

इस प्रस्ताव को कार्य का रूप देने के लिए जिले के कुछ प्रमुख व्यक्तियों की एक साधारण सभा तथा एक कार्य-समिति बनायी गई। मुंगेर जिला कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री नन्दकुमार सिंह इस सभा के सभापति चुने गये और शायद, इस योजना का जन्मदाता होने के नाते मैं उसका मंत्री बनाया गया।

श्री बाबू की साठवीं वर्षगाँठ के दिन, यानी इक्कीस अक्टूबर, १९४७ को सारे प्रान्त में श्री बाबू की हीरक-जयन्ती बड़ी ही धूमधाम के साथ मनायी गई। पटना, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, भागलपुर, पूर्णियाँ गया, आरा, मधेपुरा आदि स्थानों का समारोह विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। प्रान्त के छात्र सम्मेलन ने पटने के समारोह में बड़े ही उत्साह से भाग लिया। पटना, मुजफ्फरपुर और दरभंगे में श्रीबाबू को लाखों रुपयों की थैलियाँ भी अर्पित की गईं जिन्हें उन्होंने सार्वजनिक काम के लिए वितरित कर दिया।

प्रोफेसर श्री कपिल ने आरम्भ से ही इस ग्रन्थ के प्रणयन का भार अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने बड़ी ही लगन से इस ग्रन्थ की सारी सामग्री जुटायी और जितना कुछ किया वह उन्हीं के समान विद्वान, मेधावी एवं अध्यवसायी व्यक्ति के योग्य था।

और पण्डित कामेश्वर शर्मा "कमल" के भी हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस जिले के न होकर भी ग्रन्थ को प्रेस के बीच से निकालने, सामग्री जुटाने और उसे सुन्दरतम रूप देने में कठिन परिश्रम किया है।

मुंगेर जिले की राजनीतिक प्रगति के इतिहास की सामग्री का संग्रह करने और उसे पुस्तकाकार बनाने में श्री गदाधर प्रसाद अम्बष्ठ ने मिहनत की है। अतः हम उनका भी आभार स्वीकार करते हैं।

पटने के योगी प्रेस को भी हम धन्यवाद देते हैं जिसके सहयोग की तत्परता से यह प्रकाशन सम्भव हो सका।

मुंगेर के जिलाधीश, श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह जी ने पुस्तकालय को संगठित करने तथा अन्य योजनाओं को आगे बढ़ाने में हमारी सदैव सहायता की है। इसके लिए हम उन्हें सदा ही स्मरण करेंगे।

लेकिन, अपने अध्यक्ष श्रीयुत नन्दकुमार सिंह जी को हम क्या कहें? वे अत्यन्त कार्यव्यस्त एवं बहुधन्धी जीव हैं। लेकिन, सारी व्यस्तता के भीतर उन्हें यह काम बराबर याद रहा तथा पग-पग पर हमें उनकी सम्मति एवं पथ-प्रदर्शन की सुविधा प्राप्त रही। आशा है, उनके नेतृत्व में हमारी बाकी योजना भी पूर्ण रूप से सफल होगी।

अन्त में हम अपने सभी कृपालु लेखकों और कवियों, मित्रों और सहयोगियों, हितैषियों और शुभैषियों को मुक्त हृदय से धन्यवाद देते हैं।

बिहार-केसरी शतायु हों और स्वतंत्र भारत के बीच बिहार की सेवा वे अधिकाधिक दिनों तक कर सकें, यही हमारी कामना है। इति शुभम्।

निवेदक
विश्वनाथ सिंह
मन्त्री श्रीकृष्ण अभिनन्दन समिति,
मुंगेर

मुंगेर
विजया-दशमी
२००५ वि० सं०

सम्पादकीय वक्तव्य

श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रन्थ की पूर्णता और समाप्ति पर हर्षित होना स्वाभाविक है। विहार-केसरी का अब तक का समग्र जीवन देश के लिए न्योछावर रहा है। उनकी जवानी जेलो में कटी और उनका बुढ़ापा भी देशोद्धार की योजनाएँ बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने मे व्यय हो रहा है। अभी ये बाते बहुत असाधारण नहीं मालूम होती है, क्योकि यह पीढ़ी ही उन महान् त्यागियों की है जिन्होंने अपनी जवानी को तपस्या की आग में जला डाला और जिनमे से कितने ही लोग अपने बुढ़ापे को रचनात्मक कार्यो के लिए उत्सर्ग कर रहे हैं। भगवान को अनेक धन्यवाद है कि जिन लोगो ने देश को स्वतंत्र करने के लिए जीवन भर लाठियाँ खाईं, दरिद्रता और सुविधाहीनता की अनन्त आपदाएँ झेलीं और जो जिन्दगी के अनमोल वर्षो को जेलों के भीतर खाक करते रहे, उन्हे, बुढ़ापे मे ही सही, स्वतन्त्र भारत के निर्माण करने का एक छोटा-सा सुयोग भी प्राप्त हो गया। ये घटनाएँ, अभी नहीं, आनेवाले इतिहास के पन्नों मे चमकेंगी जब लोग आज के क्रान्तिकारी युग को आदर के साथ याद करेंगे और उन महान् नेताओं के प्रति श्रद्धा से अपना शीश झुकायेंगे जिनके हाथों आज भारतवर्ष के भविष्य की नींव डाली जा रही है। ज़माना तो आज एटम बम का है; किन्तु, उससे वीरता की व्यंजना नहीं होती है। वीरता तो उन लोगों ने दिखलायी जिन्होंने अन्याय के विरोध मे स्वेच्छा से अनशन करके घुल-घुल कर अपने प्राण दे दिये तथा सेनापति की आज्ञा पर चूल्हे पर चढ़े हुए तपते हुए नमक के कड़ाह पर अपनी छाती रोप दी। हल्दीघाटी की लड़ाई तो अपनी जगह पर है ही, मगर, महाराणा प्रताप की वीरता तो इस बात मे है कि उन्होंने भूखों मर कर भी बगावत के झंडे को झुकने नहीं दिया। जिन लोगों ने भी देश के लिए क्षुधा के प्रहार का सहन किया, अपने बच्चों को कम दूध पीने को बाध्य किया और लोभ की नागिन को दंश मारने नहीं दिया, वे सभी नमस्य हैं, वे सभी वन्दनीय हैं। न केवल अपने निर्भीक गर्जन से, बल्कि, अपने उज्ज्वल चरित्र से भी श्री बाबू केसरी-पद के उपयुक्त अधिकारी हैं और जनता ने उन्हें "विहार-केसरी" जैसे विशेषण से विभूषित करके उनके गुणों को ही स्वीकार किया है।

अचरज की बात है कि लोगो को अभिनन्दन की योजनाओं से प्रचार की गन्ध आती है। लेकिन, किस का प्रचार? और किस लिए? साठ वर्षो का जो परिपक्व पुरुष, बाल बच्चो की सुख-सुविधाओं से आँखे मोड़ कर, काँटों का ताज पहने हुए माला, मच और मानपत्रो की भीड़ मे से सैकड़ो या हजारों बार गुजर चुका है उसके लिए कुछ और फूलों या मानपत्रों की क्या कीमत हो सकती है?

यह छोटा-सा अभिनन्दन-ग्रन्थ, सम्मान नहीं, कृतज्ञता को ज्ञापित करने का साधन-मात्र है। श्री-बाबू की जय कहना, अन्ततः, अपना ही जयकार है, क्योंकि श्री बाबू के जिस रूप की हम अर्चना करने जा रहे हैं, वह तो जनता की ही जागृति, विकास और शक्तिमत्ता का प्रतीक है।

हमें हर्ष है कि यह आयोजन मुंगेर जिले के प्रेमी लोगों ने किया। इस विशाल विश्व में अगर कोई एक केन्द्र है जो श्री बाबू को सब से अधिक प्रिय है तथा जहा के लोग श्री बाबू को सब से अधिक प्यार करते हैं तो वह केन्द्र है बिहार-केसरी की जन्म और कर्म-भूमि मुंगेर।

हम मुंगेर जिलावासियो को श्री नन्दकुमार सिंह तथा श्री विश्वनाथ सिंह जी के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होने यह आयोजन कर के हमे श्री बाबू के प्रति अपनी कृतज्ञता निवेदित करने का एक अवसर दिया।

अत्यन्त अल्पावधि में ग्रन्थ को प्रेस के भीतर से निकाल लेने का सारा सुयश श्री कामेश्वर शर्मा जी कमल को मिलना चाहिए जिनके अध्यवसाय और लगन की छाप ग्रन्थ मे लगे हुए एक एक टाइप पर मौजूद है। सत्तर फर्मा का विशाल ग्रन्थ किसी पटनिया प्रेस से दो-तीन महीनो मे निकल जाय, यह एक अनहोनी बात है। और सच ही, अगर योगी प्रेस हमारी मदद को नही दौडा होता तो ग्रन्थ को देखने के लिए समुत्सुक पाठको को अभी और भी प्रतीक्षा करनी पडती। हम श्री अजन्ता प्रेस के प्रबन्धक, पण्डित जयनाथ मिश्र जी को भी धन्यवाद देते है जिन्होने कामो की भीड में भी ग्रन्थ को छापना स्वीकार कर लिया।

चित्रकारो मे से हम श्री उपेन्द्र महारथी, श्री दिनेश बख्शी, श्री दामोदर प्रसाद अम्बष्ट, पुस्तक-भडार तथा श्री फणी चक्रवर्ती के प्रति विशेष रूप से ऋणी है जिनके चित्र इस ग्रन्थ के भूषण-स्वरूप हैं।

अपने सभी लेखको और कवियो के प्रति हम सच्चे मन से कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनके सहयोग के बिना हमारा अनुष्ठान सफल नहीं हो सकता था। ग्रन्थ में मुगेर जिले का एक विस्तृत राजनैतिक इतिहास भी छापा गया है। यह इसलिए चूंकि यह सारा आयोजन उक्त जिले की ओर से किया गया और वहा के लोग चाहते थे कि जिले की राजनैतिक प्रगति का वर्णन भी उसके सब से बडे नेता को भेट किये जानेवाले ग्रन्थ के साथ जुडा रहे। अतएव, इस खड का दायित्व और श्रेय, दोनो ही अभिनन्दन-समिति को ही मिलने चाहिए। इस खड की सामग्री एकत्र करने का सारा काम श्री गदाधर प्रसाद जी अम्बष्ट ने किया है।

साप्ताहिक "योगी" के यशस्वी सम्पादक श्री रत्नाकर जी तथा प्रोफेसर श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र जी भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होने ग्रन्थ की प्रेस कॉपी तैयार करने मे यथासाध्य सहायता पहुचाई है।

अन्त म हम श्री भानुनन्दन सिंह, एम० ए०, श्री शुकदेव राय तथा श्री शत्रुघ्नाथ झा को धन्यवाद देते है जिन्होने अनुवाद तथा प्रूफरीडिंग के कार्यों में सहायता पहुचाकर हमारे कार्य-भार को हल्का किया है।

निवेदक
रामधारी सिंह 'दिनकर'
कमिल

विषय-सूची

(क) अभिनन्दन-समिति के सदस्यगण ... ... पृष्ठ एक

(ख) अभिनन्दन का प्रस्ताव ... ... ,, दो

(ग) अभिनन्दन का इतिहास ... ... ,, तीन

(घ) सम्पादकीय वक्तव्य ... ... ,, ,,

(ङ) समर्पण ... ... ,, ,,

१—निबन्ध

१—मृत्ति-तिलक (कविता) ... श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ... १

२—बड़े भाई का आशीर्वाद ... देश-रत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद ... २

३—धर्म का अपमान ... आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन ... ३

४—मानवीय व्यक्तित्व की गहन रहस्यमयता ... श्री इलाचन्द्र जोशी... ... १२

५—अश्वघोष—जीवन-सम्बन्धी दन्तकथायें और काव्यान्तर्गत साधनायें ... भदन्त शान्ति भिक्षु ... २३

६—ऋग्वेद में कर्म-विचार ... महामहोपाध्याय डा० श्री उमेशमिश्र... ५२

७—रामरहस्य साहेब की पचग्रंथी ... पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ... ५९

८—इतिहास और संस्कृति ... प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ... ६८

९—ऋग्वेद की कवयित्रियाँ ... प्रो० श्री परमेश्वर प्रसाद शर्मा ... ७५

१०—साहित्य-धारा ... पं मोहनलाल महतो 'वियोगी' ... ८०

११—सत्याग्रह ... श्री धीरेन्द्रमोहन दत्त ... ८९

१२—हमारा युग-धर्म—ग्रामीण-सभ्यता का निर्माण ... श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ... ९४

१३—मानवता, साहित्य और विज्ञान ... श्रीनलिनविलोचन शर्मा ... १०२

१४—अशोक-वाटिका से सीता का संदेश ... श्री रामानन्द शर्मा ... १०५

१५—चीन और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध ... श्री कृष्णकिंकर सिंह ... ११७

१६—भारतीय संगीत की विकास-योजना ... श्री कमलधारी प्रसाद सिंह ... १४५

१७—कालिदास में संगीतादि-कला ... श्री भगवतशरण उपाध्याय ... १५२

१८—ताज की निन्दा ... श्री मथुराप्रसाद मिश्र ... १६२

१९—मनोविज्ञान और उद्योग ... श्री अवधकिशोर प्रसाद सिंह ... १६९

२०—नाट्यशास्त्र की औड्र और मागधी प्रवृत्ति ... श्री प्रह्लाद पधान ... १७६

२१—शासन-विधान में विकेन्द्रीकरण — डाक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री — १९४
२२—हिन्दी में पारिभाषिक शब्द निर्माण — श्री प्रभाकर माचवे — १४८
२३—गाँधीवाद का भविष्य — डा० देवराज — २१७
२४—साहित्य की उपेक्षा — श्री रामवृक्ष बेनीपुरी — २२०
२५—काव्य में अपहरण — प० रामदहिन मिश्र — २२९
२ —जमीन्दारी प्रथा का उच्छेद और भूव्यवस्था — स्वामी सहजानन्द सरस्वती — २४०
२७—मगही बोली में 'ही' का प्रयोग — श्री शशिभूषण शर्मा — २४७
२८—काव्य — श्रीविश्वमोहन कुमार सिंह — २५१
२९—यह बदनाम हिन्दुस्तानी — श्री ललिता प्रसाद सुकुल — २५२
३०—मैं समाज का हूँ — श्री रामनन्दन मिश्र — २५७
३१—जनदृष्टि में पाटलिपुत्र — श्री मुनिकान्ति सागर — २५९
३२—श्रमण महावीर और उनका स्याद्वाद — श्री देवेन्द्र दत्त द्विवेदी — ३००
३३—राजगिर इन एनसेन्ट बुद्धिस्ट रेकर्ड्स (अंगरेजी) — प्रो० वी० बापट — ३०६
३४—प्रि-प्लासी बृटिश प्रोजेक्ट फार द कन्क्वेस्ट आव बंगाल (अंगरेजी) प्रो० क० के० दत्त — ३१२
३५—चकचक पेलेस एण्ड द साल्ट आव् क्या इंडिया (अंगरेजी) डा० वासुदेवशरण अग्रवाल — ३१५

२—काव्य—कुञ्ज

१—तीन कविताएँ— — श्री रामसिंहासन सहाय मुख्तार 'मधुर' — ३२१
हत्यारा — " "
दिल्ली कितनी दूर — " "
मेरा घर — " "
२—गीत — श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' — ३२४
३—स्वतन्त्रते — " केदार नाथ मिश्र 'प्रभात' — ३२५
४—दूर हूँ जितना, तुम्हारे पास उतना ही — " शिवमंगल सिंह 'सुमन' — ३२८
५—उनको भूल न जाना — " रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' — ३२९
६—कीर्त्ति — " केसरी — ३३१
७—आदर्शों का दीपक — " बच्चन — ३३३
८—सिपाही — " यमुना प्रसाद चौधरी 'नीरज' — ३३४
९—परिचय — " बुद्धिनाथ झा 'कैरव' — ३३५
१०—मैं यहीं जानता इसी पथ है — " गिरिधर इलाहाबादी — ३३७
११—तिरंगा ध्वज — " मोहनलाल द्विवेदी — ३३८

१२—गीत ... ,, शशिधर वाजपेयी ... ३३९

१३—स्वतन्त्रता के प्रति ... ,, आरसी प्रसाद सिंह ... ३४०

१४—दो गीत ... ,, पोद्दार रामावतार 'अरुण' ... ३४३

१५—गीत ... ,, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' ... ३४५

३—जीवनवृत्त संस्मरण और जीवन-झाँकी

१—वृत्त और व्यक्तित्व की एक झाँकी ... श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ... ३४९

२—बिहार-केसरी डा० श्रीकृष्ण सिंह—एक संस्मरण ... ,, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ... ३५९

३—संस्मरण ... ,, शिवपूजन सहाय ... ३६२

४—माननीय डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह ... ,, श्यामनन्दन सहाय ... ३६५

५—मेरे श्रीबाबू ... ,, डा० अनुग्रहनारायण सिंह ... ३६७

६—श्रीबाबू का जेल-जीवन ... ,, कामेश्वर शर्मा 'कमल' ... ३७०

७—मेरी नजरों में बिहार-केसरी ... ,, कृष्णमोहनप्यारे सिंह ... ३७९

८—हमारे नेता ... ,, बलदेव प्रसाद सिंह ... ३८१

९—पत्रंपुष्पम् ... ,, श्रीकृष्ण मिश्र ... ३८४

१०—हमारा सरदार ... ,, रामगुलाम शर्मा .. ३८६

११—बिहार की एक याद ... ,, सी० बी० एच० राव ... ३८९

१२—श्री बाबू, एक झाँकी ... ,, डा० जनार्दन मिश्र ... ३९०

१३—हमारे प्रधान ... ,, केदारनाथ गोयनका ... ३९३

१४—नास्तिक ... ,, विपिनबिहारी वर्मा ... ३९४

१५—पूज्यवर श्रीबाबू ... ,, कपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद' ३९५

१६—पूज्यवर श्रीबाबू ... ,, बनारसी सिंह ... ३९८

१७—बिहार-केसरी ... ,, मोहम्मद युसुफ ... ४०१

१८—डा० श्रीकृष्ण सिंह—एज आय नो हिम (अंगरेजी)... ,, डाक्टर सचीन सेन ... ४०३

१९—डा० श्री कृष्ण सिंह—ग्लिम्पसेज आव् हिज पर्सोनल्टी (अंगरेजी) कुमार कालिका प्रसाद सिंह ४०७

२०—रेमनीसेन्सेज आव् बिहार केसरी (अंगरेजी) ... श्री हेमचन्द्र बसु ... ४१२

२१—श्रीबाबू : (अंगरेजी) ... ,, अघोरनाथ बनर्जी ... ४१५

२२—श्री बाबू, संक्षिप्त जीवन-चरित ... प्रो० श्री कपिल ... ४१९

२३—बिहार-केसरी, एक संस्मरण ... प्रो० श्री [illegible]

४—अभिनन्दन, वन्दन और आशीर्वाद

१—राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त
२—भदन्त श्री शान्ति भिक्षु
३—सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल
४—देशमान्य श्री जयप्रकाशनारायण
५—राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन
६—माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त
७—माननीय प० रविशंकर शुक्ल
८—माननीय श्री गंगाधर खेर
९—माननीय श्री सम्पूर्णानन्द
१०—माननीय आचार्य श्री बदरीनाथ वर्मा
११—हिज एक्सेलेन्सी श्री माधव श्रीहरि अणे
१२—हर एक्सेलेन्सी श्रीमती सरोजनी नायडू
१३—हिज एक्सेलेन्सी सर महाराज सिंह
१४—हिज एक्सेलेन्सी श्री आसफ अली
१५—हिज एक्सेलेन्सी श्री मंगलदास पकवासा
१६—माननीय डॉक्टर श्री गोपीचन्द भार्गव
१७—माननीय श्री जगजीवन राम
१८—श्री सादिक अली
१९—माननीय श्री मोहनलाल सक्सेना
२०—माननीय श्री सत्यनारायण सिंह
२१—डॉ० श्री अमर नाथ झा
२२—श्री श्री प्रकाश जी
२३—माननीय गोपीनाथ बारदोलाइ
२४—पंडित के० एल० दुबे
२५—माननीय श्री हरेकृष्ण महताब
२६—श्री शंकरराव देव
२७—श्री वाल्मीकि प्रसाद 'विकट' (कविता)
२८—पोद्दार श्री रामावतार 'अरुण' (कविता)
२९—श्री माहेश्वरी सिंह 'महेश' (कविता)
३०—जमील मजहरी (उर्दू कविता)
३१—वफा बराही (उर्दू कविता)
३२—श्री बिस्मिल (उर्दू कविता)
३३—श्री शीलभद्र साहित्यरत्न

चित्र-सूची

(तिरंगा)

१—डा० श्री श्रीकृष्ण सिंह जी ... श्री फणीचक्रवर्त्ती
२—झंडा ऊँचा रहे हमारा ... „ फणीचक्रवर्त्ती
३—श्रेय की ओर ... „ दिनेश बख्शी
४—स्वतन्त्रता का नव जन्म ... „ उपेन्द्र महारथी
५—बृटिश साम्राज्य ... „ उपेन्द्र महारथी
६—सिद्धार्थ का अन्तिम शृंगार ... „ उपेन्द्र महारथी
७—अमर बापू ... „ जामिनी राय
८—रचना और रंग ... „ दामोदर प्रसाद अम्बष्ट
९—उत्तरा और अभिमन्यु ... „ दिनेश बख्शी
१०—आशा की लौ ... „ दिनेश बख्शी

(एकरंगा)

११—श्री बाबू, १९२१ में (चरखा चलाते हुए)
१२—„ „ १९२५ में
१३—„ „ १९३६ में
१४—„ „ १९३८ में (अखबार पढ़ते हुए)
१५—„ „ १९३९ में
१६—„ „ १९४१ में (जेल से मुक्त होने के बाद)
१७—„ „ १९३० में (नमक-सत्याग्रही के रूप में)
१८—„ „ १९३७ में (अपने पौत्र चि० रमेशशंकर को दुलारते हुए)
१९—„ „ (वर्तमान प्रधान मन्त्री के रूप में)
२०—बिहार-केसरी की जन्म-कुंडली
२१—अशोक-स्तम्भ (वर्तमान भारतीय राष्ट्र का राजचिह्न)
२२—बिहार-केसरी की धर्मपत्नी की मृत्यु-शय्या
२३—बिहार-केसरी की स्वर्गीया धर्मपत्नी
२४—बिहार-केसरी (महेश बाबू के बच्चों के साथ)

२५—बिहार-केसरी (अपने परिवार के साथ)
२६—बिहार-केसरी (अपने अध्ययनकक्ष में)
२७—बिहार-केसरी (बिहार गृहरक्षा वाहिनी में भाषण देते हुए)
२८—बिहार केसरी के पूज्य अग्रज (स्व० देवकीनन्दन सिंह)
२९—श्री लक्ष्मी दास (बिहार-केसरी को अक्षर-ज्ञान करानेवाले)
३०—शिवशंकर सिंह (श्रीबाबू के द्वितीय पुत्र)
३१—बिहार केसरी की जन्म भूमि माउर के घर (दो चित्र)
३२—शाह पीरनफ्फ का मकबरा
३३—मुंगेर में गंगा नदी के दो दृश्य (दो चित्र)
३४—प्रसिद्ध चण्डी स्थान
३५—श्री कृष्ण सेवा सदन के शिलान्यास का एक दृश्य
३६—मुंगेर का कष्टहरिणी घाट
३७—कष्टहरिणी घाट में प्राचीन सुरंग मार्ग
३८—मुंगेर किला के क्लौक टावर का पूर्वी द्वार
३९—भूकम्प के बाद—मुंगेर किला का पूर्वी द्वार
४०—तिलक मैदान में मुंगेर जिला कां० क० का कार्यालय
४१—मुंगेर जिला बोर्ड का कार्यालय
४२—पीर पहाड़ी अथवा हिरण्यपर्वत
४३—सीता-कुण्ड
४४—पँचरुखी पहाड़ का एक दृश्य
४५—श्री शृंगी स्थान
४६—,, शृंगीस्थान के समीप का एक दृश्य
४७—पहाड़ी स्थान का एक दृश्य
४८—बिहार के भूतपूर्व गवर्नर श्री जयरामदास दौलतराम, श्रीकृष्ण सेवा-सदन का शिलान्यास करते हुए
४९—श्री नन्दन कुमार बाबू की वृद्धा माता
५०—शहीद श्री कुलानन्द दास
५१—शहीद प्रभुनारायण सिंह
५२—शहीद राजा प्रसाद सिंह
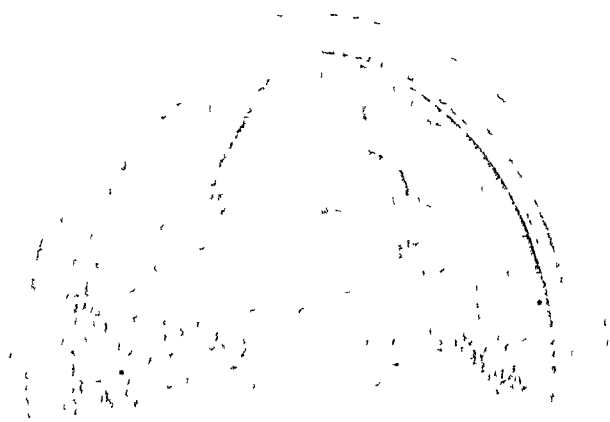
समर्पण

बिहार-केसरी डाक्टर श्री श्रीकृष्ण सिंह
जी के कर-कमलों में, श्रीकृष्ण-अभि-
नन्दन-समिति, मुंगेर की ओर
से उनकी हीरक-जयन्ती
के उपलक्ष्य में सादर
समर्पित ।

हीरक जयन्ती
कार्तिक शुक्ल, ५
सम्वत् २००४
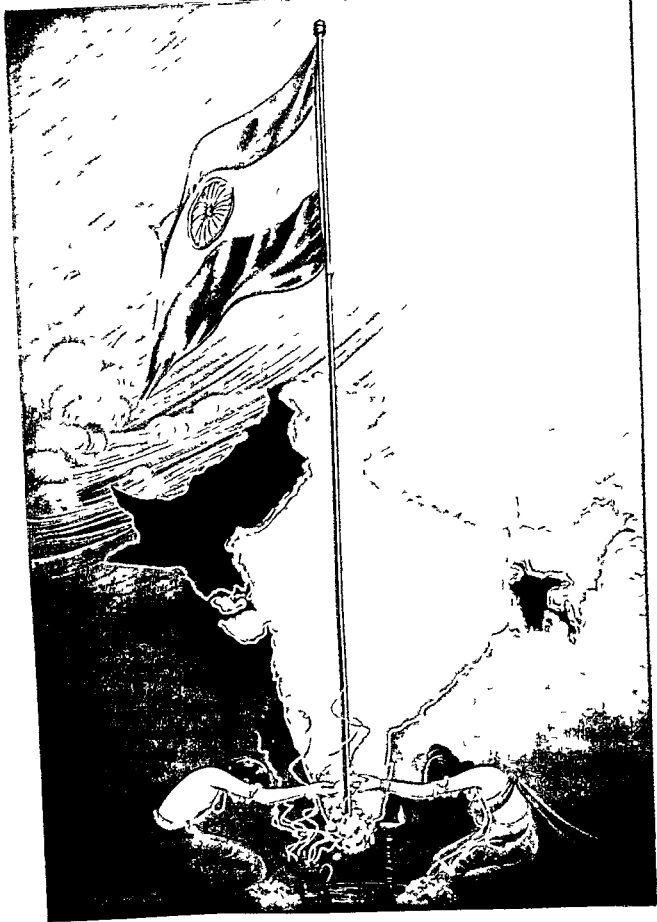
झंडा ऊंचा रहे हमारा

[चित्रकार—श्री फणी चक्रवर्ती]
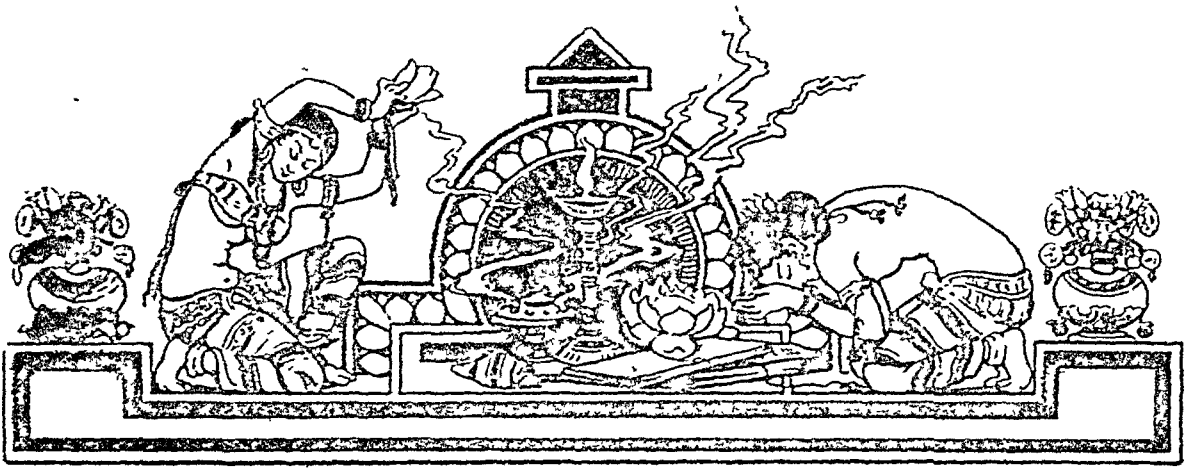
मृत्ति-तिलक

(श्री रामधारी सिंह 'दिनकर')

सब लाये कनकाभ चूर्ण, विद्याधन हम क्या लायें ?
झुका शीश नरवीर ! कि हम मिट्टी का तिलक चढ़ायें।
भरतभूमि की मृत्ति सिक्त मानस के सुधा-क्षरण से,
भरतभूमि की मृत्ति दीप्त नरता के तपश्चरण से।
गंधवती, शुचि रसा कुक्षि से मलय उगाने वाली,
कामधेनु-कल्पद्रुम-सी यह वरदायिनी निराली।
पारिजात से भी सुरभित, यह अरुण कहीं कुंकुम से,
यह मिट्टी अनमोल कनक से, मणि-मुक्ता-विद्रुम से।
भूप कहा कर भी न भूमि का प्रेम सभी पाते हैं,
मुकुटवान इसकी चुटकी भर रज को ललचाते हैं।
जनता के हाथों चढ़ता है जिसे ज्योति का टीका,
उसी भाग्यशाली को मिलता आशीर्वाद मही का।
तन के शासक को न, मृत्ति के उर-पुर के जेता को,
मिट्टी का हम तिलक चढ़ाते स्पृहामुक्त नेता को।
जय उनकी जो नर निरीह, धूसर जन के नायक हैं;
हम विद्याधन विप्र मृत्ति की महिमा के गायक हैं।

बड़े भाई का आशीर्वाद

[देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद]

बाबू श्रीकृष्ण सिंह के सम्बन्ध में कुछ लिखना मेरे जैसे आदमी के लिये जिसका इतना घनिष्ट सम्बन्ध उनके साथ रहा है, गोया अपनी ही सराहना करनी है। मैं श्रीबाबू को उस समय से जानता हूँ जब वे एक युवक विद्यार्थी थे। उनके बड़े भाई श्रीराधिका प्रसाद सिंह भी छात्र-सम्मेलन में बहुत भाग लिया करते थे और श्रीबाबू ने भी उन्हीं का अनुकरण करके छात्र-सम्मेलन में भाग लेना प्रारम्भ किया था। यूनिवर्सिटी में जो सफलता उन्हें मिली उसके साथ छात्र-सम्मेलन में उन्होंने अपनी भाषण-शक्ति का परिचय दिया जिससे केवल बिहार ही नहीं बल्कि सारा भारत आज अच्छी तरह परिचित है। जब महात्मा गांधी जी की पुकार हुई तब उन्होंने अपनी चलती हुई वकालत का छोड़कर असहयोग आन्दोलन में शरीक होना ही श्रेयस्कर समझा और तब से आजतक एकचित्त होकर देश की सेवा और विशेष करके कांग्रेस द्वारा देश की सेवा में ही वे लगे रहे। देश ने और विशेष कर प्रांत ने उनकी उपासना की उचित प्रतिष्ठा की और जब-जब मौका हुआ है, और जो कुछ कठिन से कठिन काम देने का मौका हुआ है उसे उनके जिम्मे सुपुर्द किया है। इस तरह से प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के सदस्य हुए, भारतीय कांग्रेस कमिटी में बराबर सदस्य बने रहे और जब असेम्बली में जाना कांग्रेस ने मंजूर किया, तब से आज तक बराबर कांग्रेस पार्टी के वे नेता रहे। जब कांग्रेस ने मन्त्रि-पद ग्रहण करना स्वीकार किया तब वे कांग्रेस की ओर से प्रधान मन्त्री बनाये गये, जिस पद पर वे आज भी हैं। श्रीबाबू सच्चे देशभक्त हैं और उसके लिए उन्होंने जब जब मौका आया जेल की यातनायें भोगीं और हर तरह के कष्ट सहे। मेरे साथ उनका बर्ताव बराबर बड़े भाई का रहा है और मैं भी उन पर सब बातों में बराबर भरोसा करता रहा हूँ। देश के जन-नायकों में उनका अच्छा स्थान है और हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि उनका बहुत दिनों तक स्वास्थ्य बना रहे जिससे आज की कठिन समस्याओं को हल करने में उनकी बुद्धि, अनुभव और त्याग,—सबसे प्रेरणा मिले। स्वराज्य की प्राप्ति हो गई, पर अब भी बहुत काम बाकी है और वह पूरा करने के लिये उन सभी सिपाहियों की, और काम करनेवालों की जरूरत है जिन्होंने देश की इस तरह की परिस्थिति में अपने त्याग और शक्ति से उसकी सहायता की है। श्रीबाबू को ईश्वर दीर्घजीवी बनायें, यही एक बड़े भाई का आशीर्वाद है।

[आचार्य श्रीक्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए०, शान्तिनिकेतन]

बहुत दिन पहले की बात है, पूर्वी बंगाल की एक विशाल नदी में नाव पर जा रहा था। नाव काफी बड़ी थी, आरोही भी बहुत थे। मल्लाह पुराने और मंजे हुए नाविक थे। अचानक आसमान में काले बादल दिखाई दिए। यह भयंकर तूफान की सूचना थी। मल्लाह चिन्तित दिखाई दिए। उन्होंने जल्दी-जल्दी नाव को किनारे लगाने की तत्परता दिखाई, परंतु मीलो तक केवल पानी ही पानी दिखाई दे रहा था, किनारे का कहीं नाम-निशान नहीं। आखिरकार आँधी आ ही गई। वह बड़ा विकट दृश्य था। मल्लाहों ने नाव बचाने का जी-तोड़ परिश्रम किया, पर सब बेकार गया। अन्त में उन्होंने चिल्लाकर घोषणा की—'नाव अब नहीं बच सकती, जिनके पास जो कुछ सामान है उसे फेंककर हल्का हो जाइए।' सबने मल्लाहों की बात मान ली। सिर्फ एक साथी ने इस निर्देश का पालन नहीं किया। वह एक बनिया था। बेचारे ने सौदा बेचकर आठ सौ चाँदी के रुपये अर्जन किए थे। ये रुपये उसकी कमर में बँधे थे। इनकी माया वह नहीं त्याग सका। आठ सौ रुपयों का वजन कम नहीं होता। वह चौथाई मन के बराबर तो होता ही है। बनिये के मित्रों ने उसे समझाया कि इतना बोझ लेकर तैर जाना कठिन है। परन्तु बनिये के पास एक ही जवाब था—'रुपया ही तो दुर्दिन का संबल है, इसको फेंक दूँगा, तो दुःख-कष्ट के समय मेरा क्या सहारा रह जायगा ?'

नाव डूब गई। अनेक आरोही तैरकर एक रेती से आ लगे। बहुतों की जान बच गई। लेकिन उस बनिया का पता नहीं चला। संकट के दिनों का सहाय समझा जानेवाला सबल ही उसे ले डूबा। उस दिन मैंने समझा कि एक समय का सबल, एक समय का बोझ हो जाता है। सम्पद् भी अवस्था-विशेष में विपद् बन जाती है।

आज इस देश में ऐसी ही एक विशेष अवस्था दिखाई दे रही है। धर्म मनुष्य को उन्नत और महान् बनाने के लिये है, लेकिन आज इसी धर्म के नाम पर खून की नदी बह रही है। दुनिया में रहना होता है, तो नाना प्रकार के स्वार्थों और विरोधों से उलझना ही पड़ता है। धर्म की शीतल धारा में अवगाहन करके मनुष्य उस ज्वाला से शान्ति पाता है, परन्तु यदि यह धर्म ही उस ज्वाला को प्रचण्डभाव से उग्र बना दे, तो मनुष्य के खड़ा होने की जगह कहाँ रहेगी? मदन नामक बंगाली बाउल ने बड़े अफसोस से परम गुरु को सम्बोधन करके कहा था—हे परम गुरो, जिस धारा में डुबकी लगाने से शरीर जुड़ा जाता है, वही यदि दुनिया को भस्म करने निकल पड़े, तो कोई खड़ा कहाँ हो भला। हाय, गुरो, तुम्हारी अभेद साधना भेद की चट्टान पर टूट गई —

डुबल्या याते अंग जुड़ाय,
ताातेइ यदि जगत् पोड़ाय,
बल तो गुरु को थाम दाँडाय,
तोर अभेद साधन मरलो भेदे!

आज हमारे देश में अमानुषिक मार-काट, छीना-झपटी जारी है। यों ही लोग धर्म पर बहुत श्रद्धा नहीं रखते, इस नवीन उत्पात ने तो और भी धार्मिक भावना पर कस के आघात किया है। इसने धर्म-विरोधी रूसी कर्मवाद का मार्ग ही प्रशस्त किया है। यदि यही हालत रही, तो निश्चय ही देशवासी धर्म को नमस्कार कर देंगे।

हिन्दुस्तान में साधारणतया तीन ही धर्म इस खूँरेजी के मामले में प्रमुख हैं,—मुसलमान, हिन्दू और सिख। इस देश में यहूदी या ईसाई इस खूनी खेल में हिस्सा ले रहे हों, ऐसा प्रायः सुनने में नहीं आता। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि क्या इन तीन धर्मों के प्रेरणादायक ग्रंथ या प्रवर्त्तक मूलपुरुष इस खूँरेजी का समर्थन करते हैं?

मुसलमान धर्म का नाम ही इसलाम धर्म है (कुरान ५ ५)। इसलाम शब्द का मूल अर्थ है शान्ति और मैत्री। ईश्वर और मनुष्य के साथ जिसका शान्तिमय सम्बन्ध हुआ है, वही मुस्लिम है (कुरान २ १०६)। मुसलमान लोग परस्पर अभिनन्दन के समय सलाम (शान्ति) शब्द का ही व्यवहार करते हैं। स्वर्ग में भी यह शान्ति-मन्त्र ही ध्वनित हो रहा है (वही, १०.१०)। स्वर्ग में शान्ति के सिवा अन्य व्यर्थ का वाक्य-व्यवहार है ही नहीं (वही, ५६ २६)। कुरान में

कहा है—अल्लाह ने मेरे भीतर जिस ज्ञान की प्रेरणा दी है, उसे मैं मानता हूँ। और तुम्हारे भीतर जिस ज्ञान की प्रेरणा दी है, उसे भी मैं मानता हूँ। मुझमें और तुममें एक ही अल्लाह का निवास है। उसी अल्लाह के प्रति हम प्रणत हैं। (वही २६.४५)। प्राणी-मात्र ही अल्लाह के परिवार के हैं। भगवद्विश्वासी-मात्र भाई-भाई हैं। समस्त स्त्री-पुरुष उनकी ही सृष्टि हैं। उनमें जो अधिक धार्मिक हैं, वे ही मान्य हैं (वही ४६.१३)। सब प्राणी समान प्रेम और प्रीति के विषय हैं (वही ४.३६)।

हजरत मुहम्मद ने कहा है—जब तक हम सभी मनुष्यों से प्रेम न करने लगें, तबतक हमारी भगवद्भक्ति झूठी है। उन्होंने और भी कहा है कि जो बड़ों से श्रद्धा नहीं करता और छोटों से स्नेह नहीं करता, वह मेरा कोई नहीं है। हजरत मुहम्मद का उपदेश है कि जब तक मनुष्य मिथ्या वाक्य और मिथ्या आचरण नहीं छोड़ता, तब तक अल्लाह के साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता। कुरान के मत से भगवान का नाम ही शान्तिमय और कल्याणमय है (कुरान ५६.२३)। शान्तिधाम ही इस्लाम का लक्ष्य है (वही १०.१५) और विश्वमैत्री ही धर्म है (वही, २१.१०७)।

कुरान के पूर्ववर्ती धर्मगुरुओं के निकट जो संदेश प्रेरित हुए हैं, उन सबके प्रति श्रद्धा रखने का आदेश कुरान ने दिया है (कुरान २.४)। पूर्ववर्ती समस्त धर्मगत सत्यों का समर्थन करना ही कुरान का काम है (कु० तृ० अ०)। जगत् की विभिन्न जातियों में भगवान ने नाना भाव से प्रेरणा दी है और प्रेरित पुरुष भेजे हैं (वही ७५.२४)। हजरत को भगवान ने बताया था—तुम्हारे पहले भी इस जगत् में अनेक प्रेरित पुरुष आए हैं, उनमें से अनेक के नाम भी तुम्हें नहीं मालूम, सिर्फ थोड़े-से लोगों के नाम ही तुम्हें ज्ञात कराए गए हैं (वही ४०.७८)। इसलिये भगवत्-प्रेरित पुरुषों में से किसी को त्याज्य और किसी को ग्राह्य समझना उचित नहीं है (वही २.२८५)। हजरत मुहम्मद ने कहा है कि यदि तुम अल्लाह पर विश्वास रखते हो तो अपने पड़ोसी का सम्मान करो। पड़ोसी से भय और विद्वेष करनेवाले को स्वर्ग नहीं मिलता (मुस्लिम)। परस्पर हिंसा-द्वेष मत करो (मुस्लिम और बुखारी)। जो दूसरों पर दया नहीं करता, वह दया पाने का अधिकारी नहीं है। सावधान, किसी पर अत्याचार न करो। उत्पीड़ित की प्रार्थना सीधे भगवान तक पहुँचती है, कोई उसे रोक नहीं सकता। जो क्रोध को जीतता है, वही वीर है (वही)। सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है (वही)। यही मुसलमान-धर्म का सार तत्त्व है।

हिन्दू-धर्म तो अपनी उदारता के लिये सदा से प्रसिद्ध है। यहूदी, ईसाई और पारसी जो कोई विपन्न होकर यहाँ आए हैं, उन्हीं को भारतवर्ष ने आश्रय और प्रेम दिया है। प्राचीन शिलालेखों और ताम्रपत्रों से यह बात पूर्णरूप से प्रमाणित हुई है कि इन धर्मों के साधकों को भी ब्रह्मवृत्ति के समान ही हिन्दू राजाओं ने भूमि दान दी है। बहुतेरे मुसलमान साधक भी इस देश

में आकर प्रेमपूर्वक साधना करते रहे हैं। उन्हें भी भारतवर्ष ने भूमि आदि दान दिए थे। गुजरात की अनुपमा देवी ने मुसलमान सौदागरों के लिये अस्सी मस्जिदें बनवा दी थीं।

भारतीय धर्मसाधना का सार मर्म गीता में इस प्रकार बताया गया है—भगवान को जो जिस भाव से भजन करता है, उसे भगवान भी उसी भाव से प्राप्त होते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (४ ११)

महाभारत में कहा है कि जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म नहीं है, वह कुधर्म है। अविरोधवाला धर्म ही यथार्थ धर्म है—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ॥—वन० १३१-११

हिन्दुओं का अत्यधिक प्रिय और प्रचलित शिवमहिम्नस्तोत्र भी यही बताता है कि जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र को ही जाती हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य भिन्न-भिन्न मार्गों से तुम्हीं तक पहुँचते हैं—

'नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।'

महाभारत में बार-बार कहा गया है कि भूतमात्र का हित ही धर्म है (शान्ति० १६३। ३१, २६१ ५)। अहिंसा ही परम धर्म है, सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है (वन० २०६ ७४)। धर्म के द्वारा सुविधा पाने की चेष्टा गर्हित है (वन० ३१-५)। भागवत में कहा गया है कि किरात, हूण, आंध्र, पुलिंद, पुकस, आभीर, सुह्य, यवन, खस आदि सबके धर्म से समान फल-लाभ होता है (२ ४ १८)। उच्च-नीच सभी भगवान की शरण में जा सकते हैं।

बौद्ध आदि ने तो सभी को स्वीकार किया है। बौद्ध राजाओं ने हिन्दू मंदिरों के लिये और हिन्दू राजाओं ने बौद्ध विहारों के लिये समानभाव से उदारता के साथ दान दिया है। इस बात का प्रमाण पुराने लेखों में बहुत मिल जाता है। जैन लोगों के विषय में भी यही बात सत्य है।

मध्ययुग के गुरु रामानंद के शिष्य साधकश्रेष्ठ कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम-द्वन्द्व को दूर करने के उद्देश्य से दोनों की कमजोरियाँ दिखाई हैं—

मत पूजि हिन्दू मुए, तुरुक मुए सिर नाइ।
ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े, तेरी गति दुहूँ न पाइ॥

कबीर ने कहा है कि दोनों संकीर्ण सीमाओं के बाहर रहना ही उचित है, जो ऐसा नहीं कर सका, उसकी आध्यात्मिक मृत्यु हो चुकी—

हिन्दू मुए राम कहि; मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर सो जीवता, दुहुँ में भेद न जाइ॥

वास्तविक और सच्चा आनंद तो तभी हो सकता है कि काबा और काशी में कोई भेद न रह जाय, राम और रहीम का विभेद लुप्त हो जाय—

काबा फिर कासी भया राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया बैठि कबीरा जीम॥

कबीर ने मुसलमानो के 'तौहीद' या एकेश्वरवाद का उल्लेख करके कहा है कि वे तो एक खुदा की बात करते हैं, परन्तु कबीर का स्वामी तो घट-घट व्यापक है, उसे अपने से पृथक् 'एक' कैसे कहा जाय ?—

मुसलमान कहै एक खुदाइ।
कबीर को स्वामी घट-घट रहे समाइ॥

इस घट-घट-व्यापक को विचित्र रूप में देखना ही 'एकत्व' की चरम सार्थकता है। कबीर ने इसी परम 'एक' को अपना स्वामी या पति कहा है। उन्होंने राम और रहीम का भेद नहीं किया। वस्तुतः हिन्दू और मुसलमान भी भिन्न नहीं हैं। व्यंग्य-भरी भाषा में कबीर ने पूछा है—

जे तू तुरुक तुरुकिनी जाया।
तौ भीतरि खतना क्यों न कराया?

ठीक भी तो है, हिन्दू और मुसलमान में भेद ही कहाँ है ?

एक बूँद एकै मलमूता एक चाम एक गूदा !
एक जोति तें सब उतपाना को बाम्हन को सूदा॥

और फिर,

हमरे राम रहीम करीमा केसो अलह राम सति सोई।
बिसमिल भेटि बिसंभर एकै और न दूजा कोई॥

इस रहस्य का पता मनुष्य के बनाए कृत्रिम शास्त्रों से नहीं चल सकता। इसीलिये कबीर ने कहा है—

वाकी कौन कसेब बखानैं।
पढ़त-पढ़त केते दिन बीते गति एकै नहीं जानैं॥

लेकिन बांग और नमाज से होता क्या है ? कबीरदास तो इस शरीर को ही पवित्र मस्जिद समझते थे, जिसके दस दरवाजे हैं। कोइ भी तीर्थ इसके बाहर नहीं है—

पहिले कानी बग नेवाजा। एक मसीति दसौं दरवाजा।
मन करि मका कबिला करि देही। बोलनहार जगत् गुरु ये ही।
उहाँ न दोजग भिस्त मुकामा। इहहीं राम इहैं रहिमाना॥

इस पक्ष में और उस पक्ष में जाने से हरि नहीं मिलता। जो साम्प्रदायिक विभेद से ऊपर उठ सकता है, वही उसे पा सकता है—

पखापखी के पेखनें सब जगत भुलाना।
निरपख ह्वै जो भजै सो साध सयाना॥

कबीर ने बार-बार कृत्रिम शास्त्र से चालित न होकर प्रेम के द्वारा भगवान को पाने का मार्ग बताया है। उन्होंने नाना भाव से भगवत्-प्राप्ति का साधन बताया है। अपरपार भगवान के नामों का कोई अन्त तो है नहीं, मनुष्य जिस नाम से भी उसे क्यों न पुकारे, भगवान वही रहेगा—

अपरपार का नाँव अनन्त।
कहैं कबीर सोई भगवन्त॥

कबीर के बाद इस प्रकार की साधना के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण हुए दादूदयाल। उन्होंने भी इसी सत्य की घोषणा की—

. बाबा, नहि दूजा कोइ।
एक अनेक नाउँ तुम्हारे मोकों और न होइ।

हिन्दू मुसलमान का भेद व्यर्थ है। दादू ने कहा है—

को पथी हिन्दू तुरुक के को काहू बाबा।

और फिर,

सब घट एकै आतमा, का हिन्दू मुसलमान।

भला यह भी कोई बात है कि खड-खड करके भगवान अपने-अपने हिस्से को बाँटता फिरे ? और फिर भी लोगों ने ऐसा ही किया है। दादू ने कहा है कि ऐसा करनेवाले भ्रम की गाँठ में बँधे हैं—

खड खड करि ब्रह्म को पखि पखि लीया बाँटि।
दादू पूरन ब्रह्म तजि बधे भरम की गाँठि।

रवीन्द्रनाथ ने भी एक जगह इसी भाव से कहा है कि जिस एक नाव पर लाखों मनुष्य भरोसा किए हुए हैं, उसे टुकड़े-टुकड़े करके कोई समुद्र पार कर सकता है ?—

ये एक तरणी लक्ष लोकेर निर्भर,
खण्ड खण्ड करि तारे तरि के सागर ?

सारी दुनिया संप्रदायगत दलबंदी में फँसी हुई है। दादू हैरान होकर पूछते हैं—

ये सब किसके पंथ में धरती अरु असमान—
पानी पवन दिन रात अरु चंद सूर रहिमान ?

असल में—

दादू, दून्यूँ भरम हैं, हिंदू तुरक गँवार।
जे दुहुवां थैं रहित हैं, सो गहि तत्त विचार ॥

इसीलिये दादू ने बताया है कि नामभेद से वस्तुभेद नहीं होता—

अलह कहौ भावै राम कहौ,
डाल तजौ, सब मूल गहौ।

इस समदृष्टि के कारण बहुत लोग दादू से रुष्ट हुए थे; लेकिन सद्गुरु की कृपा से दादू इससे विचलित नहीं हुए। वे न लोगों की प्रसन्नता से हर्षित हुए न रोष से दुःखी—

जब थैं हम निरपख भये, सबै रिसाने लोक।
सद्गुरु के परताप थैं, मेरे हरष न शोक ॥

दादू ने आश्चर्य के साथ कहा है—

जौ हम जाना एक करि तौ काहे लोक रिसाइ ?

सिर्फ कबीर और दादू ही नहीं, उस युग के अनेक बड़े-बड़े साधक इसी विशाल दृष्टिकोण और उदार संदेश के प्रचारक थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही संप्रदाय के साधक एक दूसरे के नजदीक आ सके थे। तुलसी साहब का जन्म ब्राह्मण-वंश में हुआ था; पर उनकी वाणियों से स्पष्ट जान पड़ता है कि वे मुसलिम साधना के कैसे अच्छे जानकार थे। गरीब दास ने समस्त धर्मों और संप्रदाय के सन्तों को समानभाव से प्रणति निवेदन की है—

सतवादी सब संत हैं, आप आपने धाम।
आजिज की अरदास है, सकल संत परनाम ॥

क्योंकि उन्होंने सम्प्रदाय-भेद को कृत्रिम समझा था। उनकी दृष्टि में वेद कुरान में कोई अन्तर नहीं था, सभी भगवत्प्रेरित हैं, सबमें सत्य है। लेकिन जिसने भेद को प्रधान माना, उसके लिये ये ग्रंथ सत्य के मार्ग में बाधक ही हैं। भगवान वेद और कुरान से बँधे नहीं हैं। वे स्वयं ज्योतिरूप हैं। वेद कुरान के बिना भी उन्हें पाया जा सकता है—

वेद कोरान कू छाड़ दे बावरे,
नूर ही नूर कर ले जुहारा,

सिखों के महान् गुरु नानक देव भी इस उदार मार्ग के यात्री थे। उन्होंने मक्का तक की तीर्थ यात्रा की थी। सिखों के महान् ग्रंथ 'ग्रंथ-साहब' में मुसलमान सन्तों के अनेक पद गृहीत हैं। कबीर के समस्त संगृहीत पदों और 'सिलोकों' (दोहों) से एक पूरा ग्रंथ बन सकता है। फरीद शेख के पद भी संगृहीत हैं और उनके सिलोकों की संख्या १६३ हैं।

परवर्ती गुरुओं ने भी इस उदार धर्म का ही उपदेश दिया है। बहुतों की गलत धारणा है कि गुरु गोविंद सिंह मुसलमान-विरोधी थे। वस्तुत गुरु गोविंद भी उसी असंकीर्ण उदार धर्म के उपदेष्टा थे। उनकी नाना साखियों को इस बात के प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। उन्होंने अत्याचार के विरुद्ध तलवार उठाई थी, धर्म मत के विरुद्ध नहीं। उन्होंने निर्बलों को सबल बनाने का व्रत लिया था। उन्होंने सत्य और प्रेम के मंत्र का प्रचार किया था। लोभादि रिपुओं को जीतने के लिये उन्होंने अपने शिष्यों को प्रेरणा दी थी, संकट से जूझने को ललकारा था। वीर होने को पुकारा था। घृणा के स्थान पर मैत्री, और प्रतिशोध के स्थान पर क्षमा का उपदेश उन्होंने दिया था। लेकिन क्षमा तब तक कायरता होती है, जब तक वह दुर्बल-द्वारा अनुष्ठित होती है। क्षमा वीरों का धर्म है, इसीलिये गुरु ने वीर होने को विशेष गुरुत्व दिया था। उन्होंने बलिदान और त्याग का मार्ग बताया था। उनके शिष्यगण आहार-विहार में समान मर्यादा के अधिकारी थे। वे इस विषय में बहुत सावधान थे कि उनके शिष्य किसी को हीन या अस्पृश्य न समझें। गुप्त भाव से वे स्वयं इसकी देखभाल करते थे। कोई किसी को हीन और अस्पृश्य समझे इसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। कन्हाई नामक उनका एक शिष्य था। को पानी पिलाने का काम दिया गया था। एक बार शिष्यों ने शिकायत की कि भी पानी पिलाता है। गुरु इससे बहुत प्रसन्न हुए। कन्हाई के शिष्य आज को सेवा-पंथी कहते हैं। वे भिक्षा माँगकर जीविका निर्वाह को बुरा समझते हैं और चलाते हैं।

इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान-सिख सभी धर्मों में एक ही प्रकार की फिर मनुष्य धर्म के नाम पर इतना उन्मत्त क्यों हो गया है? असल बात यह है। कारण धर्म नहीं है, इनके मूल में स्वार्थ है। स्वार्थ-साधना के कारण ही यह

महाभारत में ऐसे ही हीनकर्मा स्वार्थियों को 'धर्म-वाणिज्यकारी' कहा है (वन० ५१-५)। ये लोग धर्म को अपने हीन स्वार्थ के लिये व्यवहार करते हैं। इन्हीं स्वार्थसाधकों के हाथों आज हिंदुत्व भी विपन्न हो रहा है, इसलाम भी नष्ट हो रहा है और सिख-धर्म भी आहत हो रहा है। ऐसे ही हीनकर्मा व्यक्तियों ने प्राचीन काल में धर्म के नाम पर ईसामसीह को फाँसी पर लटकाया था!

एक धर्म होने से ही क्या समस्या का समाधान हो जायगा? जिन तुर्कों ने बार-बार फारस-राज्य को विध्वस्त किया वे मुसलमान ही थे और फारसवाले भी मुसलमान ही थे। फारस के धर्मोपकरणों को मुल्लों ने ही बेचा था। ईसाई राज्य आपस में कैसी चोटें कर सकते हैं, यह बहुत ताजी बात है। लोभ और मोह मनुष्य को जब ग्रास कर लेते हैं, तो एक धर्म की तो कौन कहे, एक बाप के बेटे खून के प्यासे हो जाते हैं। वस्तुतः लोभ और मोह ही आज के रक्ताक्त इतिहास के मूल में हैं। स्वार्थ ने ही धर्म के नाम पर यह बीभत्सता खड़ी की है। आज धर्म के नाम पर — फल-फूल रहा है। इसे धर्म कहना धर्म का अपमान है।
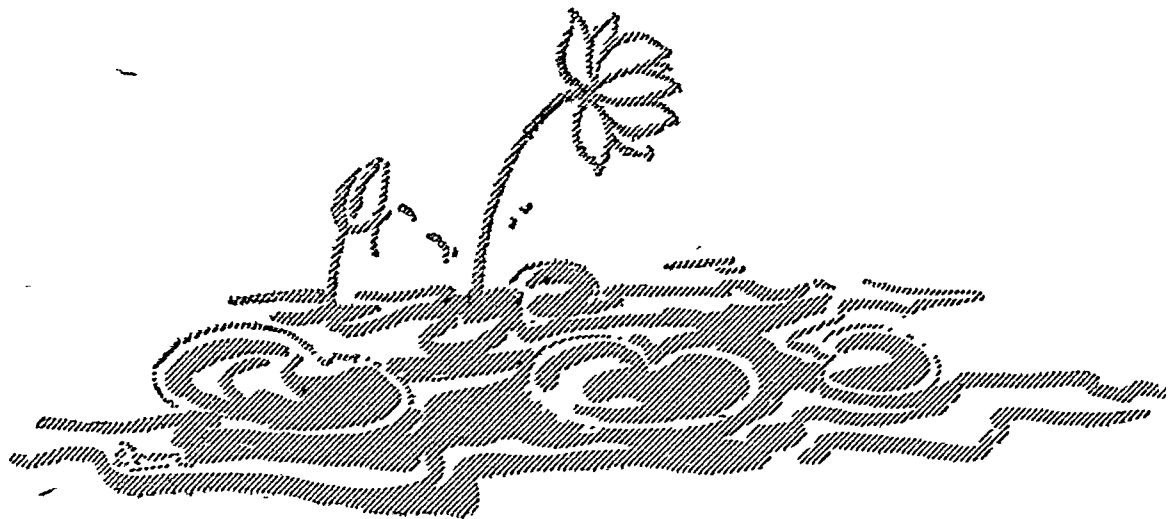
[श्रीइलाचंद्र जोशी, 'संगम'-सम्पादक, इलाहाबाद]

व्यक्तित्व शब्द बहुत व्यापक है और साथ ही बहुत गहन भी। पर आजकल हिन्दी में यह बहुत हलके और छिछले अर्थ में व्यवहृत होता है। जब कोई कहता है कि अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत प्रभावोत्पादक है, तब लोग उसका यह अर्थ लगाते हैं कि उस व्यक्ति की बाहरी आकृति-प्रकृति और भाव भंगिमा आकर्षक है। कहना न होगा कि यदि व्यक्तित्व का अर्थ यहीं तक सीमित होता तो वर्त्तमान लेख की कोई विशेषता सिद्ध न की जा सकती।

'व्यक्तित्व' शब्द बना है व्यक्ति से। 'व्यक्ति' शब्द केवल मानव-जाति की इकाई का बोधक नहीं है। व्यक्ति है किसी एक विशेष मानव प्राणी की साकार सत्ता। उस सत्ता के भीतर उस विशेष प्राणी की बाह्य आकृति प्रकृति भी आ जाती है और साथ ही (जो सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है) उसकी अन्त प्रकृति भी। मनोवैज्ञानिकों तथा अध्यात्मशास्त्रियों के कथनानुसार यह अन्त प्रकृति ही, व्यक्ति के भीतरी तथा बाहरी रूपों की निर्मात्री है। भाषा के क्षेत्र में तो अतः प्रकृति केवल एक छोटे से शब्द का रूप धारण करके अत्यन्त साधारण वेश में अपने को प्रकट करती है, पर इस साधारण से शब्द के भीतर कितनी विशालता और गहनता छिपी हुई है, इसकी कल्पना आसान नहीं है। यद्यपि व्यक्ति की बाह्य प्रकृति का निर्माण उसकी अंत प्रकृति द्वारा ही होता है तथापि बाह्य प्रकृति और अंत प्रकृति में उतना ही अंतर है जितना पृथ्वी की बाहरी सतह और उसकी मिट्टी के भीतर के गर्भ-स्थान में। बाहर से पृथ्वी का रूप अत्यंत शांत, सुंदर, स्निग्ध और मनोरम जान पड़ता है। उसकी मिट्टी में सुंदर-सुंदर फूल खिलते हैं, उसके लहलहाते

हुए हरे-भरे खेतों की बगल से होती हुई मनभावनी नदियाँ लहराती, इठलाती, बल खाती चली जाती हैं; उसकी ऊँची सतहों पर विराट् पर्वतमालाएँ कहीं तो चीड़, बाँस, देवदारु आदि सदा हरे-भरे रहनेवाले पेड़ों की कतारों से छायी हुई स्निग्धता दरसाती रहती हैं और कहीं उत्तुंग शिखरों पर हिमानी की चिर शुभ्रच्छटा सूर्य की किरणों से चमकती हुई एक अपरूप निर्मलता का आभास मानस-पट पर अंकित कर देती है। पर उसके भीतर—उसके गर्भ में—सब समय प्रज्वलित अग्निकुंड धधकता रहता है जिसमें असंख्य पिघलती हुई धातुएँ एक विचित्र रासायनिक क्रिया से एक-दूसरे के संघर्ष में आती हुई प्रतिपल संचरण करती रहती हैं। भूतत्व के केवल प्राथमिक ज्ञान से परिचित व्यक्तियों से भी यह बात छिपी न होगी कि पृथ्वी के गर्भ के भीतर क्रियाशील रहनेवाली ये पिघलती हुई धातुएँ बाह्य प्रकृति की अनुपम और सजीव सौन्दर्यच्छटा के मूल उत्पादक हैं। इस रत्नगर्भा वसुंधरा के जो रत्न—सोना, चांदी, लोहा, कोयला, यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि धातु—सभ्यता के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए हैं वे सब पृथ्वी की ऊपरी सतह के ठंढ पड़ने और जमने के कारण उत्पन्न हुए हैं, और अब भी, समय-समय पर विभिन्न ज्वालामुखियों के विस्फोट के बाद, पृथ्वी के ऊपर 'लावा' के ठंढा पड़ने के कारण उत्पन्न होते रहते हैं।

इसी प्रकार मानव के व्यक्तित्व की मूल निर्मात्री अंतःप्रकृति भी एक धधकता हुआ अग्निकुंड ही है जिसके भीतर असंख्य मूल प्रवृत्तियाँ युगों से पिघलती हुई धातुओं की तरह सब समय उबलती हुई भी एक-दूसरे के संघर्ष में आती रहती हैं। बर्बरावस्था के बाद मानवीय सभ्यता की प्राथमिक अवस्था में, उन्हीं पिघलती हुई धातुओं की तरह उत्तप्त प्रवृत्तियों से ठंढा पड़ने के फलस्वरूप सभ्य मनुष्य की बाह्य प्रकृति का निर्माण उसकी सुसंस्कृत सामाजिक प्रवृत्तियों के रूप में हुआ। मनुष्य के सचेत मन में उसकी बाह्य प्रकृति का यह सामाजिक रूप बँधा हुआ है। पर बीच-बीच में उसके सचेत मन की सतह के नीचे—उसकी मूल-प्रकृति के गर्भ में—निहित अवचेतन मन में, अग्नि-सागर में उमड़ती हुई तरंगों की तरह, उसकी मूल प्रवृत्तियों में जब ज्वालामुखी का-सा विस्फोट होता है तब उसका 'लावा' उसकी बाह्य प्रकृति को छा देता है। फलस्वरूप उसका संपूर्ण व्यक्तित्व हिल उठता है और कभी-कभी एक नये साँचे में ढलने लगता है।

साधारण व्यक्तियों में और प्रतिभाशाली व्यक्तियों में यह अंतर है कि प्रतिभावान के अवचेतन मन में अज्ञात प्रवृत्तियों के विस्फोट की ये क्रियाएँ अक्सर हुआ करती हैं और अधिक तीव्र होती हैं। जो लेखक या कवि जितना ही अधिक अनुभूतिशील होगा उसके भीतर के विस्फोट भी उतने ही अधिक तीव्र होंगे। अंतःप्रकृति में अज्ञात रूप में निहित विचित्र-विचित्र मूल-प्रवृत्तियों के ये विभिन्न स्तरों के विस्फोट ही प्रतिभावानों के सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि जो व्यक्ति जितना ही अधिक अनुभूतिशील होता है उसके भीतर के विस्फोट भी उतने ही अधिक तीव्र होते हैं। और चूंकि ये तीव्र विस्फोट उसके

भीतर अक्सर होते रहते हैं, इसलिए वे उसके बाह्य व्यक्तित्व को भी एक विचित्र बेमेल रूप दे देते हैं। साधारण मनुष्य का बाह्य व्यक्तित्व (अर्थात् उसकी प्रकृति का सचेत रूप) बाहरी विश्व में अपना सामंजस्य आसानी से स्थापित कर लेता है—सभ्य जीवन की सामाजिकता का पालन ठीक तरह से करने में उसे अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। पर प्रतिभावान पुरुष अपनी अंत. प्रकृति के अनवरत विस्फोटों के कारण अपने बाहरी व्यक्तित्व को स्थिर, शान्त और सामाजिक रूप नहीं दे पाता। उसका भीतरी व्यक्तित्व निरंतर ज्वालामुखी की तरह जो 'लावा' बाहर उगलता रहता है उसपर तत्काल खेती नहीं हो सकती और न सामाजिक जीवन के प्रतिदिन का कार्यक्रम ही उसपर चलाया जा सकता है। पर यह लावा' रत्न-प्रसव करनेवाला होता है साथ ही खेती की उत्पादिका शक्ति को बढ़ानेवाले बहुत-से तत्व भी उसमें निहित रहते हैं।

जो भी हो, प्रतिभाशाली व्यक्तियों के व्यक्तित्व के यथार्थ रूप को समझने में जो भूल अक्सर लोग करते रहते हैं उसका कारण उन बातों से स्पष्ट हो जाता है जिनका उल्लेख अभी किया गया है। प्रतिभाशाली नेताओं, लेखकों और कवियों के जीवन-चरित्रों को पढ़ने से पता चलता है कि उनके भीतरी और बाहरी स्वभाव में अक्सर ऐसी विचित्रताएँ पायी जाती हैं जिनकी कल्पना भी साधारण व्यक्ति नहीं कर पाते। उन विचित्रताओं के कारण उनका जो निराला रूप साधारण जनों के आगे आता है उससे वे स्तंभित रह जाते हैं, फल यह होता है कि कभी तो लोग उन्हें देवता मानकर पूजते हैं और कभी पागल समझकर दुरदुराते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि प्रतिभाशाली लेखक और कवि स्वयं यह नहीं समझ पाते कि सहसा कोई अलौकिक अनुभूति किस अदृश्य प्रच्छन्न कारण से कैसे उनके मन में जग जाती है, जो उन्हें तत्काल किसी महान रचना के लिये प्रेरित करती है। महान कवियों के बारे में यह कहा जाता है कि वे तभी किसी महान कृति की रचना कर पाते हैं जब वे स्वप्नावस्था में होते हैं। हम रात में निद्रा की स्थिति में जिन दृश्यों को देखते हैं केवल उन्हें ही स्वप्न नहीं कहा जा सकता। जाग्रत अवस्था के स्वप्न निद्रित अवस्था के स्वप्नों से कम तीव्र और कम आश्चर्यजनक नहीं होते।

रवींद्रनाथ ने अपनी एक कविता में अपनी अंत प्रकृति को संबोधित करते हुए कहा है—"हे कौतुकमयी! तुम नित्य ये कैसे नये नये तमाशे दिखाती हो! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसे तुम कहाँ कहने दे रही हो? प्रतिक्षण तुम मेरे अंदर में बैठा रहती हो और मेरे मुख से मेरी बात छीनकर तुम स्वयं अपनी बात मुझसे कहवा लेती हो! मेरे सुर में तुम अपना सुर मिला देती। मैं जो कुछ कहने बैठता हूँ उसे भूल जाता हूँ, और तुम जो कुछ मुझसे कहलाना चाहती हो वही कह बैठता हूँ ... "

रवींद्रनाथ की इस बात का यह अर्थ लगाना चाहिये कि कवि सचेत रूप से जो कुछ सोचता है वह काव्य-रचना के लिये पर्याप्त नहीं है, काव्य का निर्माण वास्तव में अवचेतना की प्रेरणा से

ही होता है, और वह अंतश्चेतना कब, किस क्षण में, क्या प्रेरणा, किस कारण से देती है, यह स्वयं कवि भी नहीं समझ पाता। विख्यात अंग्रेज कवि शेली ने कहा है—"कविता तर्क-बुद्धि की तरह नहीं है। उसे इच्छा-शक्ति के प्रयोग से उत्पन्न नहीं किया जा सकता। कोई व्यक्ति चाहने पर ही कविता नहीं लिख सकता—महान से महान कवि भी नहीं।" आगे चलकर शेली ने स्पष्ट कर दिया है कि अंतःप्रेरणा ही कवि की मूल प्रेरिका शक्ति है। यह अंतःप्रेरणा कवि के अवचेतन मन में अज्ञान रूप से निहित असंख्य भावरूपी धातुओं के पिघलते रहने से उत्पन्न होनेवाली रासायनिक क्रिया का परिणाम है।

कीट्स का कहना है कि जब वह किसी आकस्मिक प्रेरणा से कोई कविता लिखने बैठता था तो उसके समाप्त होने तक उसे इस बात का ज्ञान नहीं रहता था कि वह क्या लिख रहा है और क्यों लिख रहा है। कोई अज्ञात शक्ति उससे जैसे बरबस अपनी बात लिखाती जाती थी। कविता समाप्त होने पर जब वह उसे पढ़ता था तब कही गयी बातों की विचित्रता और उनके कहने के मनोमोहक ढंग से वह स्वयं चकित रह जाता था।

प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका जार्ज ईलियट का कहना है—"मेरी जो सर्वोत्तम कृतियाँ हैं उनके निर्माण में मेरा हाथ नहीं रहा है। मुझसे अलग कोई शक्ति मुझे बरबस धर दबाती थी और मुझसे अपनी इच्छानुसार लिखवा लेती थी। मैं तो उस अज्ञात शक्ति का एक यंत्र-मात्र रही हूँ।"

उन्नीसवीं शती के सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज उपन्यासकार डिकंस ने एक बार कहा था—"जब मैं किसी नये उपन्यास की रचना करने बैठता हूँ तब कोई मंगलकारिणी अज्ञात शक्ति मुझे रास्ता दिखाती जाती है। उसी के सुझाव के अनुसार मैं चलता रहता हूँ।"

थैकेरे ने कहा था—"अपने उपन्यासों के पात्रों की कुछ उक्तियों से मैं अत्यंत चकित हो उठता हूँ। मैं सचेत रूप से कभी उस तरह की बातें नहीं सोच सकता। मुझे लगता है जैसे ऐसे अवसरों पर कोई अज्ञात रहस्यमयी शक्ति मेरी कलम को चलाती रहती है।"

गेटे अपनी कविताओं के संबंध में कहा करता था—"मेरे गीतों ने मेरा निर्माण किया है, मैंने उनका नहीं।"

सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी कवि लामार्तीन ने भी इसी तरह की बात कही है—"सोचनेवाला मैं नहीं हूँ, बल्कि मेरे अंतस्तल के विचार स्वयं मेरे लिये सोचते हैं।"

इस प्रकार के असंख्य दृष्टांत उद्धृत किये जा सकते हैं। इन सब बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रतिभाशाली कवियों और लेखकों के व्यक्तित्व का निर्माण किसी अज्ञात रहस्यमयी-शक्ति-द्वारा होता है। इस शक्ति के बीजरूपी अणु उनके अन्तर्मन में, उनकी अंतः-

प्रकृति में निहित होते हैं। उन अणुओं में कब, किस अज्ञात कारण से विस्फोट होता है, यह कोई नहीं बता सकता। पर इतना निश्चित है कि यह विस्फोट ही उनकी कलात्मक रचनाओं का कारण होता है।

महान लेखकों के व्यक्तित्व को केवल शारीरिक तथा मानसिक स्तरों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। यदि हम उनके व्यक्तित्व के आध्यात्मिक स्तर को भुला देंगे, तो हम उसकी प्रतिभा के मूल स्रोत और मूल आधार की ही अवज्ञा करेंगे। द्वितीय महायुद्ध के पहले भौतिकतावादी साहित्यालोचकगण कवियों तथा लेखकों की दैवी प्रेरणा की बात को उपहास में उड़ाने लगे थे, और केवल युग की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था को ही कलात्मक साहित्य की सर्जना की मूल प्रेरक शक्ति बताया जाने लगा था। पर महायुद्ध की प्रतिक्रिया ने फिर विद्वानों का ध्यान व्यक्ति की आध्यात्मिक सत्ता की ओर आकर्षित किया है और वे फिर इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि श्रेष्ठ कलात्मक रचनाओं का निर्माण केवल बाहरी कारणों से नहीं होता, बल्कि उसमें किसी रहस्यमयी अज्ञात शक्ति का हाथ रहता है। उसे आप चाहे दैवी प्रेरणा कह लीजिये, चाहे चेतनातीत प्रज्ञा।

[२]

मनुष्य के व्यक्तित्व को केवल मनोविज्ञान के मापदंड-द्वारा नहीं मापा जा सकता। जो आधुनिक मनोवैज्ञानिक यह कहने की धृष्टता करते हैं कि वे मनुष्य की ज्ञात तथा अज्ञात चेतन के विश्लेषण-द्वारा उसके व्यक्तित्व का मूल आधार तथा उसका पूर्ण रूप जान चुके हैं वे अगाध अज्ञानता के मोह-सागर में डूबे हुए हैं। जब से विश्व-विख्यात आस्ट्रियन मनोविज्ञानवेत्ता जिगमुंड फ्रायड ने मानवीय 'अज्ञात चेतना' का 'आविष्कार' किया और यह निर्देशित किया कि केवल उस 'अज्ञात चेतना' के विश्लेषण-द्वारा ही मानवीय व्यक्तित्व का यथार्थ रूप जाना जा सकता है, तब से अधिकांश पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने यह मान लिया है कि मनुष्य की वह 'अज्ञात चेतना' ही उसके व्यक्तित्व का मूल आधार है।

वास्तव में फ्रायड द्वारा आविष्कृत यह 'अज्ञात चेतना' या 'अचेतना' ('अनकांशस') अत्यन्त अस्पष्ट और अनिश्चित अर्थवाचक शब्द है। अक्सर लोग उसे साधारण मानवीय चेतना के परे अवचेतन में निहित मूल मन प्रकृति के अर्थ में ग्रहण करने की भूल करने लगते हैं। पर फ्रायड ने अचेतन मन को एक सीमित अर्थ में व्यवहृत किया है। उसके सिद्धांत के अनुसार मनुष्य की अज्ञात चेतना या 'अचेतन मन' वह क्षेत्र है, जिसकी कोई मूल, स्वतन्त्र और स्थायी सत्ता नहीं है, बल्कि जिसे मनुष्य स्वयं अपने पैदा होने के बाद उत्पन्न करता है। उसका कहना है कि व्यक्ति की साधारण चेतना की शांत सतह पर जब कोई असामाजिक अथवा अरुचिकर और अप्रिय विचार आकर टकराते हैं तब व्यक्ति ऐसे विचारों को वहाँ ठहरने नहीं देता और उन्हें दबाता है। फलस्वरूप वे असामाजिक अथवा अरुचिकर विचार उसके मन के किसी गुप्त स्थान के भीतर छिप

जाते हैं। पर छिपने पर भी वे चोरी-छिपे व्यक्ति की सजग चेतना को—जागृत अवस्था के विचारों को—प्रभावित करते रहते हैं। इन्हीं दबाये गये विचारों के फलस्वरूप फ्रायडियन 'अज्ञात चेतना' का लोक बसा हुआ है।

यदि मानवीय व्यक्तित्व केवल फ्रायड के इस अत्यंत सीमित अचेतन-लोक पर आधारित होता तो उसके उस विराट और महनीय रूप का कोई अस्तित्व ही संभव न होता जिसका आभास असाधारण क्षणों में हमें मिलता रहता है।

फ्रायड के ही शिष्य युंग ने इस संबंध में अपने गुरु से मतभेद होने के कारण उसका विरोध किया। युंग ने अनुभव किया कि मनुष्य का अवचेतन-लोक फ्रायड की अज्ञात चेतना की अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक और गहन है। उसने बताया कि वह केवल व्यक्ति के जीवन-काल में दबायी गयी भावनाओं और प्रवृत्तियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय विकास की आदिम अवस्था से लेकर आज तक मनुष्य बाहरी और भीतरी संघर्षों के फलस्वरूप जिन बर्बर तथा असामाजिक प्रवृत्तियों को दबाता चला आया है वे सब उसके अवचेतन-लोक में अज्ञात रूप में वर्तमान हैं, और समय-समय पर किन्हीं असाधारण कारणों से उसकी वे आदिम प्रवृत्तियाँ फूट पड़ती हैं और उसके सचेत मन पर आक्रमण कर बैठती हैं। युंग ने मनुष्य के इस युग-युग से निर्माणावस्था को प्राप्त अवचेतन-लोक को 'संचित अचेतना' ('कलेक्टिव अनकाशस') कहा है।

युंग फ्रायड से एक कदम आगे अवश्य बढ़ा है, किंतु मानवीय अंतःप्रकृति की स्वतंत्र सत्ता उसने भी स्वीकृत नहीं की है। फ्रायड के दूसरे शिष्य आदलर ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के निरूपण में अज्ञात चेतना के स्तर को फ्रायड से भी अधिक छिछला रूप दे दिया है। उसकी अज्ञात चेतना वास्तव में अर्धज्ञात चेतना का रूप धारण कर लेती है।

आधुनिक मनोविज्ञान पर पूर्वोक्त तीन मनोविज्ञानवेत्ताओं के सिद्धांतों का प्रभाव ही विशेष रूप से पड़ा है, जिससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि आधुनिक मनोविज्ञान ने मनुष्य के व्यक्तित्व को उसकी जड़ सत्ता तक ही सीमित रखा है। मनुष्य की मानसिकता को उन्होंने एक ऐसी जड़ वस्तु के रूप में ग्रहण किया है जिसका विश्लेषण किसी रासायनिक पदार्थ की तरह वैज्ञानिक प्रयोगशाला में किया जा सकता है। जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगशाला में विश्लेषण किये जाने पर किसी जड़ पदार्थ के संबंध में विज्ञान-विशारदों को यह संदेह किसी अंश में नहीं रह जाता कि उसके विश्लेषित तत्वों के भीतर और कोई रहस्यात्मकता छिपी हुई है, इसी प्रकार स्वकल्पित नियमों के अनुसार मनोविश्लेषण करने के बाद आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के मन में भी कोई संदेह नहीं रह जाता कि मानव-मन के विश्लेषित तत्वों के मूल में कोई और अज्ञात, अव्यक्त रहस्यमय तत्व काम कर रहा है।

पर न पश्चिम के प्राचीन अध्यात्म तत्त्ववेत्ताओं ने और न अर्वाचीन रहस्यवादियों ने ही मनुष्य की मानसिकता तथा संपूर्ण व्यक्तित्व को इस सीमित रूप में स्वीकार किया है। उन लोगों को इस संबंध में तनिक भी संदेह नहीं रहा है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के प्रकट जड़रूप का सूक्ष्म से सूक्ष्म विश्लेषण कर लेने के बाद भी उसके भीतर एक ऐसे रहस्यमय तत्त्व का बीज शेष रह जाता है जिसकी शक्ति अपार और असीम है, और जिसका संबंध एक दिव्य तथा अनिर्वचनीय चित्-लोक में है।

संसार में आजतक जितने भी प्रतिभाशाली लेखक, कवि या मनीषी हुए हैं वे सब मूलत रहस्यवादी रहे हैं। उन्हें इस बात का परिचय निश्चित रूप से रहा है कि उनकी प्रतिभा के आकस्मिक विस्फोट के मूल कारण किसी ऐसे दिव्य चेतना लोक में निहित हैं जो उनके जड़ अस्तित्व के मूल में अवस्थित हैं। अन्यथा उनकी उन अलौकिक प्रेरणाओं का कोई कारण नहीं बताया जा सकता जो समय-समय पर उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को छा देती हैं। यह दिव्य चेतना फ्रायडमत 'अचेतना' से बिलकुल भिन्न है।

ये अलौकिक प्रेरणाएँ अत्यंत विचित्र रूप में लेखकों, कवियों अथवा रहस्यवादी दार्शनिकों के आगे आती हैं। कभी कभी तो वे कुछ ही मिनटों की दिव्य अनुभूतियों के रूप में आकर तीव्र अनुभूतिशील व्यक्तियों को एकदम अभिभूत कर देती हैं और वह क्षणिक दिव्य अनुभूति व्यक्ति के जीवन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है।

विख्यात मनोविज्ञानवेत्ता विलियम जेम्स ने इस संबंध में डा० बक नामक एक विद्वान का उदाहरण दिया है। इस डाक्टर को एक बार केवल कुछ ही सेकेन्डों के लिये एक दिव्य अनुभूति हुई, जिसका प्रभाव उसके जीवन पर २५ वर्ष तक बना रहा। ऐसे बहुत से महाकवि हुए हैं जो आकस्मिक, क्षणिक अनुभूतियों से प्रेरित होकर अमर रचनाएँ लिख गये हैं। संसार में जितनी भी श्रेष्ठ कलात्मक कृतियाँ स्थायित्व प्राप्त कर चुकी हैं उनमें से कम से कम ६५ प्रतिशत ऐसी मिलेंगी जिनकी प्रेरणा उनके रचयिताओं को किसी दिव्य चेतना के चंद क्षणों में प्राप्त हुई थी। संसार में जितने भी प्रमुख धर्म-प्रवर्तक हुए हैं—कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि—उन्होंने अपनी किसी दिव्य अनुभूति के क्षण में ही उस आदर्श मार्ग की उपलब्धि की जिसका प्रवर्तन उन्होंने बाद में जीवन भर की साधना द्वारा किया। विश्व के सभी श्रेष्ठ रहस्यवादियों को समय-समय पर जो सच्चिदानन्दमयी अतींद्रिय अनुभूति अभिभूत करती रही है, उसे आज के मनोवैज्ञानिक भले ही मानसिक भ्रम ('हेल्यूसिनेशन') या चित्त-विकार की अवस्था कहकर उपेक्षित करें, पर अनुभवियों के लिये वह चेतनातीत प्रज्ञा की एक अत्यंत वास्तविक तथा उदात्त स्थिति रही है। टेनीसन ने अपनी इस मानसिक स्थिति के संबंध में एक बार कहा था—"मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मेरे मन की वह दिव्य, अतींद्रिय अनुभूति की स्थिति किसी मानसिक भ्रम के कारण उत्पन्न

नहीं हुई थी। वह कोई किसी अस्पष्ट छायात्मक चेतना की हर्षानुभूति नहीं थी, बल्कि एक अतींद्रिय विस्मय की अनुभूति थी, जिसमें विश्व के सभी रहस्य अत्यंत सुस्पष्ट रूप से मेरे सामने आ रहे थे।"

विलियम जेम्स, जो मनोविज्ञान की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को स्वीकार करनेवाले दो-चार बिरले मनोवैज्ञानिकों में प्रमुख हैं, इस संबंध में कहते हैं—"मानसिक चिकित्सा-विज्ञान के हामी किसी समाधि-ग्रस्त रहस्यवादी की दिव्य चेतना की अनुभूति को 'हिप्नोटाइज' किए गए व्यक्ति की-सी मानसिक स्थिति समझ सकते हैं, और उसे हिस्टीरिया-ग्रस्त व्यक्ति का-सा मनोविकार मान सकते हैं। पर इससे वास्तविक समस्या हल नहीं होती और यह प्रश्न बिना उत्तर के ही रह जाता है कि समाधि की अवस्था में (चाहे वह हिस्टीरिया की-सी ही अवस्था क्यों न हो) जो अलौकिक और असाधारण अनुभूति जाग्रत होती है वह कहाँ से आती है, और उसका क्या कारण है। मनोविश्लेषण-विज्ञान तथा मानसिक चिकित्सा-विज्ञान के डाक्टरगण जाग्रत अथवा गुप्त चेतना के केवल ऊपरी स्तरों को छूकर रह जाते हैं और उसके भीतर के मूल रहस्यों से एकदम अपरिचित रहते हैं।"

विलियम जेम्स की यह धारणा है कि प्रतिदिन की जिस साधारण जाग्रत चेतना की अवस्था में अधिकांश मनुष्यों का समय बीतता है वह उस विराट चेतना की केवल एक अवस्था है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को चारों ओर से छाये हुए है। उस एक अवस्था के आसपास, बहुत ही झीने पर्दों के अन्तर से, असंख्य चेतनावस्थाएँ पड़ी हुई हैं। साधारण स्थिति में उन विभिन्न चेतनावस्थाओं की कोई अनुभूति व्यक्ति को नहीं होती, पर किन्हीं अज्ञात और आकस्मिक कारणों से जब उनमें से किसी एक का भी पर्दा फट पड़ता है तब उसी क्षण एक विचित्र ही अनुभूति से व्यक्ति अभिभूत हो उठता है और किसी दूसरे ही चेतना-लोक में पहुँच जाता है। वह नया चेतना-लोक हमारी प्रतिदिन की साधारण चेतना के लोक से भिन्न होता है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि वह मानसिक भ्रम की अवस्था है। वह अवस्था अपने में उतनी ही सत्य है, जितनी की साधारण चेतनावस्था—बल्कि कभी-कभी वह उससे भी अधिक सत्य सिद्ध हो सकती है।

[३]

पहले ही कहा जा चुका है कि जाग्रत चेतनावस्था के चारों ओर जो दूसरी चेतनावस्थाएँ वर्तमान रहती हैं वे एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। उनमें से कब किस व्यक्ति के भीतर कौन अवस्था जाग्रत हो उठेगी और वह क्या अनुभूति जगावेगी यह कोई नहीं कह सकता। अक्सर ऐसा अनुभव प्रायः सभी व्यक्तियों को होता है। मान लीजिये, आप किसी व्यक्तिगत, सामाजिक अथवा राजनीतिक चिंता के कारण एक विशेष मानसिक अवसाद की अवस्था में डूबे हुए हैं। उस समय समस्त दृश्य जगत् किसी एक गाढ़े अँधेरे रंग से पुता हुआ-सा आपके सामने आता है और

आप चाहने पर भी अपने मन की उस अवसाद की अवस्था से उबरने में अपने को असमर्थ पाते हैं। सहसा कहीं रेडियो से अथवा ग्रामोफोन के किसी रेकर्ड से एक ऐसा गाना बज उठता है जो पल में आपके मन की स्थिति को बदल देता है और आपके भीतर चेतना की किसी ऐसी अवस्था का पर्दा खोल देता है कि उसके फलस्वरूप आप किसी निराले ही लोक में पहुँच जाते हैं। और उस निराली अनुभूति के कारण जगत् का एक निराला ही रूप आपके आगे उमड़ जाता है और जीवन के सबंध में आपका सारा दृष्टिकोण ही एकदम बदल जाता है। आपको यह सोचकर आश्चर्य होता है कि जगत् का वह रूप इतने दिनों तक आपकी दृष्टि से कैसे और कहाँ छिपा रह गया था। वह चेतनावस्था आपके सभी व्यक्तिगत विरोधी सस्कारों को पल में न जाने कहाँ विलीन कर देती है और आप सारे विश्व को एक नि.सग, निर्लिप्त दृष्टि से देखते हुए उसके अपूर्व आनंदमय रूप का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगते हैं। इस दिव्य अनुभूति को—इस 'विज़न' को—मानसिक भ्रम किसी भी दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। बल्कि सच तो यह है कि ऐसी मनोदशा से अधिक मानसिक स्वच्छता अन्य किसी भी अवस्था में शायद ही सभव हो।

रवींद्रनाथ ने अपनी 'जीवन-स्मृति' में बताया है कि 'निर्झरेर स्वप्नभंग' नाम की जो कविता उन्होंने लिखी है, उसके आरंभ करने के कुछ ही समय पूर्व तक उनकी मानसिक स्थिति किस प्रकार अवसाद-ग्रस्त थी, और उसके बाद सहसा उनके भीतर एक विचित्र चेतनावस्था का पर्दा कैसे खुल गया, और उसके खुलते ही तत्काल उनके मन की सभी जड़ता-ग्रस्त भावनाएँ पल में जड़ पाषाण खडों की तरह कैसे ढह गईं और एक अपूर्व मानसिक तरंग के वेग से भाव-निर्झर बन्धनहीन अवस्था में फुफकारता और गरजता हुआ अनत आनद के महासागर में विलीन होने के लिये किस प्रकार उमड़ चला।

केवल कवियों और लेखकों तक ही ये आकस्मिक, अलौकिक अनुभूतियाँ सीमित नहीं हैं। ससार के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों तथा अन्य क्षेत्रों के प्रतिभाशाली व्यक्तियों के भीतर भी समय-समय पर इस प्रकार की दिव्य चेतनाएँ जगती रहती हैं—जिनका कोई सगत प्रत्यक्ष कारण नहीं जान पड़ता। उदाहरण के ज़िये, एक साधारण सेब के पेड़ से नीचे गिरते ही न्यूटन के आगे विराट विश्वव्यापी माध्याकर्षण के नियम का जो ज्ञान आकस्मिक रूप से उद्घाटित हो गया वह मन के भीतर बद पड़ी हुई किसी दिव्य चेतनावस्था का पर्दा खुलने के ही कारण सभव हुआ। स्वय न्यूटन उसके पहले भी कई बार पेड़ से सेब को नीचे गिरते हुए देख चुका था, पर कभी उसे इस तरह की कोई प्रेरणा नहीं हुई। माध्याकर्षण के नियम का वह रहस्य युगों से मानवता से छिपा हुआ था। न्यूटन के पहले के बड़े बड़े धुरधर मनीषी भी उससे अपरिचित ही रह गए थे। स्वय न्यूटन को किसी भी वैज्ञानिक गणना-द्वारा वह ज्ञान नहीं हो पाया। और जब ज्ञान हुआ तो एक अत्यत तुच्छ घटना के कारण। यह तो स्पष्ट ही है कि सेब का गिरना न्यूटन के ज्ञान के खुलने का मूल

कारण नहीं था। मूल कारण था उधर सेब का गिरना और इधर ठीक उसी समय मन के भीतर की किसी एक युगों से सुप्त चेतना का पर्दा खुल जाना। इन दोनो की काकताली उस अत्यंत महत्त्व-पूर्ण रहस्योद्‌घाटन का कारण सिद्ध हुई जिसके बिना मानव आज बहुत बड़े अंधकार में भटकता होता। यह सोचने की बात है कि न्यूटन एक बहुत बड़ा गणितज्ञ और वैज्ञानिक था, पर माध्याकर्षण का ज्ञान उसे अपनी सारी गणितज्ञता और वैज्ञानिकता से प्राप्त न हो सका। वह प्राप्त हुआ एक साधारण से सेब के पेड़ पर से गिरने से! मानवीय चेतना-लोक की अपार रहस्यमयता का यह केवल एक छोटा-सा उदाहरण है।

आधुनिक संसार के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइनस्टाइन ने जिस विश्वविख्यात सापेक्षवाद के सिद्धांत का आविष्कार किया है उसकी प्रेरणा भी उसे एक अत्यंत साधारण घटना से प्राप्त हुई। एक दिन वह अपने कमरे में शून्य मानसिक स्थिति में बैठा हुआ बाहर की ओर देख रहा था। एक मजदूर काठ की एक लंबी सीढ़ी पर चढ़ा हुआ पुताई का काम कर रहा था। सहसा सीढ़ी खिसक गई और मजदूर नीचे गिरा। मजदूर सीधा नीचे को न गिरकर तिरछा गिरा। बस, केवल इतनी-सी बात से—मजदूर के तिरछा गिरने की घटना से—आइनस्टाइन को सहसा एक ऐसा दिव्य ज्ञान हुआ जिसने आज ज्ञान के क्षेत्र में क्रांति मचा डाली है।

इस प्रकार के असंख्य उदाहरण पेश किए जा सकते हैं।

हमारे यहाँ योगशास्त्र में बताया जाता है कि नाड़ी-चक्र के विभिन्न स्तर विभिन्न ज्ञान-कोषों के प्रवेश-द्वार हैं। यौगिक क्रियाओं द्वारा उन अवरुद्ध द्वारों को खोलते रहने से नये-नये ज्ञान की अनुभूतियाँ होती रहती हैं। सब द्वारों के खुल जाने के बाद अंत में जब कुंडलिनी भी खुल जाती है तब ब्रह्मानंद की पूर्ण अनुभूति होती है। रूपक की भाषा में योगशास्त्रियों ने यह जो बात बताई है उसका तात्पर्य यह समझना चाहिए कि मानवीय चेतना-लोक के भीतर चेतनावस्था के जो विभिन्न स्तर होते हैं उनमें से एक को छोड़कर शेष सभी साधारणतः रुद्ध अवस्था में पड़े होते हैं। केवल वह चेतना अक्सर खुली रहती है जो मनुष्य की प्रतिदिन की साधारण जाग्रत चेतना कही जाती है। शेष जो रुद्ध-चेतनावस्थाएँ हैं वे बीच-बीच में किन्हीं आकस्मिक अज्ञात कारणों से कुछ क्षणों के लिये खुल पड़ती हैं (एक बार में केवल एक ही चेतनावस्था का पर्दा खुलता है—सब एक साथ नहीं खुलते)। योगशास्त्र ऐसा मार्ग सुझाता है जिसके द्वारा केवल कुछ क्षणों के लिये खुलनेवाली उदात्त चेतनावस्थाएँ स्थायी रूप से अथवा व्यक्ति की इच्छामात्र से खुल जायँ। गीता में एक स्थान पर कहा गया है—

> या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
> यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

इसका आशय यही समझना चाहिए कि सिद्ध पुरुषगण मनुष्य की प्रतिदिन की साधारण जाग्रत चेतना से भिन्न किसी उदात्त चेतनावस्था में अपने को मग्न रखते हैं।

मानवीय चेतना के जो आश्चर्यजनक रूप समय-समय पर जाग्रत हो उठते हैं उनमें 'दूरानुभूति' (टेलीपेथी) भी एक है। आधुनिक चेतनाशास्त्रियों ने अनेक विस्तृत प्रयोगों के बाद यह प्रमाणित कर दिया है कि चेतना की किसी विशेष अवस्था के जाग्रत होने पर एक व्यक्ति दूर ही से किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन में घटनेवाली घटनाओं को जान लेता है और भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का भी पूर्वाभास पा लेता है। दूर ही से एक-दूसरे के मन के इरादों से परिचित हो जाना तो ऐसी चेतनावस्था में एक साधारण-सी बात है। यह 'दूरानुभूति'-विज्ञान कोई ठग-विद्या नहीं है। बड़े बड़े वैज्ञानिकों और प्रतिष्ठित विद्वानों ने इस सबध में प्रयोग किए हैं। अपटन सिक्लेयर का नाम भी इस सबध में लिया जा सकता है। इस अमेरिकन मनीषी ने आजीवन समाज-सुधार के क्षेत्र में प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाया है। दूरानुभूति के सबध में वह स्वय अपने अनुभवों से इस कदर प्रभावित हुआ कि उसने इस सबध में मेण्टल रेडियो (मानसिक रेडियो) नाम की एक पुस्तक ही लिख डाली।

हिप्नोटिज्म की अवस्था मे व्यक्ति चेतना की जिस स्थिति को पहुँच जाता है वह एक प्रकार की दिव्यदृष्टि की ही अवस्था है। उस अवस्था में व्यक्ति ऐसे ऐसे विषयों पर किए गए प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दे देता है जिनके सबध में साधारण अवस्था में उसकी जानकारी नहीं के बराबर होती है। विशेषरूप से हिप्नोटाइज किया गया व्यक्ति किसी वस्तु के स्पर्शमात्र से उस वस्तु से सबधित गुप्त से गुप्त और अज्ञात से अज्ञात बातों का भेद खोलता चला जाता है।

इस प्रकार की 'दिव्यदृष्टि' प्राप्त करनेवाले व्यक्ति अधिकतर ऐसे होते हैं जो स्वय अपने को हिप्नोटिज्म से समाधि की भी अवस्था में मग्न करने में समर्थ होते हैं। एक ऐसा ही व्यक्ति जब समाधि की अवस्था में मग्न था तब उसके हाथ में मिस्र के किसी प्राचीन राजा की कब्र से उठाया हुआ पत्थर का टुकड़ा रखा गया। उसे छूते ही उसने बताया कि किसी प्राचीन युग के राजा, रानी और उनके दास दासियों का चित्र उसके सामने आ रहा है, और इसके बाद उसने विस्तृत रूप से उस राजा के व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ बतायीं। इस तरह के दृष्टांतों में कभी-कभी कुछ अतिरजना हो सकती है, पर यह नि सदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों, अध्यात्मशास्त्रियों तथा मनोविज्ञानवेत्ताओं ने ऐसे मामलों की जाँच की है, और उनमें बहुत कुछ सचाई पाई है।

इन सब बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मानवीय व्यक्तित्व का विस्तार बहुत विराट और गहन है और मन की असख्य चेतनावस्थाएँ उसके भीतर समाहित हैं। साथ ही यह विरोधाभासात्मक तथ्य भी यथार्थ है कि वे विभिन्न चेतनावस्थाएँ ही भिन्न भिन्न समयों में जाग्रत होकर मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास और प्रसार का कारण होती हैं।

———

ाशा का लौ

[चि०—श्री दिनेश शास्त्री

[भदन्त शान्ति भिक्षु, शान्ति-निकेतन]

चीन देश में बौद्ध धर्म के जिन भारतीय ग्रंथो के अनुवाद हुए हैं अथवा जो ग्रंथ वहाँ स्वतन्त्र रूप से लिखे गए हैं, उन सबमें जहाँ बौद्ध आचार्यों की परम्परा का उल्लेख है; आचार्य अश्वघोष ❀ का नाम भी पाया जाता है। अश्वघोष तक की आचार्य-परम्परा || इस तरह है—

	फो-.चु-थुङ्-चाय्	फु-.चु-थुङ्-चि	फु-फा-चाङ्-त्रु आन्	बुद्धमित्र †	सर्वास्तिवादिन्	
१	महाकाश्यप	महाकाश्यप	महाकाश्यप	आनंद	महाकाश्यप	१
२	आनंद	आनंद	आनंद	मध्यांतिक	आनंद	२
३	शाणवास	शाणवास	शाणवास	शाणवास	मध्यांतिक	३

❀ चीनी अनुवाद में अश्वघोष के लिए मा-मिङ् (=घोड़े की ध्वनि) शब्द का प्रयोग हुआ है ऐसा नाम पड़ने के संबंध में प्रचलित दंतकथा को हम आगे चलकर देंगे।

|| देखिए, सुज़ुकी कृत महायान-श्रद्धोत्पाद की भूमिका।

† बुद्धमित्र कपिलवस्तु के निवासी थे और ४०६ ई० में चीन गए थे। इन्होंने कितने ही ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया। विशेष विवरण के लिये देखिए छ्ु-सान्-चाङ् चि-चि (=त्रिपिटक के अनुवाद का विवरण। इसमें ६७ ई० से ५२० ई० तक के चीनी में अनूदित बौद्ध ग्रंथों की कहानी दी हुई है। (दे० नैनूजियो १४७६)। बुद्धमित्र और सर्वास्तिवादियों की सूची की आचार्य-परंपरा प्रायः समान है।

४	उपगुप्त	उपगुप्त	उपगुप्त	उपगुप्त	शाणवास	४
५	हतक	हतक	हतक	कात्यायन	उपगुप्त	५
६	मिच्छक	मिच्छक	मिच्छक	वसुमित्र	मैत्रेय	६
७	बुद्धनदि	बुद्धनदिन्	बुद्धनदिन्	कृष्ण	कात्यायन	७
८	बुद्धनदिन	बुद्धमित्र	बुद्धमित्र	पार्श्व	वसुमित्र	८
९	बुद्धमित्र	पार्श्व	पार्श्व	अश्वघोष	कृष्ण	९
१०	पार्श्व	पुण्ययशस्	पुण्ययशस्		पार्श्व	१०
११	पुण्ययशस्	अश्वघोष	अश्वघोष		अश्वघोष	११
१२	अश्वघोष					१२

परम्परा की नामसूची से यह बात स्पष्ट है कि यह परम्परा एक चिर तक विभिन्न सम्प्रदायों में मौखिक ही चलती रही और बाद में लिख ली गई। स्मरण रखनेवालों के सम्प्रदाय-भेद से पीढ़ियों के नाम में जो थोड़ा-बहुत हेर-फेर दिखाई देता है, वह केवल स्मरण रखनेवालों की असावधानी के कारण एक-आध नाम में गोलमाल हो जाने से। जो भी हो, इस आचार्य-परम्परा की विभिन्न नामावलियों में अश्वघोष का नाम पार्श्व या पुण्ययशस् के नाम के बाद दिखाई देता है, जो बहुत संकेतपूर्ण है। अश्वघोष का सम्बन्ध इन दोनों से अवश्य रहा है। चीन में दर्ज की गई भारत की अश्वघोष-सम्बन्धी दंतकथाओं में अश्वघोष का पार्श्व और पुण्ययशस् दोनों से ही सम्बन्ध बतलाया गया है। कुमारजीव (पाँचवीं शदी) ने चीनी भाषा में अश्वघोष की एक बहुत छोटी-सी (लगभग एक हजार चीनी अक्षरों की) जीवनी का अनुवाद किया है, जिसका नाम 'मा-मिङ्-फु सा-त्र्-आन्' है। उस जीवनी में अश्वघोष को पार्श्व का शिष्य कहा गया है। एक दूसरा ग्रंथ फु-फा-चाङ्-त्र्-आन् (धर्मपिटकचरित) है। उसमें अश्वघोष को पुण्ययशस् का शिष्य कहा गया है। हम यहाँ दोनों ग्रंथों में उल्लिखित दंतकथाओं को क्रम से दे रहे हैं।

"महास्थविर पार्श्व उत्तराखंड के निवासी थे। वे एक बार मध्यदेश पहुँचे तो देखा, बौद्ध विहारों में घंटाघोष नहीं हो रहा है। उन्होंने उसका कारण पूछा। स्थानीय भिक्षुओं ने बताया कि यहाँ एक अत्यन्त तार्किक तैर्थिक पंडित है जिसने भिक्षुओं को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा है। उसने कहा है कि भिक्षुओं में से कोई एक भी यदि मेरे साथ वाद कर सके तभी विहार घंटाघोष से मुखरित हो सकते हैं, नहीं तो घंटाघोष बंद करना होगा। यहाँ के भिक्षुओं में से कोई भी उससे भिड़ नहीं सकता। इसलिये विहारों में घंटाघोष बंद है। महास्थविर पार्श्व ने विहारों में घंटाघोष की आज्ञा दी और स्थानीय भिक्षुओं से कहा, यदि तैर्थिक पंडित वाद के लिये आयें तो मैं उनसे वाद करूँगा। बस क्या था। विहारों में घंटाघोष होने लगा। तैर्थिक ने घोष सुनते ही वाद के लिये भिक्षुओं का आह्वान किया। आचार्य पार्श्व ने कहा, मैं तुमसे वाद

करूँगा, पर अकेले नहीं। यहाँ के राजा, अमात्य, श्रमण और तैर्थिक सब विहार में एकत्र हों, फिर उनके सामने वाद होगा। दोनों ने मिलकर सातवाँ दिन वाद के लिये नियत किया। वाद से एक दिन पहले महास्थविर पार्श्व ध्यानस्थित हो सोचते रहे कि कल वाद के अवसर पर क्या किया जाय। सातवें दिन, प्रातःकाल से ही विहार में शास्त्रार्थ सुननेवालों का जमघट लगने लगा। महास्थविर पार्श्व असाधारण प्रसन्न मुद्रा में तैर्थिक से पहले ही सभा में पहुँच गए और वेदी पर जा बैठे। तैर्थिक पंडित कुछ बाद में पहुँचे और महास्थविर के सामने बैठ गए। बैठने के बाद महास्थविर की अत्यंत प्रसन्नमुद्रा देखकर तैर्थिक पंडित ने सोचा, यह स्थविर निश्चय ही कोई साधारण भिक्षु नहीं हैं। निश्चय ही आज का शास्त्रार्थ असाधारण होगा। तत्पश्चात् जय-पराजय की शर्तों पर बातचीत हुई। तैर्थिक ने कहा, पराजित को अपनी जिह्वा काट डालनी चाहिए। स्थविर ने कहा, नहीं, यह बात नहीं। पराजित को विजेता का शिष्य हो जाना चाहिए। तैर्थिक ने स्थविर की बात मान ली और पूछा कि पहले कौन बोलेगा? स्थविर ने कहा कि मैं तुम्हारी अपेक्षा वयोवृद्ध हूँ, बहुत दूर से तुम से वाद करने के लिये यहाँ आया हूँ और आज भी प्रातःकाल यहाँ तुमसे पहले पहुँचा हूँ, इसलिये पहले बोलने का अवसर मुझे ही मिलना चाहिए। तैर्थिक ने यह बात भी मान ली और कहा कि तुम पक्ष-स्थापन करो, मैं उसका पूरा निराकरण करूँगा। महास्थविर पार्श्व ने पूछा—'राष्ट्र में पूर्ण शान्ति रखने, राज के दीर्घायु होने तथा प्रजा को सुखी, समृद्ध, निर्दोष एवं विपत्ति-रहित करने के लिये क्या करना चाहिए? तैर्थिक पंडित इस प्रश्न से बहुत असमंजस में पड़ गए, उन्हें उत्तर नहीं सूझा। शास्त्रार्थ के नियम के अनुसार उत्तर न दे सकनेवाला पराजित हो जाता है। अतः पराजित हो तैर्थिक ने स्थविर की वंदना की और शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। फिर मूँड़ मुड़ाकर, बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर वे प्रव्रजित हो गए। तदनन्तर कुटिया में अकेले बैठे-बैठे उनके मन में यह भाव आया कि उज्ज्वल प्रतिभा, दूरदर्शिता, लोकश्रुत ख्याति के होने पर भी आज एक ही प्रश्न के द्वारा पराजित होकर मुझे दूसरे का शिष्य क्यों बनना पड़ा है? महास्थविर पार्श्व ने उनके मन की बात भाँप ली। उन्हें अपनी कुटी में बुलाया तथा ऋद्धिबल से कुछ चमत्कार दिखलाए, जिनका अश्वघोष पर प्रभाव पड़ा और उन्हें बहुत आत्मसंतोष हुआ कि उनका गुरु कोई साधारण पुरुष नहीं है। स्थविर ने और भी कहा—"तुममें जैसी उज्ज्वल प्रतिभा है, उसका पाना अन्यत्र दुर्लभ है, पर उसका अंतिम परिष्कार करना अपेक्षित है। मैं जिस धर्म को जानता हूँ, यदि तुम उसका अध्ययन कर लो और वाद-प्रणाली में कुशलता प्राप्त कर लो तो फिर दुनिया में तुम्हारी बराबरी कोई नहीं कर सके। अनन्तर स्थविर पार्श्व फिर उत्तराखंड चले गए और उनके शिष्य (अश्वघोष) ने मध्यदेश में ही रहकर सूत्रों का विस्तृत अध्ययन किया। बौद्ध और अबौद्ध सिद्धांतों में पारगामिता प्राप्त की। उनकी वाग्मिता ने उनके लिये सब विघ्न-बाधाओं को हटा दिया। चारों वर्णों के लोग उनका आदर करते थे तथा मध्यदेश के राजा की दृष्टि में उनका विशेष महत्त्व था।" मा-मिङ्-फु-सा-चुआन् में क नि त (=कनिष्क) के

मध्यदेश पर आक्रमण और अश्वघोष को अपने दरबार में ले जाने की बात आई है और वहीं पर अश्वघोष नाम के निर्वचन की भी दन्तकथा है। इन दोनों बातों को हम आगे चलकर देंगे।

कुमा-चाङ्-चुआन् में पार्श्व को नहीं, पर पार्श्व के शिष्य पुण्ययशस् को अश्वघोष का गुरु कहा गया है। दन्तकथा का सार इस तरह है—"तैर्थिक पडित (=अश्वघोष) आत्मवाद के दृढाग्रही थे। उन्होंने सुना कि बौद्ध आचार्य पुण्ययशस् ने, जो बहुत बड़े विद्वान हैं, घोषणा की है कि विश्व में सब कुछ प्रतीत्य समुत्पन्न (=सकारण एव परिवर्तनशील) होने से शून्य है। आत्मा या पुद्गल (=जीव) जैसी कोई वस्तु परमार्थतया नहीं है। तैर्थिक पडित आचार्य पुण्ययशस् के पास पहुँचे और कहा—'जैसे ओलों की वर्षा कोमल तृणांकुरों को दलित करती है, वैसे ही मैं विपक्षी के सिद्धान्तों का निराकरण करता हूँ। यदि मेरी यह घोषणा मिथ्या सिद्ध हो तो मैं अपने को पराजित समझ लूँगा और जिह्वा काट डालूँगा।' यह सुनकर आचार्य पुण्ययशस् ने व्याख्या करके बतलाया कि—'सत्य दो प्रकार का होता है, एक है सवृतिसत्य (=व्यवहारसत्य) और दूसरा है परमार्थसत्य। व्यवहारसत्य की दृष्टि से आत्मा की सत्ता मानी जाती है, पर परमार्थसत्य की दृष्टि से वह कुछ नहीं है। सत्त्व स्वभावत शान्त और निर्वृत है। इसलिये आत्मा को (=जिसका हम 'अह' या 'मम' शब्द से निर्देश करते हैं) परमार्थ नहीं सिद्ध कर सकते।' पर अश्वघोष आचार्य की बात से सहमत नहीं हुए। आचार्य ने फिर कहा—'अपने आप सोचो, मिथ्या बात न कहो, बतलाओ किसका पक्ष प्रबल है।' अश्वघोष ने कुछ देर तक विचार किया और देखा कि व्यवहारसत्य तो प्रतीत्यसमुत्पन्न है, उसमें सत्य हो ही क्या सकता है! परमार्थसत्य स्वय ही शान्त एव निर्वृत है। इसलिये इन दोनों सत्यों का साक्षात्कार हो ही कैसे सकता है? इस तरह जब दोनों ही सत्य नहीं हैं, तब उनका निराकरण कैसे हो? इस तरह विरोधी के पक्ष को प्रबल समझते हुए उन्होंने अपनी जीभ काट डालनी चाही। पर आचार्य पुण्ययशस् ने उन्हें रोक लिया और कहा—'हम करुणा और दया के सिद्धान्त का उपदेश करते हैं। हम नहीं चाहते कि तुम अपनी जीभ काट डालो। इसके बदले तुम सिर मुँड़ा डालो और मुझसे काषाय लेकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाओ।' इस तरह आचार्य पुण्ययशस् ने अश्वघोष को बौद्ध धर्म में दीक्षित कर श्रमण (=साधु) बना लिया। पर इससे अश्वघोष के मन में बहुत ग्लानि आई और अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा की याद कर इस अवस्था में जीने की अपेक्षा उन्होंने आत्मघात करके मर जाना श्रेयस्कर समझा। इधर आचार्य पुण्ययशस् ने समाधिस्थ होकर अश्वघोष के मन की अवस्था जान ली। अत बुलाया और ग्रथ कुटी से ग्रथ लाने को कहा। अश्वघोष ने आचार्य से कहा—'कुटी में घना अँधेरा है। वहाँ कैसे ग्रथ ढूँढ सकूँगा?' आचार्य पुण्ययशस् ने कहा—'भीतर जाओ, मैं तुम्हें प्रकाश दिखलाता हूँ।' अनन्तर आचार्य ने ऋद्धिबल से अपना हाथ कुटी की ओर बढ़ाया और उनकी पाँचों उँगलियों में से प्रत्येक से प्रकाश की किरणें निकलने लगीं, जिससे कुटी के भीतर की

भित्ति उद्भासित हो उठी। अश्वघोष ने उसे अपना मति-विभ्रम समझा। उन्हें पता था कि मन सचेत रहे तो मति-विभ्रम अपने आप दूर हो जाता है। पर उन्हें बड़ा अचरज हुआ, जब प्रकाश और भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा। प्रकाश का तिरोधान करने के लिये उन्होंने मंत्रबल का भी प्रयोग किया, पर इससे कुछ नहीं सधा। बल्कि स्वयं बहुत श्रान्त हो गए। अनन्तर उन्होंने समझा कि यह सब चमत्कार किसी दूसरे का नहीं, बल्कि उनके गुरु का किया हुआ है। तब उन्हें अपने आत्मघात के विचार पर बड़ा अनुताप हुआ। इसके बाद वे निरन्तर शीलाचार का पालन करते रहे और कभी भी उनके जीवन में कोई गिरावट नहीं आई।"

इन दोनो दन्तकथाओं में जो आपाततः विरोध है वह बहुत नगण्य-सा है। जान पड़ता है कि पार्श्व, पुण्ययशस् और अश्वघोष तीनो ही समकालीन थे। कदाचित् पार्श्व अत्यन्त वृद्ध थे, जैसा कि दन्तकथा में उन्हें स्थविर (=छाङ्_लाव्) कहकर स्मरण किया है। और इसी लिये अश्वघोष को केवल उन्हीं से नहीं, प्रत्युत् उनके शिष्य पुण्ययशस् से भी बहुत कुछ अध्ययन करना पड़ा था। एक विद्वान को पराजित होकर शिष्य बनने में लज्जित होना स्वाभाविक था। और उसके लिये यदि उन्होंने आत्महत्या तक का विचार कर डाला हो तो भी कोई अचरज की बात नहीं हो सकती। रही बात चमत्कार आदि की जिसे आज का व्यक्ति ऐतिहासिक तथ्य नहीं मान सकता; हम उसकी उपेक्षा कर सकते हैं, क्योंकि प्राचीन अनुश्रुतियों, जनकथाओं, किंवदंतियों में चमत्कार आदि से रहित कोरा ऐतिहासिक तथ्य मिल जाय, यह तो संभव नहीं है।

इन दो दंतकथाओं के अतिरिक्त दो और दंतकथाएँ मध्यदेश से अश्वघोष को तुखार ले जाने के सम्बन्ध में हैं। फु-फा-चान्-चुआन् के अनुसार कथा यों है--"तुखार देश का राजा बहुत शक्तिशाली था। उसका नाम चि-नि-छ् (=चंदन कनिष्ठ ? कनिष्क) था। वह बहुत महत्त्वाकांक्षी, वीर और अपने समकालिक राजाओं की अपेक्षा यशस्वी योद्धा था। उसे भरोसा था कि वह जिस-किसी देश पर आक्रमण करेगा, निश्चय ही उसे अपने पैरों के नीचे कुचल डालेगा। उसने चतुरंगिणी सेना के साथ पाटलिपुत्र पर धावा किया और वहाँ के राजा को पराजित कर उससे नब्बे करोड़ सुवर्णमुद्राएँ लाने को कहा। पाटलिपुत्र के राजा ने इतनी सुवर्णमुद्राओं के बदले अश्वघोष, बुद्ध का भिक्षापात्र और एक सुहृदय पक्षी भेंट में दिया। प्रत्येक का मूल्य तीस करोड़ माना गया। बोधिसत्त्व अश्वघोष प्रतिभा में किसी से कम न थे। तथागत के अपने हाथों से उठाया जानेवाला भिक्षापात्र बहुत ही पुण्यप्रद था। पक्षी का स्वभाव भी बड़ा ही दयालु था। वह उस जल को नहीं पीता था जिसमें कीड़े होते थे। तुखार के राजा ने इन सब वस्तुओं को सहर्ष स्वीकार किया और अपनी सेना वहाँ से हटा ली तथा अपने देश को प्रस्थान किया।"

इसी तरह की कथा अश्वघोष की जीवनी (=मा-मिङ्_-फु-सा-च्रु आन्) में भी कुछ उलटफेर के साथ आई है। वह इस तरह है--" उत्तर भारत के तुखार (=यूए-चि) देश के राजा

ने मध्यदेश (=मगध) पर आक्रमण किया। जब कुछ दिनों तक घेरा पड़ा रहा तो मध्यदेश के राजा ने आक्रमणकारी को कहला भेजा—'तुम्हें मुझसे जो कुछ चाहिए, मैं दूंगा। यहाँ घेरा डालकर प्रजा को क्लेश नहीं दो।' यह सदेश पाकर तुखार के राजा ने कहला भेजा—'यदि तुम आत्म-समर्पण कर रहे हो तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा। तुम तीस करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ भेजो।' इसपर मध्य-देश के राजा ने कहलवाया—'इस सम्पूर्ण राज्य में दस करोड़ सुवर्ण मुद्राएँ भी नहीं हो पातीं, भला मैं तीस करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ कैसे भेजूं।' तुखार के राजा ने फिर कहला भेजा—'तुम्हारे देश में दो बड़ी निधियाँ हैं, एक तो बुद्ध का भिक्षापात्र तथा द्वितीय अद्भुत प्रतिभावाला भिक्षु अश्वघोष। इन दोनों को मुझे दे दो। इनका मूल्य तीस करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ हैं। घेरे के भीतर पड़े मध्यदेश के राजा ने कहलाया—'मैं उन्हें तुम्हें नहीं दे सकता।' यह सब सुनकर भदन्त अश्वघोष ने राजा को धर्मोपदेश देते हुए समझाया—"सभी सचेतन सत्त्व समान हैं। तथागत के धर्म का गम्भीर एवं व्यापक उद्देश्य सबको मुक्ति की ओर ले जाना है। महापुरुष प्राणिमात्र को सुखी एवं दुःखमुक्त करना ही अपना परम धर्म समझता है। हमारी ऐहिक व्यवस्थाओं में ननु-नच लगा ही रहता है और विघ्न बाधाएँ आती ही रहती हैं। तुम्हारे शासन का विस्तार भी इस एक राज्य से आगे नहीं है। पर यदि तुम तथागत के धर्म के व्यापक प्रचार में साथी बनो तो तुम चतुःसमुद्रांत पृथ्वी के धर्मराज हो सकते हो। भिक्षु का धर्म है कि वह अपने-पराये के भेद को भूलकर सबकी रक्षा करे। पुण्य का निवास हमारे हृदयों में है। सत्य सबके लिये एक-सा है। तुम्हें दूरदर्शी होना चाहिए और जो कुछ सामने है उसी में न उलझ जाना चाहिए।' राजा जो पहले से ही अश्वघोष को बहुत मानता था, उनकी बात स्वीकार कर ली और उन्हें तुखार के राजा को सौंप दिया और वह अश्वघोष के साथ अपने राज्य को लौट गया।"

एक और दंतकथा है, जिसके अनुसार कनिष्क के समय कश्मीर में जाकर अश्वघोष ने विभाषा नामक ज्ञान-प्रस्थान की महाटीका को लिपिबद्ध किया था। इस दंतकथा का उल्लेख परमार्थ-द्वारा चीनी भाषा में अनूदित वसुबंधु की जीवनी (=फो सो पन्-तउ-च्चुआन्) में हुआ है। वह यों है—"बुद्ध-निर्वाण की पाँचवीं शती बाद कात्यायनीपुत्र नाम के एक अर्हत हुए। उन्होंने प्रथम वयस में ही सर्वास्तिवाद में प्रव्रज्या ले ली थी। मूलतः वे मध्यदेश के निवासी थे। किन्तु बाद में कश्मीर देश में रहने लगे थे। उन्होंने पाँच सौ अर्हत और पाँच सौ बोधिसत्त्वों के साथ सर्वास्तिवाद के अभिधर्म का संग्रह करके उसको आठ ग्रंथों में विभक्त किया जो ज्ञान प्रस्थान कहलाया। उन्होंने अपने ऋद्धिबल से दूर-अदूर सब-कहीं घोषणा कर दी कि जिसने बुद्धभाषित अभिधर्म को सुना है, वह थोड़ा-बहुत जो भी जिसके पास हो, सब भेज दे। तब मनुष्य, देवता, नाग, यक्ष, अकनिष्ठ लोक तक के देवगण तक ने जिन्होंने बुद्धभाषित धर्म का पहले श्रवण किया था संक्षिप्त, विस्तृत, यहाँ तक कि एक पद और एक गाथा तक को भेज दिया। कात्यायनीपुत्र ने अर्हतों और बोधिसत्त्वों के साथ उनका सचय किया। अर्थतः सूत्र और विनय के अविरुद्ध जो वचन थे उनका संग्रह कर लिया।

यदि कोई वचन विरुद्ध मिला तो उसे छोड़ दिया। संग्रह का विषयानुसार विभाग किया। विषय-संबंध यदि प्रज्ञा को प्रकाशित करता था तो उसे प्रज्ञावर्ग में रखा, यदि समाधि को प्रकाशित करता था तो समाधिवर्ग में। इसी प्रकार दूसरे वर्गों को भी। आठों ग्रंथों का परिमाण पचास हजार श्लोक था। जब आठों ग्रंथों का संग्रह पूरा हो चुका तब उसकी व्याख्या के लिये विभाषा नाम की महाटीका रची गई। बोधिसत्त्व अश्वघोष श्रावस्ती देश के साकेत नगरी के निवासी थे। वे अष्टव्याकरण प्रस्थान, चतुर्वेद और षडंग के ज्ञाता थे। वे अष्टादशनिकाय के त्रिपिटकों में अभिज्ञ थे। वे साहित्य के पिता, विद्या के निधान तथा गुणों के आगार थे। कात्यायनी-पुत्र ने विभाषा को ग्रंथरूप में लिखने के निमित्त अश्वघोष को बुलाने के लिये आदमी भेजा। तब अश्वघोष कश्मीर गए। कात्यायनी-पुत्र क्रम से अभिधर्म के आठों ग्रंथों की व्याख्या करते जाते थे। जब अर्थ का निश्चय हो जाता था तब अश्वघोष उसे ग्रंथरूप में लिख लेते थे। बारह वर्षों में विभाषा की रचना समाप्त हुई, जिसमें दस लक्ष श्लोक थे (अर्थात् ग्रंथ का परिमाण दस लाख श्लोकों के बराबर था)। जब विभाषा के लेख का कार्य पूरा हो गया तब कात्यायनी-पुत्र ने शिलालेख पर घोषणा लिखवाई—'आज से इस धर्म के अधीतिजन कश्मीर से बाहर न जायँ। अष्टग्रंथ (=ज्ञान-प्रस्थान और विभाषा का एक वाक्य भी बाहर न जाने पाए और ऐसा न हो कि अन्य निकाय और महायानवाले इस धर्म में (प्रक्षेप कर) उसे दूषित कर डालें।' इस घोषणा की सूचना राजा (=कनिष्क) को दी गई और उसने इसका अनुमोदन किया।"

अश्वघोष की जीवनी (=मा-मिङ्-फु-सा-चुआन्) में अश्वघोष के नाम के संबंध में भी एक अद्भुत दंतकथा है। वह यों है—"अश्वघोष तुखार के राजा के साथ उसकी राजधानी गए। वहाँ वे धर्म-देशना किया करते थे। राजा ने अश्वघोष के आध्यात्मिक बल एवं बुद्धि की परीक्षा लेनी चाही। उसने कुछ घोड़ों को कई दिन तक भूखा रखा। फिर जहाँ अश्वघोष की धर्मदेशना हो रही थी वहाँ घास डलवा कर बँधवा दिया। अश्वघोष की देशना में वे घोड़े कई दिन के भूखे होते हुए भी बिना हिनहिनाये उपदेश सुनते रहे। जिसके अनुमोदन धर्मघोष का अश्व भी करें उसका अश्वघोष नाम सार्थक ही है।"

इन सब दंतकथाओं से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

(१) अश्वघोष जन्म से *ब्राह्मण* तथा ब्राह्मण-शास्त्रों के विद्वान थे।
(२) उनका जन्मस्थान मध्यदेश की *साकेत* नगरी थी।
(३) वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए तथा वहाँ उन्होंने बहुत ख्याति पाई।
(४) *विभाषा* को उन्होंने लिपिबद्ध किया था।
(५) उनका कनिष्क से कुछ न कुछ संबंध अवश्य था। संभवतः, वे उसके दरबार में थे।

(६) उनका समय बुद्ध-निर्वाण की पाँचवीं शती बाद का है। *

इन निष्कर्षों की कितनी ही बातों का समर्थन बाह्य साक्षी से भी हो जाता है। सौंदरनंद, बुद्धचरित और शारिपुत्रप्रकरण की पुष्पिका में समानरूप से लिखा मिला है कि वे साकेत के निवासी और सुवर्णाक्षी के पुत्र थे। उनके ग्रंथों को पढ़कर स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि—"वे वेदों और कल्पसूत्रों के सहित सभी ब्राह्मणशास्त्रों से परिचित थे। तथा कविजनोचित शास्त्रों में पारगत थे। उनके जैसा व्याकरणज्ञानवाला बौद्ध लेखकों में दूसरा नहीं मिल सकता। फलत. वे ब्राह्मण-वंश में हुए थे और ब्राह्मणोचित शिक्षा पाई थी—यह अनुमान सहज ही होता है जिससे बच निकलना संभव नहीं।" † अपने अध्ययन जनित इस निष्कर्ष से प्रेरित होकर अध्यापक जोन्स्टन, जिन्हें चीनी परम्परा की अपेक्षा अपने अनुमानों पर ही बहुत भरोसा है, कहते हैं—"चीनी परम्परा भी इसी नतीजे पर पहुँचने को मजबूर करती है। हमें इस एक बात के लिये उसकी गवाही बिना हिचकिचाहट के मान लेनी चाहिए, क्योंकि कवि के ग्रंथों के प्रमाणों से यह बात मेल खाती है।" ‖ चीनी परंपरा की इस एक बात को स्वीकार कर अध्यापक जोन्स्टन इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि अश्वघोष की दीक्षा सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय में हुई थी और विभाषा के लिपिबद्ध करने में उनका हाथ था। ऐसा न मानने के लिये जोन्स्टन साहब के पास बड़ा गंभीर कारण है। उन्हें अश्वघोष की रचना में चूंकि सर्वास्तिवाद और विभाषा की उलझनें नहीं दिखाई पड़तीं इसलिये उनका संबंध इन दोनों से नहीं हो सकता। ¶ इस तर्क पर यदि हम ध्यान डालें तो जान पड़ेगा कि यह बड़े दुर्बल आधार पर प्रतिष्ठित है। सबसे पहली बात यह कि अश्वघोष को बुद्धचरित और सौंदरनंद में हम कवि के रूप में देखते हैं। ये दोनों ग्रंथ किसी विशेष बौद्ध निकाय की सैद्धांतिक गुत्थियों के सुलझाने के लिये नहीं लिखे गए। दूसरे, यदि दार्शनिक गुत्थियों के सुलझाने के लिये भी यह लिखे गए होते तो भी यह आवश्यक नहीं था कि लेखक ने जिस सम्प्रदाय में दीक्षा ली हो उसका ही वह मंडन करे। सर्वास्तिवाद में दीक्षा लेनेवाले दिङ्नाग, धर्मकीर्ति एवं शान्तरक्षित-जैसे विद्वानों ने अपनी कृतियों में सर्वास्तिवाद का नहीं, प्रत्युत योगाचार मत का अनुसरण किया है। दीक्षा से सौत्रान्तिक होते हुए भी वसुबन्धु ने वैभाषिक मत का संकलन करने के लिये अभिधर्मकोष लिखा और अपने मत के हिसाब से यदि उन्हें कुछ कहना अपेक्षित हुआ तो उन्होंने उसे भाष्य में कहा। इतना ही नहीं, जिस योगाचार सम्प्रदाय में उन्होंने दीक्षा नहीं ली उसके प्रतिपादन में उन्होंने विंशतिमात्रतासिद्धि लिखी। फलत कोई लेखक जो कुछ लिखता है, उसने

---

* बुद्ध के निर्वाण की कम से कम जो तिथि कूती गई है वह ४८० ई० पू० है। इस अनुमान के अनुसार अश्वघोष अवश्य ही पहली शती में विद्यमान थे।

† बुद्धचरित के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका—पृष्ठ १८

‖ वही, पृष्ठ १८, ¶ वही, पृष्ठ २४ और आगे के पृष्ठ

अनुसार उसके मत या संप्रदाय को जान लेना असंभव-सा है। और इस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जायँगे उनकी सत्यता पर पूरा विश्वास करना तो और अधिक असंभव है। पर अचरज की बात यह है कि ऐसे भूलों से भरे सिद्धांत का सहारा लेकर जोन्स्टन साहब चीनी परंपरा को मानने से इनकार करते हैं। जहाँ तक हमारा ख्याल है, जब तक परंपरा के विरुद्ध प्रबल प्रमाण न मिलें तब तक दुर्बल संदेहों के आधार पर उसका तिरस्कार करना ठीक नहीं है।

चीनी परम्परा में अश्वघोष के दो और नाम भी प्रसिद्ध हैं—पुष्पादित्य (=कुङ्-तो-र्) और पुण्यश्रीक (=कुङ्-ज्ञाङ्)। तिब्बती परंपरा में इन नामों की संख्या और भी अधिक है—काल, दुर्दर्श, दुर्दर्शकाल, मातृचेट (=माँ का बेटा), पितृचेट (=बाप का बेटा), शूर, धार्मिक सुभूति और मतिचित्र। § इन नामों में मातृचेट और पितृचेट मा-बाप के प्यार-सूचक नाम हैं। अन्य नाम उनके विशेष गुणों के सूचक हैं। यहाँ के कुछ नाम भ्रम में डालनेवाले हैं। विशेष कर मातृचेट और शूर। मातृचेट और शूर दोनों ही अश्वघोष के बाद के कवि हैं। पर इन दोनों के नाम अश्वघोष के पर्यायवाचक नामों में सम्मिलित हैं। फलतः कितने ही समय तक इन्हें अभिन्न समझा जाता था। पर जो बात ठीक जान पड़ती है वह यह है कि अश्वघोष के अपने गुणों के कारण उन्हें अनेक नामों से पुकारा जाता था और वे नाम बड़े प्रिय हो गए थे। फलतः परवर्ती लोगों ने नाम के आकर्षण से उन नामों को अपना लिया। इतना ही नहीं, परवर्ती लेखकों ने अश्वघोष के नाम से भी बहुत-कुछ लिखा और इसलिये लिखा कि नाम के प्रभाव से उनकी रचना का जन-समाज में आदर हो। और इसीलिये बहुत-सी रचनाएँ जो अश्वघोष की नहीं हैं, उनके नाम के प्रताप से सादर उनकी मानी जाकर पढ़ी जाती हैं।*

---

§ महायानश्रद्धोत्पाद के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका (सुज़ुकी) पृष्ठ २१

* बुद्धचरित, सौंदरनंद और शारिपुत्र प्रकरण (खंडित) के एक ही व्यक्ति की रचना होने में किसी को संदेह नहीं हो सकता क्योंकि तीनों एक ही शैली में लिखी गई हैं। तथा परस्पर की समानताएँ बहुत अधिक हैं। पुष्पिका के अनुसार इनके रचयिता अश्वघोष हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रंथ भी अश्वघोष के नाम से प्रसिद्ध हैं—

वज्रसूची (संस्कृत में प्राप्त)

गंडीस्तोत्र-गाथा (होल्स्टाइन-द्वारा चीन अनुलेखन से उद्धार किए गए २९ पद्य।

सूत्रालंकार (चीनी अनुवाद उपलब्ध)

महायान श्रद्धोत्पाद (चीनी अनुवाद उपलब्ध)

राष्ट्रपालनाटक (इसका उल्लेख धर्मकीर्ति ने वादन्याय में किया है।)

अन्य भी फुटकर कितने ही पद्य अश्वघोष के नाम से प्रख्यात हैं।

इनमें से वज्रसूची, महायानश्रद्धोत्पाद, सूत्रालंकार शायद ही अश्वघोष की रचना हों। गंडीस्तोत्र गाथाएँ यद्यपि सुकविकृत जान पड़ती हैं पर अश्वघोष की शैली से मेल नहीं खातीं।

अश्वघोष का जो रूप उनके काव्यों में प्रतिबिंबित होता है उससे जान पड़ता है कि वे काव्यपरम्परा में वाल्मीकि और व्यास के ही उत्तराधिकारी हैं। वे सर्वथा उस परपरा से भिन्न दिखलाई पड़ते हैं जो कालिदास और उनके बाद के दरबारी कवियों की परम्परा है। चाहे भाषा की स्फीतता और प्राजलता को देखें चाहे विषय-वर्णन को देखें, वे सर्वथा पुरानी परम्परा के व्यक्ति जान पड़ते हैं। हाँ, यदि कुछ भेद उनकी रचना में पुरानी परपरा से मिलता है तो यह कि जहाँ पुरानी परपरा में अनुष्टुप् से ही अधिक काम निकाला गया है, वहाँ अश्वघोष की रचना में विविध छद बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं और प्राय एक सर्ग एक ही छद में लिखा गया है तथा एक-एक सर्ग का वर्ण्य विषय भी एक ही चुना गया है। एक विषय को एक ही छद में लिखने की शैली आर्ष काव्यों में ही परिपक्व हो चुकी थी। विषयातर करने में अभिनव छद का व्यवहार अश्वघोष तथा उनके बाद के कवियों में बहुत कुछ नियत देखा जाता है। रचना को अधिक रमणीय करने के लिये पुरानी ललित कविता के एकमात्र प्रतिनिधि रामायण में कितने ही सर्ग अनुष्टुप-भिन्न वृत्तों में हैं। सुन्दरकाड में तो इस ढग के कई सर्ग हैं। फलत रामायण में जो इस प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है, उसका परिपाक अश्वघोष की कविता में मिलता है। § अश्वघोष की कविता में यमक और अनुप्रास का वही टाईप है जो रामायण में मिलता है। कालिदास तथा उनके उत्तराधिकारियों की कविता में उस प्रकार के सरल यमक के दर्शन नहीं होते। वस्तुत उत्तरवर्ती कवियों ने जहाँ भी यमक लिखा है, वहाँ अपनी यमक रचना-सबधी योग्यता को ही अधिक प्रकट किया है। स्पष्ट कहें तो उनका यमक ही प्रधान हो जाता है और काव्य की वस्तु गौण हो जाती है। पर पुरानी परपरा में काव्य-वस्तु ही सर्वत्र प्रधान रहती है और वही अश्वघोष की कविता में दिखाई पड़ती है। पुरानी परपरा में एक और बात देखी जाती है। कविता के सरल प्रवाह में वहाँ-कभी कभी कुछ कूट श्लोक आ जाया करते हैं। महाभारत के कूटश्लोकों के बारे में तो बहुत प्रसिद्ध है—

"अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अह वेद्मि शुको वेत्ति सजयो वेत्ति वा न वा॥"

"व्यास कहते हैं—आठ हजार और आठ सौ श्लोक मैं जानता हूँ, शुकदेव जानते हैं, सजय जानता है या नहीं (कह नहीं सकते)।"

इस श्लोक का वा नवा पद भी कूट माना जाता है, जिसके अर्थ का कुछ भी निश्चय नहीं है। अश्वघोष की रचना में एक दो सुन्दर कूट श्लोक दिखाई पड़ते हैं। उनके रस का यहाँ आस्वादन कर लेना ठीक होगा—

---

§ विंटर नित्स के मतानुसार रामायण के यह अश बाद के प्रक्षेप हैं और अश्वघोष की रचना के अनुकरण भर हैं। यदि यह बात ठीक है तो मानना पड़ेगा कि रामायण के अनन्तर सर्वथा एक नई शैली का आविष्कार अश्वघोष ने किया है। विंटर नित्स की विचारधारा के लिये 'इडियन लिटरेचर' के प्रथम भाग में रामायण का प्रकरण देखना चाहिए।

"अवेन्द्रवद्दिव्यव शश्वदर्कवद्
गुणैरव श्रेय इहाव गामव।
अवायुरार्यैरव सत्सुतानव
श्रियश्च राजन्नव धर्ममात्मनः ॥" [बुद्ध ११ । ७०]

इस श्लोक में अव पद अत्यंत श्लिष्ट होने से कूट है। अव् धातु अनेकार्थक है पर उसके विविध अर्थों में उसका प्रयोग दिखाई नहीं पड़ता। यही एक श्लोक है जिसमें अव् धातु के बीस अर्थों § में से नौ अर्थों में उसका प्रयोग हुआ है। जिनका निदर्शन यों है—

(१) 'अवेन्द्रवत्' (दिवि) * यहाँ पर अव् धातु प्रीति या *तृप्ति* के अर्थ में है। स्वर्ग में इन्द्र की भाँति आनंदित रहो।'**

(२) 'दिव्यव शश्वदर्कवत्' यहाँ पर अव् धातु *दीप्ति* के अर्थ में है। 'आकाश में सूर्य की भाँति जाज्वल्यमान रहो।'

---

§ पाणिनीय धातुपाठ में अव् धातु के अर्थ यों गिनाए गए हैं—"अव् रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिंगनहिंसादानभागवृद्धिषु।"

* 'दिवि' पद दो वाक्यों के बीच इस तरह पड़ता है कि उसका अन्वय देहली-दीपक-न्याय से दोनों वाक्यों के साथ हो सकता है। जोन्स्टन साहब के अंग्रेजी अनुवाद में यह पद शायद भूल से छूट गया है।

** बुद्धचरित के हिंदी अनुवाद में सूर्यनारायण चौधरी ने इस श्लोक का अनुवाद करते हुए सर्वत्र '*अव*' का अर्थ रक्षा कीजिये' किया है। किंच श्लोक के अन्वय में बहुत अधिक गड़बड़ की है। यहाँ इसका दिग्दर्शन कराना ठीक होगा। उनका अनुवाद यों है—"(१) इंद्र के समान रक्षा किजिए। (२) आकाश के सूर्य समान रक्षा कीजिए। (३) अपने आर्य (=उत्तम) गुणों से इस लोक में कल्याण की रक्षा कीजिए। (४) पृथ्वी की रक्षा कीजिए। (५) आयु की रक्षा कीजिए। (६) सत्पुत्रों की रक्षा कीजिए। (७) हे राजन् लक्ष्मी व अपने धर्म की रक्षा कीजिए।" ऊपर प्रदर्शित नौ वाक्यों से तुलना के लिये चौधरीजी के अनुवाद में प्रत्येक वाक्य के लिये अंक मैंने कोष्ठक में दे दिए हैं। मूल में *अव* का प्रयोग नौ बार नौ वाक्यों में हुआ है पर चौधरीजी ने अपने अनुवाद में उसे सात वाक्यों में ही भुगता दिया है। श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'गुणैरव श्रेय इहाव' इस पद्यांश को एक वाक्य मान लिया है। यद्यपि दो *अव* क्रियापदों को देखकर कोई भी यहाँ पर दो वाक्यों के होने में संदेह न करेगा। इसके अतिरिक्त 'आर्यैः' पद को बलपूर्वक 'आर्यैरव सत्सुतान्' इस वाक्य से खींचकर 'गुणैः' के विशेषण के रूप में अन्वित किया है। और इस तरह इतना अधिक दूरान्वय दोष कवि के मत्थे मढ़ दिया है। अंतिम दो वाक्यों (अवश्रियश्च। राजन्नव धर्ममात्मनः।) को एक वाक्य बना डाला है। एवं दो बार अनुवाद में 'अव' पद को छोड़, दो वाक्यों को एक वाक्य बना, पदों का असंगत अन्वय कर चौधरीजी ने अश्वघोष के साथ सचमुच न्याय नहीं किया है।

(३) 'गुणैरव' यहाँ पर अव् धातु वृद्धि के अर्थ में है। गुणों से फलो-फूलो।'

(४) 'श्रेय इहाव' यहाँ पर अव् धातु अवगम(=ज्ञान) के अर्थ में है। यहाँ श्रेय या परम कल्याण को जानो।'

(५) 'गामव' यहाँ पर अव् धातु स्वाम्यर्थे(=शासन) में है। 'पृथिवी के स्वामी बनो' या 'पृथिवी पर शासन करो।'

(६) 'अवायु' यहा पर अव् धातु अवाप्ति(=प्राप्ति) के अर्थ में है। '(दीर्घ) आयु प्राप्त करो।'

(७) 'आर्यैरव सत्सुतान्' यहाँ अव् धातु रक्षण के अर्थ में है। आर्य जनों के सहित सत्पुत्रों की रक्षा करो।'

(८) 'अव श्रियश्च' यहाँ अव् धातु आलिंगन के अर्थ में है। 'लक्ष्मी का आलिंगन करो।'***

(९) राजन्नव धर्ममात्मन' यहाँ अव् धातु क्रिया के अर्थ में है। 'राजन्, अपने धर्म को करो।' अर्थात् 'अपने कर्तव्य का पालन करो।'

एक और कूट है। वह इससे भी जटिल है—

"हिमारिकेतूद्भवसम्भवान्तरे
यथा द्विजो याति विमोचयंस्तनुम्
हिमारि-शत्रुच्छयशत्रु यातने
तथान्तरे याहि विमोचयन्मन॥" [उद्ध ११।७१]

पुराने पडितों की शैली में इसका अनुवाद यों होगा—"हिम के अरि (=अग्नि) के केतु (=धूम) से उद्भव है (जिसका, उस मेघ) से सभव है (जिसका, उस जलरूपी वृष्टि के) अतर (बीच) में जैसे द्विज (=अग्नि) तनु को छोड़ जाता है (निर्वाण पा लेता है), वैसे ही हिम के अरि

*** जोन्स्टन साहब ने यहाँ अव्-धातु को प्रवेश के अर्थ में स्वीकार कर यों अनुवाद किया है—"enter into glories of sovereinty" (आधिपत्य के गौरव में प्रवेश करो) अर्थ लालित्य को देखते हुए 'आलिंगन' अर्थ ही अधिक उचित है। क्योंकि 'श्री' से ध्वनित 'प्रेमिका' रूपी अर्थ के साथ आलिंगन का ही औचित्य है। 'श्री' पद जिस तरह व्यापक और सुंदर अर्थ प्रकट करता है, उसका भाषांतर में ठीक अनुवाद सभव नहीं है। जोन्स्टन साहब ने 'आधिपत्य का गौरव' इतने बड़े शब्द से उसका अनुवाद किया है पर मूलार्थ को छू नहीं पाता।

(=सूर्य) के शत्रु (तमस्=अंधकार, अज्ञान) के क्षय में जो शत्रु (=दोष=राग, द्वेष, मोह) हैं (उनके) घातन (विनाशन) के अंतर (समय) में मन को मुक्त कर (यहाँ) विचरो।"

नई परम्परा के काव्यों में इस प्रकार बुद्धि का व्यायाम जटिल यमकों, प्रहेलिकाओं और दुरूह श्लेषों में करना पड़ता है। कवि ने अपनी रचना में दो-चार श्लोकों में ही इस प्रकार की शैली अपनाया है। स्वभावतः उनकी शैली प्रसन्न और गंभीर है तथा शब्द-प्रयोग सरलतम होते हुए भी इतने वक्रिम हैं कि जहाँ पद्य कई बार पढ़ा गया नहीं कि वह अपने आप सहृदयसंवेद्य बहुत अर्थ की व्यंजना करने लगता है। पर, अश्वघोष की विशेषता उनकी शैली में ही नहीं है। वास्तविक विशेषता तो विषय-वर्णन में है। अश्वघोष ने बुद्ध और नंद के कथानकों को लेकर अपने काव्य बुद्धचरित और सौंदरनंद लिखे हैं। दोनों कथानकों में राग से वैराग्य में जीवन की परिणति हुई है। फलतः वैराग्य-वर्णन ग्रंथ में अंगी और रागात्मक वर्णन अंगभूत हैं। कवि जिस समय हुए थे, वह समय, ललित रुचि को प्रधानता देने वाला समय था। भले ही ललित रुचि मुख्यतया उच्च वर्गों में ही फलती-फूलती रही हो। जनसमूह को धर्म का हितकर और कड़ुआ घूँट पिलाने के लिये कवि ने ललित वर्णनों का मधुर रस उसमें मिला दिया है। यद्यपि समय ने जनरुचि को इस तरह बदल दिया कि अश्वघोष की कविता को लोग भूल गए। केवल अश्वघोष के साथ ही यह अन्याय हुआ हो सो बात नहीं। वाल्मीकि और व्यास के साथ भी वही अन्याय हुआ है। हाँ, अंतर यह हुआ कि रामायण और महाभारत की कथाएँ कथावाचकों की कृपा से जनसाधारण में पहुँचती रहीं तथा कितने ही परवर्ती कवियों ने इन कथाओं को लेकर काव्य और नाटक केवल ललित वर्णनों के लिये लिखे। इससे वाल्मीकि और व्यास का नाम बचा रहा। पर, अश्वघोष बिल्कुल भुला डाले गए। भारत में बौद्ध-संप्रदाय के ह्रास ने इस बात में और भी मदद दी। इसी शती में हमें फिर से अश्वघोष का अभिज्ञान हुआ, फिर भी उनकी चर्चा जितनी होनी चाहिये उतनी नहीं हुई। अश्वघोष की रचना कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने ललित वर्णनों में उस समय के उच्चवर्गीय समाज के वैभव को चित्रित किया है। वैराग्य-वर्णनों में तथा अन्यत्र बहुत-से स्थलों पर, तत्कालीन धार्मिक साधना की झलक है। इन दो बातों के अतिरिक्त बौद्ध-धर्म का जो रूप उन्होंने विस्तार से अंकित किया है, वह उस समय के बौद्ध-धर्म को जानने के लिए बहुत उपयोगी है। पहली दोनों बातें सभी के लिये रोचक हैं, पर बौद्ध-धर्म का प्रतिपादित रूप बौद्ध-धर्म के अध्येताओं के लिये विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है। कवि की कविताओं में प्रतिबिंबित इन तीनों धाराओं का संक्षेप से दिग्दर्शन करना ठीक रहेगा।

गौणरूप से ललित वर्णन करते हुए भी कवि ने अंतःपुर और वनविहार के प्रसंग में सब प्रकार की विलास-सामग्रियों को जुटाकर राजवर्गीय वैभव की एक झलक दिखलाई है। राजा का भवन हजारों भुजिष्याओं और दासियों से भरा रहता था, जो केवल रानियों की सेवा ही नहीं, राज-

लोक का भी सब तरह से मनोविनोद किया करती थीं। रानी यदि वनविहार को निकलती थी, तो एक मेला ही लग जाता था। हजारों परिचारिकाओं के अतिरिक्त शय्या, वितान, तथा अन्य विलास की सामग्रियों की वहां भी कमी नहीं रहती थी। [बुद्ध १।८] राजकुल की स्त्रियों का वैभव अपार था। उनके आमोद-प्रमोद की बातें एक ग्रामीण की समझ के परे की वस्तुएँ हैं। राजकुल की प्रेमी और प्रेमिकाओं की क्रीडाओं की यदि कोई बराबरी कर सकते थे, तो केवल पहाड़ी झरने पर बैठे भावानुरक्त किन्नर और किन्नरी ही। पर, अरण्यचारी किन्नर और किन्नरियों को सौदर्यवर्धक आहार्य सामग्री सुलभ नहीं हो सकती थी और न उन्हें उन नागरिक क्रीडाओं का ही पता हो सकता था, जो राजकुल में जुटा करती थीं। प्रेमी को दर्पण ढोना पड़ता था और प्रेमिका पत्रांगुलि (=ब्रुश) से वदन पर सौदर्यवर्धक चित्र रचना करती थी। यदि इस समय प्रेमी ने अपनी स्नेह वृत्ति के कारण चित्र रचना में कुछ भी विघ्न डाला तो उस बेचारे की खैर नहीं थी। उस पर बड़ी मार पड़ती थी। प्रेमिका जरा रूठकर, भौंह टेढ़ीकर, कर्णोत्पल से उसके कंधे पर प्रहार करती थी तथा पत्रांगुलि उसके मुँह में ठूँस देती थी। इतनी कड़ी चोट खाकर प्रेमी को ——— मिन्नत मंडित प्रेमिका के कमलोपम पाँवों में झुकाना पड़ता था, तब कहीं जान बचती थी। [सौंदर ८-१०-१७] प्रेमिका की अनुमति लेकर यदि प्रेमी कहीं कुछ देर के लिए बाहर जाता तो प्रेमिका अनुमति तो दे देती, पर आगाह भी कर देती कि कहीं हजरत ने देर की तो पूरी खबर ली जाएगी। खान तो मैं करूँगी ही नहीं, सोना भी हराम कर दूँगी। भला इतनी सख्त सजा का हुक्म सुनकर प्रेमी डरता न तो करता क्या? [सौंदर ४-३१] विनोद के लिए अंतःपुर में वारांगनाओं की भीड़ लगी रहती थी। रात को विविध प्रकारों के तूर्यों (वाद्यों) से अंतःपुर मुखरित हो उठता था। सुंदरियाँ विविध वस्त्रों में सजकर आती थीं। कोई सितांशुक धारण करती थी तो कोई पीतांशुक, और कोई और कुछ। अंगों में यथा स्थान योक्त्र(=नथुनी),मणिकुंडल, सुवर्णसूत्र, हार, अंगद (बाजूबंद) स्वर्णकंकण आदि आभूषण शोभा बढ़ाते रहते थे। उस समय के प्रधान वाद्यों में वीणा, परिवादिनी (सप्ततंत्री), वेणु, मृदंग और पणव थे, जो राग की सुप्त भावनाओं को जगाते रहते थे। [बुद्ध ५-४८-५६] वारांगनाओं की चहल-पहल वन-विहार में देखने योग्य होती थी। राजकुलों के वन-विहार भी जैसे वनों में होते थे, वहाँ आमोद-प्रमोद की कोई कमी न रहती थी। दीर्घिकाओं (=पुष्करिणियों) में कमल खिले होते थे। विमानाकार भवनों से दीर्घिकाएँ मंडित हुआ करती थीं, तथा वे तीर पर उगे सिंदुर से आच्छन्न होने के कारण पांडु वस्त्र-धारिणी सुंदरियों के समान जान पड़ती थीं। इस प्रकार की दीर्घिकाओं के साथ वन बड़ा मोहक हो उठता होगा! विशेषकर उस समय जब बाल पादप कुसुमित होते होंगे और प्रमत्त कोकिल एक तरु से दूसरे तरु पर परिभ्रमण करते होंगे, तथा एक कोकिल की कुहूध्वनि सुनकर दूसरा उसकी प्रतिध्वनि के समान कूजता होगा, रक्ताभ अशोक के बीच उड़ते भ्रमर जहाँ अग्नि में जलते हुए-से दिखाई पड़ते होंगे, श्वेत फूलोंवाला तिलक वृक्ष जहाँ पीली मंजरीवाली आम्रलता का आलिंगन करता होगा।

अलक्तक के समान रक्तवर्ण कुरबक जहाँ कुसुमित हो रहे होंगे। ऐसे आकर्षक वातावरण में वारांगनाओं का अपने आसवगंधी वदनों से रहस्य की बातें करना, प्रिय से मुख आदि अंगों पर पत्र-रचना का आग्रह करना, वन की शोभा के अनुकूल अपने नीलांशुकों से ढके अंगों को हावभाव से दिखलाना, आम्र की शाखाओं को पकड़कर अपना सौंदर्य दिखाते झूलना, अभिनय के साथ मधुर गीत गाना तथा प्रेम में गर्वित होकर दंड देने के लिए प्रिय को माला की लड़ियों से बाँधना आदि नंदन वन का दृश्य उपस्थित करता होगा! [बुद्ध ३।६४;४।३१-४०] घर पर प्रेमी और प्रेमिकाओं का आमोद-प्रमोद विमानपृष्ठ (दुतल्ले) पर होता था। वहाँ हिरण्मयी शय्या सजी रहती थी। वस्त्र अगुरु और चंदन से बसाए रहते थे। विमानपृष्ठ के नीचे के भवन में परिचारिकाएँ विलास-सामग्री जुटाने में लगी रहती थीं। कोई अनुविलेपन (उबटन) पीसती थी, तो कोई स्नानोपकरण जुटाती थी। कोई हार गूँथती थी, तो कोई वस्त्र सुखाती थी। [बुद्ध ८। ५६, ५८ सौंदर ४। २६]

राजकुल के अंतःपुर, उनके वन-विहार आदि के विलास से जनसाधारण के सौंदर्य-पिपासु नेत्र अपनी प्यास न बुझा सकते थे। पर उन्हें भी बहुत से अवसर होते थे जब क्षणभर के लिए वे अपनी आँखें तृप्त कर लेते थे। ऐसे अवसर, राज-परिवारों की यात्राओं (जलूसों) तथा दूसरे महोत्सवों पर जो यात्राएँ होती थीं, उन पर मिला करते थे। यात्राएँ बड़े ठाट-बाट से निकला करती थीं जिनमें नाच-रंग तथा विविध प्रकार के क्रीड़ा-कौतुकों की भी व्यवस्था रहती थी। यात्रा जब नगर-वीथी में पहुँचती थी तो नगर की सुंदरियाँ देखने के लिए छतों और वातायनों में एकत्रित हो जाती थीं। ऐसे अवसर पर उनकी विचित्र दशा होती थी। यात्रा का वृतांत सुनकर वे त्वरा के साथ आभूषण पहनती थीं और चल देतीं थीं। पर उनकी कांची (करधनी) बड़ा उत्पात मचा देती थी। वह खिसक पड़ती थी और पाँवों में बंधन का काम करने लगती थी। पर सुंदरियाँ इससे रुक थोड़े ही जाती थीं! वे अपने नूपुर (पायजेब) और करधनियों की छमाछम से घर के पक्षियों को सहमाती हुई चली जाती थीं और जाकर वातायनों से मुँह निकालकर यात्रा को देखने लगती थीं। उस समय भीड़ के कारण उनके कुंडल एक दूसरे से सट जाते थे। ऊपर से वे नगर सुंदरियाँ यात्रा में जाते हुए तथा यात्रा देखने के लिए वीथी के किनारों पर रुके हुए पुरुषों को देखती थीं तथा पुरुष उन्हे देखते थे। कवि के शब्दों में, विमान पर बैठी सुंदरियों को देखनेवाले ऊर्ध्वमुख पुरुष ऐसे जान पड़ते थे, मानों वे भूमि से स्वर्ग जाने के इच्छुक हों तथा विमान पर से नीचे की ओर पुरुषों को देखनेवाली स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं कि मानों वे स्वर्ग से भूमि पर जाने के इच्छुक हो। [बुद्ध ३। १४-२२] पृथ्वी के इस बहुत-कुछ स्वाभाविक लालित्य के परमाणुओं का पर्वतीकृतरूप ही तो स्वर्ग है। स्वर्ग में यहाँ से विशेष यदि कुछ है तो यही कि वहाँ की सुंदरियो को घरेलू झंझट और घरेलू बंधन नहीं हैं। वे 'सदा युवत्यः ' हैं और 'मदनैककार्याः हैं।' इतना भी तो नहीं कि वे किसी एक की हों, वे 'साधारणाः' हैं। स्वर्ग का यह वर्णन निश्चय ही वारांगनाओं की स्वतंत्रता और विलासिता को देखकर किया गया है। यहाँ मनुष्य जिस लालित्य और माधुर्य्य का प्रेमी है, उसी को उससे भी

अच्छे रूप में वह स्वर्ग में चाहता है। स्वर्ग का मार्ग भी केवल विमान पर चढ़कर जाने का मार्ग नहीं है। उसके मार्ग में हिमालय आता है, और आना भी चाहिए। रमणीय स्वर्ग के मार्ग में हिमालय का रमणीय प्रदेश नहीं आया, तो क्या आया ? जिसने देवदारुओं से मंडित सुवर्णगौर किरातों एवं पुष्पोच्च वल्लरी की भाँति किन्नरियों को वहाँ नहीं देखा, चमरी मृगों की शोभा नहीं निहारी, वह स्वर्गांगनाओं को कैसे निहार सकेगा ? [सौन्दर्य १० । ११, १२, १३,]

इस प्रकार के लालित्यपूर्ण वर्णन-द्वारा ललित जीवन बितानेवाले समाज के प्रति अश्वघोष ने कोई पक्षपात नहीं किया है। वस्तुत यह तो कवि की रचना का पूर्वकांड-मात्र है। वैभव का यह जीवन त्याग के लिए है। पर यह त्याग, घर-बार छोड़कर अरण्यचारी होने का त्याग नहीं है, और न वह त्याग यज्ञादि में दान देकर स्वर्ग पाने के लिए है। तथागत की देशना के अनुसार वह त्याग, क्लेशों का त्याग है तथा क्लेशों के त्याग के लिए यदि संसार के वैभव का त्याग करना पड़े तो वह त्याग प्रशस्त है। तथागत के मार्ग का वर्णन करने के लिए अश्वघोष ने अवसरवश, पूर्वपक्ष के रूप में, अन्यमार्गों का भी दिग्दर्शन कराया है। हिंसावाम यज्ञों पर श्रमणों के आंदोलन से पूर्व ही प्रहार होने लगा था। उपनिषद् के दार्शनिक ऋषियों ने उन्हें फूटी नैया (प्लवा एते अदृढा यज्ञरूपा-मुंडक) बताकर उनके महत्त्व को कम कर दिया था। फिर भी यज्ञ करना और उसमें ब्राह्मणों को दान देना, मान और प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी। विशेषकर क्षत्रियों के लिए तो यज्ञ ही सुगति एवं ऐश्वर्य पाने के अमोघ साधन थे। तप-प्रधान धर्म में उनकी विशेष आस्था नहीं थी। यह अनास्था किसी द्वेष के कारण हो, सो बात नहीं। वस्तुत राजभोग भोगते हुए तापस जीवन बिताया नहीं जा सकता था और उनके लिए प्रचुर व्ययसाध्य यज्ञ ही सुगति का मार्ग था। तपोमय जीवन बिताने के लिए घर बार छोड़कर निकले हुए गौतम से एकबार बिंबिसार ने कहा था—"महर्षि लोग जो गति तपस्या से प्राप्त करते हैं, वही गति भुजाओं में सोने के केयूर (बाजूबन्द) पहनते, प्रदीप के सामान उज्ज्वल मणियों से युक्त विचित्र मुकुट धारण करते हुए (भी) राजर्षि लोग प्राप्त करते हैं।' [बुद्ध १० । ४०] "इसलिए यदि तुम्हें धर्म साधन ही करने की इच्छा है तो यज्ञ करो, यही (हम राजाओं का) कुल-धर्म है। यज्ञों के द्वारा (ही) हाथी की पीठ पर बैठकर इंद्रने स्वर्गारोहण किया था।" [बुद्ध १० । ३९] कामदेव ने भी बोधिवृक्ष के नीचे इसी कुल धर्म का उपदेश गौतम को दिया था—"हे मृत्यु से भयभीत क्षत्रिय। छोड़ मोक्ष का धर्म। स्वधर्म का पालन कर। बाणों से लोक विजय कर, लोक से परे इंद्र का पद यज्ञों से प्राप्त कर। यही निःसरण का प्रशस्त मार्ग है जिस पर पुरातन राजर्षि चले थे। महान् राजर्षिकुल में जन्म लेकर भिक्षा का आश्रय लेना प्रशंसनीय नहीं है।" [बुद्ध १३ । ९,१०] किन्तु, देश विजय और स्वर्ग विजय, दोनों ही गौतम की रुचि के अनुकूल नहीं थे। गौतम को जिस बात ने लोक में भयभीत किया था, वह थी स्व।र्थ के लिए अपने से निर्बल को हड़प लेना। 'थोड़े जलवाले गढ़े में फड़फड़ाती और

एक दूसरे को निगलती हुई मछलियों की तरह प्रजाओं को देख' * जिसे भय हुआ है, वह भला उसी भय के मार्ग पर कैसे चल सकता है ? रहा स्वर्ग का लोभ, पर वहाँ कामना की तृप्ति होती ही कहाँ है ? महा कवि ने कामवासना और सांसारिक स्वार्थों के कारण पतन को प्राप्त देवता, ऋषियों और राजर्षियों की कहानियों की एक बहुत बड़ी भीड़ लगाकर इस बात का समर्थन किया है कि कामनाओं की तृप्ति कभी नहीं होती। यह सब कहानियाँ रामायण, महाभारत, तथा अन्य पुराणों में बिखरी पड़ी हैं। इनमें अधिकाँश का तो पता चल गया है, पर कुछ अब भी बची हैं, जिनके बारे में यह पता नहीं कि वे कहाँ से ली गई हैं।**

यज्ञ के कर्मकांड के अतिरिक्त धार्मिक साधनाओं में तपश्चर्या जनसाधारण के लिए बड़ी आकर्षक थी। आज भी उसका आकर्षण जनता के लिए कम नहीं है। कंटक शय्या पर बैठनेवालों तथा उलटा लटक कर धूम्रपान करनेवालों को सामान्य जन आज भी पहुँचा हुआ आदमी मानते हैं। अपने आप उगे अन्न, जल में उगे फल, शाक आदि से मुनिजन निर्वाह करते थे। पर तपस्या के विविध प्रकार थे। कोई उञ्छवृत्ति § से जीते थे, कोई तृणहारी थे, कोई निराहारी आसन बाँधे बैठते थे और दीमक उन पर वल्मीक बना लेती थी। कोई अन्न को (कूट पछोरकर पकाने के स्थान पर) पत्थर से पीसकर खाते थे, कोई दाँतों से छील-छीलकर ही खा लेते थे। कितने ही अन्न पकाते तो थे, पर

---

* फंदमानं पजं दिस्वा मच्छो अप्पोदके तथा।
अञ्ञमञ्ञेहि व्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि ॥ [सुत्त निपाते अतदंडसुत्तं]

** कामभोगों के कारण जिन की दुर्दशा हुई है उनके नामों की सूची कवि की कृति में यों है—अग्नि, इंद्र, सूर्य, वैवस्वत (?), वशिष्ठ, पराशर, द्वैपायन, अंगिरा, काश्यप, अगद, ऋष्यशृंग, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, रुरु, पुरुरवाः, तालजंघ (?), जह्नु, शतनु, सोमवर्सन (?), भीमक (?), जनमेजय, पांडु, [सौंदर ७। २५-४५] मानधाता, नहुष, ऐड़ (पुरुरवाः) उग्रायुध, [बुद्ध ११ १३, १४, १५, १८] व्यास, मंथालगौतम, गौतमदीर्घतया, ऋष्यशृंग, विश्वामित्र [बुद्ध ४। १६-२०] स्वर्ग से पतित हुओं के नाम यों है—शिवि, मांधाता, नहुष, इलिविल या ऐलविल (विष्णु ?) भूरिद्युम्न, ययाति, पूर्वदेव असुर, महेन्द्र, उपेंद्र (विष्णु]। काम के कारण उन्मत्त—शूर्पक, ऐड़ [बुद्ध १३। ११, १२] काम के कारण भ्रष्ट—सेनजित्सुता, कुमुद्वती (दे० शूर्पक भी), बृहद्रथा, कुरु दैहम, वृष्णि वंश की स्त्रियाँ शंबर पत्नी, गौतम पत्नी। सौंदर ८। ४४, ४५] वैराग्य छोड़कर गृहस्थ होनेवाले—शाल्वाधिप (द्युमत्सेन) अंबरीष? राम अंधक? सकृति रंतिदेव?। यहाँ नामों के ऊपर अंक लगाने में जो नाम दो बार आए हैं, उनमें एक ही जगह अंक दिया है। जिन कथाओं के प्रमाण निश्चित रूप से नहीं ढूँढे जा सके हैं, उनके आगे प्रश्न चिह्न दे दिया गया है।

§ उञ्छवृत्ति कण कण अन्न को पक्षियों की भाँति चुनकर एकत्रित करना फिर उससे निर्वाह करना।

अपने लिए नहीं। हाँ, पदार्थ पकाए गए अन्न से जो कुछ बच जाता था उससे निर्वाह करते थे, कोई बड़ी बड़ी जटाएँ रखते थे और स्नान करने से गीली जटाओं के साथ मन्त्रपूर्वक प्रात और साय हवन करते थे। कितने ही जल में रहकर तप करते थे, जहाँ मछलियाँ उनकी संगिनी होती थीं और कछुए उनके शरीर को खरोंच डालते थे। (बुद्ध ७।१४-१७) इन तपस्याओं का परिपाक सुखमय समझा जाता था। तपस्या यदि उच्च कोटि की हुई तो उसे स्वर्ग मिलने का उपाय समझा जाता था और यदि वह साधारण हुई तो उससे फिर मानव-जीवन मिलने की आशा की जाती थी। (बुद्ध ७।१८) तपस्या का यह मार्ग कितना ही उत्तम समझा जाता हो, पर गौतम की रुचि के अनुकूल न था। उन्हें ऐसा लगता था कि तपस्या के ये सब प्रकार स्वय ही दुःखदायी हैं, पर इन्हें धर्म समझा जाता है। यहाँ सुखभोग को जब धर्म नहीं समझा जाता, तब फिर इन तपस्याओं से मिले सुख का भोगना धर्म कैसे हो सकता है? विषयोपभोग तथा बन्धु-बांधवों को त्यागकर जो स्वर्ग के लिये तप करते हैं, वे छोटे बंधन से छूटकर फिर बड़े बंधन में पड़ना चाहते हैं। (बुद्ध ७। २०,२१, २६) गौतम की प्रवृत्ति के अनुकूल न होते हुए भी इन तपस्याओं का अपना आकर्षण था और उन्होंने इस आकर्षण से प्रभावित होकर छ वर्ष कठोर तप के द्वारा अपने शरीर को 'त्वगस्थिशेष' कर डाला था। यह सब करके इस तपोमार्ग के बारे में उन्होंने कहा—

नाय धर्मो विरागाय न बोधाय न मुक्तये। (बुद्ध १२।१०१)

अर्थात्—यह धर्म न वैराग्य के लिए है, न बोध के लिए और न मुक्ति के लिए। निराहार और कायपीड़न के धर्म के स्थान पर शरीर और मन को स्वास्थ्य देनेवाला मार्ग उन्हें रुचा। उनका विचार था कि—

निर्वृति प्राप्यते सम्यक् सततेन्द्रिय तर्पणात्।
सतर्पितेन्द्रियतया मन स्वास्थ्यमवाप्यते॥
स्वस्थप्रसन्नमनस समाधिरुपपद्यते।
समाधियुक्तचित्तस्य ध्यानयोग प्रवर्तते॥
ध्यानप्रवर्तनाद्धर्मा प्राप्यते यैरवाप्यते।
दुर्लभ शातमजर पर तदमृत पदम्॥ (बुद्ध १२।१०४-१०६)

अर्थात्—निरतर इन्द्रियतृप्ति से सम्यक् सुख प्राप्त होता है। इन्द्रियों के तृप्त रहने से मानसिक स्वास्थ्य का लाभ होता है। स्वास्थ्य एव प्रसन्न मनवाले का समाधि सिद्ध होती है। मन के समाधियुक्त होने से ध्यानयोग प्रवृत्त होता है। ध्यान प्रवृत्त होने से (उन) धर्मों का साक्षात्कार होता है, जिनसे दुर्लभ, शात, अजर, अमर, अमृत पद की प्राप्ति होती है।

आध्यात्मिक साधना-सबधी इस विचारधारा का गीता के इस श्लोक से पूरा सामञ्जस्य है—

आपूर्यमाणामचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥

अर्थात्—सब ओर से पूरित होते हुए अचल समुद्र में जल के प्रवेश को भाँति—जिसमें सब काम-भोगों का प्रवेश होता है, उसे ही शांति मिलती है, काम की कामना करनेवालों को नहीं।

यज्ञ और तपोमार्ग में लोगों की आस्था कितनी ही क्यों न रही हो, पर ज्ञान-ध्यान के मार्ग के प्रति आदर अधिक था और उसे उत्तम एवं मोक्षदायक माना जाता था। इस मोक्षमार्ग का आविष्कार, कपिल-संप्रदाय में, (तथा उपनिषदों में) अत्यन्त प्राचीन युग में हुआ था। कपिल हमारी अनुश्रुति के अनुसार आदि विद्वान हैं। कपिल के तत्त्वज्ञान का गीता के सांख्य-योग में वर्णन है। तथा उसका क्रमबद्ध वर्णन ईश्वरकृष्ण की *सांख्यकारिका* में है। दोनो में आपाततः कुछ भेद है। इस मार्ग की साधना का *योगसूत्रों* में वर्णन हुआ है। और इस विषय के लिये वही हमारे ज्ञान का स्रोत है। महाकवि अश्वघोष ने इस तत्त्वज्ञान और साधनमार्ग का संक्षेप से वर्णन किया है। यह वर्णन सांख्यकारिका और योगसूत्र के वर्णन से कितनी ही बातों में भिन्न है। विशेषकर साधनमार्ग में ध्यानभूमियों का जो विवरण है, वह योगसूत्रों में नहीं मिलता। बौद्ध-साधनामार्ग में गौणरूप से इन भूमियों का वर्णन है। यहाँ इस तत्त्ववाद और ध्यानभूमियों की रूपरेखा देख लेनी होगी। गौतम जब अराड़ के पास उनके मोक्षमार्ग की जिज्ञासा से गए तो उन्होंने बतलाया कि मनुष्य जिन कारणों से संसारचक्र में फँसा रहता है, वे कारण ये हैं—

(१) अज्ञान
(२) कर्म
(३) तृष्णा
(४) विप्रत्यय (विपरीत ज्ञान, और विपरीत कर्म)
(५) अहंकार ('मैं कर्त्ता हूँ' की भावना)
(६) संदेह (अनेक में एकत्व बुद्धि)✻
(७) अभिसंप्लव (मिश्रित बुद्धि, जिसे ज्ञेय स्पष्ट नहीं होता)
(८) अविशेष (विवेचन एवं विश्लेषण की शक्ति का अभाव)
(९) अनुपाय (यज्ञ आदि कर्मकांड)
(१०) संग (आसक्ति)
(११) अभ्यवपात (ममता)
(१२) तमस् (आलस्य)
(१३) मोह (जन्म और मृत्यु)
(१४) महामोह (काम)
(१५) तामिस्र (क्रोध)
(१६) अंधतामिस्र (विषाद)

(१२)–(१६): अविद्या पंचपर्वा ✻✻

✻ साधारण लौकिक एवं तार्किक व्यवहार में, एक में अनेकत्व के ज्ञान का नाम संदेह है। 'अनेककोट्यवगाहि ज्ञान संशयः।'

✻✻ इन पाँचों को सांख्यकारिका में विपर्यय का भेद मानकर वर्णन किया है। इनमें नाम-साम्य होने पर भी लक्षण-साम्य नहीं-सा ही है। विपर्यय कदाचित् इस सूची में परिगणित विप्रत्यय हो।

यदि मन य इ। सब का वर्गीकरण किया जाय तो कदाचित् यह सख्या काफी छोटी हो सकती है। इन्हीं सब से जन्म का स्रोत बहता है। यदि यह न हो तो जन्म नहीं होगा। जो मोक्ष का इच्छुक है उसे चार बातें जाननी चाहिए—

(१) अव्यक्त, (२) व्यक्त, (३) प्रतिबुद्ध §, और अप्रतिबुद्ध—[बुद्ध १२।२३-४०]

अव्यक्त क्या है? जो व्यक्त नहीं वह अव्यक्त है। व्यक्त क्या है? जो उत्पन्न होता है, जीर्ण होता है, पीड़ित होता है, मरता है, उसे व्यक्त जानना चाहिए। [बुद्ध १२।२२] साख्यकारिका में जिसे मूल प्रकृति कहा गया है, वही यहाँ अव्यक्त है। जिसे प्रकृति विकृति और केवल विकृति कहा है, वही यहाँ व्यक्त है। व्यक्त और अव्यक्त का वर्गीकरण यों होगा—
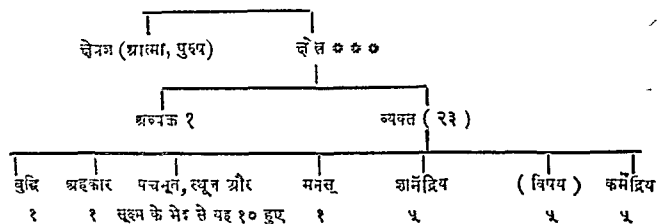
विषयों का पचभूतों में अतर्भाव होने के कारण उन्हें छोड़ देने पर क्षेत्रज्ञसहित सब तत्त्व पचीस हुए। क्षेत्रज्ञ को छोड़, शेष चौबीस तत्त्वों को अश्वघोष ने प्रकृति और विकृति, दो भागों में विभक्त किया है। अव्यक्त, बुद्धि, अहकार और पचभूत—यह आठ प्रकृति हैं, शेष विकृति हैं।

---

§ प्रतिबुद्ध=तत्त्वज्ञानी, अप्रतिबुद्ध=मिथ्याज्ञानी। तत्त्वज्ञानी से अभिप्राय कपिल और उनके अनुयायी तत्त्वज्ञानियों से है। शेष को मिथ्याज्ञानी समझना चाहिए। कपिल के तत्त्वज्ञान के सबध में यह प्रसिद्ध श्लोक है—'पचविंशतितत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्। जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र सशय।' पचीस तत्त्वों का जाननेवाला किसी आश्रम में क्यों न बसे, वह चाहे जटाएँ रखे, चाहे मुडित होकर रहे, चाहे शिखा रखाकर रहे, निःसदेह मुक्त हो जाता है। ऐसे तत्त्वज्ञ का मान करना, और जो ऐसा न हो, उससे दूर रहना कदाचित् कपिलों को बहुत पसद था।

*** 'अत्र तु प्रकृतिं नाम विद्धि प्रकृतिकोविद। महाभूतान्यहकार बुद्धिमव्यक्तमेव च॥
विकार इति बुध्यस्व विषयानिंद्रियाणि च। पाणिपाद च वाच च पायूपस्थ तथा मन॥
अस्य क्षेत्रस्य "[बुद्ध १२।१८।२०] अश्वघोष वर्णित इस क्षेत्र से गीता-वर्णित क्षेत्र तुलनीय है-
"महाभूतान्यहकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैक च पच चेंद्रियगोचरा॥
इच्छा द्वेष सुख दुःख सघातश्चेतना धृति। एतत्क्षेत्र समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ [१३।५,६]

*

ईश्वर कृष्ण के अनुसार पहला तत्त्व मूल प्रकृति, फिर उसके बाद के सात तत्त्व प्रकृति-विकृति हैं। तथा शेष केवल विकृति हैं। सांख्य के प्रसिद्ध सत्त्व, रजस् और तमस् की ओर अश्वघोष ने संकेत नहीं किया है। पता नहीं यह क्यों? बहुत संभव है, उस समय के सांख्य-संप्रदाय के तत्त्ववाद में त्रिगुण सिद्धांत सम्मिलित न हो और बाद में सम्मिलित कर लिया गया हो। गीता के सांख्य और योग के प्रसंग में त्रिगुणवाद की चर्चा अवश्य है। पर वह उन्हींका अपना सिद्धांत हो, सो नहीं जान पड़ता। क्योंकि वहाँ भक्तियोग के अनंतर (बारहवें अध्याय के बाद) जिस सिद्धांत का वर्णन है, वह वस्तुतः ब्राह्मणों का कर्मकांडमार्ग है। उसमें यज्ञ, दान, तप, आहार आदि का सत्त्व, रजस्, एवं तमस् के भेद से जो वर्णन है, वह उनका अपना वर्णन जान पड़ता है। जान पड़ता है, तीन गुणों के हिसाब से वर्गीकरण करने की प्रणाली व्यावहारिक थी और उसी का परिमार्जित एवं दार्शनिक रूप सांख्य ने प्रस्तुत किया है। व्यक्त और अव्यक्त को ठीक जाननेवाले कपिल (तथा उनके संप्रदाय के आचार्य) ही प्रतिबुद्ध हैं—तत्त्वज्ञानी हैं; और अन्य अप्रतिबुद्ध हैं—मिथ्याज्ञानी हैं। [बुद्ध १२।२१]

इस तत्त्ववाद को जानकर और यह समझकर कि राग से भय होता है तथा वैराग्य से कल्याण, साधक को काम, व्यापाद (=परद्रोह) आदि छोड़ देने पर ध्यानभूमियों की प्राप्ति होती है। इन ध्यानभूमियों के दो लोक होते हैं। रूपलोक तथा अरूपलोक। रूपलोक में चार ध्यान-भूमियाँ होती हैं। उन्हें पाकर अरूपलोक की प्राप्ति होती है। अराड़ ने गौतम को रूपलोक की चारभूमियों तथा अरूपलोक की दो अवस्थाओं का उपदेश दिया था। उनके विचार से अरूप-लोक की दूसरी अवस्था ही मोक्ष थी। फलतः उनकी साधना का ध्येय अरूपलोक की दूसरी अवस्था को पाना भर था। अराड़ के धर्म को सुनकर जब गौतम उद्रक के पास गए तो उन्होंने अरूपलोक की एक अवस्था और बतलाई तथा उसी को मोक्ष कहा। इन ध्यानभूमियों और अवस्थाओं को बिना बौद्ध-वाङ्मय की सहायता के समझा नहीं जा सकता। क्योंकि वर्तमान सांख्ययोग-संप्रदाय के ग्रंथों में इनकी चर्चा नहीं है। केवल बौद्ध-वाङ्मय में इस प्राचीन सांख्य-साधना का रूप बच गया है। गौतम का इस संप्रदाय से जो संबंध हुआ, कदाचित् वह काफी गहरा था और इसीलिये जहाँ अन्य धार्मिक साधनाओं को बौद्धमार्ग में मिथ्या कहा गया है, वहाँ सांख्य के इस ध्यानमार्ग को मोक्ष का पूरा मार्ग न मान करके भी एक सीढ़ी के रूप में उसे स्वीकार कर लिया गया है। बौद्ध-ध्यानमार्ग में सांख्यों के रूपलोक की भूमियाँ और अरूपलोक की अवस्थाएँ साधना के अंग हैं और सर्वत्र ध्यान-मार्ग के प्रसंग में इनका वर्णन किया गया है। बौद्ध-संप्रदाय में विश्व को तीन लोकों में बाँटा है। वहाँ लोक-शब्द के लिए धातु-शब्द का बहुत व्यवहार हुआ है। लोक-धातु तीन हैं—कामधातु, रूपधातु और अरूपधातु। कामधातु में नीचे से

ऊपर, छः लोक हैं—नरकलोक, प्रेतलोक, असुरलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक और देवलोक। देवलोक के फिर छः विभाग हैं—चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माणरति और

परनिर्मितवशवर्ति लोक। कामधातु के ऊपर रूपधातु है, जहाँ योगी ध्यान के बल से पहुँचते हैं। यदि उसी ध्यान की अवस्था में योगी का शरीर छूट जाय तो वह वहाँ ही उत्पन्न होता है। ध्यान के भेद से रूपधातु की चार भूमियाँ हैं। प्रथम भूमि में ब्रह्मकायिक, ब्रह्मपुरोहित और महाब्रह्मलोक हैं। द्वितीय भूमि में परित्ताभ, अप्रमाणाभ और आभास्वर लोक हैं। तृतीय भूमि में परित्तशुभ, अप्रमाणशुभ और शुभकृत्स्न लोक हैं। चतुर्थ भूमि में अनभ्रक, पुण्यप्रसव, बृहत्फल और शुद्धाधिवासिक (=अवृह, अतप, सुदृश, सुदर्शन और अकनिष्ठ) देवलोक हैं। रूपधातु के ध्यानों को पारकर योगी अरूपधातु (आरूप्यधातु) में पहुँचता है। अरूपधातु में रूपधातु की भाँति स्थान का भेद नहीं होता, पर अवस्था का भेद होता है। वहाँ चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं—आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन और नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। प्रत्येक ध्यान में चित्तवृत्ति किस प्रकार की होती है, इसका भी बौद्ध वाङ्मय में वर्णन है। प्रथम ध्यान पाने से पहले योगी कामक्रोध आदि पाप धर्मों से रहित हो चुकता है, पर उसके मन में फिर भी पाँच भावनाएँ पहले ध्यान में बनी रहती हैं—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, विवेक (=एकाग्रता)। दूसरे ध्यान में वितर्क और विचार भी नष्ट हो जाते हैं। केवल प्रीति, सुख और विवेक ही रह जाते हैं। तीसरे ध्यान में प्रीति भी नहीं रहती, केवल सुख और विवेक ही रह जाते हैं। चतुर्थ ध्यान में सुख भी नहीं रहता, केवल उपेक्षा (=सुख दुःख आदि के परे की अवस्था) एवं एकाग्रता ही रहती है।* इस वर्णन को ध्यान में रखकर अश्वघोष ने बुद्धचरित [१२।४८-६८] में सांख्यों के जिस ध्यानमार्ग का वर्णन किया है, वह समझ में आ सकेगा। वहाँ प्रत्येक ध्यान में जिन प्रवृत्तियों की प्रधानता है, उन्हीं का निर्देश किया गया है तथा प्रत्येक ध्यान के फल का भी वर्णन किया गया है। यहाँ कोष्ठकों में उसका निर्देश करना उचित होगा—

ध्यान	प्रधान चित्तवृत्ति	फल
प्रथम	वितर्क	ब्रह्मलोक-प्राप्ति
द्वितीय	प्रीति, सुख	आभास्वरलोक प्राप्ति
तृतीय	सुख	शुभकृत्स्नलोक-प्राप्ति
चतुर्थ	उपेक्षा	बृहत्फलदेवलोक प्राप्ति

इन सभी ध्यानों में एकाग्रता भी रहती है। वस्तुतः एकाग्रता ही ध्यान का रूप है। उसके अतिरिक्त अन्य जो चित्तवृत्तियाँ रहती हैं, उनका ऊपर निदर्शन है। इन संपूर्ण ध्यानों में रूपतत्त्व बना रहता है। जब इस रूपतत्त्व से भी साधक को वैराग्य हो जाता है, तब वह शरीर के शून्यस्थानों (मुख आदि छिद्रों के रिक्तस्थानों) में मन को स्थिर कर अनंत आकाश की भावना करता

* लोकों और ध्यानों के वर्णन यहाँ अभिधर्मकोश और अभिधम्मत्थसंगह से संक्षेपमात्र दिए गए हैं। विस्तृत ज्ञान के लिये उन प्रकरणों को देखना चाहिए।

है। अनंत आकाश की भावना करते-करते वह "किंचिन्नास्तीति" (कुछ नहीं है) की भावना पर पहुँचता है। इस अवस्था में आत्मा देह से निकलकर मुक्त हो जाती है। अराड़ की साधना की यही चरम कोटि है। इस अवस्था के बाद उद्रक मुनि ने एक और अवस्था बतलाई। उन्होंने कहा कि आकिंचन्य (कुछ नहीं) की अवस्था भी पूरी निर्दोष अवस्था नहीं है। उसमें भी संज्ञा और असंज्ञा (चैतन्य और जड़त्व) की भावना बची रहती है। इसलिये उसके अभाव में जो "नैव संज्ञा-नासंज्ञा" की अवस्था है, वही मोक्ष है। बौद्ध-वाङ्मय में आकाशानंत्यायतन और आकिंचन्यायतन के बीच विज्ञानानंत्यायतन (अनंत विज्ञान की भावना) का वर्णन मिलता है, उसे अश्वघोष ने सांख्यसाधना में नहीं दिया है। यह साधना गौतम को इसलिये नहीं रुची कि इसमें आदि से अंत तक अहंता या आत्मवाद का साम्राज्य है। वे निरंतर परिश्रम करते रहे और अंत में बोधिवृक्ष के नीचे उन्हें 'बोधि' (बूझ) या तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ। वे गौतम से गौतम बुद्ध हो गए। फिर बोधि मिलने पर उन्होंने कहा—

> सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
> सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
> सब्बजहो तण्हक्खये विमुत्तो
> सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं॥ [धम्मपद]

मैंने सबका अनुभव किया है, मैं सर्वविद् हूँ, सब धर्मों से अलिप्त हूँ, सब कुछ मैं ने छोड़ दिया है, तृष्णा के क्षीण होने से मैं मुक्त हो चुका हूँ, मैं ने यह मार्ग स्वयं जाना है। मैं किसे अपना गुरु बताऊँ?

बुद्ध ने जिस मार्ग का उपदेश दिया वह पूर्ण वैराग्य का मार्ग था, सर्वथा तृष्णा के विरोध का मार्ग था। ऊपर हमने सांख्य की प्राचीन साधना में देखा है कि साधक अरूपधातु (=आरूप्य-धातु) तक पहुँचकर ही अपने को मुक्त समझने लगता है। तथागत के मार्ग में कामधातु, रूपधातु और अरूपधातु, सबका पूर्ण परित्याग कर सर्वथा वितृष्ण होना पड़ता है। पूर्ण वैतृष्ण्य का नाम ही तो निर्वाण है। कवि ने निर्वाण का बड़ी रोचक भाषा में वर्णन किया है—

> दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षम्।
> दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित् स्नेहक्षयात्केवलमेति शांतिम्॥
> एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षम्।
> दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शांतिम्॥ [सौंदर १६।२८,२९]

जैसे निर्वाण को प्राप्त हुआ दीपक न धरती में समा जाता है, न आकाश में उड़ जाता है, न किसी दिशा या विदिशा में ही चला जाता है, केवल स्नेह (=तेल) के क्षय से शांत हो जाता

है, जैसे ही निर्वाण को प्राप्त हुआ पुरुष न धरती में समा जाता है, न आकाश में उड़ जाता है, न किसी दिशा या विदिशा में ही चला जाता है, केवल क्लेश के क्षय से शांत हो जाता है।

निर्वाण के इस वर्णन से ब्राह्मणसाधना के मोक्ष के वर्णन की तुलना करें तो जान पड़ता है कि उनका मोक्ष एक प्रकार का स्वर्ग ही है। हाँ, संसार की बहुत बाधाएँ भले ही वहाँ न हों। पर बौद्धमार्ग ने किसी लोकलोकांतर में जाने और वहाँ पड़े रहने को मोक्ष नहीं माना है। मन की अचल शांतावस्था का नाम ही मोक्ष है। मन में जिन दोषों के कारण क्षोभ होता है, वे १० हैं—

(१) आत्मदृष्टि (=आत्मा के ध्रुव या शाश्वत होने पर विश्वास)
(२) शीलव्रत परामर्श (=यज्ञ, कायपीड़क तप आदि करने से मोक्ष-सुगति पाने का विश्वास)
(३) विचिकित्सा (=चार आर्य सत्यों में संदेह)
(४) कामराग (=इस लोक में भोग भोगने की लालसा)
(५) व्यापाद (=दूसरे के प्रति द्रोह की भावना)
(६) रूपराग (=रूपधातु के देवलोकों में भोग भोगने की लालसा)
(७) अरूपराग (=अरूपधातु के लोक में भोग भोगने की लालसा)
(८) मान (=दूसरे को अपने से तुच्छ समझने की भावना)
(९) औद्धत्य (=चित्तभ्रम)
(१०) अविद्या

यह दस संयोजन—मनुष्य को संसार में बाँधनेवाले कहलाते हैं। इनके दूर करने से मनुष्य को पूर्ण शांति प्राप्त होती है। इन्हें कैसे दूर किया जाय? क्या घरबार छोड़कर जंगल भाग जाया जाय? - नहीं। यह तो कदाचित् बहुत भूल होगी। तथागत ने कहा है—

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आराम रुक्ख चेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता॥
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति॥ [धम्मपद]

भय से घबड़ाए हुए मनुष्य बहुत करके वन, पर्वत, अरण्य, आराम (=वाटिका), वृक्ष और चैत्यों की शरण जाते हैं। पर *इनकी शरण अकल्याणप्रद है, इनकी शरण उत्तम नहीं है,* इनकी शरण जाकर मनुष्य सब दुःखों से नहीं छूट पाता।

दुःख से दूर करनेवाले बौद्धमार्ग का कवि ने सौंदरनंद के १६ और १७ वें सर्गों में विस्तार के साथ वर्णन किया है। यहाँ उसका सार देना ठीक होगा।

बौद्ध साधक को यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उसका दुःख सकारण है। पर कारण कौन से हैं ? राग (तृष्णा) आदि दस दोष, जिनका अभी उल्लेख किया गया है। इन दोषों के अतिरिक्त अन्य बातों को जो लोग दुःख का कारण समझते हैं, उनकी ओर कवि ने संकेत किया है। यहाँ उनका विवरण अपेक्षित है—

(१) ईश्वरवाद यह एक पुराना सिद्धांत है। अक्षपाद और उनके अनुयायी नैयायिकों ने इसे दृढ़ किया। तार्किकों द्वारा सम्मत ईश्वरवाद से पुराना ईश्वरवाद कुछ भिन्न था। तार्किक लोग ईश्वर को सुख-दुःख आदि फलों का दाता मानते हैं, पर यह नहीं मानते कि ईश्वर सुख-दुःख देने में सर्वथा स्वतंत्र है। उनके विचार के अनुसार ईश्वर कर्मानुसार फल देता है। पर पुराने ईश्वरवाद के अनुसार प्राणी कुछ भी करने में स्वतंत्र नहीं है। ईश्वर जैसा चाहता है, वैसा ही मनुष्य से करा लेता है। महाभारत में दुर्योधन के मुँह से एक जगह कहलवाया है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

अर्थात्—मैं धर्म जानता हूँ, पर उस ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं अधर्म जानता हूँ, पर उस ओर से मेरी निवृत्ति नहीं होती। मेरे हृदय में कोई देवता बैठा है। वह जैसी आज्ञा देता है, मैं वैसा करता हूँ।

गीता में इस प्रकार के निरंकुश ईश्वरवाद के संबंध में कितने ही श्लोक हैं। बोधिसत्त्व-चर्यावतार की पंजिका (नवम परिच्छेद) में इसी प्रकार के ईश्वरवाद का उल्लेख है—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा।

अपने सुख-दुःख के विषय में प्राणी अज्ञ और असमर्थ है। ईश्वर से प्रेरित होकर वह (कहीं भी) जा (पड़) सकता है, स्वर्ग में या गढ़े में।

(२) प्रकृतिवाद कपिल का सिद्धान्त है। संसार में प्रवृत्ति का कारण, सांख्यमत के अनुसार प्रकृति है। जो भी सुख-दुःख होते हैं, सबके मूल में प्रकृति है।

(३) कालवाद ज्योतिर्विदों का सिद्धांत है। ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार सब बातों का कारण काल है।

(४) स्वभाववाद चार्वाकों का सिद्धांत है, जिसके अनुसार सब कुछ स्वभावतः ही होता है। कहा भी है :

राजीव केसरादीनां वैचित्र्यं कः करोति हि।
मयूरचन्द्रकादिर्वा विचित्रः केन निर्मितः।
तथैव कण्टकादीनां तैक्ष्ण्यादिकमहेतुकम्।
कादाचित्कतया तद्वद् दुःखादीनामहेतुता।

कमलकेसर आदि की विचित्रता कौन करता है? मोर के पंखों में विचित्र चंद्रक किसने बनाए? (जैसे इन बातों का कोई हेतु नहीं है,) वैसे ही काँटो आदि की तीक्ष्णता (भी) अहेतुक है, इसलिये दुःख आदि भी कदाचित् बिना हेतु के ही होते हैं।

(५) विधिवाद (=भाग्यवाद) भाग्य को ही सुख-दुःख आदि का कारण मानना।

(६) यदृच्छावाद—सुख-दुःख आदि की उत्पत्ति को आकस्मिक मानना।

सुत्त पिटक में भाग्यवादी मक्खली गोसाल की अनेक बार चर्चा आई है। यदृच्छावाद का 'श्वेताश्वतर' उपनिषद् में उल्लेख आया है। बौद्ध साधक इन कारणों से दुःख का उदय नहीं स्वीकार करता। वह दुःख को नष्ट न होनेवाला भी नहीं मानता। जो सकारण है, उसके कारण को यदि दूर किया जाय तो वह स्वयं ही नष्ट हो जायगा। बौद्ध साधक अपने दुःख के कारणों को जानकर ऐसे मार्ग पर चलता है जिससे उसका दुःख दूर हो सके।

दुःखनिरोधमार्ग के तीन बड़े विभाग हैं—*शील, समाधि और प्रज्ञा*। तीन शाखाओंवाले इस मार्ग के आठ अंगों का वर्गीकरण अश्वघोष के अनुसार यों होगा—

प्रज्ञा { सम्यग्दृष्टि (सब कुछ अनित्य, दुःख और अनात्म है)
सम्यक्संकल्प (पर-हित साधना का दृढ़ निश्चय)

शील { सम्यग्वाचा (प्रिय सत्य भाषण; परुष भाषण, असत्प्रलाप—गपशप, पिशुनता आदि का परित्याग)
सम्यक्कर्म (सदाचार)
सम्यगाजीव (जीविका के साधनों की पवित्रता, परपीड़ा द्वारा जीविका न कमाना)

प्रज्ञा [सम्यग्व्यायाम (पुण्य के लिये मानसिक प्रयत्न)

समाधि { सम्यक्स्मृति (सन्मार्ग की ओर ले जानेवाली बातों का स्मरण)
सम्यक्समाधि (अनित्य, दुःख, अनात्म की भावना, मैत्री और करुणा का अभ्यास)

यहाँ यद्यपि सम्यग्व्यायाम का केवल मनोकर्म न होने से प्रज्ञा में अंतर्भाव नहीं हो सकता, पर व्यायाम से यहाँ कवि का अभिप्राय केवल मानसिक व्यायाम से है, अतएव उसका प्रज्ञा में अंतर्भाव

किया गया है। बौद्ध साधक को जब दुःख, दुःखसमुदय (दुःख की सकारणता का सिद्धांत) दुःख-निरोध और दुःख-निरोध के ऊपर प्रदर्शित अष्टांगिक मार्ग के विषय में विचिकित्सा (संदेह) नहीं रहती तथा सम्यग्दृष्टि के कारण आत्मदृष्टि और शील-व्रत-परामर्श पर आस्था नहीं रहती, तब वह साधक *स्त्रोआपन्न* कहा जाता है; क्योंकि उसे मुक्ति का स्रोत मिल जाता है। बौद्ध-विश्वास के अनुसार स्रोतआपन्न पुरुष को सात से अधिक जन्म नहीं ग्रहण करने पड़ते। इस स्रोत में बहते-बहते जब साधक के काम, राग और व्यापाद (परद्रोह) की भावनाएँ बहुत-कुछ दुर्बल हो जाती हैं, तब उसे *सकृदागामी* कहते हैं; क्योंकि ऐसे साधक के विषय में विश्वास किया जाता है कि अधिक-से-अधिक उसका एक ही जन्म और होगा। अतः अपने नाम के अनुसार वह सकृद् (एक बार) आगामी (आनेवाला) है। आगे चलकर जब साधक और भी उन्नति कर लेता है तथा अपने कामराग और व्यापाद (परद्रोह) को दूर कर लेता है तो वह *अनागामी* कहलाता है। अनागामी साधक यदि इस लोक (कामधातु) के जीवन में अधिक उन्नति न करे तो भी उसे यहाँ नहीं आना पड़ता। वह रूपधातु के शुद्धाधिवास देवलोक में उत्पन्न होकर वहीं से निर्वाण को पा लेता है। अनागामी पुद्गल (प्राणी, पुरुष) में इस कामधातु के भोग भोगने की लालसा यद्यपि नहीं रहती, तो भी इस लोक से परे रूपधातु और अरूपधातु के भोगों के भोगने की लालसा बनी रहती है। तथा और भी कितने ही दोष बने रह जाते हैं। साधक रूपधातु के लोक का भोग बहुत-कुछ अपने ध्यानमार्ग से कर लेता है। ऊपर जिन ध्यानों की चर्चा आई है, वह उनका साक्षात्कार कर फिर अरूपधातु की सभी अवस्थाओं का अनुभव कर उन्हें भी नश्वर समझ विरक्त हो जाता है। रूपधातु और अरूपधातु के प्रति पूर्ण वैराग्य हो जाने से वह थोड़ा और आगे बढ़ता है। उसमें मान नहीं रह जाता, औद्धत्य या चित्तभ्रम नहीं रह जाता। चित्तभ्रम न रहने से अविद्या भी नहीं रहती। एवं सब बंधनों से रहित होकर वह अर्हत हो जाता है—मुक्त हो जाता है। इस प्रकार पूर्णतया तथागत-सम्मत निवृत्ति-मार्ग का वर्णन करते हुए कवि ने अन्य मार्गों को पूर्व-पक्ष के रूप में सजाकर प्रायः महाजनसम्मत भारतीय धर्म के विकास को हृदयग्राही ढंग से अंकित किया है। एक युग था जब स्वर्ग के लिये लोग यज्ञ करते थे, पर यज्ञ करना-कराना सब के बूते की बात न थी। ऋत्विजों की दक्षिणा, मेध्य पशुओं को इकट्ठा करना तथा अन्य प्रकार की यज्ञ-सामग्रियों के एकत्रीकरण में बहुत अधिक व्यय होता था। फलतः यह धर्म राजाओं और समृद्ध वैश्यों के लिए ही हो सकता था। इस प्रकार के धर्म का आचरण करना जनसाधारण से संभव नहीं था; पर उनमें जो क्लेशसहिष्णु होते थे, वे तपस्या का मार्ग पकड़ते थे। इन दोनों मार्गवालों को अपने धर्म से अत्यंत सुखद स्वर्गलोक के मिलने की आशा रहती थी। जो इनसे भी अधिक ऊँची साधना करते थे, वे सांख्य-संप्रदायवाले (और रहस्यवादी वैदिक ऋषि, मुनि एवं आचार्य) थे, पर वे जिस मोक्ष की कल्पना करते थे,* वह भी अर्ध्व लोक की भूमियों में से एक भूमिमात्र थी। उप-

* उपनिषदों में ब्रह्मलोक-प्राप्ति को ही मोक्ष कहा है। ब्रह्मलोक ही याज्ञवल्क्य के अनुसार

निषदों की साधना का कवि ने जिक्र नहीं किया है। प्राचीन बौद्ध मार्ग पर उपनिषदों का प्रभाव हमें दिखाई भी नहीं पड़ता है। उपनिषद् के सत्—चित्—आनंद के स्थान पर अनित्य (=असत्), अनात्म (=अचित्) और दुःख (=अनानंद) का सिद्धांत माननेवालों पर उसका प्रभाव कितना कदाचित् उनके साथ अन्याय करना होगा। जान पड़ता है कि जिन साधनाओं का बौद्ध साधना के विकास में हाथ रहा है, कवि ने उन्हीं का उल्लेख किया है। अपनी पूर्ववर्ती साधनाओं को पूर्वपक्ष बनाकर विकसित हुई तथागत की धर्मसाधना, पूर्णतया वैराग्य—वैतृष्ण्य की साधना है। तृष्णा चाहे ऐहिक हो या पारलौकिक, दोनों ही का तथागत की साधना में स्थान नहीं है। फलत जो लोग तृष्णा का पूर्ण निरोध न कर केवल लौकिक तृष्णा का त्याग कर मोक्ष के प्रति सतृष्ण होते हैं, उनके लिये नागार्जुन ने कहा है—

निर्वास्याम्यनुपादानो निर्वाणं मे भविष्यति।
इति येषां ग्रहस्तेषामुपादान महाग्रह ॥ [माध्यमिक कारिका]

मैं उपादान रहित होकर निर्वृत होऊँगा, मुझे निर्वाण की प्राप्ति होगी—ऐसी जिनकी धारणा है, वे उपादान की धारणा से रहित नहीं। प्रत्युत् महान् उपादान की धारणा से युक्त हैं। इसीलिये तो कवि ने निर्वाण के स्वरूप को समझाते हुए कहा है—"मुक्त न धरती में समा जाता है, न आकाश में ही उड़ जाता है, प्रत्युत् क्लेश के क्षय से केवल शांति पाता है।" [सौंदरनंद १६।२६]

इस वैराग्यमार्ग में जिन बातों को कवि ने प्रतिबंधक समझा है, उन सब का निराकरण किया है। कवि की दृष्टि में स्वर्ग मनुष्य के अभ्युदय की कथा नहीं है। वह तो ऊपर उठकर पतन की

एषाऽस्य परमा गति, एषास्य परमा सपत् एषोऽस्य परम आनंद'

है। ब्रह्मलोक के आनद की तुलना अन्य लोकों से बृहदारण्यक-उपनिषद् में यों की गई है—

"यो मनुष्याणा समृद्ध स मनुष्याणा परम आनद।" मनुष्यों में जो समृद्ध हैं, वही मनुष्यों में परम आनद है। ये शत मनुष्याणा आनदा स एक पितृणा जितलोकानामानद। १०० मानव आनद=१ जितलोक पितर आनद।

ये शत पितृणा जितलोकानामानदा स एको गधर्वलोक आनद। १०० जितलोक पितर आनद=१ गधर्व लोक आनद।

ये शत गधर्वलोक आनदा स एक कर्मदेवानामानद। १०० गधर्वलोक आनद=१ कर्मदेव आनद।

ये शत कर्मदेवाना आनदा स एक आजान देवानामानद। १०० कर्मदेव आनद=१ आजानदेव आनद।

ये शत आजानदेवाना आनदा स एक आजानदेवानामानद। १०० आजानदेव आनद=१ प्रजापति लोक आनद।

ये शत प्रजापतिलोक आनदा स एको ब्रह्मलोक आनद॥" १०० प्रजापति लोक आनद=१ ब्रह्मलोक-आनद॥"

कथा है। स्वर्ग में इंद्र का अर्द्धासन पाकर फिर मांधाता पृथ्वी पर गिरे। देवताओं का राज्य पाकर नहुष को सर्प बनना पड़ा। सौ-सौ बार इंद्रों का पतन हुआ। (सौंदर ११। ४३,४४,४८) तब भला, स्वर्ग ऊँचे स्थान पर जाकर खड्ड में गिरने की कहानी नहीं, तो और क्या है? स्वर्ग की बात छोड़िए; लोक में ही बल, रूप, यौवन और नारी-सौंदर्य किसे मत्त नहीं करता? पर, कवि की दृष्टि में, इनसे मत्त होने के स्थान पर अनुनत होना चाहिए। बल तो कवि की दृष्टि में विनाश का ही इतिहास है। बलवान् सहस्र बाहु, कंस, नमुचि और कौरवों की कहानी ध्वंस और पतन की ही गाथा है। (सौंदर ६। १६-२०) मानवरूप, हमारे कवि अश्वघोष की दृष्टि में, इस योग्य हैं ही नहीं कि उनपर मतवाला बना जाय। मानवरूप से मयूर का रूप कहीं अधिक शोभन है। पर मनुष्य में इतनी क्षमता नहीं है कि वह अपने सौंदर्य को छोड़ दे। यौवन तो बड़ा ही चंचल है। एक बार बीतने पर ऋतु फिर पलटता है, चंद्रमा क्षीण होकर फिर उगता है। पर, यौवन गया तो गया। नदी के जल की तरह वह फिर लौटनेवाला नहीं। (सौंदर ६। २५, २८) नारी-सौंदर्य हमारे कवि की दृष्टि में बल, रूप और यौवन से भी अधिक भयावह हैं। उन्हींके कारण स्वजन का स्वजन से, सुहृद् का सुहृद् से अलगाव होता है, पारस्परिक युद्ध होते हैं, विपत्तियाँ आती हैं। (सौंदर ८। ३३,३४) इतना ही हो तो बात नहीं, जिनके लिये यह सब अनर्थ होता है, वही बाद में दगा दे जाती हैं—विश्वासघात कर बैठती हैं। यह विश्वासघात भी ऐरे-गैरे के साथ हुआ होता, सो भी नहीं, बड़े-बड़े इसके शिकार हुए हैं। और तो और, उग्रतपाः गौतम तक को उनकी पत्नी अहिल्या धता बता गई। (सौंदर ८। ४४, ४५) जब यह बात है, तब उन दुर्दान्ताओं से दूर रहना ही ठीक होगा—

प्रदहन् दहनोऽपि गृह्यते विशरीरः पवनोऽपि गृह्यते।
कुपितो भुजगोऽपि गृह्यते प्रमदानांतु मनो न गृह्यते॥ (सौंदर)

जलती आग पकड़ी जा सकती है, शरीर-रहित पवन को भी वश में किया जा सकता है, क्रुद्ध सर्प भी बस में आ जाते हैं; पर प्रमदाओं का मन वश में नहीं आता।

कवि की इन सूक्तियों में एक विरक्त के व्यापक अनुभव का प्रतिबिम्ब है; और भुक्तभोगी को इनकी यथार्थता में संदेह नहीं हो सकता। नारी की रागमयी मूर्त्ति, निवृत्तिमार्ग की विरोधिनी होने से, साधक के लिये उपादेय नहीं हो सकती। और, इसीलिये, कवि ने अपने विषय के अनुकूल ही उसका चित्रण किया है।
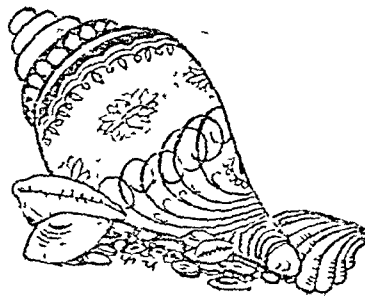
[महामहोपाध्याय डॉक्टर श्री उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट०, प्रयाग]

पाश्चात्य देश के, और इस देश के भी, अंग्रेजी ढङ्ग से पढ़े हुए विद्वानों के मत हैं कि ऋग्वेद में कर्म के सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं है। इसका, जन्मान्तर का और पुनर्जन्म का विचार उपनिषदों में अधिक मिलता है। उपनिषदों के पूर्व तो इसका उल्लेख नहीं के बराबर है। इस कर्मभूमि में, 'कर्म' के सम्बन्ध में विशेष विचार का ऋग्वेद में न मिलना, मुझे बहुत खटका और मैंने (भारतीय दर्शन के इतिहास को, भारतीय दृष्टिकोण से, जब लिख रहा था) उस समय इसकी विशेष खोज की। जो कुछ मुझे कर्म के सम्बन्ध में वेद में मिला, उससे यह स्पष्ट होता है कि स्थूलरूप में भी विद्वानों ने इसके सम्बन्ध में पर्याप्त अध्ययन किया है। अब यहाँपर मैं स्थूलरूप से 'कर्म', जिसे हम law of karma अंग्रेजी में कहते हैं, के सम्बन्ध में जो कुछ ऋग्वेद में मिलता है, अपने जिज्ञासुओं के लिये लिख देता हूँ।

कर्म के विचार के लिये निम्नलिखित बातों के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है—जन्मान्तर के अच्छे और बुरे कर्मों के फल को भोगने के लिये संसारबन्धन में फँस जाना, सुख एवं दुःख का अनुभव करना, वर्तमान जीवन के पूर्व और पश्चात् जीव का होना, देवयान तथा पितृयान के द्वारा जीव का लोकान्तर में जाना तथा जन्मान्तर के कर्मों के फलों की चर्चा। इसी प्रकार की अन्य बातों से भी हमें 'कर्म' के वैचित्र्य का पता लग सकता है।

इन्हीं बातों को आधार मानकर जब हम ऋग्वेद में 'कर्म' के सम्बन्ध में ढूँढने लगते हैं, तो हमें निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं :

'शुभस्पती'—अच्छे कर्मों के अध्यक्ष के अर्थ में, अश्विनीकुमार के लिये आया है (ऋग्वेद १–३–१; १–४७–५); 'धियस्पति' शब्द उपर्युक्त अर्थ में ही इन्द्र तथा मरुत देवों के लिये आया है। (वही, १–२३–३); 'विचर्षणिः'—शुभाशुभ कर्मों के विशेष द्रष्टा के अर्थ में इन्द्र के लिये आया है। (वही, २–२२–३; तथा निरुक्त, ३–१३–२०); 'विश्वचर्षणिः' उपर्युक्त ही अर्थ में अग्नि के लिये आया है। (ऋग्वेद, ५–६–३); 'पिता कुटस्य चर्षणिः'—कर्मों के रक्षक एवं द्रष्टा के अर्थ में ऋग्वेद (१–४६–४) तथा निरुक्त (५–२४–१) में; 'विश्वस्य कर्मणो धर्ता'—समस्त संसार के कर्मों को धारण करनेवाले के अर्थ में (ऋग्वेद, १–११–४) इन्द्र के लिये अनेक बार अन्य प्रकरण में भी प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों से देवताओं को सम्बोधित करने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि ऋषियों के मन में यह सन्देह था कि किए हुए कर्मों का कहीं नाश न हो जाय और उनके फल को हम सब भोग न कर पावें। उन्हें यह भी विश्वास था कि देवताओं की कृपा से ये कर्म बिना फल दिए हुए नष्ट नहीं हो सकते। इसलिये उपर्युक्त विशेषणों के साथ देवताओं की स्तुति ऋषियों ने वेद में की है।

उपासनाओं के द्वारा देवताओं को प्रसन्न कर अपने मनोभिलषित कामनाओं की पूर्त्ति करना ऋषिओं का मुख्य कार्य था। यज्ञ करना भी इन्हीं उपासनाओं का एक रूप था। किसी न किसी विशेष फल पाने की इच्छा ही से लोग यज्ञ करते थे। किसी-किसी यज्ञ का फल इसी लोक में यजमान को मिल जाता था और किसीका जन्मान्तर में, जिसके लिये इहलोक तथा परलोकगामी एक नित्य जीवात्मा को मानना आवश्यक होता है। यज्ञ करने के अनन्तर वह कर्म 'अपूर्व' के रूप में जीवात्मा से सम्बद्ध हो जाता है और फिर जन्मांतर में वही 'अपूर्व' फलरूप में परिणत होता है। कोई स्वर्गप्राप्ति के लिये जब यज्ञ करता है तो वह यजमान जन्मान्तर ही में दूसरे शरीर से स्वर्ग को प्राप्त करता है। इस प्रकार जन्मान्तर होना तथा कर्म का रूपान्तर में जीवात्मा के साथ सम्बद्ध रहना स्पष्ट होता है। यज्ञरूप यह कर्म, 'क्रियमाण' होता हुआ, 'अपूर्व' के रूप में 'सञ्चित' कहलाकर, पुनः स्वर्ग में सुखरूप फल को देने के समय में, 'प्रारब्ध' के नाम से पुकारा जाता है। यह सब हमें यज्ञरूप उपासनाओं से स्पष्ट मिल जाता है। इसके लिये ऋग्वेद (१-२७-५; १-४५-७; १-५२-६; १-७०-४) में पूर्ण प्रमाण हैं। इसी प्रकार—

'आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्' (ऋग्वेद १-७२-९)—अर्थात् आदित्यगण ने अमरत्व-प्राप्ति के लिये उपाय करके पतन-निरोध के लिये जो सब कर्म किए थे; 'विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः' (ऋ० १–११०–४) अर्थात् ऋभुओं ने शीघ्र कर्मानुष्ठान किया था एवं ऋत्विकों के साथ मिले थे, इसलिये मनुष्य होकर भी उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया था। इन मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि कर्म करने से उसका फलस्वरूप अमरत्व मिलता है।

फिर—

'अन्तर्ह्यग्न इयसे विद्वान् जन्मोभया कवे' (ऋ० २-६-७)-अर्थात्—हे मेधावी अग्नि! तुम मनुष्यों के अन्तःकरण को जानते हो तथा उभयरूप जन्म को भी जानते हो अर्थात् मर्त्य और अमर दोनों के जन्म को तुम जानते हो। इस मन्त्र में जन्मान्तर का उल्लेख स्पष्ट है।

फिर—

"अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा॥
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्॥" (ऋ०४-२६ १-३)

अनुवाद—हम मनु हैं। हम सबके प्रेरक सविता हैं। हम ही दीर्घतमा के पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं। हमने ही अर्जुनीपुत्र कुत्स को भलीभाँति अलङ्कृत किया था। हम ही उशना नाम के कवि हैं। हे लोगो! हमें अच्छी तरह से देखो। हमने आर्य को पृथ्वी दान दिया था। हमने हव्य देनेवाले मनुष्य को शस्य की अभिवृद्धि के लिये वृष्टिदान दिया था। हमने सोर मचाते हुए जल को लाया था। देवतागण हमारे संकल्प का अनुसरण करते हैं। हमने सोमपान से मत्त होकर शम्बर नामक दैत्य के ६६ नगरों का एक ही साथ नाश किया था और दिवोदास को रहने के लिये १०० नगर दिये थे।

उक्त मन्त्रों से यह स्पष्ट है, जैसाकि वेदभाष्यकार सायण ने भी कहा है कि वास्तव में ये सभी रूप 'वामदेव' ही के हैं। वामदेव का कहना है कि लोग भी मुझे ऐसा ही जानें तथा अपने में भी सभी के रूप को अनुभव करें।

और भी—

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं, देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम्॥" (ऋ० ४-२७-१)

अर्थात्—वामदेव कहते हैं कि मैंने गर्भ ही में इन देवों के सभी जन्मों को जान लिए कि किस प्रकार ये इन्द्र आदि देवता परमात्मा से उत्पन्न हैं। इसके पहले सैकड़ों लोहे के दीवाल के अन्दर मैं बन्द था, क्योंकि मुझे यह नहीं मालूम हुआ था कि आत्मा शरीर से भिन्न है। किन्तु अब श्येन पक्षी के समान वेग से मैं बाहर आ गया और मैं मुक्त हूँ।

इसी प्रकार—

'न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः॥ (ऋ० ४-२७ २)

अर्थात्—वामदेव कहते हैं कि मैं गर्भ में रहता हुआ भी 'मोह' से अभिभूत नहीं हुआ। ज्ञान के प्रभाव से मैंने गर्भवासजनित दुःखों को दूर किया। ज्ञानी ने गर्भवास के शत्रुओं का नाश किया और गर्भ को दुःख देनेवाले वायु को भी निकल जाने का अवसर दिया।

इन सभी मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि लोग अनात्मा से भिन्न एक नित्य तथा स्वतन्त्र आत्मा मानते थे। उन्हें यह भी ज्ञान था कि एक ही जीवात्मा भिन्न-भिन्न अवसर पर अनेक स्वरूप धारण कर सकता है और एक जीवन का संस्कार दूसरे जीवन में बिना प्रयत्न के चला जाता है। एक ही जीवात्मा भूत और भविष्य में हजारों शरीर धारण कर सकता है और परम ज्ञान प्राप्त होने पर इन सब शरीरों का अन्त हो जाता है। ये सभी बातें 'कर्मविचार' के अन्तर्गत ही हैं।

पुनः 'द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम' (ऋ० ६-२-११)—इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए सायण ने 'ता तरेम' का 'तानि व्यवहितानि जन्मान्तर कृतानि च पापादीनि तरेम'—अर्थात् पूर्वजन्मों में किए हुए पापों को हम पार करें, ऐसा अर्थ किया है। इससे भी कर्मविचार का विवेचन स्पष्ट है।

इसी प्रकार 'अव स्यतं मुंचतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो' (ऋ० ६-७४-३) अर्थात्—हमारे शरीर में लगे हुए पाप को शिथिल करो और दूर करो। इससे यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद के ऋषियों को यह मालूम था कि पाप करने से वह सूक्ष्म शरीर में संस्काररूप में चिपक जाता है, जिसे उसी जन्म में या जन्मान्तर में नाश करना आवश्यक है।

यहींपर यह कह देना उचित होगा कि 'एनस्' शब्द का यास्क ने 'कहीं और से आना—एन एते:' ऐसा अर्थ किया है, जिससे यह स्पष्ट है कि पाप किसी कर्म का फल है।

पुनः 'न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन' (ऋ० ७-८२ ७) अर्थात्—हे मित्रावरुण! न कोई पाप, न कोई पाप का फल और न कोई दुःख ही किसी कारण से मनुष्य को प्राप्त होता है'...इससे यह स्पष्ट है कि ये सब किसी कर्म के फल हैं, जिन कर्मों को इससे पूर्व मनुष्य ने किया था और जो परिणाम में फल देने के लिये शरीर के साथ-साथ आये हैं।

पुनः 'पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम्' (ऋ ७-८६-३) अर्थात् हे वरुण! यह तो मुझे बताइए कि मैंने कौन-सा पाप किया था, जिसके कारण मैं इस पाश से बाँधा गया हूँ। इससे भी कर्म और कर्म-फल का ज्ञान वैदिक ऋषियों को था, यह प्रमाणित होता है।

इसी प्रकार—

'न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।

अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोगता॥' (ऋ७-८६-६)

अर्थात्—पाप की तरफ मनुष्य की प्रवृत्ति का कारण केवल उसका पौरुष और योग्यता ही नहीं है। (फिर और क्या है?) इसके अतिरिक्त 'धुति' है, जिसे 'दैवगति' कहते हैं, जो जन्म के समय मनुष्य के साथ हो जाता है। अर्थात् पाप की तरफ प्रवृत्ति के कारण मादक मद्य, द्यूत-क्रीडा, क्रोध, असावधानता, अज्ञान तथा दैव आदि अदृष्ट वस्तु हैं। इन्हीं को 'दैवस्तुति' भी सायण ने कहा है। कभी-कभी कोई पुरुष या कोई विशेष शक्ति भी दुर्बल मनुष्य को अनुचित कर्म की तरफ ले जाती है। निद्रावस्था भी कभी कभी पाप का कारण होती है। इस प्रकार अदृष्ट या दैव या पूर्वजन्म के कर्म मनुष्य को पाप कर्मों की तरफ ले जाते हैं।

उपर्युक्त मन्त्र से स्पष्ट है कि सचित तथा प्रारब्ध कर्मों का पूर्ण ज्ञान ऋग्वेद संहिता में हमें मिलता है।

इसी प्रकार—प्रते पूर्वाणि करणानि विप्रा विद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथा यथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्या विवेषीः ॥ (ऋ० ४-१९ १०)

इस मन्त्र से यह स्पष्ट है कि वामदेव ऋषि को इन्द्र के जन्मान्तरों के कर्मों का पूरा परिचय था।

पुन —'त्वं हि क पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दुढम व्रतानि' (ऋ० २-२८-८)

इस मन्त्र के 'अप्रच्युतानि व्रतानि' शब्दों से यह मालूम होता है कि यहाँ 'सञ्चित कर्म' का उल्लेख है, जिसका भोग अभी नहीं हुआ है।

इसी प्रकार—'इनोत पृच्छ जनिमा कवीना मनोधृत सुकृतस्तक्षत द्याम् (ऋ० ३-३८-२)

अर्थात्—हे इन्द्र! कवियों के जन्म के सम्बन्ध में पूछो। किस कारण से उन लोगोंने जन्म-ग्रहण किए और स्वर्ग को गए? इससे 'प्रारब्ध कर्म' के सम्बन्ध में यहां जिज्ञासा स्पष्ट है।

इसके बाद—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ (१-१६४ २०)

अर्थात्—सुन्दर पंखवाले तथा आपस में मैत्री को रखनेवाले दो पक्षियों ने एक ही वृक्ष में अपने-अपने आवास बनाए हैं। इनमें से एक तो पीपल के अच्छे स्वादवाले फल को खाता है और दूसरा बिना खाए हुए ही रहता है।

इस मन्त्र में जन्मान्तर के कर्मफलों को भोगनेवाले जीवात्मा तथा निर्लिप्त परमात्मा का वर्णन है। इस मन्त्र में यह स्पष्ट है कि जीव एक जन्म में जो कुछ करता है, उसका फल मरण के

बाद दूसरे शरीर में जन्म लेकर भोग करता है। इस प्रकार सञ्चित एवं प्रारब्ध कर्म का विचार ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से हमें मिलता है।

इसके बाद देवयान और पितृयान मार्ग के द्वारा हमें कर्मविचार का उल्लेख मिलता है।

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत्।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ (ऋ० ३- ५-१५)

अर्थात्—एक अपूर्व स्थान में दोनों ही वर्त्तमान हैं। एक तो व्यक्त है और दूसरा अव्यक्त। एक सकल साधारण मार्ग है, जो दो दिशाओं को जाता है। अव्यक्त तो देवयानमार्ग है, जिससे होकर जीव ब्रह्मलोक को जाता है। दूसरे मार्ग से सभी अपने कर्मानुसार चन्द्रलोक जाते हैं।

अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्तायात पथिभिर्देवयानैः (ऋ०६-३८ ८)

अर्थात्—इस सुस्वादु सोमरस का तुम पान कर तृप्त हो जाओ और फिर जिस मार्ग से देवता लोग जाते हैं, उसीसे तुम भी जाओ।

इससे यह स्पष्ट है कि अच्छे कर्म करने से लोग प्रसन्न होकर देवयानमार्ग से ब्रह्मलोक को जाते हैं।

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः (ऋ०७-७६-२)

अर्थात्—देवलोक को ले जानेवाला मार्ग जो दिव्य रूप का है, हमने देखा।

इसके अतिरिक्त—अभिक्रन्द्र स्तनय गर्भमाधा (ऋ० ५-८३-७)

अर्थात्—गर्जन करो। पौधो और जड़ी-बूटिओ में गर्भ को निक्षेप करो।

अपां गर्भः प्रस्व आ विवेश (ऋ० ७-६-३)

अर्थात्—जल के गर्भस्वरूप में, पौधों में प्रवेश किया।

स रेतो धा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ० ७-१०१-६)

अर्थात्—साँढ़ के समान पर्जन्य में, पौधों में गर्भधारण करने की शक्ति है। इसलिये स्थावर तथा जंगम का जीवन पर्जन्य में निहित है।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम् (ऋ० ७-१०२-२)

अर्थात्—पर्जन्य देव पौधों में, जड़ी-बूटिओं में, गायों में, घोड़ियों में तथा स्त्रियों में जीवन के बीज को वपन करते हैं।

इन सभी मन्त्रों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषियों का यह मालूम था कि जीव अपने कर्मानुसार चन्द्रलोक में जाकर, कर्मफल को भोगकर, अवशिष्ट कर्म को भोगने के लिए जल की वृष्टि के द्वारा पृथ्वी पर आकर, विविध वस्तुओं में प्रवेश कर, पुनः दूसरे रूप में शरीर धारण करता है। यही बात हमें छान्दोग्योपनिषद् (५-३-६) में मिलता है--"यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति"—पाँचवें आहुति में जल मनुष्य कहलाने लगता है।

पुन. "मा व एनो अन्यकृत भुजेम" (ऋ० ६-५१-७) अर्थात् —दूसरों के किए हुए कर्मों के पापरूप फल को हम न भोग करें। और 'मा वो भुजेमान्य जातमेनो" (ऋ० ७-५२-२) अर्थात्—दूसरों में उत्पन्न हुए पाप-कर्मों के फल को हम न भोग करें।

इन मन्त्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि न केवल साधारण रूप ही में कर्मविचार ऋग्वेद के ऋषियों को मालूम था, किन्तु उसके सूक्ष्म कार्य को भी वे सब जानते थे। विशेष शक्ति के प्रभाव से एक का पाप और पुण्य दूसरे के ऊपर चला जा सकता है। इसलिये ऋषियों ने देवताओं से प्रार्थना की कि ऐसा हमें न हो।

इन सबको देखते हुए कौन कह सकता है कि ऋग्वेद के ऋषिओं को कर्मविचार का ज्ञान नहीं था। ऐसी बातों के कहनेवालों को तो हम अन्धे कह सकते हैं। वे लोग वेद को नहीं पढ़ते और न उसके तत्त्व को समझते हैं। वेद ज्ञान का भण्डार है। इसीसे निकालकर ज्ञान का विस्तार किया जाता है, जिसका साधन सभी शास्त्र हैं। शास्त्रों के समझने के लिये भारतीय निष्पक्षपात दृष्टिकोण होना चाहिए। गम्भीर पाण्डित्य की आवश्यकता है। खेद है कि आधुनिक लोगोंको शास्त्र के प्रति इतनी अश्रद्धा और अवहेलना है। भारत के अधःपतन का यह भी एक कारण है। प्राचीन पठन पाठन की शैली लोप करने के लिये लोग प्रयत्न करते हैं। यह उनके अज्ञान का फल है। भारतीयों का पूर्व में मान था और अभी है, केवल ज्ञान के भण्डार के कारण, और, यदि भविष्य में रहेगा, तो फिर इसी ज्ञान के कारण।

रंग और रचना

[चि०—श्री दामोदर प्रस

[पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांति निकेतन, बंगाल]

कबीर-सम्प्रदाय को दार्शनिक और बुद्धिवादी रूप देने का श्रेय बिहार के महात्मा राम-रहस्य (राम रहेस) साहेब को प्राप्त है। बाहर तो इस बात को कम लोग जानते ही हैं, बिहार में भी इस अत्यन्त मेधावी बिहारी महात्मा को कम लोग ही जानते हैं। रामरहस्य साहेब, कबीरचौराशाखा के पंद्रहवें गुरु, महात्मा शरणदास के शिष्य थे। ये टेकारी राज (जिला गया, बिहार) के मंत्री पं० भगवान दुबे के पुत्र थे। जन्मकालीन नाम 'रामरज' था, लेकिन विरक्त होने पर 'रामरहस्य' नाम ग्रहण किया। सन् १७६२ के बाद से ये गया में ही रहने लगे। सन् १८१० ई० में इनका देहावसान हुआ था। इनकी लिखी हुई सबसे मुख्य और महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'पंचग्रंथी' है, जिसे पंथ में सम्मान-पूर्वक 'सद्ग्रंथ—पंचग्रंथी' कहा जाता है।

रामरहस्य साहेब का शास्त्रों पर बड़ा अच्छा अधिकार था। इनकी पंचग्रंथी के बाद कबीरपंथ का झुकाव अधिकाधिक शास्त्रीय होता गया है। सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को नियमबद्ध और तर्कसंगत बनाने में इनका महत्त्वपूर्ण हाथ है। इनके अनेक पद ऐसे हैं जिनमें 'कहहि कबीर' की भणिति है। सम्प्रदाय में इनका स्थान बहुत ऊँचा है और इनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकें तो बहुत दिनों तक 'कबीर-कृत' ही समझी जाती रही हैं। 'अक्षरखंड की रमैनी' इन्हीं-की लिखी हुई है।

पंचग्रंथी यद्यपि बीजक पर बाकायदा ठीक नहीं है, परन्तु बीजक के सिद्धान्तों को विवृत करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। ग्रंथकार बराबर बीजक के शब्द, साखियाँ, रमैनियाँ और अन्य

पद उद्धृत करते जाते हैं और बहुधा उनकी व्यवस्था भी बताते जाते हैं। सारा ग्रंथ पद्यबद्ध है। हाल ही में कबीरपंथी विद्वान् बाबा राघवदास ने आधुनिक हिंदी में इस ग्रंथ की एक सुंदर टीका लिखी है, जो बड़ौदा से छपकर प्रकाशित हुई है। ग्रंथ पाँच भागों में विभक्त होने के कारण पंचग्रंथी कहलाता है। प्रथम प्रकरण में पंचकोशों का बड़ा विस्तृत और ब्यौरेवार वर्णन है। दूसरे प्रकरण का नाम 'समष्टि स्वर' है, और तीसरे का 'मानुष विचार'। चौथा प्रकरण शिष्य और गुरु के प्रश्नोत्तर के रूप में है और जिज्ञासुओं के बड़े काम का है, इसमें शिष्य की ओर से किए गए प्रश्नों का गुरु ने उत्तर दिया है और संपूर्ण सिद्धांत सहज भाषा में प्रकट कर दिए हैं। पाँचवाँ ग्रंथ बहुत बड़ा है और ग्रंथ का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसका नाम 'टकसार' है। इसमें कबीरमत के मूल सिद्धांतों का वर्णन है। इसीके अन्त में अक्षरखण्ड की रमैनी है। किसी किसीने इसे पंचग्रंथी से स्वतंत्र ग्रंथ माना है।

पंचग्रंथी के सिद्धांतों को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है

कबीरपंथी लोग मानते हैं कि जीव का शुद्ध रूप चैतन्यस्वरूप है। उसने भ्रमवश अपने को अद्वैत ब्रह्म मान लिया है। 'अहं ब्रह्मास्मि', 'एकोऽहं' आदि जीव की कल्पना के सिवा और कुछ नहीं है। जीव की यही कल्पना सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म है। आनंद का जो अहंकार है अर्थात् जीव ने जो अपने को आनंदरूप मान लिया है, यही माया है। सो, वस्तुतः यह जो नाना भाँति की सृष्टि है, वह जीव की इस भ्रान्त कल्पना के कारण ही ब्रह्म से उत्पन्न है। ❀ कबीरदास ने बीजक में इसी बात को इस प्रकार कहा है कि 'एक जीव ही ने अखिल त्रिगुणात्मिका सृष्टि का विस्तार एक ॐकाररूप ब्रह्म से माना और उसी ब्रह्म को निश्चल पति मान सब जीव स्त्रीभाव धारण करके' सद्गुरु सत्संग के बिना सौभाग्यवती बने हैं। § जिस तरह सागर में अनेक तरंगों से जल स्थिरता को प्राप्त नहीं होता और जहाँ स्थिर है वहाँ बड़वाग्नि की ज्वाला शोषण करती है, उसी प्रकार जीव नाना कल्पना करके समुद्र की भाँति ब्रह्म को मानता है, परंतु वहाँ भी उसे स्थिरता नहीं मिलती, क्योंकि बड़वाग्निरूपी ब्रह्म की इच्छा (=माया) सदा जगत् की उत्पत्ति करती रहती है। इसलिये चाहे ब्रह्म की कल्पना हो या जगत् की, जीव को स्थिरता नहीं मिलती। वह इस भ्रान्त कल्पना के कारण सदा त्राहि त्राहि पुकारता रहता है। जो लोग समझते हैं कि 'अहं ब्रह्मास्मि' या जीव-ब्रह्म की एकता

❀ जीव कल्पना एकोऽहम्। सोइ कहावै सच्चिद्ब्रह्म।
आनँद अहंकार सो माया। ब्रह्म वाच मातै सब जाया।

—पंचग्रंथी। ४।५ १-२

§ एक अंड ओंकार ते सब जग भयो पसार।
कहहिं कबीर सब नारि राम की अविचल पुरुष भर्तार॥

—बीजक, रमैनी २७ की साखी।

का ज्ञान होने मात्र से शांति मिल जायगी, वे भ्रम में हैं। 'ब्रह्म' भी जीव की कल्पना है और उसको पा लेने के बाद भी जीव उतना ही दुःखी रहता है, जितना जगत् प्रपंच में फँसे रहने पर रहता है। † उसका यह भ्रम तभी दूर होता है, जब वह सद्गुरु के वचनों के द्वारा स्थिर भूमिका और निजपद का पारख हो जाय। जब तक यह नहीं हो जाता, तब तक ब्रह्मप्राप्ति हो भी जाय तो जीव निरंतर जन्म मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। वह उस कौए की भाँति हो जाता है, जो अपार समुद्र के बीच किसी जहाज पर जा बैठा हो और बार-बार उड़ाए जाने पर भी और कहीं ठौर न पाकर उसी जहाज पर लौट आता हो। ‡

जीव का शुद्ध चैतन्य रूप ही स्थिर पद या जमा पद है। जब यह जीव 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'एकोऽहं' का अहंकार ग्रहण करता है, तभी नानात्व का प्रपंच उपस्थित होता है। क्योंकि जीव अपने को ब्रह्म समझता है और ब्रह्म की सिसृक्षा या सृष्टि करने की जो इच्छा है, वही माया है। अहंतावासी जीव ही ब्रह्म है। जब वह गुरुमुख होता है, तो राम भूमिका में वास करने लगता है। § श्री विचार दास ने लिखा है कि रामरहस्य साहेब (पंचग्रंथी कार) ने 'शुद्ध चेतन (निज पद) का स्मरण 'राम भूमिका', 'आतम राम', 'रमैया', 'रमिता' आदि शब्दों से किया है और विचार (पारख) द्वारा उत्पन्न होनेवाले अपरोक्ष ज्ञान से उसे साक्षात्कार होने का सर्वत्र वर्णन किया है, जो सद्गुरु के वचनों के सर्वथा अनुकूल है। कतिपय टीकाकार अविद्योपाधिक जीव रूप को ही परमार्थ और स्थिर पद (जमा पद) बताते हैं। उनका यह सिद्धान्त सद्गुरु के वचनों के अनुकूल नहीं है।' || वस्तुतः रामरहस्य साहेब ने पंचग्रंथी में शुद्ध चेतन जो जीव का रूप है, उसी को जमापद

---

† जथा अनेकन लहरि ते जल थिरता नहिं पाय।
थीर जहाँ तहाँ बड़वा, नीरहिं सोख कराय ॥११॥
दुहुँ प्रकार थिरता नहीं, ब्रह्महु जगत् पर्यन्त
जीवहि दुःख दुसह अति त्राहि त्राहि बिलखन्त।

—पंचग्रंथी ४, चतुर्थ प्रश्न का उत्तर

‡ ब्रह्म सृष्टि या जीवरा, वायस जैसे जहाज।
थिति नहीं, वार पार नहीं, फिरिफिरि रहै जहाज ॥ २१ ॥ —पंचग्रंथी ४.५.

§ जमा एक पद बहु भया कारण हंता पाय।
हंता वासी जीयरा, सोई ब्रह्म कहाय ॥ ४५ ॥
गुरु संबंधी जीयरा हमि देहि शुभधार।
बसै भूमिका राम पर, साधुरूप सुप्रकार ॥ ४६ ॥

|| विचार०, पृ० २६

रहा है। वहां प्रपञ्चरहित चेतन जीव 'हंस' स्वरूप है और 'अहं ब्रह्म' की भ्रान्त कल्पनावाला जीव कालरूप है। काल, निरंजन और ब्रह्म एकार्थक शब्द हैं। काल का ही धर्म उपजावन और विनाशन है। शुद्ध हंस रूप स्थिर पद के साथ इसका बहुत भेद है।†

इस समूचे तत्त्ववाद को महात्मा रामरहस्य साहेब ने संक्षेप में इस प्रकार कहा है कि 'हे हंस, सन्तों की संगति में ठहरकर अपनी स्थिर भूमिका का विचार करो। नाना भाँति की कल्पित वाणियाँ औघट घाट के समान हैं, वे 'थिति वाद' यानी स्थिरभूमिका के मार्ग को नहीं बतातीं, उनके चक्कर में पड़ना गलती है। तुम जिस जिस मार्ग में जाते हो, वहीं अपने सिर पर एक कल्पित काल राजा (ब्रह्म) की कल्पना कर लेते हो और चौरासी लाख योनियों का धोखा स्वयमेव उपराज लेते हो। इन नाना योनियों में भटकते हुए यदि तुमने कभी होश भी सँभाला, तो अहं ब्रह्मास्मि के चक्कर में पड़कर स्वयं को ब्रह्म मान लिया। परन्तु, इससे तो तुम्हें स्थिरता मिलने से रही। हे जीव, यह ब्रह्म और जगत् दोनों ही धोखा हैं, दोनों ही तुम्हारे कल्पित हैं, तुम गुरु के बताए पारखवाद से विचार कर देखो कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है। यह जो ब्रह्म और ईश्वर की मान्यता है, वह वस्तुतः काल कसाई है। गुरु ने पारख द्वारा तुम्हारे स्वत पद (निज पद) का निर्णय कर दिया है। यही पद आतमराम है।‡ सो कल्पित इच्छा ही ब्रह्म है और ब्रह्म की इच्छा

---

† उपजावन औ नाशन, ये गुण काल अहन्त।
दयाल दीन उद्धारण, स्वत हंस स्थलहन्त॥ —पंचग्रन्थी, ४।६

‡ हंसा ठहर देखु थिति बाट।
काहे भटको औघट घाट।

जहाँ जहाँ जाहु तहाँ तहँ दूजा तुही काल उपराजा।
कियो कल्पना जग की आपै चौरासी को साजा।
भये अनेक दुख बहु पाये पुनि सो ब्रह्म कहावे।
ब्रह्म भये थिति कतहुँ न पाये जग इच्छा रहि जावे।
ब्रह्म जगत् दोउ धोखा नियरा कल्पित तेरो होई।
देखु दृष्टि गुरु बुद्धि परख पद तू है को यह कोई।
आतमराम स्वत पद पूरण गुरु पारख ठहराई।
कहहिं कबीर ठहर पद अपने दूजा काल कसाई॥

—पंचग्रन्थी ४।६

माया है। माया से ही त्रिदेव उत्पन्न हुए हैं और मन की कल्पना में पड़कर इन्होंने ही लाख-लाख योनियों की सृष्टि की है। इस प्रकार एक जमा (शुद्ध चैतन्य) अनेकधा प्रकट हुआ है। †

प्रतिबिंबवादी वेदान्तियों के मत से प्रतिबिंब मिथ्या नहीं होता, बल्कि ग्रीवा के ऊपर स्थित अपने मुख का दर्पण-स्थित भान होना मिथ्या होता है। यद्यपि प्रतिबिंबत्व धर्म मिथ्या होता है, तोभी स्वरूप से प्रतिबिंब मिथ्या (कल्पित) नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस मत के माननेवाले कहते हैं कि प्रतिबिंब वस्तुतः बिंब से अभिन्न है और यदि प्रतिबिंब को मिथ्या कहा जायगा, तो बिंब भी मिथ्या हो जायगा। वस्तुतः वह प्रतीति ही मिथ्या है, जो अपने ग्रीवा पर स्थित बिंब रूप मुख में प्रतिबिंबत्व रूप से प्रतीत होती है। अर्थात् मुख रूप बिंब में जो प्रतिबिंबत्व का ज्ञान होता है, वही मिथ्या है, वही भ्रम है। इसी प्रकार अज्ञानरूपी दर्पण में शुद्ध ब्रह्म का प्रतिबिंब रूप से भान होता है। वही प्रतिबिंब जीव कहलाता है और उस प्रतिबिंबरूप जीव की उपाधि अज्ञान है। जान पड़ता है, कबीरपंथियों के सिद्धान्त पर इस मत का प्रभाव है।

हंसरूप जीव किस प्रकार शुरू में भ्रान्त कल्पना का शिकार बनकर अपने को ब्रह्म समझने लगा, इस बात का जितना विस्तार कबीरपंथी ग्रंथों में पाया जाता है, उतना इस बात का विस्तार नहीं पाया जाता कि क्यों वह इस भ्रान्ति का शिकार बना। खैर, प्रथमारंभ में जब हंस देह की दृष्टि भ्रान्तिवश प्रतिबिंब पर पड़ी और वह उसीपर मोहित होकर महा आनन्दित हो रहा, उसी समय से कल्पना-द्वारा वह अपने को अपने वास्तविक स्वरूप से पृथक् समझने लगा। अपने को अपने वास्तविक स्वरूप से पृथक् समझना ही 'संधिक' अवस्था है, कल्पना में भ्रमित बने रहना ही 'काल' अवस्था है और प्रतिबिंब के साथ अपनी एकात्मता समझना ही 'झांई' अवस्था है। ये तीनों ही भ्रान्त अवस्थाएँ हैं। 'काल' वस्तुतः अविद्याग्रस्त जीव की भ्रान्त कल्पना है, 'संधिक' माया की और 'झांई' ब्रह्म की कल्पना की अवस्था है। इन तीनों भ्रान्त दशाओं से एकमात्र गुरु की वाणी ही उद्धार कर सकती है। इन समस्त असार भ्रान्तियों का निवारण उस 'सार'

---

† कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा। ब्रह्म की इच्छा माया गावा।
तातें त्रिगुण भये मन भाई। मन माने चौरासी जाई।
कल्पित सृष्टि भयो विस्तारा। परे जीव सब ब्रह्म की धारा।
दुखित सुखित तेहि पद अनुरागी। जगै न मोह जनित बुधि लागी॥
सुख मानै चौरासी खानी। भुगत कष्ट न परै पहिचानी।
ऐसहि बहुत दिवस गय बीती। एकै जमा अनेकन रीती।

—पंचग्रं० पृ० ४१७

शब्द से ही हो सकता है। इसीसे जीव अपने विशुद्ध स्वरूप को पहचान सकता है, नहीं तो, यह भ्रान्ति मिटनेवाली नहीं है।*

सब, संसार में जितनी भी व्यक्त वाणियाँ (अनवनि वानी) हैं, वे सब अक्षरों का समवाय रूप ही हैं। ये वाणियाँ चार भागों में विभक्त हो जाती हैं—काल, संधि, झाईं और सार। अविद्याग्रस्त जीव नाना प्रकार की उपासना, पूजा, माहात्म्य, जप, तप, तीर्थ, व्रत आदि से मुक्त होने की अभिलाषा रखता है। वेदों में और पुराणों में ये ही विधियाँ बताई गई हैं। ये सब 'काल' अवस्था की सूचक हैं। अतएव ये सारी वाणियाँ 'काल' कहाती हैं। ये भाले की भाँति लोक-चित्त में धँसी हुई हैं। इनसे उद्धार पाना बड़ा कठिन है।† इससे कुछ सूक्ष्म, किन्तु इतनी ही भ्रान्त कल्पना वह है, जहाँ जीव 'सोऽहं' आदि का जप करता है और माया मंत्रादि के चक्कर में पड़ा रहता है। समस्त तांत्रिक प्रक्रियाओं, मंत्रवाद और अतिप्राकृत सिद्धियों को बतानेवाले ग्रंथ इसी श्रेणी में आते हैं। ये मायामूलक हैं और इनको 'संधिक' अक्षर कहते हैं।‡ इनसे भी सूक्ष्म, परन्तु फिर भी इतनी ही भ्रान्तियुक्त कल्पना वह है, जहाँ मनुष्य अपने को उस अद्वैत सत्ता के साथ (जो वस्तुतः उसके मन द्वारा रचित अपना ही प्रतिबिंब या झाईं है) अपने को अभिन्न समझता है, जिसे 'निर्गुण' 'अलख', 'अकह', 'अवाङमनसगोचर', 'विधि निषेध से परे' आदि कहा जाता है। इस सूक्ष्मतम प्रकार के प्रतिपादक वचन झाईं शब्द हैं।§ सो, इन तीन प्रकार के अक्षरों के चक्कर में सारा संसार पड़ा है। इस अक्षरजाल से गुरु ही छुड़ा सकते हैं, गुरु वाणी ही 'सार' वाणी है। 'सार शब्द' निर्णायक वचन को कहते हैं, जिससे जीव सत्य और मिथ्या के स्वरूप को समझ सकता है—'सार शब्द निरनय को नामा। जाते होय जीव को कामा'। इसी

---

* पहिले झाईं झाकते, पैठा संधिक काल।
पुनि झाईं की झाईं रही, बिन गुरु सके को टाल॥
—अक्षरखंड की रमैनी, साखी ३

† अक्षर वेद पुरान बखान। धर्म कर्म तारथ अनुमान।
अक्षर पूजा सेवा जाप। और महातम जेते थाप॥
यही कहावत अक्षर कौल। जाय नहीं उर होय के भाल॥
—अक्षर० की रमैनी ३

‡ सोह सोह आतमराम। माया मंत्रादिक सब काम।
यह सब अक्षर संधिक कहे। जेहि निसिवासर जीव रहे।
—वही रमैनी ३

§ निर्गुण अलख अकह निर्वान। मन बुधि इन्द्री जाई न जान।
विधि निषेध जहाँ बनत न दोस। कहहि कबीर पद झाईं सोय॥

लिये बीजक के ११४ वें शब्द में बताया गया है कि सार शब्द से ही जीव का उद्धार हो सकता है, क्योंकि काल (यम) ने दशों दिशा रुद्ध कर रखा है। जीव भ्रान्तिवश उस मिथ्या सृष्टि के चक्कर में पड़ गया है, जिसका मूल ब्रह्म है, शाखा निरंजन है और त्रिदेव उपशाखा हैं और यह संसार पत्र हैं; जिसमें ब्रह्मा ने वेद, शिव ने योग और विष्णु ने दया (भक्ति) का जाल पसारा है; जिसमें काल समस्त जीवों वंइसी में फँसा रहा है। केवल कबीर के सार शब्द ही जीव को इस जाल से बचा सकते हैं। *

स्वयं कबीरदास की वाणी में चार भेद बताए गए हैं—जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख। जहाँ कहीं भी सम्प्रदाय-मान्य सिद्धान्तों से कबीर की मूलवाणी का विरोध दिखता है, वहीं उसे या तो 'जीवमुख' कह दिया जाता है या मायामुख या ब्रह्ममुख। इस प्रकार स्वयं कबीर की वाणियाँ भी अक्षरजाल के फंदे से मुक्त नहीं हैं। बीजक की अनेक वाणियाँ जीवमुख मायामुख और ब्रह्ममुख हैं और इसलिये सिद्धान्तकोटि में आने के अयोग्य हैं। भक्तिमूलक वाणियाँ साधारणतः जीवमुख कही गई हैं, क्योंकि उनमें उपासना की प्रवृत्ति है। बताया गया है कि कबीर की भणितियों का भी विशेष तात्पर्य है। बीजक में ये भणितियाँ सात प्रकार से आई हैं: §

१. 'हंस कबीर'—यह मुक्तात्मा का सूचक है;
२. 'कहहिं कबीर'—स्वोक्ति (गुरुवचन) का सूचक है;

---

* सार शब्द से बांचिहौं मानहु इतबारा हो।
आदि पुरुष एक वृच्छ है निरंजन डारा हो।
तिरि देवा साखा भए पत्ता ससारा हो।
ब्रह्मा वेद सही कियो सिव योग पसारा हो।
विष्णु दया उतपति किया परले व्यवहारा हो।
तीन लोक दसहूँ दिसा जम रोकिन द्वारा हो।
कीर भये सब जीयरा लिये विष के चारा हो।
जोतिसरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा हो।
करम की बंसी लाय के पकर्‌यो जग सारा हो।
अमल मिटावौं तासु का पठवौं भव पारा हो।
कहहिं कबीर निरभय करौं परखो टकसारा हो।

—बीजक ११४ वाँ शब्द

§ विचार, पृ० ४०-४१

३ 'कहैं कबीर' }
४ 'कबीर' } —ये दोनों अन्योक्ति के सूचक हैं अर्थात् इनसे औरों के वचनों का अनुवाद सूचित होता है,

५ 'दास कबीर'—लोकविशेषनिवासी ईश्वर के उपासकों का सूचक है,

६ 'कबीरा' }
७ 'कबीरन' } —कर्मी अज्ञानी तथा वंचक गुरुओं के सूचक हैं।

यह लक्ष्य करने की बात है कि ये संकेत बीजक के लिये ही हैं या फिर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की स्थापना करनेवाले ग्रन्थों के लिये हैं। पंचग्रंथी में और अक्षरखंड की रमैनी में रामरहस्य साहेब ने बार-बार 'कहहिं कबीर' की भणिति का प्रयोग किया है। इस प्रकार 'कहहिं कबीर' की भणिति कोई भी अपने सद्गुरु के वचन कहते समय व्यवहार कर सकता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि वह पद स्वयं कबीर साहब के ही रचित हों। ऊपर जिस ११४ वें शब्द को उद्धृत किया गया है, वह विश्व में नहीं है और उसके वक्तव्य विषय को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि वह कबीरदास का अपना कहा हुआ नहीं होगा। फिर भी उसमें 'कहहिं कबीर' की भणिति है।

ग्रंथ के सिद्धान्तों का परिचय ऊपर दिया गया है। अब यहाँ दो एक उदाहरण ऐसे दिए जा रहे हैं, जिनसे इसकी शैली का पता चल जाय।

(१)

शिष्यप्रश्न

दोहा—हंस स्वतः पद धीर जो, काहे मनुष्यस्वरूप।
सो प्रसंग समुझाय के कहहु सद्गुरु भूप॥

गुरु का उत्तर

हे शिष्य सुनहु प्रसंग शुभ, भाषौं यथा प्रमान।
स्वतः अस्ति आनंद पद, जैसे भयो अयान।
धीर आदि सब तत्वता, याके ये सब पास।
प्रतिबिंबित झाईं लखी, अस्ति कियो तहाँ वास।
करत वास तहा अस्ति के, हता भई प्रकास।
दर्पण देखै प्राणि जिमि, जथा अहंतामास।
सोई ब्रह्माकार भौ, ब्रह्म कल्पि मन माया।
माया मन ते सब भयो, कल्पि कल्पि बहु पाया।

हे शिष्य हंसा मनुष्य पद, रूप भरमते जान।
अस्ति नास्ति मिलत ही, भयो सृष्टि निर्मान।
कल्पित भाईं मां वलो, भाईं सोई ब्रह्म।
कल्पित सोई कल्पना, जगत् को भयो अरंभ।
हे शिष्य हंसा मनुष्यतन, ऐसे, लह्यो तु जान।
जैसे मद्यपी मदवशि, कियो आपनो हान।

(२)

श्वासा गरजि घटा होय आया। पूरण जल अस्थूलक पाया।
सो जल अण्ड अकार प्रमाना। निरगुन पांचों तत्त्व समाना।
फोञ्चा मध्ये कमलदल साजा। ताहि कमल एकरूप उपराजा।
अंड फूटि अस्थूल उपाना। चारि अवस्था में प्रकटाना।
जैसे श्वासालिंगन भयऊ। वैसे हि पिण्डजाल रचि दयऊ।
नाड़ी तीन श्वास में राजै। तैसे हि तीन पिण्ड में गाजै।
वात, पित, कफ तिहु में धावै। त्रिविध आपनी राज जनावै।
पाँच तत्त्व ले पिण्ड प्रकासा। पाँचों पाँच अंस सुखवासा।
आयु हरिहर ब्रह्मा माया। त्रिगुण शक्ति बनी सो काया।
पिण्ड शक्ति को अंश बताई। रूप कला होय आपु समाई।
पन सोई चार अवस्था कीन्हा। चारों लक्ष्य चहूँ वीध दीन्हा।
बालापन तुर्या के रूपा। चेरिक भरमिक शून्य स्वरूपा।
चंचल युवा श्वास अधिकारी। पृथिवी विरधाई संचारी।
जन्म शक्ति सो आदि जनावै। मरण शक्ति सों ब्रह्म कहावै।

तीन अंश महा शून्य के, अज हरि हर वपुधार।
माया के गुण तीन सो, नाटी पुरुष विचार।
त्रिगुण फांस बहु भाति के, मध्य किया परकास।
आदि रूप माया भई, अत आयु से नाश।

पंचग्रंथी से पूर्व का कोई ऐसा विवेचनात्मक कबीरपंथी ग्रंथ नहीं है। इसीलिये साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को लोकप्रिय और शास्त्रीय बनाने में इस ग्रंथ का ही प्रधान हाथ जान पड़ता है। परवर्ती साहित्य में सर्वत्र इस ग्रंथ का प्रभाव है। इस ग्रंथ से ही कबीर-संप्रदाय में तात्त्विक विवेचना का आरंभ समझना चाहिए। इसीलिए इस पुस्तक का बड़ा महत्त्व है। सम्प्रदाय में बीजक के बाद इतना सर्वमान्य ग्रंथ दूसरा नहीं है।
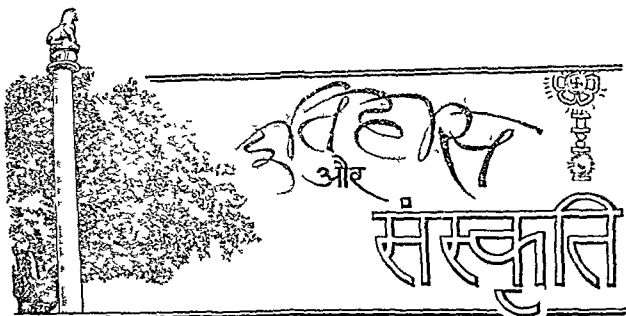
[प्रो॰ जगन्नाथप्रसाद मिश्र, मिथिला कॉलेज, दरभंगा]

अतीत काल की घटनाओं को लेकर ही इतिहास की रचना की जाती है और इन घटनाओं का सबंध मनुष्य और उसके समाज से होता है। इसलिये घटनाओं का वर्णन इस रूप में होना चाहिए ताकि हमें तत्कालीन मानव-समाज के विकास और प्रगति का यथार्थ परिचय मिले। राजाओं और महाराजाओं की कीर्ति कहानी, उनकी युद्ध-यात्रा, उनके शासन-काल की घटनाओं के तारीफ और विवरण, उनके दरबार की तड़क-भड़क और उनके विलासमय जीवन का रगीनियाँ, विभिन्न राज्यों के उत्थान पतन, जय पराजय, युद्ध, विग्रह और सन्धि ये सब बातें इतिहास के अन्तर्गत आती हैं अवश्य, किन्तु इनने से ही किसी जाति का इतिहास पूरा नहीं कहा जा सकता। ये सब घटनाएँ तो इतिहास के ककालमात्र हैं। इन सब घटनाओं के अन्तर में इतिहास की जो प्रच्छन्न प्राणधारा प्रवाहित होती रहती है और जिससे जाति या समाज की प्रगति का ठीक-ठीक परिचय मिलता है, वही वस्तुत जाति का इतिहास है। इसलिये आज इतिहास का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है जिसमें हम जातीय जीवन के सर्वाङ्गीण विकास का, उसकी सभ्यता एव सस्कृति का मूलसूत्र ढूँढना चाहते हैं। किसी जाति के इतिहास को पढ़कर यदि हमें उस जाति की सभ्यता एव संस्कृति का ठीक-ठीक परिचय नहीं मिला तो वह आधुनिक अर्थ में इतिहास नहीं कहा जा सकता। जिस काल का इतिहास लिखा गया है, उस काल के मानव-समाज का सपूर्ण जीवन—बहिरग और अन्तरग—उसमें प्रतिबिंबित होना चाहिए,

तभी उसकी सार्थकता है। अन्यथा सन् तारीख और घटनाओं के शुष्क-विवरण इतिहास के कंकाल में प्राण नहीं फूँक सकते और न उन्हें सरस बना सकते हैं।

सभ्यता और संस्कृति ये दोनों शब्द प्रायः समानार्थवाची होने पर भी मौलिक रूप में भिन्न-भिन्न अर्थ का बोध कराते हैं। किसी जाति की सभ्यता का अर्थ होता है, उसके जीवन के बाह्य क्षेत्रों में—अर्थात् राजनीति, अर्थनीति, सामाजिक आचार-व्यवहार, रीतिनीति, जीवनयात्रा-प्रणाली, शासन-व्यवस्था आदि में कहाँ तक उन्नति की है। थोड़े शब्दों में, समाज की संपूर्ण बाह्य व्यवस्थाओं का परिचय सभ्यता द्वारा मिलता है। किन्तु, इस सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव जिस रूप में हमारे जीवन पर पड़ता है और उससे हमारे जीवन का नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर कहाँ तक ऊँचा उठता है, इसका परिचय हमें जाति की संस्कृति में मिलता है। संस्कृति का प्रकाश जाति के सौंदर्य-बोध, उसके साहित्य, धर्म, दर्शन और कला में होता है। सभ्यता चंचल है, संस्कृति स्थायी। सभ्यता प्रगतिशील होती है, उसमें पीछे की ओर नहीं मुड़ा जा सकता। किन्तु, संस्कृति के साथ यह बात नहीं है। संस्कृति की धारा विकासोन्मुखी न होकर पश्चाद्गामी भी हो सकती है। एक सभ्य जाति दूसरी सभ्य जाति की सभ्यता का अनुकरण कर सकती है; किन्तु संस्कृति का अनुकरण इस रूप में नहीं किया जा सकता। एक जाति यदि दूसरी जाति की संस्कृति का अनुकरण करे तो समझना चाहिए कि उस जाति की प्राणशक्ति क्षीण हो चुकी है और उसकी मृत्यु सन्निकट है। जो जाति सब कुछ खोकर भी अपनी संस्कृति को बचाये रहती है और उस संस्कृति के लिए उसके हृदय में गर्व होता है, वह एक न एक दिन अवश्य उससे प्रेरणा प्राप्त करके अपने नष्ट गौरव को पुनः उपलब्ध कर सकती है। जाति की संस्कृति में ही तो उसके अतीत के आदर्श और भविष्य की आशा छिपी रहती है, और ये आदर्श ही तो अधःपतित जाति को समुन्नत जीवन की ओर अग्रसर होने के लिए अनुप्राणित करते हैं। इसलिए सभ्यता और संस्कृति को यदि एक दूसरे का पूरक मान लें तो यह कहा जा सकता है कि सभ्यतारूपी वृक्ष का सुन्दर फूल संस्कृति है। इस संस्कृति में ही जीवन का सौन्दर्य्यमय प्रकाश देखने को मिलता है। मनुष्य में जो सृजनी शक्ति होती है, उसका परिचय भी संस्कृति के श्रेष्ठ दानों में ही मिलता है। इस सृजनी शक्ति के कारण ही मनुष्य, मनुष्य है। अन्य प्राणियों में इस शक्ति का अभाव है। संसार के और सब प्राणी प्रकृति के संपूर्ण वशवर्त्ती होकर जीवन धारण करते हैं। किन्तु, मनुष्य ने अपनी विद्याबुद्धि के बल पर प्रकृति के रहस्यों को आयत्त करके नूतन की सृष्टि की है। प्रकृति के साथ उसका यह संग्राम आदि काल से ही चला आता है और इस संग्राम में वह बराबर विजयी हुआ है।

भारतवर्ष के ऐतिहासिक युग का आरम्भ यदि हम महेंजोदारो काल से मान लें तो उस समय से लेकर आज तक इन पाँच हजार वर्षों में हमें भारतीय संस्कृति की एक चिर प्रवाहमान् धारा मिलती है। इस धारा के रूप में अनेक परिवर्त्तन हुए हैं सही, किन्तु, इसका स्रोत कभी शुष्क नहीं

हुआ। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जो अति पुरातन काल से विभिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का धातृगृह एवं मिलनभूमि रहा है। समन्वय साधन के रूप में ही इसने समस्या का समाधान किया है, संघर्ष के रूप में नहीं। राजनीतिक दृष्टि से समय-समय पर उसके भाग्य में जो परिवर्त्तन एवं विपर्य्यय हुए, उन सबके बीच भी उसकी यह समन्वय साधना, उसका यह सामंजस्य विधान बराबर चलता रहा। भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले तथा भिन्न-भिन्न आचार-विचार, रीति-नीति और धर्म के माननेवाले इस देश में आये, यहाँ के निवासियों के साथ मिलकर रहे, और सबने अपनी अपनी संस्कृति की विशेषताओं की रक्षा की। एक संस्कृति के साथ दूसरी संस्कृति का न तो कभी संघर्ष हुआ और न कभी एक ने दूसरे को विनष्ट करने का प्रयास किया। जहाँ और जब कभी संघर्ष की संभावना हुई, वहाँ समन्वय-द्वारा ही समाधान की चेष्टा की गई है।

भारतीय संस्कृति की इस समन्वयमूलक साधना का एक विशेष कारण यह रहा है कि इसने संस्कृति के आध्यात्मिक स्वरूप को ही अधिक महत्त्व दिया है। इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीय संस्कृति में जीवन और जगत् की उपेक्षा की गयी है और 'इह लोक' की अपेक्षा परलोक को ही एकमात्र काम्य बताया गया है। इस प्रकार की भ्रान्त धारणा विदेशी लेखकों ने हमारे बीच फैलाई है और हम में से बहुतों ने आँख मूँदकर उसे ग्रहण कर लिया है। सच तो यह है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की गई और भारतीय दर्शन एवं तत्त्वचिन्तन में निराशावाद के लिए कभी स्थान ही नहीं रहा। जीवन का ऐसा कोई भी पहलू नहीं जिस पर हिन्दू साहित्य और हिन्दू-संस्कृति में विचार नहीं किया गया हो। नर-नारी के यौन सम्बन्ध से लेकर मुक्ति तक का समावेश उसमें हो जाता है। इसलिए भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक स्वरूप की जब हम चर्चा करते हैं तो इसका वास्तविक अर्थ यह होता है कि इसमें मनुष्य के आत्मिक रूप पर विशेष जोर दिया गया है। मनुष्य की आत्मा का संधान ही इस संस्कृति का प्रकृत लक्ष्य रहा है। मानव मन और मानवात्मा की स्वतंत्रता एवं पवित्रता को ही इसने सब संस्कृतियों का मूलाधार माना है और इस दृष्टि को लेकर ही इसने विभिन्न संस्कृतियों के मौलिक रूप में अभिन्नता देखी है। इस प्रकार भिन्नता में अभिन्नता, अनेकत्व में एकत्व देखने की यह जो दृष्टि है, इस दृष्टि ने ही भारतीय संस्कृति के समन्वय मूलक रूप को परिपुष्ट किया है और उसे बल प्रदान किया है।

इतिहास से हमें पता चलता है कि समय-समय पर इस देश में ऐसे चक्रवर्त्ती सम्राट् हुए जिन्होंने एक छत्र के नीचे समस्त देश को राजनीति के सूत्र में ग्रथित करने की कोशिश की; और उनकी यह कोशिश अनेक बार सफल भी हुई। किन्तु, इस देश की अखण्ड राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति जिस रूप में यहाँ की संस्कृति में हुई, उस रूप में राजनीति में कभी नहीं हुई। इसलिये यहाँ की राष्ट्रीयता को हम मूलत सांस्कृतिक राष्ट्रीयता ही कह सकते हैं। यही कारण है कि जिस समय राजनीतिक दृष्टि से

संपूर्ण भारत की राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हो रही थी, उस समय भी उसकी सांस्कृतिक एकता कायम रही और इस एकता का उद्‌बोधन देशवासियों को यहाँ के धर्म, दर्शन, तीर्थस्थान, नद, नदी, पर्वत और धर्मग्रंथों द्वारा होता रहा। और यह संस्कृति इतनी उदार और व्यापक थी कि अनेक राजनीतिक परिवर्त्तन और उथल-पुथल के बीच भी इसकी धारा अक्षुण्ण बनी रही।

आठवीं शताब्दी से ही भारतवर्ष पर विदेशियों का आक्रमण शुरू हो गया था। हूण, सीथियन, तुर्क, मंगोल आदि कितनी ही विदेशी जातियों का इस देश में आगमन हुआ और उनके साथ देशवासियों का संपर्क स्थापित हुआ। विदेशी संस्कृतियों का प्रभाव भारतीय संस्कृति के ऊपर पड़ा अवश्य, किन्तु, यह प्रभाव उसके लिये अनिष्टकारी सिद्ध नहीं हुआ। अपनी सहज विशेषता के कारण भारतीय संस्कृति ने विदेशी प्रभावों को अपने अंदर इस तरह पचा लिया—आत्मसात् कर लिया कि इससे उसके मौलिक स्वरूप में, उसके प्राणधर्म में कोई अन्तर नहीं पड़ा। सबसे रस-ग्रहण करके वह और भी परिपुष्ट हो गया। चूँकि भारतीय संस्कृति का मूल लक्ष्य मानवात्मा का सन्धान था और इस लक्ष्य को ही वह समस्त मानवीय साधनाओं का आधार मानता था, इसलिये किसी भी संस्कृति के साथ उसका विरोध या संघर्ष नहीं हो सकता था। जिस प्रकार एक ही नदी से निकली हुई विभिन्न धाराएँ अपने जलप्रवाह में एक समान प्राणदायक तत्त्व धारण करती हैं, उसी प्रकार यदि समस्त संस्कृतियों का मूलाधार एक ही तत्त्व होगा तो फिर उस मूलाधाररूपी उससे निकली हुई विभिन्न धाराओं में भेद और संघर्ष क्यों कर हो सकता है ?

भारतीय संस्कृति का मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्ष इतना प्रबल रहा है कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार जिन सब देशों में हुआ, वहाँ न तो इसके लिये राज्य-जय की आवश्यकता हुई और न शोषण या परस्वापहरण की। एशिया के विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति की दिग्विजय की कहानी हम इतिहास ग्रन्थों में पढ़ते हैं। एक ओर सुदूर पूर्व और दूसरी ओर अफगानिस्तान और मध्य एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रचार एवं विस्तार हुआ। अनेक जातियाँ इसके संपर्क में आईं और उनकी रीतिनीति, आचार-व्यवहार, धर्म-अनुष्ठान, साहित्य, दर्शन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु, यह प्रभाव उनके लिये विनाशकारी सिद्ध न होकर मंगलजनक ही सिद्ध हुआ। भारतीय अध्यात्मसाधना, भारतीय साहित्य और भारतीय दर्शन ने चीन-जैसे प्राचीन सुसभ्य देश की संस्कृति में भी एक अपूर्व परिवर्त्तन ला दिया। भारतीय संस्कृति के अवदानों से चीन की संस्कृति और भी विकसित एवं समृद्ध हुई। भारतीय उच्चादर्शों की प्रेरणा से अनुप्राणित होकर उस समय की अनेक प्राचीन जातियों ने अपने जीवन को समुन्नत बनाया तथा मानसिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष लाभ किया। भारतीय संस्कृति किसी भी रूप में इनके स्वाभाविक विकास के मार्ग में बाधक नहीं हुई। उनके जातिगत एवं धर्मगत वैशिष्ट्य पर इसने आघात नहीं पहुँचाया, उनके स्वाभिमान को क्षुण्ण नहीं किया। भारतीय

भी सजीव एवं सबल बनी हुई है। समन्वय के मूलमंत्र का ग्रहण करने के कारण ही भारतीय संस्कृति की प्राणधारा कभी स्थविर होने नहीं पाई, उसके उद्गम का स्रोत कभी शुष्क होने नहीं पाया।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की यह प्राणशक्ति आज भी फल्गुधारा की तरह भारतीय जीवन के सभी स्तरों में प्रवाहित हो रही है। भारतीय समाज व्यवस्था के मूल में आज भी सांस्कृतिक एकता के तत्त्व काम कर रहे हैं। राजनीतिक वैर-विरोध और आर्थिक स्वार्थ वैषम्य के कारण वे तत्त्व आज सक्रिय नहीं हो रहे हैं। उन तत्त्वों को सक्रिय और सचेत करने के लिए यह आवश्यक है कि स्वाधीन हिन्दुस्तान के दोनों उपखंडों में राजनीतिक आन्दोलन के समान ही सांस्कृतिक आन्दोलन को भी महत्त्व दिया जाय। सांस्कृतिक आन्दोलन के आधार पर ही भारतवर्ष के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच वास्तविक एकता की नींव सुदृढ की जा सकती है। क्योंकि राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों को लेकर विभिन्न सम्प्रदायों के बीच मतभेद हो सकते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है, किंतु, इन सब विषयों से ऊपर उठकर जब मनुष्य का मन कला, अध्यात्म, दर्शन एवं साहित्य के क्षेत्र में विचरण करने लगता है, उस समय वह कुछ समय के लिये ही सही, इन सारे मतभेदों को भूल जाता है और महत् आदर्शों की प्रेरणा उसके दृष्टिकोण को व्यापक, उसकी अनुभूति को गंभीर और उसके हृदय को विशाल बना देती है। मानव-जीवन केवल स्थूल भौतिक आधार को लेकर ही नहीं चलता। उसका एक महत् एवं उदात्त पक्ष भी होता है, जिसे हम आदर्श कहते हैं। प्रेम, सौन्दर्य, ज्ञान, सहानुभूति, उदारता, करुणा, क्षमा, त्याग आदि कोरे शब्द नहीं हैं। इनका जीवन में वस्तुतः अस्तित्व पाया जाता है और इन आदर्शों के लिए मनुष्य जी सकता है और मर सकता है। कला, सौन्दर्योपासना, काव्यानन्द, संगीत, चित्रकला, धर्म, दर्शन इन सबके द्वारा ही तो हमारे मन में महत् आदर्शों की सृष्टि होती है और उन आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए हम बड़ा से बड़ा त्याग करने को तैयार हो जाते हैं। मानव जीवन की प्रधान साधनाएँ भी तो यही हैं और इन साधनाओं के क्षेत्र में क्या मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद हो सकता है?

ऋग्वेद की कवयित्रियाँ
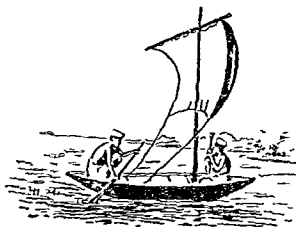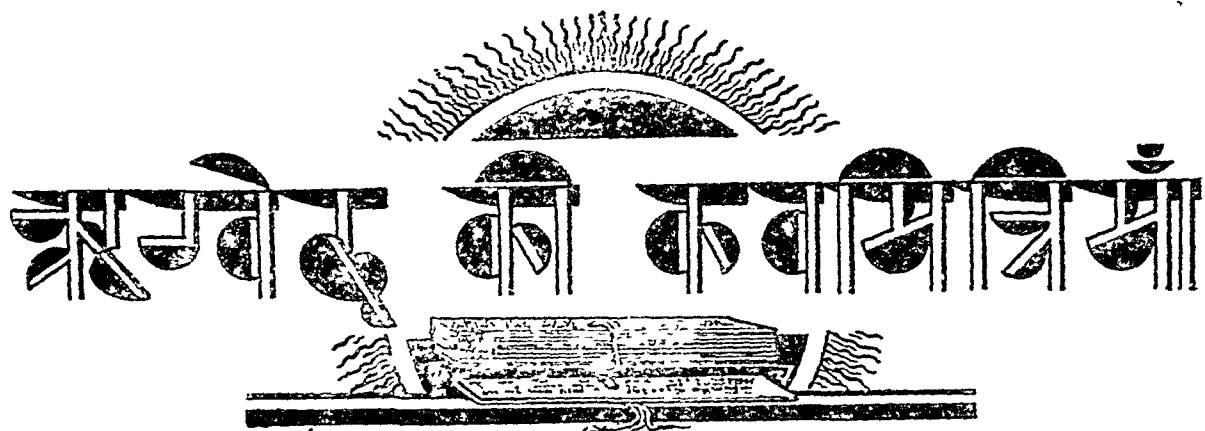
[प्रोफेसर श्रीपरमेश्वरप्रसाद शर्मा, सेन्टकोलम्बस कॉलेज, हजारीबाग]

प्राचीन काल से ही भारतीय भावनाएँ काव्य-माध्यम द्वारा व्यक्त होती आई हैं। भारतीय ललनाएँ तो स्वभाव से ही कलाविद् होती हैं, विशेषतः संगीतकला में तो ये अद्वितीय उतरती ही हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास के प्रत्येक युग में हमारी महिलाओं ने काव्य-साहित्य में प्रचुर योगदान दिया है। वैदिक मंत्र-द्रष्ट्रियों के रूप में, प्राकृत-साहित्य की मधुर एवं ललित गाथा की गायिकाओं के रूप में, पालीभाषा की गाथा-वन्दना की प्रार्थिनी के वेश में, पुनश्च संस्कृत-साहित्य के सुललित शृंगारिक श्लोक की रचयित्री के रूप में अथवा हिन्दी-साहित्य के भक्तिपूर्ण भजन या शृंगारिक गीतों की गायिका के रूप में—भारतीय साहित्य के विकाश की सब भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भारतीय महिलाएँ अपना भाग योग्यतापूर्वक सम्पन्न करती देखी जाती हैं। वैदिक ऋषि घोषा के काल से, जिसने वेद के प्रारम्भकाल में ही अपना कृतज्ञता पूर्ण हार्दिक उद्गार स्वर्वैद्य अश्विनी-कुमार के समक्ष उँड़ेल डाला था, जिनकी चिकित्सा से उसे अपना प्रिय पति प्राप्त हुआ था; हाँ, उस काल से ही लेकर राधाप्रिया, अनसूया, कमलाबाई बापट, सरोजिनी नायडू तथा महादेवी वर्मा तक हम लगातार भारतीय स्त्री-कवियों की अक्षुण्ण पंक्ति अभंग रूप से चली आती हुई पाते हैं, जो पुरुष-कवियों के साथ कंधे-से-कंधे मिलाकर चलने में किसी तरह पीछे पाँव नहीं रखतीं।

हाँ, तो अब हम भारतीय आदिम काव्य—नहीं-नहीं, मानवजाति के प्राचीनतम काव्य ऋग्वेद में ही अपने को सीमित रखना चाहते हैं। ऋग्वेदिक साहित्य के प्राचीन ग्रंथ, शौनक की बृहद्देवता तथा कतिपय अनुक्रमणियों में वैदिक सूक्तों के रचयिताओं के विषय में भारतीय आम्नाय अर्थात् परम्परा अच्छी तरह सुरक्षित है। जहाँ-तहाँ सूक्तों में भी मंत्र-द्रष्टाओं के नाम आकस्मिक

रूप में उपलब्ध मिलते हैं, जिससे न इन परम्पराओं की सत्यता का पूर्णरूप से अनुमोदन हो जाता है। यद्यपि कभी-कभी ये परम्परायें संदिग्ध भी मालूम पड़तीं, परन्तु अधिकांश विश्वसनीय हैं। साथ-साथ जब हम यह विचारते कि हमारे पूर्वजों ने इस प्राचीनतम मानव-काव्य को विशुद्ध—बिलकुल विशुद्ध—बनाये रखने के लिए बेहद प्रयत्न किया है, इतना अधिक कि वैदिक मंत्रों में एक भी अक्षर उलट-फेर नहीं। उनका, एक भी मात्रा घटाई-बढ़ाई नहीं जा सकती।

अनुक्रमणी और बृहद्देवता में तो २७ 'ब्रह्मवादिनी' स्त्रियों की तालिका मिलती है, परन्तु इनमें बहुतों का चरित्र निरा पौराणिक ही प्रतीत होता है। अभी हमें सिर्फ आठ मानवी नारियों के विषय में ही देखना है, जिन्होंने बृहद्देवता के कथनानुसार देवताओं की स्तुति की है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि बाइबिल या कुरान-शरीफ में हमें एक भी पंक्ति स्त्री की रची हुई नहीं मिलती।

(१) घोषा (२) गोधा (३) विश्ववारा (४) अपाला (५) अगस्त्य की बहन (६) लोपामुद्रा (७) शाश्वती (८) रोमशा—इन आठों को हम यथार्थतः कवयित्री मानते हैं।

घोषा—ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३९ वाँ और ४० वाँ सूक्त—पूरे का पूरा—इनकी रचना है। यद्यपि यह वैदिक ऋषि कक्षीवत् की कन्या थी, तथापि श्वेतकुष्ठ से पीड़ित होने के कारण इससे कोई पुरुष विवाह नहीं करता था। अपने पिता के ही घर में रहकर यह बेचारी कुमारी अवस्था में ही बूढ़ी हो चली थी, जबकि स्वर्वैद्य अश्विनीकुमार ने इसकी स्तुति से प्रसन्न हो इसे चंगा कर दिया। कृतज्ञतावश हर्षातिरेक से यह उनके प्रति अन्तःकरण से गा उठती.—

"हे नासत्यौ! पिता के घर में बूढ़ी हो जानेवाली कुमारी नारी के आप भाग्यविधाता हैं। आप दीन-दुखियों और अपाहिजों के रक्षक हैं।" (ऋ० १०-३९-४) घोषा के पिता कक्षीवत् ने भी अश्विनीकुमार के प्रति अपनी कृतज्ञता बारबार प्रकट की है—"मैं, उशिज का पुत्र, आपकी उसी तरह स्तुति करता, जिस तरह मेरी बेटी घोषा ने श्वेतकुष्ठ से नीरोग होने पर की (ऋ० १ १२२ ५)। "हे अश्विनौ! आपने उस घोषा को पति दिया, जो कुमारी ही रहकर अपने पिता के घर में बूढ़ी हो चली थी (ऋ० १-११७ ७)।" घोषा का पुत्र सुहस्त्ये ने भी अपनी माँ की ही तरह अश्विनीकुमार की स्तुति की है।

(२) गोधा—यह दूसरी ब्रह्मवादिनी है। इसकी रचना अत्यल्प है, सिर्फ डेढ़ ऋचा ही। ऋग्वेद १० १३४ की षष्ठ ऋचा का आधा भाग और सप्तम का सम्पूर्ण।

(३) विश्ववारा—यह अत्रिकुल की ब्रह्मवादिनी है। सम्पूर्ण पञ्चम मण्डल इसी कुल की रचना है। यह ब्रह्मवादिनी विवाहिता ज्ञात होती है। विवाहसूक्त से यह दम्पती के बीच पारस्परिक एकता के लिए प्रार्थना करती है। हम यहाँ उसके अपने वचन उद्धृत करते हैं, जब वह सुखमय दाम्पत्य

जीवन के लिए प्रार्थना करती है; और प्रार्थना करती है धन के लिए, जिससे वह अपनी गृहस्थी अच्छी तरह चला सके और साथ ही साथ अपने शत्रुओं के दुष्ट कारनामों को दबा सकेः—"हे अग्नि! आप हमारे शत्रुओं का दमन करें, जिससे हमारी श्रीवृद्धि हो; उत्तम-उत्तम सम्पदाएँ हमें दें। हे अग्नि! पति-पत्नी के विवाहित जीवन को पारस्परिक मेल और संयम-द्वारा सर्वाङ्गपूर्ण कीजिए, जो हमारे शत्रु हों उनकी शक्ति तथा बल का संहार कीजिए।" (ऋ० ५-२८-३)। यह सुन्दर मंत्र, जिसमें सुभावनाएँ खचित हैं, अभी भी हमारे विवाह संस्कार में पढ़ा जाता है। विश्ववारा की रचना सिर्फ एक ही सूक्त है, जिसमें छौ ही मंत्र हैं (ऋ० ५-२८); पर इसी छोटी रचना में इसका नारी-जीवन पूर्णतया व्यक्त हो गया है। समाज में स्त्रियों का कितना ऊँचा स्थान था, इसका पता भी इसी सूक्त से लगता है। दाम्पत्य जीवन के ऐक्य और प्रेम के वातावरण के लिए अग्निदेव से प्रार्थना कर विश्ववारा अपने नारी-हृदय की खासी झलक दिखलाती है।

(४) अपाला—यह महर्षि अत्रि की पुत्री थी। चर्म-रोग से पीड़ित होने के कारण उसके शरीर पर रोम नहीं उगते थे। अतः इसका पति इससे घृणा करता था, जिससे तंग आकर यह अपने पिता के घर चली आई। यहाँ इसने इन्द्र की प्रार्थना की, जिनकी कृपा से इसकी मनोकामना पूरी हुई। "ये तीन स्थान, हे इन्द्र! प्रचुरमात्रा में हरे-भरे हो जाएँ; मेरे पिता के खल्वाट सिर और उनका खेत तथा मेरा यह शरीर। यह हमारा बंजर खेत और मेरा चर्मरोगग्रसित शरीर, पुनश्च मेरे पिता का मस्तक, हे इन्द्रदेव! आप इन्हें केशों से आच्छादित कर दें। हे इन्द्र! मुझे सुकेशी, सुतनु एवं सुशोभना बना दे (ऋ० ८-९१-५)।" "तीन बार आपने अपाला को शुद्ध किया, तब उसके शरीर का चमड़ा सूर्य-सा चमक उठा" (८-९१-७), यथार्थ में वह सुन्दरी हो चली।

(५) *अगस्त्य की भगिनी*:—इनकी रची केवल एक ही ऋचा मिलती है (ऋ० १०-६०-६)। इस मंत्र में यह इक्ष्वाकु-वंशीय राजा अश्वमति से अपने मरते पुत्रों को सहायता देने के लिए प्रार्थना करती है। "हे राजन्! अपने लाल घोड़ों को रथ में जोत अगस्त्य के भागिनेय की सहायता कीजिए; हे राजन्! हवन नहीं करनेवाले कृपणों का दमन कीजिए।" बृहद्देवता में इसकी कथा दी हुई है (बृ०-८-८४-१०२)।

(६) *लोपामुद्रा*:—यह महर्षि अगस्त्य की धर्मपत्नी थी। इसकी रतिविषयिणी दो ऋचाएँ ऋ० १-१७९-१-२ में मिलती हैं। लोपामुद्रा बड़ी ही सती-साध्वी और पति-परायणा पत्नी थीं। इसने अपने पति की सेवा अनन्यभाव से बहुत समय तक की, पर अगस्त्यजी कोरे कठोरव्रती तपस्वी ही निकले। कभी भी पत्नी पर कृपा नहीं की। सदा उसके संसर्ग से दूर हटे रहते कि कहीं चंचला नारी स्थितप्रज्ञ महामना का मन न डिगा दे। इससे यह प्रेममूर्त्ति धर्मपत्नी बहुत दुःखित रहती। पति के प्रेमालिंगन का दावा वह यह कहकर करती कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, जो देवताओं से

साक्षात् बात किया करते थे, वे भी अपनी धर्मपत्नी को नहीं छोड़े हुए थे, तब आप ऐसा क्या करते ? यहाँ उसकी हार्दिक मर्मस्पर्शी अपील सुनिए—

"बहुत वर्षों से, रात-दिन, प्रात.काल में भी, आपकी सेवा यत्नपूर्वक करती हुई मैं जराजीर्ण हो चली। अब तो जरा हमारे शारीरिक सौंदर्य को भी नष्ट करने जा रही है। अब क्या किया जाय ? पति पत्नी पर अब भी तो कृपा करें, वे प्राचीन ऋषि जो, सत्य का प्रचार दूर-दूर स्थान में किया करते थे और जो साक्षात् देवताओं से वार्तालाप किया करते थे, वे भी तो सन्तानोत्पत्ति किया करते थे, इससे उनकी तपस्या भङ्ग नहीं होती थी, अत पति अपनी पत्नी से मिलें।" (ऋ० १-१७६-१ २)। इसी सूक्त के अन्तिम मंत्र में कहा गया है कि अगस्त्य जी ने अपनी पत्नी के तर्क से कायल होकर अपने उभय जीवन—तापस और गार्हस्थ्य दोनों—के धर्म का पालन यथाशक्ति यावज्जीवन किया।

(७) शाश्वती —ऋग्वेद में इसे नारी कहा गया है। नीतिमंजरी के अनुसार नारी उसे कहते जो अपने पति के सुख में सुखी और दुख में दुखी हो। शाश्वती के पति पुंसत्व खो बैठे थे। अपने पति की पुंसत्व प्राप्ति के लिए यह नारी बहुत वर्षों तक तपस्या करती रही। ऋग्वेद ८-१-३४ में अपने पति यादव आसंग को पुन प्राप्त पौरुष देख अपनी तपस्या को फलवती जान यह नारी आनन्द से विभोर हो गा उठती—"हन्त! स्वामिन्! अब आप जीवन का सुखोपभोग करने योग्य हो गए।" उनकी रचना सिर्फ यही एक ऋचा है।

(८) रोमशा —इनका सिर्फ एक ही मंत्र ऋ० १-१२६ ७ है। इस एक ही मंत्र में यौवन के आनन्द का उद्गार अच्छी तरह प्रदर्शित किया गया है। उसका पति भाव्य स्वनय सिंधु नदी के तट पर राज करता था। राजा था, अत पक्का विलासी। रोमशा की कच्ची उमर और अविकसित यौवन को देख पति उदास हो एक बार पत्नी का उपहास कर बैठा। इस पर तन कर उसने तुरत पति को मुँहतोड़ जवाब दिया—"मुझे टटोल कर देखो, अप्रस्फुटित कली ही मत समझो। गान्धारी भेंड़ी जैसी मेरी देह रोम से आच्छादित हो चली है।" इस रमणी को गान्धार देश के भेंड़ भेंड़ियों तथा उनके कोमल ऊनों का पूरा ज्ञान था। गान्धार अभी भी इन वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है।

पिछले संस्कृत साहित्य-काल की स्त्री-कवियों के साथ इन वैदिक मंत्र दर्शिकाओं की तुलना बड़ी मनोहर और रुचिकर प्रतीत होगी। संस्कृत-साहित्य की काव्य रचयित्रियों की जैसी वैदिक मंत्र गायिकाएँ भी स्त्री जनोचित कामनाओं और भावनाओं से भरी हुई थीं। वे भी हमारी आधुनिक नारियों जैसी संसार के सुख और सौंदर्य का, हास और विलास का मनभर उपभोग करने को लालायित रहती थीं। उनके लिए भी पतिप्रेम ही संसार में सर्वोत्कृष्ट पदार्थ था और दाम्पत्य सुख ही जीवन का उच्चतम आनन्द। उनकी नजर में धर्म का कोई स्थान ही नहीं था। अत हम देखते हैं कि उनकी सारी की सारी प्रार्थनाएँ पार्थिव प्रसाद पाने के लिए हुआ करती थी। योग्य वर, पति प्रेम, सांसारिक सुखोपभोग, रोग-मुक्ति, सन्तान-चिन्ता इत्यादि ही उनकी स्तुति के विषय हैं। कहीं भी,

कभी भी, हम आध्यात्मिक उन्नति तथा मोक्ष की भावना उनकी रचनाओं में नहीं पाते। विश्ववारा विवाहित महिला है, वह वैवाहिक सुख-सम्पत्ति तथा निश्चित जीवन-यापन के लिए प्रार्थना करती है। घोषा श्वेतकुष्ठ से पीड़ित है; अतः अश्विनीकुमार की स्तुति इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने तथा सुन्दर एवं स्वस्थ पति प्राप्त करने के लिये करती है। आगे चलकर काम-कला तथा रति-रीति की शिक्षा पाने के लिये प्रार्थना करती है। जिसे रोग के मारे अविवाहित रह, बूढ़ी हो, दाम्पत्य सुख तथा पारिवारिक जीवन के आनन्द से चिरकाल तक वंचित रहना पड़ा, वैवाहिक सुख के लिये लालायित उस नारी के हृदय की भावनाओं का उसके सूक्तों में बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है! अपाला चर्म-रोग से पीड़ित होने के कारण पति द्वारा परित्यक्ता हो गई थी। वह इस रोग से छुटकारा पाने तथा अपने पति से मिला देने के लिए इन्द्र से हार्दिक प्रार्थना करती हैं। यहाँ हम पति-परित्यक्ता हिन्दू-रमणी के हृदय के भावों का सबल निरूपण पाते हैं। रोमशा और लोपामुद्रा की रचनाएँ तो शृंगारिकता से ओतप्रोत ही हैं। रोमशा का पति जब उसकी अल्पवय के बारे में उससे मखौल करता है, तब वह अपनी खिलती जवानी का, अधखिली कली का वर्णन कर उन्हें चुपकर डालती है। लोपामुद्रा अपने वृद्ध तपस्वी पति की उदासीनता और उपेक्षा का शिकायत उन्हींसे, किसी अन्य पुरुष से नहीं, दिल खोल कर करती है एवं अन्त में प्रेमालिङ्गन के लिए उन्हें उत्कट रूप से निमंत्रित करती है ;—"हमने चिर काल से परिश्रम किया है ; अब बूढ़ी भी हो चली हूँ; अतः अब हमलोग जीवन का उपभोग करें।" शाश्वती प्रेममयी, पतिप्राणा, स्वार्थहीना हिन्दू-पत्नी है। वह अपने पति के पापो का प्रायश्चित्त आप करती है और जब अपनी तपस्या के फलस्वरूप अपने पतिदेव को पूर्णतया स्वस्थ तथा नीरोग पाती है, तो आनन्द से गा उठती है। अगस्त्य की बहिन की रचना में मातृ-हृदय की पूरी झलक अपनी संतान की रक्षा के लिए दिखाई पड़ती है।

इस तरह इन वैदिक स्त्री-ऋषियों की रचनाओं की छानबीन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि संस्कृत-साहित्य की स्त्री-कवियों की रचना की तरह इनकी भी रचनाएँ स्त्री-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के विविध विषयो को लेकर हुआ करती थीं। यथा (१) बूढ़ी, परञ्च कुमारी स्त्री के लिए विवाह के लिए तरसना (२) प्रतिव्रता नारी की भावनाएँ (३) अधखिली कली का भ्रमर को मुँहतोड़ जवाब (४) निराश चिरोपेक्षिणी नारी के भाव (५) रुग्ण परित्यक्त पत्नी का विषाद (६) संतुष्ट सुखी पत्नी का जीवन (७) गर्भवती माता और चहकती विवाहित दुलहिन (सूर्या) का, ईर्ष्यालु और छलनी नारी (इन्द्राणी) का, असती नारी (उर्वशी) जैसी का भी वर्णन यत्र-तत्र पाते।

इन मंत्रों की सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि इनमें केवल मानव-हितों का ही सबल और सजीव वर्णन मिलता है। ये मंत्र स्त्रीगण के अन्तःकरण से निकली भावनाओं के उत्कट उद्गार हैं। धर्म, प्रकृति तथा राजनीति का उन नारियों के प्रेममय हृदय में कुछ भी स्थान नहीं है। इन शुष्क विषयों से उन्हें कोई सम्बन्ध ही नहीं दिखाई पड़ता।

———

[प० मोहनलाल महतो 'वियोगी', गया]

(१)

रोम्याँ रोलाँ ने लिखा है कि—"कला का स्थान कल्पना नहीं, जीवन है।" महान् कलाकार रोलाँ का यह कथन मूर्तिमान सत्य है—सत्य को गवाह बनाकर इस कथन को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। जीवन और कला—दोनों यदि दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में या समानान्तर रूप में प्रवाहित हों, तो दोनों का सत्य, शिव और सुन्दर नष्ट हो जायगा और जैसाकि लेनिन की स्त्री क्रुप्सकाया ने अपने कीर्तिमान पति से कभी पूछा था—"बेढंगी बोरी में लकड़ी के दो पैर लगा देने के मानी मानव तो नहीं है", हमारे लिये सत्य हो जायगा। मानव और कला का सामञ्जस्य जीव और देह की तरह होना चाहिये न कि पूरब और पश्चिम की तरह बिलगाव। हमारे सामने वैदिक वाङ्मय का परम गम्भीर सागर उमड़ रहा है। साहित्य और कला के अन्तर्गत वैदिक वाङ्मय भी है। वेदों के साथ वेदांगों की स्थिति भी कला के बाहर नहीं है। बाहर से परस्पर विरोधी या विभिन्न रूपों में दिखलाई पड़नेवाली भावनाओं का जो मन्त्ररूप या सूत्ररूप हम देखते या सुनते हैं, सत्य की आधारभूमि पर या ज्ञान के मंथन की पूर्ण उच्चता की स्थिति में सभी विभिन्नताओं में एकरूपता ही भान होती है। ऐसा इसलिये होता है कि हम जितना ऊपर उठते हैं, विविधता से हमारा साथ छूटता जाता है और जितना नीचे उतरते जाते हैं, बहुरूपता की भीड़ में पड़कर हम अपने को खोते जाते हैं। कला या साहित्य का स्थान कल्पना कैसे हो सकता है, जबकि कल्पना दिशा, काल के बन्धन से ऊपर नहीं जा सकती और वह एक देशी यात्री है, जबकि कला सर्वशक्तिमान सत्ता की तरह एक ही क्षण में यत्र-तत्र सर्वत्र जाग्रत है। जीवन यदि अधोगामिनी तत्त्वों से प्रभावित है, तो फिर

कल्पनासंभूत कला से उसे क्या नाता और यदि वह बराबर तत्, त्वम्, असि के लिये संघर्ष करता रहता है, तो इस संघर्ष में कला ही उसका एक ब्रह्मास्त्र है, जिसके बल पर उसे विजयी होना है। कला जब जीवन से मिलने के लिये बोधगम्य बनती है, तो उसका एक रूप साहित्य के नाम से परिचित होता है। वस्तुतः कला तो अनाम, अरूप एक शक्ति है, जिसमें से सत्य, शिव और सुन्दर की उत्पत्ति होती है। समझने के लिये हम कह सकते हैं कि सत्य् तत् है। जो एक निश्चित निर्देश है, वही सत्य है और शिव 'त्वम्' है! अब यह स्पष्ट होता है कि 'असि' को ही हम 'सुन्दर' कह सकते हैं। 'असि' से जिस विराट् अस्तित्व का चिरंतन बोध होता है, वह सुन्दर है। 'तत् त्वम् असि' का ही कलात्मक रूप "सत्य, शिव, सुन्दर" है। यदि 'तत्त्वमसि' जीवन की सार्थकता का चूड़ान्त साधन है, तो इस साधन की सफलता का परिणाम सत्य, शिव, सुन्दर है। फिर हम कैसे मान लें कि कला, कला के लिये है। इस विश्व-प्रपंच में कोई भी वस्तु स्वयम् अपने लिये नहीं है—हम एक दूसरे के लिये ही नहीं, बल्कि सब सबके लिये हैं। इस निगूढ़ ऐक्य का परिणाम यह विश्व-प्रपंच है। एक महान् तत्त्व जो अणु-अणु को प्राणमय कर रहा है, एक अणु को दूसरे अणु से अपरिलक्षित रूप में जोड़ता है—इस सूत्र को, जोड़नेवाली डोर को "परासूत्र" कह सकते हैं। यही परासूत्र कला से जीवन को जोड़कर इसे अमरता प्रदान करता है। कला की साधना समस्त विश्व की साधना ही नहीं, विश्व को कला के रूप में प्राप्त करने की साधना भी है। जीवन किसी निश्चित परिधि के भीतर लहरानेवाला तालाब नहीं है, जिसे हम नाप सकते हैं या आवश्यकता पड़ने पर मशीन लाकर उसे जलहीन भी बना सकते हैं। यदि जीवन की सार्थकता है, तो उसमें कला की सार्थकता भी है। और कोई भी इस सत्य से इनकार नहीं कर सकता कि जीवन एक दुःखान्त नाटक है। ऐसे नाटक को देखने हम जाते हैं हँसते हुए, किन्तु, देखकर लौटते हैं भारी मन लिये और कुछ सहृदय होते हुए भी। जीवन महान् है और वह शरीर भी महान् है, जिसे उपलक्ष्य बनाकर जीवन विविधताओं की माया के साथ अपना प्रदर्शन कराता है। कला भी महान् है और साहित्य-शरीर धन्य है, जिसमें गो-गोचर होकर कला हमें दर्शन देती है। तरंग के रूप में जल उछलकर अपना एक लीलामय रूप प्रकट कर देता है—वस्तुतः एक तरंग की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई नापकर हम जल के विषय में कोई धारणा नहीं बना सकते। जिस शरीर में जीवन की ज्योति जितनी स्वच्छता से जागती है, हम उतना ही उसका दर्शन करते हैं और जिस साहित्य में कला जितनी मनोरमता से स्पष्ट होती है, हम उतना ही उसके लुभावने रूप को देख पाते हैं। वैसी पुण्यमयी काया और वैसा पवित्र साहित्य हमें शायद ही कहीं मिलता हो; किन्तु, भारत में इन दोनों की बहुलता है।

(२)

यदि एक हजार साल या दो हजार साल अतीत की ओर लौटकर हम देखें, तो हमें कालचक्र की गति का दहला देनेवाला परिचय मिलेगा। इतिहास-लेखक जैसे ही एक पंक्ति लिखकर ठहरता

है, वैसे ही एक नई घटना फिर अपने को लिपिबद्ध कराने के लिये उसके सामने आकर खड़ी हो जाती है। कागज पर की रोशनाई सूखने के पहले ही एक घटना अतीत बन जाती है और दूसरी आकर अपने करतब दिखलाने लगती है। सागर की छाती पर जैसे एक दूसरी पर लदी हुई-सी तरंगें आती हैं, आती ही रहती हैं, वही दशा इन घटनाओं की है, जो बीत चुकी हैं, बीत रही हैं या बीतनेवाली हैं। एक साम्राज्य का उदय होता है, एक जाति उछलती कूदती रंगमंच पर आती है और फिर न जाने कैसे लोप हो जाता है। बड़े-बड़े साम्राज्यों का उदय होता है, वे अपनी हवा बाँधते हैं और फिर बिखर जाते हैं—मेघ के बने चित्रों की तरह। आश्चर्य है कि भारत एक मूकदर्शक की तरह आज तक खड़ा खड़ा देख रहा है। हजारों वर्ष का यह साक्षी अपनी जगह पर आज भी खड़ा है—इसकी चारों ओर की दुनिया बहुत बार बदली, बहुत बार आँधियाँ उठीं, भूचाल आये, ईति-भीतियों ने हाहाकार मचाया, किन्तु यह हिमालय की छाया में चुपचाप खड़ा-खड़ा सब कुछ देखता रहा। इसके इस पुरातत्त्व के भीतर अब तक जीवन है या नहीं, यह एक प्रश्न है, जिसे हम-आप सभी समझते हैं। सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के प्रहारों से इसके अंग-प्रत्यंग जर्जर हो रहे हैं और कुछ समझदारों का ऐसा विचार है कि अपनी समस्त विशेषता गँवाकर भारत केवल अपने जीवनहीन अस्तित्व को अब तक सँजोकर रक्खे हुए है। केवल अपने अस्तित्व को येनकेन प्रकारेण कायम रखना ही जीवन की चरम सार्थकता नहीं है। अस्तित्व तो केवल एक इकाई मात्र है, वह स्वयम् कुछ भी नहीं है। बहुता में अपने नाम रूप को अलग कायम रखना ही अस्तित्व है और बहुता में मिलकर एक हो जाना अस्तित्व की अन्तिम सिद्धि है।

भारत ने निश्चय ही अपने अस्तित्व को न केवल सँजोकर ही रखा, वरन् इसने सदा अपने अस्तित्व की साधकता का भी ध्यान रक्खा। हमारा जो साहित्य आज हमारे सामने है, उससे यही लक्षित होता है। भारत की महाप्राणता ने इसे दूसरे मिटनेवालों के साथ मिटने नहीं दिया। भारत को रौंदनेवालों की कमी नहीं है, किन्तु उनकी कब्रें भी यहीं बनीं, उनकी चिता की खाक भी यहीं की हवा में बिखर कर रह गई। इस नमक की खान में जितने फौलादी पुतले कूदे, अन्त में नमक बनकर गली-गली टके सेर बिक गये! हमारा साहित्य कला को जीवन का सारतत्त्व मानकर ही अपना रूप विस्तार करता रहा है। तपोभूमि में बैठकर मनन करके जिन मुनियों ने परमतत्त्व का साक्षात्कार किया था, शान्त वृक्षों की स्निग्ध छाया में जिन ऋषियों ने जिन ऋचाओं का रहस्य प्रकट किया था या किसी अखबार के दफ्तर में बैठकर भूखों मरनेवाले जिन लेखकों, सम्पादकों ने जिस आग को भड़काई थी, प्रकारान्तर से वे सभी एक ही दिशा में चले। भिन्न भिन्न अवस्थाओं और स्थितियों में रहते हुए भी अनादि काल से लेकर आज तक हमारे कलापुजारी एक ही तत्त्व का चिन्तन और विश्लेषण क्यों करते रहे, यह समझने की चीज है। दूसरे देशों के साहित्य की यदि हम क्रमिक आलोचना करें, तो उसमें भिन्न-भिन्न युगों का रंग अलग अलग झलकेगा। गेटे और आधुनिक युग के गोर्की की विचारधारा में असमानता तो झलकेगी ही, साथ ही हमें यह भी साफ साफ दिखलाई पड़ेगा कि गेटे

किस युग का प्रतिनिधित्व करता है और गोर्को किस युग का! किन्तु, भारत में ऐसी बात नहीं है। भारत सदा से जीवन की अनित्यता के विरोध में लड़ता रहा है। हमारा साहित्य युग के साथ नहीं चलता, बल्कि युग का निर्माण करता है—ऐसे युग का, जो आनेवाले युग के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता हो और अतीत की कमियों का पूरक हो। भारतीय आदर्श का रहस्य एकता है, बहुरूपता नहीं। यही आदर्श साहित्य में भी हम देखते हैं; उस साहित्य में, जिसे हम भारतीय साहित्य कहते हैं, न कि उस साहित्य में, जिसे साहित्य कहना साहित्य का गलत चित्र उपस्थित करना है। भिन्न-भिन्न उस्तादों के अखाड़ों का नाम साहित्य नहीं है। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि हमारे विवेचकों की विचारधारा उस सत्य से अनुप्राणित है, जो दिशाकाल के बन्धन में नहीं है और यही कारण है कि हमारा साहित्य भी, वह चाहे आज का हो या ५ हजार साल का पुराना, एक ही दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। भिन्न-भिन्न युगों के उत्थान-पतन का कोई वाह्य चिह्न भले ही भारतीय साहित्य में झलके; किन्तु, आधार और धारा में कोई अन्तर नहीं पड़ा। हजारों साल से हमने किसी सत्य को अपने सामने रखकर ही साहित्य का निर्माण किया, जिस सत्य ने विश्व-प्रपंच के अस्तित्व को सार्थक बना रक्खा है। भारतीय साहित्य अमरता का साहित्य है—अरण्यरोदन नहीं।

(३)

साहित्य मानवीय सद्गुणों का खजाना है या वह स्रोत है, जिससे युगयुगान्तर मानवता पोषित होती रही है। किसी देश का साहित्य ही उसे कारण और कार्य के बन्धन में बँधकर नष्ट होने से बचाता है। मैं उस साहित्य को साहित्य नहीं कहता, जो बाहर से देखने में तो महान् 'ताज-महल' की तरह पुँजीभूत आश्चर्य और कला का बेदाग, निर्मल नमूना हो; किन्तु, उसके हृदय में सदियों की पुरानी लाश, जो गल चुकी है, छिपी हो। साहित्य को तो पवित्रता और उच्चता का प्रतीक होना चाहिए और भारतीय साहित्य हिमालय का ही एक वाङ्मय रूप है। इस साहित्य-हिमालय की चोटी पर चढ़ने का साहस तो बहुतों ने किया। किन्तु, अन्त में उन्हें निराश ही लौटना पड़ा या उसीमें समाप्त हो जाना पड़ा। किसी राष्ट्र के उतार-चढ़ावों का, उत्थान-पतन का लेखा-जोखा रखना साहित्य का काम नहीं है; किन्तु, किसी राष्ट्र को महानता तक पहुँचने के लिए साधन-सम्पन्न करते रहना ही सत्साहित्य का उद्देश्य है।

जैसाकि मैं निवेदन कर चुका हूँ, भारत एक अत्यन्त पुराना राष्ट्र है। ५ और ६ हजार साल का इसका जीवन दो-चार सप्ताह के जीवन जैसा ही है। इसने कभी भी एकाकी जीवन व्यतीत नहीं किया है—सदा संसार के साथ रहा और संसार में अपने को उच्च प्रमाणित करते रहने का इसने सदा सफल प्रयास किया। इतना होते हुए भी संसार के उत्थान-पतन का इसके जीवन पर बहुत ही कम असर पड़ा, यह एक आश्चर्य की बात है। सबके साथ रहता हुआ भी हमारा देश अपने को कैसे तटस्थ और अनासक्त रख सका, इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस छोटे से निबन्ध में संभव

नहीं है। सक्षेप में हम यही कहेंगे कि भारतीय साहित्य, जो वस्तुत भारतीय दर्शन और गीता जैसे अनासक्तयोग के रूप में है, हमारे नित्य जीवन को बिखरने से बचाता रहा है। हमारे जीवन का प्रत्येक अश दर्शन के साचे में किसी अश तक ढल चुका है और हमारी भावना दृढ और निसग हो चुकी है। राजनैतिक आवर्तन का उतना प्रभाव हमपर नहीं पड़ सका और न हम किसी ऐसे प्रवाह में बह ही सके, जिसमें दूसरे राष्ट्र बह कर समाप्त हो गए। साहित्य ने आज भारत को भारत के रूप में स्थिर रक्खा। हम आज हैं, इसीसे हमारे साहित्य की अजेयता का प्रमाण मिलता है। आज हमारा अस्तित्व ही हमारे साहित्य की महाप्राणता को प्रमाणित करने के लिए काफी है। रोगी का एक युग तक न मरना ही औषधि की महत्ता का द्योतक है। जिस सुधाप्रवाही साहित्य ने एक पूरे के पूरे देश को जिला रक्खा है, उस साहित्य के विषय में वेद ने कहा है—"तुम ईश्वर का काव्य देखो, फिर न तो तुम जीर्ण होगे और न मरोगे।"

यह ईश्वर का काव्य क्या है। निरुक्तकार कुछ भी इसकी व्याख्या करें, किन्तु, मैं तो कहूँगा कि सत्य से अनुप्राणित जो साहित्य है, वही महाकवि ईश्वर का महाकाव्य है और निश्चय ही इस काव्य की झलक मिलते ही देश का देश अजर-अमर हो जाता है। इस देश को ही देखिये—यह हजारों वर्ष से किसी-न-किसी तरह अपने को जिलाए हुए समय की प्रतीक्षा में बैठा है। कालचक्र इसे प्रभावित न कर सका। यह मृत्यु जय है। हम प्रणव (ॐ) से चलकर ग्राम्यगीतों तक आये। समास से व्यास की ओर हम आये, किन्तु हम प्रणव से ग्राम्यगीतों तक भी रहे—दूसरी जगह पहुँचने पर पहली जगह हमसे छूटी नहीं। आँखों के तिल में जो आकाश हम देखते हैं, वही आकाश सिर उठाकर भी असख्य ग्रह उपग्रहों के साथ देखते हैं। एक बूँद में झलकनेवाला आकाश भी अपनेतइ पूर्ण है, जैसाकि हमारे सिर पर या सर्वत्रव्यापी आकाश पूर्ण है। भारतीय साहित्य की इसी महाप्राणता से भारतीयता व्याप्त है। वह अणु से लेकर समस्त विश्व ब्रह्माड में समान रूप से व्याप्त है। परलोक, सन्धिलोक और इहलोक में सामजस्य स्थापित करनेवाले साहित्य का ही नाम है जीवन साहित्य।

परलोक का 'कारण देह', सन्धिलोक का 'सूक्ष्म देह' और इहलोक का 'स्थूल देह'—इन तीन देहों और सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रति तक को अपने प्रभाव से एक ही इकाई में परिणत करके जिस साहित्य ने भारत को बिखरने से अबतक बचा रक्खा है, उस साहित्य की तुलना में ससार के समुन्नत कहे जानेवाले दूसरे साहित्य ठहर नहीं सकते। अथर्व का यह सूक्त इसी बात का प्रतिपादन करता है —

सर्वो वै जीवति गौरश्व पुरुष पशु ।
यत्रेद ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम् ॥ अ० ८।२।२५

इस सूक्त का अर्थ इस प्रकार मैं करना चाहता हूँ :—" (जीवनायकं) जीवन के लिये आनन्द देनेवाला (ब्रह्म) ज्ञान जहाँ (परिधिः) चारों ओर किया जाता है, वहाँ ही गाय, घोड़ा, मनुष्य तथा सब इतर पशु भी उत्तम जीवन व्यतीत करते हैं।"

इस मंत्र में 'उत्तम जीवन' शब्द अर्थ से आया है। यह उत्तम जीवन तुच्छता से, संकीर्णता से महाशक्ति तक उठने से ही प्राप्त होना संभव है और हमारा साहित्य हमें इस उत्तम जीवन की ओर ले जाता है। 'वेद' के मानी हैं 'ज्ञान' और ज्ञान का रूप ही है साहित्य। साहित्य ज्ञान का ही एक नाम है। यदि वेद अपौरुषेय है, तो साहित्य भी ज्ञान होने के नाते अपौरुषेय है—ज्ञान की उत्पत्ति किसी व्यक्ति से नहीं हुई है। यह अपौरुषेय तत्त्व है।

(४)

भारतीय वाङ्मय के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ निवेदन किया है, वह निर्विवाद और अंतिम नहीं है। गहराई में उतरने से हमें बहुत से रत्न हाथ लग सकते हैं। स्थानाभाव से हमें यहीं रुक जाना चाहिए। अपौरुषेय ज्ञान का ही बोधगम्य रूप जब साहित्य है, तो कला ऐसे ही साहित्य को अपनी ज्योति से प्रकाशमान करके उसे सुन्दर का आसन दे देती है और रोम्याँ रोलाँ के कथनानुसार तब कला का स्थान कल्पना नहीं, जीवन बन जाता है।

अजन्ता की गुफाओं से लेकर साधारणतः पत्थर की मूर्त्तियों में और वेदों से लेकर ग्राम्य गीतों तक में जिस एक ही महाप्राणता का प्रादुर्भाव लक्षित होता है, वह उन महान् कलाकारों की तपस्या का परिणाम है, जिन्होंने भारतीय जीवन को कलामय और साहित्यमय बनाकर इसे कालचक्र की गति से साफ-साफ बचा लिया है। पाश्चात्य साहित्य की ओर ध्यान देने से यह सहज ही ज्ञात होता है कि वहाँ साहित्य और जीवन से सदा अनबन रही है। जीवन सदा विद्रोह करता रहा है और साहित्य उसे पकड़ने का प्रयत्न करता रहा है—कभी-कभी तो साहित्य जीवन का दास बनकर उसके पीछे-पीछे चलता नजर आता है। आज का रूसी साहित्य एक प्रकाशमान उदाहरण है। शोषकों के साहित्य के नाम पर रूस में जो साहित्य तैयार हो रहा है, वह साहित्य एकांगी है और एक ही दिशा की ओर निर्देश करता है। साहित्य का यह रूप वन्दनीय नहीं माना जा सकता। साहित्य का भी मानव-जीवन में वही स्थान है, जो स्थान सत्य-धर्म का है। सत्य-धर्म अविरोधी धर्म को कहते हैं। अतः साहित्य भी जब अविरोधी रूप में रहता है, तो उसकी पवित्रता निखर उठती है—वह वन्दनीय माना जाता है, स्तुत्य माना जाता है और जीवन का जीवन बन जाता है। अभ्युदय, सिद्धि और श्रेय इन तीन अलौकिक सुखों की उपलब्धि सत्य-धर्म से होती है—साहित्य भी इन्हीं सुखों का साधन माना गया है। साहित्य का उपयोग लाठी के रूप में जब होता है, तब उसकी हत्या हो जाती है। नाना विडम्बनाओं से कुचला हुआ आज का जीवन अपना पथ भूल चुका है और वह डूबते हुए

मनुष्य की तरह अपने सामने पड़नेवाली प्रत्येक वस्तु को व्यग्र होकर अपनी जान बचाने के लिए पकड़ने की चेष्टा करता है। ऐसी ही चेष्टा आज के जीवन में हम देख रहे हैं।

प्रगतिशील साहित्य के नाम पर जो कुछ लिखने की चेष्टा हो रही है, वह कुछ इसी तरह का निर्बल प्रयत्न है। मूल साहित्य-भावना प्रगतिशील ही है—उसमें अप्रगतिशीलता कहाँ से आई। महात्मा गाधी 'हिंदी नवजीवन' (४ मार्च २६) में लिखते हैं—

सर्वोत्कृष्ट कला व्यक्तिभोग्या न होगी, वह सर्वभोग्या होगी और कला जब बाह्य साधनों से अधिक से अधिक मुक्त होगी, तभी वह सर्वभोग्या बन सकेगी।

इस सर्वभोग्या कला का मानव के आध्यात्मिक विकास में बहुत बड़ा स्थान है। फिर गाधीजी लिखते हैं—

भारतीय कलाकारों ने अपनी कला को मन्दिरों में और गुफाओं में प्रकट करके सार्वजनिक कर दिया है।

एक स्थान पर उन्होंने फिर लिखा है—

• कला मुझे उसी अंश तक स्वीकार्य है, जिस अंश तक वह कल्याणकारी है। मैं उसे यूरोप की दृष्टि से नहीं देख सकता।

महात्माजी के इन उद्धरणों से रोम्याँ रोलाँ के कला सम्बन्धी विचार की पुष्टि होती है। संसार के सभी मानव हितैषी या जीव हितैषी महापुरुष एक ही तरह से सोचते हैं। आज हम जिस प्रगतिशील साहित्य का शोर सुन रहे हैं, वह सच्चा साहित्य या सच्ची कला का स्वप्रकाशन नहीं कहा जा सकता। रूस का 'प्रालेटेरियन लिटरेचर' कुछ इसी तरह का है, जिसकी विकृत छाय आज हमारे साहित्य पर पड़ रही है। यह बात मानने योग्य है कि देश, काल, पात्र या अवस्थ का प्रभाव चिन्ताधारा पर पड़ता है, किन्तु, इस प्रभाव को स्थायी कहा नहीं जा सकता। साहित्य रचना या कला-उपासना जीवन की रचना या जीवन की उपासना है, जो स्थायी वस्तु है। जीव किसी 'वाद' के कठोर बन्धन से परे का तत्त्व है। वादों का जन्म जीवन के लिए होता है, न कि जीवन का अस्तित्व 'वादों' के लिए है।

भारतीय जीवन पहेली नहीं है और न उसकी गति उलझाऊ है। आज जो कु उलझनें हमारे सामने हैं, वे हमारी संस्कृति की देन न होकर पाश्चात्य जीवन को गलत तरीके ग्रहण करने का परिणाम है। पाश्चात्य जीवन नास्तिकता की ऊसर भूमि पर स्थित है, जहाँ केव 'स्व' मात्र है। मानव और पशु में केवल इतना ही अन्तर है कि मानव दूसरे के लिए जीता है जबकि पशु अपने लिए जीवित रहने को बाध्य है। मानव का प्रत्येक प्रयत्न अधिक-से-अधि

लोकहिताय होता है और यही उसकी मानवता का उच्च प्रदर्शन माना गया है। साहित्य को मैं एक दृष्टि से परिणाम मानता हूँ और कारण है मानव की वह भावना, जिसके द्वारा वह संसार के भूतमात्र का अभ्युदय चाहता है, श्रेय चाहता है और सबके लिए सिद्धि की आकाँक्षा रखता है।

इस भावना से जिस साहित्य का सृजन होगा, वह साहित्य सत्य पर ही आश्रित होगा, न कि किसीके अकल्याण पर। पाश्चात्य साहित्य की नींव भूत-कल्याण की भावना पर नहीं है। भारतीय संस्कृति यह सहन नहीं कर सकती कि उसे किसी विशेष घेरे में बन्द कर डाला जाय। भारतीयता खुले मैदान की तरह है जिसमें प्रकाश पूरी तरह निखरता है, हवा अपनी पूरी मस्ती के साथ डोलती है। राजमहलों में बहुत-से झरोखे होते हैं, खिड़कियाँ होती हैं; फिर भी वहाँ प्रकाश का टोटा रहता है, हवा ठीक-ठीक वहाँ जीवन तत्त्व उँड़ेल नहीं सकती। ऐसी मुक्त भारतीयता के द्वारा जिस साहित्य का निर्माण हुआ है, वह किसी विशेष वर्ग या क्षेत्र की सम्पत्ति न होकर विशुद्ध रूप में बहुजनसुखाय, बहुजनहिताय ही है।

यदि सूर्य को काट-छाँटकर हम इस योग्य बना डालें कि उसे किसी सिनेमा घर की छत से लटका सकें तो हमें निश्चय ही विशेष सुख मिलेगा और लाभ भी बहुत होगा; किन्तु, साथ ही हमारे इस तुच्छता से भरे प्रयत्न के कारण संसार का या बहुतों का जो विनाश होगा, उसे भी ध्यान में रखना होगा। यूरोप का दिमाग—मस्तिष्क आज बहुत ही परिपुष्ट होकर बड़ा हो गया है। किन्तु, इस अनुपात से हृदय का जो छोटापन प्रकट हुआ है, उसकी ओर अब हमारा ध्यान जाने लगा है। हम यूरोप बनकर प्राप्त तो कुछ भी नहीं करेंगे; हाँ, अपने अस्तित्व को गँवा अवश्य देंगे।

(५)

कला को यदि हम सत्य और शिव का अनिर्वचनीय महिमामय रूप मान लें, तो साहित्य को उसका परिणाम कह सकते हैं। कला कारण है और साहित्य परिणाम। आज का मानव-जीवन विविध संघर्षों में छिन्न-भिन्न हो रहा है। मानव अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए खड्गहस्त है। यह रहना चाहता है, किन्तु अपने को मिटाने के साधनों की बहुलता भी इसीके द्वारा हुई है। मन ही मानव के बन्धन और मोक्ष का कारण है—ऐसा विवेचकों का निश्चित मत है।

इसमें संदेह नहीं कि संसार का नेतृत्व जबसे सोने के अधिकार में चला गया, तबसे मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है। सोना के लिए जीवन की सारी महत्ता को बिसारकर मानव एकबारगी ही पिशाच बन चुका है। जड़बुद्धिवाद का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ है। बुद्धि जब बहुरूपता में परिणत हो जाती है, तब वह हमारे लिये श्रेयस्कर नहीं रह जाती। ऐसी बहुशाखावाली बुद्धि को व्यभिचारिणी बुद्धि कहकर मानव को सावधान किया गया है। इस स्वर्णप्रधान युग में बुद्धि का

यह अचचल रूप नहीं रह गया और मानव अपने ही द्वारा फैलाये हुए जाल में फँसकर आज त्राहि-त्राहि की पुकार कर रहा है। किन्तु, कौन किसका त्राण करे, प्रत्येक का तो एक सी ही अवस्था है। इस मानवीय बौद्धिक अत्याचार से आज का साहित्य भी आक्रान्त है। हमारे मानसिक विनाश का यह रूप निराशाजनक है। जिस साहित्य का आश्रय-ग्रहण करके हम अपने सत्यरूप को निखरने से बचाते रहे हैं, उसमें भी विष उत्पन्न हो गया है। भिन्न भिन्न प्रकार के वादों, अपवादों, प्रवादों से छिन्न भिन्न होकर साहित्य अपना बल गँवा चुका है। हम पढ़ते हैं, लिखते हैं, विचार करते हैं और फिर सब कुछ भूलकर रोटी की चिन्ता में व्यग्र हो जाते हैं। यह रोटी की चिन्ता हमारे सारे अस्तित्व को चबाए डालती है। जो साहित्य आज हमें मिल रहा है, उसमें यदि रोटी नहीं नजर आती तो हम उसकी निन्दा करते हैं। हमारी भूख इतनी बढ़ी है कि आम, सेब, सतरा के वृक्षों में यदि रोटी नहीं फूले-फलेगी, तो हम उन्हें आक, धतूर की तरह काट-काटकर चूल्हे में झोंक डालेंगे।

इस भावना को यदि प्रगतिशीलता कहा जाता है, तो फिर अप्रगतिशीलता के लिए किसी दूसरी परिभाषा की आवश्यकता पड़ेगी। रोटी प्राप्त करने के लिए मारने मरने से आवश्यकता का उचित समाधान सम्भव नहीं है। साहित्य हमें ऐसी पात्रता देगा कि हमें अभाव का मुँह ही नहीं देखना पड़ेगा। अभ्युदय, श्रेय और सिद्धि देनेवाले साहित्य से हम दूर हटते जा रहे हैं—फिर कल्याण कहाँ।

जैसाकि मैंने निवेदन किया है, धर्म और साहित्य में कोई अन्तर नहीं है। अभ्युदय, श्रेय और सिद्ध—इन तीनों का प्रदाता धर्म है और साहित्य भी इन तीन फलों का दाता है। इहलोक और परलोक दोनों को समान रूप से सुलभ बनानेवाला धर्म है और साहित्य भी। साहित्य का प्रयोग विशुद्ध मुक्ति के लिये यदि संसार करता, तो मानव अभ्युदय की ओर अग्रसर होता जाता। यदि धर्म को भी हम पूजा, नमाज या दशहरा और क्रिसमस से ऊपर का तत्त्व मान लेते, तो आज तीसरे महायुद्ध के लिये छुरी पिजाने की बारी ही नहीं आती।
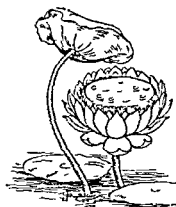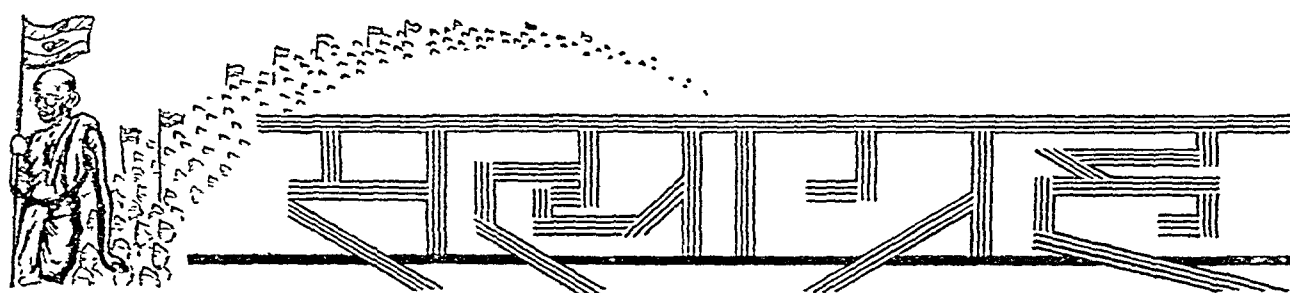
[श्री धीरेन्द्रमोहन दत्त, एम० ए०, पी० आर० एस०, पी०-एच० डी०]

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की मृत्यु के पहले किसीने उनसे पूछा था—"भारतवासियों के लिए किस गुण का अभी सबसे अधिक प्रयोजन है ?" उन्होंने जवाब दिया था—"अन्याय का असहन।"

भारत की सुप्त जनता को जगाने के लिए महात्मा गांधी की भी यही शिक्षा थी। अन्याय के साथ लड़ना ही उनके जीवन का व्रत था। लेकिन लड़ने की नीति थी बिल्कुल न्यारी।

हम जब अन्याय के खिलाफ लड़ते हैं, तब हमारी नजर में अन्यायी बन जाता है एक बड़ा दुश्मन और शैतान। दिल गुस्से से भर जाता है। गाली-गुप्ता, मार-पीट, छल-चातुरी, मामला-मुकद्दमा, खून-खराबी, जुल्म-जबर्दस्ती जिस किसी उपाय से भी दुश्मन को दबाने की कोशिश करते हैं। अन्याय को रोकने की कोशिश में हम खुद अन्याय कर बैठते हैं। इसी तरह संसार में झगड़े के बाद झगड़ा, जंग के बाद जंग मचती है। हिंसा, द्वेष, अन्याय, अशान्ति से धरती भर जाती है।

संसार की इन घटनाओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया था—"वैर से वैर कभी शांत नहीं होता है। अवैर या प्रेम ही से वैर की शान्ति होती है। यही सनातन धर्म है।" "क्रोध नहीं करके क्रोध को, भलाई से बुराई को, दान से कृपण को और सचाई से झूठ को जीत लेना चाहिए।"

ईसामसीह ने और टालस्टाय ने भी इसी नीति की शिक्षा दी। लेकिन बहुत थोड़े लोगों ने केवल धार्मिक जीवन में अपने मोक्ष के लिए वैयक्तिक रूप से इस नीति का पालन किया। संसारी

कामों में इस उच्च नीति का पालन असम्भव समझा गया। राजनैतिक झगड़ा-विवादों में इस नीति का पालन तो बिल्कुल पागलपन ही था।

महात्मा गांधी ने अपने जीवन से दिखलाया—संसार के हरएक काम में धर्म की नीति लागू हो सकती है। धर्म संसार से अलग नहीं है। वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि हर एक काम में नैतिक आदर्श का पालन करना ही धर्म है और इन सब कर्त्तव्यों को ठीक ठीक करने से ही आत्मा की मुक्ति या ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार से संसार की शान्ति और धार्मिक उन्नति एक ही साथ हो सकती है।

भारत के राजनैतिक अन्यायों और झगड़ों को बुद्ध, ईसू और टालस्टाय के उच्च नैतिक आदर्श के अनुसार मिटाने के लिए उन्होंने सत्याग्रह का मार्ग निकाला। 'सत्याग्रह' एक राजनैतिक हथियार के रूप से ही ज्यादा प्रसिद्ध है। लेकिन महात्माजी के लिए यह था एक उच्च आदर्श से जीवन बिताने का मार्ग, जिसका प्रयोग जीवन के हरएक क्षेत्र में हो सकता है।

सत्याग्रह शब्द का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह या प्रबल आकर्षण। लेकिन सत्य का अर्थ महात्माजी के लिए बहुत ही व्यापक और गम्भीर था। सत्य का मामूली अर्थ है सच बात, जिससे सत्याग्रह का अर्थ निकलता है, सब झूठ बात, धोखा, छल इत्यादि छोड़कर सत्य बोलने और सत्य व्यवहार के लिए संकल्प। सत्य का दूसरा अर्थ है सच याने उचित, ठीक, जिससे सत्याग्रह का अर्थ होता है बुरा, अन्याय रास्ता छोड़कर उचित या न्याय के रास्ते पर चलने का संकल्प। इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त सत्य का एक तीसरा अर्थ है—संसार का सार या सत्‌ वस्तु भगवान्। इसी अर्थ पर गांधीजी का ज्यादा जोर था और इसीसे सत्याग्रह का अर्थ उनके लिए था भगवान् के प्रति आकर्षण और भगवान् जिससे सन्तुष्ट हो, ऐसा काम करने का संकल्प।

ठीक-ठीक सत्याग्रही बनने के लिए केवल मन में सच्चे रास्ते पर चलने का संकल्प करना ही काफी नहीं है। मुँह से और काम से भी दुनिया के लोगोंके साथ व्यवहार के समय अपने आदर्श के अनुसार चलना आवश्यक है। इसलिए सत्याग्रही को काय-मनो वाक्य सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अभय, नम्रता आदि धर्मों का अभ्यास करना जरूरी है। सत्य का अर्थ पहले बताया गया। अहिंसा का स्थूल अर्थ है किसी जीव का प्राण नाश नहीं करना। लेकिन महात्माजी के विचार से अहिंसा केवल निवृ'त्तिरूप ही नहीं है। यह सब जीवों के प्रति प्रेमभाव का ही बाह्य प्रकाश है। अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना। अस्तेय धर्म पालन के लिए पर-धन का लोभ त्याग करना जरूरी है। अपरिग्रह का अर्थ गांधीजी के अनुसार है भविष्य के लिए धन जमा न करना। जब दुनिया में बहुत लोग अभी भूखे मर रहे हैं, तब किसी सत्याग्रही याने मनुष्यप्रेमी को अपने भविष्य के लिए धन इकट्ठा करके रखना उचित नहीं है। ब्रह्मचर्य का
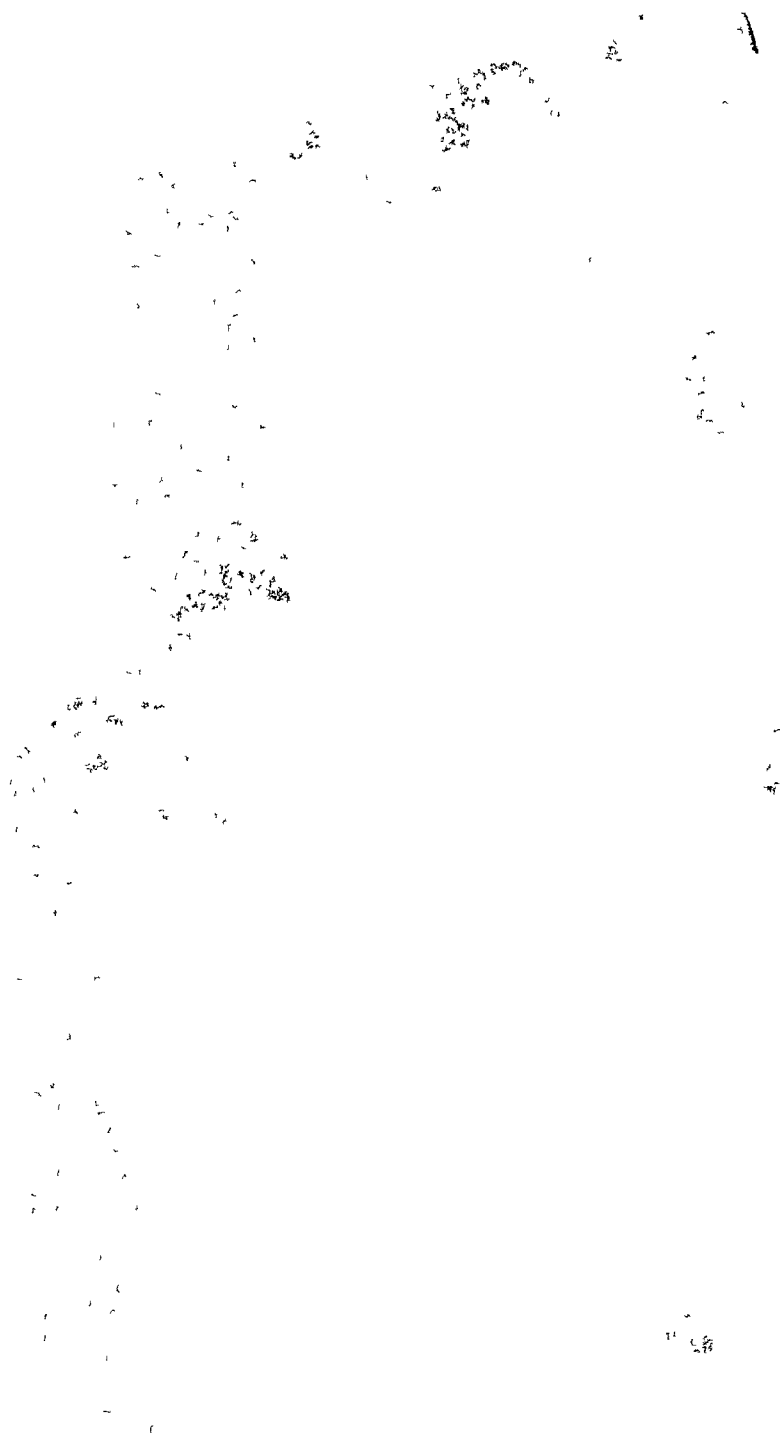
अर्थ है मन और इन्द्रियों के संयम द्वारा ब्रह्म के मार्ग पर चलना। अभय का अर्थ है निडर होना। सत्य और न्याय के मार्ग पर चलनेवाला सत्याग्रही किसी मनुष्य से डर नहीं सकता है। सत्याग्रही के लिए नम्रता बहुत आवश्यक है। वह सदा अपने दोषों और त्रुटियों की ओर दृष्टि रखता है। इसलिए स्वतः विनम्र होता है।

जो व्यक्ति इन सब धर्मों का पालन जहाँ तक कर सकते हैं, उनका चरित्र उतना ही उन्नत होगा और समाज पर उनका उतना ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा, यह कहना ही अत्युक्ति है। सत्य, अहिंसादि धर्म के पालन करनेवाले स्त्री-पुरुष समाज के विश्वास, प्रेम और श्रद्धा के पात्र होंगे। अत: सत्याग्रही संसार के नाना प्रकार से उपकार या सेवा कर सकते हैं। महात्माजी ने सत्याग्रह के द्वारा भारत की और सारे संसार की कितनी सेवा की है, यह सबको मालूम है। संसार से अन्याय, अधर्म और सब प्रकार के विरोध को हटाने के लिए हम सत्याग्रह के प्रयोग के बारे में अब विचार करें।

सत्याग्रही अपनी शक्ति के अनुसार अन्याय के साथ लड़ते हैं। लेकिन, अन्यायी के प्रति क्रोध, विद्वेष, घृणा आदि बुरे भाव उनके मन में नहीं रहते हैं। महात्माजी अंग्रेजी राज्य के खिलाफ लड़े थे। पर अंग्रेजों के प्रति कोई उनके मन में द्वेष नहीं था। सत्याग्रही अन्यायी के प्रति भी और सब जीवों के समान अहिंसा और प्रेम का भाव रखते हैं और यह विश्वास करते हैं कि बाहर से वह कितना ही खराब हो उसके अन्दर भी एक ऐसी विवेक-बुद्धि, भलाई और सच्चाई हैं, जिन्हें प्रेम और विश्वास के द्वारा जगाया जा सकता है। और ये अच्छे भाव जग जाने से वह अपना अन्याय समझ जाता है और उसे सुधारने की कोशिश करता है। अन्याय तब मूल के साथ नष्ट हो जाता है और अन्यायी सत्याग्रही का एक प्रेमी मित्र बन जाता है।

मनुष्य के आन्तरिक भलेपन में विश्वास ही इस सत्याग्रह का आधार है। यह विश्वास दो तरह से आ सकता है। ईश्वर में विश्वास रहने से या मानवता में विश्वास रहने से। महात्माजी ईश्वर में विश्वासी थे। और हरएक मनुष्य में भगवान हैं, यह मानते थे। इससे सबके प्रति उनमें प्रेम और श्रद्धा थीं। सत्य और न्याय के वर्ताव से, प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से, अन्यायकारी के बुरे भावों को दूर हटाने से उसके अन्दर छिपे हुए भगवान् जागृत हो जायँगे, ऐसा ज्वलन्त विश्वास उनका था। इस विश्वास के बल से उन्होंने कितने बुरे मनुष्यों के हृदय को परिवर्तित कर दिया।

जिनका ईश्वर में विश्वास नहीं है, वे भी सत्याग्रह का हथियार चला सकते हैं; अगर उनमें सत्य, अहिंसा आदि गुण हों और कम-से-कम इतना विश्वास हो कि मनुष्य केवल पशु ही नहीं है, बुरे-से-बुरे मनुष्य में भी पशु-भाव के पीछे छिपी हुई मानवता है—जिसमें विवेक-विचार, न्यायनिष्ठा और प्रेम भी है, और जिसको जगाने से पशु के भाव दबाये जा सकते हैं।

लेकिन, जिस सत्याग्रही का ईश्वर में विश्वास रहता है, उसके हृदय में आशा और बल अवश्य ही अधिक होते हैं। क्योंकि, उसका यह विश्वास है कि भगवान के राज्य में ऐसा विधान है जिससे अन्त में सत्य और न्याय ही की जय अवश्यम्भावी है। इसी विश्वास के कारण महात्माजी न्याय की लड़ाई में कभी निराश नहीं होते थे। रोज सुबह शाम भगवान से प्रार्थना करके अपने में आत्मिक बल और विश्वास बढ़ाते थे।

आत्मिक बल या सत्याग्रह से संसार के अन्याय कहाँ तक दूर किये जा सकते हैं, इसका पता सिर्फ उसीको स्पष्ट लग सकता है जिसने इसका अभ्यास और प्रयोग किया है। इस लिए गांधीजी यह कहते थे कि जैसे वैज्ञानिक जड़ द्रव्यों के बारे में अनुसन्धान और प्रयोग के लिए जीवन भर कष्ट उठाते हैं, साधना करते हैं, वैसा ही आत्मिक बल से क्या हो सकता है, इसके लिए भी अथक अनुसन्धान और प्रयोग आवश्यक है।

सत्याग्रही को पहले अपने कुटुम्ब, परिवार, मित्र, पड़ोसियों के अन्दर छोटे मोटे अन्याय-विरोध आदि मिटाने के लिए सत्याग्रह की नीति का प्रयोग करना चाहिए। और इनमें सफलता मिल जाने पर जब अपने में आत्मिक बल पर विश्वास अधिक हो, तब बड़े-बड़े मामले में इसका वे इस्तेमाल कर सकते हैं। महात्माजी ऐसे ही सत्याग्रह के मार्ग पर आगे बढ़े थे, और अपने देश को स्वराज्य मिलने के बाद इसी उपाय से सारे जगत् के अन्तर्जातीय समस्याओं का समाधान करने की आशा को अपने मन में पोषण करते थे।

भिन्न २ क्षेत्र में भिन्न २ प्रकार से सत्याग्रह किया जा सकता है। सबसे पहले है विरोधी को प्रेम और धीरज से, न्याय-युक्ति से, समझाना बुझाना और अपनी इज्जत, असुविधा, स्वार्थ का जरा भी ख्याल न करते हुए हर कदम पर न्याय्य समझौते के लिए तैयार रहना। समझाने में सफल न होने पर विरोधी को पहले से बताकर और कड़े उपायों—जैसे उपवास, नाना प्रकार के असहयोग, कानून तोड़ना, टैक्स बन्द करना इत्यादि का इस्तेमाल कर सकते हैं। कभी अकेला, कभी अनेक एक साथ मिलकर भी सत्याग्रह कर सकते हैं।

कहाँ सत्याग्रह करना, कहाँ न करना चाहिए, और कहाँ कैसे करना चाहिए यह सब बहुत सोच विचार के बाद सत्याग्रही स्थिर करते हैं। और हमेशा अपनी गलती की तरफ नजर रखते हैं। कहीं अपना अन्याय या त्रुटि मालूम होने से तुरत दोष स्वीकार करते हैं, जरूरत हो तो सत्याग्रह बन्द करके योग्य प्रायश्चित्त भी करते हैं। इससे सत्याग्रही की इज्जत घटती नहीं, बढ़ती ही है।

इस प्रकार न्याय का विचार न करके केवल अपने स्वार्थ के लिए या बहादुरी के लिए कुछ लोग महात्माजी की तरह उपवास आदि शुरू कर देते हैं। महात्माजी ने इसका नाम रक्खा था दुराग्रह। यह बहुत ही निन्दनीय है।

आज दुनिया में चारों ओर हर तरह की अशान्ति फैली हुई है। दो-दो विश्वयुद्धों के बाद भी शान्ति नहीं मिली। बल्कि अशान्ति ही बढ़ रही है। विज्ञान स्वार्थ बुद्धि का और पशुभाव का साधन बनकर अनर्थ मचा रहा है। केवल आध्यात्मिक उपाय से—सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि भाव के बढ़ने से ही—यह पशुभाव, झगड़ा-विवाद मिट सकते हैं। ऐसी स्थिति में महात्मा गांधी की सत्याग्रह की नीति सारे जगत् के लिए एक अतुल दान है। पर भारत इस अनमोल दान का गौरव या दावा तबतक नहीं कर सकता है, जब तक कि वह खुद सत्याग्रह के—न्याय और प्रेम के मार्ग से अपने झगड़ों को जातियों, धर्मों, प्रान्तों, मजदूर-पूंजीपतियों और किसान-जमींदारों के विवादों को हल कर के नहीं दिखला दे। महात्माजी का यही अन्तिम ध्येय था। क्या हम अपने नैतिक चरित्र को सत्याग्रह के आदर्श से उन्नत करके उनकी अन्तिम इच्छा को पूरा कर सकेंगे ?

इस प्रश्न का जवाब देने का दायित्व सिर्फ देश के राष्ट्रीय नेताओं पर ही नहीं है, समाज की हरएक श्रेणी पर और व्यक्ति पर है। हम सब कोई चाहते हैं कि देश की सब नैतिक बुराइयाँ दूर हों—झूठ, झगड़ा, द्वेष, चोरी, घूसखोरी सब बन्द हो जायें और सचाई, भलाई और प्रेम से देश पूर्ण हो जाय, संसार में भारत का जयजयकार मचे। लेकिन इसके लिए हर एक व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य क्या है, उस ओर उसकी दृष्टि नहीं है। सदा अपने दोष की खोज करना और उसे हटाने की कोशिश करना ही हर एक देश-प्रेमिक का पहला काम है। सत्याग्रह-मार्ग की भी यही पहली सीढ़ी है। सिर्फ इसी रास्ते से हम अपने को और देश को ऊपर उठा सकते हैं। देश में सत्य, न्याय, अहिंसा और प्रेम का राज्य कायम कर सकते हैं; और दुनिया को शान्ति का पक्का रास्ता भी बता सकते हैं। और यही रास्ता मनुष्य को ईश्वर की ओर भी ले जाता है।
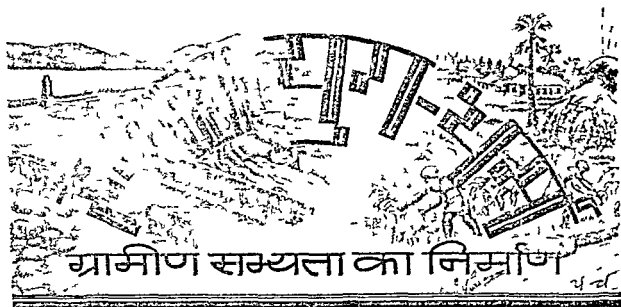
[लेखक—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी]

भिन्न-भिन्न जातियों की आकांक्षाएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। वे आकांक्षाएँ कुछ तो परम्परागत होती हैं और कुछ का निर्माण भौगोलिक परिस्थितियों के द्वारा होता है। इंगलैण्ड के निवासियों के रक्त की बूँद-बूँद में समुद्र प्रेम उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार उत्तर भारत के निवासियों में हरद्वार या बदरीनाथ की यात्रा के प्रति भक्ति। पाण्डवों के महाप्रस्थान में हिमालयगमन इस बात का सूचक है कि बड़े बड़े साम्राज्यों का मोह भी हमें गिरि वन प्रेम से नहीं रोक सकता, आखिर तो हम सब माता पार्वती के मायके अथवा अपनी ननिहाल के प्रेमी हैं। भगवान् रामचन्द्रजी का चित्रकूट और पञ्चवटी-निवास भारतीय संस्कृति के वन-प्रेम का अवश्यभावी परिणाम था, और हमलोगों के हृदय में पर्वतों और वनों के प्रति जो श्रद्धा है, वह सहस्रों वर्षों से हमें परम्परा के रूप में मिलती चली आई है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी देश के भविष्य पर उसकी भौगोलिक परिस्थिति का जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। निश्चित रूप से तो कोई समाजशास्त्री, पुरातत्त्वविद् अथवा इतिहास-वेत्ता ही यह बतला सकेंगे कि भारतीय जीवन में नदी, वन, पर्वत और ग्राम का प्रेम किस प्रकार विकसित हुआ, तथापि यह बात निर्विवाद है कि भारतीय सभ्यता का मूल स्रोत तपोवन ही था और उस सभ्यता को सजीवनी शक्ति वर्तमान युग में तपोवन के आदर्श से ही मिल रही है। महात्मा मुंशीराम, कवि गुरु श्रीरवीन्द्रनाथ और विश्ववन्द्य गांधीजी द्वारा गुरुकुल, शान्तिनिकेतन तथा

साबरमती आश्रम की स्थापना के मूल में वही प्राचीन भावना काम कर रही थीं। वर्धा का आश्रम भी उसी प्रकृति-प्रेम का प्रतीक है। महात्माजी उसी युग के स्वप्न देख रहे थे, जब कण्व ऋषि के जैसे आश्रम इस भूमि में सहस्त्रों की संख्या में होंगे और महाराज राजा दिलीप जैसे गोभक्तों से यह भूमि फिर पवित्र होगी। कौन कह सकता है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में श्री जमनालालजी के हृदय में राजा दिलीप की आत्मा काम नहीं कर रही थी?

साढ़े सात लाख प्रजातंत्र

बर्नार्डशा ने एक बार कहा था कि वह व्यक्ति इंगलैण्ड का महान् हित करेगा जो लन्दन नगरी को जमींदोज—धराशायी कर दे। महात्माजी के भी हृदय में बम्बई तथा कलकत्ते की सभ्यता (या असभ्यता?) के प्रति इससे कम विद्वेष नहीं था। यदि हम से कोई पूछे, महात्माजी इस देश को किधर ले जा रहे थे, तो निस्सन्देह और निस्संकोच हम यही उत्तर देंगे, "साढ़े सात लाख प्रजातंत्रों की ओर।' संक्षेप में यों कहिये कि *ग्रामीण सभ्यता का निर्माण ही महात्माजी का लक्ष्य था। यही हमारा युगधर्म है।* अब प्रश्न यह है कि हमलोग इस युगधर्म का पालन किस प्रकार करें? प्रत्येक कार्यकर्त्ता के लिए इस समय यह आवश्यक है कि वह अपने लिए कोई ऐसा कार्यक्षेत्र चुन ले, जो उपर्युक्त युगधर्म के मुख्य उद्देश्य में सहायक हो और साथ-ही-साथ वह उसकी प्रवृत्ति, शक्ति और सामर्थ्य के भी अनुरूप हो। विस्तृत कार्यक्षेत्र अथवा ऑल इण्डिया लीडरी का मोह वास्तव में विघातक है। एक बार महात्माजी ने एक पत्र में बड़ी गम्भीर बात लिखी थी:—

"सम्पूर्ण भारत के उद्धार का भार बिना कारण सिर पर मत लो। अपना निज का ही उद्धार करो। इतना भार काफी है। सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर ही लागू करना चाहिये। हम स्वयं ही भारतवर्ष हैं, बस यही मानने में आत्मा का बड़प्पन है। तुम्हारा उद्धार ही भारतवर्ष का उद्धार है। शेष सब व्यर्थ है, ढोंग है।"

यह बात हमें गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि हममें से प्रत्येक भारतभूमि का तीस करोड़वाँ हिस्सा हैं और जितने अंश में हम उन्नत तथा पतित होते हैं, उतने ही अंश में हमारी मातृभूमि का उत्थान अथवा पतन होता है।

मातृभूमि का पुनर्निर्माण

हमें अपनी मातृभूमि का पुनर्निर्माण करना है। बजाय इसके कि हम अखिल भारतीय अथवा अखिल प्रान्तीय आयोजनाओं के चक्कर में पड़ें, हमें उस भूमि को, जहाँ हमारा निवास-स्थान हो, सुन्दर तथा उपजाऊ बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य में हमें लेखक और कवि, कलाकार-इंजीनियर, अध्यापक तथा उपदेशक, किसान और मजदूर—सभी से सहायता लेनी पड़ेगी।

बहुधंधी राजनैतिक नेताओं तथा शासकों पर यह महान् काम थोड़े ही छोड़ा जा सकता है। हमें ऐसे स्वप्नदर्शी भी चाहिए जो प्रकृति तथा पुरुष की सम्भावनाओं के विषय में सोच सकें और साथ-ही-साथ जो व्यावहारिक कार्यक्रम भी बतला सकें। शासकों तथा सरकारों में, चाहे वे विदेशी हों या स्वदेशी, हमारा विश्वास नहीं, फिर भी साहित्य, संगीत तथा कलाओं के लिये यदि वे एक अलग मंत्री तथा एक भिन्न विभाग ही रक्खें तो शायद उनके द्वारा कुछ उपयोगी कार्य हो जाय।

हमलोग आज रूसी जनता की वीरता पर मुग्ध हैं। पर हमलोगों में से कितनों को इस बात का पता है कि आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व रूस में To The People (ग्रामीण जनता के सम्पर्क में आने के) आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था और बड़े-बड़े परिवारों के सहस्रों युवक और युवतियां अपने समस्त भोग विलासों का तिलांजलि देकर ग्रामों के किसानों और मजदूरों के बीच काम करने के लिए जा बसे थे। महात्माजी के पिछले तीस वर्ष के कार्यों का लक्ष्य यही था और ग्रामीण उद्योग धंधों के मूल में उनका यही सिद्धान्त काम करता रहा है।

चौराहे पर

भारतीय जनता आज चौराहे पर खड़ी हुई है। उसे अपने मार्ग का अन्तिम निर्णय करना है। आज उसे यह बात तय कर लेनी है कि वह किस प्रकार की सभ्यता अथवा संस्कृति का निर्माण करेगी। मशीनों की सभ्यता का अन्त मशीनगनों, तोपों और बन्दूकों तथा बमवर्षक वायुयानों में होगा, यह बात उतनी ही ध्रुव निश्चित है जितना पूर्व में सूर्य का उदय होना। जिस दिन मानव समाज के नेताओं ने अथवा राष्ट्रों के कर्णधारों ने हिंसा-द्वारा न्याय-अन्याय के निर्णय की बात सोची थी, उसी दिन निरपराध नर नारियों पर बमवर्षा का सूत्रपात हो गया था। हिरोशिमा की दुर्घटना उतनी ही निश्चित थी जितना हजार-दो हजार वर्ष बाद का सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण! नैतिक जगत की घटनाएं खगोल विद्या के नियमों की तरह अटल है। पाश्चात्य देशों अथवा उसके नक्कालों का रास्ता, हमारा रास्ता नहीं है। हमें तो अपना मार्ग स्वयं ही बनाना है, जो हमारी परम्परा, प्रवृत्ति और शक्ति के अनुरूप हो। यदि कहीं भ्रमवश हम नागरिक सभ्यता के मोह में फँस गये तो आज से बीस-पच्चीस वर्ष बाद भारतीय पुष्पक विमान अफ्रिका के निरीह बेगुनाह बाशिन्दों पर बम बरसाते हुए नजर आवेंगे। नहीं, यह मार्ग हमारा नहीं, हमें तो ग्रामीण प्रजातंत्रों का निर्माण करना है।

शहरी सभ्यता और विद्वेष

शहरी सभ्यता ईर्ष्या-विद्वेष की जननी है और कलकत्ते की महानगरी में दस वर्ष बिताने के बाद हम अपने अनुभव से यह कह सकते हैं कि बड़े-बड़े शहर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के जन्मदाता हैं।

निजी अनुभव

यदि धृष्टता न समझी जाय तो हम अपनी एक बात निवेदन कर दें। स्वयं हमारे मन में पूंजीपतियों के विरुद्ध जो विद्वेष उत्पन्न हुआ, वह कलकत्ते की एक गली की एक छोटी-सी कोठरी में रहने के कारण हुआ। कल्पना कीजिए, आपको ऐसे कमरे में रहना पड़ता है जिसमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिण बन्द है, केवल उत्तर की ओर एक खिड़की खुली हुई है! साथ ही यह भी समझ लीजिए कि कलकत्ते में दक्षिण द्वार के बन्द होने के मानी हैं हवा के मुख्य आवागमन के मार्ग का बन्द होना। आफिस में सात घंटे दिमागी काम करने के बाद जब आप घर लौटते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कालकोठरी में वापस आ रहे हैं! मकान का किराया तेरह रुपये महीने था, और सेठजी से हमने प्रार्थना की थी कि तीन रुपये महीने पर हमें पंखा लगा लेने दें, पर वे सात से कम पर राजी न हुए! सेठजी ने शायद विदेशी वस्त्र-व्यापार से जो रुपया कमाया था, उसी के द्वारा हमलोगों के लिए वे कबूतरखाने तैयार कर दिए थे। परमधाम को पधारने के लिए वे सुलभ मार्ग थे। स्वच्छ वायु के लिए भी तड़पना, भला इससे अधिक दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है? हम मन में सोचते थे कि वह व्यवस्था, जिसके अनुसार सेठजी-जैसे निरर्थक व्यक्ति मौज उड़ा सकते हैं और कार्यकर्त्ताओं को कबूतरखानों में रखकर उनसे रुपये वसूल कर सकते हैं, वास्तव में घोर अन्यायपूर्ण है और उसका खात्मा होना ही चाहिए। महात्माजी के साबरमती आश्रम का चार वर्ष का निवास और उनके प्रेम सम्बन्धी सैकड़ों लेख भी हमारे मन के विद्वेष को पूर्णतया नष्ट करने में समर्थ न हुए। जब हमारे-जैसे पढ़े-लिखे आदमी की यह मनोवृत्ति हो गई तो शहरी सभ्यता के कारण लाखों ही अपढ़ श्रमजीवी मनुष्यों के हृदय में विद्वेष के जो भाव नित्य-प्रति उत्पन्न हो रहे हैं, उनकी कल्पना आप आसानी से कर सकते हैं।

विषमता का दुष्परिणाम

हम जानते हैं कि ईर्ष्या-विद्वेष बुरी चीज है और उसकी भावना को हृदय में स्थान देना क्षुद्रत्व का सूचक है। पर हम सब लोग महात्मा नहीं हैं और अपनी वासनाओं पर काबू करना कोई आसान काम नहीं। दरअसल वासनाओं में प्रेम से अधिक नहीं तो प्रेम के समान शक्ति तो है ही। जहाँ एक ओर तो महलों के भोग-विलास हो और दूसरी ओर गन्दी गलियों की दयनीय दरिद्रता, वहाँ यह सर्वथा स्वाभाविक है कि ईर्ष्या के भाव उत्पन्न हो। विषमता वह पूतना है जो सद्भावों का भक्षण कर लेती है। शहरी सभ्यता की वह सखी-सहेली है और दोनों का विनाश साथ-साथ ही होगा।

शहरी संस्कृति पर ए० इ० के विचार

इस प्रसंग में हमें सुप्रसिद्ध आयरिश विचारक स्वर्गीय जार्ज रसैल (ए० ई०) के एक निबन्ध की याद आती है, जो उन्होंने अमरीकन अर्थशास्त्रियों के लिए लिखा था। उस लेख में वे निम्नलिखित परिणाम पर पहुँचे थे :—

"राष्ट्र के शारीरिक स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य की रक्षा के लिए यह हिदायत जरूरी है कि आदमी ग्रामों में अधिक संख्या में रहें और शहरों में कम। मेरा तो यह भी विश्वास है कि यदि हमारी सभ्यता की नाव शहरी उद्योग धंधों के बजाय ग्रामीण उद्योग धंधों पर रक्खी जाय तो मानव समाज के लिए यह बड़ी कल्याणकारी बात होगी।

"आधुनिक सभ्यता के कारण अधिक से अधिक आदमी प्रकृति से दूर चले जाते हैं। शीतल मन्द-सुगन्ध पवन को, स्वास्थ्य को, शक्ति को और सौन्दर्य को तिलाञ्जलि देकर वे शहरों में जा बसते हैं, जहाँ तीसरी पीढ़ी में पहुँचने पर उनका ढाँचा ही बदल जाता है। पैर लड़खड़ाते हैं, कद छोटा हो जाता है, चरित्र में जल्दबाजी आ जाती है और चाल चलन खराब हो जाता है। दिमाग में देवत्व के बजाय शैतानियत घर कर लेती है। जो लोग शहरों को जाते हैं, उन्हें पहले तो यहाँ की जिन्दगी बड़ी लुभावनी लगती है, पर पीछे वे पछताते हैं। एक पुरानी कहावत के अनुसार शहरी जिन्दगी उस रोटी की तरह है जो स्वाद में मीठी, पर परिणाम में भयंकर कड़वी तथा हानिकारक है। पहली पीढ़ी पर तो शहरी जीवन का नशा चढ़ जाता है, लेकिन तीसरी पीढ़ी में वह सूत्र टूट जाता है जो उन्हें प्रकृति माता से बाँधे हुआ था, और तब जीवन संकुचित हो जाता है, क्योंकि, उसका मूल स्रोत ही सूख जाता है। क्या कोई ऐसा ईश्वरीय दूत, कोई राजनीतिज्ञ, कोई नेता इस भूमि पर जन्म लेगा जो मानव-समाज की कल्पना शक्ति को जाग्रत करके उसे शहरी सभ्यता से निकालकर बाहर प्रकृति के निकट उसी प्रकार ले जाय, जिस प्रकार पुराने जमाने में, हजरत मूसा इसराइल के निवासियों को मिस्र देश की गुलामी से बाहर निकाल ले गये थे। शहरी सभ्यता को छोड़कर मानव-समाज को उस प्रकृति के निकट ले जाना है, जहाँ सूर्य का प्रकाश है और तारों भरा आकाश, जहाँ पृथ्वी की मृदु मादक गन्ध है और स्वच्छ वायु, प्राकृतिक सौन्दर्य है तथा जीवन का माधुर्य और उल्लासप्रद स्वास्थ्य"

हम क्या करें?

हमारे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि हमें एक ऐसा नेता मिल गया था जो शहरी सभ्यता के भयंकर चंगुल से बचाने के लिए भरपूर कोशिश कर रहा था। हमारा कर्त्तव्य है कि हम महात्माजी के रचनात्मक कार्यक्रम में पूरी पूरी सहायता दें। उक्त कार्यक्रम में ऐसी कोई भी चीज नहीं थी कि जिसपर कोई समझदार अर्थशास्त्री या राजनैतिक कार्यकर्ता न्यायतः ऐतराज कर सके।

'दूरदर्शिता का भी यही तकाजा है कि हमलोग अपने यहाँ ऐसे उद्योग धन्धे कायम करें। ग्रामीण जनता के लिए ऐसी उपयोगी आयोजनाओं का संचालन करें, जिससे हमारे यहाँ के किसान अधिक सुखी, सम्पन्न हों।

मुख्य प्रश्न

इस समय मुख्य प्रश्न हमारे सामने यह है कि हमारे ग्राम किस प्रकार स्वावलम्बी हों। इसी उद्देश्य को सामने रखकर हमें रचनात्मक कार्यक्रम की एक रूपरेखा तैयार करनी चाहिये। महात्मा गान्धी, आचार्य विनोवा भावे, काका कालेलकर, श्री कुमारप्पा और श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रभृति के लेखो से इस कार्य में हमें पूरी-पूरी सहायता मिल सकती है।

सबका सहयोग

यदि इस समय हम ऐसी आकर्षक स्कीम तैयार कर सके, जिसमें ग्रामीण जनता के मनो-रंजन के साथ-साथ उसके अन्न वस्त्र की समस्या का भी हल होता जाय, तो हम भावी घोर संकट से कुछ अंशों में बच सकते हैं।

यज्ञ की पूर्त्ति

एक महान् यज्ञ की पूर्त्ति हमें करनी है, वह यज्ञ है ग्रामों की सर्वांगीण उन्नति। कहावत है, "लगे हाथ सबका, तो उठ जाय छप्पर।" इस छप्पर को उठाने के लिये सबका सहयोग जरूरी है। सेठजी को बतलाने की आवश्यकता है कि सूम की तरह धन जोड़ने के बजाय अब उसे लोकहित के लिये खर्च करने में उनका तथा उनकी सन्तान का कल्याण है और बौहरों तथा जमींदारों को यह समझाने की जरूरत है कि शासन के पुराने जमाने अब लद गये और अब वे तथा किसान-मजदूर एक ही नाव पर सवार हैं। अकेले बचकर वे इस भवसागर के पार नहीं जा सकते। भलाई इसीमें है कि हम सब मिलकर आनेवाले खतरे का मुकाबला करें।

जो किसान-मजदूर ग्रामीण पंचायत-घर बनाने के लिये अपने दस-बीस घंटे देता है, उसका काम किसी राजनैतिक नेता के व्याख्यान से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। रूस में लेनिन के जमाने में मजदूरों ने अपनी शनिवार की छुट्टी को न मनाकर राष्ट्र के लिये काम करना तय किया था। स्वयं लेनिन भी मजदूरो के साथ आठ-आठ घंटे काम करते थे, यद्यपि उनकी गर्दन में गोली के छर्रे मौजूद थे। उस समय लेनिन ने कहा था, इस शताब्दी की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना सन् १९१७ की राज्य-क्रान्ति नहीं है, बल्कि मजदूरों का अपनी सनीचर की छुट्टियों को राष्ट्र के लिए अर्पित कर देना है। महात्माजी का नियमानुकूल चर्खा कातना उसी उच्च कोटि का यज्ञ था।

एक बात जनता से

अन्त में हमें जनता से एक बात कहनी है, वह यह कि शासकों के भरोसे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से काम नहीं चलने का। लाखों आदमियो के जीवन-मरण के प्रश्न को हल करने

में अल्पसंख्यक शासक कहाँ तक सहायक हो सकते हैं। उन्हें तो आज के उथल-पुथल के जमाने में यही चिन्ता रहेगी कि कहीं उनका आसन ढीला न पड़ जाय। यह भी सम्भावना है कि वे रचनात्मक कार्य के प्रति उतने सजग न हों। इसलिये रचनात्मक कार्य जनता को अपने ही हाथों में लेना चाहिये। छोटे छोटे कार्यकर्त्ताओं को समझ लेना चाहिये कि यह महान् भवन उन्हींके द्वारा बनाया जायगा। अकेला इंजीनियर या दस बीस कारीगर क्या कर सकते हैं? अगर ईंट और गारा ढोनेवाले मजदूर न हों, तो ये महल कैसे बन सकते हैं?

लेखक और कलाकार क्या करें

एक प्रार्थना अपने सहयोगियों से भी हमें करनी है। जो लेखक अथवा कवि या पत्रकार इस समय राष्ट्र के रचनात्मक कार्य में सहायक नहीं हो सकता, वह अपने को निर्जीव और नपुंसक बना लेगा। एक ओर हमें ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं के लिये मानसिक भोजन तैयार करना है, तो दूसरी ओर अन्यायों तथा अत्याचारों के प्रति अपनी आवाज बुलन्द करनी है। विदेशी राज्य के चले जाने से रामराज्य थोड़े ही कायम हो गया है? और, यदि हम सोते रहें, तो भूरी नौकरशाही हमारे कंधे पर सवार हो जायगी। इस खतरे का मुकाबला करने के लिये हमें सदैव उद्यत रहना चाहिए। अनाचार सदा शासकों की ओर से ही नहीं होते, मूर्ख जनता भी उमड़ कर कभी कभी बड़े जुल्म ढाने लगती है। सबसे जरूरी चीज यह है कि हम अपनी दृष्टि को धुंधली न होने दें। जिस तरह डूबते डूबते तक जहाज में बेतार का तार देनेवाला अपनी ड्यूटी पर जमा रहता है और चारों ओर खबरें भेजता है, उसी प्रकार लेखकों को हर हालत में और प्रत्येक भयंकर से भयंकर स्थिति में अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

पत्रकारों की जिम्मेवारी

इस विषय में सबसे बड़ी जिम्मेवारी पत्रकारों की है, खास तौर पर उनकी, जिन्होंने मिशन के रूप में इस वृत्ति को ग्रहण किया है। यदि वे उच्च आदर्शों को निरन्तर जनता के सम्मुख रखते रहें और इस बात का बराबर खयाल रक्खें कि उनकी किसी रचना से जनता का सांस्कृतिक धरातल नीचा तो नहीं होता, तो वे जन-साधारण को उच्च लक्ष्य की ओर ले जा सकते हैं।

पत्रकार प्राचीन काल के नारद मुनि के अवतार हैं और नारद की तरह ही उन्हें घर घर सांस्कृतिक सन्देश पहुँचाना चाहिये। यदि हमलोगों में क्रियात्मक कल्पना-शक्ति हो, तो हम क्या नहीं कर सकते।

हम कल्पना कर रहे हैं उस युग की, जब भारतवर्ष में घी दूध की नदियाँ बहने लगेंगी 'सहस्त्रधारा पयसा मही गौ' (ऐसी गाय जिससे कि हजार-हजार धाराएं रोज पैदा होती हैं) वेद का

यह वाक्य चरितार्थ होगा, जब हमारे विद्यालय तपोवन का रूप धारण कर लेंगे, जहाँ सुन्दर प्राकृतिक स्थलों के बीच हमारे बालक-बालिकाएँ उछल-कूद करते हुए शिक्षा-ग्रहण करेंगे, जब हमारे प्रत्येक ग्राम में एक छोटा-सा पुस्तकालय होगा, जिनमें बाल्मीकि, व्यास और कालिदास से लगाकर कबीर और नजीर, रवीन्द्र और मैथिलीशरण तथा आधुनिक युग के अन्य महान् लेखकों तक के ग्रन्थों के संक्षिप्त संस्करण होंगे, जब स्वच्छता हमारा जातीय गुण बन जायगी और हमारे देश का प्रत्येक निवासी हर तरह से भरा-पूरा जीवन व्यतीत करने लगेगा, जब न कोई शासक होगा न शासित और पारस्परिक सद्भावना तथा सहयोग के आधार पर हमारे सारे कार्यों का संचालन होने लगेगा। उस युग को इस भूमि पर लाने के लिये, जिसमें भिन्न-भिन्न रुचि और प्रकृति के मनुष्य अपने लक्ष्य को सम्पादित करने के लिये निर्बाध रूप से अग्रसर होंगे, हम सबको कठोर साधना, उग्र तप करना होगा। हम वृक्षारोपण करेंगे, ताकि हमारे पुत्र-पौत्र उसके फलों का उपभोग कर सकें। इस पुण्यभूमि में सात लाख प्रजातंत्रों की स्थापना तथा ग्रामीण सभ्यता का निर्माण ही हमारा युगधर्म है।
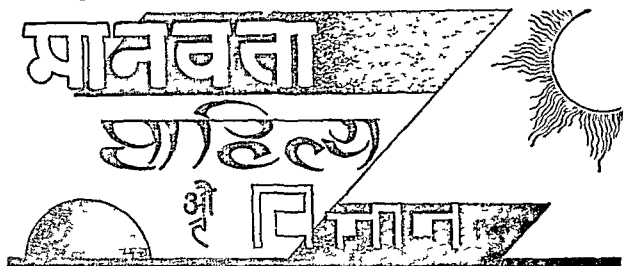
[श्री नलिनविलोचन शर्मा]

जब परिवार का होनहार लड़का प्रवेशिका परीक्षा में सफल होता है तो उसके दूरदर्शी अभिभावक गंभीरतापूर्वक निर्णय देते हैं—आगे साहित्य पढ़कर क्या करना है, विज्ञान लो।

स्वयं एक साहित्यिक ने ही—मैक्सईस्टमैन, द लिटरेरी माइंड में, बहुत पहले कहा था कि विज्ञान जैसे-जैसे साहित्य के लिये सुरक्षित क्षेत्रों पर आक्रमण करेगा, वैसे-वैसे साहित्य को अपनी सीमाएँ संकुचित करनी पड़ेंगी।

और, बात कुछ ऐसी है कि आशंकित विपत्ति इससे भी भयंकर है। साहित्य का भविष्य कैसा होगा, इसपर पीछे विचार किया जा सकता है। आज तो मनुष्यता ही खतरे में है। *मनुष्य सदैव ही साधना तथा सौंदर्य सृष्टि के लिये सक्रिय बना रहेगा और इस तरह साहित्य का प्रवाह* तो अविच्छिन्न रह जायगा। किन्तु साहित्य का आधार, मनुष्य, बचा रहे तब न!

मनुष्य के सामने आज अपने सम्बन्ध में भ्रामक धारणाएँ नहीं रह गई हैं। कोपनिकस ने मनुष्य का भौगोलिक महत्त्व, लॉक ने सांस्कृतिक गरिमा, डारविन ने विकास-सम्बन्धी मिथ्याभिमान, फ्रॉयड ने मनोवैज्ञानिक उत्कर्ष तथा मार्क्स ने राजनीतिक-आर्थिक रूढ़ियाँ ध्वस्त कर उसकी आँखों के सामने से रंगीन पर्दा हटा दिया है। डर है, आज का मनुष्य अपने से घृणा न करने लगे। आज उसके पास पारलौकिक विश्वासों का सम्बल नहीं है और भय यह है कि कहीं वह अपने को कमजोर न मान बैठे।

आज वह झूठी बातों में विश्वास नहीं करता, उसका अभ्यस्त आधार छूट गया है। यह स्पृहणीय होने के साथ ही साथ घातक हो सकता है। इस विपत्ति से उसे साहित्य ही बचा सकता है। साहित्य उसका सुदृढ़ आधार बन सकता है। साहित्य उसे अपने में विश्वास करना सिखा सकता है। साहित्य का पहले से कहीं ज्यादा आज महत्त्व है; आज साहित्य मनुष्य का आधेय न रह-कर आधार बन रहा है।

और, साहित्य अपने इस गंभीर उत्तरदायित्व को विज्ञान का बहिष्कार कर नहीं सम्हाल सकता। कीट्स ने एक बार बड़ी कटुता के साथ कहा था—'धिक्कार है सर आइजक न्यूटन को, जिन्होंने इन्द्रधनुष का विश्लेषण कर उसकी कविता को नष्ट कर दिया था।' एडगर एलन पो ने 'विज्ञान के प्रति' शीर्षक एक कविता ही लिख डाली थी। इसी तरह उन्नीसवीं शताब्दी के इंग्लैंड के प्रतीक-वादियों और आधुनिक अतियथार्थवादियों (Surrealists) ने तथा अपने यहाँ के छायावादियो ने कविता को 'विशुद्ध' ('Pure') बनाए रखने के लिये उसे ज्ञात या अज्ञात रूप से विज्ञान एवं समाज-शास्त्र से दूर ही रक्खा।

आज भी कवियों के बारे में स्वयं उनकी और दूसरों की यह धारणा बनी हुई है कि वे दृश्य और अनुभूत जगत् के विषय में नहीं लिखते, प्रत्युत् किसी अगोचर तथा अज्ञात लोक की गहराइयों का ही उद्घाटन करते हैं।

जो लोग यह विचार रखते हैं, वे भूल जाते हैं कि कोई भी आधुनिक कवि अपने को ऐसे प्रभावों से बचा नहीं सकता—ठीक उसी तरह, जिस तरह कोई लेखक अपने युग की संस्कृति से अपने को अलग नहीं रख सकता।

हम स्वीकार करते हैं कि विज्ञान और कविता की भाषा सर्वथा भिन्न प्रकार की होती है; दोनों की प्रणालियाँ भी अलग-अलग और अपने ढंग की हैं। जैसाकि बहुत पहले अरस्तू ने (Nicomachean Ethics) में कहा था, एक गणितज्ञ से संभावनात्मक तर्कों की आशा करना और एक साहित्यिक से वैज्ञानिक प्रमाणों की माँग करना, दोनों ही मूर्खतापूर्ण बातें हैं। लेकिन यह चाहता ही कौन है कि कवि विज्ञान की भाषा और प्रणाली को अपनाएँ। कविता पर वैज्ञानिक शब्दावली का नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव अपेक्षित है; जरूरत इस बात की नहीं है कि कवि विज्ञान की भाषा अपना लें, बल्कि इसकी है कि वे विज्ञान-सम्मत दर्शन स्वीकार करें।

यदि कविता का लक्ष्य सत्य है—और है, यह कीट्स-जैसे कवि भी मानते हैं—तो कविता के विकास में विज्ञान बहुत बड़ी सहायता पहुँचा सकता है। यह कुछ आवश्यक नहीं कि कवि द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, मनोविश्लेषण, सापेक्षवाद या परमाणु बम की चर्चा ही करे। वास्तविक महत्त्व की बात तो यह है कि विज्ञान के द्वारा कवि के मानवस्वभाव के पर्यवेक्षण और अध्ययन में

उदारता आ जाती है तथा सृष्टि-सम्बन्धी उसका ज्ञान नवीकृत, विस्तृत एवं निश्चयनीय हो जाता है। जीवन के अनुभवों के संश्लेषण (Integration) के लिये कविता तथा विज्ञान दोनों की आवश्यकता होती है। फलत दोनों को परस्पर-विरोधी दिशाओं में या एक दूसरे से अलग रहकर काम नहीं करने देना चाहिए।

पीकाक और मेकाले-जैसे विद्वानों ने कविता के संबंध में कुछेक भ्रामक सिद्धान्तों की उद्भावना की थी। उनका कहना था कि कविता अज्ञान और अंधकार में ही फलती-फूलती है कि वह आदिम मनुष्य की असंस्कृत कल्पना का नैसर्गिक उच्छ्वास है। ऐसे विचार सर्वथा इतिहास-विरुद्ध तथा भ्रामक है।

काव्य विज्ञान का वाछनीय पूरक है। विज्ञान जहाँ समाप्त होता है, वहीं कविता का प्रारंभ होता है। कविता ही विज्ञान के आविष्कारों और अनुसंधानों को मानवीय, मूर्त तथा हृदय ग्राह्य बना देती है।

पाश्चात्य साहित्य में टामस हार्डी ने बीसवीं शताब्दी का प्रतिनिधि महाकाव्य 'डाइनास्ट्स' (Dynusts) लिखकर इस आदर्श का व्यावहारिक एवं अनुकरणीय रूप हमारे सामने रखा है। यह संतोष का विषय है कि हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य, दूसरी भाषाओं के साहित्यों की अपेक्षा बहुत कम समय में ही इस ठोस धरातल पर पहुँच गया है और दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ रहा है।
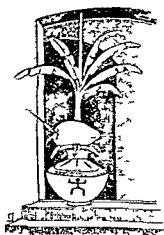
[श्री रामानंद शर्मा]

अच्छा, तो रामचरितमानस का एक पन्ना उलटिए और साहित्यिक दृष्टि से उसका अध्ययन कीजिए।

सीता की सुधि लेकर हनुमान रामचन्द्र के पास आ खड़े हुए हैं। लंकेश्वर रावण के यहाँ सीता सकुशल हैं, यह समाचार सुनकर शंकित-हृदय राम, दबी जबान से पूछते हैं—

"कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥"

साधारण दृष्टि से इस प्रश्न में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती है। कहो भाई, जानकी वहाँ किस तरह हैं और कैसे अपने प्राणों की रक्षा करती हैं? बात तो इतनी ही है। लेकिन जरा कवि के वाक्य-विन्यास और शब्द-चयन पर ध्यान केंद्रित कीजिए।

थोड़ी देर के लिए भावुक पाठक यह भूल जायँ कि रामचन्द्र भगवान् थे। यह मान लिया जाय कि वे एक असाधारण वीर पुरुष थे, जिन्होंने विश्वविजयी वीरों का मान-मर्दन करके जनक-कुमारी जानकी का पाणिग्रहण किया था। आज वही जानकी रावण के यहाँ, जिसकी लोलुप दृष्टि सीता पर स्वयंवर सभा से ही रहती आई है, उसी प्रतिस्पर्द्धी रावण के यहाँ सकुशल हैं। यह

समाचार सुनकर राम हँसें या रोएँ ? पहली नजर मे उनका हँसना ही उपयुक्त जान पड़ता है। पर मनोविज्ञान का साधारण ज्ञान चुपचाप बता जाता है कि कोई अपनी पतिव्रता स्त्री का यह हाल सुनकर प्राणों के भीतर से खुश हो सकेगा। जो नारी अत्यंत दर्प के साथ, करुण-कातरता के साथ, तर्क सिद्ध आग्रह के साथ अयोध्या का राजमहल छोड़कर राम के साथ वनवासिनी हुई थी, वही सोने की लंका में दुर्धर दुराचारी दशकंठ के यहाँ सुखपूर्वक है, यह सुनकर क्या वनवासी राम का मन पहाड़ की ऊँचाई पर से गिर नहीं पड़ेगा—सहृदय पाठक स्वयं अनुमान कर लें। बारीकी से देखने पर कवि की योजना में विषाद का यह स्वर साफ सुनाई पड़ जाता है।

'कहहु तात'—इसमें तात शब्द अपने अंतर में करुण आर्ति छिपाए हुए है—अत्यंत कातरावस्था में ही 'तात' शब्द का उच्चारण होता है। राम का हहरता हुआ हृदय इस 'तात' में साफ दिख रहा है।

और आगे बढ़ा जाय।

'केहि भाँति जानकी'—जानकी शब्द पर रुका जाय। राम ने 'जानकी' क्यों कहा—प्रियतर 'सीता' शब्द का प्रयोग क्यों न किया? याद रहे, 'सीता' ही राम को सबसे प्यारा शब्द है, क्योंकि उसी मधुर शब्द में राम के प्राणों में रमी प्रेम-भावना की मर्म व्यंजना हो सकती है—'जानकी' में नहीं। यों भी शब्दों की खान में 'सीता'-सा मधुर शब्द दूसरा दीख नहीं पड़ता है। 'सी' के उच्चारण के साथ अंतरतम से मधुस्राव शीतल सलाई की तरह खिंचता हुआ कंठ-द्वार तक आ जाता है और सामने 'ता' का तालु फैलाकर हाहाकार रव से कूद पड़ता है। अंग्रेजी का 'स्वीट' (Sweet) शब्द संकोच के साथ उसके सामने खड़ा हो सकता है—'ट' की कठोरता तन्वंगी 'त' के साथ कैसे हाथ मिलाएगी?

ऐसे आह्लादकारी संबोधन को छोड़कर राम ने तप्स्यता के व्यंजक जानकी को क्यों पसंद किया? जरूर इसमें कुछ रहस्य है। क्योंकि कवि के शब्द अमूर्त भावों की सजीव प्रतिमा होते हैं—व्यक्तिगत विलक्षणताओं की पृष्ठभूमि में संश्लिष्ट चित्रों को अंकित करते हैं—यों ही पर्याय-वादी शब्द वहाँ भीड़ लगाकर खड़े नहीं हो जाते।

'जानकी' मे जनक महाराज की विदेहता और उनका विशाल वैभव—दोनों की व्यंजना होती है, विदेह की बेटी अनासक्त भाव से कहीं भी रह सकती हैं। अथवा, राजा की लाड़ली बेटी वनवासी राम के सहवास से ऊबकर लंका के स्वर्ण सौध में सुखपूर्वक रह सकती है। राम की प्यारी सीता सचमुच आज उनके अंतर से खो गई है। उसीसे 'जानकी' का सभ्रम उच्चारण सुन पड़ता है।

ध्यान रहे, कवि के प्रयुक्त शब्दों में व्यंजना ही प्रधान होती है और वही वांछनीय वातावरण की सृष्टि कर देती है। यहाँ जानकी शब्द राम के शंकाशील हृदय और सीता की परिस्थिति का कैसा मार्मिक चित्रण उपस्थित करता है, सहृदय संवेद्य है!

अब पद पूरा पढ़ लिया जाय—

कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहति करति रच्छा स्वप्रान की।

'रहति' और 'करति' का अध्ययन हो। राम के अंतर्मन की व्यथा अनजान में ही प्रश्न का रूप धारण कर लेती है:—सीता वहाँ—दुराचारी रावण के पास—किस प्रकार रहती हैं ? क्या उन्होंने रावण की वश्यता स्वीकार कर ली है ? क्या वह अभागे राम को भूल गईं ? व्यंजना गूँजकर बहुत-सी शंका और संकोच के चित्र खड़ा कर देती है।

'जिव बिनु देह नदी बिनु बारी'—कहकर जो हठ से साथ आई थीं, वह क्या इतनी जल्द बदल गईं ? क्या सोने की चमक-दमक ने अथवा रावण के अनुनय-अनुरोध ने उनकी प्यारी सीता को छीन लिया ?....अगर शंका निर्मूल है, तो वह वहाँ जीवित कैसे हैं ? स्वयंवर-सभा से हारा हुआ रावण तो मानों ताक-झाँक में ही बैठा था तभी तो इतने छल-बल के साथ वह उन्हें हर ले गया। तो क्या वह वहाँ उनकी पूजा कर रहा होगा ? उत्तर निराशा-जनक है।

सीता राजी-खुशी रावण के महल में हैं, राम का अंतर्मन इसकी कल्पना से भी काँप उठता है। फिर, सीता के प्राणों की रक्षा कैसे होती है ? नग्न सत्य मुँह बाए खड़ा है !

अगर सीता राजी न हुईं, तो राम ने उन पर जोर आजमाइश क्यों न की ? उनको सुरक्षित क्यों छोड़ रखा है ? अपने रोषानल में उन्हें भस्म क्यों न कर दिया ? अथवा पति-प्राणा नारी ने पापी के हाथों से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या क्यों न कर ली ? दोनों हालत में जानकी का जीवित रहना संभव नहीं।......

पर यह हनुमान कहता है—वहाँ सीता जीवित और सुरक्षित हैं ! अन्तर्द्वन्द्व का कैसा विशाल चित्र खड़ा हो गया है सामने—सो भी केवल दो शब्दों के सहारे—'रहति' और 'करति' के द्वारा ! और वह 'द्वन्द्व' किन सरल और शिष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है, मर्यादा-पुरुषोत्तम का हृदय किन सतर्क, सुघड़ और स्निग्ध हाथों से खोला गया है—दाँतोंतले उँगली दबानी पड़ती है ! धन्य है राम का वह आलोडित हृदय और धन्य है उसका चतुर चितेरा तुलसी ! और धन्य साहित्य की वह मर्म व्यंजना, जिसकी प्रसन्न रश्मियाँ हृदय के पर्णों को गुदगुदा कर उत्फुल्ल कर देती हैं !

शंका, संभ्रम, संताप और जिज्ञासा से भरा राम का हृदय अभी किस अद्भुत रस का आस्वाद कर रहा है, पाठक ही निर्णय करें। विप्रलंभ शृंगार की निष्पत्ति दिखाकर उन्हें निरुत्तर नहीं किया जा सकता है। यह तो कुछ और ही चीज है, जिसके सामने भाव-सबलता भी सकपका कर खड़ी हो जाती है !

[illegible]—

रा[illegible] यह प्रश्न संदेशवाहक हनुमान पर क्या असर डालता है, यह भी देख लिया जाए। वह अपनी आँखों से सीता की स्थिति देख आया है। वह दोनों का भक्त है। दोनों उसके आराध्य हैं। माता—सीता के समान माता के प्रति ममता का झुकाव सहज ही माना जायगा, सो भी उस माता के प्रति जो वन्दिनी की विषम वेदना भुगत रही है।

राम का प्रश्न हनुमान को विचलित कर देता है—ऐसी नारी के प्रति भी वीर नर की आशंका। उसका भाव जगत् क्षुब्ध हो जाता है। उसका हृदय ऐंठ जाता है। कुछ रोष, कुछ अपमान, कुछ हास्य उभर आते हैं। 'अज्ञान कितना उपद्रवी होता है'—सोच कर शायद कुछ खरी-खोटी सुनाने की प्रेरणा भी हो आती है। पर, आँख उठाते ही आराध्यदेव जिज्ञासा की मुद्रा में खड़े दीख पड़ते हैं। चटुल वृत्तियाँ संयत हो जाती हैं और भक्ति-भावना की ऊँचाई पर चढ़कर एक अनुपम कला-कृति का सृजन कर देती हैं, जिसका मृदुल कलरव सिर्फ प्रश्नकर्ता के मन [illegible] नहीं, बल्कि उसके सामने फैले समस्त सचराचर को स्तंभित सा कर देता है। [illegible] समस्त विश्व-प्रकृति ने ही वह प्रश्न किया हो और उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा कर रही हो!

इस गम्भीर परिस्थिति में हनुमान ने जो उत्तर दिया, वह सीधा नहीं था, वक्र-विदग्धता से ओत-प्रोत था, कला-पूर्ण वार्तालाप का श्रेष्ठ उदाहरण था। स्वामी रामतीर्थ के लेखों में एक जगह कला-पूर्ण बातचीत का सर्वोत्तम उदाहरण पाया जाता है।

पारिवारिक झंझटों से ऊबकर रूस का सबसे बड़ा कलाकार और विचारक टाल्सटाय एक दिन साइबीरिया के घोर हिमप्रदेश में नंग-धड़ंग घूम रहा था। प्रातःकालीन झंझा चल रही थी। और टाल्सटाय नंग-धड़ंग, लापरवाह! उसी समय रोएँदार कपड़ों से रोम-रोम आच्छादित एक अश्वारोही राजकुमार भी वहाँ आ पहुँचा। शायद वह अपनी बहादुरी दिखा रहा था। टाल्सटाय को देखते ही वह सिहर उठा और पूछ बैठा—

Tolstoy, how do you walk naked ?

(नंग-धड़ंग कैसे घूमते हो, टाल्सटाय!)

जीवन-दर्शन की उधेड़-बुन में पड़ा हुआ टाल्सटाय यद्यपि उस समय अर्धविक्षिप्त सा था, फिर भी कला ने उसका साथ नहीं छोड़ा था। छूटते ही उसने जवाब दिया—

Prince, how do you keep your nose naked ?

(राजकुमार, तुम अपनी नाक कैसे खुली रखते हो!)

इस तरह के सवाल-जवाब में व्यंजना का बोल प्रधान होता है, जिससे उत्तर तो मिल ही जाता है, और प्रश्न भी बना रह जाता है। टाल्सटाय के प्रश्न ने साफ बता दिया कि जिस प्रकार आवश्यकता और अभ्यास से नाक खुली रह सकती है, सर्दी के डर से वह ढाँकी नहीं जा सकती है, उसी तरह साधना के ज़ोर स सारे शरीर को भी नंगा रखा जा सकता है; आवश्यकता है सिर्फ अन्त:प्रेरणा की और उसी के अनुपात में अभ्यास की।

बातचीत की यह कला आदमी को निरुत्तर बनाकर अंदर में सतत नहीं करती है, बल्कि, एक सुखद स्निग्धता से उत्फुल्ल बना देती है।

तो हनुमान का जवाब भी सुन लिया जाय:

''नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका जाहि प्रान केहि बाट॥''

सीता के प्राण कैसे बचे हैं, प्रश्न यही तो है। जवाब में एक दूसरा प्रश्न ठोक दिया जाता है—बताइए, भला प्राण जायँ तो किस रास्ते? वे तो बंदी बने हुए हैं। आपका नाम रात-दिन उन पर पहरा दे रहा है, आपका ध्यान लौह कपाट-सा चारो ओर से उन्हें घेरे हुए है, उनके नेत्र अपने पैरों में जड़े हुए हैं भारी भरकम ताले की तरह। इस कैद से सीता के प्राण छूटें, शरीर से कैसे बाहर जायँ, आप ही बताइए न?

"कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥"

इस प्रश्न का कैसा सुन्दर जवाब मिला रामचंद्र को, विचार कीजिए। कहाँ गई उनकी शंका, कहाँ गया उनका संताप, और कहाँ गई उनकी तटस्थता? क्या मंत्र की फूँक की तरह सब कुछ "छू मंतर" नहीं हो गया? क्या खोई हुई 'सीता' दौड़कर उनके प्राणों में नहीं आ बसी? क्या विप्रलंभ-शृंगार 'संयोग' में नहीं बदल गया।

भावोपवन का यह कल-कूजन कवीन्द्र रवीन्द्र का स्वर क्यों नहीं छीन लेगा—'आजि मर्मर ध्वनि केनो जागिलो रे?'

भाव और अनुभाव की कैसी मंजुल सृष्टि हुई यहाँ—सीता निर्जन प्रदेश में बंदिनी बना दी गई हैं। वहाँ किसी का प्रवेश नहीं हो सकता है। चारो ओर सख्त पहरा है। और सीता राम-नाम की रट लगाती उन्हीं के ध्यान में मग्न हैं। कभी आँखे खोलती भी हैं तो नत होकर चरणों में देखने लग जाती हैं, इधर-उधर की दुनिया पर दृष्टिपात भी नहीं करती हैं। अनुभाव का पूरा चित्र देख लिजिए। फिर, व्यंजना की मर्मर ध्वनि भी सुन लीजिए। जो नारी इस तरह तन-मन को बटोर

कर तपस्या कर रही हो, उसके प्रति स्वप्न में भी कुभावना। धिक्कार नहीं, नहीं, सीता राम की ही —वो राम में भी राम की ही रहेगी, यह प्रतिध्वनि भी स्पष्ट सुन पड़ती है।

राम का आलोड़ित हृदय हनुमान के एक-एक शब्द की सीढ़ी पर चढ़कर शान्ति लोक में पहुँच गया। मानो सीता अपने समस्त भाव-सौंदर्य के साथ राम के सामने आ खड़ी हुई। राम वह रूप देखकर बन्द हो गए। उनके प्राणों में पुलक और स्वर्गीय शीतलता रिम झिम रिम झिम बरस पड़ी। वे सम्मिलन और सम्मोहन के अतल सागर में डूबकर अस्तित्व शून्य से हो गए। मानों राम का सीता में सम्पूर्ण रूपान्तर हो गया।

और, यह सब काम सिद्ध हुआ उस कौशल से जिससे एक ओर की दीवार पर अङ्कित चित्राधार सामने की दर्पण-द्युति दीवार में अनायास प्रतिबिम्बित हो उठता है। कवि कहता तो है सीता के बारे में, पर उसके साथ साथ चमक उठता है राम का हृदय, जो उसके सामने चुप चाप खड़ा है। आलम्बन के अनुभाव के सहारे निर्मित आश्रय का यह चित्रण कितना अनुपम है, रस-मर्मज्ञ स्वयं निर्णय करें।

... हुई भावशान्ति। लेकिन वास्तव-जगत् में तो सीता की बन्धन-मुक्ति का परमावश्यक कार्य पड़ा हुआ है, और रस-सिद्ध कवि तदर्थ भाव भूमि तैयार किए बिना उस ओर कैसे बढ़ सकता है? क्योंकि भाव ही तो वस्तु-जगत् का निर्माण करेगा।

तो उस पुरस-भूमि का भी दर्शन हो जाए।

राम सीता के ध्यान में मग्न हैं, मिलन के आनन्द-लोक में विचर रहे हैं, तृप्ति का आत्यन्तिक सुख लूट रहे हैं। बड़ी सावधानी से जगाकर उन्हें कठोर सत्य से अवगत कराना है, मिलन से खींचकर वियोग के बड़वानल में खड़ा करना है, और फिर एक झटके के साथ बिजली का बटन दबा कर उन्हें वीर-रस की आंधी में उड़ा ले जाना है रावण के पास—युद्ध देहि।

और यह कार्य उसी कुशलता से होना चाहिए, जिससे कुम्हार तीव्र वेग से घूमते चक्र पर मिट्टी का बर्तन गढ़ता है, मुलायम मिट्टी के अन्तर में हाथ डाल-डालकर कलात्मक रूप देता है, या जिस तरह प्रातःकाल की रस-रागिणी मन्द्र-मधुर स्वर में जगाकर भाग्यशालियों के स्वप्नलोक से लौटा लाती है—'जागिए रघुनाथ कुँवर, पछी बन बोले।' अमर कलाकार तुलसी के एक-एक शब्द को परखिए।

> 'चलत मोहि चूड़ामनि दीन्हा।
> रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्हीं।'

चूड़ामणि लाया हूँ। राम झपटते हैं, शायद लपक कर (याद रहे कवि अभिप्राय कोई विशेषण प्रयुक्त नहीं करता है।) ले लेते हैं और छाती से लगाकर फिर तीव्र वेग से उसी भाव लोक

में पहुँच जाते हैं; जहाँ मिलन का आनंद मचलता हुआ विचर रहा है ; चिर परिचित वह चूड़ामणि और छाती में उसका सुखद स्पर्श ! यह क्या, जागने के बदले राम विश्रब्ध विश्राम में, गहरी नींद में, जा पहुँचे हैं ! ......ठीक ही तो हुआ, जिस तरह दौड़ने के पहले कुछ पीछे हटा जाता है, आगे बढ़ने के पहले तीर पीछे खिचता है, नीचे आने के पहले आघात का हाथ ऊपर उठता है, जागने के पहले कोई करवट बदलकर खुर्राटे लेने लगता है !......

'नाथ जुगल लोचन भरि वारी ।
बचन कहे कछु जनक कुमारी ॥'

कवि का एक-एक शब्द अभिव्यंजना शक्ति से मुखरित है, एक-एक शब्द चित्रमयी सजीवता से गतिशील है, एक-एक शब्द अपने सरल रूप में ही बहुत-कुछ कहता और बहुत-कुछ दिखाता जान पड़ता है। यह उसकी निराभरण चित्रमयता ही लाक्षणिक वक्रता को जन्म देती है और भाव से भाव की व्यंजना करके शब्दशक्ति को चरम सीमा पर पहुँचा देती है।

नाथ, क्या कहीं कोई अनाथ पुकार रहा है ? और यह 'नाथ' सीता के लिए कितना सार्थक है; राम और किसी के नाथ हों या नहीं, सीता के नाथ तो हैं हीं, और आज वह अनाथ हो गई हैं। साथ ही हनुमान ने तो उन्हें अपना नाथ मान ही लिया है। इस तरह यह 'नाथ' तीन ओर अपना कला-प्रकाश डाल रहा है और धीरे-धीरे राम के हृदय को सगवगा रहा है जैसे माँ बच्चे को हिला-डुला कर जगा रही हो। राम ने मानों सोए-सोए कहा—हूँ, कौन अनाथ है ! जरा धनुष तो देना, लक्ष्मण ! जैसे कोई सोए-सोए खा लेता है।

लेकिन उस अनाथ का परिचय जिस कौशल से दिया जाता है, देखा जाय। कौतूहल, जिज्ञासा और नित नूतन उत्कंठा—ये ही कला की जान हैं। कवि किस सावधानी से इन सीढ़ियों पर पैर रखता है, झाँकी ली जाय। अनाथ कौन है, मालूम नहीं हुआ और तुरत दूसरा चित्र सामने आ गया—'जुगल लोचन', सो भी 'भरिवारी'; और यह अस्वाभाविक क्रिया 'भरि' जिज्ञासा को कितना तीव्र कर देती है, कहने की जरूरत नहीं। 'हे नाथ, दोनो नेत्रों में जल भरकर'—चित्र यहाँ तक पहुँचता है। अब इसका संपूर्ण दर्शन किया जाय। लेकिन वह लोल 'लोचन' तो अपनी ओर बुला रहा है—खिले कमल के ऊपर ढुल-ढुल करते ओस-कण साफ दीख रहे हैं; और उच्चारण का कोमल 'अ' 'च' और 'न' के चिकने पत्र से चलकर मृदुल दुलार का—कोमल करुणा का कैसा विकल चित्र खड़ा कर देता है। प्रेम और करुणा की मूर्ति सीता के लिए यह 'लोचन' कितना उपयुक्त हुआ है, धन्य तुलसी का शब्द-शोधन !

लेकिन यहाँ समयाभाव है—कदम बढ़ाया जाय।

'नयन कहे' से भी कुछ'—अनुरोध का अन्तर कितना स्पष्ट हो उठता है इस 'कुछ' से। लेकिन कहनेवाला कौन है, औरत या मर्द—अभी तक ज्ञात नहीं हुआ, जिज्ञासा और कौतूहल की वृत्ति शिखर पर पहुँच गई है, अब वह आलंबन आ जाय—कला की माँग तीव्र हो उठी—कौन है वह अनाथ जोकि और क्या हैं उसके कुछ वचन ?

'नयन कहे कछु जनक कुमारी'—यहाँ आकर चित्र पूरा होता है। कला की कैसी स्वस्थ एवं सूक्ष्म संपूर्णता दृष्टिगोचर हुई है।

ज़रा इस जनक-कुमारी की भी जाँच कर ली जाय। क्या यह सिर्फ 'जानकी' का पर्याय है या कुछ और ध्वनित करता है ? याद रखा जाय कि यह शब्द राम के प्रश्न में भी प्रयुक्त हुआ है, तो क्या उसीकी दुहरावट मात्र है यहाँ ?

नहीं, ज़रा बारीक विचार करते ही इसमें एक अपूर्व ध्वनि स्पष्ट हो जाती है। प्रायः दुखी वस्तु के प्रति कभी कभी उपेक्षा का स्वर उच्च हो जाता है। 'जनक कुमारी' कहकर 'अति परिचयादवज्ञा' का निराकरण ही नहीं होता, बल्कि भाव-जगत् में एक हलचल मचा दी जाती है—राम याद रखें—ये वचन अनुपमा राजकुमारी जानकी के हैं, सामान्य स्त्री के नहीं। महाराज जनक ने कितने विश्वास और प्रेम से आँखों की पुतली अपनी जानकी को राम के हाथों में सौंपा था—पौरुष के प्रति यह ललकार भी सुन पड़ती है और रावण के पाले में पड़ी उस 'अनाथा' के पितृ-कुल-वैभव और लाड़-प्यार भी सूचित हो जाते हैं। सुकुमारता और पद-मर्यादा तो साथ चल ही रही है। 'जनक-कुमारी' का यह साभिप्राय प्रयोग कैसा विलक्षण और विशाल चित्रांकन कर रहा है—दर्शनीय है! एक ही शब्द प्रसंग के बीच बैठकर भाव-जलधि के तल पर कैसा तीव्र प्रकाश डाल रहा है।

कहीं से पड़ी मिली किसी अज्ञात-कुल-शील की लड़की 'जानकी' नहीं हैं कि जिनके साथ ज़रा भी उपेक्षा सह्य हो सके, वह उस महाराज की आत्मजा हैं, जिनके चरणों में— नृप-मनि मुकुट मिलत पद-पीठा !' और जिन्होंने न मालूम प्यार के कितने आकुल आग्रह से उसे अपना नाम दे दिया—'जानकी'। राम का सारा शरीर सभ्रम-भाव से सनसना उठता है—ओह, ऐसी जानकी सात समुंदर से आँसू बहाती कुछ कह रही हैं। इस शब्द ने राम के हृदय में कर्त्तव्य-भावना को कितना झनझना दिया है!

महाकवि का शब्दचयन ऐसा ही अपूर्व होता है।

अब राम पूर्ण जाग्रत हैं और अत्यंत सावधानी से 'कुछ वचन' सुनने को तयार हो गए हैं।

शृंगार खिसक कर करुण के पास पहुँच गया है, इसे भी नज़र-अन्दाज नहीं किया जा सकता।

'अनुज समेत गहेहु प्रभु-चरना।
दीन-बंधु प्रनतारति हरना॥

प्रभु-चरण पकड़ने के पहले 'अनुज' की याद किसी गंभीर मनस्ताप को आगे ढकेल रही है। ग्लानि की स्वीकृति इतनी गहरी और तीव्र है कि पुत्रवत् देवर के चरण पकड़ लिए जाते हैं! पद-मर्यादा में कोई चाहे कितना भी बड़ा हो, पर जब उसने गहरी गलती की है, तो उसे गिरना ही होगा चरणों पर—चाहे वे पिता के हों या पुत्र के। भारतीय संस्कृति उसकी उपेक्षा करना नहीं जानती है। कालिदास के अभिशाप-ग्रस्त दुष्यंत उसी तरह शकुन्तला के चरणों पर धड़ाम से गिर पड़े थे—

'सुतनु, हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते,
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।'

प्रनतारति—प्रणत और आर्ति—सीता के अन्तर-बाह्य को किस तरह निरावरण कर रहे हैं; सीता प्रणत हैं—प्रेम और भक्ति की प्रतिमूर्त्ति हैं; लेकिन आज आर्त हैं। और 'दीनबंधु' की उपाधि धारण करनेवाले भगवान को 'प्रनतारति' की ओर विशेष ध्यान देना ही होगा—कितनी जबर्दस्त अपील है!

चरण-स्पर्श और साभिप्राय संबोधन के बाद 'सन्देश' शुरू होता है—

'मन क्रम वचन चरन अनुरागी।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी॥'

दूसरे पद की वाक्य-योजना और उसके भाववाच्य पर विशेष गौर किया जाय। किस अपराध से मैं त्यागी हूँ—त्याग दी गई हूँ या 'त्यागी' बना दी गई हूँ। आपने क्यों छोड़ दिया है, यह सीधा तार नहीं। अंतर कहता है—मैं मनसा-वाचा-कर्मणा राम की चरणानुरागिणी हूँ; और वस्तु-स्थिति आँखों में उँगली डाल कर बताती है—तुम 'त्यागी' हो, राम से दूर लंका में पड़ी हो; त्याग न दी गई होती तो क्या राम—जिनके बाण अमोघ हैं, अब तक यों चुप रहते?.........लेकिन जो प्राण-प्रिय है, जो अंतर-बाहर का स्वामी है, जिसके साथ आत्म-मिलन हो गया है, वह यों छोड़ कैसे देगा? दिल न अपनी बात छिपाना चाहता है, न अंतर्यामी प्रियतम पर सीधा आघात ही करना चाहता है। ज्ञान और अज्ञान का, प्रीति और परिस्थिति का, अनुराग और विराग का कैसा अगाध अन्तर्द्वन्द्व भरा हुआ है उस वाक्य में! और उपालंभ-शब्द का कैसा शिष्ट उदाहरण बन गया है यह। साथ ही भारतीय संस्कृति की कैसी सुकुमार मूर्त्ति सामने आ खड़ी हुई है विश्व-साहित्य के क्षुब्ध क्षितिज पर!

लेकिन चाहे जिस भाषा में कहा गया हो, चाहे जैसी शिष्टता दिखाई गई हो, है तो यह प्रियतम के प्रति उलहना ही—कैफियत-तलब ही। भारत की पति-प्राणा नारी ऐसा प्रश्न

करते हुए कुंठित होगी—यह सूक्ष्म आशंका भी उसे सह्य नहीं होगी। क्या बिना अपराध के उसका प्रिय उसे त्याग सकता है? तो क्या वह अपना अपराध नहीं जानती है? क्या वह इतनी नादान है? सीता इस स्थिति को भी बर्दाश्त नहीं कर सकती हैं। वह नारी के हृदय का मर्म जानती हैं, प्रेम की माँग भी समझती हैं और उसकी परपरा से भी पूर्ण परिचिता हैं—

> 'अवगुन एक मोर मैं माना।
> बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥'

नारी प्रेम की मूर्त्ति है, प्रेम ही उसके जीवन की साँस है। और जब उसके प्रेम का आलंबन—उसका जीवन-संगी—नष्ट हो गया या किसी तरह छिन गया, तब वह जीवित क्यों रहे—उसकी साँस क्यों चलती रहे?

यहाँ 'माना' शब्द ध्यान देने लायक है। इसमें परिस्थिति की परवशता मुखरित हो उठी है, हृदय की आभ्यन्तर स्वीकृति नहीं। 'की तनु प्रान कि केवल प्राना' कहकर वनपथ की ओर चल पड़नेवाली सीता हर ली गई, और वह अब तक जीवित हैं—क्या यह उनका अपराध नहीं है? फिर उनका वह दर्प कहाँ गया, और वे किस बल पर उपालंभ देने चली हैं? भीतर और बाहर की इस चक्की में पिसकर उनकी व्यथा वाचाल ही नहीं, दृप्त भी हो उठी है।

> 'नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा।
> निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥'

विचित्र बात है—निकलते हुए प्राणों को उनके नयन कैसे रोक लेते हैं—सो भी हठकर के, सत्याग्रह करके? कहाँ नेत्र और कहाँ प्राण, दोनों में संबंध ही क्या है?

यहाँ 'नयन' शब्द भी 'न-न' करता, निषेधात्मक आदेश देता जान पड़ता है। 'नाथ' का अनुरोध कितना कातर है।

भाव, कल्पना का हाथ पकड़कर कला-लोक में पहुँचा जाता है, विस्मय विशाल हो उठता है और शब्द-मैत्री पायल की तरह झन झन बज उठती है। अपने-आप में ऐंठती और बलखाती 'आश्रय' की भाव व्यंजना 'रूपक' का आधार पाते ही शतधा फैल पड़ती है।

> 'बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
> स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥'

बिरह की आग से सभी परिचित हैं। उसके प्रज्वलित होते ही तन तूल हो जाता है—हलका, नीरस, निर्मल और गुण युक्त, आह और उसासों से भरी साँस समीर का रूप धारण कर लेता

है—आग और दहका देती है, विरह धू-धूकर जल उठता है। आग और हवा के बीच रहकर रूई (विरही का शरीर) क्षण में जल जायगी—जलकर खाक हो जायगी—इसमें आश्चर्य ही क्या ?

फिर, सीता का शरीर क्यों न जला ? क्या उनमें विरह का वह ताप कम था ?......... नहीं ; उनके स्वार्थी 'नयन' पानी की बौछार से आग की दाहकता कम कर देते हैं ; यही कारण है कि सीता का शरीर जल नहीं पाता है, और वे अब तक जीवित हैं। रूपक की योजना कैसी सशक्त और सार्थक हुई है। चूल्हे पर के खौलते हुए पानी को ढँक दिया जाय, तो ढक्कन से भाप टपकने लगेगी। फिर, विरह की आग हृदय को पिघलाकर भाप बना दे और वह नेत्रों की राह बरस पड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? भीषण अग्नि-कांड को 'फायर ब्रिगेड' बुझा देता है, रो लेने से कुछ देर के लिए हृदय हलका हो जाता है,इसकी साक्षी भुक्त भोगी ही दे सकते हैं।

भाव में विज्ञान का सटीक आरोप कैसा मनोरम, साथ ही कैसा सच्चा !

सीता के नेत्र यों हठ करके प्राणों को क्यों रोके हुए हैं ? उनका इसमें क्या स्वार्थ है ? इसके जवाब में ही काव्यगत भावना की परमावधि हो जाती है—मानव-जन्म सार्थक ही नहीं, गरिमामय भी हो जाता है। नेत्र प्रिय-दर्शन के प्यासे हैं, और प्रिय से मिलने का दृढ़ विश्वास उन्हें सत्याग्रही बनाए हुए है—ठहरो, भागो नहीं—प्रिय जरूर मिलेंगे !

विह्वल प्राणों को इस निषेध के आगे सिर झुका देना पड़ता है। सीता इसी तरह जीने का अपराध कर रही हैं, और उनका यह अपराध सिर्फ उनके परितप्त प्रियतम को ही नहीं, समस्त भूमंडल को जीवन का वरदान दे रहा है। विप्रलंभ शृंगार का संताप इसीसे स्थायी शोक में परिणत होते-होते बच गया।

लेकिन, राम के हृदय की वृत्तियाँ करुणा के किनारे पहुँच रही हैं, सीता की यह संस्थिति उन्हें पागल बना रही है। फिर भी कलेजे को दोनो हाथों से दबाकर उन्हें कुछ और सुनना है और फिर छलाँगें मारकर वीर-रसकी चोटी पर पहुँच जाना है।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहे भलि दीन दयाला।

कलात्मक उक्ति एकाएक अंतिम बात नहीं कह देती है, कहकर भी उसका निषेध कर देती है, और तब वाणी की वक्रता असीम गगन में अंचल उड़ाकर दिग्दिगन्त में फैल जाती है। 'बिनहि कहे भलि' आगे जाने से रोककर 'दीन दयाला' की ओर मोड़ देता है—सीता की विपत्ति विशाल है। उसका वर्णन न करना ही अच्छा। और 'दीन दयाला' की कातरता उसे पैर तोड़कर करुणा के पास बिठा देती है। करुण की संसृष्टि 'चरम सीमा' की पुकार करने लग जाती है।

निमिष—निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।

बड़े कौशल से अभिव्याप्त होकर भी करुणा की पराकाष्ठा हो गई—आश्रय का हृदय आलंबन की जीवन-हानि की आशंका से शोक-संतप्त हो गया। जब एक एक पल कल्प सम बीत रहा है, तब सात समुद्र पार लंका के दुर्गम दुर्ग में बन्द सीता का उद्धार दण्डकारण्य में पड़े हुए राम कैसे कर सकते हैं, और सीता से मिलन की आशा ही क्या रख सकते हैं, शोक की यह विषम संस्थिति उन्हें डुबा ही देना चाहती है कि एक झटका देकर कवि उन्हें उत्साह के अंक में फेंक देता है, साहस के सागर में ढकेल देता है।

वेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुज बल खल दल जीति।

एक-एक शब्द पर ध्यान दीजिए —

'वेगि'—मानों कोई किसी को पकड़कर झकझोर रहा हो, 'चलिअ' सैन्य और सहायक की सूचना देते हुए पीछे यह भी बता देता है कि मैं—जो समुद्र लांघकर लंका को जला आया हूँ, आपके साथ हूँ। अपनी शक्ति के संकेत से कहीं धृष्टता न ध्वनित हो उठी हो, अतः झट प्रभु पौरुष और प्रतिभा का आरोप करके उन्हें गर्व और गौरव से भर देता है। निराशा और आशंका का निवारण हो जाता है—'आनिअ'—ले आइए से जीवित और सुरक्षित। क्या रावण से सीता की भीख माँगी जाय? नहीं, अपने भुज-बल से, उस भुजबल से जिनसे आपने स्वयंवर-सभा में धनुष भंग करके विश्व के वीरों का मान मर्दन किया था। विश्व में भीषण विभ्राट् उपस्थित करनेवाली शक्ति का प्रयोग यहाँ क्यों किया जाय? क्योंकि रावण चोर ही नहीं, दुष्ट भी है और संगठित होकर निरपराधों को सता रहा है। इसके अतिरिक्त, युद्ध में सिर्फ राम का व्यक्तिगत स्वार्थ ही निहित नहीं है, बल्कि समष्टि का क्षेत्र भी समाविष्ट हो गया है। अतः उस दुष्ट-दल को जीतकर—आततायियों का अंत कर सीता का उद्धार किया जाय।

एक एक शब्द सजीव और सचित्र है। पूरे वाक्य में 'वेगि' का शासन है, 'भुज बल' उत्साह का उन्मद स्रोत है, 'खल-दल' में संचारी की विपुल व्यंजना है, और 'जीति' में साहस की चरम सार्थकता है। इस तरह एक छोटे-से वाक्य में, थोड़े-से शब्दों के सहारे एक महान रसकी निष्पत्ति हो जाती है। शब्दों की सजीव चित्रमयता का उदाहरण इससे बढ़कर और कहाँ ढूँढा जाय?
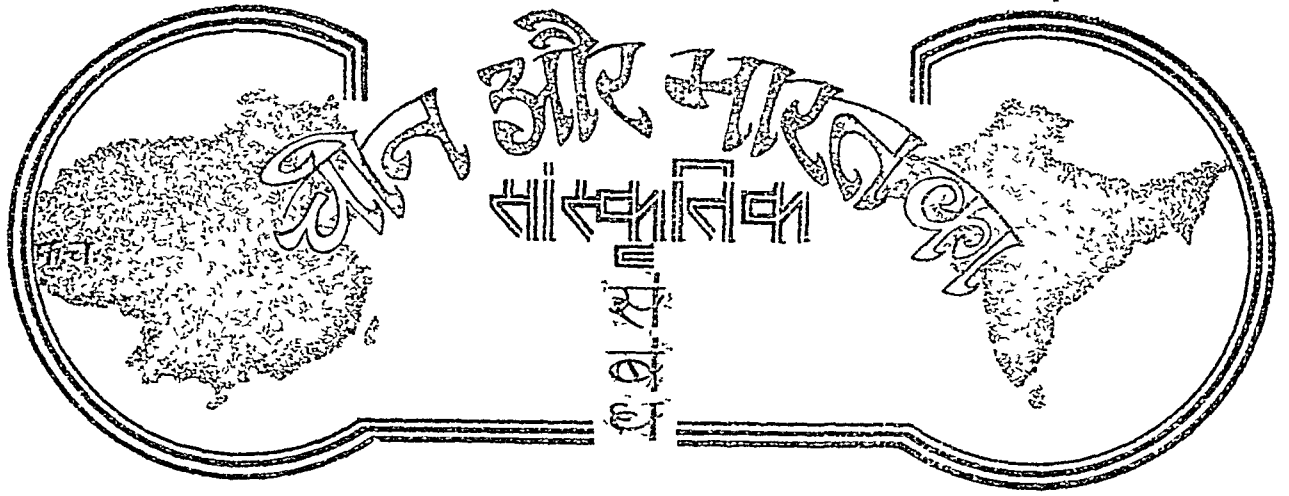
[श्रीकृष्णकिंकर सिंह, शान्तिनिकेतन, बंगाल]

एशिया महादेश के इन दो महान देशों, चीन और भारत, के बीच पहली बार कब संबंध स्थापित हुआ, यह पता लगाना कठिन है। ई० पू० की तीसरी शती में सम्राट् अशोक ने जब धर्म-विजय की नीति अपनाई थी, तब उन्होंने अपने समय के सम्पूर्ण ज्ञात जगत् में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे थे। पर, उन्होंने चीन में अपना धर्म-प्रचारक नहीं भेजा था। इसका कारण शायद यह था कि भारतवासी उस समय तक चीन को नहीं जानते थे। पर, अशोक की धर्म-विजय की नीति, आगे चलकर अप्रत्यक्ष रूप से, चीन और भारत के बीच संबंध स्थापित करने में सहायक हुई। इस उदार नीति के कारण भारत का संबंध उसके पड़ोसी राज्यों के साथ स्थापित हुआ और यह संबंध मौर्य-साम्राज्य के पतन के बाद, भारत पर आक्रमण द्वारा राज्य स्थापित करनेवाली यवन, शक और कुषिक जातियों के समय और भी बढ़ा और दृढ़ हुआ। ये जातियाँ यद्यपि विदेशी थीं, पर इन सबों ने भारत में आकर ब्राह्मण धर्म या बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था और उनकी उन्नति में बड़ी सहायता पहुँचाई थी।

चीन और भारत के परस्पर संबंध का कारण बौद्ध धर्म ही हुआ। चीनवालों को बौद्ध धर्म का पता एशिया से लगा। मध्य एशिया, जिसे हम तारीम का काँठा भी कह सकते हैं, वह स्थान है जहाँ पहली बार चीनी और भारतीय मिले होंगे। इस भूभाग को सुसंस्कृत बनाने में चीन और भारत दोनो ने हिस्सा लिया। इसलिए विद्वान् लोग प्राचीन इतिहास में इसे चीन-

हिंद (Ser-India) कहते हैं। इस भूभाग में चीनियों के प्रवेश से पहले ही भारतीय बस्तियाँ बसने लगी थीं। ई० पू० की दूसरी शती में तो निश्चित रूप से वहाँ भारतीय बस्तियाँ थीं और बौद्ध जनता रहती थी। इसी चीन-हिंद के पूर्वी छोर, यानी चीन के कान् सू प्रान्त की पश्चिमी सीमा पर ऋषिक जाति रहती थी जिसे चीनी लोग युए चि कहते थे। तारीम नदी के उत्तर तुखार जाति के लोग रहते थे। ये दोनों जातियाँ, हूणों के आक्रमण होने पर, अपने स्थान से हटकर पश्चिम की ओर चली आई तथा कम्बोज देश, पामीर-बदख्शां क्षेत्र, सुग्ध प्रदेश (आमू-सीर दोआब) और बाल्ह्री (Bactria) में राज करने लगीं। यह ई० पू० १७६-१४० के लगभग की घटना है। ऋषिकों की राजधानी बदख्शां में रही। इनकी एक शाखा ने भारत में कुषाण-साम्राज्य की स्थापना की जिसमें प्रतापी सम्राट् देवपुत्र कनिष्क (७८—९८ ई० के लगभग) हुए। कनिष्क बौद्ध थे और उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बड़ा काम किया।

कड़ी जोड़ने के लिए चीन के इतिहास की कुछ बातें कह देना आवश्यक है। ई० पू० २५५ में छिन श ह्वाङ् ति ने चीन के छोटे छोटे सामतशाही राजों (States) को जीतकर सम्पूर्ण चीन को एक शासन के अधीन किया और छिन् राजवश (ई० पू० २५५ २०६) की स्थापना की। हूणों के आक्रमण से बचने के लिए इन्होंने चीन की उत्तरी सीमा पर महान् दीवार बनवाई। पर, छिन् राजवश ई० पू० २०६ में समाप्त हो गया और उसकी जगह हान् राजवश (ई० पू० २०६—२२० ई०) की स्थापना हुई। यह चीन का बड़ा ही प्रसिद्ध राजवश हुआ और चीनी लोग बड़े गर्व से अपने को हान् सतान कहते हैं। हान् राजवश के समय हूणों का आक्रमण जारी रहा। यह पहले ही बताया जा चुका है कि किस प्रकार चीन की पश्चिमी सीमा पर बसनेवाली ऋषिक-जाति और तुखार-जाति हूणों के आक्रमण के कारण हटकर बलख (बाल्ह्री, बाह्लीक Bactria) आदि में बस गई थीं। हान् राजवश के सम्राट् वु ति ने (ई० पू० १४० ८०) बलख स्थित ऋषिकों के पास चाङ् छि एन् नामक राजदूत को ई० पू० १३८ में भेजा था। राजदूत यह सदेश लेकर आया था कि हान् सम्राट् हूणों के विरुद्ध ऋषिकों की सहायता चाहते हैं। बलख बाजार में चाङ् छि एन् ने चीन के स-च्वान् तथा यू नान् प्रान्तों के बाँस की चीजें और चीन के रेशमी कपड़े बिकते देखे। उसे पता चला कि वे चीजें बलख में हिन्दूकुश के दक्षिण के शिन् तु ॐ (भारतवर्ष) से आता था जो अफगानिस्तान होता हुआ बलख पहुँचता था। असल बात यह थी कि जगली किरात लोग आसाम के रास्ते चीन और भारत की चीजों का विनिमय करते थे और चीन की चीजें भारतीय सौदागरों द्वारा बलख तक पहुँचती था। चाङ् छिएन् ने बलख से लौटकर अपने सम्राट् को जो विवरण दिया, उसमें भारतवर्ष का नाम आया है और चीनी वाङ्मय में भारतवर्ष का यही सबसे

ॐ चीनवाले अभी भी भारतवर्ष को 'इन् तु' कहते हैं। शिन् तु सिन्धु का विकृत रूप है।

प्राचीन उल्लेख है। कहा जाता है कि ई० पू० २१७ में बौद्ध धर्म-प्रचारक चीन के छिन् राजवंश (ई० पू० २५५-२०६) के 'दरबार में पहुँचा था। पर, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता.

चीन-सम्राट् को जब चाङ छि एन् द्वारा "पश्चिमी क्षेत्र" * का पता लगा तो उन्होंने इस मार्ग को खुला तथा सुरक्षित रखने का पक्का निश्चय कर लिया। इसके लिए उन्होंने हूणों पर हमले किए तथा उन्हें मार भगाया, और इस तरह चीन से मध्य एशिया तक जानेवाला रास्ता साफ हो गया। यह कार्य ई० पू० १२७-११६ के बीच हुआ। इस सैनिक अभियान में ही एक चीनी सेनापति ने मध्य एशिया के एक हूण सरदार को हराकर उससे कुछ सोने की मूर्तियाँ प्राप्त कीं जो दस-दस फीट ऊँची थीं। सेनापति ने ई० पू० १२१ में चीन-सम्राट् को वे मूर्तियाँ भेंट कीं जिन्हें सम्राट् ने राजमहल में स्थापित किया। कहा जाता है कि वे भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ थीं जिनकी पूजा हूण-सरदार करता था। चीन में बौद्ध धर्म की वस्तुओं के प्रवेश का यह प्रथम ऐतिहासिक प्रमाण है। मध्य एशिया का मार्ग खुल जाने तथा निरापद हो जाने के कारण चीन के साथ भारत तथा अन्य राज्यों का व्यापार चलने लगा। एक राज से दूसरे राज को राजदूत भेजे जाने लगे। धर्म-प्रचारकों के दल का भी आवागमन प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार मध्य एशिया के स्थलमार्ग-द्वारा चीन और भारत का संबंध प्रारम्भ हुआ। सन् २३६-२६५ ई० के बीच की वइल्याव् नामक एक ऐतिहासिक पुस्तक से पता चलता है कि चीन-सम्राट् आइ ति (ई० पू० ६—१ ई०) ने ई० पू० २ में अपना एक राजदूत ऋषिक राजा के पास भेजा था जिसे ऋषिक राजा की आज्ञा से मौखिक रूप से बौद्ध धर्म की शिक्षा दी गई थी। ऋषिक राजा कुषाण † ने भी उसी वर्ष (ई० पू० २) अपना दूत चीन-सम्राट के दरबार में भेजा और उसके हाथ ही बौद्ध धर्म का एक ग्रन्थ पहली बार चीन पहुँचा।

मध्य एशिया का मार्ग खुल जाने से उस मार्ग द्वारा चीन और भारत के बीच व्यापार भी अवश्य चलता होगा; पर उसके संबंध में विशेष वृत्त नहीं मिलता। पहले कहा गया है कि बौद्ध धर्म ही चीन और भारत के बीच के संबंध का कारण हुआ। बौद्ध धर्म के चीन में प्रवेश की कहानी बड़ी रोचक है। कहा जाता है कि सन् ६७ ई० में हान् सम्राट् मिङ् ति (सन् ५८-७६) ने स्वप्न में एक सुनहले मनुष्य को उड़ कर अपने राजभवन में प्रवेश करते देखा। सबेरे उन्होंने अपने दरबारियों से इस स्वप्न का अर्थ पूछा। एक ने बताया कि सुनहला मनुष्य पश्चिम क्षेत्र के भगवान् बुद्ध (फो) थे। सम्राट् मिङ् ति इस स्वप्न से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने छाइ यिन्, छिन् किङ्, वाङ् चुआन्

---

* चीनवाले चीन की सीमा के पश्चिम के देशों को पहले 'पश्चिमी क्षेत्र' नाम से पुकारते थे, जिसमें मध्य एशिया, पार्थव (ईरान), सुग्ध प्रदेश, बलख, फरगना (खोकन्द) आदि देश तथा कभी-कभी भारत भी गिने जाते थे।

† इसी के नाम पर कुषाण-साम्राज्य स्थापित हुआ था। यही संस्थापक था। इसका बेटा विम कफ्स था और विम कफ्स का उत्तराधिकारी देवपुत्र कनिष्क।

तथा अन्य कई व्यक्तियों के एक दल को बौद्ध धर्म-ग्रन्थ और बौद्ध भिक्षुओं को चीन ले आने के लिए पश्चिम भेजा। यह दल, कुषाण साम्राज्य के गधार देश से काश्यप मातग और धर्मयश, दो भारतीय भिक्षुओं के साथ उजले घोड़े पर बौद्ध धर्म ग्रन्थों तथा भगवान् बुद्ध की मूर्ति लेकर चीन की राजधानी लो याङ्‌ लौटा। सम्राट् मिङ्‌ ति ने स्वय दोनों भिक्षुओं का स्वागत किया और एक विहार बनवाया जिसमें रहकर वे दोनों धर्म का प्रचार करने लगे। उजले घोड़े पर धर्म-ग्रन्थ लादकर लाने की यादगारी में विहार का नाम 'पइ मा-स' यानी 'धवल अश्व विहार' रखा गया। काश्यप मातग और धर्मयश ने चीन में रहकर धर्म का प्रचार किया तथा ४२ अध्यायवाला सूत्र ग्रन्थ का चीनी मे अनुवाद किया। यह अनुवाद अभी तक मिलता है तथा चीन से कई यूरोपीय भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। धर्मयश ने और पाँच ग्रन्थों का अनुवाद किया था, पर वे लुप्त हो गए हैं।

यह है चीन में बौद्ध धर्म-प्रवेश की प्रथम ऐतिहासिक घटना जिसके साथ भी स्वप्न-सबधी दतकथा जुड़ी हुई है। चीन और भारत के सम्पर्क का प्रारम्भ सम्राट् मिङ्‌ ति के बौद्ध धर्म के राजकीय स्वागतकाल से माना जाता है। यह तो बौद्ध धर्म का राजकीय स्वागत था, लेकिन इससे कुछ पूर्व ही बौद्ध धर्म का प्रभाव चीन पर पड़ने लगा होगा और वह भी मध्य एशिया से, क्योंकि उन दिनों मध्य एशिया में बौद्ध धर्म की काफी उन्नति थी और चीन का सबध मध्य एशिया से बहुत था। इस प्रकार हम मान सकते हैं कि चीन-भारत का सबध ई० स० के प्रारम्भ काल से ही होने लगा था जो आगे हजार वर्षों तक निरन्तर बढ़ता ही रहा।

ऊपर बताया गया है कि किस प्रकार मध्य एशिया के स्थलमार्ग द्वारा चीन और भारत के बीच सपर्क स्थापित हुआ। इस स्थलमार्ग के अलावे दो और स्थलमार्ग थे जिनके द्वारा दोनों देशों के बीच आवागमन हुआ। पर वे मध्य एशिया के मार्ग की अपेक्षा बहुत बीहड़ और भयानक थे, इसलिए उनकी प्रधानता विशेष नहीं रही। एक रास्ता पाटलिपुत्र से आसाम होते हुए उत्तरी बर्मा को पारकर चीन के युनान् प्रांत को जाता था। इस मार्ग द्वारा ही जगली किरात ई० पू० दूसरी शती में चीन की चीजों से भारतीय चीजों का विनिमय करते थे और भारतीय सौदागर चीनी चीजों को बलख तक ले जाते थे, जहाँ के बाजार में चीन सम्राट् के राजदूत चाङ्‌ छिएन् ने उन चीजों को देखा था। शुआन् चुआन् (सातवीं शती) ने भी इस मार्ग की चर्चा अपने भ्रमण वृत्तान्त में की है। ई० स० की प्रारम्भिक शताब्दियों में बौद्ध धर्म भी शायद इसी मार्ग द्वारा दक्षिणी चीन पहुँचा था। दूसरा रास्ता नेपाल व तिब्बत होकर चीन जाने का था। पर यह सातवीं शती के द्वितीय चरण में जाकर खुला, जब तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और वहा के राजा ने चीन और नेपाल दोनों देशों के राजाओं से उनकी बेटी ब्याह कर मित्रता स्थापित की। आठवीं शती के मध्य के बाद जब मध्य एशिया से चीन सम्राट् का प्रभुत्व कमने लगा, तो यह रास्ता निरापद नहीं रहा। उस समय बहुत से बौद्ध

यात्री तिब्बतवाले मार्ग से ही चीन पहुँचे या चीन से भारत आए। इन स्थलमार्गों की अपेक्षा समुद्रमार्ग द्वारा भी चीन और भारत के बीच आवागमन हुआ। जिस प्रकार मध्य एशिया चीन-हिंद बन गया था, उसी प्रकार आज का मलाया प्रायद्वीप, श्याम, अन्नाम, सुमात्रा, जावा आदि को पश्चिमी लोग तब गंगा पार का हिंद और अब भी परला हिंद (Further India) कहते हैं। महाजन-पदों के जमाने (सन् ई० पू० १४२५–३६६) से इन देशों से समुद्र द्वारा व्यापार चलने लगा था। अशोक ने अपने धर्म-प्रचारक भी यहाँ भेजे थे। धीरे-धीरे वहाँ भारतीय बस्तियाँ बसती गईं और बड़े-बड़े भारतीय राज कायम हुए। इस प्रकार आज के इन "सुदूर पूर्वी भागों" को तब भारतीयों ने छान डाला था और परला हिंद से पार होनेवाले समुद्रमार्ग द्वारा चीन साम्राज्य से संबंध स्थापित किया था। मध्य एशिया का स्थलमार्ग जब अधिक निरापद नहीं रहा भारतीय भिक्षु और धर्मप्रचारक इस जलमार्ग द्वारा ही चीन पहुँचने लगे। फा शिएन् (पाँचवीं शती के प्रारम्भ में) इस मार्ग से भारत से चीन लौटे थे। ई चिङ् (सातवीं शती) समुंद्रमार्ग द्वारा ही भारत आए थे और लौटकर गए थे।

ऊपर हम देख चुके हैं कि किस प्रकार चीनवालों के लिए भारत और पश्चिमी क्षेत्र तथा भारत और पश्चिमी क्षेत्रवालो के लिए चीन अज्ञात था; तथा किस प्रकार स्थल तथा जल-मार्ग के खुल जाने से आपस में आवागमन प्रारम्भ हुआ। मध्य एशिया के देशों (जैसे खोतन, कूचा आदि) पार्थव (इरान) वलख, सुग्ध आदि में उस समय तक बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति फैल चुकी थी। वहाँ बड़े-बड़े बौद्ध पंडित रहते थे तथा बौद्ध विहार और विद्या के केन्द्र स्थापित हो चुके थे। चीन का इन देशो से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो जाने से व्यापार के साथ ज्ञान और विद्या का आदान-प्रदान भी प्रारम्भ हुआ। चीन-सम्राट् ने बौद्ध धर्म का राजकीय स्वागत ६७ ई० में किया था और काश्यप मॉतग तथा धर्मयश उसी समय भारत से चीन गए थे। पर उसके बाद लगभग १५० वर्षों तक हम किसी भारतीय पंडित या भिक्षु को चीन में नहीं पाते हैं। इस काल में बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति को चीन में फैलाने का श्रेय, मध्य एशिया, पार्थव, बलख आदि देशो को है। इन देशों के पंडितों के प्रयत्न से ही प्रारम्भ में चीन में बौद्ध धर्म की जड़ जमी। वहाँ के लोगों में भारतीय संस्कृति के प्रति सहानुभूति हुई तथा उसे जानने की इच्छा पैदा हुई। फलस्वरूप चीन और भारत के बीच बाद में घनिष्ठ और प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हुआ।

चीन में हान्-राजवंश का राज्य ई० पू० २०६–सन् २२० ई० तक रहा। इसमें ई० पू० २०६ से सन् २५ ई० तक का काल पश्चिमी हान् या परवर्त्ती हान्-राजवंश का काल कहा जाता है। उस समय राजधानी छाङ् आन् में थी। सन् २५–२२० ई० तक का काल पूर्वी हान् या परवर्त्ती हान्-राजवंश का माना जाता है। इस काल में राजधानी लो याङ् में थी। इसी परवर्त्ती हान्-राजवंश के सम्राट् मिङ् ति ने सन् ६७ ई० में बौद्ध धर्म का राजकीय स्वागत राजधानी लो याङ् में

किया था। इसके बाद हम पुन भारतीय भिक्षु को चीन में दूसरी शती के अंतिम चरण के पहले नहीं देखते। इस बीच पार्थव, मध्य एशिया, सुग्ध आदि के भिक्षुओं ने भारतीय संस्कृति का चीन में प्रचार किया। सन् १४८ ई० में पार्थव देश का एक बौद्ध भिक्षु आन् श काउ् (भारतीय नाम लोकोत्तम) चीन पहुँचा। यह बौद्ध धर्म का बड़ा पंडित था। उसने लो याट् के धवल अश्व विहार में धर्म प्रचार तथा धर्मग्रन्थों का चीनी अनुवाद प्रारम्भ किया। महायान तथा हीनयान के १७६ सूत्रों का चीनी भाषा में इन्होंने अनुवाद किया। मध्य एशिया का शक जातीय भिक्षु लोकक्षेत्र सन् १५० ई० में चीन पहुँचा और २३ ग्रन्थों का अनुवाद किया। इन्होंने प्रज्ञापारमिता का प्रथम चीनी में अनुवाद किया। उपरोक्त दोनों भिक्षुओं के ही समकालीन थे भारतीय भिक्षु बोधिसत्त्व। (चु फा चो) जो "धवल-अश्व-विहार" में रहकर धर्म का प्रचार करते थे। इनका अनुवाद काल सन् १७२-१८३ ई० है। इन्होंने दो ग्रन्थों का अनुवाद किया, जो लुप्त हो गए हैं। सन् १८१ में पार्थव देश का आन् हिएन् नामक भिक्षु चीन आया और दो पुस्तकों का अनुवाद किया। इन्होंने प्रथम प्रतीत्य समुत्पाद का चीन में प्रचार किया। मध्य एशिया के शक जातीय भिक्षु चि याव् सन् १८४ में चीन आया और सन् १८६ तक कार्य किया। इन्होंने १२ सूत्रों का अनुवाद किया। भारतीय भिक्षु महाबल के चीन पहुँचने की तिथि नहीं मिलती है, पर इन्होंने सन् १६७ में सूत्रों का अनुवाद किया। इनका एक अनुवाद अभी भी चीनी बौद्ध त्रिपिटक में है। तीसरी शती के प्रारम्भ में धर्मफल नामक भारतीय भिक्षु चीन गया। वह कपिलवस्तु से एक संस्कृत की पुस्तक ले गया था जिसका उसने अनुवाद किया। इसका अनुवाद-काल सन् २०७ ई० है। खाट् म्यु नामक सुग्ध का एक भिक्षु इसी काल में चीन गया था। एक दूसरा सुग्ध भिक्षु खाङ् मट् सिआङ् इसी समय चीन पहुँचा। इन्होंने छ ग्रन्थों के अनुवाद किए। ये ही कुछ प्रसिद्ध बौद्ध धर्म-प्रचारक और अनुवादक हान्-राजवंश के समय चीन पहुँचे थे जिन्होंने वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। हान् राजवंश के समय ३५६ भारतीय धर्मग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। बारह अनुवादकों के नाम मिलते हैं। १२५ ग्रन्थों (किसी किसी के हिसाब से १४१ ग्रन्थों) के अनुवादकों के नाम नहीं मिलते। इस युग के अनुवादकों में भारतीय कम थे। भारतीय भिक्षुओं में चीन जाकर धर्म प्रचार करने का उतना उत्साह अब तक पैदा नहीं हुआ था जो एक शती बाद हुआ।

हान्-राजवंश सन् २२० ई० में समाप्त हो गया। इसके बाद चीन एक शासन के अधीन नहीं रहा। देश तीन भागों में बँट गया, इसलिये यह काल (सन २२०–२६५) त्रिक राजकाल कहलाता है। याट्-च सि क्याङ् (याङ् टिज नदी) के उत्तर वइ राज (सन् २२०–२६५) स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी लो याट् में थी। दक्षिण और पश्चिम में शुराज (२२१–२६४) कायम हुआ जिसकी राजधानी छन् तु में रही और दक्षिण पूर्व में वु राज (२२६–२८०) स्थापित हुआ जिसकी राजधानी नान्किङ् में हुई। इस काल में उत्तर में लो याट् और दक्षिण में नान्किङ् दोनों

अमर बापू

[चि०—श्री नन्दलाल बसु]

ही भारतीय संस्कृति और बौद्ध धर्म-प्रचार के केन्द्र रहे। वइ राज की राजधानी लो याङ् में, बौद्ध-भिक्षु अक्सर भारत और मध्य एशिया के स्थलमार्ग से पहुँचते रहे। वइ राज के इतिहास में पाँच अनुवादकों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने लो याङ् में रहकर, इस काल के बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद और धर्म-प्रचार किया। इनमें मध्य देश (चीनी वाङ्मय में मध्य देश सम्पूर्ण उत्तर भारत के लिए आता है) का भिक्षु धर्मकाल था, जिसने प्रथम महासांघिक सम्प्रदाय के 'प्रातिमोक्ष' का चीनी में अनुवाद किया। इस प्रकार पहली बार विनय-ग्रन्थ का चीन में प्रचार हुआ। यह २२२ ई० में चीन पहुँचा था। धर्मकाल के अलावे सुग्ध के भिक्षु संघवर्मन, पार्थव के भिक्षु धर्मसत्य, कूचा के भिक्षु पो यन् तथा पार्थव भिक्षु धर्मभद्र थे। इन पाँचो ने १२ पुस्तकों का अनुवाद किया जिनमें ७ लुप्त हो गए हैं। इस काल के अनूदित और दो ग्रन्थ मिलते हैं जिनके अनुवादकों का पता नहीं।

इसी समय दक्षिण में वु राज की राजधानी नानकिङ् भारतीय संस्कृति के प्रचार का केन्द्र था। जिस प्रकार उत्तर चीन में मध्य एशिया और भारत से भिक्षु पहुँचते थे, उसी प्रकार दक्षिण चीन में समुद्रमार्ग-द्वारा भारत तथा परला हिंद के भारतीय उपनिवेशों के भिक्षु तथा धर्म-प्रचारक पहुँचने लगे। पहले कहा गया है कि किस प्रकार दक्षिण चीन के युनान प्रान्त से उत्तर, वर्मा के पार आसाम होकर, भारत के साथ ई० स० पूर्व से ही व्यापार-सम्बन्ध था; और शायद इसी मार्ग से पहली बार बौद्ध धर्म दक्षिण चीन पहुँचा हो। शुआन् चुआङ (सातवीं शती) के अनुसार इस मार्ग-द्वारा २० चीनी भिक्षु तीसरी शती के मध्य में भारत आए थे। अगर यह सत्य है तो इतना हम निःसंकोच कह सकते हैं कि व्यापार के अलावा यह स्थलमार्ग बौद्ध यात्रियों द्वारा भी काम में लाया जाता था। साथ-साथ यह भी अनुमान किया जा सकता है कि चीनी बौद्ध यात्रियों के पहले इसी मार्ग से दक्षिण चीन में भारतीय भिक्षु भी धर्म-प्रचार के लिए गए होंगे और उन लोगों के प्रचार का ही फल होगा कि चीनी भिक्षु इस मार्ग-द्वारा भारत आए होंगे। जो कुछ हो, दक्षिण चीन में वु राज के समय बौद्ध धर्म का काफी प्रचार हुआ। वु राज ने परले हिंद के साथ राजनीतिक तथा आध्यात्मिक संबंध बनाए रखने के लिए समय-समय पर अपने राजदूत भेजे और परले हिंद के भिक्षु तथा धर्म-प्रचारक भी वु राज में पहुँचने लगे। इस काल के चार भिक्षु बड़े प्रसिद्ध हैं, जिनमें दो भारतीय, एक शक और एक सुग्ध थे। शकजातीय भिक्षु चि चिएन् हान्-राजवंश के समय में ही मध्य एशिया के स्थलमार्ग-द्वारा उत्तर चीन पहुँचा था; पर, हान्-राजवंश के पतन के बाद वह दक्षिण वु राज में चला गया और नान्किङ् में रहकर धर्म-प्रचार करने लगा। उसने १२९ सूत्र का अनुवाद किया। भारतीय भिक्षु विघ्न और ल्यु यन् (भारतीय नाम नहीं मिलता) सन् २२४ ई० में जलमार्ग-द्वारा चीन पहुँचे थे। विघ्न ने ल्यु यन् के साथ धम्मपद का अनुवाद किया, जो अभी तक चीनी त्रिपिटक में है। ल्यु-यन् ने चार सूत्रों का अनुवाद किया जिनमें तीन ही बच रहे हैं और वे त्रिपिटिक में सम्मिलित हैं। खाङ् सङ् हुइ (संघभद्र) जलमार्ग-द्वारा तान्किङ् (इंडो चाइना

में) से २४१ ई० में नानकिंग पहुँचा था। इसके पिता सुग्ध के थे। वह पहले भारत में बस गए थे और फिर नानकिंग में जाकर बस गए। वहाँ उनका व्यापार था। प्रथम वु सम्राट् ने सघभद्र के लिए अलग विहार बनवा दिया था, और जहाँ विहार था उस जगह का नाम बुद्धग्राम (फो तो लि) रख दिया था। इन्होंने चौदह ग्रन्थों का अनुवाद किया जिनमें दो बच रहे हैं। इन्होंने व्यवस्थित ढग से चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। इस काल के पाच अनुवादकों ने १४६ ग्रन्थो का अनुवाद किया जिनमे ५५ ही बच रहे हैं। इनके अलावे ११० ग्रन्थों के अनुवादकों के नाम नहीं मिलते। इस तरह इस काल में कुल २५ ग्रथो के अनुवाद हुए। चिन् राजवश (२६५-३१६) के इतिहास से पता चलता है कि चीन में प्रथम स्तूप सुन् च्वान द्वारा सन् २४८-२५० के बीच बनाया गया था।

इन भिक्षुओं और धर्म प्रचारकों के कठिन परिश्रम, उज्ज्वल चरित्र तथा अध्यवसाय का चीनी लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। चीन में कनफ्युशिएस मत तथा ताओ मत का बोलबाला था तथा चीनी जनता के दिलों में वे बद्धमूल थे। बौद्ध धर्म को उनकी जगह मिलना कठिन था। पर, भिक्षुओं और धर्म प्रचारकों के अध्यवसाय तथा उज्ज्वल चरित्र ने उनके हृदय जीत लिए। बौद्ध धर्म का चीनी विद्वानों द्वारा विरोध हुआ, पर, चीनी विद्वानों ने ही बौद्ध धर्म के समर्थन में आवाज भी उठाई। इस दिशा में चीनी विद्वान म्यु च्यु का प्रयत्न बड़ा ही सराहनीय है। इन्होंने दूसरी शती के अन्त में बौद्ध धर्म के समर्थन में बड़ा काम किया। इस तरह भारतीय भिक्षु और चीनी पडितों के सम्मिलित प्रयत्न से चीन में त्सिन राजकाल के समय तक, बौद्ध धर्म की जड़ जम गई जो आगे लगभग ७०० वर्षों तक तो खूब ही फूलती-फलती रही। त्सिन राजकाल के समय तक बौद्ध धर्म की जड़ जम जाने के कारण भारतीय भिक्षु काफी सख्या में चीन पहुँचने लगे और धर्म-प्रचार तथा अनुवाद के कार्य जोरों से चलने लगे। इनके अलावे भारतीय सस्कृति के दूसरे उपकरण भी चीन पहुँचने लगे। अधिकाश चीनी सम्राटों के सरक्षण में बौद्ध धर्म तथा भारतीय सस्कृति का चीन में खूब प्रचार हुआ तथा उन्होंने चीनी जनता के जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। यदा-कदा बौद्ध धर्म को राजकीय अत्याचार तथा कोप का शिकार भी होना पड़ा। पर, वे अल्पकालीन थे। ये सब कार्य त्सिन राजकाल के बाद स्थापित चिन् राजवश, खासकर पूर्वी चिन् राजवश के समय से चालू हुए जो उत्तरोत्तर आगे बढ़ते ही गये।

त्सिन राज के वइ राज ने शु राज को २६४-ई० में अपने में मिला लिया, पर, २६५ ई० में वइ राज के एक मत्री ने राजा को गद्दी से उतार दिया, स्वय सम्राट बन गया और चिन् राजवश की स्थापना की। इसने २८० ई० में त्सिन राजो में बचे वु राज को भी अपने में मिलाकर, सम्पूर्ण चीन को एक शासन के अधीन किया। चिन् राजवश २६५-४२० तक रहा, जिसमें २६५-३१६ तक का काल पश्चिमी चिन् राजवश का काल कहा जाता है। राजधानी छाङ् आन में थी। छाङ् आन भारतीय संस्कृति

और बौद्ध धर्म-प्रचार का केन्द्र बना रहा। पश्चिमी चिन् राजवंश की आधी शती के अंदर ४६८ ग्रन्थों के अनुवाद हुए। वैसे बारह अनुवादकों के नाम मिलते हैं जिन्होंने ४४१ ग्रन्थों के अनुवाद किए थे। ५८ ग्रन्थों के अनुवादकों के नाम नहीं मिलते। ४६८ ग्रन्थों में अब १५३ ही प्राप्य हैं। इस काल के सबसे प्रसिद्ध अनुवादक शक जातीय भिक्षु धर्मरक्ष थे। इन्होंने २१० ग्रन्थों के अनुवाद किए। कहा जाता है कि ये ३६ भाषाओं के जानकार थे। इन्होंने ललित विस्तर तथा प्रज्ञापारमिता ग्रन्थों की पहली बार चीनी में अनुवाद किया तथा अवलोकितेश्वर मत (क्वान् श इन्) का प्रचार किया। इन्होंने बौद्ध धर्म-प्रचार के अलावे चीनी लोगों को बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद करने के लिए प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप कितने ही प्रसिद्ध चीनी अनुवादक और धर्म-प्रचारक हुए। इनके अलावा इस काल में श फा लि, श फा च्यु, कालरुचि, मोक्षल, चु शु-लान् आदि भिक्षु थे जिन्होंने धर्म-प्रचार और अनुवाद-कार्य किए। इनमें भारतीय बहुत कम थे। पश्चिमी चिन् राजवंश का काल, बौद्ध धर्म प्रचार और बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद की दृष्टि से धर्मरक्ष का काल कहा जा सकता है। इस काल के सभी अनुवादक या तो इनके शिष्य थे या सहयोगी, जो इनसे ही प्रभावित होकर इस कार्य में लगे थे। इनके प्रभाव से कई चीनी व्यक्तियों ने संस्कृत सीखकर अनुवाद किया जिनमें नइ चङ् युआन, नइ ताव चन तथा पो भा चु के नाम उल्लेखनीय हैं। इस काल के एक प्रसिद्ध चीनी भिक्षु थे चु श हिङ् जिन्होंने बौद्ध धर्म तथा बौद्ध साहित्य-प्रचार के लिए बड़ा काम किया। इन्होंने किसी पुस्तक का अनुवाद तो नहीं किया, पर, लोगों को अनुवाद करने के लिए बड़ा प्रोत्साहित किया। यही प्रथम चीनी भिक्षु थे जिन्होंने बौद्ध धर्म ग्रन्थों की खोज तथा उनके असली अर्थ को समझने के लिए भारत आने का प्रयत्न किया, पर खोतन से ही संस्कृत पोथियाँ लेकर लौट गए। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस काल में चीनी भिक्षुओं ने भी संस्कृत का ज्ञान प्राप्तकर अनुवाद में हाथ लगाया तथा वे अनुवाद-कार्य से ही तृप्त न होकर अधिक ज्ञान-प्राप्ति के लिए भारत आने का प्रयत्न करने लगे।

पश्चिम चिन् राजवंश के अंतिम समय में देश की राजनीतिक हालत ठीक नहीं रही। हूणों ने देश पर आक्रमण किया। सन् ३१६ तक सारा उत्तर चीन हूणों के अधिकार में चला गया, और पश्चिमी चिन् राजवंश समाप्त हो गया। पर चिन् राजवंश के एक युवराज ने ३१७ ई० में याङ् च सि क्याङ् के पार दक्षिण चीन में नान्किङ् को राजधानी बनाई। तब से चिन् राजवंश पूर्वी चीन राजवंश कहलाने लगा जिसके अधीन दक्षिण चीन रहा। यहाँ इस वंश का राज्य ३१७-४२० तक रहा। इस राजवंश के समय में भी बौद्ध धर्म की उन्नति ही हुई। इस वंश के सभी सम्राटों का बौद्ध धर्म की ओर अच्छा रुझान था। नवम सम्राट् शिआव् वु ति तो बौद्ध धर्म में दीक्षित हो हो गया था। कई सम्राटों ने तो कितने बड़े २ विहार बनवाए जिनमें हजारों की सख्या में भिक्षु रहते थे। कहा जाता है कि पूर्वी चिन् राजवंश के १०४ वर्षों के राजत्व काल में बड़े छोटे १७०६८

बौद्ध प्रतिष्ठान स्थापित हुए और २३३ ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। इस काल में सोलह प्रसिद्ध अनुवादक हुए। इनमें कूचा के श्रीमित्र, भारत के धर्मरत्न, गौतमसंघ देव (काश्मीर) और बौद्ध भद्र (गौतम बुद्ध के परिवार का) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके अलावे भारत के विमलाक्ष, जिनमित्र, नदी, धर्मप्रिय, कालोदक और धर्मबल, सुंग के त्साट् ताव् हो और त्साट् फा शुएन् तथा चीन के चे छद् काट्, चे शु काट् और चे फा त्साट् के नाम उल्लेखनीय हैं। पर, इस काल के चीनी भिक्षुओं में सब से प्रसिद्ध फा शिएन् था जिसका नाम किसी इतिहास-प्रेमी भारतीय से छिपा नहीं है। ये प्रथम चीनी भिक्षु थे जो चीन से मध्य एशिया के मार्गद्वारा चलकर भारत पहुँचे थे। भारत में इन्होंने संस्कृत सीखी, बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन और संग्रह किया तथा पाटलिपुत्र से चंपा (भागलपुर) होकर ताम्रलिप्ति (तामलूक बंगाल की खाड़ी का बन्दरगाह) पहुँचे। वहाँ से जहाज द्वारा लंका गये और लंका से जहाज द्वारा अपने पुस्तकों के संग्रह के साथ दक्षिण चीन लौटे तथा वहाँ पूर्वी चिन् राजवंश की राजधानी नान्किंग में रहकर अनुवाद-कार्य किया। इनके सहयोगी बुद्धभद्र थे जिनका नाम ऊपर आया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्वी चिन् राजवंश के समय से चीन के भिक्षु भारत आकर अध्ययन और पुस्तक संग्रह का कार्य प्रारम्भ करते हैं और चीन का प्रत्यक्ष संबंध भारत के साथ होता है। इस काल में कूचा के उपरोक्त भिक्षु श्रीमित्र-द्वारा पहली बार मंत्र तंत्र ग्रंथों का चीन में प्रवेश हुआ। इन्होंने कई धारणियों का चीनी में अनुवाद किया। इस काल में बौद्ध साहित्य के अनुवाद की दिशा में अधिकतर आगम ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। इसके अलावा सर्वास्तिवाद के कुछ ग्रंथों का तथा महासांघिक सम्प्रदाय के विनय ग्रन्थों का भी अनुवाद हुआ। अभिधर्म ग्रन्थों का पहली बार इसी काल में प्रचार हुआ और इसका श्रेय गौतमसंघ देव को है। इन्होंने कात्यायनी पुत्र के ज्ञान-प्रस्थान शास्त्र और महाविभाषा का चीनी में अनुवाद किया। ये सर्वास्तिवाद के अभिधर्म ग्रन्थ थे जिनका मूल संस्कृत लुप्त हो गया है और इनकी जानकारी का एक मात्र साधन चीनी अनुवाद है जो अबतक वर्त्तमान है। इसी काल में लिखा गया फा शिएन का यात्रा-विवरण—"भारत भ्रमण का वृत्त"—बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है जिसमें उन्होंने भारत, लंका, अफगानिस्तान, मध्य एशिया आदि में बौद्ध धर्म की प्रगति तथा वहाँ की राजनीतिक और सामाजिक दशाओं का वर्णन किया है। यह पुस्तक प्राचीन भारत के इतिहास का एक बहु मूल्य उपकरण है। मिलिन्द-प्रश्न का अनुवाद भी इसी काल में हुआ।

पूर्वी चिन् राजवंश के समय ही क्वाट् सी प्रान्त के लु शान नामक स्थान पर एक प्रसिद्ध चीनी भिक्षु हुइ युआन् ने एक विहार स्थापित किया था। यहीं गौतमसंघ देव और बुद्धभद्र ने कुछ वर्षों तक रहकर अनुवाद-कार्य किया था। चौथी शती के अन्त तक बौद्ध धर्म चीन के लिए विदेशी न रह गया। यह चीनी जनता के जीवन का प्राणशक्ति हो गया। इसी विहार में भिक्षु हुइ युआन् ने पो लिएन् सु (श्वेत कमल सम्प्रदाय) नामक सम्प्रदाय स्थापित कर अमिताभ मत का प्रचार किया जिसका प्रभाव अभी तक चीन में है।

दक्षिण चीन में, पूर्वी चिन् राजवंश सन् ४२० में समाप्त हो गया और उसकी जगह सुङ् राजवंश (४२०–४७६) की स्थापना हुई। पर अब हम उत्तरी चीन की चर्चा कर लें। ऊपर कहा गया है कि ३१६ में हूणों ने पश्चिमी चिन् राजवंश को समाप्तकर, उत्तर चीन पर अधिकार कर लिया था। हूण अपने को हान् राजवंश की संतान कहते थे; क्योंकि उनके पूर्वजों को हान् सम्राटों ने अपनी लड़कियाँ ब्याह दी थीं। हूणों का हान राज उत्तर में ३१६–३४९ ई० तक रहा। इस समय तक उत्तर में बौद्ध धर्म का काफी प्रचार हुआ। कूचा के एक भिक्षु फा थु तङ् (बुद्धदान) ने सम्राट् श हु से बौद्ध धर्म के समर्थन में एक घोषणा करवाई थी। हूणों का राज जब कई टुकड़ो में बँट गया, तब तिब्बती कबीले की एक शाखा ति के नायक फु छिएन् ने ३५० के लगभग गाँवों को अपने अधिकार में कर छिन् राजवंश की स्थापना की। यह वंश चीनी इतिहास में पूर्ववर्ती छिन् कहलाता है। फु छिएन् तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में बौद्ध धर्म की और भी उन्नति हुई। यह राजवंश ३५०–३९४ तक रहा। फु छिएन् स्वयं ३८१ ई० में बौद्ध हो गया। उस समय उत्तर चीन की ९० फी सदी जनता बौद्ध थी। इस काल में छः प्रसिद्ध अनुवादक हुए जिन्होंने १५ ग्रन्थो के अनुवाद किए। इनमें १० बच रहे हैं। उन दिनों विशेषकर अनुवाद आगम-ग्रन्थों के हुए। इस काल के दो चीनी व्यक्ति उल्लेखनीय हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार तथा अनुवाद में बड़ी सहायता पहुँचाई। एक तो चाव् चङ् जो फु छिएन् के सरकारी अफसर थे। इन्होंने राजधानी छाङ् आन् में चीनी तथा विदेशी बौद्ध पंडितों को निमंत्रित किया और उन्हें अनुवाद तथा प्रचार-कार्य में सहायता पहुँचाई। दूसरे थे ताव् आन्। इन्होंने भी चीनी तथा भारतीय पंडितों को बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद करने के लिए बड़ा प्रोत्साहित किया। स्वयं अनुवाद-कार्य में दुभाषिये का काम किया, अनूदित ग्रन्थों का सम्पादन किया और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध अनुवादों पर भूमिकाएँ लिखीं। इन्होंने अनुवाद की ठोस पद्धति चलाई और विनय-ग्रन्थो पर भाष्य लिखे। आन् श काव् (पार्थव देश का भिक्षु जो १४८ में हान् राजवंश के समय चीन आया था और अनुवाद किया था) के समय से लेकर अपने काल तक के बीच हुए बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद तथा अनुवादको की विस्तृत सूची बनाई। ताव् आन् की अपनी एक शिष्यमंडली थी। उन्होंने अपने शिष्यो को शिक्षित कर देश में चारों ओर बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा था। ऊपर पूर्वी चिन् राजवंश के वर्णन के समय जिस श्वेत कमल-सम्प्रदाय की चर्चा हुई है, उसका संस्थापक हुइ युआन्, इन्हीं का शिष्य था। इन्हीं के प्रचार तथा प्रोत्साहन का फल था कि इनकी मृत्यु के बाद फा शिएन् ने मध्य एशिया के बीहड़ रास्ते से होकर भारत आने का साहस किया। संक्षेप में ताव् आन् ने अपने समय में बौद्ध धर्म-प्रचार के लिए जो काम किया, वह उन्हे चीन के बौद्ध धर्म के इतिहास में अमर बनाए हुए है।

छिन् राजा फु छिएन् की हत्या ३८५ में याव् चाङ् ने कर दी और परवर्ती छिन् राजवंश फु छिएन् की हत्या के बाद लगभग १० वर्ष और बना रहा। यह परवर्ती छिन् राजवंश ३८४-

४१७ ई० तक रहा। इसमें दो राजा हुए, एक तो याव् छाट् (३८५-३९५) और उसका उत्तराधिकारी याव् हिंग् (३९५-४१७)। ये दोनों ही बौद्ध धर्म के समर्थक थे। इस काल में चीन में बड़े-बड़े भिक्षु आए जिन्होंने बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद किए। उनमें कुमारजीव * (कूचा), बुद्धयश (काश्मीर), पुण्यत्रात, धर्मयश (दोनों ही काश्मीर के) आदि प्रसिद्ध हैं। बुद्धयश कुमारजीव का गुरु और शिष्य था। इन्होंने और ग्रन्थों के अलावे दीर्घागम और धर्मगुप्त सम्प्रदाय के विनय ग्रन्थों के अनुवाद किए। तब से सातवीं शती तक चीन में धर्मगुप्त-सम्प्रदाय के विनय का ही बोलबाला रहा। बुद्धयश, पुण्यत्रात, धर्मयश सभी ने कुमारजीव के साथ काम किया था। कुमारजीव इस काल का सबसे बड़ा अनुवादक हुआ। वह ४०१ में चीन गया था और वहाँ ही उसकी मृत्यु ४१३ में हुई। इनका अनुवाद सब से प्रामाणिक माना जाता है। इन्हें चीनी भाषा, संस्कृत बौद्ध साहित्य एवं दर्शन पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। इसलिए इनका अनुवाद भाव, भाषा, शैली सब तरह से प्रामाणिक हुआ। इन्होंने अनुवाद की दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया, अतः यह युग कुमारजीव का युग कहलाता है। परवर्ती छिन् राजा याव् हिंग् के आज्ञानुसार ८०० पंडित कुमारजीव की सहायता में लगे थे और उन सबों के सहयोग से इन्होंने नए ग्रन्थों का अनुवाद किया और पहले के अनूदित ग्रन्थों में संशोधन किया। कुमारजीव ने स्वयं ९८ (किसी-किसी के मत से १०६) ग्रन्थों के अनुवाद किए जिनमें महायान के प्रायः सभी प्रसिद्ध ग्रन्थ थे। इन्होंने चीनी में *नागार्जुन और अश्वघोष की जीवनियाँ भी लिखीं*, नागार्जुन, आर्यदेव और हरिवर्मन् की कृतियों को चीन में प्रवेश कराया, विमल कीर्ति निर्देश, सद्धर्म पुंडरीक तथा *ब्रह्मजाल सूत्र* के अनुवाद किए और सुखावती व्यूह का अनुवादकर अमिताभ मत का प्रचार किया। परवर्ती छिन् राजवंश के समय ११८ (किसी मत से १३८) ग्रन्थों के अनुवाद हुए जिनमें ९८ तो अकेले कुमारजीव ने किए थे।

परवर्ती छिन् राजवंश ४१७ ई० में समाप्त हो गया। लगभग इसी समय दक्षिण चीन में पूर्वी चिन् राजवंश भी समाप्त हुआ (४२० ई०)। पूर्ववर्ती छिन् राजवंश के सम्राट् फु छिएन्

---

* कुमारजीव के पिता का नाम कुमारायण था। वह भारत के किसी राजा के परम्परागत अमात्य-परिवार के सदस्य थे। पर वह किसी कारण से अपना अधिकार छोड़ कूचा (मध्य एशिया में) चले गए और वहां के राजा के राजगुरु बन गए। राजा की बहन जीवा उनसे प्रेम करने लगी। अन्त में दोनों की शादी हो गई। कुमारायण और जीवा के नाम पर इनके पुत्र का नाम कुमारजीव पड़ा। कुमारजीव ने काश्मीर, खोतन आदि में शिक्षा प्राप्त की और अपने समय के बहुत ही बड़े पंडित हुए। ये संस्कृत तथा चीनी भाषा के अलावे मध्य एशिया की प्रायः सभी भाषाएं जानते थे। इनका नाम चारों ओर फैल गया था और इनका नाम सुनकर ही तात् आन् ने पूर्ववर्ती छिन् राजा फु छिएन् से इन्हें कूचा से चीन बुलाने का निवेदन किया था।

की हत्या के बाद उत्तर चीन आठ राजों में बँट गया था। उनमें एक परवर्ती छिन् था जिसकी चर्चा ऊपर हुई है। उन आठ में एक दूसरा था पश्चिम छिन् राजवंश (३४५-४३१) जिसकी राजधानी युआन् में थी। इस राजवंश के समय सुङ् चिएन् नामक एक ही प्रसिद्ध अनुवादक हुए, जिन्होंने १४ या १५ पुस्तकों के अनुवाद किए जिनमें दस बच रहे हैं। ४१ ग्रन्थों के अनुवादकों का पता नहीं चलता है जिनमें १८ ग्रन्थ ही प्राप्य हैं। उत्तरी चीन के इस अराजक युग में श्युङ्नु कबीले (हूण) के चु चु परिवार ने सन् ३६७ में चाङ् ये में अपना राज स्थापित किया। यह उत्तरी ल्याङ् राजवंश (३६७-४३६) कहलाया। यह राजवंश बाद में अपनी राजधानी उठाकर कु छाङ् ले गया। इस राजवश के समय दो भारतीय भिक्षु, छः चीनी भिक्षु और एक पश्चिम क्षेत्र के भिक्षु बड़े प्रसिद्ध हुए। भारतीय भिक्षु बुद्धवर्मन ने महाविभाषा का अनुवाद किया और धर्मक्षेम (धर्मरक्ष) ने महानिर्वाण सूत्र, करुणा-पुंडरीक सूत्र, महासन्निपात सूत्र, अश्वघोष के बुद्ध चरित आदि ग्रन्थों के अनुवाद किए। इस काल के प्रसिद्ध छः चीनी भिक्षुओं में तीन, जिनके नाम श चे मङ्, फा सङ् और ताव् थाई थे, भारत भी आए थे तथा पुस्तकों का संग्रह कर चीन ले गए थे और उनके अनुवाद किए थे। इनमें श चे मङ् ने अपना यात्राविवरण भी लिखा था। शेष तीन भिक्षु श ताव् कङ्, सङ् चिए तो चिन् और ख्यु चिङ् सङ् ने भी प्रचार तथा अनुवाद आदि बहुत काम किये। चिन् ख्यु चिन् सङ् तो खोतन तक आए थे जहाँ उन्होंने बुद्धसेन से बौद्ध ग्रन्थो और ब्राह्मण-भैषज-ग्रन्थों का अध्ययन किया था तथा बहुत-सी पांडुलिपियाँ लेकर चीन लौटे थे। इन्होंने एक ग्रन्थ का अनुवाद किया जिसमें ध्यान से होनेवाली व्याधियों को दूर करने की पद्धतियों की चर्चा थी। इस काल के ६ भिक्षुओं ने ३३ ग्रन्थो के अनुवाद किए जिनमें १८ ही बच रहे हैं। ५३ ग्रन्थो के अनुवादकों के नाम नहीं मिलते जिनमें अब ७ ग्रन्थ बच रहे हैं।

अब हम पुनः दक्षिण चीन में होनेवाले भारतीय संस्कृति के प्रचार-कार्यों की चर्चा करेंगे। ऊपर कह आए हैं कि दक्षिण चीन में ४२० में पूर्वी चीन राजवंश समाप्त हो गया था। इसके बाद ल्यु परिवार के सुङ् राजवंश (४२०-४७६ ई०) की स्थापना हुई। अब तक चीन में बौद्ध-धर्म की जड़ ही नहीं जम चुकी थी, बल्कि वह फूलने-फलने भी लगा था। इसलिए इसकी प्रतिक्रिया भी आवश्यक थी। कनफ्युशियस और ताओ मत के लोग बौद्ध-धर्म को नीचा दिखाने के एक भी अवसर को काम में लाने से नहीं चूकते थे। सुङ् राजवंश के तीसरे सम्राट् बन् ति ने तो बौद्ध बिहारों के नियंत्रण के लिए अनेक कठोर नियम बना दिए थे, पर छठे सम्राट् मिङ् ति जो बौद्ध मतावलम्बी थे कितने ही विहार बनवाए। भारत और लका से सुङ् सम्राट् को चीन में बौद्ध-धर्म की उन्नति के लिए धन्यवाद देने राजदूत आए। इस राजवंश के ५६ वर्षों में २० अनुवादकों ने २१० ग्रन्थो के अनुवाद किए, जिनमें ८२ बच रहे हैं। २०७ ग्रन्थों के अनुवादकों के नाम

नहीं मिलते, जिनमें ६ ही ग्रन्थ बच रहे हैं। बीस अनुवादकों में ६ चीन के, ७ भारत के, १ सिंहल के और दो पश्चिम चीन के थे। एक अनुवादक के देश का पता नहीं है। भारतीय भिक्षुओं में बुद्धजीव, कालयश, धर्ममित्र, गुणवर्मन, सघवर्मन और गुणभद्र अधिक प्रसिद्ध हुए। हम ऊपर चर्चा कर आए हैं कि पूर्वी चिन् राजवंश के समय ४१४ ई० में फा शिएन् भारत-भ्रमणकर चीन लौटा था। फा शिएन् के इस कार्य से और भी चीनी भिक्षु भारत जाने को उत्सुक हुए। इस काल में फा याङ् के नायकत्व में २५ भिक्षुओं का एक दल भारत आया और उसने प्राय सभी बौद्ध तीर्थस्थानों, बौद्ध विद्या और संस्कृति के केन्द्रों का भ्रमण किया तथा यहां अध्ययन किया और अपने साथ पुस्तकों का संग्रह लेकर चीन लौटा।

सन् ४७६ में सुङ् राजवंश समाप्त हुआ और उसकी जगह छि राजवंश (४७६-५०२) की स्थापना हुई। इस राजवंश के लगभग २४ वर्षों में ८ अनुवादकों ने १२ (किसी मत से १४) पुस्तकों के अनुवाद किए जिनमें ६ बच रही हैं। इस काल में अनुवादकों में दो चीनी, चार भारतीय और एक पश्चिम चीन के थे। एक के देश का पता नहीं लगता। भारतीय भिक्षुओं में सघभद्र, धर्मकृतयश, धर्ममति और गुणवृद्धि प्रसिद्ध थे। सन् ५०२ ई० में छि राजवंश समाप्त हुआ और ल्याङ् राजवंश की स्थापना हुई—५०२-५५७ ई० तक। ल्याङ् राजवंश का प्रथम राजा वू ति (५०२-५४६) पक्का बौद्ध धर्मानुयायी था। उन्होंने केवल जीवहिंसा ही नहीं रोक दी, बल्कि कपड़ों पर जानवरों के चित्र आँकने या कसीदा काढने पर भी प्रतिबंध लगा दिया, क्योंकि उन्हें डर था कि ऐसे कपड़ों के फाड़ने के समय लोगों के मन में जीवहिंसा की भावना पैदा हो सकती है। वे सम्राट् होकर भी अशोक की तरह भिक्षु जीवन व्यतीत करते थे और कई बार तो राजगद्दी त्याग भिक्षु होने के लिए विहार चले गए थे। उनकी इस प्रवृत्ति से बौद्ध धर्म की तो बड़ी उन्नति हुई, पर देश की राजनीतिक शक्ति कमजोर पड़ गई। उनके समय में परला हिंद के हिंदुराज फ़ुनान् से भगवान् बुद्ध का एक केश भेजा गया था जिसका उन्होंने राजकीय स्वागत किया। कोरिया से भी राजदूत वु ति के दरबार में बौद्ध-धर्म ग्रन्थों को लेने आया था। इस काल के चार अनुवादक प्रसिद्ध हुए जिनमें परमार्थ* और उपशून्य तो भारत के थे और भद्रसेन तथा संघवर्मन (सघपाल या सघभर) परला हिंद के हिंदु राज फ़ुनान् के। इस काल में सम्राट् वु ति की आज्ञा से पाव् चङ् नामक एक चीनी श्रमण ने चीनी बौद्ध ग्रन्थों

* ये भारत के उज्जैन के भिक्षु थे। सम्राट् वु ति ने गुप्त दरबार (जीवगुप्त या कुमारगुप्त) में एक मीशन भेजा था जो सन् ५३९ में भारत आया था। यह मीशन बौद्ध ग्रन्थों और एक प्रसिद्ध पंडित को भारत से चीन ले जाने के लिये भेजा गया था। मीशन के अनुरोध पर गुप्त सम्राट् ने परमार्थ को ही चीन भेजा। ये ५४८ में नानकिङ् पहुँचे। ल्याङ् राजवंश के समय इन्होंने ११ ग्रन्थों के अनुवाद किए जिनमें तीन बच रहे हैं। इन्होंने अधिक कार्य ल्याङ् के बाद स्थापित छन् राजवंश के समय में किया।

का प्रथम क्रोड़-पत्र तैयार किया जिसमें १४३२ ग्रन्थों की चर्चा थी। यह क्रोड़-पत्र अब प्राप्य नहीं है। सन् ४२० में सङ् यु नामक एक चीनी भिक्षु ने एक बौद्ध त्रिपिटक का संग्रह किया, जिसमें सन् ६७ ई० से ५२० ई० तक के अनूदित ग्रन्थों की चर्चा है। इन्होंने भगवान् बुद्ध के शाक्य परिवार का इतिहास भी लिखा है जिसमें शाक्य परिवार की उत्पत्ति-काल से बौद्ध धर्म के अवनति-काल तक की चर्चा है। इस काल के उपर्युक्त आठ अनुवादकों ने ३१ ग्रन्थों के अनुवाद किए जिनमें ११ प्राप्य हैं। १४ ग्रन्थो के अनुवादकों के नाम नहीं मिलते, पर सभी ग्रन्थ वर्त्तमान हैं।

ल्याङ्_ राजवंश की जगह ५५७ में छिन् राजवंश (५५७-५८९) की स्थापना हुई। इस राजवंश के समय भी, दक्षिण चीन में, बौद्ध धर्म की उन्नति ही हुई। ल्याङ्_राजवंश के समय आए। परमार्थ और उपशुन्य नामक दो भिक्षुओं ने इस राजवंश के समय भी अपना कार्य जारी रखा। इनमें परमार्थ का नाम बहुत प्रसिद्ध है और यह युग परमार्थ-युग कहलाता है। इन्होंने ५५७-५६९ के बीच ३८ ग्रन्थों का अनुवाद किया जिनमें २९ बच रहे हैं। इन्होंने चीनी भाषा में वसुबन्धु की जीवनी ❀ लिखी जिससे भारतीय इतिहास की बहुत बातों का पता चलता है। असंग और वसुबंधु के बहुत-से ग्रन्थो का अनुवादकर इन्होने चीन में विज्ञानवाद का प्रचार किया। इसके अलावे इन्होंने वसुवर्धन और वसुमति के ग्रन्थों तथा गुणमति के सांख्य दर्शन का भी चीनी में अनुवाद किया। परमार्थ ने जिन ग्रन्थों का अनुवाद किया है, उनमें अनेक मूल संस्कृत में भी नहीं मिलते। उन ग्रन्थों की जानकारी का एक ही साधन चीनी अनुवाद है। उपशुन्य ने इस काल में एक ही पुस्तक का अनुवाद किया। इस काल में फुनान् के एक भिक्षु सुमति चीन आए थे और एक ग्रंथ का अनुवाद किया था जो अब नहीं मिलता है। इस काल के इन तीन अनुवादकों ने ४२ ग्रन्थों का अनुवाद किया जिनमें तीस ही बच रहे हैं। परमार्थ की मृत्यु होने पर उनकी यादगारी में एक स्तूप भी इस काल में बनाया गया था। इस काल में चीन में अवतंसक नामक बौद्ध सम्प्रदाय गठित हुआ जिसकी अत्यधिक उन्नति थाङ्_ राजवंश के समय हुई।

अब हम पुन: उत्तर चीन में होनेवाली प्रगति पर ध्यान दें। पूर्ववर्ती छिन् राजा फु-छिएन् (३५७-३८५) की हत्या के बाद उत्तर चीन में बसे शिएन-पि कबीले की एक शाखा तो पा या तौ बा ने अन्य शाखाओं को अपने अधीन कर ३८६ में उत्तर वइ राजवंश (३८६-५३४) की स्थापना की। उन दिनों राजधानी ता थुङ्_ में थी। कालान्तर में इसी राजवंश ने सम्पूर्ण उत्तर चीन को अपने अधिकार में किया और पूर्व की ओर कोरिया तक तथा पश्चिम की ओर तुर्किस्तान तक अपना प्रभुत्व फैलाया। इतना ही नहीं, यह जाति चीनी रीति-रिवाज, भाषा, पोशाक आदि अपनाकर

❀ इसका अनुवाद चीनी से हिन्दी में चीन-भवन, शांतिनिकेतन के भदन्त शांति भिक्षु ने किया है। देखिए विशाल भारत; अक्टूबर, १९४७।

सम्य हो गई और चीनी जाति में घुलमिल गई। अपने परिवार का नाम भी बदलकर तो पा या तो-ना से युआन् (चीनी नाम) कर दिया। सन् ५३४ में उत्तर वइ राजवंश दो भागों में बँट गया। एक पश्चिम वइ राजवंश (५३४-५५७) और दूसरा पूर्वी वइ राजवंश ५३५-५५०) कहलाया। इन राजवंशों के समय बौद्ध-धर्म राज धर्म हो गया तथा बौद्ध साहित्य, कला, दर्शन आदि की अभूतपूर्व उन्नति हुई। पर उत्तर वइ राजवंश के समय बौद्ध धर्म को राजकीय अत्याचार का शिकार भी बनना पड़ा। फिर भी इस युग में हुई बौद्ध-धर्म की उन्नति का अनुमान तो इसीसे लगाया जा सकता है कि तीनों वइ राजवंशों (३८६-५५७) के १७० वर्षों में ४७ बड़े बड़े विहार बने, हजारों की संख्या में प्रतिमाएँ गढ़ाई गई। छोटे-छोटे राजों ने ८३९ मंदिर तथा व्यक्तिगत रूप से लोगों ने तीस हजार मन्दिर बनवाए। इस काल में भिक्षु भिक्षुणियों की संख्या बीस लाख से ऊपर पहुँच गई। लोयाङ् तथा छाङ् याङ् दोनों ही नगर बौद्ध-धर्म और विद्या के केन्द्र बन गए। यह वही युग था, जब कि उत्तर चीन के छोटे-छोटे राजों में कुमारजीव, बुद्धयश, पुण्यत्रात, बुद्धिरुचि आदि धर्म-प्रचार और अनुवाद-कार्य में लगे थे जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। उत्तर वइ और पूर्वी वइ राजवंशों के समय क्रमशः आठ और चार अनुवादक हुए। उत्तर वइ के आठ अनुवादकों में चार भारतीय थे और पूर्वी वइ के चारों भारतीय थे। इन आठों के नाम थे धर्मरुचि, रत्नमति, बोधिरुचि, बुद्धशांत, गौतमप्रज्ञारुचि, उपशून्य, विमोक्षसेन और धर्मबोधि। इनमें बोधरुचि और गौतमप्रज्ञारुचि अपने समय के बहुत ही प्रसिद्ध भिक्षु थे। इस काल में कुल १०५ ग्रन्थों का अनुवाद हुआ जिनमें ७३ मिलते हैं। कुछ प्रसिद्ध अनूदित ग्रन्थों के नाम हैं— सद्धर्मपुंडरीक का भाष्य, *महायानोत्तर तन्त्रशास्त्र, महायान सम्परिग्रह शास्त्र,* वज्रछेदिका प्रज्ञापारमिता, लंकावतारसूत्र, मध्यांतानुगम शास्त्र, विवादशमन शास्त्र, महापरिनिर्वाण सूत्र पर वसुबंधु का भाष्य आदि। ५१८ ई० में सम्राट् ने सुङ् युन् को ग्रन्थों की खोज में भारत भेजा था। इनके साथ हुइ सङ् नामक भिक्षु भी थे। ये लोग १७० पुस्तक लेकर ५२२ में चीन लौटे थे।

सबसे बड़ा काम इस युग में कला के क्षेत्र में हुआ। श थान् याव् नामक चीनी भिक्षु के अनुरोध पर चौथे सम्राट् वन् छङ् ति ने उस *काल की राजधानी ता थुङ्* के पास उत्तरी शान्-सी प्रान्त के युन् काङ् स्थान के वु चाव् पहाड़ों में पाँच बड़े-बड़े गुहा-विहार (Grottos) बनवाए जिनकी भीतरी दीवारों पर बौद्ध कथाओं के चित्र आँके गए। पहाड़ों में भी काटकर ६० से ७० फीट ऊँची २ बुद्ध *मूर्तियाँ बनाई गई। ये भित्ति चित्र और मूर्तियाँ भारतीय,* यूनानी, मथुरा और गुप्तकला शैली की नकल पर बनी हैं। इन गुहा विहारों को चीन का अजन्ता-विहार समझिए। ये गुहा विहार पाँच कोस के आयाम में हैं। यह कार्य ५१५ ई० में जाकर पूरा हुआ था। जब ४९४ ई० में राजधानी *ता थुङ् से लो याङ्* चली गई तो *लो याङ्* से पाँच कोस दूर लुङ् मन् की पहाड़ियों में भी इसी प्रकार के गुहा-विहार बनाना प्रारम्भ हुआ जो थाङ्-राजवंश

के समय जाकर पूरा हुआ। चीन की पश्चिमी सीमा पर तुन् ह्वाङ् के गुहा-विहार, जो 'सहस्त्र-बुद्ध गुहा-विहार' भी कहा जाता है, यद्यपि चौथी शती में ही बनना प्रारम्भ हुआ था पर वइ राजवंश के समय वहाँ काफी कार्य हुआ। वहाँ वइ राजवंश के चीन और भारतीय कला की छाप स्पष्ट है। गुहा-विहारों के सामने जो कितने ही स्तूप और मूर्तियाँ हैं, वे वइ राजवंश के समय की ही हैं। पर तुङ् ह्वाङ् की सबसे अधिक प्रगति थाङ् राजवंश के समय हुई। इन सब स्थानों में भारतीय कला का चीनी कला पर जो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, वह स्पष्ट ज्ञात होता है। चीन के चित्रकार इस प्रभाव से दरबारी दृश्यों के चित्र आँकना छोड़ भगवान् बुद्ध, संत-महात्माओं तथा भिक्षुओं आदि के चित्र आँकने लगे। संभवतः इसी युग में चीनी चित्रकारों ने भारतीय चित्रकारों से भित्ति चित्र आँकना सीखा। इस युग में भारतीय चित्रकार शाक्यबुद्ध, बुद्धकीर्ति, कुमारबोधि आदि ने चीन में रहकर कार्य किया और उनके चित्र अभी भी कितने विहारों में सुरक्षित हैं तथा आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। वइ राजवंश चीन में बौद्ध कला के लिये स्वर्ण-युग हुआ। भारतीय स्थापत्य-कला का भी चीन पर प्रभाव पड़ा। स्तूप तथा स्तूप जैसे मंदिर, जिसमें महल के ऊपर महल बने होते हैं, चीनी लोगों ने भारतीयों से ही बनाना सीखा। ५१६ में लो याङ् में इस तरह का प्रथम मंदिर नौ महल का बना जो बड़ा ही सुन्दर और भव्य था।

पर, इस युग में बौद्ध-धर्म पर राजकीय अत्याचार भी हुआ। तीसरे सम्राट् थाइ वु ति (४२४–४५२) तथा उनका एक मंत्री, दोनों ही ताओ-मतावलम्बी थे और बौद्ध-धर्म के विरोधी थे। वु ति के राजत्वकाल में छाङ् यान् के एक विहार में अस्त्र-शस्त्र निकला। इसपर राजद्रोह का अपराध लगा। सम्राट् ने आज्ञा दी थी कि जितने बौद्ध मंदिर और ग्रंथ हैं, नष्ट कर दिए जायँ और भिक्षुओं को सजा दी जाय। सम्राट् का पुत्र बौद्ध था। उन्होंने बहुत भिक्षुओं को बचाया। फिर भी हजारों की संख्या में मंदिर तोड़े गए, पुस्तकें जलाई गईं और भिक्षु मारे गए तथा गृहस्थ होने को बाध्य किए गए। पर, यह अत्याचार अधिक दिनों तक न रहा। थाइ वु ति का लड़का बौद्ध था और वह जैसे ही गद्दी पर बैठा, उसने बौद्ध-धर्म के ऊपर से सब प्रतिबंध हटा लिए और वह पुनः फूलने फलने लगा।

इसी काल में एक भारतीय भिक्षु बोधिधर्म का सन् ५२० में चीन में आगमन हुआ। ये पहले दक्षिण चीन के ल्याङ् राजवंश के प्रसिद्ध बौद्ध राजा वु ति के दरबार में आए। पर, पीछे उत्तर चीन के लो याङ् नगर में चले आए। इन्होंने न कोई ग्रंथ लिखा न किसी का अनुवाद किया। ये ध्यान के प्रचारक थे। कहा जाता है कि लोयाङ् में ये नौ वर्षों तक पलथी मारे केवल दीवार ताकते रह गए थे। इनके प्रचार से ही चीन में छान् सम्प्रदाय (संस्कृत-शब्द ध्यान का चीनी अनुलेखन छान्) की स्थापना हुई जो जापान में जैन-सम्प्रदाय कहलाया।

चीन और जापान, दोनों देशों में इस सम्प्रदाय की बहुत वृद्धि हुई और इस पर वृहत् साहित्य का निर्माण हुआ। बोधिधर्म भारत के बौद्ध आचार्य-परम्परा के २८ वे आचार्य थ और चीन में छान् सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य हुए।

ऊपर कहा गया है कि किस प्रकार उत्तर वइ राजवंश ५३४ में दो भागों में विभक्त होकर पश्चिमी वइ और पूर्वी वइ के रूप में हो गया। सन् ५५० में पूर्वी वइ समाप्त हो गया और उसकी जगह उत्तरी छि राजवंश की स्थापना हुई। सन् ५५७ में पश्चिमी वइ भी समाप्त हो गया और उत्तरी चउ राजवंश स्थापित हुआ। उत्तरी छि राजवंश के समय बौद्ध धर्म की उन्नति होती ही रही। प्रथम छि सम्राट् ने बौद्धों और ताओ मतवालों की सभा बुलाई जिसमें शास्त्रार्थ के बाद सम्राट् ने बौद्ध धर्म को ही सच्चा बताया तथा ताओ मतावलम्बियों को बौद्ध भिक्षु हो जाने को बाध्य किया। इस काल में दो प्रसिद्ध अनुवादक हुए—एक नरेन्द्रयश जो भारतीय थे और दूसरे वान् थिएन् इ जो चीनी थे। पहले ने सात ग्रन्थों का अनुवाद किया और दूसरे ने एक का। इसी युग में कूचा से एक भारतीय संगीतज्ञ स्वाव् ता (भारतीय नाम ज्ञात नहीं) चीन आया। यह एक ब्राह्मण परिवार का था। वह परिवार संगीत के लिए बड़ा प्रसिद्ध था और कूचा में आकर बस गया था। स्वाव् ता ने चीन में भारतीय संगीत का प्रचार किया। भारतीय संगीत चीन में बहुत ही प्रिय हो गया। सन् ५७५ में छि सम्राट् ने ग्यारह भिक्षुओं का एक मीशन धर्म पुस्तकों के संग्रह के लिए भारत भेजा जो छि-राजवंश के समाप्त हो जाने के बाद २६० पुस्तकों के साथ सुइ राजवंश के समय लौटा। उत्तरी छि राजवंश अपने पड़ोसी राजवंश उत्तरी चउ द्वारा सन् ५७७ में हड़प लिया गया। इस तरह उत्तरी चउ ने सम्पूर्ण उत्तर चीन को अपने अधीन किया।

उत्तरी चउ राजवंश (५५७-५८१) के समय भी बौद्ध धर्म की उन्नति ही हुई। पर, साथ साथ उसपर राजकीय अत्याचार भी हुआ। इस काल में चार प्रसिद्ध भिक्षु आए जिनके नाम थे ज्ञानभद्र, जीनयश, यशोगुप्त और जीनगुप्त। इनमें प्रथम दो, पिछले दोनों के अध्यापक थे। सन् ५५७ में ये चारों एक साथ ही चीन आए थे और एक साथ ही चीन में कार्य भी करते थे। इनमें जीनगुप्त सबसे प्रसिद्ध हुए और वे इस काल के सबसे बड़े अनुवादक हुए। प्रथम चउ सम्राट् ने इन लोगों का बड़ा आदर-सत्कार किया था और एक विहार बनवा दिया था, जहाँ ये लोग कार्य करते थे। इनलोगों ने इस काल में १४ या १५ पुस्तकों का अनुवाद किया जिनमें चार ही बच रहे हैं। पर तीसरे चउ सम्राट् वु ति (५६१-५७८) कनफ्युशियस मतावलम्बी थे। उन्होंने ४७४ई० में बौद्ध धर्म और ताओ धर्म पर प्रतिबंध लगाया। विहार और मंदिर तोड़ डाले गए, पुस्तकें जला दी गईं, भिक्षुओं को गृहस्थ बनने को बाध्य किया गया तथा नाना प्रकार के अत्याचारों के वे शिकार हुए। बहुत भिक्षु चउ राज छोड़ अन्य स्थानों पर चले गए। उपरोक्त चार भिक्षु भी पश्चिम के तुर्क राज में चले गए जिसने स्वयं बौद्ध होने के कारण इन लोगों को बड़े सम्मान से रखा। सन् ५७७ में चउ ने उत्तरी

छि को भी हड़प लिया इसलिए छि राज में रहनेवाले भिक्षु नरेन्द्रयश आदि को भी वहाँ से हटना पड़ा। पर वु ति की मृत्यु ५७८ में हो गई और उत्तरी चउ राजवंश भी ५८१ में समाप्त हो गया। उपरोक्त चार भिक्षुओं में तीन की तो तुर्कराज में ही मृत्यु हो गई। जीनगुप्त पुनः चीन सुइ सम्राट् के निवेदन पर लौट गए थे। जिन दिनों जिनगुप्त तुर्क राज में रहते थे, उसी समय उत्तरी छि सम्राट् का भेजा हुआ मीशन भारत से पुस्तकों का संग्रह लेकर लौटा। चीन में बौद्ध धर्म के विरुद्ध हुई प्रतिक्रिया को सुनकर मीशन तुर्क राज में ही ठहर गया था। यहाँ ही मीशन के अनुरोध पर जीनगुप्त ने सब ग्रंथों के नाम का चीनी अनुवाद कर दिया था। संग्रह में पुस्तकों की संख्या ६० थी।

उत्तर चीन के चेउ राजवंश को उसके एक चीनी मंत्री ने ५८१ में समाप्त कर सुइ राजवंश की स्थापना की। उन दिनों दक्षिण चीन में छन् राजवंश राज्य कर रहा था। सुइ राजवंश (५८१–६१८ ई०) ने ५८६ में दक्षिण चीन के छन राजवंश को हड़प लिया और इस प्रकार ढाई शती के बाद सम्पूर्ण चीन को एक शासन के नीचे लाया। उत्तरी चउ राजवश के अंतिम दिनों में, बौद्ध धर्म पर लगाए गए प्रतिबंध की चर्चा ऊपर हो चुकी है। पर सुइ राजवश की स्थापना होते ही बौद्ध धर्म पर से प्रतिबंध हटा दिया गया। भारत से लौटकर तुर्क देश में ठहरा हुआ चीनी मीशन सुइ दरवार में, २६० ग्रंथों के साथ, ५८२ई० में आया। इन पुस्तकों के सही और सुन्दर अनुवाद के लिए भारयीय भिक्षु नरेन्द्रयश को निमंत्रित किया गया। इनकी सहायता के लिए ३० भिक्षु रखे गए। नरेन्द्रयश ने आठ ग्रन्थों का अनुवाद किया, पर इनके अनुवाद में कुछ त्रुटि पाई गई। इसलिये तुर्क देश में ठहरे हुए जीनगुप्त को बुलाया गया। अनुवाद-कार्य के लिये एक बोर्ड बना जिसके अध्यक्ष जीनगुप्त बनाए गए। उनकी सहायता के लिए भारतीय भिक्षु धर्मगुप्त और दो चीनी भिक्षु रखे गए। इन लोगो के चीनी अनुवाद को मिलाने के लिए बड़े-बड़े चीनी भिक्षु नियुक्त किए गए। मिलाने के बाद पुनः दो भिक्षुओं पर अनुवाद की शैली ठीक करने तथा अनुवाद में संशोधन करने का कार्य सौंपा गया। इस प्रकार इस युग में व्यवस्थित ढंग से अनुवाद-कार्य प्रारम्भ हुआ। इस काल के भारतीय भिक्षुओं में जीनगुप्त के अलावे गौतमधर्मज्ञान, विनितारुचि, धर्मगुप्त आदि प्रसिद्ध हैं। बोधिताङ नामक एक भिक्षु की चर्चा है, पर इनके बारे में इतना ही पता चलता है कि ये विदेशी थे। नरेन्द्रयश, जीनगुप्त, धर्मगुप्त, गौतम, धर्मज्ञान, विनितारुचि और बोधिताङ ने इस राजवंश के ३८ वर्षों में ६६ पुस्तको का अनुवाद किया जिनमें ५८ बच रहे हैं। जीनगुप्त द्वारा किया गया अभिनिष्क्रमण सूत्र और सद्धर्मपुंडरीक का अनुवाद बहुत ही प्रसिद्ध हुआ।

सद्धर्मपुंडरीक का चीन में बहुत प्रचार हुआ। इसी ग्रंथ के आधार पर इस काल में थिएन तइ सम्प्रदाय की स्थापना हुई जो जापान में तेनदाइ सम्प्रदाय हो गया। इसरे सस्थापक चीनी भिक्षु यि चि थे जो थिएन् थाइ पर्वत स्थित विहार में रहते थे। इस सम्प्रादाय ने अबतक चीन में आए हुए बौद्ध धर्म के सब रूपों का समन्वय किया। यह विभिन्नता के बीच एकता

में चीन और भारत के बीच तिब्बत नेपाल होकर आवागमन का मार्ग खुला। सम्राट् हर्षवर्धन ने द्वितीय थाड् सम्राट् के दरबार में राजदूत भेजा था और उसके उत्तर में चीन सम्राट् ने भी हर्ष के यहाँ लि यि पाव नामक राजदूत ६३४ ई० में भेजा। इस मीशन के साथ वाड् हिएन् छाव् नामक अफसर भी था। यह अफसर दूसरी बार पुन ६४७ ई० में द्वितीय सम्राट् का राजदूत होकर भारत आया था। पर तब तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी और किसी व्यक्ति ने हर्ष की गद्दी हड़प कर ली थी। उसने वाङ् हिएन् छाव् का स्वागत नहीं किया। वाड् हिएन छाव् ने नेपाल और तिब्बत की सेना की मदद से उस व्यक्ति को हराया तथा कैद कर चीन ले गया। वाङ् हिएन् छाव् दो बार और भारत आया। यह अपने साथ चीन-सम्राट् की भेंट बौद्ध तीर्थस्थानों के लिए लाता था। इन्होंने अपना यात्रा विवरण भी लिखा था जो लुप्त हो गया।

शुआन् चुआन् के बाद सबसे प्रसिद्ध चीनी यात्री इ चिङ् हुए जो शुआन् चुआन् के आधी शती बाद भारत आए थे। ये चीन से ६७१ ई० में समुद्रमार्ग द्वारा भारत आए थे और ६९५ ई० में समुद्रमार्ग द्वारा ही ४०० पुस्तकों के साथ चीन लौट गए। इन्होंने नालन्दा में १० वर्षों तक संस्कृत भाषा और बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन किया। इन्होंने चीनी भाषा में अधिकांश रूप से मूल सर्वास्तिवाद के विनय ग्रन्थों का ही अनुवाद किया है। अब तक धर्मगुप्त सम्प्रदाय का विनय चीन में अधिक प्रचलित था। पर, इन्होंने मूल सर्वास्तिवाद विनय का प्रचार किया। इन्होंने भी अपना यात्रा-विवरण 'दक्षिण समुद्र का संदेश' नाम से लिखा जिससे उस काल के भारत के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है। इन्होंने एक चीनी संस्कृत कोष भी बनाया था और अपने काल के प्रसिद्ध भिक्षुओं की जीवनी लिखी। इस पुस्तक में शुआन् चङ् और इनके बीच की आधी शती में ६० भिक्षुओं के भारत जाने का वर्णन है। भारत में आनेवाले सैकड़ों भिक्षुओं में तीन ही अधिक प्रसिद्ध हुए—पहला फा शिएन, दूसरा शुआन्-चुआङ् और तीसरा इ चिङ्। इनमें शुआन् चुआङ् सबसे प्रसिद्ध हुआ। थाङ् राजवंश के समय भारत आनेवाला सब से अंतिम चीनी यात्री उ कुङ् था जो ७५१ में चीन से भारत आया था और ७९० ई० में लौट गया। इनका यात्रा विवरण अब तक मिलता है। सन् ६४३-७५८ ई० तक चीन का लंका, कपिशा, उद्यान, गंधार, मगध, काश्मीर आदि देशों से राजनीतिक संबंध भी था और चीन तथा इन देशों के बीच बराबर राजदूत और मीशन आते-जाते रहते थे। थाङ् राजवंशों के प्रथम सौ वर्षों में ही भारत और चीन के बीच आवागमन अधिक रहा। आठवें शती के मध्य से वह एक तरह से बंद सा हो गया जो लगभग दो शतियों के बाद खुला।

थाङ् राज काल में कई बौद्ध सम्प्रदाय चीन में स्थापित हुए। शुआन् चुआङ् ने योगाचार सम्प्रदाय की स्थापना की। चीन में यह सम्प्रदाय फा शियाङ् (धर्म लक्षण) और जापान में हों सो कहलाता है। शुआन् चुआङ् के एक शिष्य ताव् शुआन् ने ल्यु या विनय सम्प्रदाय

कायम किया। इस सम्प्रदाय ने विनय-नियमों के पालन पर जोर दिया ताकि मनुष्य अनुशासन-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें, क्योंकि बिना अनुशासन-पूर्ण जीवन के आदमी ऊँचा नहीं उठ सकता। शुआन् ने चुआन् क्यु-शे (कोश सम्प्रदाय--हीनयान के सर्वास्तिवाद-सम्प्रदाय के अभिधर्म-कोश ग्रन्थ के नाम पर) की स्थापना की। उनका मत था कि विज्ञानवाद को समझने के लिए अभिधर्म कोश का ज्ञान आवश्यक है। अवतंसक सम्प्रदाय का, जो छन् राजवंश (५५७–५८६) के समय ही स्थापित हुआ था, इस युग में बहुत प्रचार हुआ। यद्यपि अमिताभ मत का पहले ही चीन में प्रवेश हुआ था, पर बोधिरुचि के अनुवादों-द्वारा इस युग में इसका प्रचार बहुत हुआ। इसी काल में मन्त्र-सम्प्रदाय (तांत्रिक) की भी स्थापना हुई और उसका तीसरा आचार्य (वज्राचार्य) एक चीनी भिक्षु हुआ। तंत्र-ग्रन्थों का अनुवाद प्रथम-प्रथम ३०७ ई० में, चीन में हुआ था और उसके बाद भी कुछ न कुछ होता ही रहा। पर इस युग में (आठवीं शती के प्रथम चरण में) सुभाकर सिंह ने व्यवस्थित ढंग से चीन में तंत्र का प्रवेश कराया, वज्रबोधि ने उसका बीज बोया और अमोघवज्र ने उसकी जड़ जमा दी। तब से चीन में अधिकतर तंत्र-ग्रन्थों का ही अनुवाद होता रहा।

इस काल में बौद्ध और भारतीय संस्कृति की छाप चीन की हर चीज पर पड़ी। कितने ही कवि इस युग के बौद्ध थे और उसका प्रभाव उनकी कविताओं पर पड़ा है। चीन की लिखित भाषा पर भी भारतीय प्रभाव पड़ा। सउ वन् नामक भिक्षु ने संस्कृत अक्षरों के आधार पर ३६ अक्षरों की एक चीनी वर्णमाला बनाई जिससे चीनी शब्दों के उच्चारण, ध्वनि और लय में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुआ। थिएन् ताइ-सम्प्रदाय से चीन के कलाकार बड़े प्रभावित हुए और उनके चित्रों में इसकी छाप है। तंत्र के प्रचार से मुद्राओं का चीनी चित्रकारी पर असर पड़ा। तंत्रयान के केन्द्रीय देवता विरोचन को लेकर चित्रकारों ने अच्छे-अच्छे चित्र बनाए। बुद्ध को संसार की केन्द्रीय आत्मा मानकर। उनके पास सभी प्रकार के महात्माओं, देवताओं, भूतों और राक्षसों को संगठित करनेवाला चित्र आँका गया। इस युग में लुङ् मन् और तुन् ह्वाङ् के गुहा-विहारों का काम भी समाप्त हुआ। यहाँ भारतीय कला की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। कितने ही स्तूप तथा मंदिर भारतीय पद्धति पर बने। थाङ् इतिहास में भारतीय संगीतमंडली का बड़ा ही रोचक वर्णन है। जापान के इतिहास से पता चलता है कि चीन से, ७३६ ई० में, बोधि नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व और वाइरो नामक दो तरह के संगीत का प्रवेश जापान में कराया था। डा०- बागची वाइरो को भैरा (भैरव) राग मानते हैं। चीन से भारतीय संगीत का जापान जाने का अर्थ, चीन में उसके प्रचार का प्रमाण है। थाङ् राजवंश की ज्योतिष-मंडली में भारतीय ज्योतिषी और गणितज्ञ भी काम करते थे। सातवीं शती में चीन की राजधानी छाङ् आन् में तीन भारतीय ज्योतिष-सम्प्रदाय थे। इनमें एक सम्प्रदाय के दो व्यक्तियों ने अलग-अलग समय पर चीन-सम्राट् को पंचांग

बनाकर दिए थे जो थोड़े दिनों तक काम में लाए गए थे। सन् ७२१ ई० में, इ सिंड् नामक चीनी भिक्षु ने सम्राट् की आज्ञा से चीनी पचाग में सुधार किया था और इन्होंने भारतीय भिक्षु गौतम सिद्ध की गणना-पद्धति को ही अपना आधार बनाया था। ज्योतिष की कई पुस्तकों का इस काल में चीनी अनुवाद हुआ। कई सम्राटों ने उत्सव-स्वागत की भारतीय, खासकर बौद्ध पद्धति को अपनाई थी और जिसका वहाँ विरोध भी हुआ था।

थाट् राजवश के समय बौद्ध धर्म को राजकीय प्रतिबंध और अत्याचार का भी शिकार होना पड़ा। सातवें थाङ् सम्राट् ने थोड़े दिनों तक बौद्ध विहार और मूर्ति बनाना या बनवाना तथा सूत्रों की नकल करना अपराध ठहरा दिया था। बारह हजार भिक्षुओं को गृहस्थ हो जाने की आज्ञा दी थी। सोलहवें सम्राट् वु चुट् (८४१–८४७) ने तो बौद्ध धर्म पर बड़ा अत्याचार किया। उन्होंने सन् ८४५ ई० म ४६०० विहार और ४०,०००, छोटे २ मदिर ढहवा दिए और २६०००० भिक्षु भिक्षुणियों को गृहस्थ हो जाने को बाध्य किया। विहारों का सम्पत्ति जप्त कर ली और उन्हे राजकीय कामों में लगा दिया। मदिरों के ताँबे के घटों और बर्त्तनों को गलाकर सिक्के ढलवा लिए। पर, यह अत्याचार अधिक दिनों तक नहीं रहा, क्योंकि सम्राट् वु चुड् की मृत्यु ८४७ ई० में हो गई और उनके उत्तराधिकारी ने इस नीति को बदल दी। थाट् राजवश का प्रारम्भ काल ६१८ से ७१६, एक शती तक—चीन-भारत के सम्पर्क का सबसे उज्ज्वल काल है। इस काल में चीन और भारत के बीच सबसे अधिक आवागमन हुआ और ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। इस काल के बाद केवल दो भिक्षु भारत से, थाट् राजवश के लगभग दो सौ (७१६–९०७) वर्षों के बीच, चीन गए। इन दो सौ वर्षों के बीच शायद ही कोई चीनी भिक्षु भारत आया।

थाट् राजवश का अन्तिम समय, प्रारम्भिक समय की तरह भव्य नहीं रहा और वह सन् ९०७ में समाप्त हो गया। सन् ९०७ से ९६० तक के बीच पाँच राजवशों ने चीन पर राज्य किया, इसलिए वह पाँच राजवशों का युग कहलाता है। इनमें एक राजवश परवर्ती चउ (९५१–९६०) ने तो विहारों का विध्वस करावा और बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों के ताँबे की मूर्तियों को गलाकर सिक्के ढलवा लिए। पर, परवर्ती चउ राजवश सन् ९६० में समाप्त हो गया और उसकी जगह सुङ् राजवश की स्थापना हुई। इस राजवंश को आंतरिक झगड़ों के साथ साथ बाहरी कबीलों के आक्रमण का भी शिकार होना पड़ा। इस कारण उत्तर चीन, १०२६ ई० तक आते-आते बाहरी कबीलों के अधिकार में चला गया और सुङ् राजवश ने याट् च सि क्याट् के पार हाङ् चउ में अपनी राजधानी स्थापित की। इस प्रकार सुङ् राजकाल के दो भाग हैं—एक भाग ९६०–१०२६ तक, जब सम्पूर्ण चीन सुङ् राजवश अधीन था और राजधानी उत्तर में काइ फङ् नगर में थी। दूसरा भाग १०२७ १२७६ तक, जब केवल दक्षिण चीन इनके अधिकार में था और राजधानी हाङ् चउ में थी।

सन् ९६०–१०२६ ई० तक, का काल उत्तर सुङ् राजवश का काल माना जाता है और इस काल में बौद्ध धर्म की चीन में पुन उन्नति हुई। थाङ् राजवश के समय का अंतिम भारतीय

भिक्षु प्रज्ञा था जो ७८६ ई० में चीन गया था। तब से सुङ् राजवंश के ६७१ ई० तक संभवत: कोई भी भारतीय भिक्षु चीन नहीं गया। उसी प्रकार अंतिम चीनी यात्री वु कुङ् था जो ७५१ में भारत गया था। तब से पुन: ६४७ तक यानी दो शती तक हम किसी चीनी यात्री को भारत आते नहीं पाते हैं। सुङ् राजवंश के समय यह आवागमन पुन: चालू हुआ। इनका उल्लेख फो चु थुङ्-चि (बुद्ध और आचार्य परम्परा का वृत्त) और सुङ इतिहास में मिलता है। इस युग में भारत में गए सैकड़ो भिक्षुओं में पाँच ने बुद्धगया में स्तूप बनाकर, उन पर शिला-लेख स्थापित किए थे जो अब भी मिलते हैं। इनके नाम थे चे यि (६५० ई०), युन् शु (१०२२), यि चिङ् (१०२२) शाव् फिन् (१०२२) और ह्वाइ वन् (१०३३)। पर भारत और चीन के बीच का आवागमन उत्तरी सुङ् राजवंश तक ही जारी रहा। उसके बाद ऐसा बंद हुआ जो वर्त्तमान युग के पहले चालू ही नहीं हुआ। सुङ् राजवंश के १०५३ ई० में अंतिम भारतीय भिक्षु ज्ञानश्री भारत से चीन गए। उसके बाद हम पुन: किसी भारतीय भिक्षु को चीन जाते नहीं पाते हैं। इसी प्रकार अंतिम चीनी यात्री ह्वाइ वन् था जो सुङ् राजवंश के १०३१ ई० में चीन से भारत के लिए चला और सन् १०३६ में चीन लौट गया। उत्तरी सुङ् राजवंश के समय १० अनुवादक हुए जिनमें ७ भारतीय, १ चीनी, १ पश्चिम क्षेत्र के थे और एक के देश का पता नहीं चलता। भारतीय भिक्षुओं में धर्मदेव (नालंदा के) दानपाल (उदयन के) औरथिएन् श चाई (जालंधर के—भारतीय नाम ज्ञात नहीं)प्रसिद्ध हुए। इन दस अनुवादकों ने २७५ ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस काल में विशेषकर तंत्र-ग्रंथों का अनुवाद हुआ। तंत्र-ग्रन्थों के अलावे धम्मपद, वज्रसूची, नागर्जुन के कुछ ग्रन्थ, शांतिदेव का वोधिचर्यावतार, आर्यसूर का जातकमाला आदि ग्रन्थों का भी अनुवाद हुआ। इस युग में अनुवाद-कार्य अधिक नहीं हुआ, क्योंकि अबतक प्राय: सभी प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका था तथा बहुतों के तो दो, तीन और चार-चार अनुवाद हो चुके थे। इस युग में चीनी भिक्षुओं ने अनूदित ग्रन्थों पर भाष्य लिखे और स्वतंत्ररूप से बहुत बड़ी संख्या में, उच्चकोटि के बौद्ध ग्रन्थों का निर्माण किया। खासकर ध्यान-सम्प्रदाय के विद्वान् चीनी भिक्षुओं के कार्य, इस दिशा में बहुत ही प्रशंसनीय हैं। कहना नहीं होगा कि इस युग में भारत का नालन्दा-विश्वविद्यालय बौद्ध तंत्र का केन्द्र हो गया था और भारत में तंत्र का प्रचार बहुत हो गया था। इसलिए इस काल में चीन जानेवाले भारतीय भिक्षुओं पर तंत्र का ही प्रभाव था और उन्होंने अधिकतर तंत्रग्रन्थों का ही अनुवाद किया।

यद्यपि सुङ् राजवंश के समय राजनीतिक अव्यवस्था, कम और अधिक रूप में बराबर बनी ही रही; फिर भी सांस्कृतिक कामों को इससे अधिक धक्का न लगा। ध्यान-सम्प्रदाय का इस युग के साहित्य और कला पर गहरी छाप है। इस काल में बड़े-बड़े कवि और कलाकार हुए। दर्शन के क्षेत्र में चीन के कन्फ्युशियस और लाव् च के दर्शन में, वइ (२२०-२६५) और चिन् (२६५-४२०)

राजवंशों के समय से ही, भारतीय विचारों का मिश्रण प्रारम्भ हो गया था जो थाङ् राजवंश के समय बहुत ही हुआ। सुङ् राजवंश के समय इस मिश्रण के कारण 'लि शिओ' या नव हेतुवाद (New Rationalism) नामक एक नए दर्शन की उत्पत्ति हुई। लकड़ी के छोटे टुकड़ों पर अक्षरों को खोदकर उनसे छापने की मुद्रण-प्रणाली यद्यपि थाङ् राजवंश से ही चल पड़ी थी। पर, सुङ् काल में इसका बड़ा प्रचार हुआ। सारा त्रिपिटक पहली बार सन् ६७२ ई० में इसी प्रणाली से मुद्रित हुआ। जिसके लिए १३०००० ब्लॉक बने थे। तब से आगे चलकर पुन कितनी बार त्रिपिटक का मुद्रण हुआ। इस काल में सुन्दर और प्रामाणिक अनुवाद के लिए राजकीय अनुवाद बोर्ड था, जहाँ सावधानी-पूर्वक अनुवाद की जाँच होती थी। इस युग में तांत्रिक मन्त्रों का चीनी भाषा में अनुलेखन भी हुआ। भारत मे बौद्ध धर्म के ह्रास हो जाने के कारण, इस काल में भिक्षु लोग अनेक संस्कृत ग्रन्थों को लेकर चीन चले गए जिनमें बहुतों का अनुवाद भी न हो सका। दक्षिण सुङ् काल (११२७ १२७६) में न तो कोई भारतीय भिक्षु चीन गया और न ग्रन्थों का अनुवाद ही हुआ। पर चीनी विद्वानों ने स्वतन्त्ररूप से बहुत ग्रन्था की रचना की। इस युग में ध्यान-सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रभाव था और उन्हीं की पुस्तकें सबसे अधिक मिलती भी हैं। सुङ् राजवंश के समय से ग्यारहवीं शती के मध्य तक, तुन् हुङ् के गुहा-विहारों का कार्य जारी रहा। इस युग में स्थापत्यकला की एक पद्धति, चीन में खासकर शान्-सी प्रान्त में, प्रचलित थी जो भारतीय पद्धति कहलाती थी। इस काल मे भी कुछ भैषज-ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद हुआ।

इस काल में भारत में बौद्ध धर्म ह्रास पर था और इसके विरुद्ध यहाँ प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई थी। चीन में भी इस युग में आंतरिक कलह के अलावे शिआ, कितान् तथा छिन् कबीलों का आक्रमण होता रहा और मंगोलों ने भी चीन का दरवाजा खटखटाया। इसलिए राजनीतिक हालत ठीक नहीं रही। साथ-साथ चीनी दिमाग में भी प्रतिक्रिया हुई। कन्फ्युशयस मत की पुनर्जागृति हुई जिसने चीनी मनीषियों को अपनी ओर खींचा। इस काल में बौद्ध तंत्रयान का चीन में प्रवेश हुआ, किन्तु वह चीनी विद्वानों को आकर्षित न कर सका। इन नाना कारणों से बौद्ध धर्म का चीन में भी ह्रास हुआ। मैत्री और करुणा के जिस महान् धर्म को लेकर चीन और भारत के बीच सम्पर्क स्थापित हुआ था, ह्रास के साथ-साथ वह सम्पर्क भी टूट गया और ग्यारहवीं शती के बाद से, एक दूसरे से इतना अपरिचित होते गए कि वर्त्तमान काल में नये सिरे से सम्पर्क स्थापित करना पड़ रहा है।

चीन और भारत का सम्पर्क सुङ् राजवंश की ग्यारहवीं शती के मध्य से ही समाप्त होता है। चीन में बौद्ध धर्म अभी तक है, पर उनमें वह उत्साह और रचनात्मक प्रवृत्ति जो पहली शती के प्रारम्भ से ग्यारहवीं शती तक थी, अब कहाँ ?

ऊपर जिस सम्पर्क की चर्चा हुई है, उसका सारी सामग्री चीनी वाङ्मय से ही हमें आज मिलती है। हमारे वाङ्मय में इन बातों की कुछ भी चर्चा नहीं है। जिस देश के भिक्षुओं ने चीन में जाकर

अपनी संस्कृति और धर्म का प्रचार किया। अपने देश के वाङ्मय में कुछ भी उनका उल्लेख न रहना आश्चर्य और ग्लानि की बात है, ज्ञान-प्रसार के लिए उन लोगों ने क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए? दोनो देशों के बीच का मार्ग कितना कठिन था, इसका पता चीन से भारत आनेवाले भिक्षुओं के संबंध में, थाङ्-काव् सङ् चुआन् (थाङ् राजवंश के प्रसिद्ध भिक्षुओं की जीवनी) नामक चीनी ग्रन्थ में लिखित एक कविता की दो पंक्तियों से चलता है—

छाङ् आन् से दूर, पश्चिम में भिक्षुलोग ज्ञान-उपार्जन करने जाते हैं। (पर) सौ में दस भी लौटकर नहीं आते।

यही बात भारत से चीन गए भिक्षुओं के संबंध में भी सत्य है। चीन वाङ्मय में जितने भारतीय भिक्षुओं के नाम मिलते हैं, उनसे कहीं अधिक रास्ते में ही समाप्त हो गए होंगे या उनका उल्लेख ही नहीं है। भारतीय वाङ्मय के महाभारत, मनुस्मृति, रामायण, ललित विस्तर, कथासरित्-सागर, अठसालिनी, अभिधान चिंतामणि, सुत्तनिपात, भावप्रकाश, हरिवंश, अर्थशास्त्र, शकुंतला, कुमारसभव, दशमुख, रामचरित, सुश्रुत, राजनिघंट, अमरकोश, बृहत् संहिता आदि ग्रन्थों में चीन का उल्लेख है, पर उन कामों के लिए जिनकी चर्चा ऊपर हुई है। वहाँ चीनी कपूर, चीनी लोहा, चीनी रेशमी कपड़ा, चीनी शीशा, चीन देश, चीनी लोग, चीनी घोड़े, चीन की मूंग आदि के संबंध में उल्लेख हैं। हम ऊपर देख चुके हैं, किस प्रकार भारतीय ज्ञानराशि का चीन के साहित्य, दर्शन, धर्म, कला, ज्योतिष, गणित, स्थापत्यकला आदि पर प्रभाव पड़ा है। विद्या, ज्ञान, धार्मिक क्रिया-कांड, सामाजिक रीति-रिवाज आदि भारतीय ग्रन्थों का कम या अधिक रूप में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है और उनका चीनी जीवन पर असर पड़ा है। पर, हम चीन का प्रभाव भारत पर एकदम नहीं पाते। प्रो० तान् युन् शान् ने इसके तीन संभव कारण बताए हैं। एक कि चीनी प्रभाव भारत पर पड़ा, पर वह कालान्तर में मिट गया। दूसरा कि चीनवालों ने भारत को कुछ दिया ही नहीं, केवल भारत से ग्रहण ही किया; और तीसरा कि भारतीय जनता ने शायद चीन से कुछ सीखा नहीं और न सीखने की इच्छा की। पर बहुत-सी चीजें जो आज हम अपने व्यवहार में लाते हैं, हमें चीन से मिली हैं—जैसे नासपाती और शफतालू फल, रेशमी वस्त्र, सिन्दूर, कीचक बाँस आदि। इनमें रेशमी वस्त्र और सिन्दूर तो हिन्दुओं के लिए पवित्र और धार्मिक चीजें बन गई हैं।

चीन भारत के प्राचीन सम्पर्क के हजार वर्षों का संक्षिप्त विवरण जो ऊपर दिया गया है, वह मानव-इतिहास का बड़ा ही सुखान्त अध्याय है। इस एक हजार वर्षों के सम्पर्क-काल में ऐसा समय एक घड़ी के लिए भी नहीं आया जब दोनों देशों के बीच खटपट हुआ हो। संसार के इतिहास का यह अद्वितीय उदाहरण है और यह भारत तथा चीन दोनों देशों के लिए गर्व का विषय है। एक हजार वर्ष तक दोनों देशो के बीच जो सैकड़ों भिक्षुओं का आना-जाना लगा रहा, उसकी आज हम

कल्पना भी नहीं कर सकते। बर्फीले और दुर्लंघनीय पर्वतों, हिंस्त्र जानवरों से भरे बीहड़ वनों, बालूमय भयकर मरुभूमियों को पारकर ज्ञान प्रसार तथा ज्ञान-प्राप्ति के लिए आवागमन का जो उदाहरण दोनों देश के भिक्षुओं ने हमलोगो के लिए छोड़ दिया है, क्या उसकी तुलना कहीं और मिल सकती है? भारतीय ज्ञान, सस्कृति और बौद्ध धर्म को दूर देश में प्रचार करनेवाले इन भिक्षुओं के सामने हम कितने दोषी हैं, जब हम अपने प्राचीन वाङ्मय में उनकी चर्चा तक नहीं पाते। यह हमारे लिए कितनी ग्लानि की बात है, हम चीनी भाषा और चीनी लोगों के कितने अनुगृहीत हैं कि उन्होंने हमारे भिक्षुओं के वृत्त को अपने वाङ्मय में सुरक्षित रखा है। हमारे भिक्षुओं ने जिन हजारों ग्रन्थों का अनुवाद चीनी में किया था, उनमें अधिकांश हमें आज मूल में प्राप्त नहीं हैं, वे लुप्त हो गए। उन लुप्त ग्रन्थों के ज्ञान का साधन हमारे लिए विशाल चीनी अनुवाद है 'जो चीनी त्रिपिटक' नाम से सैकड़ों जिल्दों में है।

आज वह समय आ गया है जब हमें अपनी उस विपुल ज्ञानराशि को पुन चीनी भाषा से अपनी भाषा में लाना चाहिए तथा अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित चीन-भारत-सम्पर्क को पुन स्थापित करना चाहिए। चीन में भाषण देते हुए गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एकबार कहा था—"मेरे मित्रो, म आप लोगों के पास यह निवेदन करने आया हूँ कि आवागमन की धारा पुन बहने दीजिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह धारा आज भी वर्त्तमान है। यद्यपि उसका गर्भ विस्मृत सिवार से ढँक गया है, पर निशान का आज भी पता लगाया जा सकता है। अपने पूर्वजों की नाई मेरे पास न वाणी है, न बुद्धि और न वह तपस्या जो सदेश को फलीभूत करती है। भाग्य से हमलोग आपलोगों से आपके अतिथि की नाई, अतिथि सेवक की नाई, भाई की नाई और आपके मित्र की नाई मिल सकते हैं।" चीन-भारत के सम्पर्क के लिए गुरुदेव की यह वाणी जितना चीनवालों पर लागू होती है, उतना ही हमलोगों पर भी। हमें स्वतत्र भारत में इस दिशा की ओर श्रद्धा और तत्परता के साथ प्रयत्नशील होना चाहिए।

[लेखक—श्री कमलधारी प्रसाद सिह]

संगीत की परिभाषा आचार्यों के मतानुसार यों है,—

गीतं वाद्यं तथा नृत्य त्रयं 'सगीत' मुच्यते ।

गायन, वादन, नर्तन इन तीनो क्रियाओं को 'संगीत' ऐसी व्यापक संज्ञा दी गई है ।

मार्ग-देशी विभागेन संगीतं द्विविधं मतम् ।

अर्थात्—संगीत के दो भेद हैं, मार्गी और देशी ।

मार्गो देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते,
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ।

मार्गीय वह है, जिसे भरत और ब्रह्मा ने चलाया और वही नियमित है ।

देशे-देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

—संगीत-रत्नाकर

देशी वह है, जिसे मनुष्य अपना चित्त प्रसन्न करने के लिए गाते, बजाते और नाचते हैं।

एक अँग्रेजी कवि मेरे डिथ ने एक रमणी से कहा—ईश्वर का सबसे बड़ा आशीर्वाद है सुशीला स्त्री। उस स्त्री ने फौरन जवाब दिया—उससे बढ़कर दुर्लभ है सुन्दर संगीत। भर्तृहरि ने भी—

साहित्य संगीत कलाविहीन साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन

कहा है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में गीत है किसी के पास थोड़ा, किसी के पास अधिक। किन्तु जाने या न जाने हम सबों के अन्तस्तल में उस वस्तु को जो केवल संगीत में ही प्रकट हो सकती है, प्रकट करने की लालसा वर्त्तमान है। इस चिन्ता, उलझन और झंझट के युग में तो संगीत की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। सुन्दर संगीत में बड़ी विचित्र शक्ति है। इसकी मधुर स्वर-लहरी जंगली जानवरों तक को मोहित कर लेती है। मदारी का वीणा का स्वर सुनकर विषधर सर्प भी काबू में आ जाते है। बहेलिए की बाँसुरी से मुग्ध होकर मृग उसके जाल में फँस जाते हैं। जब मूक पशुओं पर संगीत का जादू जैसा प्रभाव होता है, तो मनुष्यों का क्या कहना है? स्वयं भी गाने बजाने से सांसारिक चिन्ता दूर हो जाती है, शारीरिक थकान दूर होती है—और तो और ईश्वर की प्राप्ति भी सरल हो जाती है। स्वयं भगवान ने संगीताचार्य नारद मुनि से कहा था—

नाहं वासामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

भगवान ने फिर कहा है—"वेदानाम् सामवेदोस्मि"। इससे सिद्ध हो जाता है कि संगीत और ईश्वर के बीच कोई भेद नहीं है।

संगीत के प्रभाव को मनोवैज्ञानिक स्नान कहा जा सकता है। संगीत कला आदिकाल से ही भारतवर्ष की समस्त कलाओं में एक उच्च स्थान प्राप्त करती आ रही है।

सम्राट अकबर के शासन-काल में संगीत विद्या सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। परन्तु, इसके बाद ही सम्राट औरङ्गजेब के समय में यह विद्या भारतवर्ष से लुप्त सी हो गई थी। इसका कारण, यह था कि औरङ्गजेब को संगीत से प्रेम नहीं था, और इसी कारण औरङ्गजेब की निर्दयता इतिहास प्रसिद्ध हो गई है। आधुनिक काल में भी गुलामी के कारण संगीत का विकास उचित रूप से नहीं हो सका। अपने राष्ट्र के शासक-वर्ग की सहायता के बिना राष्ट्र की कोई भी कला उन्नति नहीं कर सकती है।

सौभाग्य की बात है कि हमारी गुलामी की जंजीर टूट चुकी है। प्रकृति-प्रदत्त प्रत्येक वस्तु के उपभोग का अधिकार पाने के लिए सभी वर्ग के लोग चंचल हो उठे हैं। अब भारतीय संगीत-कला को भी विकास के पथ पर ले जाना हमारा धर्म हो गया है। संगीतज्ञों और संगीत-प्रेमियों को समय के साथ चलना होगा। यद्यपि वर्त्तमानकाल, संगीत के अधःपतन का अंतिम काल समझा जाने लगा है, तथापि संतोष है कि इसकी उन्नति भी चाही जाने लगी है। कहा जाता है कि बहुत पहले, भैरव राग गाने से बिना बैल के कोल्हू चलता था, हिंडोल गाने से हिंडोला झूलने लगता था और दीपक राग के गायन से दीपक जल उठता था। किन्तु, आज हम इन बातों को किंवदन्तियाँ कहकर टाल देते हैं। यदि इतना भी विश्वास होता कि बिना बैल के कोल्हू चलना मुश्किल है तो कम से कम गानेवाले के कला-प्रदर्शन से श्रोताओं को कोल्हू चलने, हिंडोल गाने से हिंडोला के सदृश मन के डोलने अथवा दीपक गाने से कम से कम प्रकाश के विकीर्ण होने का भी अनुभव हो सके, तो कलाकार की कला सफल समझी जा सकती है। जैसे अतीत और आज में बड़ा अन्तर है, वैसे ही प्राचीन संगीत और आधुनिक संगीत में भी महान अन्तर हो गया है। अब रागों के शुद्ध स्वरूप नहीं रह गए हैं। मध्ययुगीन संगीतज्ञों ने मनमाने ढंग से, सभी राग-रागिनियों को विकृत कर दिया है। दीपक को पाँच ढंग से, तिलक-कामोद को दो ढंग से, दुर्गा को दो ढंग से, देशी को आठ ढंग से, ललित को दो ढंग से, गौरी को आठ ढंग से, इस प्रकार समस्त राग-रागिनियों के अन्दर न जाने कितने ढंगों के परिवर्तन हुए हैं। अब तो इन रागों के शुद्ध स्वरूप का निश्चय करना भी एक कठिन समस्या है। ऐसी हालत में मेघराग से वृष्टि न हो और श्रीराग से सूखा पेड़ हरा न हो तो क्या आश्चर्य है?

उस्तादों का एक जमाना था कि उस्ताद लोग अपने-अपने शिष्यों को निःशुल्क, निःस्वार्थ भाव से शिक्षा देते थे और सारी कला का ज्ञान निष्कपट भाव से करा देते थे। किन्तु, शुल्क देने पर भी आज शिक्षार्थियों को शुद्ध शिक्षा नहीं मिल पाती। इसका एक कारण संगीतज्ञों का साहित्यिक ज्ञान से वंचित हो जाना भी है। गाँव-गाँव में घूमने-वाले संगीतज्ञों को देखिए तो यह स्पष्ट हो जायगा कि थोड़े से ऊँचे ओहदे के कलाकारों को छोड़, शेष निरक्षर भट्टाचार्य ही हैं। संगीत-शिक्षण शास्त्रीय पद्धति पर न हो कर खानदानी पेशेवर गवैयों की प्रणाली पर होता है। वस्तुतः गले से गले उतारना ही तालीम का एकमात्र तरीका शेष रह गया है। इस कथन का यह मतलब कदापि नहीं है कि खानदानी गवैयो द्वारा शिक्षा प्राप्त करना दोष-पूर्ण ही होगा। किन्तु, हमारा आशय यह है कि शिक्षार्थी यदि शास्त्रों के साथ चलेंगे तो साहित्य से उनका संबंध दृढ़ ही होगा। इसी कारण प्राचीन संगीत-ग्रन्थों के उपयोग का काम ढीला हो गया है और परिणाम-स्वरूप प्राचीन ग्रन्थ, थोड़े-से राजों-महाराजों के निजी पुस्तकालयों को छोड़कर, अन्यत्र कहीं खोजने से भी नहीं प्राप्त होते हैं।

स्वर्गीय प० विष्णु दिगम्बरजी और प० वी० एन० भातखण्डे जी जैसे संगीताचार्यों को ही प्राचीन भारतीय संगीतकला के उद्धार का श्रेय है। इन्हीं दोनों आचार्यों ने इने-गिने संगीत कालेजों का जन्म देकर संगीत के प्रचार को, शास्त्रीय आधार पर, फिर से बढ़ाया। इन्हीं के प्रयास के फलस्वरूप संगीत की ओर शिक्षित जनता की अभिरुचि बढ़ने लगी है। अभी भी कालेजों द्वारा शिक्षित संगीतज्ञों की संख्या, देहातों में तो नहीं के बराबर ही मालूम पड़ती है। इतना संतोष अवश्य है कि आजकल प्रतिवर्ष हर प्रांत में और जिलों में भी संगीत सम्मेलन के आयोजन होने लगे हैं। किन्तु, इन सम्मेलनों का आयोजन संगीतोद्धार अथवा प्राचीन संगीत के विकास के लिए उतना नहीं होता, जितना स्वार्थ-साधन और अर्थोपार्जन के उद्देश्य से। इन आयोजनों में, कुछ बड़े और प्रसिद्ध कलाकारों को छोड़कर, अन्य कलाकारों को कला-प्रदर्शन का अवसर तक नहीं दिया जाता। ऐसी दशा में नए कलाकारों को प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में भी संगीत को स्थान दिया जाने लगा है। फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि इन विश्वविद्यालयों द्वारा इस दिशा में अभी तक कोई उल्लेख योग्य कार्य हुआ है। रेडियो, सिनेमा और ग्रामोफोन द्वारा भी संगीत का प्रचार बढ़ रहा है। लेकिन, नवीन तर्ज और धुन में सस्ती भावुकता समन्वित संगीत का प्रचार ही इन यन्त्रों द्वारा अधिकता से हुआ है। इनमें शास्त्रीय संगीतकला के प्रदर्शन का प्रायः अभाव ही रहा करता है।

देहातों में घूमनेवाले गवयों का तो वर्णन ही करना व्यर्थ है। ये निरक्षर गायक बिना बुलाये ही किसी के दरवाजे पर पहुँच जाते हैं और मूर्ख श्रोताओं को अपना गान सुना, कुछ दक्षिणा ले, चलते बनते हैं। इन गायकों और श्रोताओं के परस्पर मानापमान का वर्णन यहाँ न करना ही अच्छा होगा। संगीतज्ञों द्वारा गाये जानेवाले पदों को भी ध्यान से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि अधिकांश पदों में मीरा, सूर, तुलसी के भजनों को छोड़कर, शेष में सैंया, बलमुआँ, नजरिया, कटरिया आदि शब्दों का ही छिछला प्रयोग रहा करता है। इस प्रकार के बीभत्स पदों के व्यवहार के कारण ही सभ्य घरों में संगीत की तालीम देना बन्द-सा हो गया और संगीत मुख्यतः वेश्याओं का गुण और उनकी आय का साधन रह गया। संगीतज्ञ भी सम्मान के पात्र नहीं समझे जाने लगे। भले घरों के अन्दर इस कला का प्रवेश भी निषिद्ध माना जाने लगा।

इस प्रकार वर्त्तमान संगीतकला और संगीतज्ञों में अनेकानेक दोष पाये जाते हैं। इन दोषों को दूर करने का अब मौका आ गया है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के शिक्षा विभागों के अन्तर्गत संगीतकला को भी उचित स्थान दिया जाय। संगीतज्ञ विद्वानों की एक एक कमिटी हर प्रांत में हो जो शिक्षा-विभाग को संगीत में सुधार और इसके विकास के संबंध में उचित परामर्श दे सके।

संगीतालयों का पाठ्यक्रम निम्नलिखित बातो पर विचार कर के ही निर्धारित हो :—

(१) संगीतज्ञों को साहित्यिक ज्ञान अवश्य हो। क्योंकि संगीत-क्षेत्र के दोषों के प्रधान कारण, संगीतज्ञों में साहित्यिक ज्ञान का अभाव ही है। पं० ओंकारनाथ जी ने अपने एक भाषण में कहा भी है—'मैं तो साहित्य को संगीत का सहोदर मानता हूँ।'

मनुष्य की दो आँखें जो साथ ही जन्मी हैं, साथ ही जीती हैं और सदैव साथ ही देखती हैं, सोती हैं, हँसती हैं तथा रोती हैं, बिल्कुल ऐसा ही संबंध साहित्य और संगीत का है। मेरी समझ में नहीं आता कि साहित्य-संगीत के उस ताने-बाने को किस प्रकार अलग किया जा सकेगा। *वस्तुतः साहित्य और संगीत का विच्छेद ही संगीत के अधःपतन का मूल कारण है।*

(२) सरकारी कालेजों और स्कूलों की पढ़ाई में संगीत भी ऐच्छिक विषयों में रहे।

(३) हर प्रान्त में एक-एक स्वतंत्र संगीत का सरकारी कालेज हो और हर जिला में एक-एक स्वतंत्र संगीत का सरकारी स्कूल हो। संगीत के ऐसे स्वतंत्र कालेज और स्कूलो में साथ ही साथ साहित्य का पाठ्यक्रम भी अनिवार्य रहे। क्योंकि साहित्य और संगीत दोनों ही आखीर नव रसों पर आश्रित हैं। इसलिए संगीतज्ञो को साहित्य के अन्दर के नौ रसो का समुचित ज्ञान, उनके द्वारा गाये जानेवाले पदों में, होना अत्यावश्यक है। गलत और विकृत शब्दों के उच्चारण सुन्दर संगीत के दूषण हैं। यों तो भारतीय संगीत में गाये जानेवाले सभी स्वरों को कफ, पित्त और वात प्रकृति के अन्दर बाँट दिया गया है और उसमें उसी के अनुसार समय की भी पाबन्दी लगाई गई है। अमुक राग अमुक समय में गाया जायगा, चूँकि अमुक राग का वादी स्वर अमुक है और अमुक स्वर अमुक प्रकृति का है।

४. इसलिए प्रकृति के अनुसार समय पर गाने से संगीतज्ञ श्रोताओं का मनोरंजन कर सकेगा और उसे सफलता मिले बिना नहीं रहेगी।

कहा जाता है कि अमुक राग शुद्ध रूप से गाया जाय तो अमुक रोग का इलाज होगा। इन सभी बातों का ज्ञान और परीक्षण साहित्यिक ज्ञान द्वारा ही सम्भव है।

५. देहातों में घूमनेवाले योग्य संगीतज्ञों को (जिन्हें आज तक जमींदारों और पूंजीपतियों द्वारा सहायता मिलती रही है) स्कूलों और कालेजों में योग्यतानुसार स्थान दिया जाय। क्योंकि इन कलाकारों की जीविका का प्रबन्ध कुछ न कुछ तो होना ही चाहिए।

६. गानेवाले पदों में काफी संशोधन हो जिसे एक लड़का अथवा लड़की निःसंकोच अपने माता-पिता के समक्ष भी गा सकें।
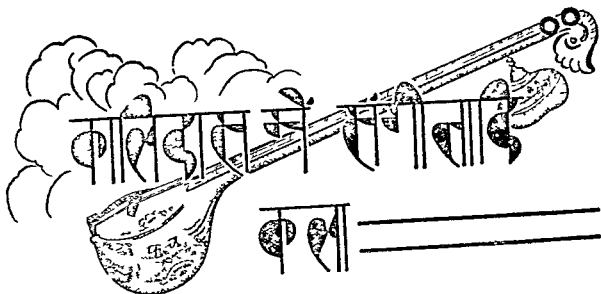
[श्रीभगवतशरण उपाध्याय]

जैसा उनके ग्रन्थों से विदित होता है, कालिदास का अपना ज्ञान-भण्डार असीम था। ललितकलाओं में उनकी गति गभीर थी। ललितकलाओं के प्राय सारे विभागों का उन्होंने वर्णन किया है। कविता और नाटक, संगीत और नृत्य, चित्रण और तक्षण, शिल्प और वास्तु आदि का, उनके ग्रन्थों में विशद निरूपण हुआ है। यहाँ हम केवल उनके काव्य और नाट्य सिद्धान्त तथा संगीत और नृत्य-प्रसंगों पर विचार करेंगे। उनमें भी हम उनके काव्यों तथा नाटकों को न लेकर केवल उनके दृष्टिकोण को लेंगे।

कालिदास का साहित्य, संस्कृत-कविता का चरम विकास है। उनकी कविता संस्कृत के इस क्षेत्र में सबसे मधुर और कृत्रिम है। प्रसादगुण का वह परिपाक है और संस्कृत की साहित्य साधना को उस कवि ने मेधा, भाव और सरलता की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। 'मेघदूत' गीतिकाव्य है और कल्पना तथा रोमांचक अंकन में वह अप्रतिम है। रघुवंश और कुमारसंभव ने अपनी प्रबन्ध-काव्योचित सफलता से संसार के समीक्षकों पर जादू डाला है। 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में जिस सुकुमार भाव-व्यञ्जना, कथोपकथन, और नाट्य-प्रभाव का सर्जन है, उसने उस महाकवि के लिए विश्व-साहित्य में अपना स्थान बना दिया है। काल और देश की सीमाएँ उसकी कृति की व्याप्ति के सामने बेबस हो गई हैं।

स्वयं कालिदास ने अपनी कविता का सौंदर्य और प्रभाव समझा है। उन्होंने पुराण-पंथियों पर यह कहकर प्रबल आघात किया है कि काव्य अथवा नाटक का सौंदर्य उसकी प्राचीनता पर नहीं, वरन् काव्योचित गुणों पर निर्भर होता है और उसकी उच्चता उचित समीक्षा के आधार पर खड़ी होती है।* प्राचीन समर्थ कविपुंगव वाल्मीकि के प्रति उसका रुख तो विनय † का है, परन्तु, अन्य कवियों—भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि के प्रति वह स्पष्टतया मनस्विता के उद्गार निकालता है। उनके सामने वह अपनी हेठी किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करता और उनकी कृतियों के साथ अपनी रचनाओं की तुलना करने का संकेत करता है। ‡ 'मालविकाग्निमित्र' के उसके प्रख्यात दृष्टिकोण § के संबंध में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उसमें अपने उन समकालीन समीक्षकों को, जो आलोचना में प्राचीनता को गौरव देते थे, चुनौती देता है। कालिदास द्वारा परिगणित कवियों की ऐतिहासिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इनमें केवल भास || के ही अनेक नाटक उपलब्ध हुए हैं, जिनका वस्तु-गठन काफी सुन्दर है। सौमिल्ल और कविपुत्र के अवश्य नाममात्र हमें ज्ञात हैं। परन्तु, इसमें सन्देह नहीं कि जिस काल में कालिदास ने उनको 'प्रथितयशसां' कहा, उस काल तक उन्होंने अपना यश काव्य-जगत् में फैला लिया था, और उनकी साहित्यिक परम्परा का उल्लेख किया और समझा जाता था।

कालिदास के समय तक संस्कारपूत संस्कृत भाषा ने अपूर्व उन्नति कर ली थी। फिर भी प्रादेशिक प्राकृतों का अनादर नहीं होता था और उनकी सहज शैली प्रशस्य मानी जाती थी। नाटकों में प्राकृतों के सुन्दरतम और सरलतम प्रयोग सुरक्षित हैं। जन-साधारण में, प्राकृत और सहज बोली होने के कारण, इनका क्षेत्र संस्कृत से अधिक विस्तृत था। राजा, पुरोहित, आचार्य, कंचुकी, मंत्री आदि कुछ चुने हुए व्यक्तियों को छोड़, नाटकों के अन्य पात्र इन्हीं जन-बोलियों में अपने विचार प्रकट करते हैं। इस काल तक काव्य-साहित्य की प्रायः सारी 'वृत्तियाँ' विकसित हो चुकी थीं और नाटक में उनका कुशल प्रयोग होता था।

---

* मालविकाग्निमित्र, १, २.

† रघुवंश, १, ४.

‡ प्रथितयसशां; पुराण मित्येव न साधु सर्वं—माल०, १, २.

§ पुराण मित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्त परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।

|| भाससौमिल्लकविपुत्रादीनम्।

रंगमंच व्यस्त रहता था और दर्शक भूमि भरी। त्यौहारों पर १ नाटकों का प्रदर्शन साधारण विषय था। त्यौहारों के अतिरिक्त इनका निदर्शन विवाह, वसंत आदि के अवसरों पर भी हुआ करता था। विवाह के बाद मनोरंजन और उत्सव की व्यवस्था सहज ही थी। इस अवसर पर बहुधा नाटक खेले जाते थे, जिनमें नागरिकाएँ लय और ताल को हृद्गत भावों २ और अभिनय की मुद्राओं से मिलाकर नृत्य में उनका मूक प्रदर्शन करती था। इनको कैशिकी ३ आदि विभिन्न वृत्तियों में भी दक्ष होना होता था। कालिदास का 'मालविकाग्निमित्र' इसी प्रकार किसी वसन्तोत्सव ४ में खेला गया था।

नाट्य-कला ५ की जनप्रियता और उसकी शालीनता, आचार्य गणदास के वक्तव्य से प्रमाणित है। "माना कि सभी अपनी कुलविद्या को आदर की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु, जो मेरा आदर नाट्यकला के प्रति है, वह निःसन्देह अकारण नहीं है ६।" गणदास संगीत और अभिनय का आचार्य था और इस अवतरण में उसने अपनी कुलविद्या की प्रशंसा की है। इस अवतरण से यह भी सिद्ध है कि विविध कुल, कला और उसकी विभिन्न शाखाओं का सेवन करते थे। उनके प्रयोग और वर्धन उन कुलों की निष्ठा पर अधिकाधिक निर्भर रहते थे। नाट्यकला, देवताओं के प्रति रक्त-रहित शान्तियज्ञ समझा जाती थी। शिव ने अपने शरीर में ही इसे दो रूपों में विभक्त किया था। सत्त्व, रज, तम के आधार से उठे और विविध भावों से अनुप्राणित नाट्य द्वारा मानव-जीवन के विविध आचरण प्रदर्शित होते थे। *नाट्य, नानारुचिवाले ७ मानव-समाज का मनोरंजन करने-वाला एक प्रकार का नेत्रोत्सव था।* भरत के नाट्यशास्त्र और धनञ्जय के दशरूपक में प्रतिपादित *नाट्य कला के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुकूल ही कालिदास की यह व्याख्या है। इस व्याख्या की* वैज्ञानिकता, जनपरक होने के कारण सिद्ध है।

'मालविकाग्निमित्र' में, संगीत और अभिनय के दो आचार्यों के बीच-एक प्रकार का बौद्धिक संघर्ष दर्शित है जिसमें दोनों के शिष्य उनकी दक्षता सिद्ध करने के अर्थ संघर्ष करते हैं *। उन आचार्यों से एक आचार्य का कथन है कि उसने अपनी कला सुकुशल आचार्य से (सुतीर्थात्) सीखी थी। और नाट्य-कला के प्रदर्शन में अपनी दक्षता प्रमाणित कर राजा और रानी का कृपाभाजन बना था। † इससे राजाओं द्वारा कला की संरक्षकता भी सिद्ध होती है। उस प्राचीन काल में और उसके पीछे के सामन्त युग में, निःसन्देह ललितकलाओं को सामन्तों और राजाओं के दरबार में

---

१ वही पृ० ७, विक्रमोर्वशी, पृ० ६० ३ कुमार ०, ७, ९१

४ वही ५ वसन्तोत्सवे—मालविका ०, पृ० २

६ नाट्यम्, वही, पृ० ७, १, ४ ७ वही, पृ० ७

* मालविकाग्निमित्र १४ † वही पृ० १५,

विशिष्ट आश्रय मिलता था। कला अनेकांश में उनकी कृपा से फूलती-फलती थी। नाट्य-कला के सिद्धान्त और प्रयोग पर नीचे का उधृत वक्तव्य प्रचुर प्रकाश डालता है:—"देव, तब मेरी और उनके सिद्धान्त और प्रयोग में परीक्षा लें। देव ही हम दोनों की समीक्षा में समर्थ हो सकते है। निःसन्देह नाट्य-कला का पारिभाषिक-विज्ञान का पद प्राप्त कर चुकी थी।१ भरतादि ने इसका सैद्धान्तिक निरूपण प्राचीन काल में ही कर दिया था। स्वयं राजा नाट्य-कला के सैद्धान्तिक निरूपण और प्रयोग में दक्ष माना गया हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में राजा को समीक्षा के क्षेत्र में 'प्राश्निक' कहा गया है। 'प्राश्निक' नाट्य-प्रदर्शन-परीक्षक-विशेषज्ञ समझा जाता था।

ललितकलाओं में नारियाँ विशेष प्रकार से रुचि रखती थीं। उनमें विशेषता प्राप्त करना उनके लिए साधारण बात थी। इस नाटक के कथानक से स्पष्ट है कि जब इस बात की आशंका हो गई कि संभवतः राजा के मध्यस्थ होने से उस षड्यन्त्र में उसकी साजिश पकड़ जायगी; तब इस कार्य का भार कौशिकी नाम की एक परिव्राजिका के ऊपर डाला गया है। वक्तव्य इस प्रकार है:— "भगवति, गणदास और हरदत्त में नाट्य-कला के संबंध में स्पर्द्धा हो गई है। उनकी समीक्षा के अर्थ कृपया प्राश्निक का पद ग्रहण करें।"२ इस संबंध में 'प्राश्निक' शब्द विचारणीय है। ऊपर बताया जा चुका है कि यह शब्द लाक्षणिक है और इसका संबंध परीक्षा से है। नाट्य-शास्त्र प्रयोग-प्रधान माना जाता था।३ और यद्यपि इसका सिद्धान्त शास्त्र भी काफी विकसित हो चुका था, इसका प्रायोगिक महत्व अधिक था।

नाट्य-कला के ज्ञान के संबंध में कहा गया है कि "कुछ तो अपनी कला स्वयं रंगमंच पर प्रदर्शित करने में दक्ष होते हैं, कुछ की विशिष्ट योग्यता उस कला को दूसरों को प्रदान कर सकने की क्षमता में होती है; परन्तु, वास्तव में आचार्यों में अग्रगण्य तो वह हैं जो इन दोनों विधियों में कुशल हों।"४ 'मालविकाग्निमित्र' के इस विज्ञान-संघर्ष से कला का पूर्णतया विवेचन हो जाता है। अनधिकारी शिष्य का ग्रहण, आचार्य की परख की कमी सिद्ध करती है ५, क्योंकि उसी की धारणा-शक्ति पर आचार्य के कौशल की सफलता निर्भर करती थी।

---

१ वही, १, ४. मालविकाग्निमित्र पृ० १४

२ वही, पृ० १५ विज्ञात सघर्षिणः प्राश्निक पदमध्या सितव्यम् वही, पृ० १७

३ विज्ञान संघर्षिणोः ...वही—प्राश्निक पदमध्यासितव्यम्

४ वही, १, १६.

५ प्रयोगप्रधानं हि तत् शास्त्रम्, वही, १, ४

६ वही, १,१६विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघव प्रकाशयतीति, वही पृ० १६ देखिए १,१६, भा।

निम्नलिखित वक्तव्य म नाट्य शास्त्र और उसके आचार्य तथा प्रवर्तक भरत का उल्लेख है—"दिक्पालों सहित देवराज, भरत मुनि द्वारा सिखाए तुम्हारे उस नाट्य-कला का प्रदर्शन देखना चाहते हैं, जो आठों रसों का आधार है और जिसमे अत्यन्त रुचिकर अभिनय होता है।"१ इस वक्तव्य में भरत के नाट्य-शास्त्र के दो पारिभाषिक शब्दों—अष्ट रसाश्रय और ललिताभिनय—का प्रयोग हुआ है। नाट्य शास्त्र के ६ से १० तक के अध्यायों में इन पर विचार हुआ है जिससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय तक भरत का यह ग्रन्थ समाप्त हो चुका था। कालिदास ने स्वय भरत को 'मुनि' सज्ञा प्रदान की है जिससे उनके काल में भी भरत की प्राचीनता प्रमाणित है। इस सबध में एक बात और विचारणीय है। चूँकि यह पहला अवसर था जब 'मालविकाग्निमित्र' रगमच पर खेला गया, जैसा कि 'नवेन नाटकेन'२ पद के प्रयोग से प्रकट है, 'अभिरूपों' से तात्पर्य सभवत नाटक के समीक्षक 'प्राश्निकों' से भी है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार प्राश्निका का यह कर्त्तव्य था कि वे नाटक के गुण-दोषों पर राजा के सामने अपने विचार रखें, और इस अर्थ में राजा कुछ सीमा तक नए उदीयमान नाट्यकारों का सरक्षक भी हो जाता था। इन प्राश्निकों के अनुकूल प्रशसात्मक वक्तव्य से नाटककार बड़ी शीघ्रता से ख्याति प्राप्त करता था और राजा की संरक्षा से वह शीघ्र सम्मान्य हो उठता था। 'मालविकाग्निमित्र' में इन 'प्राश्निकों' का स्पष्ट उल्लेख है३।

'प्रेक्षागृह'४ नाट्य भवन को कहते थे। तारानाथ ने इसके स्थान पर 'वर्णप्रेक्षा' पाठ माना है, जिसका अर्थ उन्होंने पात्रों—ऐक्टरों का परिधान कक्ष माना है।

नाटक को प्रकट रूप में खेलने के पूर्व उसका 'रिहर्सल' करते थे। और जान पड़ता है कि रिहर्सल के दिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाता था, जिससे नाटक प्रदर्शन में कोई दैवी असुविधा उपस्थित न हो जाय, यह प्रसग 'मालविकाग्निमित्र' से स्पष्ट है। रिहर्सल के समय ब्राह्मण-भोजन अथवा नाट्य का प्रथम उद्घाटन एक विशेष सामाजिक प्रथा का सकेत करता है। प्राचीन काल में किसी शास्त्र अथवा कला में दीक्षा लेते समय अथवा अनुष्ठान के आरभ में देवपूजन तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा द्वारा पुरस्कृत करना आवश्यक था। प्रस्तुत पद का एक अन्य पाठ 'नेपथ्यसेवन' है। इसका अर्थ, सगीत के साथ यज्ञानुष्ठान है जो नाटक के प्रथम उद्घाटन के अवसर पर हुआ करता था।५

नीचे रगमच तथा अभिनय का विवरण कालिदास के आधार पर दिया जाता है। 'मालविकाग्निमित्र' की परिव्राजिका अभिनय सघर्ष के पूर्वार्ध पर जो वक्तव्य करती है, उसमें अभिनय का

---

१ विक्रमोर्वशी २, १७

२ माल०, पृ० २ ३ वही, पृ० १७ ४ वही, पृ० २१

५ प्रथमोपदेशदर्शने प्रथम ब्राह्मणस्य पूजा कर्तव्या। वही पृ० ३० महाब्राह्मण, न खलु प्रथम नेपथ्यसेवनमिदम्। अन्यथा कथ त्वा दक्षिणीय नार्चयिष्याम। वही ६ वही, पृ ३०

विश्लेषण निहित है—"अंगों और अन्तर्निहित वचनों से अर्थ पूर्णतः सूचित हो गया; पादन्यास लय के अनुकूल था और रसों में सर्वथा तन्मयता थी; करों द्वारा प्रदर्शित अभिनय सर्वथा मृदु था, विविध भावों के बार-बार उठने के क्रम में भी रागबन्ध (भावानुरक्ति) समान था १।

'नेपथ्यपरिगता'२ शब्द में रंगमंच के पर्दे की ध्वनि है। पर्दे के लिए जिस लाक्षणिक पद का प्रयोग हुआ है, वह है 'तिरस्करिणी'। ३ इसी प्रकार 'संहृतु'' शब्द से एक से अधिक पर्दों का बोध होता है। स्पष्ट है कि रंगमंच पर पर्दे होते थे जो लपेट लिए जाते और गिरा दिए जाते थे। रंगमंच-संबंधी निर्देशों से यह और स्पष्ट हो जाता है। ४ 'प्रविशति आसनस्थो राजा' का साधारण अर्थ है कि आसनस्थ राजा रंगमंच पर प्रवेश करता है। यदि शब्दशः इस निर्देश का अर्थ किया जाय तो यह निरर्थक हो जायगा, क्योंकि यदि राजा आसनस्थ है तो वह प्रवेश नहीं कर सकता।

इससे प्रकट होता है कि रंगमंग पर लटकनेवाले अनेक पर्दों का प्रबन्ध था, जिनको हटा दिया जाता था जिसमें निर्दिष्ट रूपी पात्र दर्शकों के सामने उपस्थित किए जा सकें। कालिदास और भवभूति, दोनों में इस प्रकार के रंगमंचीय निर्देश हैं जिनकी सार्थकता उठा और गिरा दिए जानेवाले पर्दों से ही हो सकती है। इस प्रकार 'प्रविशति' का तात्पर्य होगा 'पर्दे के उठने पर' निर्दिष्टावस्था में पात्र का दर्शन।

नाटकीय पात्रों की विविध अभिनय-अवस्थाओं के लिए विविध प्रकार के वस्त्रादि भी तत्र प्रयुक्त होते थे ५। कौशिकी कहती है—"मैं मध्यस्थ के अधिकार से बोल रही हूँ। दोनों छात्र उचित वेश में अभिनयानुकूल वस्त्र पहनकर रंगमंच पर प्रवेश करें जिनसे उनके अंग-प्रत्यंग और अभिनयांक स्पष्ट होते रहें।" ६ इस वक्तव्य में ध्वनित वस्त्र संभवतः केवल उन्हें दिया जाता था जो नृत्य करते थे। अनेक प्रकार के वेशों में एक वेश 'अभिसारिका' का था। वह नाममात्र के आभूषण पहनती थी और नील-काषाय से अवगुंठित होती थी। निःसन्देह वह ज्योति अथवा ध्वनि उत्पन्न करनेवाले आभूषणों को त्याग देती थी। कोई उसे पहचान न सके, इसलिए वह काले वस्त्र धारण करती थी। तीसरे प्रकार का वेश, जिसका कालिदास ने उल्लेख किया है, आखेट ७ का था। इसी प्रकार राजा के अस्त्र रखनेवाली और उसकी रक्षक सेना की युवतियाँ ८ ग्रीक वेश में प्रवेश करतीं थीं जिससे उनकी अभारतीय पहचान हो सके। इस प्रकार मानिनी, विरहिणी, व्रतधारिणी ९, शोकान्विता, १० मुनिकन्या

---

१ वही, २ ८.   २ वही, २, १.

३ तिरस्करिणी, वही; वही, २, ११;

४ पटाक्षेपेण, शाकुन्तल, पृ० २०८; विक्रम० पृ० ११   ५ माल०, २, १.

६ शा० पृ० १०५.

७ सर्वांगसौष्ठवः······विगतनेपथ्ययोः पात्रयोः। माल०पृ० २२

८ वही। ९ नीलांशुकपरिग्रहोऽभिसारिकावेषः—विक्रमो०, पृ० ६८ १० अपनयन्तु भवन्तो मृगयावेशम्। शाकु० पृ० ६८. ५ वही, पृ० २२४. ६ वही, ७, २१. ७ विक्रमो०, ३, १२.

आदि के अपने अपने वेश होते थे। आखेट के वस्त्र की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। आखेट के लिए जाते समय ऐसे वस्त्र पहने जाते थे जो पत्तियों के रग के हों जिससे आखेटक वन की पत्तियों में खो जायें और शिकार उन्हें देख न ले। आखेटक के पीछे जाल लिए व्याध और बडे बड़े शिकारी कुत्ते चलते थे। ८ इस प्रकार रगमच पर उतरनेवाले प्रत्येक पात्र के पृथक्-पृथक् वेश और वस्त्र होते थे। राजा का वेश राजकीय होता, कचुकी लबा अचकन का-सा 'कंचुक' पहनता और 'वेत्रदण्ड' धारण करता, तपस्वी वल्कल वस्त्र पहनते।

इस प्रकार पर्दों, विभिन्न वेशों, सुन्दर अभिनय तथा उच्चकोटि के नाटकों से सयुक्त कालिदास-कालीन रगमच सब प्रकार की अभिनय आवश्यकतायों से समृद्ध था।

सगीत के दोनों रूप वर्तमान थे—लौकिक और शास्त्रीय, या दोनों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। परन्तु, शास्त्रीय सगीत का विस्तृत वर्णन मिलता है।

लौकिक सगीत का उपयोग केवल स्त्रियाँ करती थीं। आज ही की तरह स्त्रियाँ बिना किसी विशेष शिक्षण के घर में ही सीख लिया करती होंगी। उत्सवादि अवसरों पर उन्हें कुलागत पुराने गीत गाने पड़ते थे। उन्ही अवसरों पर एक दूसरे से नए गाने भी वे सीख लेती होंगी। इन सामाजिक त्योहारों पर अनेक नई साथिनों से जो उनका परिचय होता था, वह नए गाने सीखने-सिखाने का सुन्दर अवसर प्रदान करता था। विवाह के अवसर पर वे शुभ और कल्याणकर गाने गाती और खेती रखाते समय जातीय अथवा राजा के गौरव के गीत। नदी में नहाते समय वे गातीं और जल क्रीड़ा में जल को पीटतीं।

शास्त्रीय सगीत ३ के सम्बन्ध में 'मालविकाग्निमित्र' में विस्तृत विवेचन है। उसमें सगीत के छ अगों के साथ प्रयुक्त होने का उल्लेख मिलता है, परन्तु, कवि ने उनका परिगणन नहीं किया है।

नगरों में निरन्तर वाद्यध्वनि उठती रहती थी। कुबेर का नगर इसका प्रमाण है। गुण-वती नारियों द्वारा प्रहत मृदग की ध्वनि अलका में गूँजती रहती थी। यक्ष की पत्नी वीणा आदि वाद्यों को बजाने का प्रयास पति की अनुपस्थिति में करती है, परन्तु, विरह की वेदना उसके कार्य में बाधक सिद्ध होती है। यक्ष-पत्नी की सगीतप्रियता अलकावासिनियों की साधारण सगीत-दक्षता का उदाहरण है। पति के वियोग स रिक्त अपनी घड़ियों को भरने के लिए वह वीणा उठा लेती है, उसे

---

८ रघु०, ६, ५०-५१

१ वही, ४, २० २ वही, १६, ६४, वही, ६२, वही, १३ ३ अंक १ और २

४ मेघ० उत्तर, १

जानुओं पर रखती है; परन्तु, वेदना नेत्रों से बह उठती है, तंत्री के तार आँसुओं से सिक्त हो जाते हैं, और बार-बार की हुई 'मूर्च्छना' भी विस्मृत हो जाती है। ५

ललितकलाओं के विकास के अर्थ राज्य की ओर से सहायता और प्रोत्साहन मिलते थे। उनकी उन्नति के सारे साधन यथासंभव राजा उपस्थित करता था। निःसन्देह इन ललितकलाओं का, संगीत एक विशिष्ट अंग था। ऐसे भी राजा होते थे, जैसे अब भी होते हैं, जो राजकाज छोड़, विलास का जीवन ६ व्यतीत करते थे। कुमारगुप्त शक्रादित्य का जीवन कुछ ऐसा ही था। कालिदास द्वारा 'रघुवंश' में वर्णित अग्निवर्ण का जीवन इसका प्रतीक है। ऐसे विलासी के कालक्षेपण का विशिष्ट साधन संगीत ही था। ऐसे 'कामिनी सहचर' के विलासों में एक शृङ्गारिक उत्सव का स्थान दूसरा ले लिया करता था और इन अनवरत उत्सवों का ताँता न टूटता था। इन उत्सवों की शृंखला में संगीत का स्थान विशिष्ट था। राजप्रासाद मृदंग की गंभीर ध्वनि से प्रतिध्वनित होता रहता। एक स्थल पर रानी ने राजा के संगीत-सेवन की अनुचित गति पर व्यंग किया है। ८ रघुवंश के एक प्रसिद्ध प्रसंग से प्रमाणित है कि राजा अनेक बार स्वयं अपनी प्रेयसी या पत्नी को संगीत की शिक्षा देता था। अज का अपनी मृत पत्नी को 'प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' ९ कहने का यही भाव है। अग्निवर्ण इस कला में इतना दक्ष है कि वह बार-बार वारांगनाओं के नृत्य-दोषों को बताकर उनके आचार्यों को लज्जित कर देता है और कवि उसे 'कृती' कहता है।

कालिदास की रचनाओं में संगीतशाला १ का भी वर्णन मिलता है। इसी शाला का उपयोग रंगमंचीय अभिनय के अर्थ में हुआ करता था। इस संस्था में 'सुतीर्थों' द्वारा उपदिष्ट अनेक असाधारण आचार्य, संगीत, नृत्य, अभिनय तथा चित्रकला में राजकुलीय छात्र-छात्राओं को वैज्ञानिक तथा लाक्षणिक शिक्षा दिया करते थे। २ संगीतशाला अन्तःपुर की छात्राओं की संस्था जान पड़ती है। स्वाभाविक ही उसका व्यय राज्य उठाता था और उसके आचार्यों को नियत वेतन मिला करता था ३। महाकवि ने एक संगीत-रचना अर्थात् कन्सर्ट का उल्लेख ४ किया है। इस प्रकार की संगीत-रचना संगीतशाला के आचार्यों द्वारा आयोजित होती थी जिसमें उनके छात्र-छात्राओं की दक्षता की परीक्षा होती थी। 'मालविकाग्निमित्र' में इसी प्रकार की अभिनयपरक एक संगीत-रचना का वर्णन मिलता है जो वस्तुतः प्रणय-षड्यंत्र था। उस नाटक के विवरण से स्पष्ट है कि संगीतशाला में नित्य अध्यापन-कार्य होता था और छात्राओं को अपना पाठ, संगीत, अभिनय आदि नित्य सम्पन्न करने पड़ते थे ५।

---

५ वही, २३. ६ स्त्रीविधेय—रघु०, १९, ४; कामिनीसहचरस्य—वही.
७ वही, १९, ५. ८ जइ राअकज्जेसु ईरिसी उआअणिउणदा अज्जउत्तस्स—मालवि०, पृ० २२.
९ रघु०, ८, ६७.

१ शाकुन्तल, पृ० १५०; मालविका०, पृ० ४, ६ २ माल०, १४; रघु०, १९,३६ ३ वेअणदाणेण—माल०, पृ० १७, ४ वही, पृ० २२, ५ संगीत व्यापारमुज्झित्वा—विक्रमो०, पृ० २७,

ऊपर लिखी सगीतशाला की-सी सस्थाओं से मालविका, ६ परिव्राजिका, ७ और शर्मिष्ठा ८ जैसी ललितकलाओं की पडिताएँ निकलती थीं। वे इनमें अन्तिम प्राचीन काल में सगीत, विशेषकर गायन के क्षेत्र में अत्यन्त प्रसिद्ध और दक्ष हो गई थीं। 'मालविकाग्निमित्र' में जिस अभिनयपरक नृत्य का वर्णन आया है, उसमें एक सघर्ष के क्रम में इसी शर्मिष्ठा द्वारा अन्वेषित 'छलिक' नामक नृत्य में परीक्षा हुई है। ६ शर्मिष्ठा का यह कृति चार भागों में विभक्त 'मध्यलय की है।' १० इस प्रसग से यह भी स्पष्ट है कि नारियाँ भी कलाओं में इतनी दक्ष हो जाती थीं कि वे सगीत की रचनायें तक कर लेती थीं। शर्मिष्ठा का उल्लेख 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में भी हुआ है। इन प्रसगों से विदित होता है कि शर्मिष्ठा ने गायन आदि के लिए कुछ पद रचे और सगीत के सम्बन्ध में कुछ नियम निर्मित किये थे।

कालिदास के जगत् में आज ही की भाँति पेशेवर गायक भी थे। वस्तुत भारत में इन गायकों की परम्परा कुछ नई नहीं है, विशेष कर वेश्यावृत्तिवाली नारियों मे इसका प्रभाव अधिक था। वारागनायें१ पुत्र-जन्मोत्सव आदि के अवसरों पर नृत्य-गान के लिए आमत्रित होती थीं, और उनको अपने कार्य के लिए पर्याप्त धन प्राप्त होता था। कालिदास के पुत्रजन्मोत्सव आदि के अवसरों पर वारा-गनाओं द्वारा नृत्य-गानादि के उल्लेख की पुष्टि बाण के 'हर्षचरित' से भी होता है। 'हर्षचरित' में नायक के जन्मोत्सव पर नर्तकियों द्वारा नर्तन और गायन का बड़ा समारोह वर्णित है। इन समारोहों पर गायिकाओं और नर्तकियों की उपस्थिति प्राय अनिवार्य थी। उनके साथ उनके सफरदे अर्थात् वाद्यादि बजानेवाले भी रहते थे२।

कालिदास ने उज्जैन के महाकाल मदिर में नर्तकियों के नर्तन आदि का उल्लेख किया है३। ये नर्तकियाँ मदिर की वेतनिक सेविकायें थीं जिनका काम शिवमूर्त्ति के सामने गाना और नाचना था। वे ही देवता की चमरधारिणियाँ भी थीं४।

कालिदास ने निम्नलिखित वाद्यों का अनेक बार उल्लेख किया है—वीणा, ५ वशकृत्य, (इससे ध्वनि निकलती है), वेणु, (वशी)७, मृदग,८ और मृदग के दूसरे नाम जैसे

६ परमनिपुणा मेधाविनी चेति, आदि, माल०, पृ० ८, ७ पण्डित कौशिकी—वही, पृ० १६, ८ वही, पृ० २१, २४ शाकु०, ४, ६, ६ तस्यास्तु छलिक प्रयोग--माल०, पृ० २४, छलिक नाम नाट्य—वही, पृ० ४, ५, ६ १० वही, पृ० २४, ११ वही, ४, ६

१ वारयोषिताम्—रघु०, ३, १६, गणिका, वही, १६, ३५, १४, १५, १६, वेश्या, मेघ० पूर्व, ३५ २ रघु०, १६, १४ ३ मे० पू०, ३५ ४ वही ५ वीणा—रघु०, ८, ३३, मे० पू०, ४५, ५, २३, परिवादिनी—वही, ८, ३५, १६, ३५, वल्लकी—वही, ८, ४१, ऋतु०, १, ८, सुतन्त्री—ऋतु०, १,३ ६ रघु०, २, १२ ७ वही, १६, ३५ ८ वही, १३, ४०, १६ १३, माल०, पृ. २१

पुष्कर ९ और मुरज १०। इनके अतिरिक्त तूर्य ११ (तुरही), शंख, १२ दुन्दुभी १३ (नगारा), और घंटा १४ का भी उल्लेख मिलता है। इनमें से अन्तिम तीन रणवाद्य थे। शंख युद्ध का आरम्भ और अन्त करने के लिए बजाया जाता था। जब युद्ध के अन्त में यह बजता था, तब उससे बजानेवाले की विजय घोषित होती थी। इसके अतिरिक्त शंख पूजा आदि के शुभ अवसरों पर भी बजा करता था। तूर्य, शान्ति और युद्ध दोनों का वाजा था। वेणु, वंशी की ही एक किस्म थी। मृदंग, पुष्कर और मुरज तबले या ढोलक की किस्में थी। तूर्य, लम्बी तुरही थी और दुन्दुभी, युद्ध या अन्य अवसरों पर बजनेवाला एक वृहदाकार नगाड़ा था।

कालिदास को संगीत से विशेष प्रेम था और लय-ताल का उन्हें पूरा ज्ञान था। संगीत और उसके सूक्ष्म कला 'काकलि-गीत' के सिद्धान्त का उन्होंने उल्लेख किया है। उनकी नारियाँ और वीणा सर्वदा साथ रहती हैं और एक दूसरे से पृथक नहीं की जा सकतीं। यह आश्चर्य की बात है कि कालिदास के ग्रंथों में 'रागों' का वर्णन नहीं मिलता।

नृत्य-कला का सेवन और प्रयोग भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। कालिदास के समय में यह कला अपने शिखर पर पहुँच गई थी और इसके अनेक प्रकार तथा विभाग बन गये थे। कालिदास के ग्रन्थों और अनेक प्राचीनतर ग्रन्थों में नृत्य का सम्बन्ध रंगमंचीय अभिनय से निरन्तर किया गया है। अभिनय के दोनों आचार्यों की प्रतियोगिता पर मध्यस्थ अधिकार के-से परिव्राजिका ने 'मालविकाग्निमित्र' में नृत्य की सुन्दर परिभाषा की है। वह कहती है कि नृत्य और नाट्य प्रयोगप्रधान हैं।

उसने उस स्थल पर यह स्पष्ट कर दिया है कि नृत्य अभिनय से सर्वथा युक्त है और इसी कारण कालिदास ने भी दोनों का एक संयुक्त कला के रूप में ही वर्णन किया है। फलतः इस कला का सर्वथा स्वतंत्र अध्ययन संभव नहीं।

नृत्य के अनेक प्रकार थे और यद्यपि कालिदास ने उन प्रकारो का परिगणन अथवा स्पष्ट विशद वर्णन नहीं किया है, तथापि उनके ग्रन्थों से उस कला की विविधता पर प्रकाश पड़ता

---

९ रघु०, १६, १४, मे०, ३०, ३; माल०, १, २१. १० कुमार०, ६, ४०; मे०, पू०, ५६; ३०, १; माल०, १, २२. ११ रघु०, ३, १६; ६, ९, ५६; १०, ७६, १६, ८७; विक्रमो०, ४, १२. १२ रघु०, ६, ९; ७, ६३, ६४; कु०, १, २३. १३ रघु०, १०, ७६. १४ वही, ७, ४१.

है। गणदास मालविका को अभिनय के पाँच अंगों में दक्ष करने की बात कहता है।१ 'पंचांगाभिनय' शब्द का तात्पर्य संगीत रत्नाकर में स्पष्ट किया गया है। कालिदास में नृत्य की जिस 'छलिक' शैली२ का उल्लेख हुआ है, उसका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। छलिक, चतुष्पद३ अथवा गीत के चार पदों पर आरोपित था। इसे नृत्य-कला का एक अत्यन्त कठिन प्रयोग माना गया है। भाष्यकार काटयवेम५ ने छलिक को उस प्रकार का नृत्य माना है जिससे नर्तक अन्य पात्र का अभिनय करता हुआ उस साधन से अपने भावों को व्यक्त करता है।६

---

१ पचांगादिकमभिनयमुद्दिश्य—माल०, पृ० १४ २ छलिक—वही, पृ० ४, ५, ६, २१, २४, दूसरा पाठ—चलित। चतुष्पदोत्थ छलिक—वही, पृ० २१, २४

दुष्प्रयोज्य—वही, पृ० ११ ३ तद् एवच्चलित नाम साक्षात् यत् अभिनीयते। व्यपदिश्य परावृत्त स्वराभिप्रायप्रकाशकम्।

६ 'विक्रमोर्वशी' के चौथे अंक में आये प्राकृत के गीतों को शंकर पंडित आदि कुछ विद्वानों ने निम्नलिखित कारणों से प्रक्षिप्त माना है। (१) पंडित द्वारा एक 'विक्रमोर्वशी' की आठ हस्त लिखित प्रतियों में से छः में ये गीत नहीं मिलते। (२) काटमेलम की मेधा के टीकाकार को उनका ज्ञान नहीं है। (३) डा० पिशेल का द्राविड़ हस्तलिखित प्रति पर अवलम्बित 'विक्रमोर्वशी' का संस्करण भी उनको नहीं जानता। (४) उत्तम पात्र होने के कारण राजा को जहाँ केवल संस्कृत बोलना चाहिए थी, वहाँ वह बारी बारी से संस्कृत और प्राकृत दोनों बोलता है, जो अस्वाभाविक है। [५] प्राकृत और संस्कृत के पद, एक ही विचार का अंकन कर पुनरुक्ति का दोष प्रस्तुत करते हैं। [६] उनमें से अनेक, जो यद्यपि राजा के एकान्त कथन के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तथापि वे अस्पष्ट रूप से अन्य पुरुष के प्रति संकेत करते हैं, स्पष्टतः स्वयं राजा के प्रति नहीं। (७) वे अनावश्यक हैं और उनमें से अनेक संस्कृत गीतों में अभिव्यक्त भावों के स्वच्छन्द प्रवाह में अवरोध उपस्थित करते हैं। (देखिए पंडित का संस्करण, भूमिका, पृ० ८-९। और देखिए काले का संस्करण नोट, पृ० ८२)।
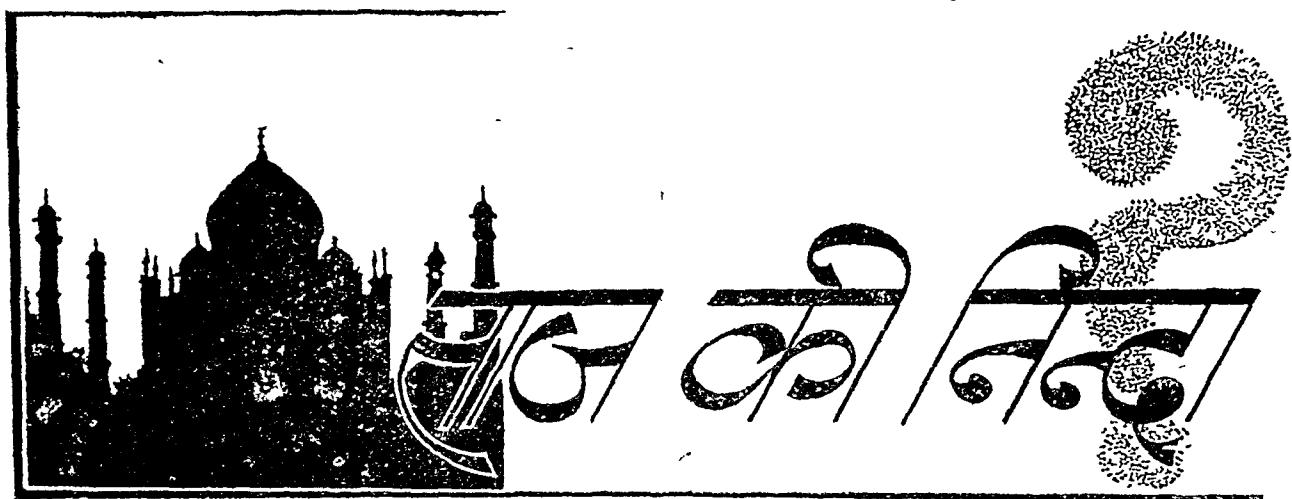
[श्रीमथुरा प्रसाद मिश्र, एम० ए०]

हाय, मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन,
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।

+ × ×

हिन्दी के महान् कवि श्रीसुमित्रानन्दन पंत की कविता, जब छायावाद की स्निग्ध छाँह छोड़, प्रगतिवाद की चिलचिलाती धूप में आ खड़ी हुई, तो उसी युग में उनने ताज पर भी एक कविता लिखी। ताज पर लिखकर प्रायः सभी कवि अपनी कविता को आदर दे चुके हैं। स्वयं कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ताज को "काल के गाल पर एक बून्द आँसू" की तरह जड़कर छोड़ गये हैं। किन्तु, पहले की तमाम कविताएँ ताज की प्रशस्ति में लिखी गई थीं। पंत की कविता उसकी निन्दा है। और, अपने इस नये दृष्टिकोण के लिए यह कविता भी खूब जन-प्रिय हुई।

ऊपर की दो पंक्तियाँ पंत की उसी कविता की आरम्भिका हैं।

पंतजी एक कवि के नाते ताज की भर्त्सना में अकेला अवश्य हैं। लेकिन, कला और संस्कृति के सम्बन्ध में प्रगतिवादी दृष्टिकोण रखनेवाले सैकड़ों चिन्तक उनका साथ दे रहे हैं।

ताजमहल एक मकबरा है, स्मारक है। आगरा में यमुना के रम्य तटपर, मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताजमहल की याद में इसे बनवाया था। शंखमर्मर के एक विशाल

मच पर चारों कोने से शुभ्रमर्मर की चार भव्य मीनारें उठती हैं। और, उनके ऊपर शुभ्रमर्मर का ही एक सुन्दर चन्दोवा टँगा है। उसके बीचोबीच एक शानदार महल है, और उसीके भीतर शाहजहाँ की प्रियतमा का नश्वर शरीर सो रहा है।

यमुना-तट का मनोरम, मन-मोहक वातावरण! और, उसकी गोद में पार्थिव कला का अंचल थामें, किसी मनुष्य का प्यार यहाँ युग-युग से अमर हो रहा है।

धरती के कोने-कोने से लोग सिर्फ ताजमहल को देखने के लिए भी हिन्दुस्तान आते हैं। संसार के सात आश्चर्यों में उसका भी नाम है। कवियों और इतिहासकारों ने उसे 'शुभ्रमर्मर में जड़ा हुआ एक सपना,' 'अमरप्रेम का स्मारक,' 'पूर्ण चन्द्र की प्रतिमा'—क्या-क्या नाम नहीं दिये हैं? मुगल-काल के अशेष वैभव और ऐश्वर्य की निशानी है वह। मध्य-युगमें भारत के कलात्मक विकास का शिखर ताजमहल ही माना जाता है।

मानवीय प्यार की इस महान यादगार के बनने में दस वर्ष का समय, अट्ठारह करोड़ रुपये और अशेष श्रम, व्यय हुआ है।

इतिहासकार इस बात को भी मानते हैं कि ताजमहल के निर्माण में श्रमिकों से जबरदस्ती मजदूरी कराई गई थी, उनका अपार शोषण किया गया था। अधिकांश में, गुलामों के पसीने से सनकर उसकी मीनारें उठी थीं। और, दिनभर पत्थर ढोनेवाले गुलाम का पारिश्रमिक क्या था? बस, सूर्योदय से सूर्यास्त तक खटना और दोनों जून भोजन मात्र!

कला का यह चमत्कार केवल मनुष्य के रक्त और पसीना से लथपथ है। उसके कण कण में उसकी बेकसी, उसकी आहें सोई हैं।

साथ ही, ताज के निर्माण की एक और दिल दहलानेवाली कथा है। अपनी चहेती के लिए, अपनी बेगम के लिए एक सामन्तयुगीय राजा की उद्दाम वासना को अमर करनेवाली इस कला-कृति का जब निर्माण हो रहा था, उस समय गुजरात और पश्चिमी भारत के अन्य हिस्सों में भयकर अकाल फैला था। देश के लाखों बेटे-बेटियों की लाशें लुढ़क चुकी थीं। अकाल इतना भीषण था कि मनुष्य, मनुष्य नहीं रहा। जानवर भी नहीं, वह राक्षस बन चुका था। मनुष्य, मनुष्य को मारकर अपनी भूख की आग बुझाने पर उतारू हो चला।

और, ऐसे ही दुर्दिन में शाहजहाँ को अपनी प्रियतमा का स्मारक बनाने को सूझा। ताजमहल का समूचा खर्च राज-खजाने से दिया गया था। प्रजा से कर वसूलकर राज-खजाना भरा गया, और वही प्रजा जब हजारों-हजार की तादाद में कीट-पतंगों की तरह मिट रही थी तो उसकी कमाई के धन से बादशाह की व्यक्तिगत ऐय्याशी और उच्छृङ्खल वासना का अमर सिंगार हो रहा था।

रोम जल रहा था और नीरो बैठा वंशी बजा रहा था। इससे बड़ी हृदय-हीनता, बर्बरता और क्या हो सकती है? तभी तो पंत ने उसे मृत्यु की पूजा कहा है।

तब क्यों नहीं हम ताज की निन्दा करें? क्यों नहीं तब हम वासना के इस उजले प्रतीक को, 'रक्त से सनी इस कला-कृति' को धूल में मिला देने की बात सोचें?

लेकिन, नहीं। कभी नहीं।

तब तो हमें अपने समस्त अतीत को ही मिटा डालना होगा। अतीत में सभ्यता और संस्कृति का जो विराट उत्कर्ष हुआ, उन्हें हमें समुद्र में डुबो देना होगा। मिस्र की पिरामिड को, यूनान की मूर्तियों को, मध्य युग की मीनारों और गुम्बदों को डिनामाइट से बर्बाद कर डालना होगा। और आखेट पर गये एक राजा के उच्छृङ्खल प्रेम से आहत हुई कवि-गुरु कालिदास की 'शकुन्तला' को भी तो आग के सुपुर्द कर देना होगा। फिर, आधुनिक युग के ही गगन-चुम्बी महल, पार्क, म्यूजियम, ओपेरा और रंगमंच भी कैसे बच रहेंगे? सभी तो शासक वर्ग की कलात्मक रुचि, भावना और आदर्श के प्रतीक हैं। और, उन्हें बनवाया भी तो उन्हींने हैं।

अतीत के जो भी सांस्कृतिक अर्जन हैं, वे शासक और शोषक वर्ग के ही तो अर्जन हैं। जनता की, शोषित और पद-दलित जनता की सांस्कृतिक रचनाओं में तो कुछ लाख ग्राम-गीत, बूढ़ी दादी की कहानियाँ और वट-वृक्ष की जड़ पर पड़ी माटी की मूरतें भर हैं।

किन्तु, अतीत के सांस्कृतिक अर्जनों को मिटा डालना एक पागल ख्याल के सिवा और क्या कहा जा सकता है? उनसे बिछुड़कर हम जीवित कैसे रह सकते हैं? और तब जीना भी किस अर्थ का होगा? समूची मानवता की मुक्ति का जो अभियान हम चला रहे हैं—और, जिसके नाम पर हम ताज की भर्त्सना करते हैं—वह किस लिए? मनुष्य-जाति के लिए एक अधिक स्वाधीन, अधिक सुखद, उन्नत और सुन्दर भविष्य के लिए ही तो। जन-जन के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना, जीवन को अधिक व्यापक, गंभीर, अधिक जीने योग्य और गर्वीला तथा अधिक अर्थपूर्ण और दीप्तिपूर्ण बनाना ही तो उसका उद्देश्य है। समाजवाद के लिए जो लड़ाई है, वह लड़ाई सही अर्थों में मानवीय संस्कृति के लिए है—जो इस सत्य को नहीं देख रहे, उन्हें कौन बताये? सब के लिए अधिकाधिक जीने योग्य जीवन, यदि हमारा उद्देश्य नहीं है, तो फिर मनुष्य के लिए सुख क्या, शोषण क्या, मुक्ति क्या, दासता क्या, दुख क्या, उत्पीड़न क्या? तब तो हम गुफाओं में ही भले अच्छे थे। जंगल-पहाड़ का वास, नंगी-भद्दी देह, कंद-मूल भोजन और सितारों से बातचीत।

रोटी मनुष्य की पहली और अभी सब से बड़ी आवश्यकता है। लेकिन, रोटी उसकी एकमात्र आवश्यकता नहीं है। जीवन को रोटी का पर्याय बनाना मूर्खता होगी। मनुष्य के सिर्फ भूख और प्यास ही नहीं हैं। वह सोचता है, सुखी होता है; डरता है, आँसू बहाता है। सुख

और अवसाद, प्रणय और विरह (सेक्स कहिये), प्यार और घृणा, दया और ईर्ष्या की अनुभूतियाँ भी उसके सग-सग आई हैं। ऐसी उसकी कितनी ही प्रवृत्तियाँ हैं, प्रेरणाएँ हैं।

किसी विधाता ने जीवन के अर्थ और लक्ष्य निश्चयकर उसे नहीं बनाया, किन्तु, मनुष्य को तो जीवन म प्रकृति की सीमा के भीतर, उसका अर्थ भरना ही होगा। उसे जीना जो है। व्यक्तित्व के विकास का क्या अर्थ है?

बाइबिल में लिखा है—"सिर्फ रोटी के सहारे ही मनुष्य नहीं जीता।" ऐसा कहने के पीछे बाइबिल के रचयिता का जो भी मन्तव्य रहा हो, किन्तु, यह बात आज भी उतनी ही सच है।

व्यक्तित्व के विकास के लिए भौतिक अर्जनों की, वैभव और सभ्यता की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही कला और सस्कृति की। स्वाधीनता और जनतन्त्र भी इस दिशा में साधनमात्र हैं। और अन्धा भी देख सकता है कि जिस महानतर, सुन्दरतर सस्कृति की हम रचना करना चाहते हैं, उसकी नींव में अतीत की हमारी तमाम सास्कृतिक रचनाएँ ही रहेंगी। जिस तरह आज तक का समस्त यान्त्रिक विकास, समस्त अर्जित सभ्यता, आनेवाले समाज का—जिसे हम समाजवाद और विश्व-भ्रातृत्व की सज्ञा देते हैं—आधार होगी, ठीक उसी तरह आनेवाली नई सस्कृति भी अतीत की सस्कृतियों की आधार-शिलापर ही खड़ी हो सकेगी, खड़ी रह सकेगी।

अतीत की भीत पर हमारा वर्त्तमान खड़ा है। वर्तमान ही हमारे सपने के किसी भी भविष्य का आधार होगा। यह एक वैज्ञानिक सत्य है।

इसलिए अतीत भी हमारा है। और, यह ताज भी हमारा है।

प्रखर क्रान्तिकारी लेनिन ने भी कहा है—"हमें अपने वर्ग-शत्रु की कला की प्रशसा वैसी ही करनी होगी, जैसी प्रशसा हम उसके मशीन-गन की करते हैं। पुरानी सस्कृति में जो कुछ स्थायी मूल्य का है, उसे हमें नई सस्कृति में लेना ही होगा।"

आज तक सभ्यता का जो कुछ विकास हुआ, उसमें मनुष्य का शोषण अवश्य निहित है। यह तो ऐतिहासिक तौर से अनिवार्य, अवश्यम्भावी माना गया है। इतिहास को यही मजूर था। शोषण के बिना आज तक की सभ्यता और सस्कृति का उत्कर्ष शायद सम्भव भी नहीं होता। किन्तु, इस शोषण के भी परे जो एक बड़ा सत्य, सभ्यता के विकास में छिपा है, उसे हमारे प्रगतिवादी नहीं देख रहे। सभ्यता के उदय और उत्कर्ष के लिए समूची मनुष्य जाति ने विराट प्रकृति के साथ जो भीषण युद्ध किया है, उसके साथ जो सधियाँ की हैं, उस पर जो शानदार जीतें पाई हैं—उन्हें वे भूल जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का यह अनवरत युद्ध, जीवन का आधार है। और, यही सत्य, कला और सस्कृति के उदय के साथ भी लागू है।

मनुष्य अपने अस्तित्व के, अपने गर्व और अभिमान के इस आधार को कैसे छोड़ दे ?

और, जिन्हें हम शोषक और शासक कहते हैं, क्या कभी उन्होंने इस उत्कर्ष में अपना शानदार 'रोल' अदा नहीं किया है ? तभी तो कार्ल मार्क्स, प्रारंभिक पूँजीवाद के क्रान्तिकारी और प्रगतिशील 'रोल' पर, कवि बन उठा है।

उन्होंने मनुष्य की आशा और आकाँक्षा के साथ निठुर खिलवाड़ किया, इसलिए हम उन्हें लानत देते हैं। उन्होंने मनुष्य की आह और आसूँ को, उसकी आशा और आकांक्षाओं को कला के रूप में अपनी अभिव्यक्ति का साधन दिया, उसकी सौन्दर्य-भावना को जागृत किया, उसकी वृत्तियों को स्वाद दिया और उसकी अनुभूतियों को तीव्रतर और रसपूर्ण बनाया—इसके लिए, हम उनके कृतज्ञ हैं। और, समूचा इतिहास उनके प्रति सदा कृतज्ञता-ज्ञापन में झुका रहेगा।

और भी नहीं भूलना होगा कि अपने वर्ग-विशेष के उदय के साथ-साथ, सदा से सामाजिक प्रगतिकी एक समान भावना भी काम करती आई है। और, शोषक और शोषित दोनों इस समान भावना के साझीदार रहे हैं, थातीदार रहे हैं। हमारे अतीत के संगीत, चित्र, कविता, नाटक, नृत्य और साहित्य में उसकी भी अभिव्यक्ति साथ-साथ हुई है।

अतएव, अतीत की कला और संस्कृति का तिरस्कार करने का अर्थ होगा कि इतिहास ने हमें ज्ञान और अनुभव की जो महान, अमूल्य विरासत सौंपी है, उससे हम अपने को, आनेवाली पीढ़ियों को वंचित कर रहे हैं। यह एक अक्षम्य अपराध होगा—अपने प्रति और भविष्य के प्रति। अतीत में मानव-जाति को सुख और दुःख, आशा और निराशा, स्वप्न और सत्य, कल्पना और यथार्थ, आह्लाद और अवसाद की जिन अनुभूतियों से होकर गुजरना पड़ा है, उन्हें खो देना सब-कुछ खो देना हुआ। और, अतीत के जीवन की भावुक और कल्पना-मूलक अनुभूतियाँ तो इन्हीं कला- कृतियों में संचित पड़ी हैं। उन्हें खोकर हम क्या बच रहेंगे ? वे हमारी अनमोल निधियाँ हैं जिनसे चिपककर ही हम सही अर्थ में जी सकते हैं।

अतीत की कला-कृतियो को देखकर हम आज भी क्यों भाव-विह्वल हो उठते हैं ? अजन्ता के चित्र, कालिदास की शकुन्तला और ताज की मीनारें आज भी बरबस हमारी आँखों को क्यों कैदकर लेती हैं ? क्यों हमारे मन-प्राण को आज भी उन्हें देखकर इतना सुख होता है ? क्यों हम सोचने लगते हैं कि काश, ऐसी चीजें आज भी बन पातीं।

इसलिए कि युग-युगान्तर से कला के जीवन में अर्थ, उद्देश्य और विकास का एक क्रम, एक तारतम्य चला आया है। इसलिए कि अतीत की कला-कृतियों में ही मानव-जाति के उच्छ्वास और अवसाद कविता और मूर्ति होकर यथार्थ रूप में जीवित हैं। इसलिए कि संस्कृति का सबसे श्रेष्ठ, सुन्दर फूल कला है। इसलिए कि मानव-जाति के जीवन मे सुरुचि, सौन्दर्य और रसका जो कुछ

विकास हुआ, उन्हें हम अतीत के संगीत, चित्र, शिल्प, कविता, नाटक, नृत्य और साहित्य से ही सीख-सीखकर अपने जीवन में उतारते हैं। हमारे जीवन की ज्योति कभी तेज जली और कभी मंद, इसका वह मापदण्ड है। उसमें राग, ताल और लय की सर्जना हुई, इसका वह प्रतीक है। कला मनुष्य की ओर से प्रकृति को चुनौती है। सृष्टि के अन्धकार से लड़ने के लिए हमारे हाथों में जीवन की वह दीपशिखा है।

ताजमहल वैसी ही कला-कृतियों का शीश-मुकुट है। उसका वह कोमल, भ्रामक और मोहक रूप। दूर से जो उजले फेन का पुंज सा दिखता है, वही निकट आने पर, चमत्कार पूर्ण रचना, आश्चर्यजनक रूप और मोहक शैली में बदल जाता है। उसके जर्रे-जर्रे में मनुष्य की सौन्दर्य-भावना अंकित है, कला की ग्रंथियाँ खुल पड़ी हैं। मन प्राण को बाँध रखनेवाला सहज आकर्षण उसमें छिपे हैं।

रूप, रंग और छाया की कमनीयता एक जगह सिमटकर ताज बन गई है।

धरती पर और सौरमण्डल में प्रकृति ने एक से-एक सुन्दर और मोहक चीजें बनाई हैं। चाँद और सितारे, फूल और पहाड़, नदी और समुद्र, रंग और रंगीनियाँ, बादल और इन्द्रधनुष, धूप और चाँदनी, साँझ और विहान, बून्द और शबनम—कितने के नाम गिनाये जायँ। किन्तु, मनुष्य की बनाई सुन्दर और आकर्षक चीजों में ताजमहल संसार में सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य-जाति के कलात्मक विकास का वह एक अनुपम प्रतिनिधि है। भारतीय संस्कृति की गौरव पताका है।

मनुष्य की कल्पना-मूलक, सौन्दर्य-मूलक और सृष्टि मूलक प्रतिभा, कलात्मक प्रतिभा किन ऊँचाइयों को छू सकती है—ताज इसका प्रकाश-स्तम्भ है।

और तो और, हम कभी यह कैसे भूल सकते हैं कि ताजमहल मनुष्य की अपनी कृति है। इस नाते समूची मानव-जाति को उस पर गर्व है। आखिर, मनुष्य ने ही तो अपने हाथों ताज को बनाया है, सँवारा है।

ताजमहल सचमुच मनुष्य का अभिमान है।
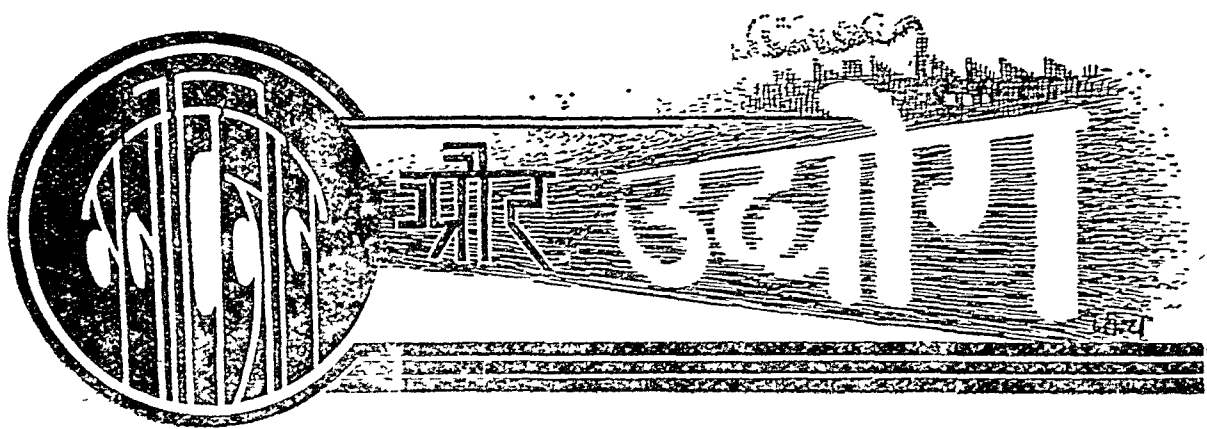
[प्रो० श्री अवधकिशोर प्रसाद सिंह, एम० ए, पटना-कालेज, पटना]

उद्योगपतियों का ध्यान पहले केवल उत्पादन पर ही केंद्रित था। व्यापार की उन्नति के लिए उत्पादन बढ़ाने के भिन्न-भिन्न तरीके उन्होंने अख्तियार किये; किन्तु, यह बात उन्हें कभी नहीं सूझी कि मिलों और कारखानों में लगे मजदूरों की मानसिक स्थिति का भी इस उद्देश्य की पूर्ति में कोई हाथ हो सकता है। और कुछ ही दिनों की बात है कि वास्तविक जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपनी प्राप्तियों से उत्साहित हो, जब मनोवैज्ञानिकों ने उद्योगपतियों को भी एक उचित परामर्श देने का साहस किया, तो उन्हें घृणा और उपहास का ही पात्र बनना पड़ा। किन्तु, इससे मनोवैज्ञानिकों का उत्साह घटा नहीं। वे अपना परामर्श देते रहे और कुछ इने-गिने उद्योगप्रेमियों का ध्यान भी अपनी ओर खींच सके, तथा कुछ ने उनकी बातों पर आचरण करने की भी कोशिश की, यद्यपि खुले हृदय से नहीं। किन्तु, इसमें जो अद्भुत सफलता मिली, उसने उनकी आँखें खोल दीं और वे पूर्ण हृदय से इसका समर्थन करने लगे। उनके सहयोग ने साधारण उद्योगप्रेमियों के मन में मनोविज्ञान के प्रति जमी हुई आशंकाओं को आसानी से हटा दिया और इस प्रकार उद्योग में मनोविज्ञान का महत्त्व समझा जाने लगा। और आज उद्योग में मनोविज्ञान की सहायता दिनोंदिन अधिकाधिक रूप में माँगी जा रही है।

स्वभावतः, मनुष्य कम से-कम मूल्य में अधिक-से-अधिक पाने का प्रयत्न करता है। इस व्यापारिक मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए जब हम उद्योग के क्षेत्र में, जहाँ वह या तो अपने करता है या दूसरों से काम लेता है, उसे कम-से-कम परिश्रम और समय के लिए अधिक-से-अधिक आय की

इच्छा करते हुए पाते हैं, तो हमें आश्चर्य नहीं होता। अत परिश्रम और व्यय के अनुपात से उत्पादन की कोटि और परिमाण में वृद्धि करने के लिए नए नए तरीकों की खोज में उद्योगपति सदा ही व्यस्त रहते हैं। अब प्रश्न यह है कि इस उद्देश्य की पूर्ति किस तरह हो'। इसके लिए हमें तीन बातों पर ध्यान देना होगा (१) हर आदमी को योग्यतानुकूल काम दिया जाय, (२) हर व्यक्ति को उस काम के लिए पर्याप्त शिक्षा दी जाय, और (३) कार्य कुशलता को सदा बनाए रखने का प्रयत्न किया जाय। और इन तीनों के लिए मनोविज्ञान की सहायता अनिवार्य है।

इन तीनो पहलुओ पर अब हम क्रमश विचार करें।

हमारी पहली समस्या है कि किस तरह उचित कार्य के लिए, उचित व्यक्ति को चुनें। पहले की प्रथा यह थी कि शारीरिक और बौद्धिक शक्ति के आधार पर व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी, और ऐसा करने से ही उस समय प्राय काम चल जाता था। किन्तु, मिलों की आज की दशा उन दिनों से नितान्त भिन्न हो गई है। आज काम अत्यन्त जटिल और व्यापक हो गया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें लोहे के कारखानों से मिलता है। एक समय था जब कि लोहे के सभी कार्यों के लिए एक व्यक्ति पर्याप्त था, किन्तु, आज एक कारखाने में हजारों आदमी खटते हैं। हर काम एक विशिष्ट योग्यतावाले व्यक्ति की अपेक्षा करता है और किसी काम में किसी आदमी को कितनी सफलता मिलेगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस काम के लिए उसकी योग्यताएँ कितनी उपयुक्त हैं। प्राय यह देखा जाता है कि जहाँ इन बातों का विचार न कर यों ही आदमियों को बहाल कर लिया जाता है, वहाँ न तो उद्योग की ही उन्नति होती है और न काम करनेवाले का ही जी लगता है। फलत वह किसी एक काम पर टिकता नहीं, कभी यहाँ, कभी वहाँ भटकता फिरता है। और, मालिक और मजदूर दोनों ही असन्तुष्ट रहते हैं और उद्योग शिथिल पड़ जाता है। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उचित व्यक्ति का चुनाव कितना महत्त्वपूर्ण है।

अक्सर देखा जाता है कि आदमी गलत व्यवसाय चुन लेता है। उपयुक्त चुनाव सचमुच एक अत्यत कठिन काम है और इसी कठिनाई का अतिरंजित रूप हमें सैमुएल जॉन्सन के (बासवेल को परामर्श स्वरूप दिए गए) इस कथन में मिलता है—"समुचित आधार पर भावी जीवन का चुनाव ऐसी मानसिक शक्तियों की अपेक्षा करता है जिन्हें हमारे निर्माता ने हमें देने की कृपा नहीं की है।" किन्तु, इस कठिनाई को महसूस करते हुए भी मनोवैज्ञानिक ऐसी निराशावादिता की आवश्यकता नहीं मानते।

अब हमें देखना है कि मनोवैज्ञानिक इस कठिनाई को दूर करने के लिए किन-किन तरीकों को अख्तियार करते हैं। चुनाव का सबसे प्राचीन और अधिक व्यवहृत तरीका यह है कि आदमियों को बुलाकर उनसे पूछ ताछ की जाय और इस तरह जो आदमी काफी प्रभावित करे उसको नियुक्त कर लिया जाय। निस्सन्देह, नियुक्ति-प्रणाली का यही सबसे प्रमुख उपाय है। इस तरह पूछ-ताछ कर

कारणों और कई तरीकों से की जाती है, जो कि तत्कालीन स्थिति पर निर्भर करते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य चुने जानेवाले लोगों के विषय में व्यक्तिगत बातों का जानना तथा अर्जी में दी गई बातों के विषय में जानकारी प्राप्त करना रहता है। और दूसरा उद्देश्य रहता हैं उस आदमी को उपयुक्त काम के विषय में जानकारी करना तथा उसके विषय में इस तरह कीं व्यक्तिगत बातों को मालूम करना जो बिना व्यक्तिगत बातचीत के किसी भी अन्य तरीके से नहीं जानी जा सकती।

यों तो मालूम पड़ता है कि चुनाव का यह तरीका सर्वथा निर्दोष है; किन्तु, बात ऐसी है नहीं। इसमें कुछ इस तरह की त्रुटियाँ हैं जिन्हें भूलना कदापि उचित नहीं। कठिनाइयाँ ये हैं कि भिन्न-भिन्न निर्णायक भिन्न-भिन्न निर्णय देते हैं—बहुधा पाया गया है कि जिस आदमी को एक निर्णायक सर्व प्रथम स्थान देते हैं, उसी को दूसरा निर्णायक कितनों के नीचे रखता है—जो आदमी अभी योग्य मालूम पड़ा, वही कुछ दिनों बाद अयोग्य दीखने लगता है। इस बात की सत्यता इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। ए० डब्ल्यू कार्नहसर (A. W. Kornhausr) ने एकबार अपने निर्णायकों से एक ही व्यक्ति के विषय में उनके निर्णयों को पूछा, तो उसने देखा कि एक ही निर्णायक के भिन्न-भिन्न समय के निर्णयों में काफी अन्तर है। भिन्न भिन्न निर्णय +० ४२ से +० ७२ के बीच घटते-बढ़ते पाए गए। यह घटना अपने को पूर्ण निर्णायक समझने वाले व्यक्तियों की भावना पर सचमुच कठोर आघात करती है।

इस तरह के अन्तर का होना कुछ हद तक स्वाभाविक भीं है। बात यह हैं कि प्रायः हर आदमी की कुछ अपनी-अपनी व्यक्तिगत अज्ञात भावनाएँ रहती हैं जो उसके निर्णय को प्रभावित कर ही देती हैं। ये भावनाएँ सदा एक सी नहीं रहती, जिसके फलस्वरूप एक ही आदमी का निर्णय भी बदलता रहता हैं।

फिर भी इन बातों से हमें यह न समझना चाहिए कि पूछ-ताछ की प्रथा त्याज्य ही हैं। आवश्यकता है इसके वर्त्तमान दोषों को दूर करने की; और यह हम तभी कर पाएँगे, जब हम इस प्रणाली को एक ऐसा स्थिर आधार दे दें कि व्यक्तिगत विभिन्ता की कोई गुंजाइस न रह जाय। इस ओर प्रयत्न किए भी जा रहे हैं। इस तरह का एक अत्यन्त सबल प्रयत्न हावलैंड और वान्डर लिक (C. I. Houland and E. E. Wanderlic) ने हाउस हौल फाइनेन्स कम्पनी (Housaholl finance company) के लिए आदमी बहाल करने के सिलसिले में किया था। और इससे उसे लाभ भी हुए। इस तरह के और भी कई तरीके उद्योगपतियों ने चुनाव की बाबत इख्तियार किए हैं, किन्तु, इनमें मनोवैज्ञानिक जाँच ही सब से अधिक विश्वसनीय उतरी है।

मनोवैज्ञानिक जाँच भी कई तरह की है। भिन्न-भिन्न कारखानों और व्यवसायों की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार, भिन्न-भिन्न जाँच भी रखी गई हैं। मुख्यतः जाँच तीन

श्रेणियों में विभाजित की जाती है—प्रवृत्ति की जाँच, प्राप्त योग्यता की जाँच और व्यक्तित्व की जाँच। उनका व्यवहार इस तरह से किया जाता है—

(१) प्रवृत्ति की जाँच—हर आदमी के कुछ न कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं, और ये प्रवृत्तियाँ ही उनकी रुचि की जड़ में रहती हैं। अत जब काम किसी आदमी की प्रवृत्ति के अनुकूल पड़ेगा, तभी उसमें उसका जी लगेगा और सफलता भी मिलेगी। इसलिए, यह जानने के लिए कि किस काम में किस का जी लगेगा और कितनी सफलता और आसानी के साथ वह इसे सीख और कर सकेगा, उसकी प्रवृत्ति की जाँच आवश्यक हो जाती है।

(२) प्राप्त योग्यता की जाँच—कार्य के सफल सचालन के लिए यही जान लेना पर्याप्त नहीं है कि उस काम के लिए प्रस्तुत आदमी में प्रवृत्ति है या नहीं, परन्तु, हमें यह भी जानने की जरूरत है कि इस कार्य के लिए आवश्यक योग्यताओं में उसने कितनी अब तक प्राप्त कर ली है।

(३) व्यक्तित्व की जाँच—इन दो जाँचों से ही हमारा काम पूरा नहीं हो जाता। आदमी के व्यक्तित्व की जाँच भी आवश्यक है, यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अमुक आदमी का झुकाव इस ओर है या नहीं, वह अपने को कार्य के वातावरण मे व्यवस्थित कर सकता है या नहीं, इत्यादि। व्यक्तित्व से हमारा तात्पर्य है मनुष्य के उन सभी गुणों का समूह जो उसे वातावरण के साथ उचित सम्बन्ध स्थापित कराने में सहायक होता है।

भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इन जाँचों का भिन्न-भिन्न तरीकों से व्यवहार किया है। वस्तुत जाँचों की भाँति और सख्या इतनी अधिक है कि उनका उल्लेख इस छोटे से निबन्ध में सभव नहीं है। फिर भी, इन जाँचों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि यदि हम उद्योग की उन्नति चाहते हैं तो हमें इन मनोवैज्ञानिक जाँचों का सहारा लेना ही पड़ेगा।

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, उचित व्यक्ति के चुनाव मात्र पर ही उद्योग की उन्नति आधारित नहीं। उक्त चुनाव के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य होता है चुने हुए व्यक्तियों की उपयुक्त शिक्षा दिलाने का। शिक्षण के समय स्वभावत मजदूर, मिलमालिक के लिए कम से कम मूल्य की वस्तु रहता है। इस कारण इस समय का इस तरह उपयोग किया जाय कि कम से कम समय में अच्छी सी अच्छी शिक्षा दी जा सके। और यह तभी सम्भव हो सकेगा जब कि शिक्षा-प्रणाली में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का पूरा आश्रय लिया जाय।

कार्य की शिक्षा देने के पहले आवश्यक है कि मजदूर को शिक्षा के वातावरण और कायदे-कानून आदि से परिचित करा दिए जायँ ताकि वह अपने को उस स्थिति में व्यवस्थित

कर सके। वातावरण में व्यवस्थित हो जाने पर कार्य की शिक्षा काफी सहल हो जायगी। किन्तु, कार्य की शिक्षा के विषय में लिखने के पहले, हम कुछ ऐसी बातों का उल्लेख कर देना उचित समझते हैं, जिनका सम्बन्ध शिक्षक से है। शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह मजदूर के मन में शिक्षा के लिए एक अभिरुचि पैदा कर दे ताकि उसे उसका सक्रिय सहयोग मिल सके। क्योंकि अभिरुचि के बिना उसका सहयोग मिलना असंभव है। दूसरी बात शिक्षक के ध्यान देने की यह है कि वह वही चीज सिखलाए जो उसे सिखलानी है। जो काम सिखाना है, उसकी शिक्षा न देकर, उसके समान कोई दूसरा काम सिखाकर प्रस्तुत काम करने के लिए कह देना, अच्छा नहीं होता। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो ने यह सिद्ध किया है कि शिक्षा की यह प्रथा सफल नही होती। तीसरी बात यह है कि प्रगतिशील मजदूर को उचित प्रोत्साहन दिया जाय और उसे इस बात का ज्ञान करा दिया जाय कि वह उन्नति कर रहा है। क्योंकि यह देखा गया है कि उन्नति का चार्ट सामने रहने पर उसकी उन्नति की गति बढ़ जाती है। चौथी बात यह है कि शिक्षा देने के लिए शिक्षक सब से सहल और सफल तरीका का प्रयोग करें। साधारणतया शिक्षा के तीन तरीके हैं; (१) कार्य को टुकड़ा-टुकड़ा करके सिखाना, (२) पूरे कार्य को एकबार में सिखाना या (३) पहले अंशों का साधारण ज्ञान कराकर फिर समूचे का ज्ञान कराना।

अब प्रश्न यह है कि जिस काम की शिक्षा हमें देनी है, उस कार्य-विशेष की वास्तविक शिक्षा हम किस प्रकार दें। इसके लिए सब से पहली आवश्यकता है कि शिक्षक यह मान ले कि जिस आदमी को वह शिक्षा दे रहा है, वह इस काम के विषय में कुछ भी नहीं जानता। इसके बाद वह पूरी प्रक्रिया को उसे शब्दो के जरिए विस्तारपूर्वक समझा दे और हर पहलू के लिए उनके पर्याप्त कारणों को बतलावे तथा साथ ही साथ उन गलतियों से आगाह कर दे जो कि अक्सर हो जाया करती हैं। और जब सीखनेवाला यह कहे कि उसने पूरी तरह से सभी बातें समझ ली, तब उसे शिक्षक पूरी प्रक्रिया को शब्दो में दुहराने के लिए कहे। इसके बाद शिक्षक का काम, काम करके दिखला देना भी है। फिर, शिक्षक सीखनेवाले को ही वह काम करने के लिए दे दे और स्वयं यह देखता रहे कि वह कितनी गलतियाँ करता है। उन गलतियों को शिक्षक सुधारे तथा उन्नति के लिए मजदूर को उत्साहित करे। किन्तु, इस काम में शिक्षक प्रायः पीछे पड़ जाते हैं। गलतियाँ देखकर वे अपना धैर्य खो बैठते हैं और भावावेश में आकर कुछ ऐसा आचरण कर बैठते हैं जो सीखनेवाले के लिए हानिप्रद सिद्ध हो जाता है। मंदगति से सीखनेवाले की गति, और भी मंद हो जायगी जब कि वह यह जान लेगा कि शिक्षक उसकी त्रुटियो पर क्रुद्ध हैं। अतः शिक्षक का सदा स्थिर और धैर्यशील रहना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षक अपनी देख-रेख में कई बार

सफलतापूर्वक कार्य करा लेने के बाद, फिर उस कार्य को स्वतंत्र रूप से उन्हें कर लेने के लिए छोड़ दे। यही शिक्षा का समय खतम होता है और मजदूर को मिल का काम दे दिया जाता है।

उचित चुनाव और उचित शिक्षा के बाद प्रश्न आता है कार्य-कुशलता (Efficeancy) का। अब हमें देखना है कि कार्य-कुशलता किन किन बातों पर निर्भर करती है। पाफेनबर्ग (Poffaebengr) के अनुसार कार्यकुशलता का मतलब उस तरह की क्षमता से है जिससे कम से कम समय में ऊँची से ऊँची कोटि का, और अधिक से अधिक परिमाण में उत्पादन हो सके। साथ ही शक्ति और व्यय भी कम से कम लगे तथा पूर्ण सतोष भी मिले। वस्तुत ऐसी क्षमता, जिसमें पाफेनवर्ग की कही गई सभी उपयुक्त बातें वर्त्तमान हों, असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। फिर भी इसकी पूर्त्ति के लिए प्रयत्न तो हमें करना ही चाहिए।

यह तो मानी हुई बात है कि कार्यकुशलता का बहुत घना सम्बन्ध भौतिक वातावरण की उपयुक्तता से है। कार्य क्षमता बनी रहे, इसके लिए मजदूर को उचित मात्रा में रोशनी, हवा, गर्मी आदि का मिलते रहना निहायत जरूरी है। किन्तु, इनके अतिरिक्त भी कुछ ऐसी बातें हैं, जिनका महत्त्व इनसे कहीं अधिक है और इन बातों का सम्बन्ध सीधे मनोविज्ञान से है। अत अब हमें देखना है कि मजदूरों की क्षमता को बनाए रखने के लिए कौन-कौन सी मनोवैज्ञानिक बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

सब से पहले, काम करने के लिए मजदूर के मन में काफी उत्साह और अभिरुचि का होना जरूरी है। अभिरुचि के रहने पर रास्ते में कठिन से कठिन बाधाओं के होने पर भी मनुष्य अक्सर बड़ा से बड़ा काम कर डालता है। अन्यथा वह असावधान और सुस्त पड़ जाता है। अत मनुष्य से अधिक से अधिक काम लेने के लिए उसकी प्रमुख इच्छाओं का ज्ञान होना जरूरी है। वस्तुत मनुष्य भोजन, वस्त्र और आश्रम के लिए काम करता है, किन्तु, उसकी इच्छाएँ केवल इन्हीं से पूर्ण नहीं हो जातीं। इसके अतिरिक्त वह चाहता है कि उसे आत्म-सम्मान मिले तथा उसकी बनाई चीजों पर उसका कुछ अधिकार भी रहे। काम तभी अच्छा होता है जब कि करनेवाला उसे अपना काम समझकर करे। इन बातों को स्पष्ट करने के लिए हम सी० ए० ली (C A Lee) के एक प्रयोग को उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं। कुछ लड़कियाँ कुछ छोटे-छोटे कामों में लगाई गई थीं। अधिक काम करने के लिए उन्हें आर्थिक प्रलोभन दिया गया, किन्तु, फल उलटा ही हुआ। उत्पादन बढ़ने के बजाय २० प्रतिशत घट गया। उत्पादन घटने का कारण यह था कि अपनी आय तो उन्हें अपने माँ बाप को दे देना पड़ता था। किन्तु, जब इन्हीं लड़कियों को पहले से कुछ अधिक ही काम दिया गया और यह प्रलोभन दिया गया कि इस काम के खतम होते ही वे घर जा सकती हैं, तो देखा गया कि बढ़े हुए काम को भी उन लोगों ने २,३ बजे तक ही

समाप्त कर दिया। इस तरह के और भी अनेक उदाहरण हमें मिलेंगे जो यह सिद्ध करते हैं कि कार्य-कुशलता आर्थिक प्रलोभन के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर भी निर्भर करती हैं। जब मजदूर को इस बात का विश्वास रहेगा कि उसकी नौकरी सुरक्षित है, मालिक के वर्त्ताव उसके साथ अच्छे हैं तथा उसे काम सीखने का पूरा अवसर दिया जा रहा है, सभी सुविधाएँ मिल रही हैं तो वह काफी चाव से काम करेगा।

दूसरी बात, यदा-कदा मजदूर की कार्य-पटुता की प्रशंसा कर दी जाय और उसे उत्साहित कर दिया जाय। ऐसा करने से उसका मन बढ़ता है और वह कार्य-क्षमता बनाए रखने का प्रयत्न करता है। इस कथन की सत्यता एलोटन मेश्रो के अनेक प्रयोगों से स्पष्ट हो जाती है।

तीसरी समस्या, जिस पर ध्यान देना जरूरी है, वह है थकावट की समस्या। थकावट शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक भी होती है। मानसिक थकावट अधिकतर एक ही तरह के काम को बार-बार और अधिक समय तक करते रहने से या उसी तरह का काम जिसमें करनेवाले का मन नहीं लगे, आदि के करने से होती है। यह तो स्पष्ट है कि थकावट उत्पादन को कम कर देती है, अतः थकावट को दूर करना निहायत जरूरी हो जाता है। थकावट दूर करने के लिए सब से पहली जरूरत है कि काम करने का समय आठ घंटा से अधिक नहीं रखा जाय। इस विषय में हम यह याद दिला देना चाहते है कि काम करने के समय की यह सीमा, (Industrial pasigne Research boans) के निर्णय पर आधारित है। मानसिक थकावट को हम इन तरीकों से दूर कर सकते हैं; काम में परिवर्त्तन लाकर, काम करने की गति कुछ कम कर, बीच-बीच में आराम तथा आपस में मिलने-जुलने का अवसर देकर। विश्राम-घड़ी (Rest panse) के विषय में रूस में किए गए औद्योगिक अनुसन्धानों के निम्नलिखित निर्णय ध्यान देने योग्य हैं;—

(१) विश्राम-घड़ी की अवधि १० मिनट से कभी कम नही होनी चाहिये (२) १०-१० मिनट की दो विश्राम-घड़ियाँ २० मिनट की एक ही विश्राम-घड़ी से अधिक उपयोगी हैं। (३) दोपहर को खाने के लिए दिए गए समय को विश्राम-घड़ी के अन्दर नहीं गिनना चाहिए। (४) भिन्न-भिन्न विश्राम-घड़ियों को जमा कर एक छुट्टी के रूप में लेने की इजाजत मजदूरों को न देनी चाहिए। (५)विश्राम-घड़ी का उपयोग उन्हें विश्राम-घड़ी की ही तरह करना चाहिए।

इन बातों के अलावे कार्य-क्षमता को ठीक रखने के लिए जरूरी है कि काम में लाए जानेवाले यंत्र भी मजदूरों को अच्छे लगनेवाले हों तथा यंत्रों की गति उनकी संचालन-शक्ति के मुताबिक हो।

—:o:—

[प्रो॰ श्री प्रहलाद प्रधान, एम॰ ए॰, शान्तिनिकेतन, बगाल]

नियम सर्वत्र प्राय दो प्रकार के पाये जाते हैं, साधारण और विशेष। चित्र कला के कुछ साधारण नियम हैं, साथ-साथ अजन्ता, कलिङ्ग आदि देश विशेषों को लेकर कुछ विशेष नियम भी। सगीत में भी साधारण नियमों के साथ दक्षिणी, ओजिशी, मराठी आदि विशेष प्रकार के नियम भी हैं। इसी प्रकार नाट्यकला में भी दोनों प्रकार के नियमों के उल्लेख पाए जाते हैं। नाट्य शास्त्र के अनुसार इनके नाम हैं—वृत्ति और प्रवृत्ति। वृत्ति और प्रवृत्ति का घनिष्ठ सम्बंध है। इसलिए वृत्ति का विवेचन करने के बाद, प्रवृत्ति की आलोचना समीचीन होगी।

वृत्ति की व्याख्या करते हुए धारेश्वर भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में कहा है —

या विकासेऽथ विक्षेपे सकोचे विस्तरे तथा
चेतसो वर्त्तयित्री स्यात्सा वृत्ति ।

चित्त के विकास, विक्षेप, सकोच या विस्तार में प्रवृत्ति करानेवाली वृत्ति होती है। इसी की व्याख्या करते हुए टीकाकार रामसिंह ने कहा है —'वृत्तिर्वर्त्तन रसविषयो व्यापार ।' वृत्ति का अर्थ वर्त्तन अर्थात् रस-विषयक व्यापार है। नाट्यदर्पणकार रामच द्र और गुणचन्द्र ने भी कहा है—'पुरुषार्थ-साधको विचित्रो व्यापारो वृत्ति ।' पुरुषार्थ के साधक विचित्र व्यापारविशेष, वृत्ति हैं। और नाट्य म सब व्यापार, रस-भाव और अभिनय से भिन्न होते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के मत से य व्यापारविशेष नायकादिगत होते हैं। पर वृत्त्यानुप्रास के व्याख्या-प्रसग में मम्मट ने वृत्ति

को वर्णगत बतलाया है। 'वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापारः।' (काव्यप्रकाश, नवम उल्लासः. सू १०५)। किन्तु, राजशेखर के मत से विलास-विन्यास क्रम-वृत्ति है। (काव्यमीमांसा, अ० ३.)

वृत्ति के प्रधानतः चार प्रभेद होते हैं। यथा—भारती, सत्त्वती, कैशिकी और आरभटी। किसी-किसी के मत से और दो प्रकार के अधिक प्रभेद होते हैं। यथा, मध्यम आरभटी और मध्यम कैशिकी। (सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद २) इस वृत्ति को साहित्यदर्पणकार ने 'सर्व-नाट्य की मातृका' और नाट्यदर्पणकार ने 'नाट्यमाता' कहा है। स्वयं भरत मुनि ने भी कहा है कि इसी के ऊपर नाट्य प्रतिष्ठित है:—

भारती सात्त्वती चैव कैशिक्यारभटी तथा,
चतस्रो वृत्तयो ह्येताः यासु नाट्यं प्रतिष्ठितम्। नाट्यशास्त्र ६।२६.।

इन वृत्तियों की उत्पत्ति के प्रसंग में नाट्यशास्त्र में एक मनोरञ्जक कहानी दी गई है। भगवान् अच्युत जब प्रलय-काल में समस्त जगत् को जलप्लावित तथा अपनी माया से सब लोगों का संहार कर नाग-पर्यङ्क पर सोए थे, तब वीर्यमदोन्मत्त असुर मधु और कैटभ ने युद्ध के लिए उनको ललकारा और खूब गरजकर नाना परुष वाक्यों से उनको गालियाँ दीं। यह सुनकर ब्रह्मा विचलित होकर बोले कि सिर्फ वाक्यों से "क्यों यह भारती वृत्ति हो रही है, इनका निधन क्यों नहीं करते?" तब भगवान बोले कि "प्रयोजन से मैं ने यह भारती वृत्ति बनाई है। बोलनेवालों की वाक्य-बहुल भारती वृत्ति होगी। मैं आज इनका निधन करूँगा।" यह कहकर वे जब शुद्ध अविकृत अङ्गों और अगहारों से युद्ध करने लगे तो उनके पादन्यासवश भूमि के अतिभार से भारती वृत्ति हुई, शार्ङ्ग धनुष के सत्त्वाधिक से सात्त्वती, शिखापाश (केश) के बन्धन से कैशिकी और संरम्भावेग-बहुल नाना चारियों से आरभटी वृत्ति की उत्पत्ति हुई। उसके बाद ब्रह्मा ने सभी क्रियाओं की अन्वर्थ वाक्यो से पूजा की और जब वे मारे गए तो कहा कि "विचित्र विशद सुललित अङ्गहारो से इन दानवों का नाश किया गया है, इसलिए इस युद्ध-समय-क्रम का मामान्यय होगा।" इसके बाद उन्होंने ये वृत्तियाँ देवताओं को दीं और फिर उनका नाट्य में प्रयोग हुआ। ब्रह्मा की आज्ञा से भरत मुनि ने इनका काव्यक्रिया में भी उपयोग किया। और भी कहा गया है कि ऋग्वेद से भारती वृत्ति, यजुर्वेद से सात्त्वती, सामवेद से कैशिकी और अथर्ववेद से आरभटी की उत्पत्ति हुई। (नाट्य-शास्त्र अध्याय २०)।

---

१. चतस्रो वृत्तयो ह्येताः सर्वनाट्यस्य मातरः। ६ १४६

२. भारती सात्त्वती कैशिक्यारभटी च वृत्तयः
रसभावाभिनयगाश्चतस्रो नाट्यमातरः। तृतीय विवेक। १०३

भाव-प्रकाश में इसके अलावा और दो परम्पराओं के उल्लेख हैं। कितनों के मत हैं कि भरत-प्रोक्त होने के कारण ही भारती हुई है। दूसरों का कहना है कि नाट्य देखने के समय ब्रह्मा के चार मुखों से चार वृत्तियों की उत्पत्ति हुई। (भावप्रकाश पृ० १२।)

पहले कहा गया है कि ४ वृत्तियाँ होती हैं। यथा—भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। इनकी व्याख्या करते हुए नाट्यशास्त्र में इनके लक्षण इस प्रकार दिए गए हैं—

> या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या
> स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
> स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता
> सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः। २२।२५

जिसमें वाक् प्रधान होती है, जो पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त की जाती है, स्त्री-वर्जित होती है और संस्कृत वाक्यों से युक्त, वह इसी नामवाले भरतों से प्रयुक्त होने के कारण भारती वृत्ति कहलाती है।

> या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता
> न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
> हर्षोत्कटा संहृतशोकभावा
> सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः। २०।३७

सात्वती वृत्ति सात्वत (सत्त्व) गुण से युक्त होती है, तथा न्याय और वृत्त से। इसमें हर्ष उत्कट रूप में रहता है और शोक का अभाव होता है।

> या श्लक्ष्णा नेपथ्य विशेषचित्रा
> स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता।
> कामोपभोगप्रभवोपचारा
> सा कैशिकी वृत्तिमुदाहरन्ति। २०।४६

कैशिकी वृत्ति की विशेषता यह है कि इसमें ललित नेपथ्य होता है, स्त्रियाँ होती हैं और नृत्त, गीत, कामोपभोग आदि बहुत होते हैं।

> प्रस्तावपातप्लुतलङ्घितानि
> चान्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्
> चित्राणि युद्धानि च यत्र नित्यं
> तां तादृशीमारभटीं वदन्ति। २०।५६

आरभटी वृत्ति में प्रस्ताव, पात, प्लुत, लंघित, मायाकृत इन्द्रजाल, विचित्र युक्तियाँ इत्यादि होती हैं।

किन्तु, शृङ्गारतिलक में इन वृत्तियों का क्रम अन्य प्रकार है; यथा--कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती और भारती, और इनके लक्षण में भी कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिनसे वृत्तियों का प्रवृत्तियो और रीतियों के साथ सम्बन्ध और स्पष्ट हो जाता है। इस विषय की चर्चा आगे आयगी। रुद्रभट्ट ने कहा है—

> या नृत्यगीतप्रमदोपभोगवेषाङ्ग संकीर्त्तनचारुबन्धा
> माधुर्ययुक्ताल्पसमासरम्या वाणी स्मृतासाविह कैशिकीति। शृङ्गारतिलक, ३।३८

कैशिकी वह वाणी है जिसमें नृत्य, गीत, प्रमदा, उपभोग, वेष, अङ्ग-वर्णनों का चारु बन्ध रहता है और जो माधुर्य गुण युक्त होती है और विरल समासो से रम्य।

> या चित्र-युद्ध भ्रम शस्त्रपात मायेन्द्रजालप्लुति लघिताढ्या
> ओजस्विगुर्वक्षरबन्धगाढा ज्ञेया बुधैः सारभटीति वृत्तिः। ३। ४२

आरभटी वृत्ति में चित्र (विचित्र युक्तियाँ), युद्ध, भ्रम, शस्त्रपात, माया, इन्द्रजाल, प्लुति, लंघित आदि बहुलमाला में होते हैं और इसमें ओजगुण और गाढ़ अक्षरबंध भी होते हैं।

> हर्षप्रधानाधिकसत्त्ववृत्तिस्त्यागोत्तरोदार वचोमनोज्ञा
> आश्चर्यसंपत्सुभगा च या स्यात्सा सात्त्वती नाम मतात्र वृत्तिः। ३।४२

सात्त्वती वृत्ति हर्षप्रधान होती है और सत्त्व (साहस) उसमें अधिक मात्रा में रहता है। वह त्याग और उदार वाणी से मनोज्ञ होती है आश्चर्य (विस्मयकर व्यापारों) से सुन्दर। और भी इसमें अर्थसंपत्ति अति गूढ़ नहीं होती है और श्रव्य शब्दों से मनोरम होती है।

> प्रधानपुरुषप्राया सद्वक्रोक्तिनिरन्तरा
> भारतीयं भवेद्वृत्तिः.........

भारती वृत्ति प्रायः पुरुषप्रधान होती है और सत् (संस्कृत ?) वक्रोक्तियों से युक्त।

इनमें विशेषकर लक्ष्य करने की बात यह है कि इन लक्षणों से वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली और लाटी रीतियों का कितना सादृश्य है।

यह तो हुई वृत्ति। किन्तु, इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है प्रवृत्ति। इस प्रवृत्ति से प्राचीन भारत के देश-विशेषों के वेष, भाषा, आचार आदि का कुछ आभास मिलता है। नाट्यशास्त्र के

षष्ठ अध्याय में वृत्ति के बाद प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है। इसलिए इसकी युक्तियुक्तता प्रतिपादन करते हुए विवृति टीका मे अभिनव गुप्त ने कहा है —

वे वृत्तियाँ देश भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। इसलिए वृत्ति के बाद प्रवृत्ति दी गई है। नाट्यशास्त्र के त्रयोदश अध्याय में स्वयं भरत मुनि भी कहते हैं—"प्रवृत्तिरिति कस्मात्? उच्यते। पृथिव्यां नाना देश वेषभाषाचारा वार्त्ता ख्यापयतीति प्रवृत्तिः, प्रवृत्तिश्च निवेदने।" प्रवृत्ति क्यों कहलाती है? पृथिवी में नाना देशों के वेष, भाषा और आचार रूपक वार्त्ताओं को प्रख्यात करती है, इसलिए प्रवृत्ति कहलाती है। प्रवृत्ति का अर्थ है निवेदन अर्थात् नि शेषेण वेदन या ज्ञान। किन्तु, अभिनवगुप्त की विवृति टीका की आलोचना से मालूम होता है कि 'नानादेशवेषभाषाचारवार्त्ता' पाठ था। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि देश-विशेषगत वेष, भाषा और समाचारों के वैचित्र्य की प्रसिद्धि प्रवृत्ति कहलाती है। और भी उन्होंने बताया है कि वेषादि नेपथ्य, भाषा, आचार या लोकशास्त्र व्यवहार और वार्त्ता या कृषि पशुपालनादि जीविका को, जो प्रख्यात अर्थात् पृथिव्यामि सर्वलोक और विद्याओं में प्रसिद्ध करती है, वही प्रवृत्ति है। राजशेखर ने भी कहा है—वेषविन्यासक्रम है प्रवृत्ति, विलास विन्यासक्रम है वृत्ति और वचनविन्यासक्रम है रीति। * विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी है—

> वेषभाषानुकरणं तथाचारप्रवर्तनम्
> प्रवृत्तिरिति विख्याता वृत्तीनामाश्रयास्तु ता। ३। २०। ५९

वेष और भाषादि का अनुकरण तथा आचारों का प्रवर्त्तन प्रवृत्ति कहलाती है और वह वृत्तियों का आश्रय है। शारदातनय के भावप्रकाशन में भी आता है—

> देशभाषाक्रियाभेदलक्षणा स्यु प्रवृत्तय
> लोकादेवावगम्यैता यथौचित्य प्रयोजयेत्। पृ० १२

नाना देशों की भाषा और क्रियाओं के भेद का नाम प्रवृत्ति है। लोक व्यवहार से इनको जानकर यथोचित प्रयोग करना चाहिए। इससे यह भी सूचित होता है कि प्रवृत्ति के लिए लोक-व्यवहार के आश्रय लेने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

शारदातनय ने कहा भी है—

> देश्या प्रवृत्तयस्तत्तद्देश्यैर्ज्ञेया विचक्षणै,
> क्रियाभेदा न शक्यन्ते ज्ञातु वक्तु च केनचित्। पृ० २

---

* वेष विन्यास क्रम प्रवृत्ति, विलास विन्यासक्रमो वृत्ति, वचन विन्यासक्रमो रीति। काव्य मीमांसा—अ ३

देश्य प्रवृत्तियों का, उन-उन देशों के विचक्षण पण्डितों के द्वारा निर्धारण किया जा सकता है; किन्तु, क्रियाओं के भेदों को न तो कोई जान सकता है और न बोल सकता है।

इसलिए देश के अनुसार प्रवृत्ति चार प्रकारों में विभक्त की गई है। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने कहा है:—

आवन्ती दाक्षिणात्या च तथा चैवोड्रमागधी
पाञ्चालीमध्यमा चेति विज्ञेयास्तु प्रवृत्तयः। ६। २६
चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोक्तृभिः
आवन्ती दाक्षिणात्या च पाञ्चाली चोड्रमागधी। १३।३७.

नाट्य प्रयोक्ताओं ने चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ बताई हैं—आवन्ती, दाक्षिणात्या, उड्रमागधी, पाञ्चालीमध्यमा और पाञ्चाली। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन सब प्रवृत्तियों का नामकरण हुआ है एक-एक देश को लेकर; वह भी सिर्फ चार, केवल चार देशों को लेकर।

इन चार नामों में 'दाक्षिणात्या' एक साधारण नाम है, किसी देश-विशेष का नहीं। किन्तु, अन्य तीन नाम—आवन्ती, उड्रमागधी और पाञ्चलीमध्यमा—एक विशेष देश के नाम को लेकर, यथा—अवन्ति, उड्र-मगध और पञ्चाल। पाञ्चाली-मध्यमा में मध्यमा सम्भवतः मध्यदेश के 'मध्य' को लेकर है, जो आज उत्तर भारत के नाम से प्रसिद्ध है। इससे हमलोग अनुमान कर सकते हैं कि प्राचीन भारत में चार प्रकार के नृत्य प्रचलित थे। अवन्ति, उड्र मगध और पञ्चाल एक विशेष नाट्य-परम्परा के केन्द्र थे और उनके प्रभाव से पार्श्ववर्त्ती देश प्रभावित होते थे। दक्षिणापथ में कोई विशेष देश शायद केन्द्र नहीं था और हो भी तो उत्तरभारतीयों को उसकी कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी, फिर भी उन्होंने लक्ष्य किया था कि वहाँ एक विशेष प्रकार को नाट्य-परम्परा प्रचलित थी। सम्भवतः इसीलिए भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में 'दक्षिणात्या' कहकर एक साधारण नाम की आख्या दी है। किन्तु, उत्तरापथ में तीन प्रकार के नृत्य प्रचलित थे।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इन चार प्रकार के नाट्यों के भीतर क्या कोई समानता नहीं थी, और यदि थी तो फिर चार भेद क्यों? और फिर इतने देशों के रहते हुए सिर्फ चार क्यों? इस प्रश्न पर विचार करते हुए भरत मुनि ने कहा है—"यथा पृथिव्यां नाना देशाः सन्ति कथमासां चतुर्विधत्व-मुपपन्नं, समानलक्षणश्चासां प्रयोगः? उच्यते—तत्त् सत्यं, यासां समानलक्षणप्रयोगः। किन्तु नाना देशभाषाचारो लोक इति कृत्वा लोकानुमतेन वृत्तिसंश्रितस्य नाट्यस्य मया चतुर्विधत्वमभिहितं भारती आरभटी सात्त्वती कैशिको चेति। वृत्तिसंश्रितैश्च प्रयोगैरभिहताम देशाः, यतः प्रवृत्तिचतुष्टयमभि निर्वृत्तं प्रयोगश्चोत्पादितः। (नाट्यशास्त्र अ० १२।३७)।" पृथिवी में नाना देश हैं, फिर ये प्रवृत्तियाँ सिर्फ चार ही कैसे हुईं और इनके प्रयोग में क्या कोई लक्षणसाम्य नहीं है? अवश्य इनके

प्रयोग में लगनग साम्य है। किन्तु, लोगों के नाना देशों में विभिन्न भाषाएँ और विविध आचार होते हैं। इसलिए वृत्तिसंश्रित नाट्य के चार प्रकार के भेद कहे गए हैं, भारती, आरभटी, सात्वती और कैशिकी। वृत्तिसंश्रित प्रयोगों से कुछ देश अभिमत हैं, कुछ देशों की विशेष वृत्ति के प्रति अभिरुचि होती है, इसलिए प्रवृत्ति भी चार प्रकार की होती है और उनके उन देशों में प्रयोग भी। जिस प्रकार किसी देश विशेष के लोगों की साधारणतया किसी विशेष प्रकार की पदसंघटना या रीति के प्रति विशेष अभिरुचि होने के कारण, व्यक्ति विशेष में व्यतिक्रम पाए जाने पर भी, देश के अनुसार रीति के चार प्रकार के विभाग किये गये हैं—यथा वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी, उसी प्रकार देशप्राधान्य के अनुसार नाट्य प्रवृत्तियों के भी चार प्रकार के विभाग किये गये हैं।

प्रवृत्ति के इन चार नामों, आवन्ती, दाक्षिणात्या, पांचाली और ओड्रमागधी को लक्ष्य करने से प्रतीत होता है कि अवन्ति देश भारत के पश्चिम अंचल में, दाक्षिणात्य दक्षिण में, पांचाल उत्तर में और उड़ मगध पूर्व अंचल में अवस्थित है। प्रवृत्ति और वृत्ति के सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए विवृति टीका में आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा भी है कि लोक (देश) के चार विभाग हैं। दक्षिणा पथ, पूर्व देश, पश्चिम देश और उत्तर भूमि। दाक्षिणात्य देशों में शृङ्गार के प्राचुर्य के कारण कैशिकी वृत्ति होती है, अवन्ती नाम से संगृहीत देशों में शृङ्गार का प्राचुर्य होते हुए भी धर्मप्राधान्य होने के कारण सात्वती वृत्ति, प्राच्य देशों में घटाटोप और वाक्याडम्बर के प्राधान्य होने के कारण भारती आरभटी वृत्ति, और उत्तर भूमि में पांचाली वृत्ति ? भारती आरभटी के योग होने पर भी कैशिकी का सामान्य प्रयोग होता है। किन्तु, नाट्यशास्त्र में प्रवृत्ति के लिए वृत्ति विभाग अन्य प्रकार का पाया जाता है। उसमें कहा गया है कि दाक्षिणात्य देशों में नृत्त, गीत और वाद्य के बहुल प्रयोग होने के कारण कैशिकी वृत्ति, अवन्ति में सात्वती कैशिकी, ओड्रमागधी के लिए कुछ कहा नहीं है, और पञ्चाल में सात्वती आरभटी वृत्ति प्रयुक्त होती है। अत नाट्यशास्त्र और विवृति टीका, दोनों की तुलना करने से जान पड़ता है कि नाट्यशास्त्र में ओड्रमागधी के लिए 'भारती-आरभटी' वृत्ति का पाठ खंडित है और टीका में उत्तर भूमि पञ्चाल के लिए 'भारती आरभटी' की जगह पर 'सात्वती आरभटी' पाठ होना उचित जान पड़ता है। कारण, नाट्यशास्त्र के मूल में उसी प्रकार का पाठ है और ओड्रमागधी और पाञ्चाली उभय वृत्तियों के लिए 'भारती-आरभटी' होना ठीक भी नहीं है।

वृत्ति की चर्चा करते हुए यह सूचित किया गया है कि इनके साथ रीतियों का भी सम्बन्ध है। प्रवृत्ति के समान रीतियों के नाम भी देश-विशेषों के नामों पर प्रतिष्ठित हैं। इससे यह भी सूचित होता है कि वृत्ति, प्रवृत्ति, रीति और देश का कोई न कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन सब को एक कोष्ठक में देने से सम्भवत तुलना करने में कुछ आसानी होगी।

देश विभाग (अभिनव)	प्रवृत्ति (नाट्य शास्त्र) (काव्यमीमांसा)	वृत्ति १ भरत	वृत्ति २ अभिनव	रीति (साहित्यशास्त्र)
दक्षिणापथ	दाक्षिणात्या	कैशिकी	कैशिकी	वैदर्भी
पश्चिमदेश	आवन्ती	सात्त्वती-कैशिकी	सात्त्वती	लाटी
पूर्वदेश या प्राच्य	औड्र-मागधी	?	भारती-आरभटी	गौड़ी
उत्तरभूमि	पाञ्चाली	सात्त्वती-आरभटी	भारती-आरभटी ?? (सात्त्वती)	पाञ्चाली

काव्यमीमांसा * में भी दक्षिण से उत्तर दिशा में योजन-सहस्र को चक्रवर्त्ति-क्षेत्र कहकर उसे प्राची दिग्, पञ्चाल, अवन्ति और दक्षिण चार दिशा विभागों में विभक्तकर पूर्वोक्त वृत्ति, प्रवृत्ति और रीतियों का उल्लेख किया है। ये सब नाट्यशास्त्र के अनुकूल हैं। सिर्फ इसमें अन्तर यह है कि औड्रमागधी प्रवृत्ति के लिए केवल भारती वृत्ति आती है और अवन्ति या पश्चिम देश के लिए किसी रीति का उल्लेख नहीं है। उनके मत से रीतियाँ सिर्फ तीन हैं और वे लाटी रीति को कोई विशेष रीति नहीं मानते हैं। किन्तु, वृत्ति और प्रवृत्तियों के चार प्रकार होने के कारण-स्वरूप नाट्यशास्त्र के अनुरूप युक्ति दिखाई गई है।

इस कोष्ठक को देखने से मालूम होता है कि प्रवृत्ति 'पाञ्चाली' के लिए रीति भी 'पाञ्चाली' आई है। इसमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है। पञ्चाल एक देशविशेष का नाम है और बहुत दिन तक उत्तर भूमि की सभ्यता का केन्द्र रहा है। वैदिक युग की सभ्यता में कुरु-पाञ्चाल की बहुत देन थी। किन्तु, अन्य नामों में कुछ परिवर्त्तन पाये जाते हैं। साधारण नाम

---

१. लोकोहि दक्षिणापथः पूर्वदेशः पश्चिमदेशः उत्तरभूमिरिति चतुर्धा विभागोऽस्ति। न चैष निर्बन्धनः सादृश्यसम्भवात्। तथाहि दाक्षिणात्येषु शृङ्गारप्रचुरतया कैशिक्याः सम्भवः। पश्चिमे ष्वस्यैव संगृहीतेषु सापि सति धर्मप्राधान्य इति सात्त्वत्यस्ति। प्राच्येषु तु वटाटोपवाक्याडम्बरप्राधान्यो भारत्यारभटीयोगः। उत्तरभूमिः प्राधान्यात्तु भारत्यारभटीयोगेऽपि कैशिकीलेशात्तु प्रवेशसहिष्णवो..... इत्येवं चित्तवृत्तिभेदसादृश्याल्लोको यश्चतुर्धा विभागः स एवास्मिन्नुक्तः। विवृति० खड २, पृष्ठ ३०

२. नाट्यशास्त्र अ० १३।३८, ४४, ४८, ५१.

* द्रष्टव्य—काव्यमीमांसा, अध्याय तृतीय।

पर प्रतिष्ठित 'दाक्षिणात्या' प्रवृत्ति, परिवर्त्तित होकर, रीति 'वैदर्भी' में परिणत हुई। 'वैदर्भी' देशविशेष विदर्भ के ऊपर प्रतिष्ठित है जो और सकुचित होकर 'वच्छोमी' या 'वात्सगुल्मी' मे पर्यवसित हुई। वत्सगुल्म विदर्भ के एक नगर का नाम है। वैदर्भी नामकरण सम्भवत' लाटी गौडी या पाञ्चाली के समान, देशविशेष के अनुसार नामकरण के साथ सामजस्य रखने के लिए किया गया होगा। अथवा दाक्षिणात्य सभ्यता कालक्रम में विदर्भ में केन्द्रित हो गई होगी। इस-लिए भी वैदर्भी नामकरण हुआ होगा। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में विदर्भ को दाक्षिणात्य देशों में गणना भी की है। पश्चिम भारत की सभ्यता, अवन्ति से केन्द्रच्युत होकर शायद लाट में केन्द्रित हो गई थी। शक-काल के इतिहास की आलोचना से वैसी ही जान पड़ती है। कितनों ने तो लाटीया रीति को रीति ही नहीं माना। उन्होंने इसके लिए कुछ कारण दिखाये हैं। शायद नूतन नाम या नई जगह की प्रधानता स्वीकार करने के लिए वे प्रस्तुत नहीं थे।

किन्तु, ओड्र मागधी' 'गौडी' में किस प्रकार परिवर्त्तित हो गई? दोनों पर्यायवाचक हैं क्या? 'गौड' शब्द का क्या अर्थ है, पहले कुछ विचार किया जाय? आजकल एक धारणा बद्धमूल हो गई है कि 'गौड' शब्द 'वङ्ग' के पर्याय रूप में रूढ है। किन्तु, 'गौड़' शब्द शायद सब समय 'वङ्ग' अर्थ में नहीं आता था। हितोपदेश के मित्रलाभ में आता है—'अस्ति गौडदेशे कोशाम्बी नाम नगरी।' गौड देश में कोशाम्बी नाम की एक नगरी थी। कितने ही विद्वानों ने वङ्ग के राजशाही जिले के 'कुसुम्ब' या बगुडा जिले के 'कुसुम्बि' में 'कोशाम्बी' की खोज की है, किन्तु, यह कहाँतक युक्तियुक्त है? कौशाम्बी वत्स देश की राजधानी थी। यही प्रसिद्ध है। वत्स का तो नामान्तर गौड़ नहीं है? गौड़ एक नहीं था। पञ्च गौड तो प्रसिद्ध हैं। वे पाँच हैं—

सारस्वता कान्यकुब्जा गौडमैथिलकोत्कला।
पञ्च गौडाः समाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिन ।

ये पाँचों विन्ध्य के उत्तर में थे। उत्कल से विवक्षित उड्र या आधुनिक उड़ीसा के उत्तर अंचल को लिया जायगा तो, उत्कल भी विन्ध्य के उत्तर पड़ जायगा। कारण, उड़ीसा के उत्तरी गड़जातों की पर्वत श्रेणी, विन्ध्य पर्वतमाला का पूर्व समुद्रव्यापी सुदूर विस्तार है। पजाब की सरस्वती नदी के तीरवर्त्ती 'सारस्वत' से शुरू किया जाय और इन पचगौड़ों को एक के बाद एक लिया जाय, तो इस क्रम में बाधा नहीं पड़ेगी और गौड़ करीब-करीब वत्स देश में पडेगा।

और भी मुरारि कवि के "अनर्घराघव" नाटक में गौड़ की राजधानी के रूप मे चम्पा का उल्लेख पाया जाता है—

देवि! इय पुरस्ततोऽपि पुरस्ताच्चम्पा नाम गौडाना राजधानी। अनर्घ ७।१२४

अग की राजधानी चम्पा प्रसिद्ध है। इससे मालूम होता है अग भी गौड़ कहलाता था।

उसी प्रकार काव्यमीमांसा की आलोचना से मालूम होता है कि औड्रमागधी और 'गौड़ी' पर्यायवाचक शब्द हैं। काव्यमीमांसा के तृतीय अध्याय में काव्य-पुरुष की उत्पत्ति-प्रसंग में राजशेखर ने कहा है कि सरस्वती के 'काव्यपुरुष' नाम के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह काव्यपुरुष समग्र भारतीय वाङ्मय के मूर्त्तिस्वरूप थे। वह कवि शुक्र के आश्रम में पालित होते थे। एक दिन स्वर्ग में ब्रह्मार्षयों और देवताओं में विवाद होने लगा तो स्वयंभू ब्रह्मा ने मध्यस्थता करने के लिए सरस्वती को वहाँ बुलाया। वहाँ जाने के समय, काव्यपुरुष भी सरस्वती के पीछे जब जाने लगे तो सरस्वती उनको आने से निषेध कर अकेली चली गईं। इसलिए काव्य-पुरुष क्रुद्ध होकर रोते-रोते घर से भागे जा रहे थे। यह देखकर गौरी ने उनको सान्त्वना देने और उनका मनोविनोद न करने के लिए 'औमेयी साहित्यवधू' की सृष्टि करके कहा कि "देखो यह काव्य-पुरुष तुम्हारा धर्मपति है। वह रूठकर भागा जाता है। उसके पीछे जाकर उसे लौटा ले आओ।" गौरी ने इन दोनों की स्तुतिकर काव्य-सृष्टि के लिए ऋषियों से भी कहा।

उसके बाद वे सब पहले पूर्व दिशा में गए, जहाँ अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, ब्रह्म, पुण्ड्र आदि जनपद थे। वहाँ काव्यपुरुष के अनुवर्त्तन के लिए औमेयी ने जो वेष ग्रहण किया, उसीका वहाँ की स्त्रियों ने किया। उसका नाम हुआ औड्रमागधी प्रवृत्ति। मुनियों ने उस प्रवृत्ति की इस प्रकार स्तुति की—

आर्द्रार्द्र चन्दन कुचार्पित सूत्रहार:
सीमन्त चुम्बि सिचयःस्फुटबाहुमूलः।
दूर्वाग्रकाण्डरुचिरास्त्वगुरूपभोगा-
दौड़ाङ्गनासु चिरमेष चकास्तु वेष ॥

आर्द्र चन्दन के द्वारा चर्चित कुच, उनके बीच में अर्पित सूत्रहार, सीमन्त चुम्बी वस्त्र, अनावृत बाहुमूल—इस प्रकार के वेष अगुरु के उपभोग से नव दूर्वादल सुन्दर गौड़ाङ्गनाओं में सुशोभित हों। उसी प्रकार सारस्वतेय काव्यपुरुष ने भी जो वेष धारण किया था, उसी का वहाँ के पुरुषों ने अनुकरण किया। (किन्तु वर्णन नहीं है।) उसका भी नाम औड्रमागधी प्रवृत्ति हुआ। उसके बाद औमेयी ने जो नृत्त-वाद्यादि किया, उसका नाम हुआ भारती वृत्ति। उस वेष से भी काव्य-पुरुष के वशीभूत नहीं होने से औमेयी ने जो समास-अनुप्रास-युक्त योगवृत्ति-परम्परा-गर्भक वाक्य कहा, वह हुई गौडीया रीति। इसी प्रकार से राजशेखर ने पञ्चाल, अवन्ती और दाक्षिणात्य देशों का एक-एक कर वर्णन किया है।

प्रवृत्तियों के अन्य नामों को देखने से मालूम होता है कि उनमें एक-एक देश का नाम है; सिर्फ औड्रमागधी में दो देशों के नाम हैं। इससे मालूम होता है कि औड्रमागधी-नाट्यकला का केन्द्र वहाँ था जहाँ दोनों देश मिलते थे; अर्थात् उड्र के उत्तर अंचल में और मगध के दक्षिण अंचल

में यह नाट्यकला प्रचलित थी। टीकाकार अभिनव गुप्त ने उड्र-मगध का सीमा निर्देश करते हुए कहा भी है—"तत्र प्राग्देशानां सीमात्वेन दक्षिणत उड्रा समुद्रनिकटे, उत्तरतो मगध। तदुभयवर्तित्वा-दौड्रमागधी।"* प्राच्य देश के सीमास्वरूप दक्षिण में समुद्र के निकट उड्रदेश और उत्तर में मगध देश है। उन दोनों देशों के बीच में होने के कारण इसका नाम औड्र-मागधी। इसी प्रान्त का नाम परवर्त्ती काल में सम्भवत गौड़ हो गया। हर्षचरित के गौड़ाधिपति शशाङ्क शायद इसी अंचल के राजा थे। उन दिनों उड्र सभ्यता दक्षिणाभिमुखी हो गई थी और उड़ीसा में कलिङ्ग सभ्यता का प्रभाव फैलने लगा था। इसलिए मञ्जुश्री-मूलकल्प में गौड़ से अलग कलिङ्ग—उद्र (उग्र) का उल्लेख आता है। नाट्यशास्त्र से मालूम होता है कि नाट्यशास्त्र के युग मे कलिङ्ग में औड्र संस्कृति का भी प्रभाव था, साथ साथ दाक्षिणात्य संस्कृति का भी। इसलिए कलिङ्ग का औड्र-मागधी और दाक्षिणात्या दोनों प्रवृत्तियों में अन्तर्भाव किया गया है। † किन्तु, पीछे कलिङ्ग की राजशक्ति बढने लगी और उड्र तक आत्मसात् करती गई। और भी मगध के इतिहास की आलोचना से मालूम होता है कि वहाँ की साम्राज्य-शक्ति कुछ दुर्बल पड़ गई थी और कान्यकुब्जों की साम्राज्यशक्ति बढ रही थी। ऐसे मौके पर कोई भी अधिकारलिप्सु अपनी शक्ति जमाने के लिए कोशिश करेगा ही और शशाङ्क ने गौड़ साम्राज्य स्थापित किया भी। वह सम्भवत था उड्र मगध के बीच आधुनिक बङ्गला के दक्षिण पश्चिम प्रान्त में, अधिकतर प्राचीन उड्र की उत्तरी सीमा को लेकर।

उस प्रान्त में आज भी प्राचीन भारतीय नाट्यकला की सम्भवत औड्र-मागधी प्रवृत्ति या परम्परा का ध्वंसावशेष पाया जाता है। उसी प्रान्त में मयूरभंज, सराईकेला इत्यादि अवस्थित हैं, जहाँ छउ नाच की परम्परा चली आती है, जिसको औड्र-मागधी नाट्यकला का अवशेष कहा जा सकता है। यह नाच अन्यान्य भारतीय नृत्यों से बहुत कुछ पृथक है। यह नाच थोड़ा-बहुत छत्तीस गढ़ तक पाया जाता है। सम्भवत ताम्रलिप्त पोताश्रय उन दिनों प्राचीन उड्र में ही पड़ता था और वहाँ से जो स्थलमार्ग झाड़खण्ड होकर मध्य भारत की तरफ चला जाता था, उसी के दोनों पार्श्व में उड्र था और मगध की दक्षिणी सीमा को स्पर्श करता था। कालक्रम से उसी अंचल का नाम 'गौड़' पड़ गया, जहाँ शशाङ्क ने साम्राज्य स्थापित किया। उड़ीसा के सम्बलपुर, मध्य प्रदेश के छत्तीस गढ प्रान्त में अहीरों के बराबर एक जाति भी पायी जाती है जिसका नाम 'गौड़' है। और भी आश्चर्य की बात यह है कि सबलपुर प्रान्त के 'आरण्यक' और 'उत्कलीय' ब्राह्मण के समान 'गौड़' जाति के भी दो विभाग हैं—'झरिया' और 'मगधा'। झरिया शब्द झाड़' से हुआ है जिसका अर्थ जंगल या अरण्य है। (तुलनीय आरण्यक)। 'मगधा' शब्द सम्भवत मगध से कुछ सम्बन्ध रखता है, जो अभी तक स्पष्ट

* नाट्यशास्त्र टीका (G O S) पृ० २१०,

† वही

नहीं हुआ है। विशेष कर इसी जाति में 'छउ' नाच का ध्वंस रूप अभी तक चला आता है। रायगढ़ रियासत के सूरजगढ़ बाजार में पौष महीने में गौड़ लोग हजारों की संख्या में आते हैं और 'गौड़नाच' नाचते हैं, जिसका ताल 'छउ' नाच के अन्तिम ताल के बराबर है।

शक्तिसंगम तन्त्र से यही प्रतीत भी होता है कि उड्र ही गौड़ था। उसमें है—

वङ्गदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे
गौडदेशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः।

गदेश से लेकर 'भुवनेश' तक गौड़ देश कहलाता है। और वहाँ के लोग सर्व विद्याओं में विशारद होते हैं। यहाँ भुवनेश का उड़ीसा के भुवनेश्वर से मतलब है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि सब समय वंग और गौड़ एकार्थक नहीं हैं। इसलिए वात्स्यायन-कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने भी कहा है—"कलिङ्गा गौड़विषयाद् दक्षिणेन।" कलिङ्ग देश गौड़विषय के दक्षिण में है, अर्थात् कलिङ्ग के उत्तर गौड़ देश पड़ता है। इसलिए वेताल पंचविंशति, भविष्यपुराण, मंजुश्री मूल कल्प में एक परम्परा पाई जाती है कि गौड़ देश में 'वर्धन' या 'वर्धमान' एक नगर था। वंग से गौड़ का पृथक होने के कारण ही पालवंश आदि के कुछ वंगाधिपतिओं ने गौड़ को विजय कर गौड़ाधिपति की उपाधि ली, जिस प्रकार उड़ीसा के गजपतियों की 'नवकोटि कर्णाटकलवर्गेश्वर' उपाधि है। गजपति राजा भी गौड़ेश्वर कहलाते थे। किन्तु, कालान्तर में काल की कुटिल भ्रूकुटि से या गौड़ के अपने गौरव के कारण, गंगा के उत्तर प्रान्त वारेन्द्र, पश्चिम वंग तक 'गौड़' कहलाने लगा था। किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं थी। कर्णसुवर्णक वासी जयनाग देव के वषघोष वाट (या मल्लिय) ताम्रशासन से भी यही समर्थित होता है। ॐ उसमें कहा गया है कि उनके राज्य में 'औदुम्बरिक' एक विषय था जिसमें कुछ विद्वानों के मत से आधुनिक वीरभूमि जिला भी अंशतः अन्तर्भुक्त था और उस विषय की अवस्थिति थी गौड़ देश के उत्तर-पश्चिम में। इससे भी मालूम पड़ता है कि प्राचीन उड्र की तरफ ही गौड़ देश था।

सरस्वतीकण्ठाभरण की आलोचना से भी इसी प्रकार की सूचना मिलती है। उसमें रीति को ६ भागों में विभक्त किया गया है। यथा—वैदर्भी, पाञ्चाली, गौड़ीया, आवन्तिका, लाटीया और मागधी। इन ६ देशों के साथ प्रवृत्ति के देशों की तुलना करने से जान पड़ता है कि प्रवृत्ति के देशों से ही इन रीतियों की उत्पत्ति हुई है; दाक्षिणात्या प्रवृत्ति से वैदर्भी रीति की उत्पत्ति, पाञ्चली प्रवृत्ति से पाञ्चाली की, आवन्ती से आवन्तिका और तत्पार्श्ववर्त्ती लाटीया की। यह पहले ही कहा जा चुका है कि, कितने ही आचार्य लाटीया रीति को नहीं मानते। बाकी रह गई उड्र-

---

ॐ विश्वभारती पत्रिका (बंगला) ५ वर्ष, द्वितीय संख्या, पृ० ६७। गौड़ देश के अन्यान्य अर्थों की भी आलोचना यहाँ की गई है।

मागधी प्रवृत्ति और गौड़ीया और मागधी रीति। मागधी से मागधी रीति हो, तो गौड़ीया रीति की उड देश से ही उत्पत्ति माननी पड़ेगी।

इन सब आलोचनाओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रीति आदि की उत्पत्ति, संस्कृति के केन्द्र, विशेष कर नाट्यकलाओं के मूल में थीं ये प्रवृत्तियाँ—आवन्ती, दाक्षिणात्या, औड्र-मागधी और पाञ्चाली। भावप्रकाशन में शारदातनय ने भी कहा है—

> दाक्षिणात्या तथावन्त्या पौरस्त्या चौड्र मागधी
> प्रवृत्तयश्चतस्रोऽपि

यहाँ 'पौरस्त्या' पाठ की जगह पर 'पाश्चात्या' या 'पाञ्चाली' होने से अधिक युक्तिसंगत होता। औड्र-मागधी के रहते हुए पौरस्त्या का कोई अर्थ नहीं होता। इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर-पुराण के "चैवात्रमागधी" की जगह पर 'चैवौड्र-मागधी' होना उचित है, नहीं तो कोई सामंजस्य नहीं रहता। वहाँ पाठ है—

> आवन्ती दाक्षिणात्या च तथा चैवात्र मागधी
> पाञ्चाली मध्यमा चेति वृत्ति सा तु चतुर्विधा।

और भी 'वृत्ति सा तु' के बदले 'प्रवृत्तिस्तु' होने से अधिक संगत होगा।

ये प्रवृत्तियाँ किन-किन देशों में प्रचलित थीं या उन-उन देशों की सभ्यता के प्रभावक्षेत्र में कौन-कौन देश आते थे, उनकी एक विस्तृत तालिका नाट्य शास्त्र में दी गई है। सब की आलोचना करना तो यहाँ संभव नहीं होगा, किन्तु, औड्रमागधी प्रवृत्ति के प्रभावक्षेत्र की कुछ चर्चा कर देना यहाँ उचित होगा। भरत मुनि ने कहा है—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, वत्स, उड्र, मगध, पौण्ड्र, नेपाल, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवंगम, मलद, मल्लवर्त्तक, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर प्रभृति, भार्गव, प्राग्ज्योतिष, पुलिन्द, वैदेह, ताम्रलिप्तक, प्राङ्ग (?) प्रावृषि, और पुराणोक्त प्राच्य देश सब "औड्रमागधी" प्रवृत्ति का प्रयोग करते हैं। (नाट्यशास्त्र १३। ४५–४८)। किसी-किसी पुस्तक में प्लवङ्गम का 'वङ्गम' मलद का मलय, मल्लवर्त्तक का मल्लवर्णक, और प्राङ्ग का प्राग पाठ आता है। इसको देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि उनमें से कितने मगध-सभ्यता के क्षेत्र में पड़ते थे और कितने उड्र सभ्यता के। इनमें सब देशों का निश्चित निर्धारण नहीं हुआ है। दाक्षिणात्या प्रवृत्ति के लिए एक पंक्ति आती है—"कोशलास्तोसलाश्चैव कलिङ्गा यवना खसा।" तोसल या तोसलि भुवनेश्वर प्रान्त जिसको दक्षिण देशों में गिनाया गया है। कोशल शायद दक्षिण कोशल हो। यवन और खस कौन हैं? वे उन दिनों दक्षिण में भी पहुँचे थे क्या? यहाँ और एक लक्ष्य करने की बात है कि 'कलिङ्ग' दाक्षिणात्या में भी है, औड्रमागधी में भी, इसके औचित्य

दिखाते हुए टीकाकार अभिनवगुप्त ने कहा है "अतएवोड्रकलिङ्गानामुभयोपजीवित्वाभिप्रायेण वृत्तिद्वयमध्यगणनम्।" उभयाश्रित होने के कारण उड्र और कलिङ्ग की दोनों में गणना है। यहाँ पाठ कुछ संदिग्ध है। नाट्यशास्त्र और टीका का अभ्रान्त पाठोद्धार अभी तक नहीं हुआ है, यह दुःख की बात है। उभयोपजीवी होने के कारण कलिंग का उभयत्र पाठ समीचीन मालूम होता है। किन्तु उड्र क्यों ? उड्र की तो उभयत्र गणना नहीं की गई है। किसी-किसी पुस्तक में 'आन्ध्र' पाठ है और वह अधिक जँचता भी है।

अब यह विचार किया जाय कि औड्रमागधी प्रवृत्ति की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ? नाट्यकला की विशेषताओं की आलोचना शास्त्रों से करना दुरूह है। परम्परा और प्रयोग ही नाट्यकला के प्राण हैं। किन्तु, जहाँ प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा इतनी अवहेलित और विस्मृत है, वहाँ इसकी ठीक-ठीक धारणा करना असम्भव है। प्रयोग-अंश की अवस्था भी उसी प्रकार की है। प्रयोग कुछ पाया भी जाता है तो वह बारिपदा, सराइकेला इत्यादि तक ही सीमित है। तो भी शास्त्रों में औड्रमागधी प्रवृत्ति की जो कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं, उनका यथासम्भव संग्रह किया जाता है। इसमें भरत मुनि का नाट्यशास्त्र ही प्रधान सम्बल है। क्योंकि दूसरों ने "देश्या: प्रवृत्तयस्तत्तद्देश्यैर्ज्ञेया विचक्षणैः" कहकर छोड़ दिया। यह पहले ही कहा गया है कि औड्रमागधी प्रवृत्ति की भारती या भारती-आरभटी वृत्ति होती है। भारती और आरभटी की पहले ही चर्चा हो चुकी है। उससे मालूम होता है कि भारती वृत्ति में वाक् प्रधान होती है, उसमें भी संस्कृत वाक्य। इसमें पुरुष रहते हैं और स्त्रियाँ नहीं होती हैं। उन लोगों की संस्कृत वाणी के प्रति विशेष श्रद्धा होती थी और उनका संस्कृत पाठ अच्छा होता था, प्राकृत या गाथापाठ नहीं। काव्यमीमांसा में आता है—

> पठन्ति संस्कृतं सुष्ठु कुण्ठाः प्राकृतवाचि ते
> वाराणसीतः पूर्वेण ये केचिन्मगधादयः।
> ब्रह्मन् विज्ञापयामि त्वां स्वाधिकारजिहासया
> गौडस्त्यजतु वा गाथामन्या वास्तु सरस्वती।

वाराणसी के पूर्व मगधादि देशवाले संस्कृत का पाठ अच्छा करते हैं और प्राकृत का नहीं। सरस्वती शिकायत भी करती है कि गौड़ गाथा पढ़ना छोड़ दे, या वाणी बदल जाय। और भी आता है—'गौडाद्याः संस्कृतस्थाः परिचितरुचयः' इत्यादि।

आरभटी वृत्ति में प्रस्ताव (?), पात, प्लुत, लंघित, छेद्य, मायाक्रिया, इन्द्रजालक्रिया, चित्रयुद्ध आदि होते थे। साहित्यदर्पण में भी इसी प्रकार के लक्षण आते हैं। नाट्यदर्पण में आरभटी वृत्ति की व्युत्पत्ति दिखाते हुए कहा है—"आरेण प्रतोदकेन तुल्या भटा उद्धताः पुरुषा आरभटास्ते सन्त्यस्यामिति......आरभटी (३।१०८) आर अर्थात् प्रतोदक (तुतारि) के समान भट अथवा

उद्धत पुरुष आरभट जिसमें होते हैं, वह वृत्ति आरभटी। भारती के चार प्रभेद के समान इसमें भी चार प्रभेद होते हैं और वे नाट्य-परम्परा की दृष्टि से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये चार प्रभेद हैं—सक्षिप्तक, अवपात, वस्तूत्थापन और सफेट। इनमें भी सक्षिप्तक अधिक अर्थपूर्ण हैं। इसमें अर्थ के अनुकूल शिल्प प्रदर्शित होता था। छउ नाच की मुखाकृति (चेहरा) इसीका तो अवशेष नहीं है? और भी इसमें अनेक पुस्त-उत्थापन (कृत्रिम मूर्त्तियाँ खड़ा करना) और चित्र नेपथ्य होता था। अवपात में भय और हर्ष उत्पादन, विद्रुत, सम्भ्रान्तादि विविध वचन, क्षिप्र प्रवेश और निर्गम होता था। सर्व रस समास-युक्त विद्रव या अविद्रव को लेकर वस्तूत्थापन होता है। सफेट में सरम्भयुक्त युद्ध, नियुद्ध, कपटनिर्भेद और बहुल शस्त्र प्रहार होता है। (नाट्यशास्त्र २०।५६ ६०)।

पूर्वरङ्ग में प्रवृत्तियों की सम्भवत कोई विशेषता नहीं थी। पूर्वरङ्ग के विधि-वर्णन करते हुए भरत मुनि ने कहा है—

इत्येषोऽवन्ति पाञ्चालदाक्षिणात्योड्र-मागधै
कर्त्तव्य पूर्वरङ्गस्तु द्विप्रमाणविनिर्मित ।५। १८४

अवन्ति, पाञ्चाल, दाक्षिणात्य और उड्रमगध पूर्वोक्त प्रकार के पूर्वरंग प्रयोग करें। वह दो प्रकार का होना उचित है। पूर्वरङ्ग चार प्रकार के होते थे—चतुरस्र, त्र्यस्र, चित्र और शुद्ध। इनमें से आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार त्र्यस्र और चतुरस्र पूर्वरङ्ग प्रयुज्य हैं। किन्तु, पूर्वरंग में कोई विशेषता न होने पर भी रङ्गपीठ परिक्रम में विशेषता थी। रङ्गपीठ परिक्रम में दो प्रकार की क्रियाएँ बतलाई गई हैं—रङ्गपीठ के दक्षिण से प्रवेश करना या बाएँ से। आवन्ती और दाक्षिणात्या प्रवृत्ति में दक्षिण से परिक्रमा करते थे और पाञ्चाली और ओड्रमागधी में वाम से। और भी आवन्ती और दाक्षिणात्या में रङ्गपीठ के उत्तर पार्श्वद्वार का व्यवहार किया जाता था और पाञ्चाली और उड्रमागधी मे दक्षिणपार्श्व द्वार का।

भरत मुनि ने मानुषी स्त्रियों की विभिन्न देशीय वेषभूषा की भी कुछ चर्चा की है। उन्होंने कहा है कि अवन्ति युवतियों के मस्तक में सालक कुन्तल, गौड़ी सुन्दरियों के केवल अलक, और अन्य (दाक्षिणात्या और पाञ्चाली) युवतियों के मस्तक में एक वेणी होती थी। आभीरियों

---

1 द्विधा क्रिया भवत्यासा रङ्गपीठपरिक्रमे
प्रदक्षिणप्रवेशा च तथा चैवाप्रदक्षिणा ॥
आवन्ती दाक्षिणात्या च प्रदक्षिणपरिक्रमे
अपसव्यप्रवेशा तु पाञ्चाली चोड्र मागधी ॥
आवन्त्या दाक्षिणात्याया पार्श्वद्वारमथोत्तरम्
पाञ्चाल्यामोड्रमागध्या योज्य द्वार तु दक्षिणम् ॥ नाट्यशास्त्र १३।५२ ५४

की दो वेणियाँ होती थीं और नील अम्बर से उनका सिर आच्छादित रहता था। और भी पूर्व और उत्तर देशो की स्त्रियों के सिर में समुद्गत, शिखण्डक (संभवतः भुवनेश्वर, मथुरा आदि की स्त्रीमूर्त्तियों में जो पाया जाता है), आवेश (परिवेश) और आच्छेदक होता था। दक्षिण-स्त्रियों के कुम्भीपथाङ्क के साथ, उल्लेख्य और आवर्त्त ललाटिका होती थी।*

नाट्यशास्त्र में देश, जाति और तपस्या के अनुसार वर्ण-विधान भी किया गया है। किरात, बर्बर, आन्ध्र, द्राविड़, काशी और कोशलवासी, पुलिन्द और दाक्षिणात्य वर्ण में असित (कृष्ण) माने जाते थे। शक, यवन, पल्लव, बाह्लीक, और उत्तर देशवासी गौड़ तथा पाञ्चाल शूरसेन, माहिष, उड्रमगध, अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग के लोग श्याम वर्ण माने जाते थे। † वर्ण-नियम के प्रसंग में राजशेखर ने भी कहा है कि पौरस्त्य या प्राच्य देशवासियों का वर्ण श्याम होता है, दाक्षिणात्यो का कृष्ण, पाश्चात्यों का पाण्डु, उदीच्यों का गौर, मध्यदेशीयो का कृष्ण, श्याम और गौर होता है; ‡ और पौरस्त्य श्यामता का उदाहरण भी दिया है—

> श्यामे स्वङ्गेषु गौडीनां सूत्रहारैकहारिषु,
> चक्रीकृत्य धनुः पौष्पमनङ्गो वल्गु वल्गति। अध्याय १७.

गौड़ी सुन्दरियो के सिर्फ एक सूत्रहार से सुन्दर श्याम अंगों में पुष्प धनु को (खींच कर) चक्राकार अनङ्ग खूब उछल-कूद कर रहा है। साथ-साथ उन्होंने एक विशेष बातका भी उल्लेख

---

* अवन्तियुवतीनां तु शिरः सालककुन्तलम्
गौडीनामलकप्राय शेषा प्रायैकवेणिकम् ॥
आभीर-युवतीनां तु द्विवेणीधरमेव च
शिरः परिगतं कार्यं नीलप्रायमथाम्बरम् ॥
तथा पूर्वोत्तरस्त्रीणां समुद्गतशिखण्डकम्
आवेशाच्छेदकं तेषां वेषकर्मणि कीर्त्तितम्।
तथा च दक्षिणस्त्रीणां कार्यमुल्लेख्य संज्ञितम्
कुम्भीपथाङ्कसंयुक्तं तथावर्त्तललाटिकम्।
नाट्य २१।४७-५१.

† किरातबर्बरान्ध्राश्च द्रविडाः काशिकोसलाः
पुलिन्दा दाक्षिणात्याश्च प्रायेण त्वसिताः स्मृताः।
शकाश्च यवनाश्चैव पाल्लवा बाह्लीकाश्रयाः
प्रायेण गौराः कर्त्तव्या उत्तरां पश्चिमां दिशम्,
पाञ्चालाः शूरसेनाश्च माहिषा उड्रमागधाः
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च श्यामाः कार्यास्तु वर्णतः। नाट्य २१। ८८—९१.

‡ तद्गतवर्णनियमः। तत्र पौरस्त्यानां श्यामो वर्णः। दाक्षिणात्यानां कृष्णः, पाश्चात्यानां पाण्डुः, उदीच्यानां गौरः, मध्यदेश्यानां कृष्णः श्यामो गौरश्च। काव्य मीमांसा अ. १७.

किया है कि पूर्वदेश में राजपुत्री आदि का वर्ण गौर वा पाण्डु होता था, तथा दक्षिण देश में भी* । यह भी पहले कहा गया है कि गौड़ागनाएं 'दूर्वाप्रकाण्ड रुचिर' होती थीं और वहाँ भो 'सूत्रहार' का उल्लेख आता है, साथ साथ आर्द्रचन्दन चर्चित कुच, स्फुट बाहुमूल, सीमन्त चुम्बी सिचय और अगुरु उपभोग का।

नाट्यशास्त्र मे भाषा के सम्बन्ध में कहा है—

अथवा छन्दत कार्या देशभाषप्रयोक्तृभि
नानादेशसमुत्थ हि काव्य भवति नाटके।

काव्य नाना देशाश्रित होता है। इसलिए देश भाषा का छन्द में प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रसग में सात भाषाएं गिनाई गई हैं, जिनमें प्रथम मागधी है। अन्य ६ हैं—अवन्तिजा, प्राच्या, सूरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लिका और दाक्षिणात्या। उड्ज भाषा, विभाषा के अन्तर्गत की गई है †।

कामसूत्र में भी गौड़ देश की कुछ विशेषताएँ आती हैं, उसमें पुरुषो के लिए है—'दीर्घाणि हस्त शोभीन्यालोके च योषिता चित्तग्राहीणि गौडाना नखानि स्यु।" २४६। गौड़ों के नख दीर्घ हस्तों के शोभावर्धक होते हैं और उन्हे देखकर सुन्दरियों के चित्त मुग्ध होते हैं। स्त्रियों के सम्बन्ध में है—मृदुभाषिण्योऽनुरागवत्यो मृद्वङ्ग्यश्च गौड्य। २५३३। गौड़ी सुन्दरियाँ मृदुभाषिणी और अनुरागवती हैं और उनके अग कोमल होते हैं। कला विलास की आलोचना से जान पड़ता है कि गौड़ लोग बडे दाम्भिक होते थे। कला-विलास में क्षेमेन्द्र ने कहा है—

अथ मर्त्यलोकमेत्य भ्रान्त्वा दम्भो वनानि नगराणि
विनिवेश्य गौडविषये निजमजयकेतु जगाम दिश।
वचने वाह्लीकाना व्रतनियमे प्राच्य दाक्षिणात्यानाम्
अधिकारे कीराणा दम्भ सर्वत्र गौडानाम् ॥१।८६-८७

मर्त्य लोक में अवतार ग्रहणकर दम्भ ने गौड़ देश मे अपना विजयकेतन गाड़ा और वह सब दिशाओं में गया। और वाल्हीकों के वचन में, प्राच्य और दाक्षिणात्यो के व्रत नियम में, कीरों (काश्मीरियो) के अधिकार में और गौड़ों में सर्वत्र दम्भ वास करता है।

इसी प्रकार विशाल सस्कृत साहित्य की आलोचना से ओड्रमागधी प्रवृत्ति का बहुत कुछ उद्धार किया जा सकता है। यहाँ एक बात का खयाल रखना होगा कि जहाँ-जहाँ गौड़ शब्द आया

---

* विशेषतस्तु पूर्वदेशे राजपुत्र्यादीना गोर पाण्डुर्वा वर्ण एव दक्षिणदेशेऽपि। वहा।

† नाट्यशास्त्र अध्याय १७। ४६ ५०

है, सबको औड्रमागधी प्रवृत्ति के पर्याय रूप में लेना ठीक नहीं है, विशेषकर परवर्त्ती साहित्य के गौड़ शब्द को। औड्रमागधी प्रवृत्ति के उद्धार के लिए परम्परा का भी वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करना पड़ेगा। किन्तु, दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आधुनिक बिहार की सीमाओं के भीतर नाट्य मागधी-कला की कोई परम्परा नहीं पाई जाती है, हो भी तो मुझको मालूम नहीं। इस विषय का अध्ययन भी नहीं किया गया है। इसलिए इस दिशा में दृष्टि देनी चाहिए। यह विश्वास नहीं होता कि मगध की इतनी ऊँची संस्कृति की एक शाखा इस प्रकार लुप्त हो गई होगी। इस नाट्य-परम्परा के उद्धार के लिए प्राचीन मूर्त्तियों से भी बहुत-कुछ मदद मिलेगी और प्राचीन मूर्त्तियाँ बिहार में जहाँ-तहाँ बिखरी पाई जाती हैं। इन सबको लेकर औड्रमागधी नाट्य-कला का आंशिक भी उद्धार हो जाय, तो एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम होगा। इसमें दोनों प्रान्तों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है।

शासन-विधान में विकेन्द्रीकरण

[प्रो० डाक्टर धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पटना कॉलिज, पटना]

जब हम केन्द्रीय सरकार और उसकी अधीनता में रहनेवाली स्थानीय सरकारों के बीच क्या सम्बन्ध रहना चाहिए, इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें इसकी निम्नलिखित सूरतें ध्यान में आती हैं—

(क) केन्द्रीकरण (Contratisation) जहाँ शासन का सम्पूर्ण सूत्र केन्द्रीय सरकार ही संचालित करती हो, स्थानीय संस्थाओं को अपनी ओर से कुछ भी करने का अधिकार न हो।

(ख) विकेन्द्रीकरण (Decentratisation) जहाँ स्थानीय संस्थाएँ सर्वतन्त्र स्वतंत्र हों और केन्द्रीय सरकार की स्थिति नाममात्र की हो।

(ग) सहयोगिता (Partnership)—जहाँ केन्द्रीय तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच परस्पर समझौता हो, और दोनों पूर्ण तत्परता के साथ एक दूसरे से मिलजुल कर चलती हैं।

आजकल प्रायः सर्वत्र यह बात मान ली गई है कि किसी भी शासन व्यवस्था में ऐकांतिक केन्द्रीकरण अथवा ऐकान्तिक विकेन्द्रीकरण—दोनों ही हानिकर हैं, और इसलिए सहयोगिता का मध्यम मार्ग ही श्रेयस्कर है। जैसे, कभी कभी ऐसा विचार आता है कि सारे राष्ट्र में एक ही तरह की व्यवस्था संचालित करने के लिए आवश्यक है कि फ्रान्स की तरह, सारा विधान केन्द्रीय सरकार-द्वारा निर्मित तथा कार्यान्वित हो। कोई भी राष्ट्र यह नहीं सहन कर सकता कि केन्द्र निर्बल हो और छोर सबल, क्योंकि केन्द्र की सबलता में ही राष्ट्र का संगठन तथा संस्कृति की सार्वभौमता निहित है। किसी भी राष्ट्र में कालक्रम से कुछ ऐसी विशेषताएँ आ जाती हैं, जिनपर उस राष्ट्र की निजी छाप रहती है, और उन विशेषताओं और उस छाप को अधिकाधिक परिपुष्ट करना उस राष्ट्र का

कर्त्तव्य हो जाता है। स्पष्ट है कि यह कर्त्तव्य जितनी खूबी से केन्द्रगत सरकार निभा सकती है, उतनी खूबी से विकेन्द्रित सरकार नहीं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार की शक्ति और समृद्धि स्थानीय सरकारो से कहीं अधिक होने के कारण, केन्द्र द्वारा ऐसी विस्तृत योजनाएँ तैयार की जा सकती हैं और क्रियान्वित की जा सकती हैं जिनको हाथ में लेने की न तो स्थानीय सरकारों की शक्ति है और न साहस। एक बात और। स्थानीय सरकारें अपने शासन में यदा-कदा शिथिल और मन्दगति भी हो सकती हैं; पर केन्द्रगत शासन में ऐसा होना संभव नहीं।

ठीक है, शासन के केन्द्रीकरण के ये लाभ अवश्य हैं; पर, इसकी त्रुटियाँ भी कम नहीं। केन्द्रीकृत सरकार की व्यवस्था में एकरसता और सार्वभौमता तो अवश्य रहती है, पर साथ ही साथ एक सर्वव्यापिनी शिथिलता भी घर कर लेती है। ऊपर से देखने से तो शासन का विधान बड़ा सुन्दर एवं सुडौल जँचता है; पर डूबकर देखने से पता लगेगा कि स्थानीय विधान की मौलिकता जाती रहती है। स्थानीय सरकारों से ही मिलकर केन्द्रीय सरकार बनती है न? यदि स्थानीय सरकारों में व्यक्तित्व और जीवन का अभाव होगा तो केन्द्र में भी उसकी प्रतिक्रिया अनिवार्य है। निरी एकरसता का कोई मतलब नहीं। अनेकरसता में एकरसता—यही जीवन और सौन्दर्य का मूलमंत्र है।

इतना ही नहीं, फ्रान्स को लीजिए; वहाँ क्या होता है? आए दिन पुरानी सरकारें जाती हैं और नई सरकारें आती हैं। परिणाम यह होता है कि किसी भी सरकार द्वारा कोई दूर व्यापिनी योजना कार्यान्वित नहीं की जा सकती। केन्द्रगत शासन-विधान में यदि केन्द्र अव्यवस्थित हुआ तो समग्र राष्ट्र ही चौपट हो जाता है। यह बात स्थानगत शासन-विधानों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती।

विकेन्द्रीकृत शासन, अर्थात् स्थानीय शासनों की सबलता के पक्ष में जो सब से बड़ा तर्क है, वह यह कि यह व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के सिद्धान्त के आधार पर स्थित है। प्रश्न यह है कि क्या सरकार की समष्टि में व्यष्टि को नितान्त विलीन करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए, अथवा व्यष्टि की प्रधानता स्वीकार करते हुए समष्टि के साथ उसे समन्वित करना और यह समझना कि समष्टि अथवा सरकार के अधीन होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति को उस से ऊँचा उठकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थिर रखने का अधिकार है? हमारा विचार है कि दूसरा पक्ष ही उपादेय है; व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र के लिए होते हुए उससे परे भी है; राष्ट्र-निर्मित होते हुए राष्ट्र-निर्माता भी है। व्यक्तित्व को सम्पूर्णतया राष्ट्रसात् कर देना निरंकुश तानाशाही या डिक्टेटरशिप है। उसका स्वस्थ एवं स्वतंत्र विकास करते हुए राष्ट्रहित के लिए, सच्ची नागरिकता के लिए उसे समर्थ बनाना प्रजातंत्र अथवा जनतंत्रवादिता है। जो बात ऊपर एक व्यक्ति के लिए कही गई है वही केन्द्रीय सरकार की व्यक्तीभूत विकेन्द्रित स्थानीय सरकारों (Local Governments) के विषय में लागू है। यही कारण है कि प्रायः

सभी उन्नत पाश्चात्य देशों में शासन का विधान विकेन्द्रीकृत है। अमेरिका, सोवियत् रूस और इंगलैंड—तीनों महान शक्तियों का शासन विकेन्द्रीकरण के ही सिद्धान्त पर ढाला गया है। जो स्थान अमेरिका और रूस में उसके अधीन के प्रदेशों (States) का है, वही इंगलैन्ड में स्थानीय शासनों (Local Authorities) का है। विदेशों के साथ सम्बन्ध, यातायात, युद्ध और संधि, व्यापक आर्थिक नीतियाँ—इन कुछेक प्रमुख समस्याओं को छोड़कर प्राय सभी समस्याओं के सुलझाव में अमेरिका, रूस तथा इंगलैंड के स्टेटों और स्थानीय शासकों को पूर्णाधिकार प्राप्त है। परिणाम यह है कि जहाँ तक शिक्षा, नगरों की सफाई, आन्तरिक आर्थिक अभ्युदय, पुलिस, न्यायालय, कृषि की सिंचाई, उद्योगों की व्यवस्था आदि के प्रश्न हैं, स्थानीय शासनों को इनके अपने ढंग से हल करने की पूरी स्वतन्त्रता है।

अब यह पूछा जा सकता है कि भारत के लिए किस नीति का अवलम्बन किया जाना चाहिए—केन्द्रीकरण, अथवा सहयोगिता। इस स्थल पर एक बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है। केन्द्रीय शासन (Central Government) और स्थानीय शासन (Local Government) से क्या अभिप्राय है? यदि केन्द्रीय सरकार नई दिल्ली की अखिल भारतीय सरकार को माना जाय, तब सभी प्रान्तों की सरकारें स्थानीय सरकारें हुईं, और इसमें कोई सदेह नहीं कि, जैसा आज है, इन दोनों के परस्पर सम्बन्ध में विकेन्द्रीकरण का ही सिद्धान्त उचित है। विदेशों के साथ सम्बन्ध अखिल भारतीय यातायात व्यापक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्न—इन मुख्य क्षेत्रों को छोड़कर बाकी सभी दिशाओं में प्रत्येक प्रांत स्वतंत्र (antonemens) है। किन्तु, सीमित प्रसग में केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकार का भी द्योतन होता है। आजकल प्रान्तीय सेक्रेटेरियटों की जैसी व्यवस्था है, उसमें केन्द्रीकरण का सिद्धान्त अपने भीषण रूप में व्याप्त है। बिहार को ही लीजिए। इसमें चार डिवीजन और सोलह जिले हैं। जिलों के नीचे सबडिवीजन भी हैं। आज कल शासन की जो प्रणाली है उसके मुताबिक छोटा से छोटा प्रस्ताव, छोटी-से छोटी योजना को भी कार्यान्वित करने का अधिकार डिवीजनों, जिलों अथवा सबडिवीजनों को नहीं है। प्राय सभी फाइल नीचे से चलकर ऊपर मिनिस्ट्री तक पहुँचती है और इस बीच सैकड़ों किरानियों और आफिसरों की कलम का प्रसाद पाते-पाते उसे भयानक अजीर्णता हो जाती है। ऊपर से नीचे लौटने में भी एक बार फिर वही दूरी, उसी मन्थरगति से तय करनी पड़ती है। परिणाम यह होता है कि शासन दुर्व्यवस्थित, उत्तरदायित्व-विहीन निष्प्राण और लगड़ा हो गया है। हमने स्वयं इंगलैन्ड में मिनिस्ट्री की कार्य प्रणाली देखी और यह देखा कि आवश्यक कार्यों के लिए फाइल और लाल फीते को निर्वाधितप्राय कर दिया गया है। फोन से बातें हुई और नीतियाँ तय पा गईं, मिनिस्टर मिले और गुत्थियाँ सुलझ गईं, हाथोंहाथ फाइल आई और उसका निपटारा हो गया। इसके अतिरिक्त इंगलैंड की स्थानीय सरकारें स्वय इतनी समर्थ और उत्तरदायित्वपूर्ण है कि अपने यहाँ की शिक्षा, सफाई,

न्याय, नियमन आदि सारी व्यवस्थाएं अपने आप, मिनिस्ट्री से बिना पूछे या केवल कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं में ही उसकी राय लेकर, कर लिया करती हैं।

यदि हम भी यह चाहते हैं कि हमारा शासन गतिमान हो, उसमें जीवन और प्राण हो तो हमें भी इसे विकेंद्रित करना होगा। प्रान्त के प्रत्येक जिले में उतने विभाग हों जितने प्रान्त के केन्द्र में मिनिस्टरों के अधीन हैं। प्रत्येक विभाग के चार्ज में एक-एक ऐसा अधिकारी अफसर नियुक्त किया जाय जो लगभग डिक्टेटर के समान शासन करने में समर्थ हो। उससे अपने विभाग को ध्यान में रखकर जिले भर के लिए एक पंचवर्षीय योजना माँगी जाय जिसे वह जनता की राय से तैयार करे। प्रान्त की मिनिस्ट्री वह योजना संशोधन के साथ, अथवा पूर्णतः स्वीकृत कर ले, और फिर पाँच वर्ष तक उसके शासन में दखल न दे; सामान्य देख-रेख अवश्य रहे, किन्तु फाइलों की गुड्डी न उड़ाई जाय; प्रायः सभी विषयों का अन्तिम निर्णय जिले के अफसर के हाथ में हो। मिनिस्ट्री रोज-रोज के शासन में कभी भी हस्तक्षेप न करे; किन्तु, यह बात, प्रत्येक अफसर को मालूम रहे कि कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामि, करूँगा या मरूँगा। जो अफसर अपनी पंचवर्षीय योजना को न कार्यान्वित कर सकें, उन्हें कठोर दंड—प्राणदंड तक—दिया जाय।

आज हमारे देश में जैसी दुर्व्यवस्था है, जैसी बेईमानी है, जैसी भ्रष्टाचारिता है, जैसा नैतिक पतन है, इसमें विकेन्द्रीकरण और डिक्टेटरशिप ही कारगर हो सकते हैं। शर्त्त यह कि वह डिक्टेटरशिप जिले की जनता और प्रान्त की मिनिस्ट्री तथा असेम्बली—दोनों के नियंत्रणों के कारण प्रजातंत्रवत् स्वस्थ्य तथा सुव्यवस्थित हो; उसमें डिक्टेटरशिप के दुर्गुण एक भी न हों, किन्तु, उसके सुगुण सभी हों। अभी कुछ वर्षों तक ऐसी ही व्यवस्था रहेगी; किन्तु, क्रमशः हम उस स्थिति तक पहुँच सकेंगे जिसमें विकेन्द्रीकरण की तीव्रता धीरे-धीरे जाती रहेगी और हम सहयोगिता (Partnership) का मध्यम मार्ग ग्रहण कर लेंगे।
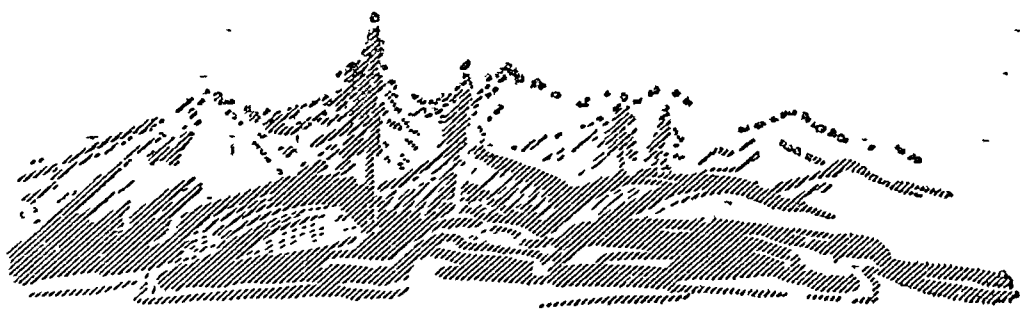
[प्रो० श्री प्रभाकर माचवे, एम० ए०, साहित्यरत्न, उज्जैन]

समस्या का वर्त्तमान रूप

ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान विशेष वैज्ञानिक और साहित्य अधिक लोकाभिमुख होता जा रहा है, विश्व साहित्य से आदान-प्रदान का महत्त्व बढ़ रहा है। आज 'हिंदी केवल हिंदुओं की' जैसे संकुचित नारों से काम नहीं चलेगा। हिंदी को सचमुच यदि अखिल 'हिंद' की आशाऽकांक्षाओं का प्रतीक बनना है, तो एक ओर उसे शौरसेनी, प्राकृत और उसकी भी नानी संस्कृत और वैदिक संस्कृत—तुरेनियन भाषाओं से अपनी पुरानी पीढ़ियों का खयाल रखना होगा—क्योंकि प्रत्येक भाषा के विकास-क्रम का अपना एक अलग ढंग होता है, और साथ ही साथ उसे दूसरी ओर दुनिया से अपना व्यापक और सीधा सम्बन्ध भी जोड़ना होगा। इन कारणों से आज पारिभाषिक शब्दों का (Scientific Terminology) प्रश्न केवल अनुवादकों तक सीमित प्रश्न नहीं, हमारे शिक्षाशास्त्री, सम्पादक, भाषाशास्त्री, लेखक और राजनैतिक कार्यकर्त्ता आदि सभी का यह प्रश्न है। यदि ज्ञान-विज्ञान को गाँव-गाँव तक पहुँचाना है तो चाहे आप 'मैजिक लंटर्न' का उपयोग करें, चाहे अखबारों या रेडियो का—यह समस्या आपके सामने प्रमुख है। सम्पादकगण, विशेषत दैनिक साप्ताहिकों के 'ए पी' और 'रायटर' के अंग्रेजी सम्वादों का जल्दी-जल्दी से अनुवाद कर ज्यों त्यों छाप देनेवाले अर्द्ध-शिक्षित उप सम्पादकगण, प्रतिदिन इस समस्या से परेशान रहते हैं। जब कभी एक नया अंग्रेजी शब्द उनके सामने चुनौती देता हुआ आ खड़ा होता है, तो वे रामनारायण लाल के अंग्रेजी-हिन्दी कोश या अन्य अंग्रेजी-उर्दू या अंग्रेजी बंगला कोशों की सहायता लेते हैं। किन्तु, जब वहाँ उनका काम नहीं चलता, तो अपने मन से ही किसी तरह शब्दानुवाद कर छाप देते हैं, जो बहुधा अत्यन्त हास्यास्पद होते—जैसे 'चीखते हुए बम (screaming bomb) या आकाश घोड़ा (sky horses) या दग्ध-भू नीति (Scorched Earth Policy) इत्यादि। शिक्षाक्षेत्र में अंग्रेजी माध्यम के

स्थान पर हिंदी के स्वीकृत होते ही न केवल उच्च श्रेणियों में विज्ञान सिखाने का प्रश्न कठिन बन रहा है—एक सर्वमान्य पारिभाषिक शब्दावली के अभाव में—बल्कि शिक्षा को व्यापक बनाने में भी यह प्रश्न कम मुश्किल नहीं। किसी उच्च विद्यालय में शरीरशास्त्र पढ़ाते वक्त, 'नर्वस सिस्टम' की 'नसों की व्यवस्था' से लेकर 'नाड़ी संस्थान' तक, कई शब्द काम में लाये जाते हैं। और 'ग्लैंड' को अगर 'ग्रंथि' कहें ; तो मनोविज्ञान के 'कांप्लेक्स' को भी 'ग्रंथि' ही कहना कहाँ तक उचित है ? और इन सामान्य शब्दों का तो ठीक भी है, परंतु नये-नये आविष्कारों का क्या हो ? एटम बम के अणु बम, परमाणु-स्फोटक आदि कई शब्द प्रचलित हैं। फिर सुविधा से उनमें जो उच्चारण-सुलभ या लेखन-सहज शब्द होता है, चल जाता है। राजकाज की भाषा हिन्दी बनने पर कई नये शब्द गढ़ने होंगे—'फाइल' 'डी-ओ' 'हेडक्लर्क' 'एन्क्लोजर्स' वगैरह। दफ्तर की चालू भाषा को बदलना होगा या ज्यों का त्यों रहने दिया जायगा ? और राजनीति में तो ऐसे कई शब्द हैं, जिनके हिन्दी-पर्याय, जो सही-सही तौर पर मूल शब्द का पूरा अर्थ ध्वनित कर सकें, खोजने ही हैं ; उदाहरणार्थ Nationality (राष्ट्रक, जनपद, जाति आदि प्रचलित हैं), Federal Constitution Dominion (उपनिवेश कहते हैं ; फिर Colony के लिए कौन-सा शब्द है ?) आदि-आदि। इस प्रकार की शब्द-चर्चा से लेखकगण यानी ललित-साहित्य के लेखक कवि, कहानीकार वगैरह अपने आपको सम्पृक्त समझते हैं ; परन्तु उस प्रकार के साहित्यकार को भी सामाजिक यथार्थता यदि अपने साहित्य में लेनी है तो कई प्रकार के फूल-पत्ते, पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों के नाम जानने होंगे, बल्कि उससे एक कदम आगे बढ़कर जन-जीवन में पैठकर कई तरह के पेशेवालों के औजारों के नामों के वर्ग में एकवाक्यता लानी होगी ! उसी दिन एक चमार की कहानी लिखते समय hoe पर हम अटक गये। चमार से जाकर पूछा तो मालवी शब्द था, अतः यू० पी० के अखबार में वह कैसे चलता ? और समालोचकों को तो आये दिन ललितकला के कई पारिभाषिक, तांत्रिक (टेकनिकल) और मनोवैज्ञानिक शब्दों से काम पड़ता ही रहता है।

आज इस समस्या का रूप और भी विकट है। चूँकि उसके बारे में सामूहिक योजनाबद्ध विवेचन (collective Planning) कुछ भी नहीं हो रहा है। कुछ व्यक्तिगत प्रयत्न होते हैं तो उनमें प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति के अपने राजनैतिक या साम्प्रदायिक मत-संस्कार उस प्रयत्न को सर्वमान्य नहीं बनने देते। उदाहरणार्थ डा० रघुवीर का औद्भिद्-विज्ञान-कोश। संस्थाएँ जो कि हिन्दी-प्रचार में रत हैं या हिन्दी के आज के स्वरूप में जिनका बड़ा हाथ रहा है, चुप हैं या अखाड़े का रूप धारण किये हुए हैं। बहुत वर्षों पुराना एक छोटा-सा वैज्ञानिक शब्दावली का कोश नागरी-प्रचारिणी-सभा से प्रकाशित और श्यामसुन्दर दास और आचार्य द्विवेदी द्वारा सम्पादित मिलता है जो आज के लिए एकदम अपर्याप्त है। सुखसंपतिराय भंडारी, अजमेरवाले ने एक बृहत् कोश राजनैतिक विज्ञान की शब्दावली का बनाया है। परन्तु, उस के पर्याय बहुत विचारपूर्वक नहीं बनाये गये जान पड़ते। कई महत्त्वपूर्ण शब्द तो उसमें

नहीं गये हैं। हरिहर निवास द्विवेदी का 'शासन-शब्द-संग्रह' एक तो संस्कृत-बहुल जटिलता लिए हुए है और बड़ौदा राज्य में प्रचलित सयाजी-शासन-कल्पतरु या राज्यव्यवहार कोश (जिस पर से यह बना है) जैसा सरल नहीं है। इधर एक साहित्यिक पारिभाषिक शब्दावली प्रेमनारायण टंडन ने प्रकाशित की है। और वैसे सभी नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि विषयों पर लिखे हिंदी ग्रंथों के पीछे ऐसी अंग्रेजी से हिन्दी पर्यायवाली तालिकाएँ रहती हैं। परन्तु, उन सब में कोई एकवाक्यता (यूनिफार्मिटी) नहीं। और विज्ञान में यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो तो फिर वह जनसुलभ बने कैसे? उदाहरणार्थ मनोविज्ञान पर लिखी प० सुधाकर, चन्द्रावती लखनपाल, लालजीराम शुक्ल और भैरवनाथ झा की पुस्तकों में 'अनकाशस' के लिए 'उपचेतन,' 'अवश्चेतन,' 'अचेतन,' 'अर्द्धचेतन' जैसे कई शब्द प्रचलित हैं, वैसे ही 'कन्सेप्ट' या 'परसेप्ट' के के लिए न जाने कितने तरह के शब्द हैं। एक साधारण शब्द ले लीजिए। हिंदी में मासिकादिकों में छपनेवाले लेखों तथा ग्रंथों में उसके इतने तरह के पर्याय मिलते हैं, आकांक्षा, संकल्प, इच्छा, संवेग, क्रियाशक्ति, कामिकता आदि।

तो इस प्रकार की वैचारिक अराजकता को मिटाना बुद्धिजीवियों का प्रथम कर्त्तव्य है यदि हमारे औजार ही ठीक नहीं होंगे, तो हम गढ़ेंगे क्या? शब्द हमारे औजार हैं और नई सामाजिक चेतना हमें गढ़नी है।

विभिन्न सुझाव

इस समस्या के सम्बन्ध में हिंदी साहित्य-सम्मेलन का वही अंग्रेजी तरीका है कि जब कोई समस्या बहुत असाध्य हो जाय तो एक 'कमिटी' बना दी जाय! 'कमिटी' अपनी रिपोर्ट देती रहेगी, फिर देखा जायगा। सन् ३३ के दिल्ली सम्मेलन में हिंदी-लिपि-सबन्धी एक ऐसा ही मंडल, सम्मेलन ने बनाया था। फिर मैं सन् ४० में पूना-सम्मेलन गया, तो देखा कि हिंदी-लिपि की गाड़ी वहां की वहीं खड़ी है। अब एक दूसरा भंडार बनाया गया। कुछ और लोगों के नाम उसमें जोड़ दिये गये। मगर किसी भलेमानुस ने यह नहीं पूछा कि इतने वर्षों तक ये लिपि सुधार-समितियाँ बनती गईं और फिर बनाई जाती रहीं, मगर इनका फल क्या निकला? सो, पारिभाषिक शब्दावली, यदि कभी न हल करना हो तो एक सुन्दर उपाय यह है कि एक 'विशेषज्ञों की समिति' बना दीजिए। वे जब तक अपना संशोधन पूरा करेंगे, तब तक दुनिया का ज्ञान-विज्ञान हजार कदम आगे बढ़ गया होगा। मगर लोकतंत्रात्मक पद्धति तो यही है कि विशेषज्ञों से पूछकर कोई काम किया जाय। आईए हम कुछ विशेषज्ञों से मिलें।

—

व्याकरण-शास्त्री मिले। वे बताने लगे कि एक युग में शब्द नित्य हैं या अनित्य, इस पर संस्कृत में बहुत बहस होती रही है। पूर्वमीमांसाकार जैमिनि, शंकराचार्य और पतंजलि शब्दों क

नित्यत्व में विश्वास करते थे, तो नैयायिक उसे अनित्य मानते थे,। औदुम्बरायण शब्दों को 'इंद्रिय-नित्य' मानते हैं (आजकल के 'मेन्ट्री इमेजिस्ट फोनेटीशियनों' के अनुसार) तो यास्क ने इन दोनों 'वादों' का 'सम्वाद' इस प्रकार किया कि अव्यक्तरूप शब्द नित्य है तो वह रूप शब्द अनित्य। चलो, इससे एक बल तो मिला कि शब्द कोई सनातनधर्म की तरह वर्तनीय तत्त्व नहीं है। वे बदल सकते हैं। न बदलें तो वह मृतभाषा के पत्थर हो जायें।

व्युत्पत्ति-शास्त्री मिले। उनके अनुसार श्रीलक्ष्मणस्वरूप अपने 'निघंटु और निरूक्त' में पृ० २१४ पर जो कहते हैं, दुर्गाचार्य यास्क मत के विरुद्ध गार्ग्य मत के हैं, 'नाम सब आख्यानों से ही नहीं बनते' सो यह ठीक नहीं। वहाँ तो उन्होंने केवल गार्ग्य मत ही व्यक्त किया है, अपना स्वतंत्र मत नहीं। उणादिसूत्रों का कर्ता चाहे पाणिनि हो या शाकटायन, वह भी यास्क-मत का समर्थन ही करता है। परन्तु, पतञ्जलि आदि इसके विरोधी हैं। असल में नाम दोनों तरह बने हैं, क्रिया से भी और धातु से भी। प्लेटो ने क्रिया को निर्देशक और संज्ञा या नाम को निर्देशित चिह्न माना था। अरस्तू एक कदम आगे बढ़कर संज्ञा को 'प्रतीक' भी मानते हैं। संज्ञा अर्थवती है या नहीं, इसके बारे में तार्किकों में ऐकमत्य नहीं। मालवे में एक गाँव का नाम 'बैठी जा बताई हूँ' है तो कई शहरों के नामों की व्युत्पत्ति या इतिहास आज मिल भी नहीं पाते।

ध्वनि-शास्त्री मिले। वे शब्दोच्चारविज्ञान Phonetic linguistics के विशेषज्ञ थे। उन्होंने एल्‌जी फार्जेटी के 'रिद्‌म' नामक नवीन पुस्तक का हवाला देते हुए कहा—'ध्वनि-समस्या की दृष्टि से, भाषा प्राकृतिक नियमों से चलती है। भावाभिव्यंजना का माध्यम ध्वनि, सिलेबूल और शब्द होते हैं। किसी भी भाषा के पचास से अधिक स्पष्टतः भिन्न-भिन्न ध्वनिमूल नहीं होते। बाद में वक्ता या भाषा बोलनेवाला उन ध्वनियों के विश्लेषण करने लगता है, जिन्हें वह स्वर और व्यंजन कहता है। भाषा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अभी शैशवावस्था में ही है।'

इससे उलटे फेर्दिनाँद सोसुर और आंत्वान् मेये के आधार देकर भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष के समर्थक कहेंगे कि 'भाषा से व्यक्त होनेवाला अर्थ मनुष्य के मन का प्रतिबिम्ब होने के कारण, ध्वनि की अपेक्षा मनोविज्ञान के सहारे उनका अध्ययन अधिक उपयुक्त होगा।' ध्वनि भाव निर्मित कर पाती है या नहीं, यह प्रधान लक्ष्य न होकर अर्थ व्यक्त कर पाती है या नहीं, यही जानना काफी होगा। भाषा समूचे समाज की उपज है, न कि व्यक्ति विशेष की। यह मानना कि ध्वनि के अनुकरण से शब्द बने, काफी नहीं होगा। क्योंकि तब भिन्न भाषियों के कान या तो अलग-अलग बनावट के रहे होंगे या ऐसा भेद क्यों हुआ। उदाहरणार्थ साँप के फूत्कार (संस्कृत) को प्राकृत में फुक्कर, मराठी में फुस्, हिंदी में फुफकारना, अंग्रेजी में हिस्, फ्रेंच में सीफल कहते हैं तो बिल्ली की आवाज को मराठी-हिन्दी आदि भाषाओं में म्याऊँ, अंग्रेजी में म्यू, फ्रेंच में म्योल यह समान शब्द

प्रयुक्त हैं। सम्बोधनों का अभ्यास तो और भी मनोरंजक होगा—कुछ दुखनिदर्शक सम्बोधन नीचे दिये जाते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बोधनों की ध्वनियाँ देखिए—

दुख-सूचक—

अंग्रेजी-अह, अलास, आह, वैलडे, वोजमी, स्कॉच-वली, वली, वेल्श ग्वाई, लतीनी-इग्रो, हिउ, पेप, इतालवी अह, आहि, आहि-लास्मो, फ्रेंच—एह, ओह हाइ, हैला, स्पैनिश—एह, आय, ओ, पोर्तुगीज-पे, ऐ दे मीम, जर्मन—आख, वेह, अउ, रूसी-ऊव्यू, आख, आह, अरबी—अल्ला, फारसी—ओ, अल्ला, तुर्की—ओह, आह, चीनी—ई, इ, हूँ, जापानी—अवाने।

घृणा—

अंग्रेजी—फाइ, फाट, पाठ, शॉ, पिश, तुश, स्कॉच—हाउट, जर्मन—फी, फिउइ (Pfui), लतीनी—एना, एहो, फ्रेंच—फी, फाइ, आवाय, वाह, रूसी-तेफू, विदा सूचक—अंग्रेजी—फेअर वेल, लतीनी—वाले, इतालवी—अडिओ, फ्रेंच—एडिउ, हंगेरियन—हीलोन, होजार्ड, जर्मन—लेवेहोल, डच—वारवील।

भाषा के इतिहासज्ञ ने और भी मनोरंजक जानकारी हमें दी। जिस प्रकार की शासनसंस्था होती है, वैसे ही शब्दों की अभिधा भी बदलती जाती है। मराठे और मुसलमानों में विरोध था, इसलिए उर्दू या फारसी के अच्छे शब्द भी विकृतार्थवाचक बनकर मराठी में आये। उदाहरणार्थ 'आसमानी सुलतानी' का मराठी अर्थ है दैवी प्रकोप (Vis Major)। खाद्यवाचक शब्द 'जलेबी' हमने अरबी 'जरायन' से लिया है, और बटन पुर्तगाली 'बुताम' से। 'पणि' 'पणस' 'पण्य' फिनीशिया के व्यापारियों से भारत में आया, 'बभ्रु' बैबिलोन के लोग बैबिरुश से। आर्य भाषाओं का तुरेनियन अथवा सेमेटिक समुदाय की भाषाओं से भी पुराना सम्बंध रहा होगा। हायया (हिब्रू) से होता याज्ञिक (संस्कृत), वेथ (हिब्रू)-वास (संस्कृत), गिमेल (—ऊँट, हिब्रू)—क्रमेल (संस्कृत), माराकात तो मरकत बन गया। इस प्रकार अनेकानेक संस्कृतियों के आदान-प्रदान से युगों से भाषाएँ और उनमें की शब्द सम्पदा बनती रही।

सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार, उत्पादन के साधनों पर जिस वर्ग का स्वामित्व होता है, उसके अनुसार शब्दों के रूप कैसे बदलते हैं, इसका मनोरंजक इतिहास गालियाँ हैं। मैंने सुना था कि एक महाशय गालियों का बृहत्कोष बना रहे हैं, पता नहीं, वह कहाँ तक बढ़ा है, परन्तु, कुछ विदेशी भाषा शास्त्रियों ने ऐसे शापों और क्रोध-वचनों का संग्रह किया है। ईसामसीह के शरीर के विभिन्न अंगों को लेकर कसमें खाने की आदत मध्य-युग योरप में बहुत थी। उदाहरणार्थ 'ओड्स बौडी', 'बौडीकिन्स,' 'उड्स फूट', 'कॉक्स बोन्स', 'स' 'ब्लड', 'स्फॅक्स', 'जाउंड्स' आदि

ईसा के शरीर, पाँव, हड्डियाँ, रक्त, बाल, जरकों को उद्देश्य कर कहा जाता। फ्रेंच के कई ऐसे सम्बोधन इसी प्रकार के धर्म-द्वारा निषिद्ध ईशु-शरीरोल्लेख के कारण हैं—यथा पालसांग्विनी ! पारलाकोरब्लयू, (पार्दिउ), वेंत्रे ब्लिउ आदि।

परन्तु, इन सब वैज्ञानिकों के सहारे हम केवल इतना ही जान सके कि पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में भी समाज-विज्ञान के नियम अवश्य कार्य करते रहेंगे; भाषा को प्राकृतिक रखना होगा; ध्वनि की सार्वजनीनता सर्वत्र मदद नहीं देगी और भाषा का निर्माण एक ऐतिहासिक घटना है, केवल एक 'कमिटी आफ एक्स्पर्ट्स' द्वारा पास किया हुआ प्रस्ताव नहीं।

हिन्दी-पारिभाषिक शब्दावली और कतिपय बाधाएँ

सब से पहली बाधा वही विशेषज्ञ-समिति बनाकर हाथ पर हाथ धरे रहने की प्रवृत्ति है। भाषा जनता बनाती है, वह जनता की सम्पत्ति है, जनता के लिए है—अतः केवल मुट्ठीभर विद्वानों के सिर सारा उत्तरदायित्व डालकर काम नहीं चलेगा।

दूसरी बाधा है हमारे नेताओं के राजनैतिक पूर्वाग्रह। गांधीवादी या कांग्रेसी का आग्रह रहेगा कि भाषा हिंदुस्तानी हो—यानी अर्धनारी नटेश्वर के समान अर्द्ध उर्दू, अर्द्ध हिन्दी। यथा हमें थर्मामीटर के लिए पारिभाषिक शब्द बनाना हो तो गर्मी या उष्णता को उर्दू में कहेंगे आतिश और हिन्दी-शब्द होगा मापक—तो जैसे आतिशमापक या फैसब-ए-ऊष्मा देनेवाला यंत्र। यह हास्यास्पद प्रयत्न होगा। मराठी में छोटा-सा 'तापनली' शब्द प्रयुक्त कर दिया गया है।

हिंदूसभावादी और अन्य हिंदुत्वनिष्ठ व्यक्ति यथा डा० रघुवीर और मौलिचंद्र शर्मा आदि के आग्रह हैं कि शब्द एकदम संस्कृतनिष्ठ ही हों। विदेशी शब्द बहिष्कृत किये जायें। फौलाद को शुद्ध लोह कहा जाय; क्वीनाइन को ज्वरान्तक; 'गिरवी' को भू-प्राधि, जमानत को 'प्रतिभू'। और एक हास्यास्पद उदाहरण दूँ तो चाय की प्याली या 'कप' को उष्ण-कषाय-पेय-पानार्थ-सहस्त-संस्थालिका' 'सकर्ण चैनिक मृत्तिका-भांड' और सिग्नल 'को अग्नि-रथ- गमनागमन-सूचिका-हस्त हरित-द्वय युक्त-लौह-पट्टिका।' इस प्रकार के हास्य के मूल यह हैं कि ऐसे शब्द कृत्रिम होते हैं; वे लोक-प्रचलित नहीं हो सकते और उनमें भाषा के मूल स्रोत, जनता से छिटकने की प्रवृत्ति है। मराठी में ब० वि० दा० सावरकर ने ऐसी भाषा-शुद्धि का आंदोलन चलाया था, जिसके परिणाम-स्वरूप कुछ सरल, अच्छे शब्द मराठी में रूढ़ हो गये—यथा बोलपट (सिनेमा); नभोवाणी (रेडियो) मेघाफोन (मेगाफोन); टंकलेखन (टाइपराइटिंग); शीघ्र-लेखन (शार्टहैण्ड) आदि। परन्तु, कई हास्यास्पद सुझाव गिर गये। बैरिस्टर को निर्बंध-पण्डित, और 'जरा' को 'किंचित्' या 'व' (और) के लिए 'नी' नहीं चले।

दूसरी ओर उर्दूवालों की ओर से यह तरमीम पेश की जाती है कि ऐसे टेकनिकल शब्दों के लिए अरबी से सहायता ली जाय। दशमलव न कहकर आशरिया कहा जाय, आर्थिक न कहकर इक्तसादी कहा जाय या राजदूत के लिए सफीर प्रयुक्त हो। यह आग्रह भी उतना ही व्यर्थ है जितना ऊपर का आग्रह। दोनों असल में दुराग्रह हैं। भारतीय जनता जो कि अधिकांश निरक्षर है, उसके लिए ईकॉनॉमिक, आर्थिक या इक्तसादी एक-से बेमाने हैं। 'रुपये-पैसे की दृष्टि से' कहने पर वह कुछ समझेगा। और पारिभाषिक शब्द-रचना में भी सब से बड़ा ध्यान उसकी प्रेषणीयता, अधिक से अधिक लोग उसे समझ सकें यह देखना तो है ही।

और जो बाधा पेश होगी वह हमारे सौंदर्यवादी, परम्पराप्रिय, रूढ़िवादी लेखकों से। वे कहेंगे, यह तो भाषा को बिगाड़ दे रहे हैं। देहाती शब्द 'कुनैन' या 'ईजेक्शन' को ज्यों का त्यों चलने दो कहा जाय, तो ये भाषा की शुद्धि की सतर्कता रखनेवाले बिगड़ पड़ेंगे। वह 'स्पेलिंग' के दोषमात्र देखनेवाला अध्यापकवर्ग भी बिगड़ उठेगा। कहेगा—हैं! यह 'चरखचेदारों' की जबान कहाँ से आई! भाषा तो कुछ गुरुत्वपूर्ण, कुछ सुविशिष्ट, आभिजात्य लिए हुए ही होनी चाहिए।

परन्तु, इन सब बाधाओं के बावजूद, पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में हमें कुछ-न-कुछ निर्णय तो करना है ही। देखें, अन्य भाषाओं ने इस समस्या को कैसे सुलझाया है।

उपाय और सुझाव

पाश्चात्य भाषाओं ने वैज्ञानिक फार्म्युलों, संकेतचिह्न आदि का एक अंतर्राष्ट्रीय 'कोड' बना लिया है जो समान रूप से काम में लाया जाता है। रूस-जर्मनी की इतनी बड़ी शत्रुता थी, परन्तु, उच्चतर पदार्थ-विज्ञान या गणित में उनके वैज्ञानिक एक दूसरे से लाभ उठाते ही रहे थे—तानाशाहों ने वैज्ञानिकों पर रोक लगाकर उनके संशोधनों का प्रकाशन रोक रखा था, उतना अंश अपवाद रूप छोड़कर। अतः रूसी में इलेक्ट्रोन को 'इलेक्त्रुन' बना लेंगे, और न्यूटन के नियम जर्मनी में भी न्यूटन के ही नियम रहेंगे, रमन-रेज सब जगह रमन रेज हैं और क्ष-किरण सभी जगह क्ष किरण।

परन्तु, पाश्चात्य भाषा बोलनेवालों के पीछे एक बौद्धिक स्तरवाला बहुजन समाज भी है। वहाँ हमारे यहाँ-जैसी व्यापक अशिक्षा का प्रश्न नहीं है। अतः वहाँ की शैली यहाँ ज्यों-की-त्यों नहीं उतार ली जा सकती। हमारे यहाँ भाषावार प्रान्त रचना शीघ्र ही होने जा रही है। हमारा राष्ट्र बृहत्तर आंध्र, संयुक्त महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, महाकोशल, मिथिला आदि जनपदों में बँटेगा, तब शिक्षा शीघ्र ही अनिवार्य और निःशुल्क हो जायगी। तब प्रान्तीय बोलियों का महत्त्व बढ़ेगा और पारिभाषिक शब्दावली को यथाशक्य देशज शब्दों से काम चलाना पड़ेगा। उदाहरणार्थ अब राशन, कंट्रोल शब्द भारत के गाँव-गाँव में प्रचलित हो गए हैं। वैसे ही नोट, रेल, रेडियो, बूट, सिनेमा, मिलिट्री,

करफ्यू, मिल, मशीन इत्यादि शब्द हिंदी में रुढ़-प्राय हो गए हैं, जिन्हें पचा लेना चाहिए। इनका शुद्धीकरण करने बैठना निरर्थक शक्ति का अपव्यय है। कहीं-कहीं अँग्रेजी शब्द देशी रूप प्राप्त कर अपभ्रष्ट हो गये हैं—जैसे सुपरडंट, कलक्टर, कुनैन, लाटसाहब, लालटेन, कंट्रोल, सिगल वगैरह। इन्हें इसी रूप में चलने देना चाहिए। उससे आगे बढ़कर जब कुछ वैज्ञानिक शब्दों में ज्ञान-वितरण का प्रश्न आये, तब उस-उस समाज के आवश्यकतानुसार जो शब्द अधिक प्रेषणीय हो वह काम में लाया जाय। कुछ शब्द अँग्रेजी से हमें ज्यों-के-त्यों ले लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए यथा अल्यूमुनियम, ब्रौंज, कालर, कंपास, डाक्यार्ड आदि। परन्तु, इन्हें लेते समय यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि एक तो इनके पर्याय बनाना असंभव है, या जो पर्यायवाची बनेंगे भी वे मूल से अधिक और कठिन कृत्रिम होंगे। केवल ऐसी दशा में ही विदेशी भाषा के शब्द हिन्दी में लिए जायँ।

प्रांतीय भाषाओं के प्रभावानुसार हिन्दी में भी विभिन्न शैलियाँ, नये-नये मुहावरे चल पड़ेंगे। वे हिन्दी को अधिक समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होंगे। उदाहरणार्थ जब पंडित नेहरू—'मैं आप से कहा चाहता हूँ' यह अलाहाबादी लहजे में कहते हैं, तो उसकी अशुद्धता इतनी ध्यान देने योग्य बात नहीं है। बिहारी लेखकों में इस प्रकार की भाषा-विशिष्टता अधिक है। हिन्दी में जब बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, नेपाली, पंजाबी भाषाभाषी लेखक लिखेंगे तो आखिर वे अपने साथ अपने मातृभाषा के संस्कार तो लायेंगे ही। उनसे हिन्दी को बचाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। नवीन शब्द-भांडार से भाषा विकृत नहीं होती। उलटे, उसमें शब्दच्छटाएँ (Shades of meaning) व्यक्त करने की सामर्थ्य बढ़ती है।

पारिभाषिक शब्द खोजने की अपेक्षा, उन्हें आप-से-आप उगने और बढ़ने देना चाहिए। आवश्यकता आविष्कार की जननी ही नहीं, दाई भी होती है। जहाँ बिलकुल आवश्यक हो, जैसे उच्च शिक्षा, कठिन वैज्ञानिक ग्रंथो के अनुवाद आदि में, वहाँ विशेषज्ञों का सहारा लिया जा सकता है। परन्तु, सर्वत्र दृष्टि जनता के अधिकाधिक लाभ की ही रखी जाय। हिन्दी में खोजने पर हमें विदेशी भाषाएँ जाननेवाले भी मिल जायेंगे। और न मिलेंगे तो अन्य प्रांतीय भाषाओं की मदद हम लें। साथ ही प्रांतीय भाषाओं के ज्ञाता भी मिल जायेंगे। उन सबकी राय लेकर नये शब्द-निर्माण की ओर हम बढ़ें। हिंदी-पत्र-पत्रिकाओं में इस पर खूब, काफी चर्चा हो। नये-नये सरल, सर्वग्राह्य पर्याय सुझाये जायँ और इसी प्रकार यह अधिक अर्थवती और शब्दपूर्ण बने ताकि वह 'राष्ट्रभाषा' के गौरवास्पद स्थान को सच्चे अर्थों में ग्रहण कर सके।

प्रवास की प्रेरणा

ऊपर दिया हुआ निबंध मैंने अखिल भारतीय हिंदी-प्रगतिशील लेखक-संघ के प्रयाग में, अक्टूबर, १९४७ में हुए प्रथम अधिवेशन में पढ़ने के लिए लिखा था। बाद में वह 'हंस' में छपा।

एक साधारण हिंदी सेवी के नाते यद्यपि मैं गत पद्रह वर्षों से हिंदी में कुछ-न-कुछ बराबर लिखते रहा हूँ, गत १५ अगस्त, १९४७ के पश्चात् यह चेतना मुझ में अधिक तेजी से जागृत हुई कि लेखन-कर्म यदि जन-जागरण का एक सशक्त साधन है, तो उसे अधिकाधिक सोद्देश्य बनाया जाए। इसी हेतु से मैं किसी भी राजनैतिक या साहित्यिक सस्था का सदस्य न होने पर भी, लेनूस वादी चिन्तन से सर्वथा मुक्त रहते हुए भी, प्रगतिशील-लेखक-सघ के हिंदी-अधिवेशन में गया, सक्रिय भाग लिया। दिसबर, १९४७ में जोधपुर में अखिल भारतीय हिंदी-कुमार-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व किया। बबई में हिंदी साहित्य सम्मेलन में भी विशेष रूप से भाग लिया—निबध पढे, व्याख्यान दिये, पुराने-नये सभी दृष्टिकोणों के साहित्यिकों से विशेष सम्पर्क बढ़ाया। अच्छे बुरे, नये, पुराने, छोटे-मोटे सभी हिंदी के साप्ताहिक-मासिक पत्र पत्रिकाओं में मैंने सब कुछ, (कहानी, कविता, लघु निबध, परिहास, साहित्यालोचना आदि) सब प्रकार की शैलियों में विपुल लेखन करना इसी हेतु से बढाया कि पत्र-साहित्य से जीवित सम्पर्क बना रहे। स्वयम् भी भाषा-सम्बधी अध्ययन बढता रहे, और हिंदी और उसकी मारफत देश की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की इस विराट आयोजना में मैं अपनी कुछ सेवाएँ दे सकूँ। मैं ने रतलाम से सांस्कृतिक-परिवार से एक त्रैमासिक 'भारतीय सस्कृति' नामक पत्रिका सम्पादित किया जिसमें भारत की सभी भाषाओं के उत्तमोत्तम चुने हुए साहित्य का अनुवाद देते रहने का प्रयत्न किया। इधर एक दो वर्षों में प्रेमी, निराला, राजेंद्र प्रसाद, कन्हैयालाल पोद्दार, कन्हैयालाल मुशी, मीरा, पत और गाधी-श्रद्धांजलि-विषयक जो अभिनदन-ग्रथ हिंदी में प्रकाशित हुए और हो रहे हैं, क्रमश बबई, काशी, मुजफ्फरपुर, पटना, मथुरा, दिल्ली, कलकत्ता, उदयपुर और लखनऊ से—उन सबमें मिलाकर मैंने दो तीन सौ पृष्ठ साहित्य दिया। गांधी-वधोपरान्त गांधीजी के सबध में कविता, लेख, सस्मरण आदि सौ-दो सौ पृष्ठ लिखे। और इस प्रकार कम से कम एक-दो घटे रोज हिंदी लेखन का मैंने नियम बना लिया है। मराठी और अग्रेजी में लिखना है सो अलग।

इसी सक्रिय, रचनात्मक, हिंदी-सेवा के सिलसिले में बबई-हिंदी-साहित्य सम्मेलन में जो कुछ भी मुझपर और पर्याय से सभी प्रगतिशील हिंदी-लेखकों पर बीती, ('हस' के फरवरी अक में मैं ने बबई सम्मेलन या बाबुल का बोल घर लिखा है) उस सबके बावजूद, सम्मेलन या सस्था विशेष से ऊपर हिंदी-कार्य को मानकर, गत तीन मास से म प्रवास प्रचार आदि कार्य कर रहा हूँ। सम्मेलन-द्वारा बताये गये राजनीति शासन शब्दकोश से सबद्ध यह कार्य है। हिंदी के लिए की गई पाँच हजार मील यात्रा का, जो इस लेख के लिखने तक पूरी नहीं हुई है—सक्षेप में ब्यौरा दे रहा हूँ। इस से हिंदी-भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि में प्रयत्नशील व्यक्तियों को विशेष लाभ होगा।

इस वर्ष हिंदी-साहित्य सम्मेलन के पद पर राहुल साकृत्यायन का निर्वाचन अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है। इस निर्वाचन के पीछे व्यक्त होता है, हिं० सा० सम्मेलन आजतक जो

केवल प्रचार-कार्य करता रहा और साहित्यिकों के समादर में उसने जो उपेक्षा-नीति अपनाई, उसके कारण असंतुष्ट मतदाताओं का वह प्रतिश्रय, सम्मेलन के पुरानी चौकट में युगानुकूल नवीन विचार-धारा का प्रवेश भी इसी के साथ हुआ। यद्यपि बहुत-सी बाधाएँ हैं फिर भी हमें विश्वास है कि सम्मेलन में नवीन चेतना आकर रहेगी। अथवा, यदि कोई भी संस्था प्रगति से आँख मूँद ले तो उसका अधिक दिन विकास असंभव है।

प्रवास का आरम्भ

मार्च के प्रथम सप्ताह में राहुलजी का एक पत्र मेरे पास इस आशय का आया कि राजनीति-शासन-सम्बंधी शब्दों का एक बृहत्कोश को वह संकलित-सम्पादित कर रहे हैं, उसके लिए ग्वालियर राज्य, बड़ौदा राज्य, गुजरात-महाराष्ट्र, नागपुर आदि से सामग्री लाकर मैं उन्हें उस कार्य में सहयोग दूँ। मुझे भाषाविज्ञान में तथा प्रवास में वैसे ही रुचि अधिक थी। अत: मैंने इस कार्य के लिए जिस ग्वालियर राज्य के एक कालेज में मैं अध्यापकी करता हूँ, वहाँ के नये निर्वाचित कांग्रेसी शिक्षामन्त्री से छुट्टी माँगी। उदारतापूर्वक हिंदी के इस कार्य के लिए उन्होंने मेरा सवेतन विशेष कर्त्तव्यावकाश स्वीकृत किया और मैं इस काम में कूद पड़ा। सब से पहले मैं ने ग्वालियर के नियम-कानून आदि जो हिंदी में अनूदित हुए थे, वे सब प्रयाग में भिजवा दिये। बाद में मैं बड़ौदा गया। वहाँ सयाजीराव गायकवाड़ ने एक 'सयाजी-शासन-कल्पतरु' नामक तीन-चार हजार शब्दों का आठ भाषाओं में बनाया कोश और वहाँ के स्टेट-प्रेस से छपे सौ से अधिक 'निबंध'—कानूनों के गुजराती अनुवाद जो नागरी लिपि में छपे हैं, और जिनमें कुछ नियमों के पीछे शब्दावली भी दी है—लेकर मैं आगे महाराष्ट्र में गया। बड़ौदा में मैं मराठी के विख्यात समाजवादी लेखक साने गुरुजी से भी मिला।

बंबई में मैं महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो० न० र० फाटक से मिला, जिन्होंने महाभारत के सभापर्व तथा बृहत्कथा और राजतरंगिणि से कैसे अधिकार वाचक शब्द ग्रहण करें, यह बताया और शिवाजी के राज्य-व्यवहार-कोश से किस हद तक सहायता मिल सकती है, यह भी समझाया। महामहोपाध्याय कर्ण जो कार्य इस समय कर रहे हैं, उस से भी हमें मदद मिल सकेगी। वहीं तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी से भेंट हुई, जिन्होंने प्राज्ञ-पाठशाला, कोकजे शास्त्री आदि के सहयोग से सम्पादित धर्मकोश (तीन भाग अबतक प्रकाशित हो चुके हैं) बनाया है। वह कोश भी मैं ने ले लिया और फिर पूना गया। महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद् शास्त्रीय-परिभाषा-संबंधी जो कार्य कर रही है उसकी, तथा ला एकेडेमी आफ पूना के कार्य की जानकारी मैं ने प्राप्त की। वहीं भारत-इतिहास संशोधन मंडल के महामहोपाध्याय द० वा० पोतदार से भी न्याय तथा धर्म-संबंधी ऐतिहासिक शब्दों के विषय में बहुत-से सुझाव मिले। उन्होंने महाराष्ट्र में 'न्यायदीप' नामक जो मासिक, बहुत वर्ष पहले निकलता था, उसकी पुरानी फाइलों की प्राप्ति का मार्ग भी बतलाया।

परिभाषा के व्यावहारिक सिद्धान्त

इसके बाद मैं प्रयाग गया। कास्थवेट रोड पर सम्मेलन के प्रधान कार्यालय के पास ही सत्यनारायण-कुटीर में राहुलजी के साथ कार्य किया। वह सवेरे ६ से रात के ११-१२ बजे तक अविश्रान्त परिश्रम कर १२००० शब्दों का शासन-कोश बना रहे थे। उनके साथ श्रीविद्यानिवास मिश्र थे, जो कि संस्कृत के बहुत गहरे अध्येता हैं। कोश में जो सिद्धान्त सामने रखे गये हैं, वे राहुलजी के निम्न वक्तव्य से प्राप्त होंगे। यह वक्तव्य राहुलजी ने हमलोगों की चर्चा के बाद मुझे दिखाया।

उसी वक्तव्य का आवश्यक अंश इसलिए यहाँ दे रहा हूँ कि डा० रघुवीर या अन्य सज्जनों के परिभाषा कार्य से हमारी प्रणाली की विभिन्नता स्पष्ट हो सके,—

'हिंदी उच्च अध्ययन के लिए पारिभाषिक शब्दों की कमी को पूरा करके अपनी ही नहीं, परन्तु सभी भारतीय भाषाओं की सहायता कर सकती है। इस काम में सभी प्रांतीय भाषाओं को भाईचारे से काम लेना चाहिए।

परन्तु, यह काम बहुत बड़ा जान पड़ता है कि समूचे ज्ञान-विज्ञान को हिंदी में लाया जाये। जिस काम को दूसरे देशों ने २००-३०० वर्षों में किया है, उसे हमें बहुत थोड़े समय में करना है। परन्तु, यह काम हम जल्दी से जल्दी करना है। हिंदी साहित्य-सम्मेलन ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। शासन-शब्द-कोष १०००० से ऊपर शब्दों का बनकर तैयार है, जो प्रेस में जाने तक १३००० शब्दों का हो जावेगा। शुद्ध विज्ञान और कला के अन्य विषयों पर पारिभाषिक शब्द-निर्माण कार्य अन्य संस्थाएँ कर रही हैं, इसलिए सम्मेलन ने पहिले व्यावहारिक विज्ञान की २१ शाखाओं के शब्दों का काम हाथ में लिया है। इसमें करीब सवा लाख शब्द होंगे। यदि सब का सहयोग मिले और पर्याप्त परिश्रम किया जाय तो यह काम एक साल में हो सकता है। यह वैज्ञानिक पारिभाषिक कोष छः जिल्दों में तैयार होगा—चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, भूगर्भ, नौ विमान, रसायन, कृषि।

पारिभाषिक शब्द बनाने में हमने कुछ नियम रखे हैं। हिंदी साहित्य-सम्मेलन की ओर से जो शासन विषयक तथा अन्य व्यावहारिक विज्ञानों के लिए पारिभाषिक शब्दावली और कोश बन रहे हैं, उनमें भाषा-विषयक नीति नीचे दिये सिद्धान्तों पर आधारित होगी।

प्रचलित शब्द रखने की पूरी कोशिश की जायेगी। पारिभाषिक शब्द भी आखिर जनसाधारण के प्रयोग के लिए ही तो बन रहे हैं। वह केवल विशेषज्ञों के लिए ही तो नहीं हैं। बढ़ती हुई साक्षरता और उद्योगीकरण के साथ-साथ जनता व्यावहारिक विज्ञान को अपनी ही भाषा में समझेगी और समझावेगी। और ऐसे समय किसी भी जन प्रचलित शब्द को केवल यह विदेशी

है अथवा अपभ्रंश है इसलिए त्याज्य मानना, भाषा के मूल उद्देश्य जन-सुलभता और जन-सुगमता के विरुद्ध होगा। अतः कोई भी शब्द, चाहे वह अहिंदी प्रांतों का हो, अंग्रेजी का हो या अन्य विदेशी भाषा का, यदि वह बहु प्रचलित है और वह यथार्थ परिभाषा दे सकता है तो उसे यथासम्भव लेना चाहिये।

परन्तु, इन जन-प्रचलित शब्दों के लेने में यह ध्यान रखा जाये कि ये शब्द सारे भारत की दृष्टि से लिए जायँ। पारिभाषिक शब्द कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। उनमें से कई संस्कृत के तत्सम रूप भी हैं। वहाँ प्रधानता ऐसे रूपों को दी जाये जो अधिकाधिक प्रान्तों में बोले जाते हों। यदि कुछ शब्द नये भी बनाने पड़ें तो तीसरे कालम में, यानी दूसरे विकल्प देते समय, सर्व-भारतीय शब्द ही दिये जायँ।

अप्रचलित शब्द

सभी अप्रचलित नये शब्द संस्कृत से लिये जायँ। क्योंकि वही हमारे प्रातीय भाषाओं की ही नहीं बल्कि, बृहतर भारतीय भाषाओं की मूलभाषा है। परन्तु, उसमें भी उच्चार-सौकर्य का ध्यान रखा जाये। साथ ही अर्थ की अलग बारीकियों को भी व्यक्त करने की सुविधा संस्कृत से ही मिल सकेगी! शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी संस्कृत से सहजसाध्य हैं।

नये शब्द बनाते समय दो पद्धतियाँ सुझाई जाती हैं—एक अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को ज्यों का त्यों ले लिया जाये, और दो, सब शब्द केवल संकृत से लिए जायँ। दोनों पद्धतियों की चरम सीमा तक पहुँचाना ठीक नहीं। दोनो विचारों में जो ग्राह्य अंश हैं, उसे लेकर तीसरा नया, मध्यम मार्ग स्वीकार करना होगा।

(अ) अंतर्राष्ट्रीय शब्द कहकर जो अंग्रेजी, जर्मन या फ्रेंच शब्दों की दुहाई दी जाती है, वे केवल पश्चिमी युरप तक सीमित शब्द हैं। पूर्वी युरप, रूस, चीन, जापान और दक्षिण पूर्वी एशिया में वे शब्द प्रचलित नहीं। वहां अनुवादित शब्द प्रचलित हैं।

(आ) परन्तु, जो अंतर्राष्ट्रीय शब्द वस्तुओ के साथ जनता तक पहुँच गये हैं, उन्हें लेना है, जैसे टेलीफोन, रेडियो, इंजिनीयर, डाक्टर, सबमैरीन, विजा, फौज के पद (लेफ्टिनेंट, कमिसनर) आयुधनाम (मशीनगन, ब्रेनगन, टारपीडो) आदि। परन्तु, निराकार भाव-वाचक शब्द या अप्रचलित साकार वस्तुओं के व्यंजक शब्द संस्कृत से लिया जाय।

(इ) जो शब्द वस्तुओं के साथ जनता तक पहुँच गये हैं, उनके लिए संस्कृत शब्द गढ़ना आवश्यक है, जैसे रेल, टाइपराइटर, टिकिट, सिगनल आदि। परन्तु, जहाँ संस्कृत शब्द और देशज शब्द की स्पर्द्धा हो, देशज शब्द को प्रधानता दी जाय।

(इ) संस्कृत शब्द जो तत्सम के रूप में शिक्षित जनता के सामने पहुँच गये हैं, उनसे संस्कृत के मूल शब्द लिए जायँ। संस्कृत ही नये शब्द गढ़ने का मूल उपादान होगा।

इस प्रकार ऐसे अंतर्राष्ट्रीय या संस्कृत शब्द जो कि अप्रचलित हों या केवल विशेषज्ञों में प्रचलित हों, अग्राह्य हैं। सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विज्ञान में निश्चय ही संस्कृतमूलक शब्द अधिक आवेंगे।

परिभाषा निर्माण-पद्धति

किसी भी अंग्रेजी या अन्य पारिभाषिक शब्द का पर्यायवाची पहिले प्रचलित, देशज शब्दों में देखे। यदि न हो तो फिर नया शब्द बनाया जाय, जिस में शब्द को प्रयोग में लानेवाले वर्ग या जन साधारण का ध्यान रखा जाये। जहाँ केवल सैद्धान्तिक अथवा विभाजन विषयक शब्दावली हो (जैसा वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान आदि में) वहाँ संस्कृत से सहायता लेना आवश्यक है। इसमें इन बातों का ध्यान रखा जावे —

(अ) शब्दों के समान व्युत्पत्तिक-ग्रहण में एकता का ध्यान रखा जाये, परन्तु, वह एकता यांत्रिक न होकर, भाषा के विकास में जैसी विकास की स्वतन्त्रता देखी जाती है, वैसा ही ध्यान में रखकर हो।

(इ) शब्दों के निर्माण में, समास में संस्कृत-असंस्कृत का कोई विचार न रखा जाये। केवल यह ध्यान अवश्य रखा जाये कि वह जनसाधारण को खटकनेवाला न हो।

(ई) बड़े सामासिक, उच्चारण क्लिष्ट शब्दों की अपेक्षा समानार्थी, सरल शब्द सदा अधिक उपयोगी होंगे।

इस कोश के निर्माण में, अन्य प्रान्तों के कार्य से जो सहायता हमें मिली उसमें पश्चिम बंगाल की परिभाषा समिति द्वारा प्रकाशित छोटी सी पुस्तका से बहुत साथ मिला। घनश्यामसिंह गुप्त द्वारा (मध्यप्रान्त से, प्रकाशित) पारिभाषिक शब्दावली में से भी हम ने बहुत सा लिया है। हिन्दी में प्रकाशित राजनीति-शब्दावली का शासन-शब्द-कोश, सीतापुर की हिन्दी परिषद् से प्रकाशित कार्य, सुखसम्पतिराय भंडारी और भगवान दास आदि के कार्य से जहाँ तक सम्भव हुआ, और जो कुछ ग्राह्य था, उसे हमने ग्रहण किया। सिद्धान्तों में इन सब कार्यों में जो समानता है या थी, वह तो बंगाल सरकार की परिभाषा समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तिका की भूमिका के इन दो परिच्छेदों से व्यक्त हो जावेगी।

और साथ ही घनश्यामसिंह गुप्त द्वारा प्रकाशित डा० रघुवीर की पारिभाषिक शब्दावली की भूमिका का यह अंश महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है।

INTRODUCTION

The words compiled and coined by us may in some cases seem difficult and in the first instance not very pleasing to the ear. That is mainly because English had so long been our State language and we had at best given a step-motherly attention to our mother-tongue. In the past, we very often made no earnest efforts to find out Bengali equivalents of English terms, or, even when we had made such efforts, they did not go very far. Any issue of the Bengali newspapers will furnish ample proof of our statement : it will be found bristling with terms bodily lifted from the English language. So far, we have perhaps sometimes translated "Accounts" as हिसाब and "Accountant" as हिसाब-रक्षक, but we hardly ever reached as far as the "Accountant-General". In the past we seldom thought of what difficulty in translation we might have to face in case we accepted हिसाब as the Bengali equivalent of "Accounts". If, however, "Accounts" is translated as गणन, this difficulty may be removed to a very large extent, for गणन can easily take us to गाणनिक (Accountant) and महागाणनिक (Accountant-General). गाणनिक is a very old term, it is shorter and easier to pronounce, and there can surely be no objection to its acceptance. In the same way, if the term "Court" is translated as either अदालत or विचारालय, we may have to face some hurdles which we may find it extremely difficult to negotiate. विचारालय may serve in the case of the "High Court", but "Small Causes Court" may prove an obstacle forcing us to come down to अदालत, though अदालत will appear to many not dignified enough for the "High Court". If, however, we translate the word "Court" as धर्माधिकरण, then "High Court" can easily be called महाधर्माधिकरण, the "Small Causes Court" अवर धर्माधिकरण, "Criminal Court" दंडाधिकरण, and "Civil Court" न्यायाधिकरण. A single word अधिकरण may serve our purpose in all these cases, with only some suitable qualifications. This word is also a very old one. Though we have some sort of Bengali synonyms for "Accounts" and "Courts", the words "Registration" and "Registrar" appear to have so far baffled all our efforts for giving them a Bengali dress. रेजिस्ट्रीकरण as the Bengali equivalent of "Registration" marks the utmost limit that has been reached in connection with these two words. But निबंधन and निबन्धक will be the appropriate words in the sense of "Registration" and "Registrar". They have the sanction of Kautilya's *Arthashatra* and some old inscriptions.

A complaint regarding our terminology may be that we have taken the help of Sanskrit in a very large measure But there is no other alternative if technical words have to be framed in Bengali Bengali and its sister-speeches like Hindi, Gujrati, Marathi, etc, are no longer what is known in English as "building languages", they have become "borrowing languages" They no longer find it feasible to create new words with their own elements They rather find it easier to borrow words straight from Sanskrit which is in the status of a mother to them, or to build new words, if necessary, with the help of Sanskrit roots and words, and then to use them Bengali, Hindi, Marathi and the rest now depend upon Sanskrit—they are not free to utilise their own basic elements Bengali and many other languages spoken in the different provinces in the Indian Dominion have thus a most intimate connection with Sanskrit Words taken or derived from Sanskrit are therefore least likely to have the air of exotics in our tongue, they have far greater chances of smooth absorption than words taken from any other language Ever since the development of the Prakrit dialect from Sanskrit, for the last 2,500 years, Sanskrit has been acting as the great feeder to all the Indian languages Besides, Sanskrit has an immensely rich vocabulary and affords, in its various suffixes and prefixes, an easy machinery for the making of new words In this respect, Sanskrit is, to say the least, unique in India A single root कृ will give us innumerable such terms as करण, करणिक, महाकरण, अधिकार, अधिकर्ता, etc Because we had so long neglected our mother-tongue, we have forgotten the various meanings which these terms convey If we would spend on the cultivation of our mother-tongue one-fourth of the time and labour we had so long devoted to mastery of English, the Bengali terms which now appear unfamiliar to us will no more seem so

April 15, 1948

एक सामान्य भ्रम है, जिसको मैं दूर करना चाहता हूँ। कहा जाता है कि जो शब्द प्रचलित हो गये हैं, उनको ही रखना चाहिये, किन्तु यह एक हद तक ही सम्भव हो सकता है, जब हम आगे बढते हैं, तो इससे हमारा रास्ता रुक जाता है और प्रगति मे बड़ी बाधा उपस्थित हो जाती है।

मौलिक अंग्रेजी में लगभग १,००० शब्द हैं, जिनसे साधारण सब काम चल सकता है, किन्तु किसी विज्ञान के एक अग में ही हजारों शब्द हैं। साधारण प्रयोग के शब्द बहुत ढीले-पोले हैं—उनसे विचार के सूक्ष्म भाव व्यक्त नहीं होते। गाधी चौक में होनेवाली सभा के लिये "सभापति"

शब्द चल सकता है; किन्तु विधान-सभा में भाषण देते हुए, कलकत्ता कारपोरेशन, या लिमिटेड कम्पनी के प्रमुखों को आप "सभापति महोदय" नहीं कह सकते। एक को "स्पीकर", दूसरे को "मेयर" और तीसरे को "चेयरमन" कहना पड़ेगा। इसी प्रकार तांगेवाले से गाड़ी पकड़ने के लिये "स्टेशन ले चलो" कहने से काम चल सकता है। किन्तु भिन्न-भिन्न केन्द्रों, जैसे—रेडियो, सेना आदि के केन्द्रों के लिये "स्टेशन" कहना हास्यास्पद होगा; अथवा उससे बननेवाले शब्दों, जैसे-Stationed के लिये आप क्या कहेंगे? इस प्रकार "स्टेशन" सरीखा प्रचलित शब्द भी सभी जगह काम न देगा। इस तरह के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। विज्ञान के किसी विशेष क्षेत्र में या शासन की शाखा में यदि हम एक विदेशी प्रचलित शब्द रखते हैं, तो हमें उसके साथ उससे निकले हुए बीसियों व्युत्पन्न और संयुक्त शब्द ग्रहण करने पड़ेंगे, जो कि नितान्त अप्रचलित हैं। सारा प्रश्न सीधा यह है—या तो हम एक प्रचलित शब्द के साथ उसका सारा अप्रचलित परिवार अपने ऊपर लादें, अथवा उसे छोड़कर इस सारे भार से मुक्त हो जावें। इसका केवल एक ही उत्तर हो सकता है।

इससे हम हठात् दूसरी सीढ़ी पर पहुँचते हैं। अरबी और फारसी से निकले हुए शब्दों के विषय में भी सोचना पड़ेगा। पहले मैं भी समझता था कि हम इस प्रकार के शब्द ले सकते हैं। किन्तु जितना अधिक मैं विचार करता हूँ या यों कहूँ कि हिन्दी शब्द गढ़ने का काम करता हूँ, विशेष विज्ञानों और शासन के कार्यों में इसको असम्भव पाता हूँ। हमें या तो संस्कृत धातुओं से शब्द लेना होगा अथवा फारसी-अरबी से—साधारण बोलचाल की भाषा की सीमा से आगे हम दोनों को एक साथ ले नहीं सकते। Law-शब्द ही को ले लीजिये। हमें Rules, Ordinances, Regulations and Orders आदि अनेक शब्दों में भेद करना होगा। व्युत्पन्न और संयुक्त शब्दों को भी पढ़ना पड़ेगा। केवल Law के लिये "कानून" शब्द प्रचलित है, किन्तु जब हमें उससे संबंधित अनेक शब्द बनाने पड़ते हैं तब या तो हमें अनेकों फारसी और अरबी के सर्वथा अप्रचलित शब्दों को लेना पड़ेगा, जिनका हमारी भाषा से कोई संबंध नहीं अथवा "कानून" सरीखे प्रचलित और प्रिय शब्द को भी छोड़ना पड़ेगा। यह चक्र बढ़ता ही जाएगा। अब "कानून" के उदाहरण को लीजिये:—

अंग्रेजी	संस्कृत के आधार पर हिन्दी	अरबी के आधार पर उर्दू
Law	... विधि	... कानून
Legal	... वैध	... कानून मुरव्वजा
Legalist	... विधिपरायण	... निजाम बिल अम्ल का कायल
Lawless	... विधिहीन or विधिविरुद्ध	... कानून शिकन or मुताल्लिक उल्-एनान
Legislative	.... विधायी	... मुकन्नन or कानून साजान

Legislator	विधायक	मुकन्नन
Law-maker	विधिकर्ता	वाजये कवानीन

Law शब्द के परिवार में पचास से कम शब्द न होंगे। इनमें से केवल छ ही उदाहरण के लिये दिये गये हैं। विशिष्ट क्षेत्रों के लिये हमें या तो संस्कृत धातुओं से शब्द बनाने पड़ेंगे अथवा अरबी-फारसी से—बीच का कोई रास्ता नहीं। हमने संस्कृत से शब्द बनाने का निश्चय किया है। कारण स्पष्ट है। एक मुख्य कारण यह है कि भारत सघ के अधिकाश प्रान्तों में वे शब्द समान हैं। हिन्दी, मराठी, बँगला, गुजराती आदि सभी भाषाएं संस्कृत से निकली हैं और दक्षिण की द्राविड़ी भाषाओं में भी कन्नड़, तेलगू, मलयाली संस्कृत-प्रचुर हैं।

कुछ मित्रों का यह आक्षेप सुना गया है कि इस पुस्तिका के शब्द कुछ कठिन हो गये हैं। मैं इस आरोप को स्वीकार नहीं करता। यह निःसन्देह सच है कि हमलोगों में से बहुतों के लिये इसके अनेकों शब्द अथवा उनका प्रयोग नवीन है। इस दृष्टि से तो प्रत्येक नया शब्द (अथवा उसका नूतन प्रयोग) कठिन कहा जा सकता है। इस स्थिति से कभी छुटकारा मिल नहीं सकता, जब तक कि ज्ञान की अनेक शाखाओं के समस्त प्रगतिशील विचारों को हम अपने सामान्य प्रयोग के शब्दों तक ही (जो बहुत थोड़े हैं) सीमित न रख सकें। यह कल्पना करना निपट अज्ञानता होगी कि हमारे साधारण बोल-चाल की हिन्दी अथवा मराठी शब्द कोष, विधान सभा (अथवा विधि-सूचना) जैसे विशेष ज्ञान के विषय के लिए पर्याप्त होगा, जबकि वह प्रारम्भिक बीजगणित अथवा त्रिकोणमिति के समान विषयों के लिए भी पर्याप्त नहीं है।

जो व्यक्ति किसी सार्वजनिक सभा में हिन्दी अथवा मराठी में धाराप्रवाह भाषण दे सकता है, उसे यदि आप रसायन-शास्त्र अथवा पदार्थ-विज्ञान की साधारण पुस्तक का भी कोई पृष्ठ दें, तो उसे वह समझ नहीं सकेगा। यही बात किसी प्रशासन की विशिष्ट शाखा विषयक पुस्तक की भी है। यह अड़चन हिन्दी अथवा मराठी की ही नहीं—वह तो संसार की समस्त भाषाओं पर भी लागू होता है और अंग्रेजी पर भी। जो विद्यार्थी अंग्रेजी साहित्य लेकर एम० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हो, वह भी चलन कलन (Integral Calculus) किंवा शाकव छेद (Conic Section) का एक पृष्ठ भी न समझ सकेगा और प्रसंविदा अधिनियम (Contract Act) के किसी पृष्ठ में अनेकों नवीन शब्द पावेगा। जब अंग्रेजी में यह दशा होती है, तो हिन्दी तथा मराठी में क्यों आश्चर्य होना चाहिये?

अब हम यह देखें कि हिन्दी के शब्द (उनकी नवीनता के अतिरिक्त) क्या स्वयं भी कठिन हैं। मेरा दावा है कि यदि हम उनसे अभ्यस्त हो जावें, तो वे अत्यन्त ही सरल लगेंगे। वे हमें इतनी सुगमता से याद हो जाते हैं, जितनी सरलता से अंग्रेजी शब्द अंग्रेजों को भी याद नहीं हो सकते। इसका कारण सुस्पष्ट है, हमारे शब्द काल्पनिक नहीं, वरन् वैज्ञानिक हैं। शब्द स्वयं ही अर्थ को बताते हैं।

हमने संस्कृत के मूल शब्द का आधार लिया है, अतः वे अर्थगर्भित हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी में अधिकांश शब्द अर्थ के द्योतक नहीं होते। उनका अर्थ व्यवहार से ही स्थिर होता है। उदाहरण के लिये "Bill" (बिल) शब्द को लीजिये। बिल अन्त में जाकर "Law" (लॉ) बनता है। "बिल" "लॉ" का पूर्व रूप है, परंतु अंग्रेजी के "बिल" शब्द और "लॉ" शब्द में कोई शाब्दिक सम्बन्ध नहीं है। केवल "लॉ" शब्द को जाननेवाला आदमी "बिल" शब्द के अर्थ का कुछ भी अनुमान नहीं कर सकता। इसके प्रतिकूल हमारे "विधि" और "विधेयक" शब्दों को लीजिये। "विधि" शब्द के अर्थ को जाननेवाला "विधेयक" शब्द के अर्थ का अनुमान लगा सकता है। जो आगे जाकर विधि बने, वह 'विधेयक'। विधेयक शब्द अर्थगर्भित है, सार्थक है। जिस भाव का यह द्योतक है, उसे यह शब्द ही स्वयं बता सकता है; "बिल" के सदृश मूक नहीं, काल्पनिक नहीं।

प्रवास का निष्कर्ष

इन्हीं सैद्धान्तिक समानताओं को सामने रखकर हमने बंगाल-उत्कल-बिहार-मध्यप्रांत-पूर्व पंजाब का दौरा करने का विचार किया। युक्तप्रात-महाकोसल-पूर्व पंजाब और बिहार ने तो अपनी राजभाषा हिन्दी को घोषित कर ही दिया है। मध्यभारत के राजस्थान, विंध्य मत्स्य तथा माल के रियासती संघों को भी हिंदी को व्यवहार में लाने में कोई आपत्ति नहीं। इस प्रकार उत्तर में अमृतसर से दक्षिण में पूना तक, पश्चिम में सौराष्ट्र से पूर्व में आसाम तक इसी प्रकार हिंदी राष्ट्रभाषा को पूर्णतः सहयोग मिले, तो हमारी सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण रखने में बहुत बल मिलेगा। विशेषतः आज की प्रांतीयता की और प्रादेशिकता की दुर्भावनाओं के बढ़ते हुए छोटे-छोटे स्वार्थों के विषैले वातावरण में यदि स्वस्थ और नीरोग चिन्तन का कोई एकमात्र मार्ग है, तो वह इसी प्रकार शैक्षणिक, साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक और अनुसंधानात्मक कार्यों में अंतर्प्रान्तीय समन्वय और सहयोग निर्माण करना। हिंदी ही इस कार्य को सबसे अच्छी तरह से कर सकेगी, बशर्ते की वह जन-भाषा बनने का पूरा उत्तरदायित्व वहन कर सके।

आज मेरे मत से हिंदी का सबसे बड़ा नुकसान वे लोग कर रहे हैं, जो उसे साम्प्रदायिकता के प्रचार के लिए एक ओट बना रहे हैं। संस्कृत-निष्ठ हिन्दी से सावरकर की हिंदुत्वनिष्ठ हिंदी की अगली सीढ़ी बहुत पास है। जहाँ हम वैज्ञानिक दृष्टि से, अंतर्प्रान्तीय एकता की दृष्टि से, वृहत्तर भारत की दृष्टि से लंका-जावा-सुमात्रा-बाली-बर्मा-इंडोनेसिया-इरान और रूस तक से अततः सांस्कृतिक ऐक्य स्थापना के लिए परिभाषा-शब्द भारत-ईरानी भाषा-मूल से ग्रहण करने को उत्सुक हैं, वहाँ ये सम्प्रदायवादी भाषा की शक्ति को कुंठित कर डालते हैं; उसकी स्वतंत्र गति को, आत्मनिर्भर विकास-क्रम को जड़ बना देना, मृत कर डालना चाहते हैं। अतः इस परिभाषा के प्रश्न को केवल भावनात्मकता से नहीं देखना चाहिये। कुछ ठंडे दिमाग से, शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से सोचना अधिक उपयुक्त होगा।

कलकत्ते में दस दिन रहे। प्रधान मंत्री, प्रधान सचिव, परिभाषा-समिति के विद्वान, हिंदी और बंगाली के प्रमुख पत्रकार, श्रमजीवी पत्रकार, बंगीय हिंदी परिषद, बंगीय साहित्य परिषद, प्रगतिशील लेखक-संघ आदि संस्थाओं से हम मिले। व्यक्तियों के नाम से तो माननीय डॉ० विधानचंद्र राय, श्री सुकुमार सेन, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, राजशेखर बसु, सजनीकान्त दास, रमेशचन्द्र मजुमदार, सर यदुनाथ सरकार, अतुल गुप्त, सुरेश मजुमदार, सत्येंद्र मुजुमदार, मन्मथ राय, दुर्गामोहन भट्टाचार्य, पातंजलि भट्टाचार्य, चपलाकान्त, मोनींद्र राय, प्रमथ बिशि आदि बंगाल के प्रमुख भाषाविज्ञ साहित्यिक तथा अधिकारियों से हम मिले। हिंदी के सभी बड़े और छोटे, पुराने और नये, धनी और गरीब लेखकों से, यहाँ से निकलनेवाले मासिक-साप्ताहिक और दैनिकों के श्रमजीवी लेखकों से, संचालकों तक सबसे मिले। और, मारवाड़ी तथा राजस्थानी समाज के प्रमुख व्यक्तियों से भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। इस सबसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी लेखकों में हिंदी राष्ट्रभाषा बनाने और उसमें पारिभाषिक शब्दावली का सभी प्रांतों में साम्य लाने के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं। पत्रकार तो इसके लिए सर्वाधिक उत्सुक हैं, क्योंकि उन्हें प्रतिदिन अनुवाद-कार्य करना पड़ता है और 'डोमिनियन' और कॉलोनी दोनों के लिये उपनिवेश से नहीं काम चल सकेगा, यह वे अच्छी तरह जानते हैं।

उत्कल में तो हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए और भी अनुकूल वातावरण और उत्साह मैंने पाया। कटक में चार पाँच दिन रहा, जिसमें उस प्रांत के तत्कालीन गवर्नर डा० कैलासनाथ काटजू, प्रधान सचिव श्री हरेकृष्ण मेहताब, पवक्ता (स्पीकर) श्री नन्दमोहन पटनायक, शिक्षामंत्री निंगराज मिश्र तथा उड़िया भाषा और साहित्य के विद्वान प्रो० आर्तदास महन्ती, स्वामी विचित्रानन्द दासजी आदि से जो भेंट हुई, उससे मुझे यह जान पड़ा कि ओरिया भाषा, जो कि मराठी और बँगला से मिलती जुलती सी है और जिसमें संस्कृत बहुलता अधिक है, उसमें ऐसा कोई कार्य अभी नहीं हुआ है और, मेहताबजी के शब्दों में, हिंदी साहित्य सम्मेलन यह कार्य करे, उत्कल राजनीति-शब्दों को ज्यों-का त्यों ले लेने में आपत्ति नहीं अनुभव करेगा। मध्यप्रांत में महाकोसल, महाविदर्भ की राजनीतिक स्पर्द्धा से थोड़ा सा विरोध जान पड़ता है, परंतु वह भी शीघ्र ही अपेक्षित हो जायगा। और, यद्यपि एक ओर प्रादेशिकता का बढ़ता हुआ विष देश को खंडित बनाता-सा दिखाई दे रहा है, ऐसा भय है, वहाँ दूसरी ओर देश की सांस्कृतिक और आत्मिक एकता के तत्त्व भी सद्भावनाशील व्यक्तियों में निश्चितरूप से अधिकाधिक बढ़ रहे हैं।
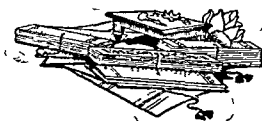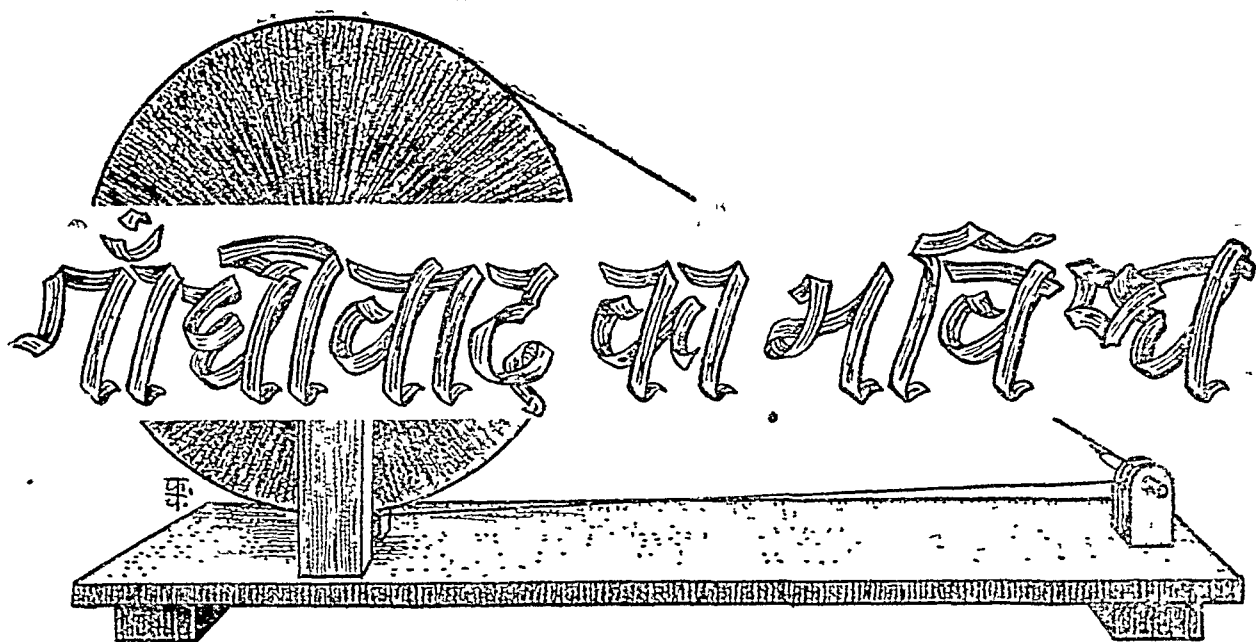
[डा० देवराज, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा]

३० जनवरी, सन् १९४८ ई० को भारत की साम्प्रदायिकता ने युग-पुरुष गांधीजी के प्राण ले लिये। मानव-जाति के इतिहास में महापुरुषों के साथ पहले भी ऐसा दुर्व्यवहार किया किया है; महात्मा सुकरात को विष का प्याला पिलाया गया और ईसा को सूली पर चढ़ाया गया; इसी प्रकार मुहम्मद साहब को अपनी जन्म-भूमि छोड़कर भागना पड़ा और सत्यान्वेषी को जेल में सड़ना पड़ा। मानव-जाति ने अक्सर अपने महापुरुषों का उनके जीवनकाल में निरादर किया; किन्तु हमारे देश के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ कि केवल मत-विभिन्नता के कारण किसी महापुरुष का प्राण-हरण किया गया हो। इस दृष्टि से, यह देखते हुए कि गांधीजी वर्त्तमान स्वतन्त्र भारत के निर्माता और पिता थे, उनकी हत्या हमारे देश के लिए दोहरा कलंक है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश के इतिहास में, और विश्व-इतिहास में, गांधीजी का नाम अमर रहेगा। उनकी गणना विश्व के इने-गिने महापुरुषों में होगी। बहुत काल से मनीषी लोग गांधीजी का नाम बुद्ध और ईसा के साथ जोड़ते आये हैं; अवश्य ही गांधीजी, सभी दृष्टियों से, विश्व के इन महत्तम पुरुषों के समक्ष थे। प्रश्न यह है कि गांधीजी के विचार और शिक्षाएँ कहाँ तक और कब तक मानव-जाति को प्रेरणा देती रहेंगी? गांधीजी [illegible] गांधीवाद नामक वस्तु का भविष्य क्या है?

यह स्वीकार किया जा सकता है कि गांधीजी के निधन से पहले उनके विचार—अर्थात् गांधीवाद—क्रमशः प्रभाव-शून्य होते जा रहे थे। सर्वत्र सैनिक-शक्ति-सम्पन्न भारत-राष्ट्र के निर्माण की माँग एवं संकल्प उद्घोषित हो रहे थे और साथ ही हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रभाव बढ़ रहा था। और, अब उनकी मृत्यु के बाद, यह भी माना जा सकता है कि हिंदू-सभा और संघ की शक्ति क्रमशः क्षीण हो रही है और होती जायगी। किन्तु यह दोनों बातें गांधीवाद के अंग—अर्थात् उनकी साम्प्रदायिक एकता की योजना को छूती हैं, वे सम्पूर्ण गांधीवाद के उत्थान-पतन का प्रतीक नहीं हैं।

अपने सम्पूर्ण अथवा व्यापक अर्थ में गांधीवाद सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों से अनुप्राणित वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय जीवन के संगठन की एक सांगोपांग योजना है। उस योजना में एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के, एक समाज द्वारा दूसरे समाज के दबाए अथवा पीड़ित किये जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। गांधीवादी योजना न सिर्फ शोषण के विरुद्ध है, बल्कि उन परिस्थितियों को बनाये रखने के भी विरुद्ध है, जो व्यक्ति के स्वातंत्र्य को नष्ट करके शोषण को जन्म देती हैं। साथ ही गांधीवाद शोषण तथा अत्याचार का अन्त करने के लिए एक नई संघर्ष-पद्धति का निर्देश करता है। उसका मानवता के आर्थिक तथा अन्य सम्बन्धों एवं आदर्शों के प्रति भी अपना दृष्टिकोण है। वस्तुतः गांधीवाद एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन है और प्रस्तुत लेख में हम उस समग्र दर्शन के बारे में सोच रहे हैं।

सुविधा के लिए हम गांधीवाद को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं, (१) गांधीजी का वैयक्तिक जीवनादर्श, (२) उनका सामाजिक जीवनादर्श और (३) उनका राजनीतिक संघर्ष अथवा अत्याचारी से संघर्ष करने का आदर्श।

गांधीवाद का प्रसार, उसकी सफलता और असफलता

भारतीय जनता में गांधीजी के व्यक्तित्व और उनकी शिक्षाओं के इतने अधिक प्रभाव का क्या रहस्य था? पहली बात यह थी कि भारत की निरीह, निरस्त्र जनता ने गांधीजी में एक निर्भय त्राणकर्त्ता के दर्शन किये, दूसरे, जनता की परम्परागत धर्म-भावना ने गांधीजी को अवतार-पुरुष के पद पर प्रतिष्ठित किया। भारत में आस्तिकता की भावना प्रधान है और गांधीजी बराबर ईश्वर के नाम पर अपना उपदेश देते थे, जिससे जनता पर बहुत प्रभाव पड़ता था। गांधीजी का व्यक्तित्व सीधे भारतीय जनता की धर्म-भावना को प्रभावित करता था।

किंतु भावना पर आश्रित मनोवृत्ति और व्यवहार अपेक्षाकृत कम स्थायी होता है, इसके विपरीत वे विश्वास और क्रिया-कलाप, जो व्यक्ति की अपनी तर्क-बुद्धि पर आधारित होते हैं, अधिक सिद्ध होते हैं।

गांधीजी की दृष्टि में मनुष्य की तर्क-बुद्धि, वह बुद्धि जो आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता की जननी है, विशेष महत्त्व नहीं रखती थी। यद्यपि गांधीजी परम मेधावी पुरुष थे, फिर भी वे तर्क से अधिक विश्वास पर बल देते थे। वे स्वयं भी परलोक तथा ईश्वर में विश्वास करते थे और कहा करते थे कि मैं सदैव ईश्वर की ही प्रेरणा से काम करता हूँ। गांधीजी के अनुसार—और उनका मत भारत की प्राचीन मान्यताओं के अनुकूल ही है—जीवन का ध्येय सुख-भोग नहीं, अपितु नैतिक उन्नति-द्वारा परलोक सुधारना ही है। इसलिए वे वैयक्तिक जीवन में सदैव आत्म-निग्रह, ब्रह्मचर्य्य, त्याग तथा अपरिग्रह की शिक्षा देते थे। परम्परागत धार्मिक भावनाओं के अनुकूल होने के कारण यह शिक्षायें भारतीय जनता को रुचती थीं। किन्तु, यह समझना भूल होगी कि ये शिक्षाएँ जनता पर स्थायी प्रभाव भी डालती थीं। इस प्रभावहीनता का प्रधान कारण हमारा भौतिकवादी युग था।

निष्कर्ष यह कि गांधीजी का वैराग्यवाद और अपरिग्रहवाद व्यक्तिगत जीवन के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेंगे, इसमें संदेह है। बात यह है कि आज के मनुष्य का दृष्टिकोण क्रमशः ऐहलौकिक होता जा रहा है। आज की सभ्यता मनुष्य-केन्द्रित है; वह प्रत्येक सिद्धान्त और व्यवहार का मूल्यांकन "मानव-हित" अथवा "जन-हित" की—और यह हित पूर्णतया इसलोक का हित है, परलोक का नहीं—अपेक्षा से करती है। इस "हित" को सीमित करने का वह कोई कारण नहीं देखती। अतः परलोक के लिए इस लोक के सुखभोग का बलिदान करने का विचार उसे सह्य नहीं है।

अब गांधीजी के जीवन-दर्शन का दूसरा पहलू लीजिए जिसका सम्बन्ध सामूहिक जीवन से है। हमारी धारणा है कि गांधीजी इस युग के महान् क्रान्तिकारी विचारक हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि भारतीय ऋषियों की भाँति, गांधीजी आत्मनिग्रह तथा अपरिग्रह अर्थात् सन्तोष के पक्षपाती हैं। इसी सिद्धान्त से यह अनुगत होता है कि बहुत-से यांत्रिक आविष्कार और तरह-तरह की भोग-सामग्री का निर्माण, अन्ततः, मानव-जाति के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं। गांधीजी का कथन है कि, 'मैं यांत्रिक उन्नति से चकित नहीं हूँ, मशीनें मेरी आँखों में चकाचौंध उत्पन्न नहीं करतीं।' गांधीजी का विचार है कि बढ़ती हुई आवश्यकताएँ और उन्हें पूरी करने के साधन मनुष्य की सुख-वृद्धि न करके उसकी आत्म-निर्भरता को क्षत करते हैं। आज जो पूँजीपतियों द्वारा जनता के शोषण और राज-शक्ति के नियंत्रण की बात कही जाती है, उसका यही कारण है। मनुष्य पहले आवश्यकताओं को बढ़ाता है और फिर उनका गुलाम बन जाता है। इसीलिए गांधीजी आवश्यकताओं को कम करने और उद्योग-धन्धों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं। मशीनों के शत्रु नहीं, पर वे चाहते हैं मशीनें इतनी छोटी हों कि प्रत्येक गाँव में पहुँचाई जा सकें और चन्द व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित एवं परिचालित हो सकें। ऐसी मशीनें—जैसे कपड़ा सीने की सिंगर मशीन—मनुष्य की सुख-वृद्धि करेंगी। इसके विपरीत बड़ी-बड़ी दैत्याकार मशीनें, जैसे कपड़े तथा चीनी की मिलें, मनुष्य को परावलम्बी अतएव गुलाम बनानेवाली हैं। बड़ी मशीनें पूँजीपतियों के नियन्त्रण और प्रभुत्व को जन्म देती हैं; वे लाखों-करोड़ों मनुष्यों को

गुलाम बनाने का उपकरण हैं। किन्तु, यदि मशीनों पर राज्य का अधिकार हो—जैसा कि समाजवाद चाहता है—तो ? तब भी समस्या सुलझती नहीं, तब भी जनसाधारण की गुलामी या परावलम्बिता जहाँ की तहाँ रही। गांधीजी इस बात के विरुद्ध हैं कि बहुत सी शक्ति राज्य में केन्द्रित हो, क्योंकि उस दशा में जनता राज्य के सचालकों के हाथ की कठपुतली और उन पर निर्भर हो जायगी। अत जनता की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिए यह आवश्यक है कि वह जीवन की मौलिक जरूरतों—अन्न-वस्त्र आदि—के लिए किसी की मुहताज न हो।

इस मन्तव्य के विरुद्ध कहा गया है कि वह अनाधुनिक है—गांधीजी इतिहास को पीछे की ओर मोड़ना चाहते हैं, मशीनों द्वारा प्रभूत एव आशु उत्पत्ति के बदले वे मानवी हाथों द्वारा थोड़ी तथा समय-साध्य उत्पत्ति के पक्षपाती हैं, इत्यादि। उत्तर में गांधीजी शारीरिक श्रम की महत्ता पर जोर देते हैं, मशीनों द्वारा बढनेवाली बेकारी का सकेत करते हैं और कहते हैं कि मशीनयुगीन मनुष्यों का खाली रहना खतरनाक है। यह भी कहा जा सकता है कि मशीनों की वृद्धि ने वस्तुत मनुष्य को अधिक अवकाश नहीं दिया है, आज का मनुष्य जितना व्यस्त है, उसका दशमांश भी प्राचीन मनुष्य न था। 'मशीनें मनुष्य को अधिक अवकाश देंगी', यह निष्कर्ष सिद्धान्त में ठीक लगता है, पर व्यवहार में वैसा नहीं है। बढ़ती हुई मशीनें मनुष्य की आवश्यकताओं और व्यस्तता—दोनों को बढाती हैं।

हमारा अनुमान है कि गांधीवादी समाज-सगठन के पक्ष में बहुत-कुछ कहा जा सकता है। उसमें एक व्यवहार्य आदर्श की प्रेरणा-शक्ति और बल है। किन्तु, उसके मण्डन के लिए 'परलोक' तथा 'वैराग्यवाद' की शरण न लेकर सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) का आश्रय लेना होगा, और यह सिद्ध करना होगा कि अन्तत गांधीवादी समाज-सगठन में मनुष्य अधिक मुक्त और सुखी हो सकेगा। यह भी दिखलाना होगा कि यह समाज-सगठन विश्व के लोगों के पारस्परिक मिलन में बाधक नहीं है, और न मानसिक सकीर्णता का प्रोत्साहक ही है। साथ ही इस बात की परीक्षा भी करनी होगी कि यह समाज-विधान अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए कहाँ तक सहायक है।

हमारा विश्वास है कि गांधीवाद का यह अश चिरकाल तक, तब तक, जब तक मनुष्य में युद्ध से बचे रहने और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की कामना है—विचारशील व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहेगा।

गांधीवाद का तीसरा महत्त्वपूर्ण अग उसकी सत्य और अहिंसा से अनुप्राणित संघर्ष-प्रणाली है। सम्भवत गांधीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राजनैतिक सघर्ष के क्षेत्र में छल छद्म के प्रयोग से इनकार करके सत्य का आश्रय लिया। हमारे देश की तात्कालिक परिस्थिति में, जब

जनता निरस्त्र थी और शासक शस्त्रास्त्रों से पूर्ण सज्जित, दूसरा कोई उपाय उपलब्ध भी न था। आश्चर्य है कि गांधीजी ने अपने अहिंसात्मक असहयोग–आन्दोलन द्वारा देश में इतनी जागृति, संगठन, निर्भीकता और आत्म-विश्वास पैदा कर दिया और अन्त में इस महादेश को स्वतंत्र भी बना दिया। उनकी इस अभूतपूर्व सफलता ने गांधीवादी संघर्ष-प्रणाली को अद्वितीय सिद्ध कर दिया है। विश्व के वे दलित और पीड़ित, जिनके पास भौतिक साधन नहीं हैं, आनेवाले युगों में इस अस्त्र का प्रयोग करेंगे इसमें सन्देह नहीं है। साथ ही यह भी सत्य है कि यदि मानव-जाति स्थायी शान्ति चाहती है तो उसे मिथ्या-प्रचार और प्रवंचन का प्रयोग छोड़कर, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में सत्य का अवलम्ब लेना पड़ेगा। उसे अहिंसा का आश्रय भी लेना होगा, क्योंकि युद्ध का निर्णय वास्तव में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' को ही चरितार्थ करता है। अतः यहाँ भी गांधीवादी आदर्श एक चिरन्तन प्रेरणा का काम करेगा।

गांधीवाद के विरुद्ध कहा जाता है कि वह एक अव्यवहार्य सीमा तक आदर्शवादी है; वह मानव-जीवन और मानव-प्रकृति की वास्तविकता की उपेक्षा करता है। गांधीवाद अहिंसा और क्षमा की शिक्षा देता है, जब कि मनुष्य स्वभावतः हिंसात्मक प्रतिशोध चाहता है; वह आत्म-निग्रह पर जोर देता है, जब कि मनुष्य स्वभावतः सुख-भोग का प्रेमी है; निस्स्वार्थ सेवा का पाठ पढ़ाता है, जब कि मनुष्य निसर्गतः शक्ति और श्रेय (Credit) चाहता है। उत्तर में कहा जा सकता है कि ये आपत्तियाँ विश्व के सभी श्रेष्ठ शिक्षकों के विरुद्ध उठाई जा सकती हैं। और यह वास्तविकता कि फिर भी मानवता ने उन शिक्षकों को सम्मान की दृष्टि से देखा है, हमें दूसरे ढंग से सोचने को वाध्य करती है। वास्तव में मानव-प्रकृति जल, अग्नि आदि भौतिक तत्त्वों की भाँति एकरस न होकर द्वन्द्वमयी है। वह 'है' और 'होना चाहिए', वस्तुस्थिति और आदर्श के बीच निरन्तर पेण्डुलम-सी घूमती रहती है। केवल मनुष्य ही प्रकृति और कर्त्तव्य के द्वन्द्व को मानकर चलता है; वस्तुतः प्रवृत्ति की भाँति कर्त्तव्य-भावना भी उसका स्वभाव है। स्वार्थ-साधन और स्वार्थ-त्याग, प्रतिशोध और क्षमा, हिंसावृत्ति और प्रेम दोनों उनके स्वभाव के अंग हैं। महापुरुषों की शिक्षा मनुष्य की उच्च प्रकृति को अपील करती है और उसी प्रकृति को प्रेरित करने का उद्योग करती है। गांधीजी की शिक्षा भी मानव-प्रकृति के उच्चतर स्तरों के नियमों पर निर्भर करती है। अतः यह कहना गलत है कि वह मानव-स्वभाव के प्रतिकूल है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि गांधीजी के अपने देश में उनके बताए हुए सामाजिक संगठन का प्रयोग नहीं हो रहा है। किन्तु, वास्तव में महापुरुष इतने बड़े होते हैं कि वे किसी एक देश की सम्पत्ति नहीं रह पाते। बुद्ध का धर्म स्वदेश से निर्वासित होकर बाहर प्रतिष्ठित हुआ। एक बात ध्रुव है, वह यह कि कोई महनीय विचार या प्रेरणा कभी मरती नहीं। इस हद तक मनुष्य की आदर्शवादिता स्वीकार करनी पड़ेगी—वह उदात्त भावनाओं की प्राणपण से रक्षा करता है। अतएव

हमें विश्वास है कि गांधीजी के लोकोत्तर उपदेश, उनके सत्य और अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग, मानवात्मा की पवित्रता और मुक्ति के लिए अनुष्ठित उनकी जीवनव्यापी तपश्चर्या, कभी नष्ट या विलुप्त नहीं होंगे। भारतवर्ष में और विश्व में सदा से इतनी बुद्धि और गुणग्राहकता रही है कि महापुरुषों के महनीय सिद्धान्तों को विस्मित न होने दे। अत हमारी आस्था है कि गांधीवाद की प्रेरणा अमर है, गांधीजी मरकर भी सदैव मानव जाति के उच्च सकल्पों और प्रयत्नों में अमर रहेंगे।

उत्तरा और अभिमन्यु [चि०—श्री दिनेश बख्शी]

[श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, पटना]

हम साहित्य को अपने जीवन में वह स्थान नहीं देते, जिसका वह हकदार है। हम साहित्य को एक फालतू चीज समझते हैं। किसी व्यक्ति की राय का मखौल उड़ाना हो, तो आप कह दीजिये—यह साहित्यिक ठहरे न ? साहित्य को हम फुर्सत की, तफरीह की चीज मानते हैं। घर में बेकार बैठे हैं, वक्त काटे न कट रहा है—आइये, किसी साहित्यिक कृति के पन्ने उलट लें। आज जी उदास है, मन भारी है, किसी काम में चित्त लग नहीं पाता—चलिये, बगल के किसी साहित्यिक दोस्त से दो-दो बहकी बातें कर आवें। वह साहित्यिक यदि कवि हुआ तो फिर क्या कहना ?

साहित्य की इस उपेक्षा, इस मखौल के लिए कुछ तो हम साहित्यिक खुद दोषी हैं। हम साहित्यिक स्वयं अपने अस्तित्व का महत्त्व और गंभीरता अनुभव नहीं करते। अपने को सृष्टि का एक अद्‌भुत जीव मानकर उसी के अनुरूप अपनी वेष-भूषा, आचार-व्यवहार तक रखने लगे हैं। हम साहित्यिक हैं, इसलिए हमारी पोशाक में एक विचित्रता होनी चाहिए; हमारे कपड़ों पर पान के धब्बे हमारी शोभा हैं; टिन के टिन सिगरेट फूँक जायँ, तो बुरा क्या ? हम शराब भी पी सकते हैं, दुराचार के लिए भी हमें थोड़ी माफी मिलनी चाहिए! बताइये, ऐसे जीवों को कोई समाज अपने यहाँ प्रतिष्ठा और गम्भीरता का पद कैसे दे सकता है ?

दूसरा कारण यह है कि हमारा यह युग राजनीति का युग है। कल तक हम पर बलिदान का भूत सवार था, आज प्रभुता की चुड़ैल सवार है। गुलाम देश जब अपनी जंजीरें तोड़ने में लगा था, तब उसकी आँखों के सामने कोई दूसरी चीज दिखाई नहीं पड़े, तो अचरज नहीं। और

आज जब हम भुखमरों के सामने छप्पन व्यंजन परोसे गये हैं, तो खा-खाकर बदहजमी कर लें, तो ताज्जुब की क्या बात ? राजनीति हम पर इस तरह छाई रही है कि दूसरी ओर ध्यान देने की हम फुर्सत ही कहाँ पाते थे ?

साहित्य और जीवन

किन्तु, जीवन में जो साहित्य का स्थान है, उससे आप ज्यादा दिनों तक उसे वंचित नहीं रख सकते। अभी तक आपने उसे वंचित रखा, उसी का कारण है कि आप प्रवंचना में पड़े हुए हैं।

दो पाँव, दो हाथ, दो कान, दो आँख की तरह ही हमारे जीवन की प्रमुख संचालिका शक्ति एक नहीं, दो है। एक है बुद्धि, दूसरी भावना। एक का उद्‌गम स्थान मस्तिष्क है, दूसरे का हृदय। एक का चरम विकास विज्ञान है, दूसरे का कला। हो सकता है, किसी में बुद्धि का ज्यादा अंश हो, फलत विज्ञान की ओर ही उसका झुकाव हो, यों ही भावना की प्रबलता किसी को कला का ही उपासक बना दे। किंतु, फ्रायड ने हमें बताया है, हर मर्द में औरत है और हर औरत में मर्द— उसी तरह आप हर वैज्ञानिक में कलाविद् पायँगे और हर कलाविद् में वैज्ञानिक। यह हो नहीं सकता कि किसी में बुद्धि ही बुद्धि हो, वह भावना से परे हो! और, हर भावुक को बुद्धिहीन मान लेना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है, यह तो आप मानेंगे ही।

हमारी जिन्दगी की गाड़ी बुद्धि और भावना—इन दो पहियों पर चल रही है। आप बुद्धि की ओर तो ध्यान दे रहे हैं, किंतु, भावना की उपेक्षा कर रहे हैं! उसका फल भी आप को चखना पड़ रहा है। महायुद्ध आप देख चुके हैं, गृहयुद्ध का मजा चख रहे हैं।

बुद्धि के विकास और परिष्कार के साथ भावना को विकसित और संयमित करने की शिक्षा की भी आवश्यकता है। असंयमित भावना हमें गहरे गर्त में गिरा दे सकती है। विकसित बुद्धि अविकसित भावना को लेकर बड़ी से बड़ी खुराफात करा सकती है! भावना के विकास के लिए कला की शरण लेनी पड़ेगी। हमारी शिक्षण-पद्धति में इस सिद्धान्त को आंशिक रूप में मान लिया गया है। शिक्षा-पद्धति में साहित्य के अध्ययन के लिए खास स्थान रखा गया है। किंतु, ज्योंही हमने शिक्षा समाप्त की, साहित्य से हम पूरा पूरा मुँह मोड़ लेते हैं। यह गलत बात है। इससे व्यक्ति और समाज दोनों को हानि ही हानि होती है।

साहित्य हमारी भावना को परिष्कृत करता है, हममें सुरुचि लाता है, हमारे चरित में स्निग्धता लाता है—संक्षेप म वह हमें संस्कृत बनाता है। जिसे आप संस्कृति कहते हैं, उसका आधार साहित्य है। इस आधार को छोड़कर आप एक सुसम्पन्न समाज के निर्माण की कल्पना कर नहीं सकते! एक पहिये पर अपने जीवन-रथ को आप घसीट नहीं सकते। जिस दिन आप इस सत्य को समझ जायँगे, उसी दिन साहित्य की उपेक्षा आप म से दूर हो जायगी।

कविर्मनीषी

साहित्य हमारे भावना-क्षेत्र से पैदा होता है। मनुष्य का भावना-क्षेत्र उसके बुद्धि-क्षेत्र की ही तरह विस्तृत है, विशाल है। उसमें अनेक लोक हैं। एक एक लोक अपनी रंगीनी और ऐशोइशरत में हजार-हजार स्वर्गलोक को मात कर दे। भावना की अनुचरी है कल्पना! स्वर्गलोक भी तो एक कल्पना-लोक है। फिर हम स्वर्गलोक को भी भावना-लोक का एक अंग क्यों नहीं मानें ?

भावना-क्षेत्र के उन अनेकानेक लोकों को लोक-लोचन के सामने प्रत्यक्ष करके दिखाना कोई सहज बात नहीं है। यह अलौकिक कर्म है। ईश्वरीय विभूति से युक्त मानव ही यह कर्म कर सकता है। इसलिए हमारे शास्त्रों ने ईश्वर के समकक्ष ही कवियों और मनीषियों को रखा है। बर्नार्ड शा ने भी कलाकार को विधाता का स्थान दिया है।

यों तो मनीषियों और कवियों का महत्त्व समाज के लिए एक-सा है; किन्तु, मनीषियों पर कवियों को एक श्रेष्ठता प्राप्त है। बुद्धि का संसार बहुत ही सूक्ष्म है, फलतः शुष्क है। इसलिए सर्वसाधारण का प्रवेश वहाँ सम्भव नहीं। भावना के संसार में रंगीनियों की भरमार है, अतः उसकी सुखानुभूति सबके लिए सुलभ है। नतीजा यह है कि आज हम कपिल और कणाद को उतना नहीं जानते, जितना वाल्मीकि और व्यास को। और यह सवाल भी तो है ही कि हमारे समाज को अधिक प्रभावित किसने किया—कपिल-कणाद ने या वाल्मीकि-व्यास ने ?

लेकिन मैं मानता हूँ, आज के हम साहित्यिक ऐसे नहीं लगते कि हमें वाल्मीकि या व्यास के वंश से माना जाय! हमने अपनी सूरत बिगाड़ ली है, चलन बिगाड़ लिया है। अंगरेजी साहित्य में आस्कर वाइल्ड ने जिस उच्छृङ्खलता की सृष्टि की, हम उसके शिकार हो गये हैं! अंगरेजी साहित्य में ऑस्कर वाइल्ड का आज कोई पुरसाँहाल नहीं; किन्तु, हम लकीर पीटते जा रहे हैं। उल्का की पूजा कभी नहीं हुई! हम यदि साहित्य के चाँद-सूरज नहीं बन सकते, तो धूमकेतु बनने की चेष्टा नहीं करें। न तो यह भारतीय आदर्श है, न संसार के किसी भी सभ्य समाज का आदर्श। साहित्य भी एक साधना है, हम साधक बनें—सच्चे साधक। फिर हमारी, और हमारी कृतियों की उपेक्षा हो नहीं सकती। तब हम फ़ुर्सत और तफरीह की चीज न रह जायेंगे—बल्कि जीवन के आधे अंश के अधिकारी समझे जाकर मानवता की सारी प्रतिष्ठा और पूजा का आधा अंश हमें अनायास प्राप्त होगा।

एक नई दिशा !

ऑस्कर वाइल्ड और उसके सामयिकों ने 'कला कला के लिए' का गलत नारा दिया। वह नारा यूरोप में कब न अपनी बुलंदी खो चुका—किन्तु, हम उसीका अंध अनुसरण करते

जा रहे हैं। हमारे साहित्यिक एक नई दिशा की ओर इंगित कर रहे हैं—वह दिशा स्पष्ट हो नहीं पाई। फलत समाज उस ओर सम्यक् ध्यान दे नहीं रहा है। इसी से खीझकर अपनी पराजय के प्रतिकार के लिए, हमने इस नारे को अपनाया है। तुम हमारी बात नहीं सुनते, तो नहीं सुनो—हम कहे जायेंगे। हम कला का निर्माण कला के लिए कर रहे हैं।

यह बच्चों की मनोवृत्ति है। साहित्य भी समाज की ही पैदावार है। नये वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति भी प्रारम्भ में उपेक्षा हुई, तो वैज्ञानिकों ने न उन आविष्कारों को छोड़ा, न अपने सिर फोड़े। धीरज से काम लिया, विजयी हुए। हममें, जो साहित्य में नई दिशा की ओर बढ रहे हैं, उनमें धीरज चाहिये। लोग हमारी ओर आयेंगे ही, आ रहे हैं।

हम साहित्यिक कहीं आसमान से नहीं उतरे हैं—हम सृष्टि के कोई विशिष्ट जीव नहीं हैं। साधारण लुहार, सोनार की तरह हम भी समाज के शिल्पी हैं और समाज के लिए निर्माण करते हैं। हमारे अपने औजार हैं, अपनी टेकनिक है। हमारा औजार ससार के सभी औजारों से बारीक है, तुनुक है। हमारी टेकनिक बड़ी ही कोमल है, सुकुमार है और पेचीदी भी है। जरा सोचिये, तो उजले कागज पर काली रोशनाई से हूबहू इन्द्रधनुष की सृष्टि करना—जिसमें सब रग अलग अलग चमकें। टेढी मेढी रेखाओं में प्रेम, घृणा, क्रोध, ग्लानि आदि भावों को यों लपेट देना कि आज भी वे हमारे हृदय को पुलकित, उद्वेलित और द्रवित कर दें—यह कमाल किसका है? यही कमाल है जिसने समाज के अन्य शिल्पियों पर हमारी श्रेष्ठता सिद्ध की। समाज ने इसे स्वीकार किया है—उसे करना पड़ा है।

हम साहित्यिक समाज के सबसे लाड़ले बच्चे हैं। हमारे नटखटपन ने कभी हमें चपत भी खिलाई हो, किन्तु, घर की सबसे अच्छी चपातियाँ, मक्खन में चुभोकर, हमें ही दी गई हैं। किसी शेली, किसी कीट्स के कान समाज ने उमेठे, तो आज उनकी स्मृति-मूर्त्ति को हृदयासन पर बिठाकर षोडशोपचार पूजा भी वही दे रहा है। माँ भारती की आराधना व्यर्थ नहीं जाती, साहित्य की साधना एक दिन मनोवाछित वरदान समाज से प्राप्त करती ही है।

साहित्य-गगा

साहित्य और समाज में माँ बेटे का सम्बन्ध है। जैसे जैसे समाज विकसित होता है, साहित्य का विकास उसी क्रम से होता जाता है। हमारा भारतीय समाज ससार का प्राचीनतम समाज है। यह हमें ही गौरव प्राप्त है कि मानवता की प्रथम वाणी से लेकर आज तक के साहित्य के क्रम विकास को समझने के लिए हमारे ही पास धरोहर हैं, अन्यत्र कहीं नहीं। मानवों के आदि पूर्वज जब जगलों में रहते थे, तब से आज के मशीन-युग तक के मानवों के कठ से निकली

साहित्य-धारा में जिसे अवगाहन करना होगा, उसे भारत में ही आना होगा। किन्तु, हमने स्वयं ही अपनी धरोहर का महत्त्व नहीं समझा है, तो दूसरा क्या समझेगा ?

जिस तरह पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत का अनुसंधान किया है—Discovery of India—उसी तरह, काश, कोई विद्वान हमारे साहित्य का भी पुनः संधान करने का कष्ट करता ! उफ, वह एक अनमोल चीज होती !

इस बार जेल में अपनी इस साहित्य-धारा की एक झलक पाने की मैंने कोशिश की। जंगली जातियों के गीतों से लेकर आज तक की साहित्यिक रचनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डाली। मुझे ऐसा लगा कि मैं गंगा की धारा पकड़कर उसमें भँसता हुआ आगे बढ़ रहा हूँ।

जंगलों के गीत—छोटे-छोटे वाक्य; सीधी-सादी उपमायें, सिर्फ गीत ! मानों, गंगा अभी-अभी गोमुखी से कूद रही हो ! फिर वेद, गति तो यति भी—शब्दों में गम्भीरता, धारा में विस्तार, कल्पना की उड़ान, रूपक और उत्प्रेक्षायें—मानो गंगा अब हरद्वार में आ गई है। और यह कालीदास हैं—गंगा आधी मंजिल पारकर काशी आ चुकी। एक सभ्यता अंतिम साँस ले रही है, दूसरी निर्माण पा रही है। एक का प्रतिनिधित्व शकुन्तला कर रही, दूसरी का दुष्यन्त ! जनपद समाप्त हो रहा—भरत पैदा हुआ, अब एक देश (भारत) बनने जा रहा है। रघुवंश की दिग्विजय, मेघदूत का व्योम-विहार, कुमारसम्भव की केलिक्रीड़ा। भारतीय समाज अपने ओज पर है। उसका साहित्य जमीन-आसमान को एक कर रहा है। फिर तुलसीदास—पटना की गंगा ! सारी नदियों से वह खिराज वसूल कर चुकी है—नानापुराणनिगमागम-सम्मतम् ! कितनी वृहत्, कितनी विशाल ! हमने अभी तुलसी का महत्त्व नहीं समझा ! और अब वह सहस्रमुखी होकर सागर से मिलने जा रही है, जिसके प्रतीक हैं कवीन्द्र रवीन्द्र।

विश्व-साहित्य की ओर

कवीन्द्र रवीन्द्र ने हमारे साहित्य का विश्वसाहित्य से सम्मिलन करा दिया है। गोमुखी से निकली धारा अब सागर से मिलकर संसार-भर के तटों को चूमेगी। इसलिए हमारे साहित्यिकों कि जिम्मेवारी और बढ़ गई है। अपने साहित्य का स्तर हमें ऊँचा करना है, अपनी टेकनीक को आधुनिकतम रूप देना है। तभी संसार में हमारी पूजा होगी।

हम इस सम्बन्ध में पिछड़े हुए हैं। अभी हमारे कवि शेली और वायरन के युग में ही फँसे हुए हैं। हमारे नाटककारों के दिमाग पर शेक्सपीयर ही सवार हैं। हमारे उपन्यासकार टामस हार्डी से आगे नहीं बढ़ सके हैं। स्कूल-कालेजों में हम इन्हीं से प्रभावित होते रहे हैं, अतः हम इनकी परिधि में हीं फँसे रहें, तो आश्चर्य नहीं। किन्तु, हमें इस परिधि से बाहर जाना ही होगा !

पर यहाँ एक बात कह दूँ—विश्वसाहित्य की ओर का मतलब यह नहीं है कि हम अपने गाँवों की गलियों के झोपड़ों को भूलकर लन्दन, न्यूयार्क या मास्को के महलों के गीत गाने लगें। विश्वसाहित्य का यह मानी नहीं है। पर्लबक की "गुड अर्थ" एक देहाती चीनी परिवार की रोजाना जिन्दगी से सम्बन्ध रखती है, तो भी उसकी गणना विश्वसाहित्य के उच्चतम ग्रंथों में है। विश्वसाहित्य होने के लिए कला में मानवता और टेकनिक में विशेषता चाहिये—उसकी पृष्ठभूमि जितनी ही स्थानीय रहेगी, उतनी ही वह अच्छी चीज समझी जायगी।

तलवार भी, नश्तर भी

हमारा देश एक नये युग के दरवाजे पर खड़ा है। यह युग महान होगा, उसका साहित्य भी महान होना चाहिये।

उस महान साहित्य के सृजन के योग्य हम साहित्यिकों को अपने को बनाना है। पश्चिम के वैज्ञानिकों ने जिस तरह भौतिक साधनों के उपयोग के लिए नये-नये औजार बनाये हैं, उसी तरह वहां के साहित्यिकों ने साहित्य सृजन की नई नई टेकनिकों का आविष्कार किया है। भौतिक जगत में जिस तरह हम उनकी टेकनिक का उपयोग कर रहे हैं, साहित्य जगत् में भी हमें करना ही चाहिये। लेकिन हम उनसे सिर्फ टेकनिक लें, हमारी रचना की आत्मा तो भारतीय होनी ही चाहिये।

एक साहित्यिक की लेखनी सिर्फ लेखनी नहीं है—वह तलवार भी है, नश्तर भी, कुदाल भी है और झाड़ू भी। गन्दगियों को हमें साफ करना है, बंजर भूमि को कोड़ना है। सड़े घावों को चीरकर पीब निकाल देना है, जहाँ भी अत्याचार हो, बेमुरौवत उसका सिर धड़ से अलग कर देना है। तभी हम एक सुन्दर समाज की रचना कर सकेंगे, तभी उस समाज में हम सुन्दर साहित्य का निर्माण करेंगे।

उस नये, सुन्दर, विश्वव्यापी साहित्य के सृजन में हम तल्लीन हो जायँ, फिर देखना है, कौन हम शारदा के वर पुत्रों की उपेक्षा करता है ?
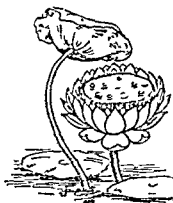
[पं० रामदहिन मिश्र, पटना]

आये दिन सामयिक पत्र-पत्रिकाओ में इस बात की चर्चा होती ही रहती है कि अमुक ने अमुक की कविता चुरा ली। सम्पत्ति की चोरी के जैसे अनेक हथकंडे होते हैं वैसे ही साहित्य की चोरी के भी अनेक हथकंडे हैं। एक चोरी वह है जिसमें कुछ शब्दों में उलट-फेर करके अपने नाम की मुहर लगा दी जाती है। एक चोरी वह है जिसमें अपने शब्दों में दूसरे के भाव को ज्यों का त्यो ले लिया जाता है। एक चोरी वह है जिसमें पुरानी पड़ी हुई कविता को ज्यों की त्यो अपने नाम से यह समझकर छपा दी जाती है कि गड़े मुर्दे कौन उखाड़ेगा। यह चोरी नहीं, डकैती है। ऐसे ही डकैतो के सम्बन्ध में हमारे आचार्यों ने कहा है कि 'सारा प्रबन्ध हरण करनेवाले साहसी को प्रणाम ही करना चाहिए— "सकलप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमः तस्मै"।

रंग और तूलिका सभी चित्रकारो के लिए समान हैं पर भिन्न-भिन्न कलाकारों के हाथो में पड़कर आलेख्य-पत्रों पर वे जो अपने रंग खिलाते हैं, चित्रों में चित्रकारों के जो चित्र चित्रित हो उठते हैं वे एकाकार नहीं होते; उनमें भिन्न-भिन्न कलाकारो के भिन्न-भिन्न भाव अभिव्यक्त हो उठते हैं और साथ ही उनमें विभिन्न कलाकारो के विभिन्न आत्म-भाव भी अपने को प्रच्छन्न नहीं रखते। शब्द और अर्थ भी इनके समान हैं। इन पर किसी का विशेषाधिकार नहीं। ये स्वतन्त्र हैं। जब कलाकार कवि इनकी योजना अपनी प्रतिभा से नये रंग-रूप में कर देता है तब वे उसके अपने हो जाते हैं। कवि में ही ऐसी ईश्वर-प्रदत्त शक्ति होती है जो शब्द और अर्थ को

लेकर नयी रचना कर देता है। रचनाकार का ही यह रचनाकौशल है जो शब्द और अर्थ उसके होकर अपने मे आकर्षण पैदा कर देते हैं और सहृदयहृदयावर्जक बन जाते हैं। अभिव्यक्ति की कुशलता, या कला स शब्दशिल्पी कवि के वे शब्द और अर्थ उसके हो जाते हैं। देखिये, एक ही भाव को कवि कैसे अपने अपने ढग से व्यक्त करते हैं—

१ यत्र यत्र वलते शनैः शनैः सुभ्रुवो नयनकोणविभ्रम ।
तत्र तत्र शतपत्रधोरिणी तोरणीभवति पुष्पधन्वन । सुभाषित

जहाँ जहाँ सुन्दर भौंहवाली नायिका के धीरे धीरे नयनों का कटाक्ष पात होता है, वहाँ वहाँ कमलो की ढेर लग जाती है और वह कामदेव का तोरण बन जाता है। भाव यह कि कामिनी के कटाक्षपात कामोद्दीपन कर रहे हैं।

आँखा की उपमा भी कमल से दी जाती है और कर-चरण की भी। कहीं कहीं इनकी विशेषता द्योतन करने के लिए नील, रक्त, आदि विशेषण भी लगा दिये जाते हैं और कहीं कहीं नील कमल आदि के बोधक 'इन्दीवर' जैसे शब्द लाये जाते हैं। विद्यापति दोनों, नेत्र और चरण, के सम्बन्ध में कहते हैं—

२ जहँ-जहँ नयन निपात, तहँ तहँ सरोरुहपात ॥
३ जहँ-जहँ युग पद धरइ, तहँ-तहँ सरोरुह झरई ॥ विद्यापति

इनमें 'पात' और 'झरई' क्रियाओं से देखने और चलने में कमलो की सृष्टि की बात ही कही गयी है।

४ नयन जो देखा कमल भा, निरमल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर ॥ जायसी

जायसी ने निर्मल शरीर को नीर माना नयन जो देखा तो कमल होने की बात कही और हंसते हुए देखने में हस होने की बात। रूपक का आश्रय लेकर वही भाव इसमें व्यक्त किया गया है। यह भी कहा जा सकता है कि अपनी आँखों से जो देखा तो दृष्ट पदार्थ कमल हो गया और वैसे ही हँसते हुए देखने से हस हो गया।

५ जहँ विलोकि मृगशावकनयनी, जनु तहँ बास कमल सितश्रेनी। तुलसी

जहाँ मृगनयनी सीता की दृष्टि जाती है, वहाँ उजले कमलों की पाँत बिछ जाती है। इसमें 'जनु' से उत्प्रेक्षा की गयी है। स्पष्टत सितश्रेणी होने की बात नहीं कही गयी है।

६ देव कामिनी के नयनों से जहाँ नीलनलिनी की सृष्टि। प्रसाद

नलिनी की सृष्टि में नील विशेषण देकर प्रसाद ने नयनो के नील होने की बात स्पष्टत कही है।

७ ग्रीवा मोड कभी विलोकती जब तुम बकिम कोर।
खिल खिल पडते श्वेत कमल नाचती विलोल हिलोर ॥ पत

पंत ने नेत्र के श्वेत गुण को ही अपनाया और उसके दर्शन से श्वेत कमल की ही सृष्टि करायी। इसी बात को दूसरे छंद से भी कहते हैं।

८ दृष्टि फेरी तुमने जिस ओर खिल गयी कमल पंक्ति अम्लान। पंत

इसमें सीधे कमल खिलने की ही बात है, न नील, न श्वेत और न ताम्र। नेत्र और पद की दृष्टि और गति में कमल ही नहीं बिछे जाते थे, बल्कि चरण की रक्त आभा के फैलने की बात भी कवियों ने कही है। जैसे—

९ पाँव धरे अलि ठौर जहाँ तेहि ओर ते रंग की धार सी धावति।
मानो मजीठ की माठ ढुरी एक ओर ते चाँदनी बोरत आवति॥ देव

पद्माकर भी नवीनता के बिना वही बात कहते हैं—

१० धरत जहाँई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ
मंजुल मजीठ ही की माठ सी ढुरत जात। पद्माकर

देव के रंग की धार-सी धावति मे एक चमत्कार है, पर पद्माकर में वही बात सादगी से ही कही गयी है।

नयी भाषा में पुरानी बात को इस नये ढंग से कहते हैं—

११ चूम लघु पदचंचलता प्राण फूटते होंगे नव जल स्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान प्रिये प्राणों की प्राण ? पंत

मजीठ की रक्त-धारा नहीं, यहाँ नव जलस्रोत लघुपदचंचलता से फूटे पड़ते हैं।

उपर्युक्त परम्परा-प्राप्त छः कवियो की रचनाएँ ली गयी हैं। संस्कृत में ही नहीं, हिन्दी में भी अनेकों कवियो की रचनाओं में यही भाव व्यक्त हैं। ये उदारण इस आशय को व्यक्त करते हैं कि सहृदयता ही एक भाव की पोषिका हो सकती है; पर, उनकी अभिव्यक्ति की भंगिमा निराली और अपनी-अपनी हो सकती है। इनके शब्द और वाक्यावली भी प्रायः एक-सी ही हैं, फिर भी इनमें कोई ऐसा कवि नहीं है जिसको कहा जाय कि अमुक ने अमुक की शब्दावली और भाव चुराये हैं। संभव है कुछ लोग इस बात को न मानें पर मैं तो कहूँगा कि ये भाव उनके स्वतः स्फूर्त हैं। सौ सयाने एक मत की लोकोक्ति के अनुसार इनके जो भाव टकराये हैं; उनका मूल कवि-प्रतिभा ही है और वह देन ईश्वरीय है और वही सब में विद्यमान है।

अपने देश के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि एक से संस्कार होने के कारण ऐसा भाव सम्भव हो जाता है। पर देखा गया है कि बहुधा देशी ही नहीं, विदेशी भाव भी देशी भावों से टकरा जाते हैं; यद्यपि वे कभी ऐसे संसर्ग में नहीं आये जिसमें भावों का आदान-प्रदान होता है। ऐसा होने का कारण भाव स्फुरण में भावमात्र का हृदयसाम्य ही है।

स्त्रियो का हाथ पर गाल धरना एक साधारण क्रिया है। चाहे यह स्वाभाविक हो, चाहे

चिन्तनीय अवस्था का सूचक हो। इस बात पर देशी विदेशी कवियों का एक सा ध्यान गया है। क्योंकि यह एक ऐसी मुद्रा है कि सहृदयों के मन में एक आकर्षण पैदा कर देती है। उन्होंने अपने अपने दृष्टिकोणों से इसके सौंदर्य की व्यंजना की है। उन्होंने अपनी कलम की करामात से इस साधारण बात को असाधारण बना दिया है। इस बात की सम्भावना नहीं कि पद्माकर या अन्य कवि ने शेक्सपियर से या शेक्सपियर ने भारतीय कवियों से इसके सौन्दर्य की परख की हो।

१२ बिंदु रचे मेंहदी के लसै पर तापर यों रह्यो आनन आय कै।
इंदु मनौ अरविंद पै राजत इन्द्रवधून के वृन्द बिछाय कै। पद्माकर

पद्माकर ने मेंहदी लगे हाथ पर आनन की उत्प्रेक्षा करके, अलकार द्वारा अलकृत कृत करके उसके सौन्दर्य को निखार दिया है। उसी हाथ पर रखे आनन को शेक्सपियर ने अपने सरल वर्णन से आसमान पर चढा दिया है। कवि कहता है—

अहा! प्राणप्यारी किस प्रकार अपने हाथ पर कपोल रक्खे हुई है[1]! उक्त कविता की आगे की पक्तियाँ में प्रणयी रोमियो ने अपनी प्रणयिनी जूलियट को हाथ पर कपोल धरे देखकर दस्ताना बनकर स्पर्श करने की जो अभिलाषा प्रकट की है, उससे उसका लालसामय प्रेम द्योतित होता है। इसमें यथायत हाथ पर धरे कपोल का ही वर्णन है। उसीमें सौन्दर्य है, आकर्षण है और मोहन मन्त्र भरा जादू है। उसकी स्पर्शाभिलाषा से ही ये सब बातें प्रकट होती है। 'see' और 'how' से ही उसके सुन्दर होने का भाव व्यक्त किया जाता है।

कवि प्रसाद का एक वर्णन है जिस पर आलकारिकों का ध्यान जाना अनिवार्य है। अलकार का आश्रय लेकर जो चित्र उपस्थित होता है, वह हाथ पर कपोल धरे का ही चित्र है।

जहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाये।
अपने नालों पर वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आये॥ कामायनी

कामायनी पहले की कामायनी नहीं रह गयी है। वह रवि, शशि, ताराओं से हीन सध्या थी। किरण चाँदनी हीन प्रभातकालीन शशिकला थी। ऐसी ही न जाने क्या क्या न थी। इसी दशा में कवि कहता है कि वह श्रद्धा—कामायनी उस सरसी की सी थी जिसके तामरस और इन्दीवर अपने नालों पर मुरझाये हुए थे। यह तो सरसी के पक्ष की बात हुई। अब रूपकातिशयोक्ति से यह भी इसका भाव झलकता है कि उसके करतल पर मुख और नेत्र कुम्हलाये हुए थे। बाहु को मृणाल—कमलनाल, रक्त होने के कारण मुख को तामरस—लालकमल और नेत्र को इन्दीवर—नीलकमल कहा जाता है। यह कवि परिपाटी में भी है और ये सब इनके प्रतीक भी ह। इस प्रकार चिन्ता की मुद्रा में कामायनी के कर

१ She! how she leans
her cheek upon her hand

पर कपोल धरे मूर्ति का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। इस भाँति इनकी समता से वाक्योपमा भी इसमें मानी जायगी।

शेली ने अपनी एक कविता में एक पंक्ति लिखी है जिसका आशय यह है कि उसके ओठ पर एक चंचल अँगुली थी[1]। इसी भाव को कवि ने अपनी कविता में लिखा है। एक पंक्ति में देखिये—

वैसी ही माया में लिपटी 'अधरों पर उँगली धरे हुए।' प्रसाद

मैं न तो इसे अनुवाद कहूँगा और न चोरी। यह तो उक्त बात का एक निदर्शन है कि भावाभिव्यक्ति में भी कवियों का हृदययोग होना स्वाभाविक है।

गुप्तजी की इन पंक्तियों में व्यक्त भाव को शेली का भाव नहीं कहा जा सकता जब कि दोनों भाव एक से ही हैं—

जीवन यहाँ अरुद्ध मृदुल मारुत का झोंका
गत जब तब भी अगत सुरभि का स्मरण अनोखा। उन्मुक्त

जब कोमल स्वर लुप्त हो जाता है तब भी संगीत स्मृति में गूँजता रहता है। जब बैंगनी रंग के बायलेट्स (एक प्रकार के फूल) फीके पड़ जाते हैं तब उनकी सुवास हमारे ज्ञान में बनी रहती है।[2] शेली

गुप्तजी अँग्रेजी ज्ञान के लिए विख्यात नहीं हैं। यह उनके अनुभव की महिमा है जिसका क्षेत्र व्यापक हो गया है।

आप चोरी करने के लिए इस कारण की आड़ नहीं ले सकते कि अतीतकाल से विश्वप्रपंच को रचनेवाली प्रकृति की शक्ति नये-नये पदार्थों की रचना में क्षीण हो गयी है। वैसे ही प्राचीन कवियों ने नये कवियों के लिये कुछ नहीं छोड़ा, सब कुछ वर्णन कर गये हैं। ऐसा आप नहीं कह सकते। कविता के बारे में आप यह भी नहीं कह सकते कि अनन्त कवियों की मतिगति से मण्डित वह इस योग्य नहीं रह गयी कि उसमें नया कुछ निर्माण किया जाय। कवि की कारीगरी तो अपनी-अपनी प्रतिभा से उक्ति-वैचित्र्य द्वारा नवीनता लाकर नया-नया रूप देना ही है। ऐसी दशा में कवि के विचारो का टक्कर खाना, उसमें सादृश्य वा समानता पैदा हो जाना आश्चर्यजनक नहीं। क्योंकि बुद्धिमानो की बुद्धियाँ भिन्न-भिन्न मार्गों से एक ही विचार पर पहुँच जाती हैं।

काव्य में अनुहरण वा अनुकरण वा सामान्यतः अपहरण तक दोष नहीं माना जाता। जब कि अपना भी उसमें कुछ हो। अन्धानुकरण वा सर्वस्वापहरण परिहरणीय है। आचार्यों ने इस सम्बन्ध में

---

१ One choppy finger was on his lip

२ Music, when soft voices die
Vibrates in the memory
Odouns, when violets sicken
Live within the sense they quicken—Shelly

व्यवस्था दी है। इस दृष्टि से क्षेमेन्द्र ने कवि के पाँच प्रकार कहे हैं।[1] (१) छायोपजीवी, (२) पदोपजीवी, (३) पादोपजीवी, (४) सकलोपजीवी और (५) प्राप्तकवित्वजीवी।

१ छायोपजीवी

'छायामनुहरति कवि' कहकर इसकी छूट दे दी गयी है। इससे अधिकांश कवि छायानुकारी होते हैं। कहीं छाया ऐसी होती है जो प्रशसनीय होती है और कहीं दूपणीय। उदाहरण लें—

काजर दे नहिं एरी सुहागिनि आँगुरी तेरी कटेगी कटाच्छनि

आलम की इस पक्ति की छाया पर पद्माकर ने यह दोहा लिखा जो अनुहरण या अनुकरण ही कहा जा सकता है। इसमें पद्माकर की भी कुछ कला है।

कहा करों जु आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाय।
अनियारे चख लख सखी, कजरा देत डराय॥ पद्माकर

केशव ने अपने एक कवित्त में, श्रीकृष्ण को वसुदेव का पुत्र कहकर और राधा को वृपभानु की बेटी, बराबर का बताया है, क्योंकि दोनों ही बड़े बाप की सतान हैं, बराबर की जोड ठहराया है। इसी से दोनो अपने मन के हैं।

केसे केसो राय काहि बरजों मनाऊँ काहि आपने सयाधो कौन सुनत सयान की।
कोऊ पद्वानल को हूँ हैं सोइ ऐहे वीच तुम वासुदेव वे हैं बेटी वृपभान की। केशव

इसी आशय को बिहारी ने अपने कलापूर्ण ढग से कैसा कहा है—

चिर जीवौ जोरी जुरे, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृपभानुजा, वे हलधर के बीर॥ बिहारी

'वृपभानुजा' (वृपभानु + जा, वृपभ + अनुजा) और हलधर (बलराम और किसान) के शब्दश्लेप ने सखी की उक्ति में सहृदयो के हृदयों में सरसता सचार की असम शक्ति भर दी है। इसीको पद्माकर कहते हैं—

रह्यो देखि दृग दे कहा, तुहि न लाज कछु दूत।
मैं बेटी वृपभानु की, तू अहीर को पूत। पद्माकर

केशव ने 'वासुदेव' शब्द से समानता की तुलना में जिसे ढँक रखा था, बिहारी ने श्लेप में जिस श्लेप की व्यञ्जना की थी, उसी समता में अहीर का पूत कहकर व्यतिरेक में परिणत कर दिया और भाव को नग्न कर दिया।

ऊपर छायानुहरण वा छायोपजीविता के जितने उदाहरण आये हैं, उनमें भाव एक ही हैं, पर

---

[1] छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी।
भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वन्मेपतो वा भुवनोपजीव्य ॥—कविकण्ठाभरण

कवियों की प्रतिभा ने उसे अपने-अपने रंग में रँगा है। किसी ने सर्वस्वापहरण नहीं किया है। इनमें परिवर्त्तन और परिवर्द्धन दोनो हैं। पर, केवल एक भाषा का भाव, दूसरी भाषा में उतार नहीं दिया गया है।

कवि की कारीगरी, भाषा में भावों के जड़ने में ही झलकती है। क्योंकि भाव शाश्वत होते हैं। प्रतिभा का चमत्कार अभिव्यक्ति मे ही दीख पड़ता है। भावो को नया रूप देने में परिवर्त्तन और परिवर्द्धन से जो भाषा में भिन्नता आती है, वह कहीं तो उसमें सुष्ठुता और चमत्कार ला देती है और कहीं चौपट भी कर देती है, या न्यूनता ला देती है। कवि यह सब काम सौन्दर्य-भावना से ही करता है। भाषा में भावो का पिरोना सौन्दर्य की दृष्टि से ही होता है। ऐसा करने में असावधानता बड़ी खतरनाक होती है। इस विषय में केशव, पद्माकर और बिहारी की कला ध्यान देने योग्य है।

छायोपजीवी का एक दूसरा भी ढंग होता है। वह एक छाया पर से तदनुरूप दूसरी रचना कर डालता है। केवल रंग-ढंग मिलता है, पर अन्तर में अन्तर रहता है।

जो जग और वियो हरि पाऊँ।
तौ यह विनती बार-बार की हौं कत तुम्हें सुनाऊँ। सूर

यदि मुझे कोई दूसरा हरि मिल जाता तो तुम्हें क्यों अपनी विनती बार-बार सुनाता। इसी भाव पर यह कविता कितनी अच्छी बन पड़ी है।

चाहक न होता कोई और जो तुम्हारा तो मैं
देखता कि कैसे तुम उर के कठोर हो? शैलेन्द्र

सूरदास को दूसरा हरि नहीं मिलता। लाचार हो हरि को न भजे तो क्या करें? किन्तु शैलेन्द्र के भगवान के अनेको भक्त हैं जिससे इनकी उपेक्षा है। क्या करें बेचारे! यहाँ तो

शशि को तारा बहुत हैं, तारा को शशि एक।

शशि को भी एक ही तारा होता, तो भगवान को शैलेंद्र का चैलेंज स्वीकार करके पिघलना ही पड़ता।

जहाँ अनुहरण नहीं, अनुकरण नहीं, वहाँ तो एक दूसरे का अनुवाद या भाषा-परिवर्तन ही कहा जा सकता है। यह अपहरण है और वर्जनीय है।

सुभग बिछाय पलँगिया अंग सिगार।
चितवत चौंक तरुनियाँ दै दग द्वार। रहीम
सुंदरि सेज सँवारिकै साजि सबै श्रृंगार।
दग कमलन के द्वार मैं बाँधे बंदनवार॥ मतिराम

मतिराम के बंदनवार बाँधने का रूपक कुछ भी रहीम के भाव में नूतनता नहीं ला सका। इसमें मतिराम की मतिरामता कुछ भी नहीं झलकती।

२ पदोपजीवी

दूसरे वे कवि हैं जो पद मात्र का आश्रय लेकर कविता करते हैं। केवल पद ही दोनों में एक स रहते हैं। शेष उनकी प्रतिभा के चमत्कार ही होते हैं।

तुलसीदास का एक दोहा है—

प्रभुहि चिते पुनि चितय महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु बिधुमंडल डोल॥ तुलसी

इसके 'मीन जुग' शब्द को बिहारी ने भी अपनया है, किन्तु अपनी प्रतिभा का ऐसा चमत्कार दिखाया है कि पढते ही सहृदयता झूमने लगती है।

चमचमात चचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल, जल उछरत जुग मीन॥ बिहारी

दोनों की उत्प्रेक्षायें सहस्र मुख से प्रशसनीय हैं।

कौन सुनै का सों कहौं, सुरति बिसारी नाँह।
बदाबदी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह॥ बिहारी
इक तो मदन बिशिख लगे, मुरछि परी सुधि नाँहि।
दूजे बद बदरा भरी, घिरि घिरि बिष बरसाँहि। शृङ्गार सतसई

इन दोनों में बद बदरा शब्द आये हैं। इन शब्दों पर किसी का एकाधिपत्य नहीं। दोनों ने अपने-अपने ढग से इनके प्रयोग किये हैं।

बडे बडे नैननते आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरों सो बिलानो जात। देव
कहै पद्माकर नहीं तो ये झकोरे लगै ओरे लौं अचानक बिन घोरे घुर जायगी। पद्माकर

इनमें ओरो सो' और 'ओरे लो' में एक ही पद को अपने अपने ढग से प्रयुक्त किया है।

भारतेन्दुजी की इस पक्ति के भाव को उपाध्याय जी ने अपनाया है। उसमें वही शब्द आया है, पर उनकी कल्पना ने अपना नया ही पथ अपनाया है।

मन मैं रहै तो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसै जा मैं ताहि कैसे कै बिसारिये।

भूला जाता वह सजन है चित्त में जो बसा हो,
देखी जाके सुछबि जिसकी लोचनों मे रमी हो।
कैसे भूलें कुँअर जिसमें चित्त ही जा बसा है
प्यारी शोभा निरख जिसको आप आँखें रमी हैं। हरिऔध

इसमें मन क स्थान में चित्त है, पर है वही एक ही शब्द। इसमें चित्त के साथ आँखों के रमने की तत्तुल्य बातें कहकर रचना में नवीनता ला दी गयी है।

३ पादोपजीवी

पादोपजीवी वे हैं जो कविता के एक चरण को रख लेते हैं। समस्यापूर्ति में ऐसी बात देखी जाती है, पर यह पादोपजीवन भिन्न प्रकार का है।

तुलसी मूरत राम की, घट-घट रही समाय।
ज्यों मेंहदी के पात में, लाली लखी न जाय। तुलसी

यहि अनुमान प्रमानियत, हिंम तन जोबन जोति।
ज्यों मेंहदी के पात में, अलख ललाई होति॥ पद्माकर

दोनो कवियों के तीसरे चरण एक से है। दोनों के उपमेय घट-घट में राम का व्यापना और जोबन की जोत का जगना समवाय सम्बन्ध से है और वैसा मेंहदी के रंग का उपमान भी। अमूर्त के मूर्त उपमान देने की यह प्रणाली आज की ही नहीं, बहुत पुरानी है।

गई आग उर लाय, आग लेन आई जो तिय।
लागी नहीं बुझाय, भभकि-भभकि बरि-बरि उठे॥ रहीम
नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई हिये मेरी गई लगाय॥ मतिराम

पहले का पूर्वार्द्ध और दूसरे का उत्तरार्द्ध एक-सा है। पर दोनों के भाव अपने-अपने ढँग के अनूठे हैं। दोनो कवियो ने अपनी-अपनी अर्धाली में ही अपनी-अपनी कला के चमत्कार दिखा दिये हैं।

४ सकलोपजीवी

सकलोपजीवी वे कवि हैं जो एक कवि के सारे शब्दो और भावो को कुछ इधर-उधर करके ले लेते हैं। वे चाहते हैं कि हम भी उस कवि की कविता के समान अपनी कविता में चमत्कार लावें पर बात नहीं बन पातीं।

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं॥ बिहारी
मानत लाज लगाम नहिं, नैकु न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के, दग तुरंग मुँहजोर॥ मतिराम
चपल चलाकिन सौ चलत, गनत न लाज लगाम।
रोकै नहिं क्यौं हू रहत, दग तुरंग गति बाम॥ विक्रम

बिहारी के दोहे का भाव घुमा-फिराकर नीचे के दोनो दोहों में भी है। बिहारी का पहला चरण दोनो में ही है। नैनो के विवश होने की बात शब्दो के हेर-फेर में एक-सी है। मुँहजोर भी छूटने नहीं

पाया। बिहारी का उपमान तुरग मतिराम और विक्रम में रूपक बन गया है। यद्यपि 'लों' से रूपक का कुछ धक्का लगा है। नैनों के वश में न होने की बात विदग्धतापूर्ण है।

जब एक कवि कहता है 'सुधे पाय न परि सके शोभा ही के भार।' और दूसरा 'दुर्वह था भार अगों के लिये शोभा का' कहता है तो वह उसे ही दुहराता है। एक ही कवि जब ये पक्तियाँ लिखता है—

१ कविरानी के वर्णन में—

लाल लाल आलता विनिन्दित चरण में
चुभ जाती थीं वन फूलों की पँखुरियाँ॥

२ महारानी के वर्णन में—

जिन अगों में फूल पीडा पहुँचाते थे।
और गड़ जाती थीं पगों में भी पखुँरियाँ॥ वियोगी

तो ऐसे स्थानो पर कवि स्वय सकलोपजीवी बन जाता है।

५ प्राप्त कवित्वजीवी

प्राप्त कवित्वजीवी को भुवनोपजीव्य भी कहा गया है। ऐसे व्यास और वाल्मीकि हैं। उनके आख्यान—रामायण और महाभारत सभी कवियों के आधारस्वरूप हैं। इनके ही आख्यानों को लेकर कालिदास और तुलसीदास जैसे महाकवियो ने अनेको काव्य नाटक लिखे हैं। हिन्दी में भी इनके अनुवाद ही कवियो के लिये सर्वस्व है। टाड राजस्थान का अनुवाद भी केवल आख्यान की दृष्टि से महत्त्व का कहा जा सकता है।

राजशेखर ने इसी प्रसग को शब्दापहरण में इस भाँति लिखा है—१ पद से, २ पाद से, ३ आधे से, ४ छन्द से और ५ प्रबन्ध से, शब्दापहरण पाँच प्रकार[1] का है। यह परप्रयुक्त शब्द और अर्थ का अपहरण दो प्रकार का है—एक त्याज्य और दूसरा ग्राह्य।

अर्थ के तीन भेद मार्ग हैं—१ अन्ययोनि २ निह्नुतयोनि, ३ अयोनि। अन्ययोनि वह है जिसका कारण या प्रदुर्भाव दूसरा कवि हो। जिसका कारण अस्पष्ट हो वह निह्नुतयोनि है और जिसका कारण कुछ न हो वह अयोनि है। अर्थात् जिसमें अपना ही सब कुछ रहे, दूसरे का गन्धमात्र भी न पायी जाय। अन्ययोनि दो प्रकार का है—प्रतिबिम्बकल्प और आलेख्यप्रख्य। निह्नुतयोनि भी दो प्रकार का है—तुल्यदेहितुल्य और परपुरप्रवेश सदृश। अयोनि एक ही प्रकार का है।

---

१ परप्रयुक्तयोः शब्दार्थयो रूपनिबन्धो हरणम्। तद्विधा परित्याज्यमनुग्राह्यञ्च। तयोः शब्दहरणमेव तावत् पञ्चधा—पदत पादतः अर्द्धतः वृत्तत प्रबधतश्च। काव्यमीमासा

१ प्रतिबिम्बकल्प

दूसरे के अर्थ अपहरण करने के अनेक प्रकार हैं। वाक्यान्तर की रचना कर बिना तात्विक भेद के दूसरे का अर्थ ज्यो का त्यो ले लिया जाय तो वह प्रतिबिम्बकल्प कहलाता [1] है। केवल वाक्यान्तर मे अर्थान्तररहित रचना ही यह होता है।

धरे न मन में सोच जे वैर प्रवल सों ठानि।
सोवत आग लगाय के सदन माँझ पट तानि॥ प्राचीन

चुप बैठ जाना द्रोहियों से सन्धि करके,
आँगन में सोना है लगा के आग घर में। आर्यावर्त

दोनो के परिवर्तित प्रथमार्द्ध वाक्य में एक ही भाव है। उत्तरार्द्ध दोनो के एक-से ही हैं। पहले में एक 'पट तानि' के मुहावरे से जान आ गयी है और दूसरे में सन्धि करके भी निश्चिन्त होने को भी खतरनाक बताया गया है।

पीठ फेरे हुए भी यह बाला केश, सँवारने में गर्दन तिरछी झुकाये उँगुलियो से केशो के भीतर से देखने का मार्ग बनाकर, तुम्हें देख रही है।[2]

कंज नयनि मंजन किये, बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार॥ बिहारी

दोनो में एक ही चित्र है। अँगुलियो से हटे केशो के भीतर जो है वह 'कंच अँगुरिन बिच दीठि दै' में है। गरदन तिरछी करके देखने में जो बारीकी है, वह सामने से देखने में नहीं। विमुख वृत्ति में भी देखने की लालसा प्रकट करने मे जो सौन्दर्य है, वह सँमुखवृत्ति में नहीं। बालो की ओट से झाँकने की बात में जो विदग्धता है, वह तिरछी नजर से देखने में कुछ और हो जाता है। बिहारी की स्नान करके बैठी बाला बार बगरा रही है और आर्या की बाला बार सँवारने बैठी है। ऐसा ही कुछ वाक्यान्तर है।

वहाँ एक स्त्री इतनी सुन्दर थी जितना कि प्रातःकाल।[3] शेली
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ मधुर जितना प्रात। महादेवी

---

१ अर्थः स एव सर्वो वाक्यान्तर-विरचनापरं यत्र।
तदपरमार्थविभेदं काव्यं प्रतिबिम्बकल्पं स्यात्। काव्यमीमांसा

२ चिकुरविसारणतिर्यङ्नतकण्ठी विमुखवृत्तिरपि बाला
त्वामियमङ्गुलिकल्पितकचावकाशा विलोकयति। आर्यासप्तशती

3 There was a woman beautiful as morning.—Shelly

दोनों का भाव एक ही है। केवल सुन्दर और मधुर शब्दान्तर हैं।

निरखे मोर परवान के भई परवान समान।
तबते बिहारी यह भई है परवान कैसी
जबत निहारी वह मोर के परवान की। मतिराम

बात वही है, छन्द बदल गया है। संकुचित अर्थ ने विस्तार प्राप्त कर लिया है।

प्रतिबिम्बात्मक अपहरण के अनेकों प्रकार हैं जिनमें कुछ ये हैं १ पूर्वापर का विपर्यय कर देना, २ कुछ अंश लेकर नया निर्माण कर डालना, ३ संक्षिप्त अर्थ का विस्तार कर देना, ४ छन्द बदल देना, ५ कारण को भिन्न रूप देना, ६ भाषान्तर में परिणत कर देना और ७ अनेक अनुकूल अर्थों को लेकर अपनी रचना कर डालना।

२ आलेख्यप्रख्य

जहाँ तहाँ कुछ संस्कार करके अर्थ अपनाया जा सकता है और वह भिन्न प्रतीत हो सकता है। अर्थ चतुर ऐसे काव्य को आलेख्यप्रख्य कहते हैं।[1]

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत। तुलसी

मुकुत हार हरि के हिय मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका, मुख मुसकानि उदोत। मतिराम

छन्द बदलकर बरवै से दोहा हो गया है। तुलसी के केशों के मोती, मतिराम के हरि के हृदयहार के मोती बन गये हैं। दोनों के दोनों चरण एक-से हैं, चरण भी एक से। पहले में हाथ की उज्ज्वल आभा से और दूसरे में राधिका की मुसकान की आभा से अपनी पूर्व की उज्ज्वल आभा प्राप्त कर लेते हैं। दोनों मे एक ही पूर्व-रूप अलंकार है। थोड़े ही संस्कार से वस्तु भिन्न सी हो गयी है।

नभ लाली चाली निशा, चटिकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत, आये वनमाली न॥ बिहारी

जोन्हते ख्याली छपाकर भो छन में उनदा अब चाहत चाली।
कूजि उठे चटकाली चहूँ दिशि फैल गयी नभ ऊपर लाली॥
साली मनोज-व्यथा उर में निपटै निठुराइ धरे वनमाली।
आली कहा कहिहे कहि 'तोष' कहूँ प्रिय प्रीति नयी प्रतिपाली॥ तोष

---

१ कियताऽपि यत्र संस्कारकर्मणा वस्तु भिन्नवद्भाति।
तत्कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम्। काव्यमीमांसा

लाली, चाली, चटकाली, पाली, आली, वनमाली सभी एक-से शब्द हैं। दोनो की नायिका भी एक ही है और भाव भी एक ही है। किंतु, दोहे का यह भाव सवैये में आकर ढीला-सा पड़ गया है।

लावो यह शीघ्र यह कौन नहीं जानता
होता है अवध्य दूतवृन्द रणक्षेत्र में। मेघनाथवध
भेजो यहाँ सादर कहा यों सुलतान ने
दूत है अवध्य वह आदर का पात्र है। आर्यावर्त

राम की उक्ति में वही बात है जो सुलतान की उक्ति में है। यह भी भिन्नवत् है। उत्पादन करने में प्रतिभा लगानी ही पड़ती है। इससे इस प्रकार का अर्थापहरण इतना दूषित नहीं माना जाता।

३ तत्तुल्यदेहितुल्य

विषय-भिन्नता होने पर भी अत्यन्त सादृश्य के कारण अभिन्न मालूम हो वहाँ तत्तुल्यदेहि काव्य होता [1] है। तत्तुल्य होते हुए भी तद्भिन्न रचना करने में प्रतिभा की आवश्यकता होती है और ऐसी रचना कविगण करते हैं। ऐसे स्थानों में अपहरण नहीं माना जाता।

नयी लगन कुल की सकुच, बिकल भई अकुलाय।
दुहूँ ओर ऐंची फिरै, फिरकी लौं दिन जाय॥ बिहारी
प्रीतम को हित पौन गहि, लिये जाति तेहि संग।
गहि डोरी कुल लाज की, भई चंग के रंग॥ तोषनिधि

दोनो कवियों की नायिका एक-सी हैं। दोनों की अन्तर्व्यथाओं ने छटपटाने के लिए उन्हें विवश कर दिया है। दोनों ओर दोनों की खींचातानी है। एक फिरकी-सी ऐंची फिरती है और दूसरी चंग पर चढ़ी हुई है। कुल के संकोच की ओर खिंचने की अपेक्षा पतिप्रेम की ओर ही ये खिंची-खिंची-सी प्रतीत होती हैं। इनके तत्तुल्य होने पर भी तद्भिन्नता प्रतिपादन में प्रतिभा का स्फुरण लक्षित होता है। यद्यपि विषय की भिन्नता नहीं, पर उपमान की भिन्नता उपमेय नारी की अवस्था के विषय में भिन्नता लाती-सी प्रतीत होती है।

पद्माकर ने भी कुछ ऐसा ही कहा है—

काँपि कदली लौं या आली कौ अवलंब कहूँ चाहत लख्यो पै लोक लाजन लहै नहीं।
कंत न मिले को दुख दारुन अनंत पाय चाहत कह्यो पै कछु काहू सो कहै नहीं॥—पद्माकर

इसमें भी वही लोकलाज और वही कंत न मिलने का दुख है। यह इसकी अभिव्यक्ति उक्त दोहों की अभिव्यक्ति से निराली है। तीनों में एक ही बात निराले-निराले ढंग से कही गयी है। इनके कहने में नवीनता है।

---

१ विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितान्तसादृश्यान्
तत्तुल्यदेहितुल्यं काव्यं [illegible] सुधियो[illegible] [illegible]व्यमीमांसा

गुगुन उतै ह, इतै जोति है जवाहर की, झिल्ली झकार उतै, इतै घुघुरू लरैं।
कह कवि तोप उतै चाप, इतै बक भौंह, उतै बक पंक्ति, इतै मोती माल ही धरैं॥
धुनि सुनि उतै सिखि नाच,सखि नाचैं इतै,पी करे पपीहा उतै,इतै प्यारी सी करैं।
होट-सी परी है मानो घन घनश्याम जू सों दामिनी को कामिनी को दोऊ अंक में धरैं।—तोष

उत श्याम घटा इत हैं अलकें, बक पाँति उतै इत मोती लरी।
उत दामिनि दत चमक इतै, उत चाप इतै भ्रुव बक धरी॥
उत चातक तो पिउ पिऊ रटै, बिसरै न इतै पिउ एक घरी।
उत बूँद अखंड इतै अँसुवा, बरसा बिरहीन सों होंड परी॥—प्राचीन

दोनों म बातें एक सी हैं, पर विषय का भेद है। एक में पावस और संयोगी नायक की तुलना है तो दूसरे में वियोगिनी वर्षा की बदाबदी है। संयोग वियोग के कारण वर्णन में भी यत्र तत्र भिन्नता है। विषय बदलने से नूतनता भी आ गयी है।

जो हों कहूँ रहिये तो प्रभुता प्रकट होति चलन कहूँ तो हित हानि नहीं सहनो।
भावे सो करहु तो उदास भाव प्राननाथ साथ लै चलहु कैसे लोक लाज बहनो॥
केसो राय की सों तुम सुनहू छबीले लाल चले ही बनत जो पै नाहीं राज रहनो।
तैसी ये सिखावो सीख तुमहिं सुजान पिय तुमहिं चलत मोहि जैसो कछु कहनो॥ —केशव

इसम जो भाव हैं वही नीचे की दो पंक्तियों में व्यक्त हैं।

तुम मुझे पूछते हो जाऊँ मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो।
जा कहते रुकता है जबान किस मुँह से तुम से कहूँ रहो।—मु० कु० चौहान

केशव की प्रथम पंक्ति का भाव चौहान की दूसरी पंक्ति में और चौथी पंक्ति का भाव प्रथम पंक्ति में स्पष्ट है। भाव की एकता, कहने के निराले ढंग से नयी सी हो गयी। केशव की सारी कविता दो छोटी पंक्तियों में समा गयी है।

४ तत्पुरप्रवेशप्रतिम

दोनों का मूल एक ही हो, पर रचना परिपाटी दूरत अनेक ज्ञात हो तो वह काव्य पुरप्रवेशप्रतिम कहलाता है।[1] अर्थात् दूसरे के पुर में प्रवेश जैसा पराक्रम सापेक्ष होता है, वैसा ही मूल भाव को लेकर प्रतिस्पर्द्धिनी रचना प्रतिभा के बल से ही सम्भव है। इसे अपहरण की सज्ञा नहीं दी जा सकती।

कालिदास ने कहा है कि 'किस को सदा सुख ही रहा और किसको सदा दुख ही दुख रहा। पहिये के अरे जैसे नीचे ऊपर आते जाते हैं, वैसे सुख दुख भी आते ही जाते रहते हैं।

---

[1] मूलैक्यं यत्र भवेत् परिकरबन्धस्तु दूरतोऽनेकः।
तत्पुरप्रवेशप्रतिमं काव्यं सुकविभाव्यम्॥—काव्यमीमांसा

लिपटे सोते थे मन में सुख-दुख दोनों ऐसे।
चन्द्रिका अंधेरी मिलती मालती कुंज में जैसे ॥—प्रसाद

इसी भाव को कवि ने अपनाया और इस बात को किस ढंग से प्रकट किया कि सुख-दुख का आना बारी-बारी से लगा ही रहता है। फिर वे ही कहते हैं—

मानव-जीवन-वेदी पर परिणय है विरह-मिलन का।
सुख-दुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का ॥—प्रसाद

इसमें भी सुख-दुख दोनो के संग रहने का कलापूर्ण वर्णन है। एक और—

जीवन में सुख अधिक याकि दुख मन्दाकिनि कुछ बोलोगी?
नभ में नखत अधिक, सागर में या बुद्बुद् हैं गिन दोगी?
प्रतिबिम्बित हैं तारा तुम में सिंधु मिलन को जाती हो
या दोनों प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खो लोगी? प्रसाद

इसमें नखत सुख तथा बुद्बुद दुख के प्रतीक हैं। इसमें भी सुख-दुख के सदा साथ रहने की बात अद्भुत ढंग से कही गयी है।

बँधे जीवों की बनमाया, फेरती फिरती हो दिन रात।
दुख सुख के स्वर की काया, सुनाती है पूर्वश्रुत बात।
जीर्ण जीवन का संस्कार चलाता फिर नूतन संसार। निराला

'स्मृति' कविता की ये पंक्तियाँ दुख-सुख की बातें सुनाती हैं। हम जब अपने जीवन की पूव घटनाओं की बातों का स्मरण करते हैं तो उसमें दुख-सुख की आँखमिचौनी के अतिरिक्त दूसरा रहता ही क्या है? निराला की प्रतिभा निराली ही है।

शूलों का दंशन भी हो कलियों का चुंबन भी हो।
सूखे पल्लव फिरते हों कहने जब करुण कहानी ॥ महादेवी
मारुत परिमल का आसन नभ दे नयनों का पानी।
जब अलिकुल का क्रन्दन हो पिक का कल कूजन भी हो ॥

इसमें शूलों को तथा क्रन्दन को दुःख का और कलियों को तथा कला कूजन को सुख का प्रतीक माना गया है। कवियित्री ने सुख-दुख की साथ-साथ अनुभूति को बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

१ सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण।
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल हो घन ॥

---

२ कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥—मेघदूत

२ जग पीवन मे है सुख दुख सुख दुख में है जगजीवन।
हे बँधे विछोह मिलन दो देकर चिरस्नेहालिगन ॥ पत

पतजी ने सुखदुख पर कमाल की कविता की है। उन्होंने जीवन को 'साँझ उषा का आँगन, विरह मिलन का आलिगन और हास अश्रु मय आनन' कहा है। साँझ, विरह तथा अश्रु को दुख का और उषा मिलन तथा हास को सुख का प्रतीक मानकर ही ऐसी पक्तियाँ लिखी है। इसे रूपकातिशयोक्ति से भी बोध कराया कहा जा सकता है। पतजी ने बड़े ही कलाकोशल से इनके सयुक्त रहने की अभिव्यजना की है।

कालिदास के उक्त जीवन में सपृक्त रहनेवाले सुख दुख की व्याख्या है, उसे नये कलाकारो ने अपनी अपनी प्रतिभा के बल पर अत्यन्त सहृदयता के साथ अभिव्यक्त किया है। जिन कवियों ने जीवनव्याख्या की चेष्टा की है, उनमें कोई भी ऐसा नहीं जिसने सुखदुख के समिश्र वर्णन से विमुख हुआ हो यह कहने में जरा भी सकोच नहीं कि कालिदास के पुर में उक्त कवि अपनी अपन प्रखर प्रतिभा से प्रवेश करने में सर्वथा समर्थ हुए हैं।

एक कविता के अन्त में तुलसीदास कहते हैं—

अस विचारि हरि भगत सयाने, मुक्ति निरादरि भगति लुभाने।

कवीन्द्र रवीन्द्र भी वही बात अपने ढंग से कहते हैं—

मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया, प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया।

इसी में कवीन्द्र कहते हैं—

वैराग्यसाधने मुक्ति से आमार नय
असख्य बधन माँझे महानन्दमय
लभिबमुक्तिर स्वाद। रवीन्द्र

इसी आशय को गुप्तजी भी कहते हैं, पर अपने ढग से—

सखे मेरे बधन मत खोल,
आप बन्ध्य हूँ आप खुलूँ मैं तू न बीच में बोल।
सिद्धि का साधन ही है मोल। मै० श० गुप्त।

पत ने तो बढकर इसका अन्य रूप ही दे डाला है।

न्यौछावर स्वर्ग यही भूपर देवता यही मानव शोभन।
अविराम प्रेम की बाँहों में है मुक्ति यही जीवन बधन॥ पत

बात एक ही है, पर रूप भिन्न भिन्न। एक ही आत्मा का प्रत्येक शरीर में आवास है। यह पुरप्रवेशप्रतिम अर्थापहरण अभिनन्दनीय है।

ऐसा क्यों होता है, इस सम्बन्ध में आचार्य एकमत नहीं है। कहते हैं कि महात्माओं की बुद्धि

एक-सी हो जाती है। इसीसे उनके अर्थ टक्कर खा[1] जाते हैं। अनुभव और ज्ञान की सीमा जब बढ़ जाती है, तब ऐसा हो ही जाता है। क्योंकि कवियों के बुद्धि-दर्पण में संसार ही प्रतिबिम्बित हो उठता है।

इस प्रकार अपहरण के ये चार प्रकार हैं और कवि भी इनके अन्वर्थानुरूप चार प्रकार के होते हैं। ये अयस्मान्तमणि के तुल्य हैं। पाँचवा जो अयोनि कवि होता है, वह अभूतपूर्व अर्थ को प्रत्यक्षकारी होता है। यह चिन्तामणि के मणि समान है।

उक्त चार प्रकार की रचना करनेवाले कवि भ्रामक, चुम्बक, आकर्षक और द्रावक के भेद से चार प्रकार के कहे गये[1] हैं। भ्रामक कवि वे हैं जो स्वतः सिद्ध होने के कारण प्राचीनो के भाव लेकर अपने को कवि होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं। चुम्बक कवि वे हैं जो अपने वर्णन से दूसरे के अर्थ का थोड़ा-सा स्पर्श करते हैं। कर्षक कवि वे हैं जो अपने किसी वाक्यार्थ विशेष से दूसरे के वाक्यार्थ का सर्वस्व हरण कर लेते हैं।[2] द्रावक कवि वे हैं जो दूसरे के भावार्थ को लेकर अपने वाक्यार्थ में विग्धता पैदा कर देते हैं। इनमें चुम्बक और द्रावक निन्द्य नहीं होते। ये लौकिक होते हैं। दूसरा चिन्तामणि तुल्य कवि अलौकिक होता है। कहा है कि—

चोर कवि भी होता है और बनिया भी। किन्तु, वही अनिन्दित होकर प्रसन्न रहता है जो अपनी चोरी छिपाने में समर्थ होता[3] है। अर्थात् कवि अपनी रचना में अपनी चोरी को ऐसा लपेट लेता है कि उसका पता नहीं चलता। बनिया भी ऐसा ही करता है। इससे दोनो दगे साँढ़ हैं।

इस प्रकार भी कवि चार प्रकार के होते हैं। एक वे हैं जो उत्पादक हैं अर्थात् स्वबुद्धि से काव्यरचना करते हैं। दूसरे वे हैं जो परिवर्तक हैं अर्थात् दूसरे की रचना को अपनी रचना में परिवर्तित कर देते हैं। तीसरे आच्छादक हैं जो अन्य रचना को अपनी रचना में छिपा देते हैं। और चौथे वे हैं जो संवर्गक हैं अर्थात् अनेक काव्यो के अर्थग्राही[4] हैं।

कविता, प्रतिभा के बल पर की जाती है। पर ऐसी प्रतिभा या शक्ति सबसे वश की बात नहीं है। लेखक से अधिक कवि ही आविर्भूत हो रहे हैं। इन्हें पत्र-पत्रिकाओं में अपने छपे नाम की भूख तड़पा रही है। यही कारण है कि अज्ञान व्यक्ति भी कवि होने को ललायित है और यही उन्हें चोरी के लांछन से लांछित करता है। फिर भी निर्दिष्ट उचित अपहरण उनके लिए श्रेयस्कर होगा जैसी आचार्यों ने व्यवस्था की है और उदाहरण उनके सामने हैं।

---

१ संवादास्तु भवनयेव बाहुल्येन सुमेधसाम्॥ २ भ्रामकश्चुम्बकः किञ्च कर्षकः द्रावकश्च यः।

३ नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः। सनन्दति बिना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम्।

४ उत्पादकः कविः कश्चित् कश्चिच्च परिवर्तकः। आच्छादकस्तथा चान्यः तथा संवर्गकोऽपरः॥ काव्यमीमांसा

[स्वामी सहजानन्द सरस्वती]

जमींदारी जायगी

अभी कल तक—साल-छः महीना पूर्व तक—जमींदारों और उनके समर्थकों का खयाल था कि फिलहाल जमींदारी को बचा लेंगे। इस उद्देश्य को हासिल करने में उन्होंने कोई तरीका, कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। उनकी कोशिशें अभी भी जारी हैं। इसमें शक नहीं, ये प्रयत्न आगे भी जारी रहेंगे। कारण स्पष्ट है। प्रतिगामी और दकियानूस ताकतें एवं प्रथायें जल्द मरती नहीं—मर-मर के जिन्दा हो उठती हैं, उठती-ही हैं। और, जमींदारी? भारत की जमींदारी? यह सब से बड़ी दकियानूस चीज है। अतः अपनी हस्ती बनाये रखने के लिए, वह जो न करे, थोड़ा है। फिर भी, यह बात अब एक प्रकार से तय है कि न सिर्फ बिहार से, बल्कि समस्त भारत से, जिस किसी भी रूप में, जहाँ कहीं भी यह प्रथा पायी जाती है, इसका खात्मा होके रहेगा। और, अब इसके समर्थक भी, एकांत में ही सही, यह स्वीकार करने लगे हैं कि यह बच नहीं सकती। उनके सामने निराशा पहाड़ के रूप में खड़ी है। ऐसे लोग अपने भावी जीवन की, रहन सहन की तैयारियाँ भी इसी दृष्टि से मुस्तैदी से करने लगे हैं। लगता है, अवश्यम्भावी के सामने सिर झुकाने के सिवा उन्हें कोई दूसरा चारा ही नहीं। अतः जमींदारी के समर्थन में वे जो-कुछ भी कर रहे हैं, केवल एक अड़ंगा है, रोक रखने की नीति मात्र है। इस तरह वे चाहते हैं कि जमींदारी के बदले उन्हें अधिक से-अधिक पैसे मिल जायँ, अधिक-से अधिक सुविधायें मिल जायँ। उन्हें इस अड़ंगे से ऐसी

आशा है। मुआविजे के बारे में जब-तब फेडरल कोर्ट में केस करने की बातें भी सुनी जाती हैं। वे इसी की पोषक हैं। अतः ऐसा कहने में अत्युक्ति नहीं कि जमींदारी जरूर ही जाएगी।

समय की गति के विपरीत

हमने कहा है, भारत की जमींदारी सब से ज्यादा दकियानूस है। क्योंकि, इसकी स्थापना, समय की गति के विपरीत चलकर हीं हुई थी। यों तो जमींदारी प्रथा ही प्रतिगामी या विपरीत गतिवाली चीज मानी जाती है। यह एक ऐसे स्वार्थ या वर्ग को जन्म देती है, जिसका महत्त्व समाज या राष्ट्र के हित की दृष्टि से कुछ भी नहीं है। वर्त्तमान जमींदार, समाज या राष्ट्र का आज कौन-सा जरूरी काम करते हैं, जो उनके बिना हो नहीं सकता? मगर, जमीन में खेतीबारी करके समाज एवं राष्ट्र के लिए आवश्यक अन्नादि उत्पन्न करने को किसानो का होना अनिवार्य है। यह काम दूसरा कर नहीं सकता। पर, वह जमींदार क्या करता हैं? किसानों से जमीन का कर या लगान लेकर उसका एक अल्प अंश सरकार को देते हैं, और बस। मगर यह काम तो सरकार खुद कर सकती है, रैयतवारी इलाको में जहाँ जमींदार नहीं हैं, स्वयं करती ही है। तब जमींदारों की क्या जरूरत है, खासकर इस जनतंत्र के युग में? उनकी कौन-सी उपयोगिता समाज के लिए है? पोथियों के पन्ने उलटकर उनकी प्राचीनता सिद्ध करने मात्र से ही उनकी उपयोगिता कैसे सिद्ध होगी? चोर, डाकू, दुराचारी आदि भी तो प्राचीन समय से ही पाये जाते हैं। मगर इससे उनकी उपयोगिता का दावा कौन करेगा? और भारत की उत्तरी सीमा पर नेपाल का स्वतंत्र राज्य है। नेपाल की तराई में आज भी जिम्मेदार पाये जाते है, न कि जमींदार। उन्हें वहाँ जिम्मेदार ही कहा जाता है। उनका काम है—किसानो से सरकारी पावना या कर वसूल करके नेपाल सरकार को देना और पाँच से दस प्रतिशत कमीशन लेना। समस्त भारत में पहले यही जिम्मेदार थे, जो कमीशन पर सरकारी जमा वसूलते थे। यही मान लेने में कौन-सी पोथी रंज हो जायगी या उसके पन्ने गल-पच जायँगे? यों तो जहर की भी उपयोगिता होती है ही; मगर उसे मानता कौन है?

एक बात और। इतिहास जाननेवालों को विदित है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त, १७८६ में, जो फ्रांसीसी क्रान्ति हुई, उसका एक जबर्दस्त नारा था—जमींदारी का उच्छेद। क्रान्ति के फलस्वरूप ही वहाँ जमींदारी मिटी और पुनः पनप न सकी, यह भी ठोस सत्य है। उसे मिटाकर ही नेपोलियन ने अपनी शक्ति दृढ़ की। उसीके लगभग १७७६ में, उत्तरी अमेरिका में क्रान्ति हुई और वह ब्रिटिश-आधिपत्य से स्वतंत्र हुआ। उसी आधिपत्य से, जहाँ जमींदारी आज भी किसी न किसी रूप में मौजूद है; हालाँकि उसका रूप दूसरा ही है, और है प्रायः निर्दोष। जिन अंग्रेजो ने आयर्लैण्ड में जमींदारी को जन्म दिया वे अमेरिका को उससे बचने देते क्या? लेकिन, स्वतंत्र अमेरिका ने वहाँ जमींदारी का जन्म होने ही न दिया और वह आज संसार में सर्वोपरि

समृद्धिशाली, उद्योग-व्यापार शाली एवं शक्तिशाली माना जाता है, विज्ञजन इसे मानते हैं। लेकिन सब ने किसी न किसी रूप में माना है कि अमेरिका कि इस समुन्नत दशा के मूल में इस जमींदारी का न होना भी है। इससे अधिक लिखने का यहाँ अवसर नहीं है। उसने यह भी लिखा है कि पूँजीवादी लोग पूँजीवाद के प्रसार के लिए ही भूमि में व्यक्तिगत सम्पत्ति, जमींदारी, मिटाकर उसे राष्ट्र की सम्पत्ति बना देते हैं। अमेरिका के पूँजीवादियों ने यही किया भी।

लेकिन, भारत में इस जमींदारी का जन्म ठीक उसी समय, १७९३ में, हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसका श्रीगणेश ही समय की गति के विपरीत हुआ। जब संसार से जमींदारी के उन्मूलन का उद्योग बड़ी मुस्तैदी से हो रहा हो और क्रान्तिकारी शक्तियों ने इस सामन्त-प्रथा के विरुद्ध जेहाद बोल दी हो, उसी समय भारत में इसका प्रादुर्भाव बताता है कि यह कितनी दकियानूस और प्रतिगामिनी है। इसलिए यहाँ इसके संहार का समय सब से पीछे आया है, फिर भी यह तो तय है कि यह युग ही इसका शत्रु है और इसे मिटा के ही दम लेगा।

मध्यवर्ती स्वार्थ का अन्त

बता चुके हैं कि एक ओर राष्ट्र, समाज एवं उसकी कार्यवाहिका सरकार का तथा दूसरी ओर किसान का होना अत्यावश्यक है। इन दोनों के अपने अपने निर्दिष्ट स्थान हैं। मगर जमींदार का? उसका कोई भी स्थान नहीं। जमींदार से अभिप्राय है उस मध्यवर्ती स्वार्थ या उसके प्रतिनिधि से, जो उन दोनों के बीच में त्रिशंकु की तरह लटका हुआ है और जिसकी आवश्यकता आज दो में एक को भी नहीं है। यह मध्यवर्ती वर्ग या स्वार्थ किसी-न-किसी रूप में भारत के सभी प्रान्तों में है। इसके जमींदार, मालगुजारी तालुकेदार, इनामदार, इस्तमरारदार, साहुकार-जन्मी, खोत, पवाईदार, जागीरदार आदि विभिन्न नाम, विभिन्न प्रान्तों में पाये जाते हैं। फलतः जमींदारी के मिटाने से हमारा आशय उन सभी वर्गों या स्वार्थों के खात्मा से है, जो किसी-न-किसी रूप में किसान, या वास्तविक खेती करनेवालों तथा राष्ट्र, समाज या सरकार के बीच में पाये जाते हैं और जिनका कोई भी योग भूमि के उत्पादन या उसकी वृद्धि में नहीं है। हल, बैल, सिंचाई, बीज, खाद आदि खेती के साधनों में किसी के भी जुटाने में जिनका हाथ नहीं है, वही जमींदार हैं। प्रत्युत् वे तो चाहते हैं कि फसल मारी जाय तो किसान लगान न दे सकेगा और विवश होकर या तो जमीन ही छोड़ भागेगा, या हम जमीन को नीलाम कराकर काफी सलामी या नजराने के बाद दूसरों के हाथों बन्दोबस्त करेंगे। यह एक ठोस सत्य है। भला ऐसे वर्ग को कौन बर्दाश्त करना चाहेगा? इसलिए यदि आज जमींदारों को सर्व शोषण सिद्ध कहा जाता है तो इसमें अत्युक्ति क्या है? पञ्जाब तथा सीमाप्रान्त को किसानों का प्रान्त कहते हैं। वहाँ जमींदार के आमतौर से मानी है, मालिक नहीं, किन्तु किसान। साधारणतः किसीके पास ज्यादा जमीन है नहीं, किन्तु, खेती

करने के लायक ही है। इसी प्रकार बम्बई तथा मद्रास के बहुत बड़े भाग को रैयतवारी कहते हैं, उसका भी आशय यही है कि सरकार ने सीधे किसानों को ही जमीनें दीं, बीच में जमींदार जैसा स्वार्थ या वर्ग वहाँ नहीं है। आसाम का अधिकांश तथा बरार भी रैयतवारी ही है। फिर भी साहुकार या सूदखोर महाजनों ने सर्वत्र जमीनें किसानों से खरीद ली हैं और सरकार से सीधा सम्बन्ध उन्हीं का है। वास्तविक किसान पीछे पड़ गये हैं, उन्हीं साहूकारों से वही जमीनें लेकर वे किसान खेती करते हैं। कहीं-कहीं इमानदार या जागीरदार आ गये हैं जिन्हें अच्छे कामों के पुरस्कार-स्वरूप सरकार ने बहुत-से मौजे इनाम या जागीर के रूप में दे दिये हैं। इस प्रकार देखते हैं कि ये मध्यवर्त्ती स्वार्थ सर्वत्र आ गये हैं जो असली किसानों का शोषण करते हैं। देशी रजवाड़ों में तो बड़े-बड़े जागीरदार हैं जो जमींदार भी हैं और सामन्त शासक भी। उन्हें दिवानी तथा फौजदारी अधिकार भी कम-बेश प्राप्त हैं। इस तरह करैला नीम पर चढ़ गया है। फलतः जमींदारी मिटाने के मानी हैं, इन सभी मध्यवर्त्ती वर्गों या स्वार्थों का मूलोच्छेद; क्योंकि भारत का कोई भाग इन जमींदारों से बचा नहीं है।

अपुनरावृत्ति

यहाँ पर इन स्वार्थों के मूलोच्छेद को भी समझ लेना होगा। लेकिन ऐसा करने के पूर्व इनके मूल कारण को भी जान लेना ठीक है। हमने देखा है कि जहाँ जमींदारी प्रथा की स्थापना नहीं की गई, वहाँ भी ये जमींदार पैदा हो ही गये। इसीलिए उनका मिटाना भी आवश्यक हो गया। फलतः मानना होगा कि भारत में सर्वत्र जमींदारी के मूलभूत कारण, इसके उत्पादन की सामग्रियाँ मौजूद थीं और हैं जिन्होंने लार्ड कार्नवालिस जैसे पिता के न होने पर भी जमींदारी का प्रकारान्तर और नामान्तर से जन्म दे ही दिया। यह तो एक आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था है जो अनुकूल भूमि तथा वायुमंडल में उपजती-पनपती है, फलती-फूलती है। ऐसी दशा में इस जमींदार के मूलोच्छेदन में तब तक पूर्ण सफलता नहीं मिलेगी, जब तक इसके उत्पादक कारणों का उच्छेद न कर दिया जाय। मान लीजिये कि सभी जमींदारो को हटाकर सरकार ने अपने हाथ में सारी जमींदारियाँ ले लीं। मगर आगे चलकर होगा क्या? किसान अपनी जरूरतो से विवश होकर बैंकों से, महाजनों से या सम्पन्न किसानों से ही कर्ज लेंगे। इस प्रकार ये बैंक, महाजन या सम्पन्न किसान ही समय पाकर जमींदार बन बैठेंगे, जैसा कि पहले हुआ है। आखिर बैंक तो किसानी करेंगे नहीं और न महाजन ही किसान बनेंगे। यदि किसान बनना भी चाहें, तो होगा क्या? किसान ही जमींदार बन जाते हैं। क्यों? इसीलिए न कि उनके पास ज्यादा जमीन हो जाने पर, सब में स्वयं खेती कर नहीं सकते। महाजनों या बैंकों की भी यही हालत होती है, हो सकती है। अधिक जमीन होने पर, दूसरों के हाथ बन्दोवस्त करके वे जमींदार बन बैठते हैं, चाहे उनका

नाम जमींदार भले ही न हो। जिन जातियों में जमींदारी कभी नाम को भी न थी। उनमें भी आज जमींदार पैदा हो गये इसी प्रकार। इसलिए जमींदारी का मिटाना बेकार होगा, यदि उसके जनक कारणों का उच्छेद न किया गया।

रूस के किसानों की गुलामी जब १८६५ में मिटी, तो उन्हें थोड़ी-थोड़ी जमीन मिली। लेकिन, उनके पास खेती का सामान न था। नन्हें-नन्हें खेतों के टुकड़ों के लिए सामान आता भी कैसे? यदि हल चलाने के लिए उन्होंने किसी प्रकार घोड़े खरीदे—क्योंकि वहाँ बैलों से हल नहीं चलता था—तो इनके खिलाने के लिये घास बगैरह की सुविधा न थी। फलत उन्होंने जमीनें बेंच दीं और अन्यत्र चले गये या नौकरी कर ली। इस तरह वहाँ कुलकों—धनी किसानों का जन्म हुआ, जो जमींदार ही थे। सयुक्त परिवार के टूटने तथा उत्तराधिकार के कानून के करते यहाँ भी बँटवारा होता है और नन्हें-नन्हें खेत बनकर बनियों या दूसरों के हाथ चले जाते हैं। वही लोग समय पाकर जमींदार बनते हैं।

इसीलिए जमींदारी मिटाने के साथ ही बहुत-सी दूसरी चीजें भी मिटानी होंगी और कुछ नई चीजें बनानी होंगी। तभी इस मिटाने के कुछ मानी होंगे। नहीं तो यह मिटाना हाथी का नहाना ही होगा। उत्तराधिकार तथा बँटवारे के कानूनों को भी बदलना होगा। किस के पास जमीन रहे, किस के पास नहीं, यह बात व्यक्तिगत रूप से तय करनी होगी। कुछ जातियों को खेतिहर बनाकर उन्हीं के पास जमीन रहे और उन्हीं के हाथ बेची-खरीदी जाय, जैसा कि पजाब मे इस शताब्दी के शुरू में ही किया गया था। वैसा करने से काम न चलेगा। किसान ही जमींदार बनेंगे और जाली खरीद-बिक्री होगी। इसीलिए व्यक्तियों के बारे में ही यह व्यवस्था की जानी चाहिये। पाँच आदमियों का परिवार कम से कम और ज्यादे से ज्यादा कितनी जमीन रख सकता है, यह भी तय कर देना होगा। बड़ी से-बड़ी और छोटी-से-छोटी होलिंडग (तख्ता) कितने एकड़ों की होगी, यह भी निश्चित करना पड़ेगा। यह भी कानून बनाना होगा कि उन होल्डिंगों को घटाना या बढ़ाना जुर्म है। लगान पर दूसरों को खेत देना भी अपराध करार दिया जायगा। जो किसान अपनी जमीन में अच्छी तरह खेती न करे, उसकी जमीन के सरकार के हाथ चली जाने का भी कानून होगा।

लेकिन, इन निषेधात्मक बातों तथा खेती की सफलता के लिए कम से कम तीन विधानात्मक बातों की भी फौरन जरूरत है। एक यह कि वर्त्तमान जनसंख्या के आधे को खेती से हटाकर उद्योग-धन्धों, या नौकरियों में लगाना पड़ेगा। यदि खेतों की पैदावार काफी हो, तो भी भारत की खेती के योग्य भूमि से सिर्फ आज के आधे लोगों की ही गुजर हो सकती है। मुश्किल से भारत में ३० करोड़ एकड़ जमीन में खेती होती है। इण्डियन इन्स्टीच्यूट ऑफ ऐग्रिकल्चर नाम की सस्था ने युद्ध के अन्तिम

दिनों में अनुसन्धान करके बताया था कि प्रायः २५ करोड़ एकड़ जमीन और भी है, जो खेती के योग्य बनाई जा सकती है। इसमें पर्याप्त समय और पैसा लगेगा। फिर भी, कुल मिलाकर ५५ करोड़ एकड़ ही तो होगी, और प्रति मनुष्य दो एकड़ उपजाऊ जमीन से कम में काम चलता नहीं। फलतः इतनी जमीन २० करोड़ से अधिक लोगों का भरण-पोषण कर नहीं सकती। जनसंख्या तो बढ़ती ही जायगी। मगर जमीन तो बढ़ेगी नहीं। इसीलिए गाँवों के आधे लोगों को खेती से हटाकर दूसरी जीविका देना सरकार का पहला काम होगा।

दूसरा काम है—भूमि के उत्पादन को बढ़ाने तथा समुन्नत कृषि के सभी साधनो को सम्पन्न कर देना। सिंचाई, खाद, अच्छे बीज, खेती की उपज एवं उसके लिए आवश्यक वस्तुओं की खरीद-बिक्री आदि का प्रबन्ध खुद सरकार को करना पड़ेगा और स्थान-स्थान पर सलाहकार रखने होंगे, जो किसानों को राय-मशविरा देते रहें। समुन्नत खेती की शिक्षा का भी प्रबन्ध करना होगा। पंचायती खेती और ट्रैक्टर आदि की भी व्यवस्था जरूरी है। पथ-दर्शन के लिए सरकार के द्वारा संचालित समुन्नत खेती के बड़े-बड़े फार्मों का भी होना आवश्यक है। एतत् सम्बन्धी साहित्य को भी किसानों तक पहुँचाना होगा। प्रचारक और सिनेमा आदि से भी इसमें काम लेना ही पड़ेगा। समुन्नत खेती के लिए इनाम, पारितोषिक आदि की व्यवस्था चाहिये ही।

सरकार का तीसरा काम होगा, लम्बी मुद्दत के लिए नाममात्र के व्याज पर किसानों को खेती-बारी तथा घर-गिरस्ती के कामों के लिए ऋण देने की समुचित व्यवस्था करना। वह ऋण खेती की उपज से ही आसान किस्तों में धीरे-धीरे वसूल होगा, यह भी नियम होना जरूरी है। तभी तो सरकार और किसान, दोनों ही को चिन्ता होगी कि जमीन की उपज बढ़े। यह भी यहीं जान लेना होगा कि उपजाऊ जमीन के दस एकड़ो से और मामूली के पचीस एकड़ों से पाँच आदमियों का भरण-पोषण अच्छी तरह हो सकता है। ऐसा परिवार पचास एकड़ से अधिक जमीन में अच्छी तरह खेती कर नहीं सकता। खामखा लापरवाही करता है। इसीलिए ज्यादे से ज्यादे पचीस एकड़ों की होल्डिंग, लाभदायक या व्ययसाधक (Economic) होगी। बड़ी से बड़ी होल्डिंग भी पचास एकड़ की होगी। उससे ज्यादा जमीन कोई न रखेगा, यही नियम चाहिये।

सरकार जमींदार न बने

इन सभी बातो के लिए माना जाने लगा है कि सरकार को ही जमींदारी की गद्दी पर आसीन कर देना ठीक है। जमींदारी के स्थान पर रैयतवारी कायम करने के मानी तो यही हैं। इस सम्बन्ध में अब तक जो कुछ कहा-सुना या नियम-कानून का मशविदा बना है, उसका भी आशय यही है। मगर है यह बात सरासर गलत। रैयतवारी की दशा जमींदारी प्रान्तों से बुरी नहीं, तो अच्छी भी नहीं है; यह जानकारो से छिपी नहीं है।

मेरा तो इस बारे में निजी अनुभव है। अत मुझे यह कहने में जरा भी हिचक नहीं कि रैयतवारी सरासर धोखा है। इसमें किसानों का खून बुरी तरह होता है। सचमुच किसानों को वहाँ कोई कानूनी हक शायद ही है। मेरा अभिप्राय, ८० प्रतिशत या उससे भी अधिक वैसे किसानों से है, जो साहूकारों, इनामदारों आदि के गुलाम हैं, और जिनके द्वारा वे लूटे जाते हैं। यह लूट पुरानी है। मगर उन्हे इस से बचाने के लिए अभी तक कौन से कानून बने हैं ! इधर हाल में इस ओर पाँव बढ़ा है जरूर। मगर देहली इनौज दूरस्त। इनसे तो जमींदारी प्रान्तों के किसानों की दशा कहीं अच्छी है। जमींदारों के विरुद्ध इनके कानूनी हक हैं। मगर वहाँ वहाँ खाक है।

एक बात और। सरकार रुपये-पैसे के मामले में बड़ी बेमुरव्वत होती है। इसीलिए उसके पावने की वसूली मे बड़ी सख्ती होती है। वह तो मशीन ठहरी न ? उसमें मनुष्यता का पुट कहाँ, लेश कहाँ ? उसका तो बजट पूरा होना ही चाहिये। यदि आय की वसूली न होगी, तो व्यय कैसे चलेगा ? जमींदारों की तरह कर्ज लेकर तो उसका काम चल नही सकता। कर्ज की मजूरी तो पार्लियामेन्ट या व्यवस्थापिका सभा से लेनी होगी, और जब बजट में आय की मदें हैं, तो कर्ज का सवाल उस सभा के सामने क्यों ? यदि वसूली नही होती है, तो अधिकारी अयोग्य हैं। उन्हें हटाकर दूसरे रखे जायँ, यही हो सकता है। इसीलिए सरकारी मशीनरी तो निर्दयता के साथ ठीक समय पर, किस्त वसूली करेगी ही। नही' तो जमींनें जब्त कर लेगी। दोनों हालतों में किसानों में घोर असतोष एव तज्जनित विद्रोह की अग्नि का भड़कना अनिवार्य होगा। जिनकी आदत पड़ी है, वर्षो या कई साल बाद, अपनी मर्जी से सुविधा के अनुसार देने की, उन्ही को यह सख्त से सख्त अनुशासन और पाबन्दी किस दिशा में ले जायगी, इसका अन्दाज आसानी से हो सकता है। इस आग में घी का काम करेगी माल महकमें के कर्मचारियों की भ्रष्टता और घूसखोरी। उनकी तुम्राफेरी किसानों को खून के आठ-आठ आँसू रुलायेगी, याद रहे। खासमहाल के इन कर्मचारियों का जिन्हे अनुभव है, वह समझ सकते हैं कि वे क्या गजब ढायेंगे। यह भी बात है कि जमींदारों के पुराने अमले ही कर्मचारी बहाल होंगें। फिर तो शैतान के हाथ में मशाल देने की हालत होगी। यह रैयत-वारी खासमहाल का भीषणतम रूप होगा और कलक्टर होगा जमींदारों का दादागुरु। किसानों के लगान में न तो छूट होगी और न उन्हें दूसरी सुविधायें ही मिलेंगी, जैसा कि आगे विदित होगा। उन्होंने बड़ी बड़ी आशायें बाँध रखी हैं। उन पर पानी फिर जायगा। उसीके साथ यह सख्ती और यह तुम्राफेरी उन्हें आपे से बाहर कर देगी, यह अन्देशा है। जब किस्त पर लगान न दे सकने पर उनकी जमीनें जब्त होने लगेंगी, तो उनके दिमाग का पारा ऊँचा चढेगा। जमी दार और उनके पिट्ठू उन्हें और भी उसकायेंगे, यह मानी हुई बात है। नतीजा स्पष्ट है। इसलिए जमी दारी की गद्दी पर बैठने की भूल सरकार हर्गिज न करे। नही तो दुश्मनों के हाथ में खेलेगी। शत्रु ताक लगाये बैठे हैं, यह सब को मालूम ही है।

किसान जमीन का मालिक हो

प्रश्न होता है तब हो क्या? जमींदारी के स्थान पर जमीन के बन्दोबस्त की कौन सी प्रथा जारी हो? भूमि की व्यवस्था कैसी हो? उत्तर है कि जमीन के मालिक किसान ही हों। जितनी जमीन जो किसान जोते-बोये, उतनी उसी की है, यही कानूनी व्यवस्था जारी हो। जमीन को राष्ट्र या समाज की सम्पत्ति बनाने के समर्थक लेनिन जैसे महापुरुष को भी यही काम रूसी-क्रान्ति के बाद, १९१७ में, करना पड़ा था। उसने किसानों में मौजूदा जमीन की भूख देख ली थी। उसे यह भी मालूम था कि भोलाभाला रूसी किसान जमीन की राष्ट्रीयता की बात समझता नहीं; वह उस से बुरी तरह भड़कता है, भड़केगा। वह तो जमीन को अपनी देखने का भूखा है। यदि उसे यह विश्वास न हुआ कि क्रान्ति के फलस्वरूप उसकी जोत की जमीन अपनी हो गई, तो वह विद्रोही बन जायगा और क्रान्ति को मिट्टी में मिला देगा। फलतः लेनिन ने अपने भूमि-सम्बन्धी आदेश (Land Decree) में किसानों को तत्काल जमीन का मालिक घोषित करके, उनके दिलों को जीत लिया। लेनिन की उसी जीत के कारण, पीछे धीरे-धीरे वहाँ पंचायती एवं सामूहिक खेती का भी प्रसार हो सका। फिर भारत उसका अपवाद नहीं हो सकता। यहाँ भी वही करना होगा।

साथ ही, लगान या माल (Rent or Revenue) की प्रणाली को खत्म करके कृषि-कर या भू-कर की प्रथा जारी करनी होगी। जमीन की उपज पर किसानों को कर देना होगा, यही नियम हो। जैसे दूसरे-दूसरे आयकरों का कायदा है कि एक निश्चित आय को छोड़, शेष पर कर लगता है, किसानों के सम्बन्ध में भी वही किया जाना चाहिये। पाँच व्यक्तियों के परिवार के लिए खेती से साल में बारह सौ रुपये या ऐसी ही आय को छोड़, शेष पर कर लगे तो ठीक हो। जब खेती की समुन्नति के सभी साधन किसानों को मिल जायँगे, तो गल्ले तथा किराने की फसलों (Money Crops) से उन्हें पर्याप्त आमदनी होगी, यह निर्विवाद है। किराने से तो आज भी काफी पैसे मिलते ही हैं। जब घनी खेती (Intensive Cultivation) होगी, तो यह आय और भी बढ़ेगी। ऐसी दशा में इस तर्क के लिए स्थान न होगा कि ५० एकड़ से ज्यादा जमीन जब किसी के पास होगी ही नहीं, तो वह भूकर या कृषिकर देगा क्या? पंचायती एवं सामूहिक खेती का प्रसार होने तथा मार्केटिंग की ठीक व्यवस्था कर देने पर, इस कर से सरकार को पर्याप्त पैसे मिलेंगे। सरकार को भी फिक्र होगी कि किसानों की आय बढ़ायें, ताकि हमारी भी आय बढ़े; और दोनों के पारस्परिक सद्भाव का इससे बढ़िया साधन और क्या हो सकता है?

उत्पादन का साधन, न कि कर का

अब तो यह बात भी सर्वमान्य हो गई है कि लगान, माल या भूमिकर से कोई राष्ट्र या उसकी सरकार चल नहीं सकती। सरकारें अब आयकर पर ही अवलम्बित रहा करती हैं। जितनी ही वृद्धि, उद्योग धन्धों की होती है, सरकार की आमदनी उतनी ही बढ़ती है। इसीलिए सरकार को फिक्र भी बराबर रहती है कि ये उद्योग-धन्धे कैसे समुन्नत हों। भारत में तो इस चीज की और भी जरूरत है। यहाँ तो उद्योग-व्यापार के विस्तार की सख्त से सख्त जरूरत है। फलत सरकार को यदि आयकर का ही विशेष सहारा हो तो विवश होकर वह उद्योग-धन्धों का प्रसार करेगी। लेकिन, इनके लिए कच्चे माल की आवश्यकता होती है, और उनका उत्पादन किसान की जमीनें करेंगी। जमीन के तो दो ही काम हैं—राष्ट्र के खाने-पीने के लिए अन्न, फल, शाक, तरकारी पैदा करे और कारखानों के लिए आवश्यक कच्चा माल। यही तो उसके मौलिक काम हैं। फिर उससे लगान या माल पैदा करने के क्या मानी? इन्हीं से सरकार की आय पैदा होगी, जैसे दूध से दही। फिर गाय भैंसों से सीधे दही पैदा करने की बेकार कोशिश क्यों? यदि खाद्य पदार्थ सस्ते हों, तो राष्ट्र और समाज शक्तिशाली एव हृष्ट पुष्ट हों। इसी तरह यदि कच्चा माल सुलभ और सस्ता हो, तो उद्योग-धंधे चमके और राष्ट्र समृद्धिशाली हो। अमेरिका की समृद्धि का प्रधान कारण यह है कि उसने जमीन से लगान या कीमत लेने के बजाय किसानों को मुफ्त जमीनें दी हैं और खेती में सभी सुविधाय विना कहे पहुँचाई हैं। भारत को भी यही करना होगा। राष्ट्रीय सरकार लगान लेने की परवाह छोड़कर कृषि की सर्वांगीण उन्नति की ही परवाह करे, किसानों की खेती की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त करे, बिना माँगे सभी साधन उनके पास पहुँचा दे। तभी हमारी अन्न-समस्या और कच्चे माल की समस्या हल होगी। गत दशक में यहाँ की जनसंख्या १५ प्रतिशत बढ़ी। उत्तरोत्तर बढ़नेवाली सख्या को अन्न और वस्त्र देने का अन्य मार्ग कोई है भी नहीं।

मुआविजा या मूल्य ?

जमींदारी मिटाने के सिलसिले में यह भी प्रश्न उठा हुआ है कि जमींदारों को इसके बदले में क्या दिया जाय? जमींदारी के एवज में जो दिया जाय, उसे मुआविजा भी कहते हैं। यह मुआविजा कम बेश हो सकता है। इसलिए जमींदारी का मूल्य देकर ही उसे खरीद लेने की बात चलती है। लोग इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी उड़ाने भी मारते हैं कि यह दिया कैसे जाय, किस रूप में और कहाँ से? इसलिए इस पहलू पर भी गौर कर लेना जरूरी है। यह भी कह दे कि हम यहाँ इस मूल्य या मुआविजे की नैतिकता अनैतिकता के पहलू पर विचार

करना व्यर्थ समझते हैं, हालाँकि वह अवश्य ही अपना महत्त्व रखता है। हमें व्यावहारिक दृष्टि से ही इस पर विचार करना है। और इस समय यही जरूरी भी है।

कुछ लोग कहते हैं कि सरकार को सिर्फ बिहार प्रान्त में ही डेढ़-दो अरब रुपये चाहिये मुआविजे के लिए, यदि उसकी अपनी ही रट मान ली जाय और जमींदारों की माँग ठुकरा भी दी जाय। लेकिन, इतने रुपये वह लायगी कहाँ से? यदि किसी तरह लायेगी भी तो अन्ततोगत्वा किसानो से ही तो वसूल करके वह कर्ज धीरे-धीरे चुकायेगी। ऐसी दशा में किसान हीं अपने-अपने कब्जे की जमीनों की कीमत सरकार या जमींदारों को चुकता कर क्यों न दें और जमीन के मालिक क्यों न बन जायें? तब तो जमींदारो की गद्दी पर सरकार का बैठने का सवाल भी न रहेगा। उनका यह भी कहना है कि युद्ध और महँगी के चलते किसानों के पास पैसे भी काफी हैं।

मगर यह गलत बात है। महँगी ने केवल १० से १५ फी सदी किसानों को ही, जिनके पास काफी जमीनें हैं और जो गल्ले आदि बेचते हैं, धनी बनाया है। लेकिन, ८५–९० प्रतिशत को तो खाने-भर को भी अन्न नहीं होता। फलतः वे खरीदते-खरीदते अत्यंत दरिद्र हो गये हैं। उन्हे अपने परिवार का पेट काटना पड़ा है। यदि उन्हों ने पुराने ऋण चुका कर कुछ जमीनें लौटाई हैं, तो उसकी बड़ी महँगी कीमत इस पेट काटने के रूप में चुकाई गई है। परिवार को प्रायः मार डाला ही है, इतना मारा है कि उससे ज्यादा अब मार भी नहीं सकते। फिर वे जमींदारों को देंगे क्या खाक? तो क्या १०–१५ प्रतिशत धनी किसान ही सब कीमत चुका कर नये जमींदार बने, यही मंशा है?

दस से बीस साल तक के लगान से कम, तो ये जमींदार लेंगे ही नहीं। हालाँकि वे ४० साल तक की बातें करते हैं। तो क्या इतनी बड़ी रकम साधारणतः किसान एक किस्त या दो-तीन किस्तो में भी दे सकते हैं? याद रहे कि किस्त होने पर यह रकम कुछ न कुछ बड़ी ही होगी। और अगर दे डालें भी तो, फिर इस लम्बी मुद्दत के भीतर खेती में सुधार के लिए रकम कहाँ से लायेंगे? कर्ज लेकर मूल्य चुकाने पर सूद देते-देते ही मरेंगे। सरकार के पास भी पैसे कहाँ कि यह सुधार करे। यदि कर्ज ले तो सूद देना पड़े, इन्हीं किसानों को, घुमा-फिरा कर या सीधे। यह भी बात होगी कि उस दशा में छोटे-बड़े सभी जमींदारों को एक ही दर से मूल्य मिलेगा, वे ऐसा ही दावा करेंगे; हालाँकि बाजार में ऐसा नहीं होता। वहाँ बड़े जमींदार कम मूल्य पाते हैं।

यदि कहा जाय कि सरकार ही कर्ज लेकर कीमत चुकायेगी तो यह भी असंभव जैसी चीज होगी। कहा जाता है, ४० साल में धीरे-धीरे सरकार सारा मुआविजा चुकायेगी। लेकिन, सिर्फ बिहार में

ही पौने दो अरब की यह रकम होगी, जिसके साफ मानी हैं सालाना साढे चार करोड़ चुकाना। उसका सूद भी ढाई रुपये सैकड़े के हिसाब से इतना ही होगा। इस तरह नौ करोड़ तो यही रकम हुई। १५-२० साल तक सूद में नाममात्र की ही कमी होगी। फलत कम-वेश इतना ही देना पडेगा। साथ ही, किसानों से लगानवसूली आदि का व्यय बीस प्रतिशत के हिसाब से तीन और चार करोड़ के बीच होगा। फसलों के मारे जाने के कारण साल में कुल मिलाकर एकाध करोड़ छूट भी देनी ही होगी। एकाध करोड़ की वसूली हर हालत में नहीं ही होगी। इस प्रकार कम से कम १४-१५ करोड़ का सालाना खर्च होगा, और जमींदारी की आय बताई जाती है कम वेश १३ करोड़ ही। फलत यह तो घाटे का सौदा होगा और किसानों के लिए सरकार कुछ भी कर न सकेगी। उससे न सिर्फ असन्तोष एवं विद्रोह फैलेगा, बल्कि खेती की उन्नति न होने से लोग भूखों मरेंगे और दूसरे उद्योग-धन्धे भी प्रगति नहीं कर सकेंगे। फिर, गाँव के आधे या ज्यादा लोग को खेती से हटाकर रखा कहाँ जायगा? उधर आबकारी की प्राय. पाँच करोड़ की आय से सरकार को हाथ धोना ही है। शराब आदि को रोकने के निमित्त अधिक पुलिस वगैरह रखने ही होंगे, जिनके लिए भी एकाध करोड़ चाहिए ही। फलत. बिक्री कर (Saletax) से जो नवीन आय होने को है, उससे तो आबकारीवाले घाटे की भी पूर्ति नहीं हो सकती। फिर, उन्हीं रुपयों में से कृषि की समुन्नति में खर्च करने की आशा कहाँ है?

हाँ, एक बात हो सकती है। यदि जमींदारों के मुआविजे ६० या ८० साल में चुकाये जाने का निर्णय हो जाये, तो सालाना खर्च में सरकार को कमी होगी और उसी बचत से शायद खेती की उन्नति की योजना भी की जा सकेगी। ८० साल से कम में चुकाने पर तो यों भी शायद ही काम चलेगा। मगर क्या यह सम्भव है? क्या जमींदार इसके लिए राजी होंगे? क्या इस तरह का कानून बनाया जा सकेगा? ये बडे प्रश्न हैं, असाधारण सवाल हैं? इनका उत्तर कौन देगा?

मुआविजा नहीं, जमीन दो

इसलिए उचित यही है कि कीमत या मुआविजे का प्रश्न ही न उठाया जाय। उससे जमींदारों को समाज में आगे वह सम्मानपूर्ण स्थान भी न मिलेगा, जो मिलना चाहिये। कीमत के पैसे जिन उद्योग व्यापारों में वे लगायें, उन पर भी तो आगे आक्रमण होगा ही, वे भी समाज की सम्पत्ति बनेंगे ही। तो फिर उन्हें स्थायी लाभ क्या हुआ? इसके चलते उनके साथ बराबर जो चखचुख चलती रहेगी, जनसाधारण का रुख उनके प्रति अच्छा न रहेगा। इसीलिए हम चाहते हैं कि उन्हें अच्छी तरह भरण-पोषण के लायक जमीन हैं या नहीं, यही देखा जाय और उन जमीनों में समुन्नत खेती का प्रबन्ध सरकार द्वारा कर दिया जाय।

[श्री शशिभूषण शर्मा, एम० ए०, रिसर्च स्कॉलर, बिहार सरकार]

प्राचीन आर्य-भाषा के ध्वंसावशेष से आज की वियोगात्मक भाषाओं का जन्म हुआ। आधुनिक आर्य-भाषाओं ने :—

(क) अपने पुराने प्राकृत रूप-विकारों (इन्फ्लेक्शन्स) को खो दिया ;

(ख) कारक-विभक्तियों की जगह पश्चोपसर्गों (पोस्टपोजिसन्स) को ग्रहण किया ;

(ग) अपभ्रंश की केवल कुछ विभक्तियों को ही अपने यहाँ रखा और

(घ) विभक्तियाँ रूपविकार और पश्चोपसर्ग—दोनों—को जोड़कर बनाई हैं।

(ङ) आज रूपविकारों का अस्तित्व कुछ विभक्तियों-द्वारा लक्षित होता है ;

(च) कारण, रूपविकार-सम्बन्धी तत्त्वों का क्रम से ह्रास होता गया।

हमें यहाँ भारतीय आर्य-भाषा की तीसरी विभक्ति (तृतीया) की एक संक्षिप्त चर्चा करनी है, जिसमें आज की मगही तथा अन्य भारतीय भाषाओं ने किस प्रकार पुराने रूप-विकारों के अवशेष अब तक बचा रक्खे हैं, इसे देखना है।

(१)

भारतीय आर्यभाषा के 'एन' प्रत्यय का पूरा 'न' मगही में आज सुरक्षित है, जैसे—इनके न, अपने न, बाते न आदि। "इनके न कहबै ?" (इन्हीं से तो कहूँगा ?) "बाते न कहता ?" (बात से ही तो कहेंगे ?) "अपने न कैलका ?" (अपने से ही तो किया ?)

ज्ञानेश्वरी में अधारेन, जाणतेन, भागिलेन आदि रूप तीसरी विभक्ति के हैं। आज मराठी ने उक्त 'एन' प्रत्यय को "नें" के रूप में बदल डाला है। गुजराती ने उक्त प्रत्यय को अपने कुछ सर्वनामों में ग्रहण किया है, जैसे—जेणे, तेणें आदि।

(२)

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का 'एन' प्रत्यय मध्यकालीन आर्य-भाषा में 'एण' और 'एण' हो गये, जैसे—शौरसेनी का 'पुत्तेण' और महाराष्ट्री का 'पुत्तेण'। मगही का 'ए' प्रत्यय 'एन' का प्रतिनिधि है :—"(इहे) डरे", "(इस) डर से।"

(३)

"एँ" प्रत्यय हमें अपभ्रंश में मिलते हैं, जैसे—पुत्तें। मगही में अब तक अनुनासिक जी रहा है —

(क) 'इहे हाथें तोर गजन हउ' (इसी हाथ से तेरी दुर्दशा है।)

(ख) 'कोन मुहें तों बोले हैं?' (किस मुँह से तू बोलता है?)

अनुनासिक का उदाहरण विद्यापति की पुरानी मैथिली में हमें मिलता है—

"तोहर पुनें जियलि हम नारि।" उक्त "पुनें" शब्द मगही में आज भी प्रचलित है।

प्राचीन और मध्यकालीन बँगला में हमें—

(क) हाथें मारे (हाथ से मारता है।)

(ख) हाथें मोरे आदि प्रयोग मिलते हैं। हमें भूलना नहीं होगा कि उक्त रूप मध्यकालीन आर्य भाषा में यों होगा —

"हत्थें मारेइ" (हाथ से मारता है) और प्राचीन आर्य भाषा में —

"हस्तेन मारयति"।

अपभ्रंश में अनुनासिक आया है। ऐसी एक समानता प्राचीन आर्य-भाषा की छठी विभक्ति के बहुवचन में मिलती है। "आनाम्" को आधुनिक आर्य-भाषाओं में "आँ, ओं" के रूप में देखने को मिलता है—जैसे, 'लड़को' आदि।

(४)

सच तो यह है कि तृतीयान्त प्रत्यय 'ए' ही प्राचीन भारतीय भाषा के सच्चे रूप विकार का एकमात्र अवशेष रह गया है। जो मगही में (मैथिली और बँगला में भी) जीवित है। मगही का एक आधुनिक देहाती मुहावरा है —

(क)   लाजे भभू बोले नैं।
                    ढीठे भैंसुर छोड़े नैं॥

लाज से छोटे भाई की बहू बोलती नहीं; ढिठाई से भैंसुर (भ्रातृश्वसुर) छोड़ता नहीं।

(ख) यह 'ए' का रूपविकार इस तरह भी आता है जिसमें विभक्ति पर जोर होता है :— "तोरे पुछ बौ ?" (तुझी से पूछूँगा ?) "एकरे कैल है।" (इसी के द्वारा किया हुआ है।) हाँ, उक्त दोनों विभक्तियों में एक जोर (इम्फैसिस) है—"तोरे" (तुझी से); "एकरे" (इसके द्वारा)।

(ग) "ओकरे संगे बहस गेलै।"

(उसी के संग बहक गया।)

उड़िया में यह 'ए' प्रत्यय साधारणतः मिलता है। गुजराती में अनुनासिकहीन 'ए' वर्त्तमान है, जैसे—'छोकरा ए'—छोकड़े से। हिन्दी तथा अन्य पश्चिमी भाषाओं में इसका अवशिष्ट चिह्न हम देखते हैं, जैसे—'धीरे चलो।'—धीरे से चलो।

पुरानी मराठी में ऐसे तृतीयान्त प्रत्यय मिलते हैं :—

(क) गाधवे (गदहे से)

(ख) सेनावइएँ (सेनापति से) आदि।

किन्तु, आधुनिक मराठी में उक्त रूप जीवित नहीं, उसमें 'संगे' आदि पश्चोपसर्गों की सहायता से तीसरी विभक्ति बनती है।

(५)

'ए' प्रत्ययान्त शब्द के साधारण द्वितीयान्त तथा तृतीयान्त रूप, मगही में एकरूप (कन्फ्यूज्ड) हो गये हैं, जैसे—

(क) "तोहरे पुछबौ ?" (तुझी से पूछूँगा ?)

(ख) "तोहरे देबौ ?" (तुझी को दूँगा ?) यहाँ (क)—स्थित 'तोहरे' में तृतीया विभक्ति है और (ख) में 'तोहरे' की दूसरी विभक्ति हुई है।

इसी तरह बँगला में तृतीया और सप्तमी एक रूप (कन्फ्यूज्ड) हो चलीं, जिसके फलस्वरूप (शायद अधिक स्पष्ट होने के लिए) तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पश्चोपसर्ग 'त' (प्रत्यय) की उत्पत्ति हुई। चर्याचर्य-विनिश्चय में इसके उदाहरण देखने में आ सकते हैं, जैसेः—

(क) सुखे दुखे तें (सुख और दुख से)

(ख) विचारे तें (विचार से)

मध्यकालीन और आधुनिक बँगला में "त, ते, एते" तृतीया के लिए निश्चित रूप से प्रयुक्त हो चले हैं। तथा इ, उ और ओ स्वर से अन्त होनेवाले शब्दों के लिए 'ते' एक विशिष्ट तृतीयान्त प्रत्यय हो चुका है।

(६)

आज मगही में (बँगला 'तें' की तरह ही) हमें तीसरी विभक्ति 'सें' जोड़कर भी मिल रही है, जैसे—

(क) हमरे सें पूछवा ?
(हमीं से पूछियेगा ?) जब "हमरे पूछवा" भी आज प्रयोग में आता है।

(ख) "दु खे सें" (दुख से) जब "इहे दु खे" (इसी दुख से) भी प्रयोग में है।

[श्रीविश्वमोहन कुमार सिंह, प्रिंसिपल, मिथिला कालेज, दरभंगा]

ललित कलाओं में काव्य का स्थान बहुत ऊँचा है। यह सृष्टि की सर्वोत्तम कृति की सर्वोच्च भावव्यञ्जना है। यह एक ओर भूतल को छूता है तो दूसरी ओर अनन्त आकाश से बातें करता है; यह अचेतन संसार में पर्यटन कर उसे चेतनता से अनुप्राणित करता है। यह हृदय और जीवन के रहस्यमय प्रदेशों में घुसकर उनका यथाशक्य उद्घाटन करता है। यह अज्ञेय को भी ज्ञेय बनाने का प्रयास करता है। यह व्यक्तिगत होते हुए भी व्यापक है; शब्दों मे बना और स्थूल कागज पर स्थित होते हुए भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। यह माधुर्य है, ज्ञान है, चित्रकला है। यह सबों से भिन्न होते हुए भी सबों को अपने में निहित करता है।

यदि आज विकाशक्रम से वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सेक्सपियर, मिल्टन, शैली, होमर, दांते, पेट्रार्क; ग्वेटे, हाइने, उहलांड इत्यादि कवियों के नाम निकाल दिये जायँ, तो संसार एकदम सूना और निविड़ अन्धकाराच्छन्न हो जाय; विकाशक्रम केवल पाशविक वृत्तियों की आवृत्ति और पुनरावृत्ति का दूसरा नाम हो जाय।

काव्य भावपूर्ण सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। जब किसी भी वस्तु की सर्वोत्कृष्ट प्रशंसा करनी होती है, तो हम उसे काव्य की संज्ञा देते हैं। जब हम ताजमहल के सौन्दर्य से अभिभूत हो उसकी प्रशंसा करने को व्याकुल हो उठते हैं, तो कह उठते हैं,—"ताज तो संगमरमर से बनी कविता है।" जब हम किसी रमणी की आँखों में लग जाते हैं, तो कह उठते हैं, —"ओहो, उसकी आँखों में तो

कविता है।" जब हमारी आँखें किसी चित्र के कलात्मक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाती हैं, तो अनायास ही हमारे मुख से निकल पड़ता है— "यह तो कूचियों से बनी कविता है।" एक अंगरेज लेखक एक हलवाहे के हल को देख, और उसके सारे अतीत को यादकर कह उठता है,—"यह तो मनुष्य के कष्टमय परिश्रमों का महाकाव्य है।" वही लेखक वसन्तकाल में पथों और गलियों को फूलों से लदे देखकर कहता है,—"ये पथ और गलियाँ तो मानो विभिन्न रंगों में गीतिकाव्य रच रही हैं।" अतएव यह स्पष्ट है कि कविता भावों की परिणति है, ज्ञान और सौन्दर्य की अन्तिम सीमा है। जब इसका स्तर इतना ऊँचा है तो कोई भी तुकान्त वा अतुकान्त रचना कविता नहीं हो सकती। इसमें ऐसे ऐसे उपादानों की आवश्यकता है, जो जीवन को भूतल से उठाकर ज्ञान और सौन्दर्य का आकाश छुला दे। कोई भी लोहे का बना यंत्र वायुयान नहीं हो सकता, उसी प्रकार किसी लय में कही हुई बातें कविता का स्थान ग्रहण नहीं कर सकतीं। काव्य यंत्र में इतने सूक्ष्म कल-पुर्जे और सूक्ष्म तार लगे हैं कि उनका ठीक-ठीक विश्लेषण और विवरण अत्यन्त दुष्कर है। पहले तो इसका व्यक्तिगत कवि से सम्बन्ध है, इसका उद्गम कवि के गम्भीर हृदय-सागर से होता है, उस पर उसकी कल्पना की छाप होती है, तदनन्तर इसका उसके वास्तविक जीवन से सम्बन्ध है, इसका उसके सूक्ष्म जीवन से सम्बन्ध है। इसका तत्कालीन वातावरण और परिस्थितियों से सम्बन्ध है। इसका अतीत और भविष्य से सम्बन्ध है। इसका अनन्त और असीम से सम्बन्ध है।

एक कवि जो विश्व को अपनी अंगुलियों पर नचाता हुआ भावान्दोलित हो अपना राग अलापने लगता है, जो पाठक इस विश्वराग की मधुरिमा से परिप्लुत हो उसके अंग प्रत्यंग को विस्मय विभोर नयनों से पर्यवेक्षण करने लगता है, दोनों ही के कार्य प्रकाश और शक्ति से भरे हैं। अँधेरी रात में उड़ता फिरता जुगनू कुछ क्षण के लिए मन का मनोरंजन कर सकता है, पर न तो उनसे प्रकाश होता है, न ताप ही। उनके प्रभाव से न तो फुलवाड़ियों में वसन्त हो आता, न फलों में परिपक्वता। उसी प्रकार छन्दयुक्त रचना वा निम्न श्रेणी की कविता से कुछ क्षण के लिए हमारा मनोरंजन हो सकता है, उनकी गुन गुन करनेवाली शब्दावली हमारे कानों को कुछ मधुर लग सकती हैं, पर सच्चा और उच्च काव्य ही हमें ज्ञान का प्रकाश दे सकता है, हमारे तड़पते हृदय को सौन्दर्य का सुखद ताप दे सकता है। हमें काव्य पढ़ना चाहिए, गहरी नींद में सोने के लिए नहीं, नशे में चूर हो बेहोश होने के लिए नहीं, वरन पूर्ण जाग्रत हो एक विशद स्वप्न देखने के लिए, इस जीवन के विस्तार में और कंटकाकीर्ण जंगल में एक परिष्कृत मार्ग पाने के लिए।

यदि ऐसा न हो तो काव्य, काव्य नहीं, वह कोई अलंकृत भाषा हो सकता है, कोई तोतली बोली हो सकती है, कोई शब्दपुंज हो सकता है, कोई स्वर-शृंखला हो सकती है, लेकिन काव्य नहीं, प्रकाश नहीं, सौन्दर्य नहीं, जीवनामृत नहीं।

——०——
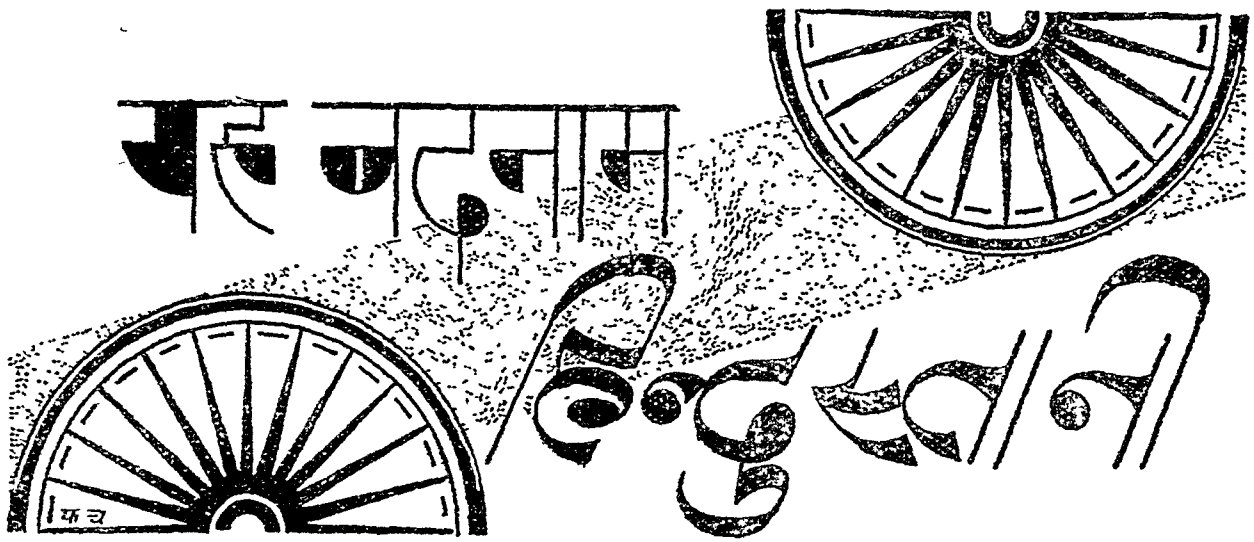
[श्रीललिताप्रसाद सुकुल, कलकत्ता विश्वविद्यालय]

आज का हिन्दी-संसार हिन्दुस्तानी भाषा के नाम से ही चिढ़-सा गया है। ज्यों-ज्यों महात्मा गांधी तथा उनके हिन्दुस्तानी संघवालों ने इस शब्द को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया, त्यों-त्यों हिन्दी के भक्त और उपासक इस शब्द को अधिकाधिक घृणास्पद एवं त्याज्य समझते गये। शायद बहुतों के लिए, और विशेषकर एक अहिन्दी भाषा-भाषी के लिए हिन्दुस्तानी शब्द नए जमाने की ही एक उपज है। इसका भी इतिहास किसी प्राचीनता का दावा कर सकता है, यह बहुतों के लिए एक नये आविष्कार से कम नहीं। लेकिन आश्चर्य तो तब होता है, जब कि हमारी भाषा का यह नाम काफी प्राचीन होते हुए भी सम्मानित न होकर आज बुरी तरह अपमानित हो रहा है और हिन्दी का विद्वत्समाज इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न भी नहीं करता।

समझना यह होगा कि हमारी भाषा का यह हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाम कब, कैसे और क्यों पड़ा? यदि यह रहस्य संक्षेप में समझा दिया जाय तो बे-सर-पैर की गुमराही बहुत-कुछ दूर हो सकती है। यह कौन नहीं जानता कि प्राचीन समय में जब भारतवर्ष अपनी विद्या तथा कला-कौशल के लिए विश्वविख्यात हो रहा था, उस समय पश्चिम के विविध देशों में, इस गौरवशाली भारत के साथ अपना-अपना सम्बन्ध जोड़ने में एक होड़-सी लगी हुई थी। उन्हीं में से अरब भी एक था। वहाँ के प्राचीन ग्रन्थ प्रचुर प्रमाणों से भरे पड़े हैं कि अरब वालों का सम्बन्ध हमारे देश से काफी घनिष्ठ था। न केवल व्यावसायिक क्षेत्र में ही, वरन् विद्या-बुद्धि में भी अरब ने भारत से बहुत-कुछ पाया था। वहाँ के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थो में भारतवर्ष

का निर्देश प्रायः 'हिन्द' के ही नाम से पाया जाता है। मौलाना सैय्यद सुलेमान नदवी साहब, जो अरबी साहित्य के परम सम्मान्य विद्वान माने जाते हैं, अपनी अनेकों कृतियों में प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि अरबवाले इस देश को हिन्द कहते थे, यहाँ की प्रत्येक वस्तु को, यहाँ के निवासियों को तथा उनके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को भी हिन्दी कहते थे। यहाँ इतना स्पष्ट कर देना कदाचित अनावश्यक न होगा कि अरबवालों का सम्बन्ध विशेष रूप से केवल उत्तर भारत से ही था। अत, जिस तरह भाषा का प्रश्न उठता है, उस समय सम्भवत यही मानना उचित होगा कि हिन्दी भाषा से उनका सम्बन्ध उत्तर भारत की ही भाषाओं से रहा होगा। यद्यपि उस प्राचीन काल में संस्कृत का महत्त्व मिट तो नहीं गया था, तथापि यह भी कम सच नहीं कि आधुनिक भारतीय भाषाएँ, विशेषकर उत्तरी और पश्चिमी भारत की, उस समय तक न केवल विकासोन्मुखी ही हो चुकी थीं, वरन् अपना-अपना अस्तित्व भी कायम कर चुकी थीं। अतः अरबों की भाषा-विषयक हिन्दी संज्ञा से तात्पर्य, निश्चित रूप से हिन्दी नव विकसित भाषाओं से रहा होगा।

अरबों के बाद, ईरान और तुर्क देश के निवासियों का सम्बन्ध इतिहासविद्‌ घटना है। यह नवीन सम्पर्क सांस्कृतिक या व्यावसायिक या दिग्विजय के लक्ष्य से भले ही नवीन रहा हो, लेकिन भाषातत्त्ववेत्ता यह जानते हैं कि फारसी आर्यभाषा की शाखा होने के नाते अपनी बड़ी बहन संस्कृत से बहुत काल से सम्बद्ध थी। फारसी का 'स्तान' और संस्कृत का 'स्थान' एक दूसरे से बहुत भिन्न नहीं। संस्कृत का 'सिन्धु' ही फारसी का 'हिन्दू' है। इस नये सम्बन्ध ने छोटे से 'हिन्द' नाम को बदल कर ईरानियों के द्वारा 'हिन्दुस्तान' नाम से प्रख्यात किया। और पहले की ही भाँति यहाँ की प्रत्येक वस्तु और भाषा 'हिन्दुस्तानी' कहलाने लगी।

हिन्दी का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (संख्या ९, भाग १) में डा० ग्रियर्सन ने उत्तरी भारत की हिन्दी भाषा, उसकी बोलियों तथा नामों की आलोचना करते हुए पग-पग पर हिन्दी के साथ 'हिन्दोस्तानी' नाम का जिक्र किया है। अनेक कैफियतें भी उन्होंने दी हैं। उसी सिलसिले में अपना मत प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है कि 'हिन्दोस्तानी' संज्ञा विशेषत सर हिन्द में प्रचलित हिन्दी के उस रूप के लिए जिसे खड़ी बोली कहा जाता है और जिसमें 'उर्दू' पन का विशेष पुट होता है, लागू होना चाहिए। यद्यपि उनके इस मत कि विस्तृत आलोचना यहाँ असगत सी होगी, किन्तु, इस भ्रम के कारण की ओर थोड़ा सा निर्देश शायद उचित ही होगा। खड़ीबोली हिन्दी और भविष्य में जन्म ग्रहण करनेवाली उर्दू के व्याकरण सम्बन्धी ढाँचे की अभिन्नता तथा 'डेविड मिल' के प्राचीन 'हिन्दुस्तानी व्याकरण' की खोज का उन पर पड़नेवाला प्रभाव ही कदाचित् उनके उपयुक्त भ्रम के कारण रहे होंगे। प्रायः सभी यह जानते हैं कि खड़ी बोली 'बोली' के रूप में अथवा यों कहना चाहिए कि अपने प्राकृतिक रूप में बिजनौर, मेरठ, अम्बाला, सहारनपुर इत्यादि संयुक्तप्रान्त के पश्चीमोत्तर भाग में व्यवहृत होती है, न केवल आज से बल्कि शायद उसी समय से, जब से कि ब्रज भाषा ब्रज में या अवधी अवध में बोली जाने लगी थी। इसी

स्थल पर 'हिन्दुस्तानी' नाम की व्याख्या करते हुए पृष्ठ छः से आठ में डा० ग्रियर्सन ने 'डेविड मिल' के 'हिन्दोस्तानी-व्याकरण' की जो १७४३ के लगभग लिखा गया था, चर्चा की है। और उनका अनुमान था कि हिन्दी के 'हिन्दोस्तानी' नाम का कदाचित् इससे अधिक प्राचीन कोई प्रमाण प्राप्त नहीं। उपर्युक्त पुस्तक के ही आधार पर डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने कुछ वर्ष 'हिन्दुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण' शीर्षक एक खोज-पूर्ण लेख लिखा था। उनके अनुसार यह व्याकरण कुछ और अधिक प्राचीन ठहरता है। और उसी अनुपात में हिन्दी का 'हिन्दोस्तानी' नाम भी कुछ वर्ष पीछे हट जाता है। लेकिन 'डेविड मिल' के इसी व्याकरण की समीक्षा करते हुए तथा उसमें दिये गये उदाहरणों के आधार पर डा० चटर्जी भी इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि 'हन्दुस्तानी' नाम से इंगित होनेवाले हिन्दी के रूप में 'उर्दूपन' का होना उसका विशेष गुण है। उनकी यह धारणा उनकी नयी पुस्तक 'Hindi and Indo-Aryan Languages' में अधिक स्पष्ट हो गई है। इनका यह भ्रम भी डा० ग्रियर्सन का सा ही है। भित्ति भी शायद बहुत-कुछ एक ही सी है। ईरान और तुर्कि देशों के सम्बन्ध का जिक्र करते हुए, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भाषा का हिन्दोस्तानी नाम यूरोप की देन नहीं। यह तो ईरानी और तुर्कों के सांस्कृतिक और भाषा-साम्य-विषयक सम्बन्ध की स्थापना के साथ ही अनायास उत्पन्न हो गया था। इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि बाबर ने भी अपने जीवन-चरित्र में बड़े स्वभाविक ढंग से सरहिन्द में बोली जानेवाली लौकिक भाषा के लिए हिन्दुस्तानी नाम का प्रयोग किया था। वहाँ के शासक दौलत खाँ पर फ़तह पाने के बाद, जब दौलत खाँ उसके सामने लाया गया तो वह कहता है—"I then made him sit down before me and desired a man who understood the *Hindustani language* to explain to him what I said sentence by sentence in order to reassure him." (Memories of Babar Lucas King edition Vol 2 P. P. 170) इससे यह सिद्ध हो जाता है कि हिन्दुस्तानी नाम ईरानियों और तुर्कों के साथ १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में ही आ चुका था। उस समय की हिन्दोस्तानी में न शर्त थी फ़ारसी या अरबी शब्दों की भरमार की और न उर्दूपन के गहरे रंग की। क्योंकि उस समय तक उर्दू भाषा के किसी महत्त्वपूर्ण स्थान का तो कहीं अस्तित्व ही नहीं था।

अतः यह स्पष्ट है कि सैकड़ों वर्षों के लम्बे-चौड़े युग पर छाई हुई क्या मध्य और क्या आधुनिक काल की हिन्दी अपनी स्वाभाविक गति से अग्रगामिनी होती हुई 'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी' दोनों ही नामों से विभूषित थी। उर्दू भी अपने जन्मकाल से ही 'उर्दू' ही रही। शायद कोई प्रमाण १६२० के पहले का प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जब उर्दू का स्मरण किसी और नाम से किया गया हो या उर्दूवालों ने ही उर्दू के लिए किसी अन्य नाम की माँग पेश की हो; या 'हिन्दुस्तानी' का जामा पहनने की उसने कभी चेष्टा की हो। हाँ, हिन्दी की प्रतियोगिता उसकी पुरानी आदत रही है। बालमुकुन्द गुप्त की 'उर्दू की अपील' के उत्तर में 'उर्दू को मुहतोड़ उत्तर' वाली कविता उसी अवांछनीय प्रतियोगिता का फल था।

तब सहसा प्रश्न उठता है कि आज परिस्थिति में ऐसा कौन-सा परिवर्त्तन हो गया कि हम हिन्दुस्तानी नाम को भी सहन नहीं कर सकते ? शायद १९२४ की ही बात है जब अपने एक अधिवेशन में कांग्रेस ने भाषा-विषयक अपनी नीति की घोषणा की थी और कहा था कि चूँकि कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, जनसाधारण की भाषा ही उसकी भाषा होगी। बहुत समय तक तो यह नीति केवल प्रस्ताव तक ही सीमित रही, लेकिन ज्यों ज्यों कांग्रेस प्रबल होती गई, उसके प्रस्ताव और उसके निर्णय भी अधिक वास्तविक होने लगे। नीति-विषयक भाषा का यह प्रस्ताव भी फिर नवजाग्रत किया गया। सत्य के पुजारी गांधीजी इस प्रस्ताव के प्रबल समर्थकों में से थे। जहाँ एक ओर प्रान्तीयता के रोगी अपनी प्रान्तीय भाषाओं के विषय में भयभीत होने लगे; दूसरी ओर साम्प्रदायिकता के उपासक मुसलमानों के दिलों में भी कम खलबली नहीं उठी। अपनी अन्य अराष्ट्रीय संकीर्णताओं के साथ भाषा के क्षेत्र में भी उनकी अनुदारता प्रबल हो उठी। हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा घोषित करके उन्होंने उर्दू की माँग पेश की। सत्य तो यह था, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, हिन्दी या हिन्दुस्तानी देशी भाषा के उस रूप का नाम था जो उत्तर भारत में स्वच्छन्द रूप से फल-फूल रही थी। जिसमें न भेद था हिन्दू का न मुसलमान का। न पक्षपात था संस्कृत के लिए और न बहिष्कार था फारसी या अरबी का। लेकिन पार्थक्य की इस नई माँग ने संकीर्णता की, साम्प्रदायिकता की एक नवीन अराष्ट्रीय भावना को जन्म जरूर दे दिया। और हिन्दू-मुस्लिम एकता के अनन्य पुजारी गांधीजी के सामने भाषा की एक नई समस्या खड़ी हो गई। राजनीति के अन्यत्रों में एकता की साधना का मूल मंत्र पारस्परिक आदान-प्रदान ही हुआ करता है, और होना भी चाहिए। बिना कुछ दिये लेना सम्भव नहीं होता, और लेने के लिए देना भी आवश्यक हो जाता है। समझौते की यह नीति राजनीति क्षेत्र में अवश्य सफल होती है, लेकिन ज्ञान के, शिक्षा के, और आत्मोन्नति के क्षेत्र में यह नुस्खा न कभी लगाया जा सकता है और न लगाया जाना चाहिए। लेकिन, दुर्भाग्यवश राजनीति के अखाड़िए इस मर्म को न समझ सके और समझौते की नीतिवाला नुस्खा दे ही दिया गया। 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी'-जैसी संस्थाओं का जन्म तो हो ही चुका था, जिसके संचालक और कर्णधार हिन्दी से कोरे उर्दू-क्षेत्र में अज्ञात, अवसरवादी इसी ताक में बैठे थे कि किस प्रकार अपनी लीडरी कायम की जाय। संयुक्त प्रान्त की सरकारी निधि के बल पर उन्हें कम-से-कम ऐसी सुविधायें तो प्राप्त थी ही कि "मस्तिष्किक कुव्वत" जैसे अस्वाभाविक मुहावरे ढालकर प्रचारित करा दिए जायँ और राम और रहीम दोनों की उपासना का स्वांग रचा जाय। तुरत १९३६ के लगभग एक सुझाव पेश किया गया कि यदि हिन्दी के नाम से मुसलमानों को चिढ़ है और उर्दू के नाम से हिन्दुओं को, तो इन दोनों नामों को छोड़ कर राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' क्यों न रखा जाय और उसके प्रचलित स्वरूप में शब्दों के प्रयोग, साम्प्रदायिक अनुपात में ही क्यों न लाए जायँ ? फिर तो झगड़े का सवाल ही नहीं रह जायगा। इस सुझाव की स्वीकृति के पीछे नीति थी समझौते की राजनीतिक, चाल की और आज इसी का परिणाम है कि हिन्दुस्तानी अपनी वर्त्तमान 'अप्रतिष्ठा' को प्राप्त हो गई है।

[श्री रामनन्दन मिश्र]

संसार के सभी सिद्धान्त व्यक्ति की चट्टान पर टकरा जाते हैं। व्यक्ति के अन्तर की अनन्त पिपासा न कभी बुझती है, न मिटती है। कभी धर्म, कभी संस्कृति, कभी कानून के नाम पर नरक और स्वर्ग के जाल रच, जेल और फाँसी के भय दिखा व्यक्ति की उद्दाम वासनाओं को बाँधने का प्रयास मानवता करती रही है। परन्तु, व्यक्ति के अन्तर की प्यास का पारावार सभी को तोड़-फोड़ निकल, बहता रहा है। फिर भी जितनी दूर तक मनुष्य इनको बाँध सका है, उससे समाज का विकास सम्भव हुआ है।

कोई समाजवादी समझता हो कि संयम एक पुराने युग का रूढ़िवाद है, तो वह धोखे में है। संयम, अथवा रक्त और मांस की पुकारों को मर्य्यादित सीमा के अन्दर रखना एक समाजवादी के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना दूसरों के लिए। देशभक्ति, क्रान्ति, त्याग सब का व्यंग करती हुई कामवासना, महत्वाकांक्षा, परिवार का मोह जब अन्तर को आलोड़ित करते हैं, तो समाजवादी के भी समाजवाद के पाये हिल जाते हैं।

व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समाजवादी को भी समाजवादी नैतिकता और समाजवादी संयम का अभ्यास करना होगा। क्रान्तिकारी को भी अभिमान छोड़कर नम्रता से अपने अन्तर के तलों में जाकर समाजवादी विरोधी भावनाओं को ढूँढ़कर उन्हें अभ्यास द्वारा काबू में लाने का प्रयत्न करना होगा। याद रहे, महान-कांग्रेस का नैतिक पतन कोई साधारण घटना नहीं। इतने कड़े पैमाने पर राजनीति में नैतिकता और आदर्शों को व्यवहार में उतारने का प्रयत्न महात्मा गांधी को छोड़कर किसी ने नहीं किया। पर, गांधीजी का सारा महल सिविल सपलाइ की चट्टान पर टकरा कर चन्द महीनों में टूट गया। कांग्रेस के लोग बुरे ---- के हैं, ऐसा मानकर या कहकर हम सन्तोष

की सास नहीं ले सकते। हम ऊँचे दर्जे के हैं, हम से यह सम्भव नहीं, ऐसा झूठा अभिमान लेकर यदि समाजवादी चलेंगे, तो उनकी किश्ती भी डूबनेवाली है।

कांग्रेस के नैतिक पतन से जनता आज विश्वासहीन हो रही है। वह पूछती है, जब उनका यह हाल हुआ तो तुम्हारा क्या होगा। विश्वास के प्रलय में, गांधीवादी नैतिकता के खंडहर में आज समाजवादी खड़े हैं नये सिरे से राजनैतिक नैतिकता की इमारत को बनाने के लिए। क्या हम इस महान् कार्य्य को पूरा कर सकेंगे? इसी के उत्तर पर बहुत दूर तक देश का भविष्य निर्भर करता है।

मैं हिन्दू हूँ, मुसलमान हूँ, भूमिहार हूँ, राजपूत हूँ, ग्वाला हूँ, कुर्मी हूँ, ब्राह्मण हूँ, अग्रवाल हूँ, आदिवासी हूँ, उड़िया हूँ, बंगाली हूँ, ऐसे छोटे-छोटे घेरे बनाकर राजनीति में लोग खड़े हैं। मैं मनुष्य हूँ—यह भावना तो पाताल के गर्भ में जा रही है। उनके बीच से सच्ची राष्ट्रीयता, मानवता को जाग्रत करना साधारण बात नहीं है। इस कठिन कार्य्य को पूरा करना आज प्रगतिशील विचारवालों का पहला काम है।

यह ठीक है कि गांधीजी का व्यक्ति पर जोर एकांगी था। परिस्थिति छोड़कर व्यक्ति साधारणतः ऊपर नहीं उठ सकते। परिस्थिति में है मेरी जमीन, मेरा घर, मेरा कारखाना। फिर उसमें से 'मैं समाज का हूँ' किस तरह निकल सकता है। १० प्रतिशत नब्बे प्रतिशत का शोषण बलपूर्वक करता रहे। तो इसमें से प्रेम और अहिंसा की भावना किस तरह उद्भासित होगी। श्री मन्नारायण अग्रवाल भूल गये कि जमीन को गाँववालों में बाँटकर उनसे सामूहिक चेतना की आशा नहीं की जा सकती। मेरी जमीन, मेरा धन, इस भयंकर आदर्श के बीच से अनासक्त लोक सेवा की भावना नहीं जागरित की जा सकती। मेरी जमीन, मेरा धन के बीच से निकलता है मेरा नेतृत्व, मेरा नेतृत्व से निकलता है गिरोहबन्दी, फिर बड़ा बनता है गिरोह संस्था से, संस्था देश से, देश मानवता से, और सारी नैतिकता, कोरी प्रवचना और दम्भ बनकर व्यक्तियों को ले डूबती है।

परन्तु, जैसे गांधीवाद ने आर्थिक स्थिति की उपेक्षा की, उसी तरह समाजवादी भी यदि व्यक्ति की उपेक्षा करेंगे तो उनकी भी वही हालत होगी। दोनों विचार एकांगी हैं। व्यक्ति और परिस्थिति, दोनों को लेकर मनुष्य का जीवन चलता है, आगे बढ़ता है।

भवभूति के इस महान् वाक्य को आदर्श मानकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च
यदि वा जानकीमपि,
आराधनाय लोकस्य
मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

पुराने हिन्दुस्तान के खँडहर में हम खड़े हैं नये हिन्दुस्तान का महल बनाने के लिए। यह महल एक ही बुनियाद पर बन सकता है—

मैं समाज का हूँ?

[श्री मुनि कान्ति सागर]

मगध प्रांत के प्रामाणिक इतिहास का आजतक न लिखा जाना एक आश्चर्य है। विद्वानों को अधिक से अधिक इतिहास-विषयक साधन-सामग्री इसी प्रांत से प्राप्त होती है। प्राक्कालीन बहुसंख्यक ऐतिहासिक घटनाएँ वस्तुतः इसी प्रांत में घटीं, जिनका न केवल तात्कालिक साहित्य में यथावत् वर्णन ही मिलता है, अपितु उनमें से अधिकांश प्रसंगों पर प्रकाश डालनेवाले प्राचीन प्रस्तरावशेष भी समुपलब्ध हैं, जो उन सहृदय व्यक्तियों को उस समय के सांस्कृतिक जनजीवन की वास्तविक कहानी अतिगंभीर रूप से, पर मूक वाणी में, सुना रहे हैं, जो पुरातन जड़ वस्तुओं पर समुत्कीर्णित कला-प्रवाहों में अपने पूर्वपुरुषों की अमर कीर्तिज्ञता का सूक्ष्मावलोकन कर, नवीन स्वर्णिम तथा प्रशस्त मार्ग की सृष्टि करने को उद्यत रहते हैं। किसी भी प्रांत की अत्युन्नत दशा का यथार्थ परिचय यदि उसकी कला द्वारा ही प्राप्त किया जाता हो, तो मानना होगा कि मगध इसका अपवाद नहीं हो सकता; क्योंकि प्रस्तुत प्रांतीय सांस्कृतिक तत्त्वों की गंभीर गवेषणा से यह स्पष्ट है कि कला मगध के जन-जीवन में ओत-प्रोत थी। मगध के सूक्ष्म प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारों ने अत्यन्त सीमित स्थान में अपनी पैनी छेनी द्वारा सात्विक हृदय के उच्चतम मनोभाव पाषाण आदि पर बहाकर प्रमाणित कर दिया है कि यहाँ का जानतिक जीवन कितना उन्नत और कलामय था।

श्रमण भगवान् महावीर के अनुयायी राजा एवं उपासकों की बहुत बड़ी संख्या मगध में होने के कारण उनका प्रधान कर्म-क्षेत्र मगध ही था, जिसमें वर्तमान भौगोलिक दृष्टि से पटना और

गया जिले लिए जा सकते हैं। विदेह, मगध और अग आदि बिहार प्रात के प्राचीन भौगोलिक और सास्कृतिक इतिहासपट को आलोकित करनेवाले जितने मौलिक साधन जैन साहित्य में उपलब्ध होते हैं, सभवत अन्यत्र नहीं। इतनी विशाल तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक साधन-सामग्री के रहते हुए भी वर्त्तमान पुरातत्त्ववेत्ताओ ने जैन साहित्य और इतिहास के बिखरे हुए साधनों का समुचित उपयोग बिहार के इतिहासालेखन में नहीं किया, यह कम परिताप का विषय नहीं। बिना किसी अतिशयोक्ति के मुझे कहना चाहिए कि जबतक पक्षपात शून्य दृष्टि से जैनो के ऐतिहासिक उल्लेखों का तलस्पर्शी अध्ययन नहीं किया जायगा, तबतक बिहार का सांस्कृतिक इतिहास अपूर्ण या धुँधला ही बना रहेगा। प्रसगवश एक बात की स्पष्टता वाछनीय है। जैनों ने मगध या सम्पूर्ण बिहार प्रात को लक्ष्यकर जो जो प्रासगिक उल्लेख किये हैं, वे केवल जैन साम्प्रदायिक दृष्टि से ही नहीं, परन्तु, तात्कालिक जन-साधारण के सामाजिक जीवन के प्रधान तत्त्व, आमोद-प्रमोद की सामग्री, उत्सव, रीति रिवाज, धार्मिक मान्यता, राजवश और उनके क्रमिक विकास, भौगोलिक सीमा निर्धारण, दर्शन, वाणिज्य विषयक आदान-प्रदान, राजनीति के विभिन्न प्रकार एव तत्कालीन प्रसिद्ध जैन-अजैन व्यक्तियों के परिमार्जित इतिहास, आदि के निष्पक्ष वर्णन के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। जैनों ने अपने साहित्य में विरोधी वायुमडल को भी स्थान देकर उन्हें स्थायित्व प्रदान किया। उपर्युक्त पक्तिगत उल्लेखों की प्राचीनता, भाषा की दृष्टि से, मथुरा के शिलालेखों के आधार पर, जर्मन विद्वान् डा० हरमन याकोबी एव अन्य विदेशी विद्वानों ने स्वीकार की है। यों तो बिहार से सम्बन्धित प्रचुर सूचन मिल जाते हैं, परन्तु, यहाँ न तो उन सभी की विवक्षा है, न प्रसग ही। प्रस्तुत प्रबन्ध में पाटलिपुत्र का, जैनदृष्टि से, प्राचीन इतिहास एव भिन्न-भिन्न समय में घटित प्रेरणादायिनी घटनाओं का उल्लेख ही पर्याप्त होगा, क्योंकि जैनसाहित्य में पाटलिपुत्र का स्थान अत्यन्त उच्च और कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण माना गया है। सर्वप्रथम मगध सघ, अर्थात्, जैनों की साहित्य-परिषद् का अधिवेशन नवम् नन्द के समय पाटलिपुत्र में ही हुआ था, जिसके नेता आचार्य्य स्थूलिभद्र थे। यह घटना ईस्वी सन् पूर्व ३६६ की है। पाटलिपुत्र जब से बसा, तभी से मौर्यवश के नाश तक जैनसस्कृति का व्यापक केन्द्र था। शिशुनाग, नन्द और मौर्य जैनधर्म के अनुयायी, पोषक एव परिवर्द्धक थे।

आचार्य्य श्रीजिनप्रभसूरि जैनसमाज के उन प्रतिभासम्पन्न आचार्य्यों में थे, जिनको विशिष्ट दृष्टिकोण से भ्रमण और विशृखलित ऐतिहासिक तत्त्वों के सकलन में बड़ी गहरी अभिरुचि थी, जिसके फलस्वरूप उन्होने विविध नगरों पर स्वानुभव द्वारा सस्कृत, प्राकृतादि भाषाओं में छोटे-बडे कई ऐतिहासिक प्रबन्धो का निर्माण विक्रम सवत् १३८६ में किया, जो 'विविध तीर्थ कल्प" नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्रबध भारतवर्ष के प्राचीन प्राप्य भौगोलिक ग्रथों में शिरोमणि रहे हैं। मिथिला, चम्पा, वैभारगिरि, पावापुरी, कोटिशिला, आदि बिहार के नगरों का ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने इन शब्दों में पाटलिपुत्र की उत्पत्ति बतायी है—

"श्री नेमिनाथ भगवान को नमस्कार करके अनेक पुरुषरत्नों के जन्म से पवित्र श्री पाटलिपुत्र नगर का कल्प-प्रबन्ध कहता हूँ।"

प्रथम जब महाराज श्रेणिक—बिम्बिसार स्वर्गवासी हुए, तब उनका पुत्र कुणिक-अजातशत्रु, पिता के शोक से व्याकुल होकर चम्पापुरी में रहा।

कुणिक के परलोकगमन के बाद उसका पुत्र उदायी चम्पा का शासक नियुक्त हुआ। वह भी अपने पिता के सभास्थान, क्रीड़ास्थान, शयन, आदि को देखकर, पूर्वस्मृति जाग्रत हो जाने से, उद्विग्न रहता था। इसने प्रधान अमात्यों की अनुमति से नूतन नगर के निर्माणार्थ प्रवीण नैमित्तिकों को आदेश दिया। भ्रमण करते-करते वे गंगातट पर आये। गुलाबी पुष्पों से सुसज्जित छवियुक्त पाटलिवृक्ष (पुन्नागवृक्ष) को देखकर वे आश्चर्यान्वित हुए। तरु की डाल पर चाष नामक पक्षी मुँह खोलकर बैठा था। कीटक स्वयं उसमें आ पड़ते थे। इस घटना ने नैमित्तिकों के मस्तिष्क पर वह प्रभाव डाला, जिससे वे सोचने लगे कि यदि इस भूमि पर नव नगर निर्माण किया जाय तो निस्संदेह राजा को स्वयं लक्ष्मी प्राप्त होगी। राजा ने इस शुभसंवाद को सुना। वह बहुत प्रसन्न हुआ। वयोवृद्ध नैमित्तिक ने कहा—महाराज, यह वृक्ष साधारण नहीं है। जैसा कि ज्ञानी ने कहा है—

पाटलाद्रुः पवित्रोऽयं महामुनिकरोटिभूः।
एकावतारोऽस्य मूलजीवश्चेति विशेषतः॥

महामुनि की खोपड़ी में से उत्पन्न यह पाटलि (पुन्नाग) वृक्ष अत्यन्त पवित्र है। विशेषतः इसका जीव एकावतारी है।

राजा ने आश्चर्यान्वित मुद्रा से पूछा कि वे महामुनि कौन थे। नैमित्तिक ने सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहा—

उत्तर मथुरानिवासी देवदत्त नामक वणिकपुत्र दिग्यात्रार्थ दक्षिण मथुरा में आये। यहाँ जयसिंह नामक वणिकपुत्र से उनकी मित्रता स्थापित हुई। एक समय देवदत्त जयसिंह के यहाँ भोजन के लिए गया। उनकी बहन अन्निका पंखा झल रही थी। उनके सौन्दर्य पर देवदत्त ने आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया। वह अपनी इच्छाओं के लोभ का संवरण न कर सका। अन्ततः अपने भृत्यों के द्वारा जयसिंह से याचना की। जयसिंह ने शर्तें रखीं कि मैं अपनी बहन उसी को दूँगा, जो मेरे घर से अधिक दूर न हो, प्रतिदिन बहन और बहनोई को देख सकूँ, और जब तक एक संतान न हो, तब तक मेरे घर पर रहे। देवदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक शर्तों को स्वीकार किया एवं अन्निका का पाणि-ग्रहण कर सुखमय जीवन-यापन करने लगा। एक दिन देवदत्त के माता-पिता का पत्र आया, जिसे पढ़कर उनके नेत्र सजल हो उठे। वह स्नेह की शृंखला से आबद्ध था।

वह अन्निका के अनुनयपूर्वक कारण पूछने पर भी मौन रहा। पति के कष्ट ने अन्निका के हृदय को द्रवित कर पत्र पढने को बाध्य किया। पत्र में लिखा था—"हे पुत्र, हम तो अब वृद्ध हो चले हैं। यदि देखने की इच्छा हो, तो शीघ्र चले आओ।"

अन्निका ने पति को आश्वस्त किया और भाई से हठकर देवदत्त को जाने की आज्ञा दिलवायी। अन्निका सगर्भा थी। मार्ग में पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उन्होंने नवजात शिशु का नामकरण माता-पिता पर छोड़ने का विचार किया। भृत्यों ने अन्निकापुत्र नाम दिया। उत्तर मथुरा पहुँचने पर उन्होंने माता-पिता को सविनय नमस्कारकर शिशु को उनके चरणों में समर्पित किया। उन्होंने सधीरण नाम रखा। जनता पूर्व नाम से पुकारने में आनन्द का अनुभव करती थी। क्रमश युवावस्था प्राप्त होने पर भी नश्वर सांसारिक भोगों में उनकी लेशमात्र भी अभिरुचि न रह गई। अब उनकी अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति का सुमधुर स्रोत फूट पड़ा। उन्होंने अन्तत गृह त्यागकर, जन कल्याणार्थ, मुनिधर्म की दीक्षा जयसिंह आचार्य्य के पास जाकर अंगीकार की।

सघ के साथ विचरण करते हुए वृद्धावस्था में अन्निकाचार्य गगातट पर पुष्पभद्र नगर में आये, जहाँ पुष्पकेतु शासक थे। उनकी पत्नी पुष्पावती थी। पुष्पचूल, पुष्पचूला—उनके पुत्र पुत्री अभिन्न हृदय थे। पारस्परिक तीव्र अनुराग के कारण राजा चिंतित था कि यदि इन में से किसी को पृथक् करूँगा, तो दोनों का जीवन बचना असभव है। मैं भी इतना दृढ़हृदयी नहीं कि इनका विरह सह सकूँ। अत क्यों न दोनों का पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध ही स्थापित कर दिया जाय। उन्होंने वायुमडल तैयार करने के हेतु अपने प्रधान अमात्य, मित्र और नगरवासियों के सम्मुख कपट से पूछा—"सज्जनो, जो रत्न अत पुर में उत्पन्न हो उसका अधिकारी कौन?" सब ने एक स्वर से कहा, "हे देव, अन्त पुर में समुत्पन्न रत्न के विषय में तो क्या, सारे देश में जो रत्न उत्पन्न होते हैं उन पर तो आपका ही अधिकार है, जैसा भी चाहें, उपयोग कर सकते हैं।" राजा ने अब उनके सामने स्वाभिप्राय रखा और रानी की इच्छा न होने पर भी उनका पाणिग्रहण करवाया। रानी ने अपना अपमान समझकर यह ससार छोड़ दिया और दीक्षा ग्रहण की। वह मरकर देव के रूप में उत्पन्न हुई। पुष्पकेतु जब स्वर्ग का अतिथि हुआ तब पुष्पचूल राजसिंहासन पर बैठा। देवत्व प्राप्त रानी के हृदय में उन दोनों के अकृत्य को देखकर करुणा का स्रोत उमड़ पड़ा। उसने पुष्पचूला को, प्रतिबोधनार्थ, स्वप्न में भयकर नारकीय कष्ट यातनाओं के भाव बताये। वह भयभीत हुई। उसने पति से कहा। शांति के कृत्य किये जाने पर भी स्वप्न का क्रम बन्द न हुआ। राजा ने सब धर्मों के नेताओं को बुलाकर नारकीय स्वरूप की पृच्छा की। किसी ने गर्भावास को या गुप्तवास को या दरिद्रता को, और कुछ एक ने परतत्रता को ही नरक बताया। रानी को सतोष न हुआ। अन्निकाचार्य्य से पूछने पर स्वप्नवत् वर्णन सुनकर रानी प्रभावित हुई। बाद में देवलोक के स्वप्न आने पर, अन्निकाचार्य्य ने तादृश वर्णनकर रानी के मन को सतुष्ट किया। रानी ने अन्निकाचार्य्य के

पास दीक्षा लेने की आज्ञा पति से माँगी। राजा ने कहा कि एक शर्त पर आज्ञा दे सकता हूँ कि भिक्षा प्रतिदिन मेरे महल से ली जाय। 'तथास्तु' कहकर वह आचार्य्य की शिष्या हुई। उसने क्रमशः पढ़कर वैदुष्य प्राप्त किया।

एक बार अन्निकाचार्य्य ने अपने ज्ञान-बल से जाना कि भविष्यत् में दुष्काल होनेवाला है। अतः उन्होंने सारे समुदाय को अन्यत्र भेज दिया। वे स्वयं वृद्धावस्था के कारण वहीं रहे। भिक्षा पुष्पचूला महल से ला दिया करती थी। वह बड़े मनोयोगपूर्वक गुरु की सेवा में तल्लीन रहा करती थी। क्रमशः उसे केवल-ज्ञान प्राप्त होने के कुछ दिन बाद जब आचार्य्य को मालूम हुआ, तब उन्होंने पूछा कि मुझे कब केवल-ज्ञान होगा। विदुषी ने कहा—गंगा पार करते समय। आचार्य्य गंगा पार करने के लिए नाव पर बैठे। जहाँ-जहाँ वे बैठते, नाव डूबने लगती। तब वे मध्यभाग में बैठे। तब तो सम्पूर्ण नौका ही गंगा के गहन गर्भ में प्रवेश करने लगी। अत: लोगों ने उनको उठाकर पानी में फेंका। पूर्व भव में उनके द्वारा अपमानित स्त्री, व्यंतरी के रूप में, वहाँ पर आयी और पानी में गिरते हुए आचार्य्य को शूली में पिरो लिया। शरीर से रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी। परन्तु, आचार्य्य महोदय को अपनी शारीरिक पीड़ा का तनिक भी ध्यान न था। वे तो इसी चिन्ता में निमग्न थे कि कहीं मेरे उष्ण रक्त की बूंद से जलस्थित जीवों की हत्या न हो जाय। इस प्रकार अहिंसा की स्पष्टतम भावनाओं के चरम विकास होने पर उन्हें भी केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। देवताओं द्वारा प्रकृष्ट (सर्वोत्कृष्ट) याग (पूजा) होने से प्रयाग नाम से उस स्थान की प्रसिद्धि हुई। वर्तमान में, अर्थात् विक्रम संवत् १३७९ में, करवत रखवाने की परम्परा प्रयाग में थी। वहाँ एक वटवृक्ष है, जो कई बार मुसलमानों द्वारा नष्ट किये जाने पर भी उत्पन्न हो गया है।

जलचर जीवों के ताड़न से टूटती हुई सूरिजी की खोपड़ी पानी की तरंगों से यत्र-तत्र फिरती हुई गंगा के किसी प्रदेश में अटक कर रह गई। उसमें किसी समय पाटला वृक्ष का बीज पड़ा। अनुक्रम से खोपड़ी के दक्षिण भाग को भेद कर वृक्ष निकला। इस वृक्ष के प्रभाव से चाष पक्षी के निमित्त से नगर बसा।

सियार का शब्द जहाँ तक सुनायी दे, उतनी भूमि सूत से वेष्ठित की जाय। राजाज्ञा प्राप्त नैमित्तिक ने चारों दिशाओं में वहाँ तक सूत के तंतु फैला दिये, जहाँ तक सियार की आवाज न सुनायी दे। इस प्रकार चतुष्कोण नगर की राजा ने स्थापना की। इसी वृक्ष के नाम से पाटलिपुत्र नगर बसाया गया।‡ पुष्पबाहुल्य के कारण इसे कुसुमपुर भी कहते थे।

—'विविध तीर्थ कल्प' पृष्ठ ६७–६८

‡ अन्य ग्रंथों में उदायी राजा की माता का नाम पाटलिरानी होने के कारण नगर का नाम पाटलिपुत्र रखा, ऐसा उल्लेख मिलता है। अतः स्पष्ट रूप से पाटलिपुत्र शब्द का अर्थ उदायी राजा ही किया जा सकता है। यात्रियों के वर्णन से ज्ञात होता है कि 'कुसुमपुर' पाटलिपुत्र का एक अंग था।

आचार्य महाराज ने शिशुनागवंशी उदयाश्व या उदायी द्वारा निर्मापित नगर से सम्बन्धित कोई ऐसा उल्लेख नहीं किया जिससे ज्ञात हो सके कि अमुक संवत् में वह बसा। अतः अन्यान्य ऐतिहासिक साधनों के आधारों से प्रतीत हुआ कि वीर निर्वाण संवत् ३१ में उपर्युक्त नगर बसा। इतिहासज्ञों ने इसके विस्तार के संबंध में विभिन्न मत दिये हैं। उनमें साम्य केवल इतना ही है कि उसके ६४ दरवाजे और दुर्ग की ५७० बुर्जें थीं। आकस्मिक आक्रमणों को रोकने के लिए ३० हाथ गहरी और ६०० हाथ चौड़ी खाई थी। इस प्रकार की खाइयाँ मध्य काल में भी दुर्गा न्तरवर्ती भाग में बनवायी जाती थीं। कहीं कहीं इनमें पानी भरा जाता था और कहीं-कहीं युद्ध के दिनों में जलते हुए कोयले बिछा दिये जाते थे।

उदयाश्व महाराज श्रेणिक के पौत्र और कुणिक के पुत्र थे। इनका राज्याभिषेक चम्पा में ही हुआ था। पर पिता के परलोकगमन से उनकी वस्तुओं को देखने से प्रतिदिन मन बड़ा उद्विग्न रहा करता था, जिसके निवारणार्थ पाटलिपुत्र बसाया गया। 'महावग्ग' में उल्लेख मिलता है कि वैशाली के वज्जियों के आक्रमण को रोकने के लिए अजातशत्रु ने सुनिद्ध और वस्सकार नामक प्रधान मन्त्रियों द्वारा ईस्वी पूर्व ४८० में पटना बसाया या एक किला बनवाया। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपर्युक्त कथन भ्रामक है, क्योंकि कुणिक की राजधानी चम्पा † रही है, जिसके पुष्टिस्वरूप अनेक उल्लेख प्राप्त हो चुके हैं।

पुराणों में उदायी राजा और पाटलिपुत्र के निर्माण के लिए निम्नोक्त उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं—

उदायी भविता तस्मात्, त्रयस्त्रिंशत्समानृप ॥
सवै पुरवर रम्य, पृथिव्यां कुसुमाह्वयम् ॥
गंगाया दक्षिणे कूले, चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥

—वायु पुराण, उत्तर खंड, अध्याय ३७, पृष्ठ १७५
ब्रह्माण्ड पुराण म० भा० ३ पो० तीन अध्याय ७४

† भागलपुर से पश्चिम चार मीलपर अवस्थित है। किसी समय अंगदेश की राजधानी थी। रामायण, मत्स्य पुराण, महाभारत, आदि ग्रन्थों में चम्पा का वर्णन उपलब्ध होता है। जैनों के औपपातिक सूत्र में चम्पा के विकास का प्रत्यक्षदर्शी वर्णन मार्मिक ढंग से किया गया है। ह्यू एनत्सांग भी चम्पा में आया था। उसने शहर के चारों ओर दीवाल के खण्डितावशेषों के जो वर्णन किये हैं वे आज भी नाथनगर रेलवे स्टेशन के पास अवस्थित हैं। एक समय अंग मगध के ही आधिपत्य में था। चम्पापुरी जैनों का अत्यंत प्राचीन पुनीत तीर्थस्थान माना जाता है। वहाँ भगवान महावीर ने तीन चातुर्मास व्यतीत किये थे। वहाँ उनके अनेक शिष्यों का विहार हुआ करता था। भगवान महावीर के आर्यासंघ की प्रधान श्रमणिका चन्दनबाला यहीं की राजपुत्री थी। जैनों के बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के पांचों कल्याणक यहीं पर हुए। आज भी एक जैनमंदिर सुरक्षित है। दश कुमार-चरित में आया है कि चम्पा में किसी समय बदमाशों की बस्ती अधिक थी। चम्पक श्रेष्ठि कथा से भी यह ज्ञात होता है।

विष्णुपुराण (खंड ४, अध्याय ४) में उल्लेख आया है कि उदयाश्व अजातशत्रु का पौत्र था। परन्तु नहीं कहा जा सकता, इस कथन में कहाँ तक सत्यता है। कुछ लोग मानते हैं कि अजातशत्रु के बाद 'दर्शक' उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु जैन, बौद्ध और सिंहली साहित्य के निर्माताओं ने दर्शक के नाम का उल्लेख न कर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि अजातशत्रु का पुत्र उदयाश्व था। हमारे सामने ऐसा कोई कारण नहीं कि हम उदायीको अजातशत्रु का पौत्र मानें। जयचन्द्र विद्यालंकार ने 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' में लिखा है कि 'जैन अनुश्रुति' तो उदावी को भी नन्दो में गिनती है। यह भ्रामक है। यहाँ पर एक बात स्मरण रखनी आवश्यक है कि मगधनरेशों ने चम्पा और पाटलिपुत्र में राजधानियाँ परिवर्तित कीं। उस समय राजगृह को भी, जो मूल राजधानी थी, किसी प्रकार नुकसान न पहुँचे, इस बात का उन्हें पूर्ण ध्यान था; अतः वहाँ शिशुनागवंशीय किसी मांडलिक को राजा के रूप में नियुक्त किया था, जिसे इतिहास- 'दर्शक' या 'वंशक' के रूप में मानते हैं। ‡

उदयाश्व भगवान महावीर का परम अनुयायी था। इसने पाटलिपुत्र बसाते समय औषधिशाला, जिनालय, आदि बनवाये थे, जिनके उल्लेख 'आवश्यक सूत्रवृत्ति' और 'विविध तीर्थ-कल्प' में क्रमशः पाये जाते हैं।

"तं किर वियणगसंठियं णयरं णयराभिएय उदाइणा चेइहरं कारावियं, ऐसा पाटलिपुत्तस्स उप्पत्ति"—आवश्यक सूत्रवृत्ति।

"तन्मध्ये श्रीनेमिचैत्यं राज्ञाऽकारी। तत्र पुरे गजाश्वरथशालाप्रासाद सौधप्राकार गोपुरचण्यशाला सत्राकार पौषधागाररम्ये चिरं राज्यं जैन धर्मं चापाजय दुयायि नरेन्द्रः।

विविध तीर्थ कल्प, पृष्ठ ६८

सन् १८१२ में पाटलिपुत्र के समीप दो मूर्तियाँ उपलब्ध हुई थीं, जो वर्त्तमान में कलकत्ता के 'इंडियनम्यूजियम' में 'भरहुतगैलरी' में सुरक्षित है। इन दोनों पर जो लेखोत्कीर्णित हैं, उनका डा० काशीप्रसाद 'जायसवाल ने इस प्रकार वाचन किया था।

"भगो अचो छोनिधि से"

(पृथ्वी के स्वामी महराजअज)

---

‡ अस्माकं महराज दर्शकस्य भगिनी पद्मावती

—स्वप्नवासवदत्ता, अंक १ पृष्ठ १४

अजातशत्रुर्भविता, सप्तत्रिंशत्समा नृपः।
चतुर्विंशत्समा राजा वंशकस्तु भविष्यति ॥

—मत्स्यपुराण, अध्याय २७२

आपकी अपेक्षा है। अत आप कृपया यहाँ चले आइये। भद्रबाहु ने सकारण पाटलिपुत्र आने में असमर्थता प्रकट की। मुनियों से सघ ने उपर्युक्त सवाद सुना, तब पुन अन्य मुनियों को भेजकर कहलाया कि सघाज्ञा का उल्लघन करने वालों को क्या दड दिया जाय। आचार्यश्री ने कहा, "उसे सघ से बहिष्कृत कर दिया जाय?" आचार्य श्री ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर कहा कि महाप्राणायाम ध्यान चल रहा है। अत म तो आ न सकूगा। श्रीसघ मेरे पास यदि कोई सूक्ष्मप्रतिभासम्पन्न मुनियों को भेजे तो उपर्युक्त कार्य यहीं पर बैठा हुआ म पूर्ण कर सकता हूं। सघ को उपर्युक्त संवाद मिला। ५०० मुनियों को लेकर स्थूलिभद्र नेपाल को चले। परन्तु, वहाँ बहुत समय में अल्प अध्ययन के कारण बहु सख्यक मुनि धैर्य न रख सके। अत. वे, क्रमश. खिसकने लगे। केवल स्थूलिभद्र ही रह गये। वह आठ वर्षों में आठ ही पूर्व का पारायण कर सके। भद्रबाहु ने कहा कि अब मेरी साधना पूर्ण होने को है। अत अधिक अध्ययन-कार्य चलेगा। स्थूलिभद्र इतने बड़े विद्वान स्थविर होते हुए भी अपने आप पर अधिकार न रख सके। कहने लगे, "प्रभो, अब कितना अध्ययन अवशिष्ट है। आचार्यश्री ने कहा अभी तो बिन्दु मात्र हुआ है, समुद्रतुल्य शेष है।"

इस प्रकार स्थूलिभद्र ने आपत्ति काल में मगध में रह कर जैन-साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की। इसी कारण मगध-सस्कृति के इतिहास में इनका स्थान अनुपम है। जैनसाहित्य में 'पाटलिपुत्र परिषद्' प्रसिद्ध है। आवश्यक निर्युक्ति हरिभद्रसूरि कृत उपदेश-पद † आदि ग्रथों में इस घटना का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है।

स्थूलिभद्र ईस्वी पूर्व ३११ में पाटलिपुत्र में ही स्वर्गस्थ हुए। इनका स्मारक अरक्षित अवस्था में आज भी गुलजारबाग (पटना) स्टेशन के सामने 'कमलह्रद' (केमलदह) में वर्तमान है। इस्वी सन् की ७ वीं शताब्दी में ,भी उपर्युक्त स्थान का अस्तित्व चीनी यात्री श्वान चुआंग के उल्लेख से प्रामाणित होता है। उन दिनों निर्वाण स्थान सार्वनिक प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका था। चीनी यात्री लिखता है कि—

पाखंडियों के रहने का स्थान—उपाश्रय वहाँ है। पाखडी कहने का तात्पर्य धार्मिक असहिष्णु मनोवृत्ति ही है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस उल्लेख का बहुत बड़ा मूल्य है। आचार्य

† जाओ अ तम्मिसमए दुकालो दोय वसय वरिसाणि।
सव्वो साहुसमूहो गओ जलहितारेसु ॥
तदुवरमे सोपुणरवि पाडलिपुत्ते समागओ विहिया।
सघेण सुयविसया चिन्ता कि कस्स अत्थेति ॥
जजस्स आसिपासे उम्मसज्झयण माइ सघेडिउ ।
त सव्व एक्कारय अगाइ तहेव ठवियाइ ॥

स्थूलिभद्र के समय में मगध में जबर्दस्त राजनीतिक परिवर्तन हुआ, नन्द वंश का नाश और मौर्य्य साम्राज्य का उदय।

मौर्य्य-काल

संसार का नियम है कि जब राजनैतिक परिवर्तन होता है, तब जानतिक शांति स्वाभाविक रूप से भंग हो जाती है। विकृत वायुमंडल की सृष्टि से जन-जीवन विक्षुब्ध प्रवाहों में बहने लगता है। आत्मिक विभूतियों का संस्मरण, अन्य समस्याएं सम्मुख रहने के कारण, हो नहीं पाता। आध्यात्मिक साधना के लिए भौतिक शांति अनिवार्य्य भले ही न हो, पर आवश्यक अवश्य है मानव एक सामाजिक प्राणी है। अतः सामयिक परिस्थिति के प्रभाव से बचा नहीं रह सकता। आज की बात तो मैं नहीं कर रहा हूं, परन्तु, प्राचीन काल की बात है कि राजनीतिक परिवर्तनों के सबसे कटु अनुभव उनको हुआ करते थे जो किसी भी प्रकार के वाहन का उपयोग न कर पाद-भ्रमण को ही महत्त्व देते थे। जिस देश की जनता ने वर्षों तक सांस्कृतिक जीवन बिताया हो, वह चाहे कैसी भी भीषण परिस्थिति आये, फिर भी आनुवंशिक संस्कारों के कारण सद्विचारों का त्याग नहीं कर सकती। मगध की जनता तो भगवान महावीर और बुद्ध जैसे जन कल्याणकारक ऋषियों के उपदेशामृतों का पान ही कर चुकी थी, अपितु उनके औपदेशिक स्वर्णिम सूत्रों को आत्मसात् भी करने के सौभाग्य से मंडित थी। अतः परिस्थिति की भीषणता ने मगध के समाज के बाह्यावरणों पर आंशिक प्रभाव डाला सही; पर हृदय एवं मस्तिष्क में किसी भी प्रकार की दुर्भावनाओं का उदय न हुआ। अतः मगध का सांस्कृतिक वायुमंडल परिमार्जित ही रहा।

जिस प्रकार मगध के सिंहासन पर पूर्व दो राजवंश जैनधर्मानुयायी थे, मौर्य्य भी जैनधर्म को विशेष आदर की दृष्टि से देखते थे। इनमें चन्द्रगुप्त, सम्प्रति आदि प्रमुख हैं। वर्तमान ऐतिह्यतत्त्वविदों ने अब मौर्य्य का जैनत्व स्वीकार कर लिया है। जैनसाहित्य में महाराजा सम्प्रति का वही स्थान है, जो बौद्ध साहित्य में अशोक का। इसने जैनसंस्कृति के प्रभाव को केवल भारत में ही वेग नहीं दिया, अपितु विदेशों में भी जैनधर्म के व्यापक प्रभाव के लिए सब कुछ किया।

आर्यसुहस्तिसूरि--

का परिचय उपलब्ध नहीं होता। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ईस्वी पूर्व ३०५ में दीक्षित हुए तथा ईस्वी पूर्व २८१ में जैन संघ के नेता बने। स्थूलिभद्र की बहन यक्षाने पुत्रवत् इनका पालन किया था। एक समय आपने पाटलिपुत्र आने पर वसुभूति नाम के श्रीमन्त को नवतत्त्वादि का ज्ञाता बना कर जैनधर्म में दीक्षित किया। आपके काल में एक घटना ऐसी घटी, जिसका बहुत कुछ महत्त्व है। मौर्य्यकुलदिनमणि सम्राट् सम्प्रति को इन्ही आचार्य ने पूर्व भवमें प्रबुद्ध किया था। उसने अनार्य देशों में जैनसंस्कृति के प्रचारार्थ अपने सैनिकों को जैनमुनियों का वेश पहना कर वहां के

लोगों को समझाया कि मुनियों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। बाद में सच्चे जैनश्रमण भेजे, जैसा कि 'आवश्यक निर्युक्ति', 'निशीथ चूर्णि', 'परिशिष्ट पर्व' आदि ग्रथो से फलित होता है। आज भी यूनान में 'समनिया' नामक एक ऐसी जाति पायी जाती है, जो मांस-मदिरा सेवन करना बहुत बुरा समझती है। रात्रि भोजन करनेवाला इस जाति में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। यह 'समनिया' श्रमण शब्द का ही विकृत रूप हो, तो मानना होगा कि सम्प्रति द्वारा प्रबोधित जैनों के अवशेष हैं। गंभीर गवेषणा की अपेक्षा है।

वाचक उमास्वाति

आप स्वयं अपना परिचय इस प्रकार देते हैं —श्री उमास्वाति वाचकेश श्रीशिव श्रीप्रव्रज्या के प्रशिष्य थे। ११ अंग के धारक श्रीघोषनन्दि क्षमण (महातपस्वी श्रमण) के प्रव्रज्या शिष्य थे। महावाचक मुण्डपाद के वाचना प्रशिष्य थे। वाचकाचार्य्य मूल के वाचना शिष्य थे। न्यग्रोधिका के रहनेवाले थे, कौभीषिणी गोत्रवाले थे। स्वाति (पिता) और वात्सी गोत्रवाली उमा (माता) के पुत्र थे। उच्चानागरी शाखा के वाचनाचार्य्य थे। आपने गुरुक्रम से अर्हद्वाणी को ग्रहण करके कुसुमपुर (पटना) में मिथ्या शास्त्र वचन में फँसे हुए जीवों के हित के लिए 'तत्त्वार्थाधिगम' शास्त्र बनाया। आपका नाम था उमास्वाति जी †। श्रीजिनप्रभसूरिजी ने अपने 'विविधतीर्थ कल्प' ‡ में भी उमास्वाति का उल्लेख गौरव के साथ किया है।

उमास्वाति के अस्तित्व पर प्रकाश डालनेवाले ऐतिहासिक साधनों का अभाव है। केवल प्रशस्ति में जो 'उच्चानागरी' शब्द आया है उसी पर कुछ कल्पना की जा सकती है। यह शाखा

---

† वाचक मुख्यस्य शिवश्रिय , प्रकाशयस प्रशिष्येण।
शिष्येण घोषनन्दिक्षमणस्यैकादशागविद ॥१॥

वाचनया च महावाचकक्षमण मुण्डपाद शिष्यस्य।
शिष्येण च वाचकाचार्य मूलनाम्न प्रथित कीर्ते ॥२॥

न्यग्रोधिका प्रसूतेन विहरता पुरवरे कुसुमनाम्नि।
कौभीषणिना स्वाति तनयेन वात्सी सुते नाध्यम् ॥३॥

अर्हद्वचन सम्यग गुरुक्रमेणागत समुपधार्य।
दुखार्त च दुरागम विहित मति लोकम वगम्य ॥४॥

इदमुच्चैर्नागरवाचकेन, सत्त्वानुकम्पया दृब्धम्।
तत्त्वार्थाधि गमाख्य, स्पष्टमुमा स्वातिना शास्त्रम् ॥५॥

—तत्त्वार्थसूत्रीय प्रशस्ति

‡ उमास्वाति वाचकश्च कौभीषणि गोत्र पचशत सस्कृत प्रकरण प्रसिद्ध स्तत्रैव तत्त्वार्थाधिगम सभाष्य व्यरचत्। चतुरशीतिवाद शालाश्च तत्रैव विदुषा परितोषाय पर्यण लिपू।

विक्रम की प्रथम शती से तीसरी शती के मध्यकाल का सूचन करती है। जबतक किसी पुष्ट प्रमाण की उपलब्धि नहीं होती, तबतक यदि उमास्वाति का यही अस्तित्व समय मान लिया जाय तो आपत्ति ही क्या है। यही मगध के प्रथम विद्वान हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम जैनसाहित्य के निर्माण में संस्कृत भाषा का उपयोग किया। इतः पूर्व प्राकृत या उसकी उपभाषाओं में ही जैनसाहित्य ग्रथित होता था।

पादलिप्तसूरि और पाटलिपुत्र का मुरुण्ड

पादलिप्तसूरिजी यों तो अयोध्या के निवासी थे, परन्तु पाटलिपुत्र के इतिहास में भी आपका इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे जब पाटलिपुत्र पधारे, तब मुरुण्ड का शासन था। सूरिजी की प्रशंसा वह पूर्व सुन चुका था। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष मिलन पर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होना स्वाभाविक है। राजा ने स्वबुद्धि-बल से जब पुनः सूरिजी का परीक्षण किया, और भी स्नेह समवर्द्धित हुआ। कारण कि मुरुण्ड स्वयं गीता कथित वाङ्मयतप करते थे, उत्कृष्ट विद्वान इनकी सभा के भूषण थे।

एक समय मुरुंड के मस्तिष्क में पीड़ा उत्पन्न हुई। सूरिजी ने स्वयं तर्जनी को घुटने पर फिरा दूर पीड़ा शांत की (संभव है नसों से सम्बन्ध रखनेवाली यह घटना हो)। इस प्रसंग पर प्रकाश डालनेवाली एक गाथा निशीथभाष्यदि ग्रन्थों में इस प्रकार आयी है।

जह जह पएसिणिं जाणुयंमि पलित्तउ भमाडेई।
तह तह से सिर वियणा पणस्सई मुरुण्डरायस्स ॥

राजा प्रकृतिस्थ होने पर सूरिजी के निवासस्थान पर जाकर प्रति दिन धार्मिक वार्तालाप करने लगा। राजा ने आचार्य्य श्री से प्रश्न किया कि "महाराज हमारे वेतनभोगी भृत्य भी चित्त लगा कर काम नहीं करते और आपके शिष्य बिना किसी प्रकार के वेतन के सारा कार्य दत्तचित्त होकर करते हैं एवं सदैव आपके आदेश की प्रतीक्षा करते हैं।" आचार्य्य श्री ने कहा "हे राजन, हमारे शिष्य उभय लोक साधक भावना के वशीभूत होकर हमारी आज्ञा का तत्परता से पालन करते हैं।" राजा को विश्वास न हुआ। पर, बाद में "गंगा किस दिशा में बहती है" इसकी जाँच के लिए राजभृत्य और मुनि पृथक-पृथक भेजे गये। मालूम हुआ "गगा पूर्वमुखी बहती है"। † इस घटना का उल्लेख जिनभद्र-गणि क्षमाश्रमण, विशेष आवश्यक भाष्य में किया है—

निवपुच्छिएण भणियों गुरुणा गंगवा कुओं महो वहइ।
संपाइयवं सोसो जह तह सव्वत्थ कायव्वं ॥

---

† इस घटना का सुविस्तृत उल्लेख प्रभावक चरित्रान्तर्गत पादलिप्तसूरि चरित्र श्लोक ४४ से ६० तक किया गया है। स्थनाभाववशात् मूलउद्धरण देने का लोभ संवरण करना पड़ रहा है।

'तित्थोगली पयन्ना' और 'विविधतीर्थकल्प' में प्रतिपदाचार्य का उल्लेख आया है। वे कौन थे? विचाराधीन प्रश्न है। परन्तु, आंशिक नाम भेद एव घटना समय साम्य को देखकर जी ललचाता है कि पादलिप्तसूरि या महेन्द्र को ही क्यों न 'पाड़िवत्' या 'प्रातिपदाचार्य्य' मान लें। 'प्रभावक चरित्र' में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। प्राचीन प्राकृत साहित्य में भी इनका प्रासंगिक उल्लेख पाया जाता है।

अब यहा पर दो प्रश्न प्रमुख रूप से उपस्थित होते हैं १ मुरुण्ड कौन था और २ पादलिप्ताचार्य्य का समय क्या हो सकता है? । मुनि कल्याण विजयजी के मतानुसार मुरुण्ड कुषाण थे और पादलिप्त के समकालीन मुरुण्ड राजा कुषाणों के राजस्थानीय थे। पुराणों में इनका नाम 'वनस्फणि' (अशुद्ध विश्वस्फाटिक, स्फणि स्फूर्ति) था। इस आधारपर तो पादलिप्त का समय विक्रम भी दूसरी-शती का अत भाग या तीसरी का आरभ काल मानना होगा। अच्छा तो यह होगा कि पादलिप्त के समय को ठीक से जानने के पूर्व हम मुरुण्डों के इतिहास को समुचित रूप से जान लें। यों तो भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इस पर प्राप्त सामग्री के आधार पर अपने-अपने अभिमत व्यक्त किये हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० प्रबोधचन्द्र बागची ने 'इडियन हिस्ट्री कांग्रेस' में प्राचीन इतिहास विभाग के आसन से जो भाषण दिया है, वह बड़ा ही गभीर एव तथ्यपूर्ण है, जो मुरुण्डो की स्थिति पर सार्वभौमिक प्रकाश डालता है †। 'स्टीन कोनो' मुरुण्ड को शक मानते हैं, कारण कि शक भाषा में मुरुण्ड का अर्थ होता है स्वामी। पर, बागची इससे भिन्न मत रखते हैं। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के इलाहाबादस्थ लेख में मुरुण्ड का पता चलता है। खोह के छठवीं शताब्दी ताम्रपत्र में भी आता है। उच्चकल्प—उचहरा के महाराज सर्वनाथ की माता 'मुरुण्ड देवी' या 'मुरुण्ड स्वामिनी' थीं (वही पृष्ठ ४०)।

फ्रास के सुप्रसिद्ध अन्वेषक प्रोफेसर सिल्वेनलेवी ने अपनी स्वतत्र खोजों के अनुसार प्राचीन चीनी साहित्य में भी मुरुण्ड शब्द का पता लगाया है। सन् २२२—२७७ के बीच दूत मडल फूनान के राजा द्वारा भारत वर्ष भेजा गया। करीब ७००० ली की महद्‌यात्रा समाप्तकर वे मडल इच्छित स्थान को पहुचा। तात्कालिक भारतीय सम्राट ने फूनान के राजा को बहुत-सी भेंट-वस्तुए भेजी जिनमें यू—ची देश के चार अश्व भी सम्मिलित थे। फूनन वाले भारतीय दूत मडल की मुलाकात चीनी दूत से फूनान दरबार में हुई। भारत के सम्बन्ध में पूछे जाने पर दूत मडल ने बतालाया कि भारत के सम्राट की पदवी 'मिउ-लुन' * थी और इसकी राजधानी, जहां वह रहता था, दो शहर पनाहों घिरी थी एव शहर की खातों में जल सरिता की नहरों से आता था। पाठक सोच लें, यह वर्णन पाटलिपुत्र का ही सुस्मरण कराता है।—वही पृष्ट ४०।

---

† दि प्रोसीडिंग्स आफ दि इडियन हिस्ट्री काग्रेस सिक्स्थ सेशन १९४३

* यह शब्द चीनी भाषा में [illegible] है।

बहुत परिपक्व आधारों के न रहते हुए भी यह तो कहा ही जा सकता है कि कुषाण और गुप्तकाल के बीच मुरुण्ड राज्य करते थे। टौलेमी * की भूगोल और चीनी साहित्य के आधारो से अवगत होता है कि ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी में मुरुण्ड पूर्वी भारत में राज्य करते थे। (वही पृष्ठ ४० ।)

प्रोफेसर बागची ने अंतिम निर्णय यही दिया है कि मुरुण्ड, तुखारों के साथ प्रथम तो भृत्यों के रूप में आये, बाद में उन्होंने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। यू-ची अश्वों से ही उनका यू-ची देश मे सम्बन्ध प्रतीत होता है। मुरुण्ड, कुषाणों की तरह तुखारों का एक कबीला था, जो कुषाणों के पतन और गुप्तों के अभ्युत्थान के इतिहास के बीच खाली हिस्से की पूर्ति करता है।

ग्रीक और रोमन लेखक जैसे स्त्राबो, लीनी और पेरिगेट एक फ्रिनोयी या फ्रुनि नामक कबीले का नाम लेते हैं, जो तुखारों के सन्निकट रहता था। फ्रिनी का संस्कृत रूपांतर मुरुण्ड भली-भाँति हो सकता है। इसी को वायु आदि पुराणकारों ने मुरुण्ड न लिखकर पुरुण्ड या पुरण्ड लिखा है।(—वही पृष्ठ ४१ ।)

मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों के आधार पर १४ तुखार राजाओं के बाद उनका राज्यकाल १०७ या १०५ वर्षों तक सीमित था। १३ मुरुण्ड या मुरुण्ड राजाओं ने मत्स्य पुराण के अनुसार २०० वर्ष तक और वायु तथा ब्रह्माण्ड के अनुसार ३५० वर्ष तक राज्य किया। लेकिन, पार्जिटर के अनुसार ३५० वर्ष २०० वर्ष का अपवाद है; क्योंकि विष्णु और भागवत पुराणों में मुरुण्डों का राज्यकाल ठीक-ठीक १९९ वर्ष दिया है ‡। अब पौराणिक काल-गणना के अनुसार तुखारों ने १०७ या १०५ वर्ष राज्य किया। और अगर तुखार और कुषाण एक ही हैं तो कुषाणों का राज्य १८३ या १८५ ईस्वी तक आता है। अगर इस गणना में हम मुरुण्ड राज्यकाल के भी २०० वर्ष जोड़ दें तो मुरुण्डों का अन्त करीब ३०५ ईस्वी में पड़ता है। समुद्रगुप्त द्वारा विजय भी इसी काल के आसपास आकर पड़ता है †।

इतने लम्बे विवेचन के बाद एक प्रश्न और भी जटिल हो जाता है कि मुरुण्ड राज्यकालावधि के किस भाग में पादलिप्ताचार्य्य हुए? मुरुण्ड राज्यकाल १८५ ईस्वी से ३८५ तक रहा। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतिहासकारों ने किसी भी राजा को नाम से सम्बोधित करना न जाने क्यों उचित नहीं समझा। नामाभाव के कारण कठिनाई और भी बढ़ जाती है। अनुयोगद्वार के अनुश्रुत्यनुसार पादलिप्त का समय विक्रम की प्रथम शताब्दी ठहरता है। जब मुरुण्ड स्वतंत्र

---

* इनका अस्तित्व समय ईस्वी सन् ८० है।

‡ 'डाइनेस्टीज आफ कलि एज' पृष्ठ ४४-४५, लंदन १९१३।

† प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ पृष्ठ २३२।

शासक न होकर कुषाणों के ही सेवक थे। 'बृहत्कल्पभाष्य', भाग तीन, पृष्ठ २२६-६३ में एक कहानी आती है, जिस से फलित होता है कि पाटलिपुत्र के मुरुण्ड ने एक दूत पेशावर भेजा था, जो राजा से तीन दिन तक न मिल सका। इससे पाटलिपुत्र के मुरुण्डों और पुरुषपुर—पेशावर के कुषाणों के घनिष्ठ सम्बन्ध का पता चलता है। साथ ही साथ उपर्युक्त ग्रन्थान्तर्गत विभिन्न सांस्कृतिक उल्लेखों से तात्कालिक धार्मिक और राजनैतिक स्थितियों का धुँधला चित्र अंकित होता है। कुषाणों की धर्मान्धता के कारण जैनों को कष्ट झेलना पड़ा। परन्तु, कनिष्क और वासुदेव काल में वे स्वतंत्रता पूर्वक उपासना कर सकते थे, जैसा कि मथुरा के शिलालेखों से अवभासित होता है।

दाहड़ और महेन्द्र

पादलिप्तसूरि के प्रसंग में उपाध्याय महेन्द्र और पाटलिपुत्र के राजा दाहड़ का उल्लेख पाया जाता है। † यह राजा लेशमात्र भी धर्म की परवाह न करता था। बौद्ध साधुओं को अनावृत

---

† अथो महेन्द्र नामास्ति शिष्यस्तेषां प्रभाव भू।
सिद्ध प्राभृत निष्णातस्त द्वृत्त प्रस्तुवी महि॥
नागरो पाटलिपुरस्य वृत्रारि पुरस्य प्रभम्।
दाहदो नाम राजाऽस्त मिथ्या दृष्टिर्निकृष्टधी॥
दर्शन व्यवहाराणा विलोपेन वहन्मुदम्।
बौद्धाना नग्नताम् शैव व्रते निर्जटता चस॥
वैष्णवाना विष्णु पूजा त्याजन कौल दर्शने।
धम्मिल्ल मस्तकेनास्ति कानामास्तिकता तथा॥
ब्राह्मणेभ्य प्रणाम च जैनर्षीणा सपापभू।
तेषाम् च मदिरापानमन्विच्छन् धर्म निह्नवी॥
आज्ञा ददौ च सर्वेषामाज्ञाभंगे स चादिशत्।
तेषा प्राणहर दण्डमत्र प्रति विधिर्हिक॥
नगर स्थित सर्वाय समाविष्ट च भूजा।
नयाम्या ब्राह्मणा पुण्या भवद्भिर्वाऽन्यथावध॥
धनप्रमादिलोभेन मेने तद्वचन परै।
निष्किंचना पुनर्जैना पर्यालोच प्रपेदिरे॥
देहत्यागाद्य नो दु ख शासनस्याप्रभावना।
तत् पीडयति को मोहो देहे यायावरे पुन॥ (?)

—प्रभावक चरित्र, पृष्ठ ३४

करवा देता था। शैव साधुओं की जटाएं मुँड़वा देता था। वैष्णव साधुओं को मूर्ति-पूजा छुड़वाने को बाध्य करता था। जैन साधुओं को सुरापान के लिए मजबूर करता था, और ब्राह्मणों के चरणों में प्रणाम करवाता था। पाटलिपुत्र के संघ ने इस अत्याचार को शान्त करने के लिए भरौच से उपाध्याय महेन्द्र को बुलाया जिसने अपनी शक्ति से राजा को प्रबुद्ध कर न केवल जैन ही बनाया, अपितु कई ब्राह्मणों सहित जैन मुनि धर्म की दीक्षा भी अंगीकार करवायी। (प्रभावक चरित्र, पृष्ठ ३५।) 'तित्थोगालीपयन्ना' भी एक कलकी राजा की सूचना देता है। तात्कालिक कुषाण राजाओं के लेखों एवं ब्रह्माण्ड, वायु पुराणों से प्रमाणित होता है कि वह राजा वनस्फर ही था। परन्तु, इतिहासविदों में एतद् विषयक मतैक्य नहीं है। जिनप्रभसूरि भी कलकी राजा की सूचना करते हैं। हो सकता है वह वनस्फर ही हो, जिसका समय ईस्वीसन् ८१ से १२० तक था।

मुझे यहाँ पर प्रासंगिक रूप से सूचित कर देना चाहिए कि इन दिनों बिहार की कला पर ईरानी प्रभाव पर्याप्त था। बसाढ़ की जो मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनमें दो मस्तक प्रधान हैं, उनमें वर्तुलाकार टोप और चोगेदार टोपी है, जो स्पष्टतः विदेशी है। इसका निर्माण-काल मौर्योत्तर या सुंगकाल निर्द्धारित किया गया है। मैं ने बालकों के खिलौने की कुछ चद्दरें देखी हैं। उनके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे ईरानी कला से बहुत-कुछ अंशों में साम्य रखती हैं। यद्यपि मागधीय प्रस्तरों पर उत्कीर्णित प्राचीनतम कलावशेषों का सुव्यवस्थित अध्ययन अद्यावधि नहीं हो पाया। फिर भी अपेक्षित ज्ञान और साधनों की अपूर्णता के कारण जो कुछ भी खंडित सांस्कृतिक प्रतीक उपलब्ध हुए हैं, उनको देखने से पता लगता है कि अशोक के राज्यकाल में ईरानी कला के कुछ अलंकरण सौंदर्यसम्पन्न होने के कारण बिहार के कलाकारों ने अपना लिए थे। ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में ईरानी व्यापारी बनकर मथुरा तक आ गये थे। ऐसी स्थिति में उनकी कला का प्रभाव भारत पर पड़ना असम्भव नहीं। जहाँ सांस्कृतिक और बुद्धिजीवी राष्ट्र या मानवों का पारस्परिक सम्मेलन होता है, वहाँ एक दूसरे के उन्नतिमूलक तत्त्वों का आदान-प्रदान होता ही है। बिहार में मुरुण्ड और कुषाणकाल के प्राचीन प्रतीक मृण्मूर्तियाँ ही हैं। पुराण, जैन और चीनी साहित्यों से स्पष्ट विदित होता है कि बिहार के कुछ भागों पर विदेशी मुरुण्डों का आधिपत्य था। बिहार में सूर्य पूजा का जो विस्तृत प्रचार पाया जाता है, तदनुसार सूर्य की जो प्राचीन कलापूर्ण संख्यातीत मूर्तियाँ नालन्दादि खण्डहरों में उपलब्ध होती हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि वे भी ईरान के ही प्रभाव के प्रतीक हों, तो आश्चर्य ही क्या है। क्योंकि सूर्य-पूजा ईरानियों में शताब्दियों पूर्व ही प्रसिद्ध थी। यों तो श्रमण भगवान महावीरकालीन सामाजिक आचार-पद्धति का अध्ययन करने से मालूम होता है कि बिहार में सूर्य और चन्द्र-पूजा विशिष्ट प्रकार से की जाती थी। बालक-जन्म के बारहवें दिन सूर्य-चन्द्र की मूर्तियाँ बनवाकर सूर्य-चन्द्र के दर्शन का विधान समाप्त किया जाता था। सूर्य के प्राचीन अवशेष—मंदिर, सरोवर आदि आज भी नालदा में वर्त्तमान हैं। परंतु, आश्चर्य है कि इस पर कला की दृष्टि से आजतक कुछ अध्ययन हुआ ही नहीं। यहाँ पर चैत और आश्विन महीनों में बड़ा मेला लगता है। ("नालन्दा के वे दिन" मेरा निबंध।)

पाटलिपुत्र और वैशाली में अभी तक वैज्ञानिक रूप से खुदाई नहीं हुई। मेरा विश्वास है कि बिहार-सरकार यदि सांस्कृतिक भावनाओं से उत्प्रेरित होकर उपर्युक्त स्थानों में उत्खनन कराए तो न केवल प्राचीन मागधीय उन्नत सांस्कृतिक तत्त्वों का ही ज्ञान होगा, अपितु 'मुरुण्ड-समस्या' और कला पर ईरानियों के प्रभाव का प्रश्न भी बहुत कुछ अंशों में सुलझ जायगा।

वज्रस्वामी

इन का जन्म ईस्वी सन् ३० में वैश्य-कुल में हुआ था। गुरु के स्वर्गवासान्तर वह पाटलिपुत्र उद्यान में आकर ठहरे। उनकी देह की कांति कामदेव को भी लज्जित करती थी। नगर जन क्षुब्ध न हों, इस हेतु वे अपना वास्तविक रूप छिपाकर व्याख्यान देने लगे। पर, जनता ने सोचा कि वाणी के अनुसार गुरु का रूप नहीं है। तब आपने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। इस से लाभ के बदले हानि ही हुई।

पाटलिपुत्र में जैन आर्य्याएँ ठहरी हुई थीं। स्थानश्रेष्ठि की पुत्री ने उनके मुख से वज्रस्वामी के गुणों की स्तुति सुनी। अतः उन पर अनुरक्त होकर पिता से कहा कि मेरे स्वामी वज्र ही होंगे, अन्यथा अग्नि-शरण जाऊँगी। अब पिता, पुत्रीसहित विराट सम्पत्ति को लेकर महाराज के पास आया। सारा वृत्तान्त निवेदित किया। आचार्य्य श्री ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "हे भाई, क्या तुम रेणु से रत्नराशि, तृण से कल्पवृक्ष, गर्त से गजेन्द्र, काक से राजहंस, मातंग गृह से राजमहल एवं क्षार जल से अमृत के अनुसार, कुद्रव्य और विषयास्वाद से मेरे तपोबल का अपहरण करना चाहते हो? भोगयुक्त धन से तो केवल आत्मा के गुणों का पतन होता है। आप की पुत्री सचमुच यदि मुझ पर अनुराग रखती है, तो वह ज्ञानदर्शन ग्रहण करें।" यह सुनकर पुत्री रुक्मिणी ने दीक्षा अंगीकार की। फिर यहाँ से वे उड़ीसा की ओर प्रस्थित हुए।

गुरौ प्रायाद् दिवं प्राहे वज्रस्वामि प्रभुर्ययौ।
पुरं पाटलिपुत्राख्यमुद्याने समवासरत् ॥
अन्यदा स कुरूपः सन् धर्मं व्याख्यानयद् विभुः।
गुणानुरूपं नो रूपमिति तत्र जनोऽवदत् ॥
अन्येद्युश्चारुरूपेण, धर्माख्याने कृते सति।
पुरक्षोभभयात् सूरिः कुरूपोऽभूज्जनोऽब्रवीत् ॥
प्रागेव तद्गुणग्रामात् साध्वीभ्य स समाहृत।
धनस्य श्रेष्ठि कन्या रुक्मिण्य त्वान्वरज्यत ॥

प्रभावक चरित्र, पृष्ठ ६।

तत्रैव (पाटलिपुत्र) महाधनधन श्रेष्ठि नन्दनी रुक्मिणी श्री वज्र स्वामिनं पतीयन्ति प्रतिबोध्य तेन भगवता निर्लोभ चूड़ामणिना प्रव्राजिता।—'विविध तीर्थ कल्प' पृष्ठ ५६।

आर्यरक्षित सूरि

आप का जन्म ईस्वी पूर्व ४ में हुआ था। ईस्वी १८ में दीक्षा ग्रहण की। आप वेद-वेदांग के पारगामी विद्वान माने जाते थे। सरस्वती की तीव्र साधना से उत्प्रेरित होकर आप पाटलिपुत्र आये और १४ विद्याओं का गंभीर अध्ययन किया *। इस उल्लेख से सूचित होता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में, पाटलिपुत्र में ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाएँ इतनी विस्तृत हो चुकी थीं कि इतर प्रांतीय लोगों को अपनी ज्ञान-पिपासा शांत करने के लिए यहाँ आना अनिवार्य होता था। आप जैन मुनि होने के बाद भी पाटलिपुत्र में आये थे †। आपने जैनसाहित्य को धर्मकथानुयोग, चरणकरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग चार विभागों में विभाजित किया। ईस्वी ३१ में आपका स्वर्गवास हुआ।

गुप्त और अंतिम गुप्तों के समय में पाटलिपुत्र की जैनदृष्टि से कैसी उन्नति रही होगी, पर्याप्त साधनों के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि गुप्तों ने अपनी राजधानी का भी परिवर्त्तन कर दिया था। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री श्वान-चूआँग पाटलिपुत्र में आया था। उसने यहाँ के स्थूलिभद्र के निर्वाण-स्थान का जो उल्लेख किया है, उस पर से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उन दिनों जैन-समाज अवश्य ही उन्नतावस्था में रहा होगा, और वह स्थान भी सार्वभौमिक प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका होगा। चीनी यात्री ने आगे चलकर सूचित किया है कि कमलदह में पाखंडियों के रहने का स्थान-उपाश्रय है। इस से यह ध्वनित होता है कि जैन मुनियों का वहाँ निवास रहा करता था। इन दिनों वे नगर निवास नहीं कर उद्यान में ही ठहरते थे। पाखंडी कहने का कारण जैन-बौद्ध प्रतिस्पर्द्धा ही है। आज भी यह स्थान एक टीले पर सुरक्षित है। पुरातत्त्व-विभाग या जैन-समाज के नेताओं को चाहिए कि वे वैज्ञानिक दृष्टि से उसका खनन करवाएँ।

नागभट्ट

इसे इतिहास में नागभट, नागलोक और आम भी कहते हैं। यह मौर्यवंशीय यशोवर्मा का पुत्र था। ग्वालियर इसकी राजधानी थी। राजगृह पर आक्रमण कर उसने समुद्रसेन को परास्त किया था। १२ वर्ष तक छावनी डालकर उनसे लड़ा था। इसके पौत्र भोज का ननिहाल पाटलिपुत्र

---

* अतृप्तः शास्त्र पीयूषे विद्वानप्यार्य रक्षितः
पिपठीस्तद्विशेषं स प्रययौ पाटलीपुरम् ॥
अचिरेणापि कालेन स्फुरत्कुण्डलिनीबलः।
वेदोपनिषदं गोष्यमध्यैष्ट स प्रकृष्टधीः॥ 'प्रभावक चरित्र' पृष्ठ ९

† अखंडितप्रभावैः स शुद्धः संयमयात्रया।
सञ्चरन्नाययौ बन्धुसहितः पाटलीपुरम्॥ 'प्रभावक चरित्र' पृष्ठ १२।

वाचनाचार्य राजशेखर

चोदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत साहित्य पर दृष्टि केन्द्रित करने से विदित होता है कि इन दिनों जैनों द्वारा जो साहित्य निर्मित हुआ, वह केवल साम्प्रदायिक तत्त्वों के आधार पर ही नहीं, अपितु जनोपयोगी एवं विद्वद्भोग्य तथा तात्कालीन जानतिक सांस्कृतिक तत्त्वस्फोटक ग्रंथ भी प्रचुर परिमाण में निर्मित हुए जिन में युगप्रधानाचार्य गुर्वावली मुख्य है। हम इसे ऐतिहासिक डायरी भी कह सकते हैं। इस में उल्लेख आया है कि वाचनाचार्य राजशेखर ने अपने सहयोगी मुनियों के साथ बनारस होते हुए राजगृह, पावापुरी, नालन्दा की भक्तिसिक्तहृदय से यात्राकर, उद्दविहार अथवा विहार (पटना) में वि० १३५२ में चातुर्मास किया १। यद्यपि इसमें पाटलिपुत्र का नामोल्लेख नहीं है। परन्तु, उनके आवागमन की भौगोलिक स्थिति को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वे पाटलिपुत्र अवश्य ही आये होंगे। पर महत्त्वपूर्ण घटना घटित नहीं होने के कारण नामोल्लेख नहीं किया होगा।

इन दिनों विहार में महत्तियाण २ जाति के अधिक जैनी थे। उनकी स्थिति, आर्थिक दृष्टि से अच्छी थी। उनलोगों ने अपना एक स्वतंत्र जैन मंदिर भी बनवाया था जो आज भी "मथियान-महल्ला" में बहुत ही जीर्णदशा में वर्त्तमान है। कुछ लोग इसे उठाने के विचार में हैं, परंतु, प्राचीन ऐतिहासिक स्मारक रूपी मंदिर को हटाने में बुद्धिमानी नहीं होगी। जब रुपयों की कमी नहीं है तो जीर्णोद्धार क्यों नहीं करवाया जाता। राजगृह, नालंदा और पावापुरी के कुछ प्रशस्तरोत्कीर्ण एवं प्रतिमा लेखों के अन्वेषण से अवगत हुआ कि १७-१८ शती तक महत्तियाणों का प्राधान्य रहा, बाद के गौरव सूचक उल्लेख नहीं के बराबर मिलते हैं।

कुंरपाल-सोनपाल

दोनों भाई आगरा के निवासी थे। आपने आगरा से विहार स्थित "सम्मेदशिखर—पार्श्वनाथ हिल्स" का विराट् संघ निकलवाया था। संवत् १६७१ में वह संघ पाटलिपुत्र भी आया

---

१ सं० १३५२ जिनचन्द्रसूरिगुरूपदेशेन वा० राजशेखरगणि सुबुद्धिराजगणि हेमतिलक गणि पुण्यकीर्तिगणि–रत्नसुन्दर मुनिसहित श्रीवृहद्ग्रामे विहृतवान्। ततश्चतत्र ठ० रत्नपाल सा० चाहडप्रधान श्रावक प्रोपिताभ्यां स्वभ्रातृ–हेमराज–भागिनेयबाचू श्राविकाभ्यां सपरिवाराभ्यां सा० बोहिथ पुत्रेण सा० मूलदेवश्रावकेण श्रीकौशाम्बी—वाणारसी—काकिन्दी–राजगृह–पावापुरी–नालान्दा–क्षत्रियकुण्ड ग्राम–अयोध्या–रत्नपुरादिन गरेषुजिनजन्मादि पवित्रितेषु तीर्थयात्राकृता।

—युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृष्ठ ६०।

२ इस वंश की विशाल ऐतिहासिक प्रशस्ति (वि-सं०-१४४२ आषाढ़ वदि ६) दो पाषाणों पर वर्तमान में राजगृह में स्व० बाबू पूरणचंदजी नाहार के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें फिरोजशाह, उनका मडलेश्वर तथा तदधीन सेवक सहणाल दुरदीन के नामोल्लेख हैं। विहार के ऐतिह्यतत्त्व गवेषकों का मैं इस पर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

था। उन दिनों यहाँ ऋषभदेव स्वामी एवं पार्श्वनाथ स्वामी के दो श्वेतांबर जैन मंदिर थे। आज भी यहाँ के मंदिरों में जो दो-चार बड़ी जैन प्रतिमाएँ हैं, उन पर इन का लेख खुदा हुआ है। हो सकता है, इन्होंने यहाँ पर प्रतिमाएँ रखी हों। पाटलिपुत्र के जायसवाल जैनोसाह और खंडेलवास मयणु ने संघ को भोज दिया था, इस का वर्णन ठीक उसी समय बने एक रास में दिया गया है। यह रास तत्कालीन बहुत से बिहार के भौगोलिक तथ्यों की सूचना देता है। इन दिनो पटना में महत्तियाण जाति के जैन बसते थे। उपर्युक्त रास में कहा गया है कि आगे पावापुरी जाने का मार्ग सँकड़ा था, अतः बैल-गाड़ियाँ यहीं पर छोड़कर डोलियाँ (पालकी) करनी पड़ीं। वानरवन भी पटना के सन्निकट बताया गया है और महानदी पार कर विहार में प्रवेश करने का उल्लेख है। यह उल्लेख शायद बख्तियारपुर और हरनौत के बीच जो नाले पड़ते हैं, उन्हीं से सम्बन्धित है।

कविवर बनारसीदास

सत्रहवीं शताब्दी के दार्शनिक ग्रन्थ-प्रणेता और हिन्दी के उत्कृष्टतम ग्रन्थ-निर्माता कवियों में बनारसीदास का स्थान भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आपने हिन्दी-कविता-साहित्य की दो रूपों से अभिवृद्धि की, स्वतंत्र ग्रन्थ निर्मित कर और प्राकृत संस्कृत भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों का प्रामाणिक अनुवाद कर। आपने आध्यात्मिक धारा को ही अपनाया था। भौतिकवादी तत्त्वों को प्रोत्साहन देने-वाली कविता के निर्माण का कटुफल आप युवावस्था में ही चख चुके थे। इनका साहित्य जनकल्याण के लिये प्रचार-योग्य है। हिन्दी के जीवनचरित्र-विषयक ग्रन्थों में "अर्धकथानक" इन की अमर और प्रथम कृति मानी जाती है। इनके पिता खरगसेन पाटलिपुत्र आये थे। उनको यहाँ उदर-रोग भी उत्पन्न हुआ था १। इनकी बड़ी पुत्री और बनारसी की बहन का विवाह भी पाटलिपुत्र में ही वि० सं० १६६४ में हुआ था *। कविवर स्वयं नरोत्तमदास के साथ व्यवसायार्थ पटना आये और यहाँ ६–७ मास तक रहे थे †। इन उल्लेखों से विदित होता है कि उन दिनों पाटलिपुत्र में श्रीमाल जाति के लोग भी बस गये होंगे, और आज भी उनके कुछ घर हैं जिनमें बाबू पदमसिंह बदलिया प्रमुख हैं।

---

१ "मासि चारि ऐसी बिधि भए, खरगसेन पटने उठि गए

× × × ×

साठै करि पटनेसौं गौन, खरगसेन आए निज भोन,

× × × ×

खरगसेन पटनेंमौं आइ, जहमति परे महा दुख पाई

उपजी बिथा उदर के रोग, फिरि उपसमी आउवल जोग २४० "अर्धकथानक"

* आयौ सबत चौसठा, कहौं तहां की बात २७७

खरगसेन श्रीमालकैं हुती सुता द्वै ठौर

एक बियाही जौनपुर, दुतिय कुमारी और २७८

सोऊ ब्याही चोसठै, संबत फागुन मास

गई पाड़लीपुर विसैं, करि चिंता दुख नास, २७८ वही

बैठे तब उठि बोले साहु, तुम बनारसी पटनें जाहु, वही

हीरानन्द साह

बगाल के राजनैतिक इतिहास में जगत सेठ का स्थान महत्त्वपूर्ण है। १८ वीं शताब्दी में उनके वंश के सदस्यों की परिगणना बगाल के भाग्यविधाताओं में की जाती थी। बहुत कम गवेषकों को पता है कि उनका घनिष्ठ सम्बन्ध पटना से भी था। स्पष्ट कहा जाय तो न केवल यहाँ से उनका पारिवारिक सम्बन्ध ही था, अपितु उनके कुछ भाई पटना में ही रहते भी थे। अत कहना चाहिए कि जगत सेठ की उन्नति की पूर्व भूमिका पाटलिपुत्र में ही निर्मित हुई।

जगत सेठ और उनके वशजों की सुकृतियों पर प्रकाश डालनेवाले गुजराती और अगरेजी भाषा में कुछ ग्रथ मिले हैं। मुझे कलकत्ता के स्वर्गीय बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के सग्रह से 'माणकदेवीरास' नामक ऐतिहासिक कृति प्राप्त हुई है, जिसमें जगत सेठ की माता का सम्पूर्ण जीवनचरित वर्णित है। इस कृति को मै इसीलिए प्रामाणिक मानता हूँ कि इसके निर्माता यति निहाल, वर्षों तक जगत सेठ के सान्निध्य में रहे एव माणकदेवी के स्वर्गस्थ होने के ठीक तेरहवें दिन इसकी रचना की।

उपर्युक्त 'रास' में बताया गया है कि गगानदी के तीर पर, शाहीजादपुर में बिडाणी गोत्रीय * पूरणमल की धर्मपत्नी गुल्लो बहु की रत्न-कुक्षि से सवत् १७३७ श्रावण वदि एकादशी के दिन किशोर कुँवरि—बन्नो का जन्म हुआ। क्रमश युवावस्था प्राप्त होने पर हीरानन्द के पुत्र माणिकनन्द्र के साथ उनका विवाह हुआ। धनधान्य से परिपूर्ण होने के कारण उनका माणिकदेवी नाम ससुराल में रखा गया।

बात यह है कि जगत सेठ के पूर्वज गहिलड़ा गोत्रीय हीरानन्द, मूलत नागौर के निवासी थे, पर बगाल जाने के पूर्व पटना में बस गये †। इनके सात पुत्रों में से कुछएक बगाल की ओर गये एव कुछ पाटलिपुत्र में ही रह गये। पाटलिपुत्र में हीरानन्द ने जैनधर्म के मदिर एव श्रीजिन

---

* बिडाणी गोत्रीय जैनों की पर्याप्त सख्या १७ वीं शताब्दी से ही शाहीजादपुर में होने का उल्लेख सोनपाल, कुवरपाल सघवर्णन में (सवत् १६७१) तथा भिन्न भिन्न तीर्थमालाओं में पाया जाता है। सम्मेदशिखर के मदिरों में एक लेख भी पाया गया है।

कविवर बनारसीदासजी का पारिवारिक सम्बन्ध भी यहाँ से था। १७–१८ शती की तीर्थ मालाओं मे जैनों के गौरवपूर्ण उल्लेख प्राप्त होते हैं। पता नहीं, वर्त्तमान में क्या हाल है।

† नगर सुबदा पटणै वसै, ओशवश सिरदार।
गोत गहिलडा जगप्रगट, दौलत वंत दातार ॥१॥
हीरानद नरीन्द्र सम, मानैं सहु कोई आण।
सात पुत्र तेहने प्रगट, अदभुत गुण मणि खाण ॥२॥
माणकचद नरेन्द्रसम, चौदह विद्या भडार।
लछन अग वत्तीस लसु, काम तणों अवतार ॥३॥
वर देषित हरषित भए, कीनो तिलक विचार।
करी सम्हाई व्याहनी, रची बरात विस्तार ॥४॥ —'माणकदेवी रास' (अमुद्रित)

दत्त सूरिजी की 'दादावाड़ी ‡ बनवायी थी, जैसा कि उनके दस्तावेजों से प्रतीत होता है। वर्त्तमान में, वह पाटलिपुत्र स्थित समस्त जैन-संस्थाओं के प्रधान कार्यवाहक सेठ मंगलचन्द्रजी शिवचन्द्र श्रावक के अधिकार में है। इस समय पटना सिटी चौक के उत्तर एक गली पायी जाती है जिसे 'हीरानन्द साह की गली' कहते हैं। इसका सम्बन्ध उपर्युक्त हीरानन्द से ही है। कहा जाता है, आप का बनवाया हुआ मकान भी किसी समय सुरक्षित था; पर वह कालवशात् गंगा के गर्भ में प्रविष्ट हो गया। घाट भी आप ही का बनवाया हुआ है। स्मरण रखना चाहिए कि हीरानन्द, शाहजादा सलीम के कृपा-पात्र एवं खास जौहरी थे †। पटना जैसा ही दिल्ली में भी "हीरानन्द की गली" प्रसिद्ध है।

गुजराती साहित्य में पटना

मगध, जैन-संस्कृति का प्रधान क्षेत्र होने के कारण, एवं जैनो के ऐतिहासिक अति प्राचीन तीर्थ तथा शासनाधीश्वर वर्द्धमान महावीर की विहार-भूमि होने के कारण जैन मुनियों का एवं बृहत्तर संघों का आगमन समय-समय पर यहाँ हुआ ही करता था। यद्यपि वर्त्तमान समय के समान पूर्वकाल में आवागमन की सुविधा नहीं थी, तथापि भक्त लोग बड़े-बड़े संघों को लेकर तीर्थ-लाभ प्राप्त करते थे। जैन श्रमण पश्चिम भारत से पैदल चलकर १८ वीं शताब्दी में अधिकांश रूप से मगध आये थे। उनमें से बहुतों ने अपने भ्रमण को लिपिबद्ध कर ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया है, जो गुजराती भाषा में परिगुम्फित है। बिहार के इतिहासतत्त्व-गवेषकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होना चाहिए। यद्यपि चीनी यात्रियों के अनुसार वर्णन का स्थान विशेषतः विशिष्ट रूप से वर्णित न हैं तथापि तत्कालीन बिहार के प्रधान नगर एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों के भावपूर्ण वर्णन-परम्परा की उपलब्धि होती है। १७ वीं शताब्दी के बाद के बिहार का ऐतिहासिक परिच्छेद बिना इनके अध्ययन के पूर्ण नहीं हो सकता। मुझे यहाँ पाटलिपुत्र से सम्बन्धित जो उल्लेख मिले हैं, उन्हीं की चर्चा अपेक्षित है। विक्रम संवत १७१७ में लिखित तीर्थमालाओं में पाटलिपुत्र का उल्लेख करते हुए कवि मुनि विजयसागर इस प्रकार लिखते हैं—

> पहुता[१] पुरवर पाडली[२] भेटया[३] श्रीगुरुहीरोजी[४]
> थूभि[५] नमु थिरथापना[६] नन्दपहाडिनी तीरो जी

---

‡ यह स्थान वर्त्तमान पटना सिटी स्टेशन के दक्षिण में पड़ता है।

† आयो संवत इकसठा, चैत मास सित दूज।
साहिब साह सलीम कौ, हीरानन्द मुकीम।
ओसवाल कुल जौहरी, वनिक वित्त की सीम॥ —अर्धकथानक, पृष्ठ,२१।

१ पहुँचा, २ पाटलीपुत्र, ३ भेंटे, ४ विजयहीरसूरि, ५ स्तूप, ६ स्थापना

७ + + ८ +
सोरीश्रो सुदर्शन पादुका, थूलिभद्र बहिनड सातोजी
९
अवर अनेक इहा हूआ, पुहुक पुरुष वीत्यातोजी
१०
नयरि मझारि दोइ देहरा, खमणावसही एकोजी
निम्ब बहूअ देहरासरे, धरि २ नमुय विवे कोनी
सघ मिल्यो श्रीश्र आगरा, पाडलीपुर नश्रो समेल्यो जी

तीर्थमाला, पृष्ठ ५

उपर्युक्त उल्लेख में सूचित किया गया है कि उन दिनों पटना में राजा नन्द की पाँच पहाड़ियाँ प्रसिद्ध थीं और आज भी हैं। स्थूलिभद्र श्रमण के सिवा दो अन्य जैन मंदिर भी विद्यमान थे। ऐसे ही कई अन्य उल्लेख भी प्राप्त हैं जिनकी ऐतिहासिकों ने घोर उपेक्षा की है।

मुनि सौभाग्य विजय ने वि० स० १७५० में समस्त बिहार प्रान्त के जैन और अजैन तीर्थों पर ऐतिहासिक दृष्टि से अन्वेषण करते हुए जो विचार व्यक्त किये हैं, उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने पटना को प्रमुख मानकर यहाँ से चतुर्दिग् कितनी दूरी पर कौन-सा तीर्थ है, उसका लक्षण कैसा है, मंदिर कितने हैं, मार्ग में कितने कोस पर कौन कौन ग्राम पड़ते हैं, उनमें मुखिया कौन है, आदि बातों का जैसा वर्णन पद्यबद्ध रूप में किया है, शायद बिहार के किसी भी कवि ने नहीं किया होगा। आपने पाटलिपुत्र की उत्पत्ति भी दी है जिसकी चर्चा बहुत पहले मैं कर चुका हूँ। वे भी सूचित करते हैं कि दो जैन मंदिर पाटलिपुत्र में और एक बेगमपुर में था। महाराजा नन्द की पञ्च पहाड़ी इन दिनों ईंटों के टीले के रूप में प्रसिद्ध थी, यह केवल किंवदन्ती रह गई थी। ११ स्थूलिभद्र का जन्म-स्थान भी आपने पाटलिपुत्र ही बताया है। १२ एक तीर्थमाला में हाजीपुर को उनकी जन्मभूमि माना है १३। पटना के जैनों को कवि ने धर्मात्मा और धनवंत रूप से उल्लेख किया है। यहाँ मैं सूचित कर दूँ कि उपर्युक्त वर्णन सुना-सुनाया नहीं, बल्कि स्वयं पाद-विहार करते हुए वे पाटलिपुत्र आये थे, चातुर्मास भी रहे थे, और अपनी अंकित को बाद में लिपिबद्ध किया था।

---

७ श्रियक स्थूलिभद्र के छोटे भाई, ८ बहनें, ९ पृथ्वी, १० मंदिर।

११—पञ्च पहाडी परगडी जिहा छे ईंटनी खाण हो
तेहने गुरु मुख साभली, नन्द पहाडि जाणा हो सु० १२

वही

१२—थूलिभद्र पण इणपुरी अवतरिया ब्रह्मचार,

वही

१३—हाजीपुर पट्टण सुभ गाम थूलिभद्र जनम्या तिणिठाम

शीलविजय, वि० स० १७ ५

जैन लेखों में पाटलिपुत्र

जिस किसी भी नगर का इतिहास लिखना हो उसके पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि तत्रस्थ समस्त साधनों का पर्यवेक्षण हो जिनमें शिलालेखो पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। क्योंकि प्रस्तरोत्कीर्ण शिलाखंडो पर सीमित स्थान में ही, विशिष्ट भावों का अंकन होता था। इसी कारण से शिलालेखों की यथार्थता पर संदेह का स्थान नहीं रह जाता। पाटलिपुत्र में जैन-संस्कृति के व्यापक प्रभाव-सूचक उल्लेख प्राचीन प्राकृत-संस्कृत साहित्य में विद्यमान हैं। उल्लेख प्रस्तर पर खुदे हुए उतने प्राचीन और कहीं नहीं मिले हैं। पाटलिपुत्र से सम्बन्धित लेखों में से कुछ एक का उल्लेख यहाँ नीचे दिया जाता है।

(१) संवत् १६८२, मार्गशिर्ष शुदी ५ सा० कटारमल तस्यात्मज सा० कल्याणमल पुत्र चिन्तामणि श्री जिनकुशल सूरि० बेगमपुर वासतव्य।

(२) संवत् १६६६ पूर्वदेशे पाडलिपुर नगरे बेगमपुर।

(३) तपागच्छे भ० श्री ५ श्रीहीरविजय सूरि जगत पादुकेभ्यो नमः पम० चन्द्रकुशल गणि नित्यं प्रणमतिश्च। संवत् १७६२ वर्षे कार्तिक शुक्ल ६ सा० वेणिदास पुत्र भीनसेन पुत्र मायाचन्द वीराणी गोणे प्रतिष्ठितम् वीराणी मयाचन्द प्र० क० पाडलिपुरे (तीन और लेख इस लेख से साम्य रखनेवाले उपलब्ध हुए हैं अतः उनका उल्लेख नहीं किया।

(४) १८४८ वर्षे मार्ग शिर वदि ५ सोमवासरे श्री पाडली वास्तव्य श्री सकलसघ सुमदायेन श्री स्थूलभद्रस्वामी जी प्रसादस्य कारापितं कार्य्यस्याग्रेस्वरी अतपा गच्छीय आर्द्धः श्रीलोढा श्रीगुलाब चन्द जी प्रतिष्ठितं सकल सूरिभिः।

(५) सं० १८४८ ॥ भाद्र सुदि ११ असंघेन। श्रुत केवलि अस्थूलभद्राचार्याणां देवगृहं कारयित्वा तत्र तेषां चरण न्यासः कारितः प्रतिष्ठतं श्री अमृत धर्म वचना चार्यैः॥

(६) संवत १८४८ मिति भद्र सुदि ११ तिथौ॥ *श्रीपाटलिपुत्रे* माल्हू गोत्रे सा० हुकुमचन्दजी पुत्र गुलाबचद भार्या फुल्लो बीवी कया इष्ट सिध्यर्थं श्री चतुर्विंशतिजिन मातृस्थापना कारिता प्रतिष्ठिता च श्री जिनभक्तिसूरि प्रशिष्य श्री अमृतधम वाचनाचार्य्यै श्री रस्तु।

(७) १८५२ वर्षे पोष शुक्ल ५ भृगुवासरे *पडलीपुर* वास्तव्य। श्री सकल संव समुदायेन श्री विशाल स्वामी। श्री पार्श्वनाथ स्वामी प्रासादस्यजीर्णोद्धरं कारापितं। कार्य्यस्याग्रेश्वरी तयया गच्छीय आर्द्धः। कुहाड श्री *ज्ञानचन्द्रजी* प्रतिष्ठितं च श्री सकलसूरिभिः शुभं भूयात्।

(८) शुभ संवत १८७७ वर्षे वैसाख शुक्ल पंचम्यां चन्द्रयासरे श्री जिनकुशलसूरीश्वर सद्गुरूणा चरण पादुका प्रतिष्ठिता श्री मद् वृहत्खरतरगच्छे भट्टारक श्री जिन अक्षयसुरि पट्टालं कृत

श्री जिनचन्द्र सुरिभि *श्रीमतपाटलिपुर* वास्तव्य समस्त श्रीसघै प्रतिष्ठा कारापिता। प। गणि श्री कीत्युदयोपदेशात्॥ श्रीरस्तु।

(६) सम्वत १८७७ वर्षे वैशाख शुक्ल पचम्या चन्द्रवासरे श्रीजिनकुशलसूरीश्वर सद्गुरुणाम् चरण पादुका प्रतिष्ठिता भट्टारक श्रीजिनअजयसूरि पट्टालकृत श्रीजिनचन्द्र सुरिभि मनेर वास्तव्य श्रीमालान्वये बदलिया गोत्रे सुश्रावक श्री कल्याणचन्द तत्पुत्र श्री मगुलाल कीर्त चन्द तत्पौत्र किमनप्रसाद अभयचन्द्रादि परिवारेण स्वश्रेयोर्थम् प्रतिष्ठा करापिता प। ग कीर्त्युदयोपदेशात्।

(१०) श्री सवत १६१० शाके १७७५ साल मिती वैशाख शुक्ल पचम्या गोरो पाटलीपुर सर जिनालय पूर्वक श्री श्री नेमनाथ मदिर जेसवाल माणकचन्द तत्पुत्र मटरूमल तत्पुत्र सीवनलाल प्रतिष्ठा कारापित श्रीरस्तु।

उपर्युक्त शिलालेखों में सतरहवीं शताब्दी के बाद जो सुकृत किये गए थे, उनमें से कुछ एक के ही उल्लेख यहाँ हैं। विहाणी गोत्र के जैनों की कीर्ति पावापुरी, सम्मेदशिखर आदि तीर्थों में नामोत्कीर्णित हैं। पटना में निवास करनेवाले जैनों की वशावली नहीं मिलती और जो कुछ प्राप्त होती भी है, वह ४-५ पीढ़ी से ऊपर नहीं जा सकती। अत यह शका होने लगती है कि यहाँ के स्थायी निवास करनेवाले जैनी कौन थे? क्योंकि वर्त्तमान पटना में जो श्वेताम्बर जैनी निवास करते हैं, वे १००-१५० वर्ष पूर्व के नहीं हैं। ये लोग लखनऊ या कानपुर से आकर यहाँ स्वतन्त्र बस गये या किसी की गोद में आये।

गुजराती साहित्य के पाटलिपुर सम्बन्धित उल्लेखों से पता चलता है कि उन दिनों यहाँ जैनों की सख्या पर्याप्त थी। स्थानीय वयोवृद्ध इतिहासप्रेमी बाबू पन्नालालजी कोचर (सभापति, पटना जैन प्रगतिशील सभा) से मुझे मालूम हुआ कि ४० वर्ष पूर्व जैनयतियों (काम चलाउ जैन धर्म गुरु) के उपाश्रय—निवासस्थान चार-पाँच थे, जिनमें से गोविन्दचदजी गोकुलचदजी प्रमुख थे। इनके मरने के बाद उपाश्रयों की सम्पत्ति पर उन्हीं के चेले कहलानेवाले उपासक गृहस्थ अधिकार जमा बैठे। गोविन्दचदजी के यहाँ हस्तलिखित प्रतियों का भी एक अच्छा सग्रह था जो जैन-संस्कृति और विशेषत आयुर्वेद से सम्बन्धित था। आप आयुर्वेद में सिद्धहस्त माने जाते थे। महाराज दरभगा की ओर से आपको मासिक वृत्ति भी मिलती थी। इस सग्रह को पटना के एक जैन सिंह ने कलकत्ता में जाकर बेंच दिया। अहिंसक व्यक्ति के लिये इस सास्कृतिक साधनों को हत्या के अतिरिक्त और हिंसा हो ही क्या सकती है? चाँदी-टुकड़ों के गुलाम ने पटना की ऐतिहासिक सामग्री को सदा के लिए नष्ट कर दिया, क्योंकि, यतियों के सग्रह मैंने कई स्थानों पर देखे हैं, उनका ऐतिहासिक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर मूल्यवान् सूचनाएँ मिलती हैं। हायरे भाग्य! जिनके पूर्व पुरुषों ने कलात्मक प्रतीकों का सर्जन किया, उन्हा की सतान ऐसी योग्य (?) निकली कि ऐसी वस्तुओं को बेच कर वह प्रसन्न हुई?

जैन पुरातत्त्व और पाटलिपुत्र

कोई भी राष्ट्र या अन्य प्रान्त अन्यों के सम्मुख तभी समुचित रूप से समादृत हो सकता है, जब उसके पास कलात्मक सम्पत्ति परिपूर्ण हों। पुरातत्त्व के गंभीर अध्ययन से ही किसी भी नगर की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता की उच्चता का पता चल सकता है। अतः जिस नगर पर कुछ भी लिखना हो उसके पूर्व सर्वप्रथम वहाँ के खंडित अवशेष या वहाँ पर सुरक्षित अन्यान्य त्रुटितांशों का सर्वांगीण दृष्टि से अभ्यास करना चाहिए। पाटलिपुत्र इन दोनों पुरातत्त्व का आकर है। जहाँ कहीं भी आज खुदाई होती है, कुछ न कुछ निकलता ही है। यहाँ भूमि से निकली हुई कलात्मक सम्पत्ति पर्याप्तरूप में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरी पड़ी हैं, जिनपर सुव्यवस्थित अध्ययन ही नहीं हो पाता। जनता इन्हे पाषाण समझकर छोड़ देती है, कुछ समझदार अपने बाग-बगीचों में सजा देते हैं, बस नागरिक कर्त्तव्य की इतिश्री समझिये। पर उन्हे क्या पता कि ये हमारे नगर के सांस्कृतिक इतिहास के अनन्य प्रतीक हैं। हमारा अतीत इन्हीं के कारण चमका था, इनमें एक प्रकार का स्पन्दन है। आज के युग में हम यदि इनकी उपेक्षा कर बैठेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा।

यों तो पाटलिपुत्र के इन खंडहरो पर कोई सहृदय, सूक्ष्मदर्शी बैठे तो आसानी से १००० पृष्ठ लिख सकता है। मैंने अपना क्षेत्र परस्तुत प्रबंध में अत्यन्त सीमित रखा है। अत: पाटलिपुत्र में जो जैन कलात्मक प्रतिमाएँ, मंदिर आदि मिले हैं, उनकी एवं स्थानीय संग्रहालयों में जो सामग्री मेरे विषय से सम्बंधित हैं, उन्हीं की चर्चा करूँगा। पुरातत्त्व सांस्कृतिक इतिहास रूपी भवन-निर्माण में प्रधान साधन है। स्थानीय "पाटिलपुत्र आश्चर्य गृह" और सिटी के अनन्य कलाभक्त दीवान बहादुर श्रीयुत राधाकृष्णजी जालान के संग्रह में जैन-कला के उत्कृष्टतम नमूने विद्यमान हैं। जालानजी का संग्रह मैंने देखा है। वहाँ पाँच अष्टधातु की प्रतिमाएँ तथा चार पाषाण मूर्तियाँ हैं जो सोलहवीं-सत्रहवीं शती की हैं। किसी एक को मंदिर स्थित काष्ठ चौखट के उपरि भाग में रखा गया है जिसके मध्य भाग में जैन-कलश' और चतुर्दश स्वप्न सु दर ढंग से उत्कीर्णित हैं। निःसंदेह यह जैन-मंदिर का ही भाग है। क्योंकि चौदह स्वप्न और किसी भी धर्म के अवशेषों में नहीं मिलते। ये काष्ठ का अलंकरण ओड़िसा का प्रतीत होता है। कारण कि उस पर भुवनेश्वर की शिखराकृति स्पष्ट है। यह १४वीं शताब्दी का ज्ञात होता है। आज भी ओड़िसा के कलाकार काष्ठ को अपना माध्यम बनाए हुए हैं। इनके अतिरिक्त हस्तलिखित ग्रन्थों का संकलन भी अच्छा ही है। कुछ जैन चित्रकला के नमूने हैं, जिनमें संवत् भी लिखे गये हैं। रंग और रेखाओं के विकास की दृष्टि से कलाकारो को चाहिए कि इनका निष्पक्ष मनोभावों से अध्ययन करें।

स्थानीय श्वेताम्बर-मन्दिर के अग्रभाग में विराट् काष्ठ-पट्टिका के ऊपर एक भावपूर्ण, प्रभावोत्पादक वर-यात्रा उत्कीर्णित है। कला की दृष्टि से विदित होता है कि यह मगध के कलाकारों की सौन्दर्य-सम्पन्न कृति है। बिहारियों की घुटनों तक धोती, देह पर अर्धउत्तरीय वस्त्र, सिर पर पगड़ी आदि

विशिष्ट वेशभूषा एवं पालकी की आकृति तथा रथचक्र प्रभृति उपकरणों को देखकर, बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि यह बिहार के शिल्पियों द्वारा शुद्ध खनि कलात्मक प्रतीक के नमूने हैं। यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता है कि यह बरयात्रा किस की होनी चाहिए ? क्योंकि बिहार की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि केन्द्रित करने से विदित होता है कि प्रान्त में घटित घटनाओं में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं जिसका बर-यात्रा से विशेष सम्बन्ध हो। परन्तु, मालूम होता है, यह जैनों के बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की बारात है। अन्य प्रान्तीय शिल्प-स्थापत्य कला में भी इसे स्थान दिया गया है।

पटना सिटी (बाडे की गलीवाले) श्वेताम्बर जैन-मदिर में भी पाल कालीन तीन प्रतिमाएँ वर्त्तमान हैं, जिनमें दो जैन और एक बौद्ध हैं। एक जैन प्रतिमा पर सप्तफणी सर्प की आकृति होने से वह पार्श्वनाथ—जो ऐतिहासिक व्यक्ति थे—का ज्ञान होता है। इस मूर्ति में कुछ ऐसी विशेषता है जो बिहार की कुछेक मूर्तियों को छोड़कर और कहीं भी न मिलेगी। यह जैन प्रतिमा स्पष्टत बौद्धकला से प्रभावित है। कारण कि प्रतिमा पर इस प्रकार जो उत्तरीय वस्त्र पड़ा हुआ है और जिससे दोनों हाथ ढँके हुए हैं वह भगवान बुद्ध की मूर्त्ति के समान ही है। जैन तीर्थंकरों की अद्यावधि जितनी भी प्राचीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं, उन पर इस प्रकार वस्त्रचिह्न कहीं नहीं पाया जाता। जैन स्थापत्यशिल्प के ग्रन्थों में तीर्थंकर प्रतिमा पर वस्त्राच्छादित करने का उल्लेख भी वास्तुशास्त्र में अद्यावधि मेरे अवलोकन में नहीं आया। प्रतिमा के निम्न भाग के उभय पक्ष में त्रिफणयुक्त अधिष्ठातृ अकित हैं। जो धरणेन्द्र और पद्मावती हैं। आभूषणों में हँसुली पायी जाती है। वह गुप्तों के अन्तिम समय के आभूषणों से साम्य रखती है। दोनों की नाक चिपटी होने के कारण नि सन्देह कहा जा सकता है कि इस मूर्त्ति का निर्माण मगध देश में मागधीय कलाकारों द्वारा हुआ था। गुप्तों के अन्तिम समय की लिपि में 'ये धम्मा हेतुप्रभवा' बौद्ध मोटो भी मूर्त्ति के पृष्ठ भाग में अकित है। अत म इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि इस मूर्ति का निर्माणकाल गुप्तों का अन्तिम समय होना चाहिए। प्रतिमा श्याम पाषाण पर उत्कीर्णित है, जो बिहार की खास प्रस्तर है।

उपर्युक्त मूर्त्ति के बाँये भाग में एक श्याम शिला पर भगवान की प्रतिमा खुदी हुई है। जिसके उभय पक्ष में इन्द्र इन्द्राणी चामर लिए खडे हैं। प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ और आध्यात्मिक भावों को लिए हुए है। सौंदर्य की दृष्टि से ऐसी मूर्तियाँ कम देखने में आती हैं। निम्न भाग में उभय ओर वृषभ और मध्य में धर्मचक्र है। प्रतिमा ऋषभदेव भगवान की है। उपरिभाग में देवतागण पुष्पमाला लिए खडे हैं। तदुपरि वाद्यों को अदृश्य हस्त बजा रहे हैं। कल्पवृक्ष की पंखुड़ियाँ हैं। इस प्रकार का अगविन्यास केवल मगध के कलाकार ही बना सके हैं। मगध की बनी प्रतिमाएँ दूर से ही पहचानी जाती हैं। इस प्रकार की प्रतिमाओं के कुछ चित्र तो आ० स० इ० १८२६ के वृत्तपत्र में प्रकट भी हुए हैं। मगध के कलाकारों में जो प्रतिमा या शिल्प स्थापत्य-कला-निर्माण विषयक विशेषता पाई जाती है, वह यह कि वे अपने प्रान्त में प्राप्त पाषाणों का ही उपयोग करते थे और वह भी पूर्ण सफलता के

साथ। उन पर की पालीश आज के सगमरमर के पाषाणों से कहीं अधिक चमकदार है। जैन-मंदिर में एक मुकुटधारी बौद्ध मूर्ति भी अत्यन्त सुंदर और कलापूर्ण है। जिसमें बंदर का चिह्न अंकित है। कुछ धातु प्रतिमाएँ भी हैं, जो प्राचीन और कलापूर्ण हैं।

पाटलिपुत्र आश्चर्यगृह में भी जैनतीर्थंकर और यंत्रों की प्राचीनतम प्रतिमाएँ विद्यमान हैं जिनमें से कुछेक पटना से ही प्राप्त की गई हैं और अवशिष्ट बिहार के अन्य स्थानों से। इन प्रतिमाओं के चित्र भी आश्चर्यगृह से सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं। उन पर कलात्मक विवेचन डालनेवाला साहित्य अभी तक तैयार नहीं हो पाया। पटना जैन-समाज अन्य कार्यों में अपनी क्रियाशीलता का परिचय देने में पश्चात्पाद नहीं रहता, पर, ऐसे सांस्कृतिक कार्यों में न जाने क्यों चुप्पी साध लेता है।

उपर्युक्त पंक्तियों से सूचित होता है कि पाटलिपुत्र का महत्त्व जैनदृष्टि से कितना गौरवपूर्ण है। इतिहासकारों ने अभी तक जैनों की ऐतिहासिक दृष्टि को समझा ही नहीं था। अब भी यदि गंभीर गवेषणा हो तो बहुमूल्य तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीन बिहार का इतिहास ही भारत का इतिहास है; और बिहार के इतिहास का अधिकांश भाग जैन-इतिहास से सुसम्बन्धित है।
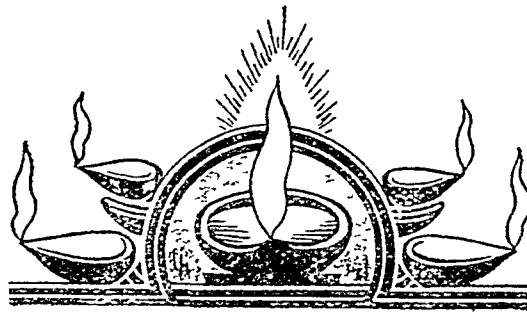
[श्री देवेन्द्रदत्त द्विवेदी]

इतिहास में श्रमण महावीर की महत्ता का मूल्यांकन तब तक सम्भव नहीं, जब तक कि हमें तात्कालिक परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान न हो। श्रमण महावीर का जन्म ई० पू० छठी शताब्दी में हुआ था। इस शती में प्राय उन सभी वादों का प्रादुर्भाव हो चुका था जो कि आगे आनेवाले दार्शनिक विचारों के आदि स्रोत कहे जा सकते हैं। विचार-स्वातन्त्र्य ही दार्शनिक वादों के उद्भव का कारण होता है। ई० पू० छठीं शती में उत्तर भारत में सर्वत्र, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर, गणराज्यों की स्थापना हो चुकी थी। जानपदीय शासन के सम्पर्क में आने के कारण उत्तर भारत की जनता का बौद्धिक विकास हो चुका था। लेकिन, साथ ही, सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण प्रतिस्पर्धा एव कलह का भी आविर्भाव हो चुका था। अत. आवश्यक था कि प्रतिस्पर्धी एकांतवादों में सामजस्य स्थापित किया जाय। श्रमण महावीर के पूर्व से ही आस्तिक एव नास्तिक विचार–धाराओं के स्रोत प्रवाहित हो रहे थे। यह ठीक है कि बुद्ध ने सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की थी। पर , वे इस कार्य में सफल हुए या नहीं, कहना कठिन है। एक तरह उनका सिद्धान्त भी एकांतवादी ही हो जाता है। यदि जैन-आचार की अहिंसा से आँखें मोड़ ली जायँ, तो मानना पड़ेगा कि सामजस्य की स्थापना में जैन-दर्शन अधिक सफल हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि महावीर की समकालिक कौन-सी मान्यताएँ और उन के कौन-कौन से आचार्य थे। यद्यपि जैन एव बौद्ध ग्रथों में उन आचार्यों के नाम आ जाते हैं, पर उनके सिद्धान्तों का विशद वर्णन नहीं मिलता और न उन सिद्धांतों के प्रतिपादक ग्रथ ही मिलते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उन वादों के आचार्य जनता की अत्यल्प सख्या पर ही प्रभाव रखते थे। फलत कालक्रम से उनके सम्प्रदाय स्वय समाप्त हो गए या बौद्ध जैन इन दो महासम्प्रदायों में विलीन हो गए।

हमने जिन अवैदिक दार्शनिको का वर्णन किया है, उन्हें वैदिक दार्शनिक नास्तिक कहते हैं। पर बौद्ध तथा जैन अपने को नास्तिक नहीं मानते। मनु की परिभाषा के अनुसार नास्तिक वह है जो वेदनिन्दक हो—"नास्तिको वेदनिन्दकः।" बौद्ध तथा जैन दोनों ने मनु की उक्त मान्यता को तिरस्कृत करते हुए नास्तिकता की दूसरी ही परिभाषा दी। उनके अनुसार नास्तिक वह है, जो "परलोक की सत्ता न मानता हो अथवा धर्माधर्म, कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का विवेक न रखता हो।" स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि उक्त दोनों वादों की दृष्टि में आस्तिकता आचारमूलक (Ethical) है। मनु की परिभाषा का भी एक उद्देश्य था। बौद्ध, जैन या इनके समकालिक जितने भी दार्शनिक वाद पैदा हुए, उन सब ने याज्ञिक कर्म-कांडों का विरोध किया। और, चूँकि यज्ञों के विषय में यह कहा जा रहा था कि अति-मानवीय सत्ता-विशेष के तोष या अर्चना के लिए पशुबलि दी जाती है, इसीलिए उक्त वादों का अनीश्वरवादी होना अनिवार्य था। यह दूसरी चीज है कि जैन एक वैसे ईश्वर की सत्ता में भी विश्वास करते हैं जो अष्ट कर्मों से रहित हो। परन्तु, यह कल्पना उत्तरकालिकों की है, महावीर की नहीं। और, ऐसा मानने का कारण भी है। महावीर के सप्तभंगी वाद से कहीं भी यह परिलक्षित नहीं होता कि ईश्वर को मानने की आवश्यकता भी है। इसी क्रम में हम स्याद्वाद की ओर निर्देश करना चाहते हैं। स्याद्वाद की परिभाषा है :—

"एकस्मिन् वस्तुनि सापेक्ष्यरीत्या नानाधर्म (अनेक धर्म) स्वीकारो हि स्याद्वादः।"

अर्थात् एक ही वस्तु में अपेक्षाभेद से अनेक धर्मों को स्वीकार करना ही स्याद्वाद है। उदाहरणार्थ एक ही व्यक्ति में पितृत्व या पुत्रत्व आदि भिन्न धर्म को अपेक्षाभेद से स्वीकार करना स्याद्वाद है। राम स्थितिभेद से (अपेक्षाभेद से) बाप और बेटा दोनों हो सकता है। हम ने स्याद्वाद का जिक्र ईश्वरवाद के क्रम में किया है। अतः, हमें उस बिन्दु पर लौट आना चाहिए। स्याद्वाद के अनुसार एक ही पुद्गलत्व (Matter) अपेक्षाभेद से कार्य और कारण दोनों हो सकता है। वस्तुतः स्याद्वाद कार्य-कारण-सम्बन्ध को संदेहवादी ह्यूम की तरह शक्ति-रूपांतरण-वाद (Concr valion of encrgy) की दृष्टि से देखता है। उसकी दृष्टि में कार्य-कारण में सर्वथा अभेद है। कार्य कारण है और कारण कार्य। पर, इस कार्य-कारण-वाद की जड़ में पुद्गलत्व (Matter) विद्यमान है। अतः समझ में नहीं आता कि स्याद्वादी ईश्वर की सत्ता को क्यों कबूल करे। ईश्वर की कल्पना निरर्थक मालूम पड़ती है। यदि यह सच है कि महावीर का जीवन स्याद्वाद का व्यावहारिक रूप था, तो मानना पड़ेगा कि ईश्वर की सत्ता को उत्तरकालिक जैनों ने कबूल किया और सम्भवतः शंकर के मायावाद से घबड़ाकर ऐसा किया गया हो। इसलिए स्याद्वादमंजरीकार हेमचन्द्र सूरि ने—अभौतिक कारण-वाद पर आक्षेप करते हुए कहा:—

कर्त्तास्ति कश्चिद् जगत स चैक ससर्वग स स्ववश स नित्य ।
इमा कुहेवाग् विडम्बना स्युस्तेषा न येषामनु-शासकस्त्वम् ॥

जगत् का कोई कर्त्ता है, एक है, सर्वव्यापी है, स्वतन्त्र है, नित्य है आदि विडम्बनावाक्य हैं। स्याद्वादमंजरी के उक्त श्लोक का यही तात्पर्य है कि वैदिक आचार्यों द्वारा कल्पित ईश्वर की सत्ता निरर्थक है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह ईश्वर जो कि ससार के किसी भी कार्य, नैतिक या भौतिक के नियमन के लिए उत्तरदायी नहीं—उसकी कल्पना की आवश्यकता ही क्या थी? इस प्रश्न का उत्तर ही सिद्ध कर देता है कि ईश्वर की कल्पना उत्तरकालिक जैनों की है। यह ठीक है कि श्रमण महावीर ने आस्तिक तथा नास्तिक दोनों वादों की अतियों का निराकरण किया था। तथापि यह समझ में नहीं आता कि उन्हीं के शिष्यों ने क्योंकर ईश्वर की सत्ता स्वीकार की जिसे कि वैदिकों ने आलोच्य याज्ञिक अतियों का अधिष्ठातृ देव स्वीकार किया था। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि बौद्धों के सामने पीछे चलकर जो कठिनाइयाँ आने लगीं उन्हीं से अनुभव लेकर परवर्ती जैन आचार्यों ने ईश्वर की कल्पना की। परन्तु, ईश्वर को ठीक उसी रूप में, जैसा कि वैदिक मानते थे, स्वीकार करने का अर्थ होता था स्याद्वादियों द्वारा ही स्याद्वाद का खडन। यही कारण था कि स्याद्वादियों की कल्पना से सदैव ईश्वर क्लीव बना रहा। ऐसा मानने का एक और कारण भी है। जैनियों की मान्यता के अनुसार ही जैन-दर्शन को शृंखलाबद्ध करनेवाले उमास्वामी, विक्रम की प्रथम शती में उत्पन्न हुए थे। उनके तत्त्वार्थ सूत्र के पहले की एक भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है जो, जैन दर्शन की कही जा सके। बहुत सम्भव है कि ईश्वर की कल्पना जैनियों ने इसी काल में की।

स्याद्वाद का जो दूसरा पहलू है वह है नया मार्ग। सचमुच ही नया मार्ग आचार के क्षेत्र में बेजोड़ चीज है। जातीय, राष्ट्रीय किंवा अतर्राष्ट्रीय वैमनस्य की समाप्ति के लिये नया मार्ग से बड़ी सहायता मिल सकती है। और यहाँ तो मुक्तकठ से यह बात स्वीकार की जायगी कि महावीर बुद्ध से बहुत आगे बढ़ गये। बुद्ध ने भी कहा था,—

नहि वेरेन वेरानि, समतीध कदाचन
अवेरेन हि यो पस्सन्ति, एस धम्मो सनन्तन

—धम्मपद

तथापि बुद्ध अपने दर्शन में सामञ्जस्यवाद को ठोस आधार नहीं दे सके। उनके सामजस्य-वादी कथन, कोरे उपदेश वाक्य ही बने रह गये। एक जगह उन्होंने कहा था।

अक्कोच्छि म, अवधिम, अजिनि मे, अहासि मं
येच त न उपनह्यन्ति वेर तेस्सुपसम्मति

—धम्मपद

परन्तु, स्याद्वादियों का यह कथन कि कोई भी एकान्तवादी व्याख्या सही नहीं है—एक ही वस्तु में अपेक्षाभेद से अनेकधर्मता स्वीकार की जा सकती है, सुलह के लिए काफी मौका देता है। किसी मानवता की सफलता दूसरों के प्रति उपेक्षा-भाव प्रदर्शन करने में नहीं, अपितु, दूसरों का समादर करने में ही है। गांधी-वाद भी इसी ओर इंगित करता है। यह ठीक है कि परवर्ती जैन दार्शनिकों की जीभ कैंची जैसी नजर आती है। परन्तु, यह कहना गलत होगा कि श्रमण महावीर भी इस चीज के समर्थक थे। इसका प्रमाण नहीं मिलता कि वे अपने विरोधियों के प्रति भी कटु रहे हों। आजीवक तथा बौद्ध, दोनों से उनके शास्त्रार्थ हुए थे। पर, महावीर सदैव ही उनके प्रति सुलह की नीति बरतते नजर आये। श्रमण महावीर का स्याद्वाद उदारतावादी वह उदात्त सिद्धान्त है जो कि अपने विरोधियों को भी बोलने के लिए काफी अवसर देता है। राजनीति में इसे ही जनतंत्र कहते हैं। वैशाली का ज्ञातृवंशधर होने के कारण श्रमण महावीर के लिए यही करना उचित था।

Rajgir In Ancient Buddhist Records

By

P V Bapat, Shantiniketan

सा रम्या नगरी महान् स नृपति सामन्तचक्र च तत्
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत् ताश्चन्द्रबिम्बानना ।
उन्मत्त स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ता कथा
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथ कालाय तस्मै नम ॥

[भर्तृ० वै० ३७]

"That lovely city, that great king, that retinue of his feudal chiefs, that council of the wise councillors by his side, that (harem) of his womenfolk, that group of his proud royal princes, that troop of court-bards and their panegyric—all this has passed into oblivion by the mighty force of Time To that Time we all pay our obeisance "

The truthfulness of the above statement was brought home to me during my visit to Rajgir last Puja holidays (Oct -Nov 1947) What was the glory enjoyed by Rajgir, former Rajagriha, when it was the capital of the mighty kingdom of Magadha, when Bimbisara and Ajatasatru ruled its destiny and when Gautama Buddha and his immediate disciples were there to counsel the rulers, and what is their condition now ? Oh, what a mighty fall !

When I went to that little town of Rajgir, I was immediately reminded of the famous line (verse 408) in the oldest Pali anthology of verses, the *Sutta nipata* (सुत्तनिपात) *Agama*

Rajagaham Buddho Magadhanam Giribbajam, and when I paid a visit to that hollow formed by the mountains on all sides, I found how true was the description of Rajagriha as Girivraja (Pali—Giribbaja)—Rajagriha with the walls of mountains all round. It indeed appeared that during those troublous times when there was always the danger of attacks from petty chiefs round about, the people had to choose for their capitals places which had natural surroundings favourable for easy fortification. Indeed it is surprising that even now after the lapse of 2,500 years, we still see the remnants of the wall of fortification on the southern mountains with its mountain pass near what is now called Bana-ganga.

The whole valley among the mountains is now simply a wild jungle, with a main road traversing the valley north to south, with only a few remnants of the ancient places like the site of the place of confinement of King Bimbisara by his son Ajatasatru and a remnant of late times called Maniyar Matha (मणियार मठ), a reminiscence of Naga-worship, by the side of which another newly prepared road passes east-west. This place must have been at a time the scene of all the activities of a capital city—a metropolitan town, with its rows of houses of big officials, rich merchants, and of beautiful ladies, the pride of Rajagriha, its wide streets over which the king had his official processions of elephants and chariots, the beautiful palaces of King Bimbisara and the harem for his womenfolk. But what is it that now remains of them all ?

Just in the middle of the hollow, the Archaeological Department tells us, lies the site of the confinement of King Bimbisara from which one could see towards the east the Vulture Peak (गृध्रकूट), towards north-east the mountain Vipulagiri, to the south-east Udayagiri, to the south and west Suvarna-giri, and to the north-west Vaibhara. The Pali records incorporated in the commentary on the *Sutta-nitpta* (ii. 382) also mention five mountains : Pandava, Gridhrakuta, Vaibhara, Risi-giri, and Vaipulya or Vipula (पण्डव गिज्झकूट-वेभार इसिगिलि-वेपुल्ल, वाभवानं पञ्च गिरीनं भज्झे). Of these names, three are still being used and it is difficult to identify the remaining with any of the modern names. The Vulture Peak was so called either because the vultures

hovered over the same, or because some two huge boulders which can, with some imagination, even now, be considered to be like two vultures facing each other and resting on their feet, with their necks stretched up This peak is repeatedly mentioned in Buddhist literature, both in Pali and Sanskrit, as a scene of many of the Buddha's sermons It was a favourite peak of Buddha, and a domineering position it occupies overlooking the whole valley round about

The Pali records say in another place (*Majjhima-nikaya, Culadukkhakkhandha Sutta*) that on the mountain Risi giri (Pali—इसिगिलि) there used to dwell Jain ascetics who practised different kinds of penances involving physical torture, or practices of self-mortification such as giving up sitting altogether, and taking to the posture of standing only The Buddha carried on discussions about this with the Jain mendicants who justified their actions by saying that they wanted to end their former sins by these hard practices as prescribed by their teacher, Nirgrantha Jnatri-putra (Mahavira) Even now we see that Rajgir is a place of Jain pilgrimage and that Sonabhandara Caves with Brahmi inscriptions, at the south eastern foot of the hill to the north-west of the valley, were the abode of Jain *munis*, and that on the hills of Vaibhara and Vipulagiri, there are several Jain temples Some Jain inscriptions on stone tablets have been recovered by Shreejut Purna Chandra Nahar from Vipulagiri and they are deposited in the open courtyard of his bungalow at Rajgir

It was in this town of Rajagriha that the two foremost disciples of the Buddha, Sariputra and Maudgalyayana, were, before being converted to Buddhism by Asvajita, staying with their teacher Sanjaya

In one place (*Jataka*, vi 271, *Vidura-Pandita-Jataka*) Rajagriha is also called the capital of Angas, thus probably suggesting that Magadha was subjugated by the Angas or that both the countries formed sometime one kingdom under one common king

There is also the mention that Gautama Buddha, when he was proceeding to Buddha-Gaya came to Rajagriha where he met Bimbisara who saw him going towards the mountain Pandava (पण्डव अभिहारेसि,
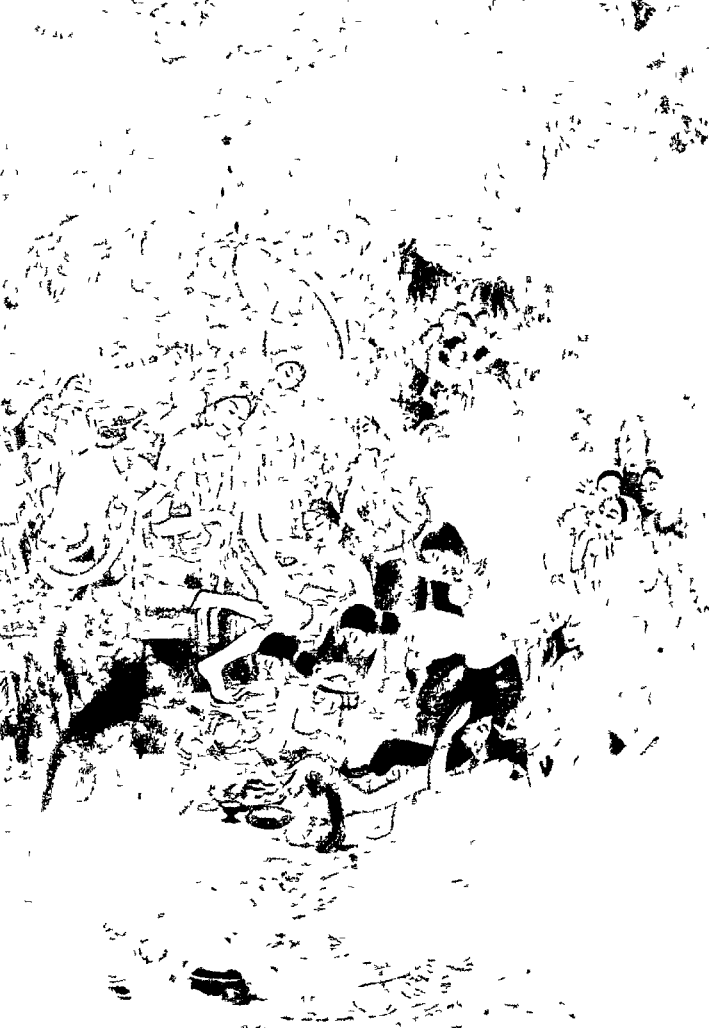
Sn. 408). The king sent special messengers to him and on hearing the purpose for which he left his home, namely his search for the happy state of Nirvana, he took promise from him that he would pay a visit again to the king after he attained his goal. And Gautama Buddha did fulfil that promise. He came back and stayed at Yastivana or Latthivana as mentioned in Pali records, and the king later donated to him the Bamboo Grove where he stayed in a place called Kalandaka (or Kalantaka-) nivapa—feeding ground for squirrels or Kalantaka birds). In some later records, this place is also mentioned as Karandaka-nivasa. This place was outside the then city which was situated in the valley and is described as a calm and quiet place, neither too near nor too far from the city and convenient to go to and come from. This site can still be located on the western side of the road, only two furlongs to the north of the hot springs. There are still traces of the well-laid-out, regular, quadrilateral surface of low land, which may be the site of a tank or the place where food for squirrels (Kalandaka) was growing.

The Pali tradition about the name Kalandaka-nivapa is that a king of Rajagriha had gone to his garden for a picnic. The king, when he felt fatigued, went to the foot of a tree in the garden and fell asleep. Some conspirators who were inimical to the king thought this to be a good opportunity for their devilish plan of taking the life of the king and they were planning to put poison into the ears of the sleeping king. But this attempt of theirs was foiled by the squirrels on the tree. They made a chattering noise which unexpectedly awakened the king. The king came to know the whole matter and in gratitude to the squirrels who spared him his life, he donated a piece of land which later was used for sowing food for squirrels

The Buddhist records also mention the river Tapoda and a monastery called by the name of Tapodarama. This Tapoda river seems to be the same stream of hot-water (Tapoda=Tapta-udaka) that flows from the well-known hot springs of Rajgir. Now it flows as a small water-conduit down the foot of the hill Vaibhara, the stream which is now often diverted to the fields in a neighbouring village. Pali records mention mendicants going to this river Tapoda for a bath (*Samyutta-*

nikaya, i 8ff, मज्झिमनिकाय iii 192ff, and जातक ii 56) Samrirddh (Pali—Samiddhi) is described as going to this stream, and while he was standing on the bank letting his body dry up, he was asked certain questions by a deity In another place, (*Anguttara-nikaya*) A V 196ff) we are told of Ananda, a personal attendant upon the Buddha, having a discussion with another mendicant Kokanuda, on the bank of the same stream The mythological explanation of the heat of the water of this stream was that it passed between two hells which lent their heat to the water and which were supposed to be under Rajagriha

The monastery Tapodarama, not far from Rajagriha, is also mentioned as a place of residence of Buddhist-monks

On the northern slope of the mountain Vaibhara, not far from the farthest existing temple of the Jainas (only a furlong down the northern slope) is shown a cave which, they say, corresponds to Saptaparni Cave where the Buddhists had the meeting of the First Council (सगीति) after the death of the Buddha But the cave is so small that it can not be the place of a meeting where five hundred monks had participated

While dwelling on this point, it may be mentioned that Hiouen-thsang, Chinese traveller in India in the seventh century of the Christian era makes mention of hot springs in Rajgir as well as hot springs near Rajgir, the former he locates in the old city of Rajagriha to the south-west of Yasti-vana, while the latter he locates on the side of Pi pu lo (Vipula ? Should this be Vaibhara ?) He also adds that formerly there were as many as five hundred hot springs, but that in this time there were only about ten He further says that so many patients used to flock to the hot springs where, by taking a dip, they got cured of various diseases

Rajgir is even now considered to be a health resort, particularly for rheumatic patients, and even now we find scores of rheumatic patients taking bath under the hot stream pouring out of the stone spouts Some patients get completely cured, while others may not find it quite useful, the cure depending upon the nature of the disease

We are also given some information in Pali records (सामञ्ञफलसुत्त of दीघनिकाय) of King Ajatasatru, who had assumed the throne by killing his father Bimbisara, paying a visit one night—a full-moon night coming at the end of the rainy season, to the Buddha, who was residing at the Mango-garden of the famous physician, Jivaka, an expert in the diagnosis of diseases. That night, while he was enjoying the bright full-moon light on the terrace of his palace, he was discussing with his courtiers how he could spend that lovely night. Among the courtiers there were some who were the believers of one or the other of the six famous teachers, who appear to be elder contemporaries of Gautama Buddha, namely Purna Kashyapa, Maskarin Gosala, Ajita-Kesakambalin, Pakudha (? Kakuda) Katyayana, Sanjaya Vairatiputra, and Nirgrantha-Jnatriputra. Each of them tried to put the case of his own teacher and persuade the king to pay a visit to him. Jivaka, the court-physician, put the case of his teacher, Buddha, before the king and finally persuaded him to pay a visit to the Buddha. The king immediately ordered the elephants to be got ready for his party and proceeded to the Mango-garden of Jivaka. While he was proceeding to that place, he came to the dark places in the Mango grove where the rays of the moon could not penetrate. That place appeared to him to be so dreadfully quiet that a suspicious thought arose in his mind whether Jivaka was enticing him away to a place where he would betray him to his enemy, and Jivaka had a hard time satisfying the king. The king further asked, "With how many followers is the Buddha staying in this garden ?"

"With twelve hundred and fifty" promptly replied Jivaka.

"How is it then that we hear no noise at all, although we have come so near the garden ?" querried the king.

"Because the Buddha and his followers are lovers of quietude and never indulge in noisy ways of life," replied Jivaka.

"Oh, would that my son, Udayibhadra had possessed these quiet ways of life !" exclaimed the king.

The king then with his retinue of five hundred women went on foot to the place where the Buddha was and there followed a long

conversation between the king and the Buddha on the visible benefits of holy life as a mendicant (श्रामण्य-फल) This dialogue is considered to be very important by all Buddhists and we have now different versions of the same A fragment of a sanskrit version, per haps incorporated as a part of Vinaya, has been recently discovered by the writer of this paper Tibetan Vinaya does include this Sutra (See Rockhill's *Life of the Buddha*, pp 95 106) There are as many as three versions in the Chinese Tripitaka, thus proving the importance of this Sutra

The Tibetan records also mention the details (See Rockhill's *Life of the Buddha*, pp 90 91) as to how Bimbisara was confined to jail in Rajagriha by his own son, Ajatasatru, and as to how he was deprived of his life by being denied food or drink From the window of his room of confinement, Bimbisara had the only consolation of having a sight of the Vulture Peak where the Buddha had gone to stay But, later on, he was denied by Ajatastru even this consolation by having that window walled up

Before Ajatasatru was converted by the Sramanya-phala sutra referred to above, he was under the evil influence of Devadatt, a rival and a cousin of the Buddha Several times, Devadatta tried to kill the Buddha by having a huge boulder pushed down the hill upon the Buddha or by letting loose the king's elephant Dhanapala against the Buddha, but the latter had always had a miraculous escape Some of the places of the miracles are indicated outside the old town in the valley

Like the Bamboo Grove outside the old town is another place Sita vana, where the Buddha met for the first time a rich merchant from Sravasti, Sudatta by name, who later on came to be known, on account of his liberal gifts to the poor, Anatha pindada In that grove there was a cemetery which made the place rather dreadful This place may be identified with the place of *ghats* (a flight of steps) on both the sides of the rivulet, Sarasvati by name, near its sharp bend, to the west of the fort of Ajatasatru

After Ajatasatru came to the throne, it appears that he extended the city of Rajagriha outside the valley and had a new fortress

built outside the city. The remnants of the fortress which can be seen from the railway station of Rajgir are still to be seen in the form of blocks of unhewn flint-stones piled, one upon the other, and we fail to get any records of the same in the oldest Pali literature, though the Chinese traveller, Hiouen-thsang refers to several places built by Ajatasatru outside the old town.

In another Pali Sutra. (Brahmajala-sutra of Digha-nikaya) we also have a reference to the high road between Rajagriha and Nalanda which, later commentaries tell us, was only at a distance of a *yojana* from the former. This is confirmed by the modern Union Road which takes us to Nalanda after going over a distance of 7·8 miles (=a Yojana).

Thus it will be seen from the earliest Buddhist records in Pali that the history of the town goes back at least to the time of the Buddha, some 2,500 years ago, and that it once had the honour of being the capital of the mighty kingdom of Magadha. But what is its position now ?

Cannot any attempts be made to restore the pristine glory of the town or at least reveal to the public, by doing excavation work on an extensive scale, within the valley itself of old Rajagriha? The jungle which has grown over the valley may be cleared and the Archaeological Department may be provided with the necessary funds for doing excavation-work on a large scale as is done at Nalanda.

Can we not now expect our new national Government at Delhi or the provincial Government at Patna to do anything in this direction ? What will be done by the Government headed by Sj. Shri Krishna Sinha in whose honour this humble tribute is being offered by the writer to the memorial volume to be published as a souvenir of the Diamond Jubilee recently celebrated by the people of Behar ?

Shantiniketan;
30-12-47.

———

A Pre-Plassey British Project for the Conquest of Bengal

BY

Dr Kalikinkar Datta, Patna College, Patna

For many years some adumberated the theory of unmeditated and unconscious development of the British Empire in India Seeley wrote in his book entitled *The Expansion of England* (first pubished in 1883) "Our acquistion of India was made blindly Nothing great that has ever been done by Englishmen was done so unintentionally, so accidentally as the conquest of India ***** in India we meant one thing, and did quite another " Mr Ramsay Muir, holding a similar view (*Making of British India*, published in 1915), observes "The most astonishing and paradoxical thing of all in regard to this Empire is that the traders who made it never at any time planned or wanted it They struggled against it They regarded it as a burden to be avoided, a distraction from their true business of buying and selling Their chief representatives in India, with few exceptions, shared this view **** never was Empire less the result of design than the British Empire of India "

A close and careful scrutiny of some records of the English East India Company, however, clearly proves the unsoundness of this view Though commerce was originally and for long their chief object in this country, yet there is no doubt that they were actuated by political designs, even before the mid-eighteenth century revolutions, with a view to safeguarding their interests or enhancing their own influence on the rapid dissolution of Mughal authority Indeed, India's rapidly accelerated national bankruptcy had already whetted political ambition of the three major European Companies, the Dutch, the French and the English From the middle of the eighteenth century the English were successful over the others in realising it and were able to build up gradually a dominion in this country

It is true that the Court of Directors apprehending that growing political activities of the English in India would prejudice trade occasionally cried 'halt'. Thus after Buxar and Diwani they wrote to the Council in Calcutta on the 17th May, 1766 : "Bengal, Bihar and Orissa should be regarded as the utmost bonnds of our Political Views or Possessions." Clause 34 of Pitt's India Act, 1784, provided that "to pursue schemes of conquest and extension of dominion in India, are measures repugnant to the wish, the honour and policy of this (British) nation", and enjoined upon the Company to follow a policy of non-intervention in Indian political matters.

But it would be incorrect to say that the "chief representatives" of the English Company in India were absolutely unmindful of political interests in India. When the verdict of Plassey made British supremacy over Bengal an accomplished fact, Clive, fully consicous of its importance, suggested in his letter to William Pitt, dated the 7th January, 1759 : "But so large a sovereignty may possibly be an object too extensive for a mercantile Company; and it is to be feared they are not of themselves able, without the nation's assistance, to maintain so wide a dominion. I have therefore presumed, Sir, to represnt this matter to you, and submit it to your consideration, whether the execution of a design, that may hereafter be still carried to greater lengths, be worthy, of the Government's taking it into hand. I flatter myself I have made it pretty clear to you, that there will be little or no difficulty in obtaining the absolute possession of these rich Kingdoms; and that with the Moghul's (Mughal Emperor's) own consent on condition of paying him less than a fifth of the revenues thereof." Warren Hastings strongly advocated extension of British sovereignty in Hindusthan. "You are well acquainted, however," he wrote in his letter to Alexander Elliot, dated 13th January, 1777, "with the general system which I wish to be empowered to establish in India, namely to extend the influence of the British nation to every part of India not too remote from their possessions, without enlarging the circle of their defence or involving them in hazardous or indefinite engagements, and to accept of the allegiance of such of our neighbours as shall sue to be enlisted among the friends and allies of the King of Great Britain." Even the neutrality sought

to be enforced by Pitt's India Act was not strictly followed in India Lord Cornwallis, who thought that it was "attended with the unavoidable inconvenience of our (the Company's) being constantly exposed to the necessity of commencing a war without having previously secured the assistance of efficient allies", violated it in spirit, if not in letter

All this refers to the post-Plassey period But even before Plassey at least one Englishman secretly contemplated a political revolution in Bengal to the advantage of the English He was Caroline Frederick Scott, Engineer General of the English East India Company in the East (1752-54), who also prepared a comprehensive plan for strengthening the fortifications of the English in Calcutta Mr Scott tried his best "to procure a perfect knowledge of that Court (Nawab's Court at Murshidabad) government, country, and people (of Bengal)" He made intimate contact with Omichand, Rajah Tilakchand of Burdwan and Khwaja Wazid, a principal merchant of Bengal, and felt that it would be possible to seize power by effecting a change in the Government of Bengal Mr Scott's secretary, Mr Charles F Noble, tells us as follows in one of his letters to the Select Committee at Madras, dated 22nd September, 1756 —

"By what Colonel Scott observed in Bengal the Jentue (Hindu) rajahs and inhabitants were very much disaffected to the Moor (Muhammadan) Government and secretly wished for a change and opportunity of throwing off their tyrannical yoke And was of opinion that if an European force began successfully, they would be inclined to join them if properly applied to and encouraged but might be cautious how they acted at first until they had a probability of success in bringing about a revolution to their advantage

"I look on old Omichand as the man in Bengal the most capable of serving us if he has a mind to it though considering the ill usage he has often received from the gentlemen of our nation there (who have generally sacrificed the Company's welfare and nation's honour and glory to their private piques and interest) we can scarce hope for his favour without the hopes of retrieving what he

may have lost by this unhappy event and being better used in future may prevail with him. Whether he had any hand in the present affair or not I cannot say; he was intimate with the late Nabob (Alivardi) and all the Court.

"There is a man named Nimo Gosseyng the High Priest of the *Jentues*, who has a great influence among the *Jentue rajahs* and with a particular caste of people who go up and down the kingdom well armed in great bodies of the Facquier or religious beggar caste, who might possibly be of service to us if they could be engaged to our interest, which by Nimo Gosseyng's means I have particular reasons to believe might be done.

"The priest gave Colonel Scott very good information and advice relating to the affairs of that country and told him he could bring 1,000 of these men to assist the English in four days warning when needful. The Colonel did him some service while he lived and I dare say he has a respect for his memory to this day."*

The Chakradhvaja Flag and the Seal of Free India

By

Dr Vasudeva S Agrawala, Superintendent, Central Asian Museum, New Delhi

The design adopted as the National Seal of Free India is taken from the Lion-Capital of the Maurya Emperor Asoka, who ruled in the 3rd century B C This, in a way, connects modern India with the traditions of her glorious past, and the design is doubly welcome as the fruit of the creative genius of one of India's greatest sons, who not only unified the whole country under his benevolent policy, but also was the first and the last emperor in history to conceive the unity of Asia on the widest humanitarian basis

The original Lion-Capital is now placed in the Sarnath Museum near Benares It surmounted a stone pillar raised by Aaoka at the spot hallowed by the Buddha preaching his First Sermon, a place of universal significance in the religions history of Buddhism The Lion-Capital supported at the top a big Dharmachakra- wheel of Kaw, which is a symbol of Buddha's religion and also of the Universal Law that the teachings of the master typified Although that symbol no longer exists the Capital in its present form consisting of four powerfully built lions, seated back to back and placed on a round abacus is a wonderful specimen of design and execution On its drum are shown four smaller Dharmachakras, alternating with four animals including a bull, a horse, an elephant and a lion The Dharmachakra on the drum has been adopted as the emblem on India's National Tricolour Flag, which for this reason may suitably be named as the *Chakradhvaja* i e "The Wheel Flag" and this name would be in the traditions of the other ancient flags of India, like the Garudadhvaja of the Gupta period

The Lion-Capital with its various elements is symbolical of a great idea, viz., the emergence and the firm establishment of the Rule of Law over Force. The seated lions replete with great energy, represent dominant power, which inheres in the nation, but which stands in need of being harnessed and integrated for achieving universal happiness that is the outcome of righteousness. The four animals on the drum are typical Indian animals, representing different qualities of human character and are drawn as showing great movement, to indicate the principle of dynamic action and energisting of the people in their newly awakened condition. The smaller Dharmachakras integrated in the designs of the drum are intended to emphasise in as obvious manner the fundamental unity that uuderlies the diversity characteristic of Indian civilization. The basic note of India's national structure as can be seen through the ages has always been an emphasis on unity and accord transcending the varieties of race, religion, language and culture. The repeated symbol of the four smaller Dharmachakras brings out this basic oneness in the most attractive manner and the artist who conceived of repeating the wheel pattern to alternate with the different animals deserves the highest praise for visualising a great idea and executing it with consummate skill.

Victory to the Great Chakradhvaja Flag of India !
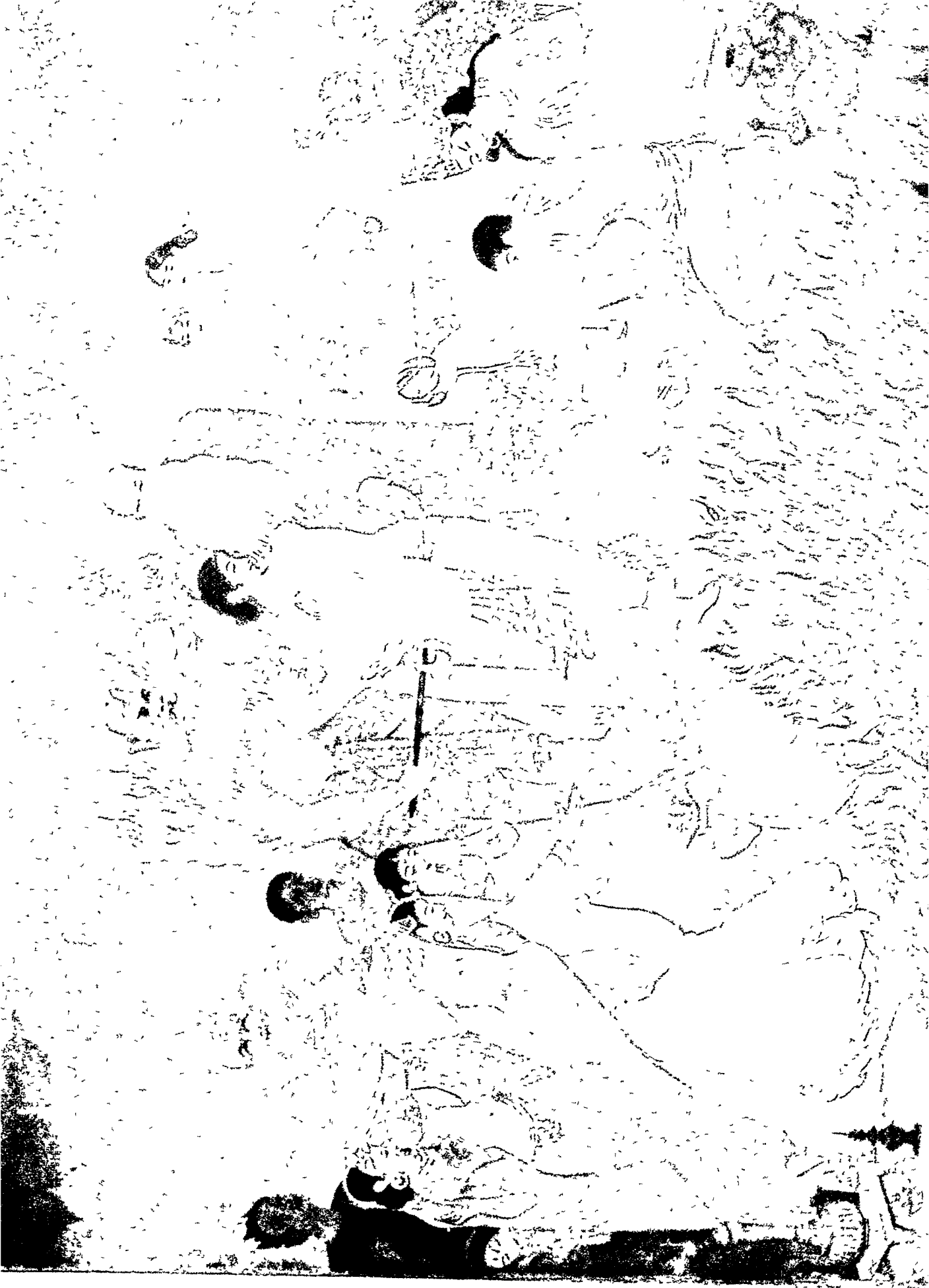
तीन कविताएँ

हलवाहा

[श्री रामसिंहासन सहाय मुख्तार "मधुर"]

हँसने लगीं सुनहली किरणें दसो दिशाएँ लाल हुईं,
चलने लगा तुम्हारा हल फिर धरती आज निहाल हुई,
तुम दुनिया के भाग्यविधाता विधना को किसने देखा,
हल के फल से खींच रहे हो कैसी किस्मत की रेखा।

बैलों की घंटी रुन-झुन, क्या मन ही मन में गाते हो,
'आव-आव' कहकर तुम कब से सुख-सौभाग्य बुलाते हो,
बोते हो जो बीज उसी से राजा के घर मोती है,
इन खेतों की हरियाली में राजलक्ष्मी सोती है।

ऐ राजाओं के राजा, तकदीर तुम्हारी क्यों छोटी,
जीवन में भर-पेट अभी तक कभी न पाई जो रोटी,
दोपहरी में घरवाली वह लाती है रूखी-सूखी,
तुम मरभूखे देख रहे हो, क्या लाती है मरभूखी।

इन खेतों में हल चलता है घर में चक्की चलती है,
हलवाहिन अरमान पीसती और कलेजा मलती है,
गाती है जतसार पीठ पर व्याकुल बच्चे रोते हैं,
पता नहीं करुणा-निधान भगवान कहाँ पर सोते हैं ?

हलचल, हलचल, हलचल, हलचल, प्रतिपल उथल-पुथल हाहा,
एक बार इस हल से धरती आज उलट दे हलवाहा,
फिर दुनिया देखे हलवाहिन घर में मालामाल हुई,
हँसने लगीं सुनहली किरणें दसो दिशाएँ लाल हुईं।

दिल्ली कितनी दूर ?

गोली गरज उठी तेरे चालीस कोटि की क्या हस्ती है ?
बोली परवानों की टोली मर मिटने म भी मस्ती है,
वह अन्तिम बलिदान हमारा इम्फल का मैदान हिला था,
उत्तर का हिमवान हिला था, सारा हिन्दुस्तान हिला था,
रजकण में कितने सोये हैं सैनिक चकनाचूर ?
सपने में सिसकी लेते हैं, दिल्ली कितनी दूर ?

सूमसनन चलती पुरवाई, सेनापति का नाम न पूछो,
कोहनूर की क्या कीमत है, आजादी का दाम न पूछो,
आज कण्ठ से कण्ठ मिलाओ, अमर शहीदों की जय बोलो,
लाट किला मीनारों वाली, दिल्ली का दरवाजा खोलो,
भीम माँगता गदा, द्रौपदी माँग रही है चीर,
बापू, आज लुटा दो झोली दो अर्जुन को तीर।

सदियों से हम उजड़ गए हैं, फिर से देश बसाना होगा,
घर – घर राजा, घर – घर रानी ऐसा राज चलाना होगा,
नील गगन कितना ऊँचा है पुष्पक से फिर हम साधेंगे,
सागर में जलयान हमारे सप्त सिन्धु को फिर बाँधेंगे,
आज देश आजाद हो गया, हम किसान मजदूर,
दिल्ली ही में पूछ रहे हैं, दिल्ली कितनी दूर ?
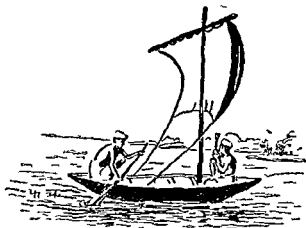
मेरा घर

पूरब मुसलमान का घर है करता है गाड़ीवानी,
पुरखों की तलवार छोड़कर भूल गया है पैठानी,
कर्जे में है मियाँ, बीबियों की आदत सुलतानी है,
कानों में पीतल की वाली, अब तक नूरजहानी है।

पश्चिम लाला का घर भी गत गौरव का अभिमानी है,
कहते हैं इनकी कलमो में तलवारों का पानी है,
इनकी गर्दिश भी लैला - मजनू की एक कहानी है,
ये सरकारी नौकर इनकी बीवी नकली रानी है।

उत्तर उस काछी का घर है, रहता है हरियाली में,
उसका खून उतर आया है उन फूलों की लाली में,
दुख ही दुख में सुख माने हैं, सुख में दोनों प्राणी हैं,
ये मचान पर सोनेवाले इन्द्र और इन्द्राणी हैं।

दक्खिन हलवाई का घर है मिलती यहाँ मिठाई हैं,
देखो इन चटोर बच्चों की आँखें क्यों ललचाई हैं,
अरे गाँव के सेठ वणिक् तू देता इन्हें उधार रहे,
दोनों हाथ लुटाता जा, अक्षय तेरा भंडार रहे।

इसी वीच की पुण्यभूमि पर नन्हा - सा घर मेरा है,
महलों की परवाह नहीं है, कवि का रैन वसेरा है,
वाहर नन्हीं-सी फुलवारी गमक रहीं मेरी गलियाँ,
पथिक इसी पथ से आते हैं स्वागत में खिलती कलियाँ।

इस घर में बचपन बीता है अबतक प्यार वरसता है,
मेरे बच्चों में मेरा प्रभु हँसता और विहँसता है,
सुखी रहे 'श्रीधर' 'गिरिधर' यह सुखी रहे 'उर्मिल' विटिया,
पथिक म्हारा स्वागत हो आवाद रहे मेरी कुटिया।

गीत

[श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी']

मुझ से स्वर का दान माँग लो,
स्वर के लिए तीर-से तीखे चुभनेवाले गान माँग लो।

जग का कर्णधार भी भूले,
डाँड कहाँ, पतवार कहाँ है,
कफन फाड कर मुर्दे बोले—
दो, मेरी तलवार कहाँ है!

इन गीतों के लिए अमरता का मुझ से वरदान माँग लो।

मंजिल दूर, थक गया राही,
गति अवरुद्ध हो गई, हारा,
दूर, दूर—वह बहुत दूर है
उसका लक्ष्य, आह, ध्रुवतारा।

उखड़ गई जो साँस पथिक, मुझ से आँधी तूफान माँग लो।

हट कर देगा राह हिमालय
झुक कर गगन चरण चूमेगा,
यह भूगोल तुम्हारी गति के
साथ-साथ सादर घूमेगा।

झुके न, चूर भले ही हो, ऐसा मुझ से अभिमान माँग लो।
मुझ से स्वर का दान माँग लो।

———

स्वतन्त्रते !

[पंडित केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' एम० ए०]

१

जय हो, जय हो ! हे ज्योतिर्मयि !
जय हो सदा तुम्हारी ।

अग - जग के मग में मङ्गलमय !
तुम आलोक बिछाओ ;
कनक – रश्मियों से छू-छू कर
सोये प्राण जगाओ ।
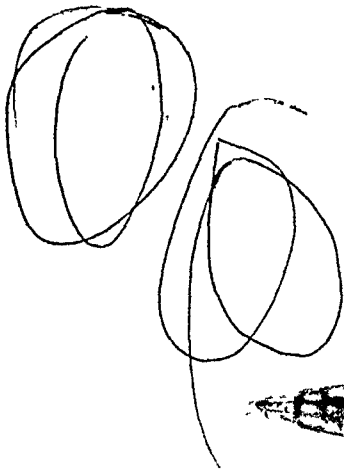
अमृत वहाँ बरसाओ, जलती
जहाँ प्रलय-चिनगारी ;
जय हो, जय हो, हे ज्योतिर्मयि !
जय हो सदा तुम्हारी ।

किसमें शक्ति कि तेज तुम्हारा
हे अमिताभ ! सँभाले ;
तुम त्रिकाल के अंध - तिमिर में
दीप जलाने वाले ।
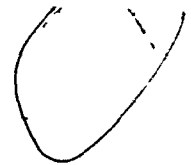
धरती के धन, गौरव नभ के
बल निर्बल के भारी ;
जय हो, जय हो, हे ज्योतिर्मयि !
जय हो, सदा तुम्हारी ।

२

आती हो तुम शोणित के पथ से चलकर मदमाती
इसीलिए तो रक्त दिया हमने छिदवाकर छाती
आती हो, कटक-पथ से घूँघट में रूप छिपाये
इसीलिए तो तन अपना हँसकर हमने छिदवाये

आती हो तुम झंझा के रथ पर चढ़कर वरदानी
इसीलिए झेले हमने सौ-सौ प्रहार तूफानी
आती हो तुम विद्युत की-सी असि की झंकारों में
आती हो तुम कुन्द हास-सी विष की बौछारों में

चिर-कुमारिके ! आती हो तुम बन पौरुष की ज्वाला
आती हो जैसे आती नभ में नव जलधर-माला
आती हो तुम सृजन-सिंधु की चल मदघूर्ण लहर-सी
आती हो तुम किरणोदय के रक्त ललाम प्रहर-सी

आती हो जैसे आती है महातेज की छाया
इसीलिए तो जीवन को हमने जलना सिखलाया
और आज तुम आकर मेरे घर के बीच खड़ी हो
कहूँ कि तुम हो सत्य या कि कोई कल्पना-लड़ी हो

तुम आई, पर इस मन्दिर में छाया घोर अँधेरा
ऐसा लगता है कि हाय ! अब भी है दूर सवेरा
तुम आई पर अमृत-पात्र लुट गया, हुआ घर सूना
तुम आई, पर सुख के बदले हुआ हाय ! दुख दूना

किन्तु विभा का पुत्र खड़ा है अब भी अटल-अचल-सा
अंग-अंग में सुलग रहे हैं तेजोदीप्त अनल-सा
शीश-दान का पर्व लहू के शत-शत दीपक जलते
देवि ! निहारो अंगारों पर वीरव्रती हैं चलते

स्वतन्त्रते !

मरण अ की ज्वाला बलिदान न रुकनेवाला
सर्वनाश के सम्मुख भी अभिमान न झुकनेवाला
खड़े स्तब्ध चट्टान – धार की गति बढ़ती जाती है
धार कँपती ज्योति प्रखर कोई कढ़ती जाती है

चुप निहारता व्योम नियति अपनी ही चिता सजाती
तम की चादर छेद तुम्हारी रश्मि – राशि मुस्काती
चलें अनल के तीक्ष्ण तीर – जलायन न रुकनेवाला
सर्वनाश के सम्मुख भी अभिमान न झुकनेवाला

उन प्रण वीरों की बलि को जीवित त्योहार बनाना,
देश–प्रेम के ओ दीवानो ! उनको भूल न जाना ।

जग करता आह्वान वारुणी का वे विष अपनाते,
दुनिया सुख की भीख माँगती वे सर्वस्व लुटाते,
रहती उनमें शक्ति धरा का वैभव ठुकराने की,
मिट्टी का लघु गात लिये वे लपटों में लहराते,
आततायियों को विचलित करती उनकी हुंकारें,
प्राण फूंकती चलती मुरदों में उनकी ललकारें,

समय – सिन्धु ने इन बहते शूलों का शासन माना,
देश – प्रेम के मतवालो ओ ! उनको भूल न जाना ।

इन मीनारों की नीवों में उनकी लाशें सोईं,
नेतृत्वों की जड़ें गई उनके लोहू से धोईं,
आजादी का भवन उठ रहा उनके उत्सर्गों पर,
जिसकी ईंट–ईंट में उनकी कुचली साधें खोईं,
चलो चलें हम उनके घट पर सान्ध्य प्रदीप जलायें,
उनके खूँ से सिंचे पथों पर—गलियों पर मंडरायें ।

पूरा हुआ न अभी हमारी प्रतिहिंसा का बाना,
देश प्रेम के ओ मतवालो ! उनको भूल न जाना ।

उन प्रण वीरों की बलि को जीवित त्योहार बनाना,
देश-प्रेम के ओ दीवानो ! उनको भूल न जाना।

जग करता आह्वान वारुणी का वे विष अपनाते,
दुनिया सुख की भीख माँगती वे सर्वस्व लुटाते,
रहती उनमें शक्ति धरा का वैभव ठुकराने की,
मिट्टी का लघु गात लिये वे लपटों में लहराते,
आततायियों को विचलित करती उनकी हुँकारें,
प्राण फूंकती चलती मुरदों में उनकी ललकारें,

समय - सिन्धु ने इन बहते शूलों का शासन माना,
देश - प्रेम के मतवालो ओ ! उनको भूल न जाना।

इन मीनारों की नीवों में उनकी लाशें सोईं,
नेतृत्वों की जड़ें गई उनके लोहू से धोईं,
आजादी का भवन उठ रहा उनके उत्सर्गों पर,
जिसकी ईंट-ईंट में उनकी कुचली साधें खोईं,
चलो चलें हम उनके घट पर सान्ध्य प्रदीप जलायें,
उनके खूँ से सिंचे पथों पर—गलियों पर मडरायें।

पूरा हुआ न अभी हमारी प्रतिहिंसा का बाना,
देश प्रेम के ओ मतवालो ! उनको भूल न जाना।

बि र-केसरी अपने परिवार के बीच

बिहार-केसरी के ज्येष्ठ पुत्र

श्रीशिवशंकर सिंह

कीर्त्ति

[श्री केसरी]

[१]

शुभे ! बचा लो आर्य-वंश को कलि-कल्मष-माया से
शुभे ! छिपा लो परमहंस को महानाश - छाया से

स्वर्ण-पात्र में लिए वारुणी हाव - भाव की रानी
इस नगरी की गली-गली में ठगिनी एक पुरानी
कंचन और कामिनी के काँटे पर तोल रही है—
जो पौरुष के पुंज मनुज का जीवन और जवानी !
कुछ विलास की तृषित सेज को अपना अमृत पिला के
कर्म-न्यास के बीहड़ वन में कुछ निज ज्योति गँवा के
अंत मरण की चिर प्रदीप्त भट्ठी में इंधन बनकर—
मिले शून्य में—पृथ्वी पर मुट्ठी भर राख उड़ा के !
महानाश के गरल-कुंभ पर मधु के ये कुछ छींटे
नोच-खसोट किया करते जिनके हित मानव-चीटे
कैसी यह छलना बलीयसी ! अरे, स्वार्थ से अंधो !
जिन्हें समझते तुम चिंतामणि वे हैं पत्थर ईंटें !

शुभे ! बचा लो गरलमयी इस छलना, इस माया से
शुभे ! छिपा लो भरत-वंश को महानाश-छाया से !

[२]

पली जहाँ परमार्थ-अंक में देश यही वह प्यारा
भूल न जाना यही तुम्हारी आँखों का 'ध्रुवतारा'
यही यशोधन एक तपी ने अमरों की नगरी से—
भूल न जाना गंगा की लहरों पर तुम्हें उतारा !
तुम त्रिकाल के महासिंधु पर फैली जमी गगन-सी
जिसके अंतराल में सदियाँ उर्मिल आवर्त्तन-सी

तभी हमी ने कालजयी पौरुष की अमर कथाएँ—
लिखी तुम्हारे वक्षस्थल पर सूर्य सोम-उडु-गण-सी
जीवन-पथ पर चला हमारा संस्कृति-रथ जब बाँका
सदियों के विशाल अंतर से जिसे धर्म ने हाँका
भूल न जाना देवि! उन्हीं लीकों को पकड़ चलीं तुम—
और तुम्हारा गौरव जग ने उसी चिह्न पर आँका

अरी मानिनी! कौन वस्तु वह कौन रत्न वह प्यारा
जिसे न हमने दिया तुम्हे बस पाकर एक इशारा
और कहें क्या—जीते जी हड्डियाँ हमी ने दे दीं—
देवों के कातर स्वर में जब तुमने हमें पुकारा।
और आज भी देवि! हमारा एक तपी मृत्युञ्जय
हँस-हँस अपना खून दे गया तपःपूत ज्योतिर्मय
इसीलिए कि समस्त विश्व में देवि! तुम्हारे स्वर में—
एक बार फिर उठे कीर्ति-कामी भारत की जय-जय।

और आज भी देवि! हमारे अगणित कर्म-तपस्वी
अपने को निःशेष दे रहे लोक हिताय मनस्वी।
भूल न जाना देवि! आज भी इस प्रपंच के युग में—
सत्य प्रेम के पथ चलती यह ऋषि-संतान यशस्वी

शुभे! हिंद पर रहे तुम्हारे वरद करों की छाया,
और कभी छू सके न हमको स्वार्थ आसुरी माया।
अचल धवल महिमा मंडित हिम-गिरि-सी खड़ी रहो तुम,
और सदा निर्मल गंगा-सी रहे हमारी काया।
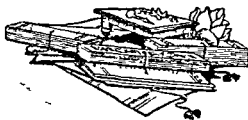
आदर्शों का दीपक

[श्री बच्चन]

जब स्वर्गलोक में पहुँचे बापू तन तज कर
भगवान बुद्ध, ईसादिक पावन पैगंबर—
सब आए उनके पास पूछने को सत्वर
आदर्शों का जो दीप जलाया था हमने
क्या तुमने उसको
उसी तरह
जगता पाया ?

बापू बोले, आदर्शों की वह दीपशिखा
जो आप सबों के तप से जागी थी भू पर
ले चुके परीक्षा हैं उसकी उन्चास पवन,
वह क्षीण-काय
होकर भी है
तम के ऊपर !

लेकिन उसकी संजीवन शक्ति बढ़ाने को
मानव देता है उसको अपना स्नेह नहीं,
वह नहीं समझता स्नेह निकलता अंतर से.
बरसा सकते
उसको अम्बर से
मेघ नहीं !

जीवन भर अपना हृदय गला उसमें भरता
मैं रहा दीप वह अधिकाधिक जाग्रत करता,
जब लगा वहाँ से चलने अपना स्नेह-रक्त
आदर्शों के
उस दीपक में
भरता आया !

सिपाही

[श्री यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज']

शान्ति शान्ति रे शान्ति कहाँ है इस हलचल कोलाहल में
ढूँढ़ रहा क्यों अमृत-कोष पागल, भीषण हालाहल में
मीन सजीव कभी सूखी मिट्टी पर प्राप्त नहीं होता
शीतलता मत ढूँढ बावले इस प्रचण्ड दावानल में

ठिठक रहा क्यों बोल सिपाही!
भेद हृदय का खोल सिपाही!
किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बना क्या?
त्याग शिथिलता डोल सिपाही!

अरे शान्ति की खोज न करना यहाँ शान्ति का काम नहीं।
जगजीवन के महासमर में कभी शान्ति का नाम नहीं।
रात-दिवस तूफान उठा-सा रहता है सुख का, दुख का।
यहाँ प्रबल संघर्ष निरन्तर, पल भर कभी विराम नहीं।

तो फिर क्यों चुपचाप सिपाही!
मत कर यों परिताप सिपाही!
विमुख युद्ध से ही जाना है
शूरों का अभिशाप सिपाही!

दे टंकार तीर जब छूटे तो फिर लौट नहीं आना
है सम्मान इसी में उसका वेध लक्ष्य को ही जाना
चूक गिरा जो कहीं धरा पर तो इसमें क्या शान रही
एक आन तो यही चाहिये जुटकर जौहर दिखलाना

शान्ति शान्ति मत सीख सिपाही
पीड़ा पा मत चीख सिपाही
मरते दम भी नहीं किसी से
माँग दया की भीख सिपाही

सिपाही

शान्ति ढूँढने सैनिक जाये, तो फिर कौन लड़े बोलो
कौन विरोधी दल के सम्मुख सीना तान अड़े बोलो
रण के नियम कठोर बाँकुड़े क्या दोगे लेखा – जोखा
जो अवसर पा भी कायर बन योंही रहे पड़े बोलो

उठ जा बढ़ बलवान सिपाही !
दिखला अपनी शान सिपाही !
नीलकण्ठ – सा आज दर्प से
उठा गरल कर पान सिपाही !

नहीं चाहना रहे शान्ति की ना अशान्ति का ध्यान रहे
बस अपने कर्त्तव्यमार्ग पर ही चलने की आन रहे
गिरि को गिरा बना दे रोड़े – रोड़े धूल बनाता जा
भाल समुन्नत रहे, दीप्त तेरा उदग्र अभिमान रहे

बस अब चिन्ता छोड़ सिपाही !
ले ले बढ़कर होड़ सिपाही !
सोच - विचार और संभ्रम से
अब अपना मुख मोड़ सिपाही !

ख्याल न करना जीत – हार का, पाने का उपहार नहीं
अपना काम किये जा साथी और अधिक अधिकार नहीं
कफन बाँध माथे पर हँसता सदा अग्रसर होता जा
इसे छोड़कर और दूसरा वीरों का शृङ्गार नहीं

परिचय

[पण्डित बुद्धिनाथ झा 'कैरव', एम० ए०]

बद्ध शुक किसका न जानें, दैव किसकी चूक हूँ मैं

देखता हूँ स्वप्न में जग – जग कि कैसे सो गया हूँ
खोजता हूँ आप अपने को, कहाँ मैं खो गया हूँ
भ्रमित होकर आप अपना ही पता नित पूछता हूँ
मिट रहा हूँ पर अमिटता के कणों की टूक हूँ मैं

युक्त हूँ जिससे विलग निज को उसी से मानता हूँ
शून्य में विस्तार अपनी कल्पना का तानता हूँ
बुद्‌बुदों – सा एक घेरे में कहीं से आ समाया
मृत्ति में निस्सीमता की एक हलकी फूँक हूँ मैं

आत्मविस्मृति के तिमिर में एक धुँधली याद-सा हूँ
व्याप्ति की अनुभूति के आनन्द का अपवाद-सा हूँ
प्रेम के परितोष में चुप भोगता हूँ ग्रन्थिबन्धन
रूप के मधुमास पर आसक्त पिक की कूक हूँ मैं

आदि का मैं विस्मरण हूँ, अन्त का अज्ञान हूँ मैं
बीच में भूले हुए अस्तित्व की पहचान हूँ मैं
लुप्त प्रातःकाल की स्मृति, ज्ञान संध्या का नहीं त्यों
दोपहर की डाल पर फूला हुआ बन्धूक हूँ मैं

मैं नहीं जानता हँसी क्या है

[बिस्मिल इलाहाबादी]

रंजो गम के सिवा खुशी क्या है
पूछते क्या हो जिन्दगी क्या है

मुझ को रोने से काम है दिन - रात
मैं नहीं जानता हँसी क्या है

चार दिन जिन्दगी के कुछ भी नहीं
चार ही दिन की जिन्दगी क्या है

यह समझता है तो सवाल न कर
उसकी सरकार में कमी क्या है

एक जलवे की ये हैं दो शकलें
धूप क्या और चाँदनी क्या है

मुझको दम भर कही करार नहीं
एक मुसीबत है जिन्दगी क्या है

फलसफा जिसमें कुछ नहीं 'बिस्मिल'
वह मुअम्मा है शायरी क्या है
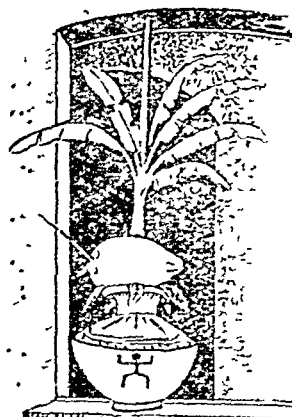
तिरंगा ध्वज

[श्री सोहनलाल द्विवेदी]

फहरे तिरंगा अपना !

जिसने सत्य बना दिखलाया, आजादी का सपना !

लहरे तिरंगा अपना !

इस जयध्वज को पाकर आगे,

सोये भाग्य हमारे जागे

दूर हुए बन्धन, सदियों का रोना और कलपना !

फहरे तिरंगा अपना !

इस जयध्वज के अरुणाचल में,

कोटि - कोटि जन आकर पल में.

किये अनेकों युद्ध, विजय के लिए न पड़ा ठहरना !

लहरे तिरंगा अपना !

जयध्वज ले अभियान करेंगे,

नित नूतन निर्माण करेंगे,

वह समृद्ध भारत, जो हो, भूतल के सुख का पलना !

फहरे तिरंगा अपना !

गीत
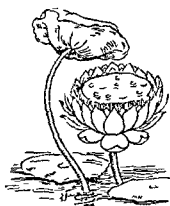
[श्री शशिधर वाजपेयी]

विजय का गर्व है मन में, विनय की भावना भी है।

मदान्वित तारिकाओं के कलुष सहवास के कारण
हृदय मे चन्द्रमा के आ गया है एक कालापन
वही तो इन्दु की भावुक प्रकृति का है सरल लक्षण
कि जिसने जड़ दिया उज्ज्वल वदन पर एक श्यामल कण

तिमिर को देखनेवाले उजाला देख सकते हैं
निशा के चन्द्र में यदि कालिमा है, ज्योत्स्ना भी है।

जगत का धर्म यह क्या जो मनुज में दोष ही देखे
सुखद सद्भावना देखे न उसमें रोष ही देखे
दिखाई दे न यदि उल्लास तो आक्रोश ही देखे
अनय की आँच में जलता हुआ परितोष ही देखे

हृदय को देखनेवाले विषमता देख सकते हैं
कि उसमें स्वार्थ है निज का, परायी चिन्तना भी है।

हृदय को दे रहा आदेश जो 'सम्मोह हरता चल
नियन्त्रित पंथ कर ले और परहित ध्यान धरता चल
प्रलोभन त्याग कर परमार्थ ही के काम करता चल
कुसुम के रक्त-सा पतझार में भी रङ्ग भरता चल'

उसी को देखनेवाले असत् - सत् देख सकते हैं
कि उसके स्वार्थ - साधन में निहित शुभकामना भी है।

वही मानव कि पीड़ित की पुकारों को सुना जिसने
मनुज का दुख मिटाने के लिए ही सिर धुना जिसने
इसी कर्त्तव्य का प्रतिकार भोगा सौ गुना जिसने
उलझने के लिए भवजाल जनमन में बुना जिसने

सुयश को देखनेवाले इसे भी देख सकते हैं
जहाँ श्रद्धा समर्पित है वहाँ आलोचना भी है।

स्वतन्त्रता के प्रति

[श्री आरसीप्रसाद सिंह]

तू लेती है जन्म देश के
वीरों के बलिदानों में।
और झूमते अलमस्ती से
भरे तरुण के प्राणों में।
तू होती उत्पन्न प्रलय-सी
घिरी घोर घनमाला मे।
और धधकते यज्ञकुण्ड की
लोल हुताशन ज्वाला से।
तेरे चरणों पर कोई ज्यों
न्यौछावर करता जीवन,
खम्भ फाड कर तू नृसिंह सी
तत्क्षण कर उठती गर्जन।

ओ स्वतन्त्रते, नाच रही तू
ही रण में तलवारों पर।
अँगडाई ले रही रुद्र-
वीणा के ताण्डव-तारों पर।
जब अत्याचारी के पापों का
विष-घट भर जाता है।
लोहा से लोहा बजता है;
घन से घन टकराता है।
वज्र-दण्ड लेकर पडती तू
कूद अचानक तड़ित्-शिखा।
लाल-लाल खूनी अक्षर से
है तेरा इतिहास लिखा।

तू आती हड़कम्प मचाती,
युग-पलटा कर देती है!
और मृतक की ठण्ढी नस में
भी बिजली भर देती है!
एक प्रकाश बिखर जाता है
हृदय-हृदय में ज्योतिर्मय!
आँधी के उन्मत्त ताल पर
वर्षा की रिमझिम-सी लय!
होता है देने को तत्पर
कोई ज्यों अपना मस्तक,
तू तत्काल प्रकट हो जाती
है काली-सी कल्पान्तक!

अरी भवानी, तू रहती है
जिह्वा पर वाग्मी जन की!
तू विचार धारा है पौरुष से
ज्वलन्त मानव-मन की!
तरुणाई में सावन की खर
गंगा-सी उमड़ी तू है!
देवी स्वतंत्रते, तू निर्मम!
चिर विद्रोह-भरी तू है!
ज्वालामुखी भड़क उठता है
तेरे एक इशारे पर!
मृगशावक भी चढ़ जाता
शार्दूल-सदृश हत्यारे पर!

कभी थिरकती कलम-नोक पर
मसिका पीकर हालाहल!
और सघन आन्दोलन-घन बन
कभी घेरती भूमण्डल!
देखा तेरा रूप भयकर
असहयोग-सत्याग्रह में!

वडवानल-सी खौल रही तू
सदा शान्ति-सागर तह में !
मुक्ति मल की द्रष्टे, कब तू
बँधी लौह दीवारों में ?
मृत्यु दहाड रही है तेरी
दिग्ग्रासी ललकारों में !

विधि निषेध को, परम्परा को
तू कर लेती है भक्षण !
रूढि और नियमों की सीमा का
कर जाती उल्लघन !
बजा मुक्ति की वशी दती,
कर देती युग-परिवर्तन,
और तड़पते प्राणों में भर
देती सुख - नूपुर - गु जन !
क्रान्ति जननि, तू पानी में भी
आग लगानेवाली है !
मुर्दों में भी रूह फूँक दे,
तू ऐसी मतवाली है !

स्वागत, भारत की धरती पर
तेरे चरणों का, स्वागत !
मिट्टी में आया है तेरी
मस्ती का झोंका, स्वागत !
तू सदियों के बाद हिमालय के
आगन में फिर आई !
सारे पूर्वाञ्चल मं तेरी
लाल पताका फहराई !
उत्पीड़ित की राजलक्ष्मि, आ !
अभिनन्दन, तेरी जय हो !
तेरी छाया में जन जीवन
मासल हो चिर निर्भय हो !

———

दो गीत

[पोद्दार रामावतार 'अरुण']

१

ये मर्मर गान तुम्हारे हैं !

पीड़ा-पंखड़ियों पर सोए
जग की सारी सुधबुध खोए

जीवन-प्रदीप पर जलते जो
ये झुलसे प्राण तुम्हारे हैं !

साँसों से जो स्वर आता है
चुपके जो कुछ कह जाता है

जो गीत उमड़ जाते दृग से
ये करुणाह्वान तुम्हारे हैं !

अङ्गों में नित नव-नव सिहरन
थर-थर कम्पन, दुख के वर्षण

कर देते जो आकुल अधीर
ये मृदु वरदान तुम्हारे हैं !

है रुग्ण आज मन का सितार
बज रहा अकेला एक तार

उर पर जो चोट किया करते
ये भी तूफ़ान तुम्हारे हैं !
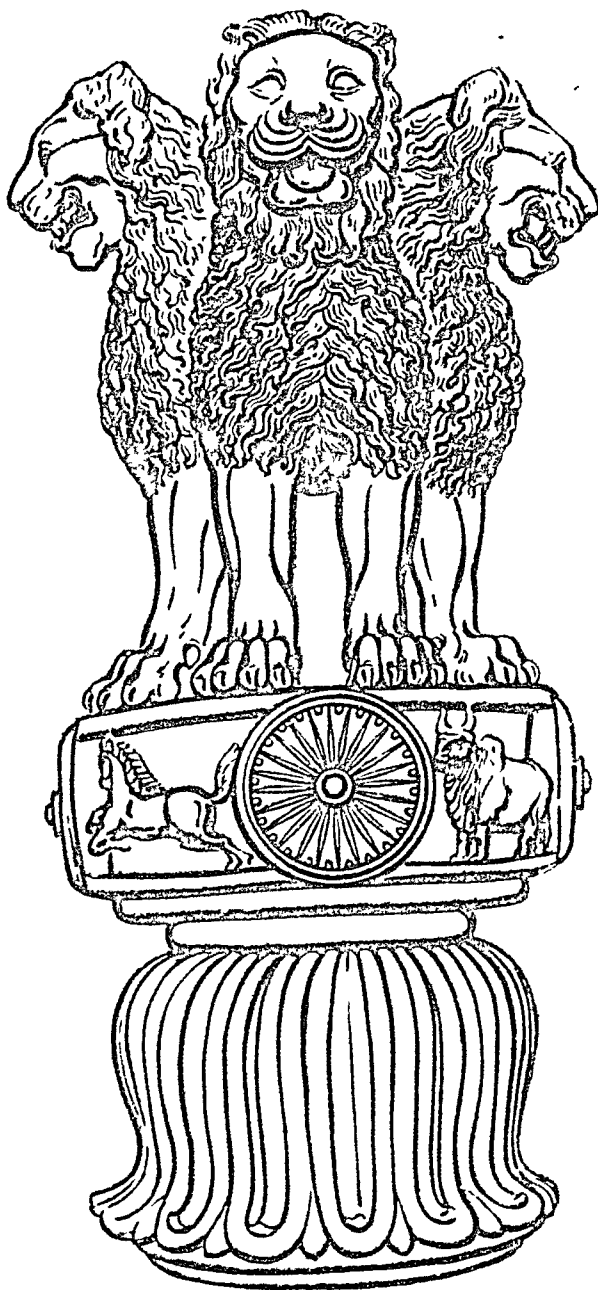
अशोक-स्तम्भ

[वर्तमान भारत राष्ट्र का प्रतीक]

बिहारकेसरी श्री श्रीकृष्ण सिंह

वृत्त और व्यक्तित्व की झाँकी

[लेखक—श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर']

रेखा

स्थूल शरीर पर महीन और दूध के फेन के समान उजला कुरता, खूब महीन धोती, पाँवों में चप्पल और सिर पर सजी नुकीली गांधी-टोपी; वेश-भूषा से श्रीबाबू एक कला-प्रेमी रईस के समान दीखते हैं। उनकी उँगलियों में आप कभी-कभी अँगूठी भी देखेंगे और मैंने तो एक बार उनकी कनिष्ठा उँगली के नख को रँगा हुआ भी देखा था। रंग उनका गेहुआँ है, आकृति सदैव निर्लोम रहती है; आँखें चेहरे के अनुपात में कुछ छोटी हैं और कान भी बड़े नहीं हैं; लेकिन, आकृति पर जो एक मुक्त हँसी की किरण खेलती है वह बतलाती है कि हृदय के तल में मस्ती और बेफिक्री की मात्रा भरपूर है। श्रीबाबू बुद्धि नहीं, भावना के अधीन जीते हैं और यह भावात्मकता उनके चेहरे पर किसी भी मनोवैज्ञानिक को विकीर्ण मिलेगी। किन्तु, अध्ययन-कक्ष में या आफिस की मेज पर उनकी आकृति की यह सहज-सरल प्रसन्नता कुछ क्षीण हो जाती है, मानों, व्यस्तता और परीशानी ने उन्हें आक्रान्त कर लिया हो। कई योग्य पुरुषों को मैंने बुद्धि के कार्य-रत होते हुए भी स्वयं उन्हें कार्य-व्यस्तता से तटस्थ देखा है। किन्तु, श्रीबाबू के साथ दूसरी बात है। उनकी बुद्धि जब कार्य में प्रवेश करती है तब काम की भीड़ में उनका व्यक्तित्व भी डूब जाता है। घर पर ऐसे मौकों पर अक्सर वे गंजी पहने रहते हैं तथा उस समय उनकी मूर्त्ति आत्मलग्न और अप्रसन्न-सी दीखती है। सिमटी-सिकुड़ी हुई भवें और ललाट पर की सिकुड़ी रेखाएँ आकृति पर, मानों गंभीरता का धुआँ बिखेर देती हैं और खाण्डु मस्तक पर जब-तब काँपते हुए कुछ विरल केश, मानों, आपको संकेत देते हैं कि "अभी नहीं, अभी नहीं। यह शासक की कठोर मूर्त्ति है, यह अध्येता की गंभीर मुद्रा है, अभी वापस जाइये; और कभी आइयेगा।"

आत्मलीन वृत्ति

पिछले दस वर्षों के भीतर श्रीबाबू की गंभीरता और आत्मलीनता में, प्रायः अप्रसन्नता-जनक वृद्धि हुई है। संभव है, यह दायित्व-ज्ञान और अध्ययनशीलता का परिणाम हो; संभव है,

यह लोकप्रियता को उपेक्षणीय मानने की चेष्टा का प्रभाव हो अथवा यह भी सभव है कि अपनी विशिष्ट अनुभूतियों के कारण श्रीबाबू परिचित अपरिचित सभी लोगों से बचाव खोज रहे हों। किन्तु, यह सच है कि उनसे मिलनेवालों पर एक प्रकार की विरक्ति, एक विशिष्ट प्रकार की उपेक्षा की छाया पड़ जाती है और मिलनेवाले जब उनसे विदा होते हैं तब उन्हें यह सन्देह बना रहता है कि, शायद वे अपनी बात ठीक से नहीं कह सके, कि शायद, वे श्रीबाबू के हृदय के ठीक आमने-सामने होकर बात नहीं कर सके। सभा सम्मेलननों में श्रीबाबू भावावेश से ओतप्रोत ओजस्वी भाषणों के कारण पूजे जाते हैं, किन्तु मेजों के आर-पार की बातचीत में वे प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकते। ऐसे मौकों पर जीभ की अपेक्षा उनके कान ही अधिक उपयोगी रहते हैं।

गोष्ठी नहीं, समूह

इस सयम से लोकप्रियता उनकी चाहे भले ही कम होती हो, मित्र शायद, भले ही कम होते हों, किन्तु उनकी ईमानदारी और वाणी की पवित्रता अक्षुण्ण रहती है। किसी प्रश्न पर 'हाँ' या 'नहीं' नहीं कहने में सफल होने के कारण अधिकारारूढ़ व्यक्ति को जो एक सन्तोष होता है, जो एक मानसिक शान्ति मिलती है उस सतोष और शान्ति का सुख उन्हें भरपूर मिलता है। ऐसी खानगी गोष्ठियों का पता लगाना कठिन है जिनमें बैठकर श्रीबाबू अपना हृदय खोलते होंगे। अधिकांश लोग तो उनके विरुद्ध यही इलजाम लगाते हैं कि वे "पालिटिक्स करना" (इस मुहाविरे के लिए माफी चाहूँगा) नहीं जानते। पालिटिक्स करने के मानी हैं गोष्ठियों में बैठकर षड्यन्त्र करना, शतरज की गोटियों की चाल बैठाना और इस कर्म में श्रीबाबू को रस नहीं मिलता। शतरज के प्रेमी उनकी गोष्ठी को नीरस मान कर वहाँ से चल देते हैं अथवा वहाँ टिकते हैं तो महज स्वार्थ की विवशता के कारण। मुझे याद आता है कि अभी कुछ वर्ष पहले श्रीसम्पूर्णानन्दजी ने जवाहरलाल-जी के खिलाफ भी इसी "पालिटिक्स"-हीनता का दोष लगाया था। किन्तु, क्या "पालिटिक्स करना" ही पालिटिक्स है? और अगर जवाहरलालजी "पालिटिक्स' करने लगें तो फिर इससे ऊपर कौन रहेगा? जवाहरलालजी देशभक्त हैं और देशभक्तों का हृदय जनता के बीच खुलता है जिस जनता की भावनाओं के वे प्रतीक होते हैं। और इस बिन्दु पर श्रीबाबू कुछ कुछ जवाहरलाल के समान हैं। बिहार केसरी के हृदय के मर्म को समझना हो तो किसी सभा में छिप कर बैठिये। खुली सभाएँ ही वे स्थल हैं जहाँ श्रीबाबू अपने बस में नहीं रहते और प्रसन्नतापूर्वक अपने हृदय के हरेक भेद को जनता से कह देते हैं।

अध्ययनशीलता

देश के अध्ययनशील नेताओं में उनका नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है और सच पूछिये तो उन्होंने पढ़ा भी खूब है। उनके अध्ययन के विषय भी एक दो नहीं, प्रत्युत अगणित

हैं। इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, समाज शास्त्र, वैज्ञानिक इतिहास और सामरिक भूगोल से लेकर शा और इब्सेन के नाटकों और हेगेल के दर्शन-ग्रन्थों की अनगिनत जिल्दें मैंने जेल में उनके पास भेजी जाती देखी हैं और इधर हाल से तो वे पराविद्या, प्रेतवाद और फ्रायडीय दर्शन की किताबों की ओर भी बड़े जोर से झुके हैं। उन्होंने इतना कुछ पढ़ा है जितना किसी भी कार्यशील व्यक्ति को नहीं पढ़ना चाहिए। पुस्तकीय ज्ञान की अति-वृद्धि भी एक दोष है, किन्तु श्रीबाबू इस दोष को छोड़ नहीं सकते। आज भी अपनी अलमारी या दूकानों के स्टाल को वे बड़ी ही तृष्णा के साथ देखते हैं, मानों उनका मन उन्हें भुला रहा हो कि "गोली मारो इस वजारत को। इससे कहीं बड़ा सुख तो इन किताबों के पन्नों में मौजूद है।" दुःख और सुख के दिनों में पुस्तकों ने उन्हें जो आनन्द दिया है उसे वे कभी-भी नहीं भूलते। सभा-सम्मेलनों में अक्सर वे ऐसी बातें बोलते ही रहते हैं जिनसे यह भाव टपकता है कि किसी यूनिवर्सिटी में वे अगर राजनीति, इतिहास या अर्थ-शास्त्र के अध्यापक बना दिए गए होते तो प्रधान-मंत्री की अपेक्षा उन्हें अधिक सुख और शान्ति मिलती।

राजसी विद्वान

मगर, इतना होते हुए भी श्रीबाबू राजसी विद्वान हैं। पढ़ी हुई किताबों के पढ़ने में उन्हें उत्साह नहीं मिलता। अपने लिए तो उन्हें वे ही प्रतियाँ चाहिए जिनका रस अछूता हो, जिनके पन्ने किसी ने खोले नहीं हों, जिनकी गन्ध किसी भी पाठक को नहीं लगी हो। और, जहाँ तक मुझे मालूम है, अपनी पढ़ी हुई प्रति वे किसी दूसरे को देते भी नहीं। मगर, इस कंजूसी से उनकी शोभा नहीं घटती और यह मोह भी उनका भूषण है। शायद, पुस्तकों का हर रसज्ञ पाठक यही करना चाहता है। लेकिन, साधन तो सबके लिए सुलभ नहीं हैं।

यह दूसरी बात है कि भगवान श्रीबाबू पर विशेष रूप से कृपालु रहे हैं और जब वे अपने जीवन के घोर दुर्दिनों (जिनकी अवधि भी काफी लम्बी रही) को भोग रहे थे तब भी मधुबनी के चरखा-संघ में सबसे महीन धोतियाँ उन्ही के लिए बनाई जाती थीं, तब भी हरी, नीली और लाल पेन्सिलें (जिनका उन्हें अजीब शौक है) उनके लिए रोज ही खरीदी जाती थीं; तब भी रंग-बिरंगी गंभीर किताबों के पार्सल हर महीने आते ही रहते थे और तब भी सुस्वादु भोजन की व्यवस्था जब-तब हो ही जाती थी।

बालकों के अन्य कई लक्षणों के साथ श्रीबाबू में यह लक्षण भी विद्यमान है कि भोजन के मामले वे बच्चों से भी अधिक अधीर हैं। खेत में मटर और चने की छीमियों को देखकर उनके मुँह में पानी भर जाता है। सुस्वादु भोजन के वे एक ही प्रेमी हैं। श्रीबाबू डायबिटीज के पुराने रोगी हैं। कई वर्षों से खाने के समय वे इन्सुलीन की सुइयाँ लेते रहे हैं। वे जानते हैं कि प्रान्त और देश के लिए उनका जीवन कितना मूल्यवान है और साठ वर्ष की पकी उम्र में वे इसके साथ

खिलवाड़ भी नहीं कर सकते, फिर भी जीभ के आगे वे पूर्णरूप से पराजित हैं। जरा इस दृश्य की भी कल्पना कीजिए कि श्रीबाबू भोजन के लिए बैठ रहे हैं, डाक्टर सूई में इन्सुलीन भर कर खड़ा है और वे एक बार तो सतृष्ण दृष्टि से मेज पर रखे हुए रसगुल्ले की ओर देखते हैं और दूसरी बार कातर दृष्टि से डाक्टर की ओर। अब बेचारा डाक्टर इस श्रद्धेय बूढ़े बालक को रोके भी तो कैसे ? आखिर उसे कह देना पड़ता है कि "अच्छा, एक खा लिया जाय।"

एक किस्सा और याद आता है। सन् १९४४ या ४५ की बात होगी। श्रीबाबू बयालिस के आन्दोलन के बाद जेल से छूटकर आए थे और पटना जेनरल अस्पताल में इलाज करवा रहे थे। जेल में उनकी हालत बहुत ही खराब हो गई थी। पेट से खून और सारे शरीर से पानी चल रहा था। बात अब तब की थी, बल्कि, उन्होंने अपना आखिरी संदेश भी दे दिया था कि मेरी अन्तिम क्रिया नीलम (महेश बाबू की आयुष्मती पुत्री और बिहार केसरी की लाड़ली प्राणमणि) के हाथों करवा देना। ऐसी दुरवस्था से निकल कर वे अस्पताल में आए थे। उन दिनों स्वर्गीय स्वनामधन्य रामदयालु बाबू (स्पीकर, बिहार एसेम्बली) संयोग से मेरे मेहमान थे। वे रोज श्रीबाबू को देखने अस्पताल जाया करते थे। एक दिन जो वे अस्पताल से लौटे तो एकदम पिनकते हुए कहने लगे कि "श्रीबाबू निरे बच्चे हैं। न जानें इन्हें कबतक गार्जियन की जरूरत बनी रहेगी ? यह देखो, कि पेट की वैसी भयंकर बीमारी से वे अभी अभी उठे हैं और उन्हें पेट का ही कोई ख्याल नहीं। अभी परसों बैठा ही था कि आग्रह करने लगे कि अब आप जाइए, मुझे भोजन करना है। मैंने कहा कि मैं बैठा हूँ, आप भोजन कीजिए। कहने लगे कि कुछ ऐसी ही बात है कि आज आपके सामने भोजन नहीं करूँगा। और आज गया हूँ तो देखता क्या हूँ कि आप महेश बाबू के साथ भुना हुआ चिउड़ा फाँक रहे हैं। आज ही यह भेद भी खुला कि परसों की थाल में भुना हुआ मांस था। भला, बूढ़े रोगी की अपने ही साथ यह हिमाकत !"

भोजन का परिमाण अब बहुत घट गया है। मगर, वनिष्ठ अभी भी विद्यमान है।

ज्वलन्त देशभक्ति के बीज

श्रीबाबू के चरित्र और व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी ज्वलन्त देशभक्ति है। देश का अर्थ देश की जनता ही समझना चाहिए। और जनता की हित कामना को वे कभी भी नहीं भूल सकते और न अपने देश को कभी धोखा ही दे सकते हैं। कड़ा से कड़ा आलोचक भी जब उनके व्यक्तित्व के सभी परदों को चीरता हुआ उनके भीतर घुसने लगेगा तब वह उनकी देशभक्तिवाले स्तर पर आकर हार मान लेगा, क्योंकि यह स्तर दुर्भेद्य है, यह स्तर अजेय है। श्रीबाबू की देशभक्ति की भावना का नींव अत्यन्त कठोर चट्टान पर पड़ी है जो हिलना नहीं जानती, जो विचलित नहीं की जा सकती। उन्होंने जिस समय जीवन में अपनी आँखें खोलीं, तब तक

भारतवर्ष जाग चुका था। देश में बंग-विद्रोह की लहर गूँज रही थी और बाबू श्रीकृष्ण सिंह मुंगेर में मैट्रिक के छात्र थे। कहते हैं, इसी समय मुंगेर की ट्रेनिंग अकेडेमी में एक बंगाली शिक्षक आये जिनका अभिप्राय बम-पार्टी के लिए रंगरूट भर्ती करना था। बालक श्रीकृष्ण के बेचैन हृदय ने इसी गुरु से देशभक्ति की पहली दीक्षा ली और इन्हीं के सामने एक हाथ में गीता और दूसरे में कृपाण लेकर श्रीबाबू ने गंगा में प्रवेश करके शपथ खायी कि चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, किन्तु, देश-सेवा के मार्ग से मैं विचलित नहीं होऊँगा।

गर्मदलवालों के साथ

संयोग से ये गुरु महाराज शीघ्र ही मुंगेर से चले गये। अन्यथा जिसे हम आज बिहार के शासनासन पर आरूढ़ देखते हैं वह पुरुष, शायद, फाँसी चढ़ गया होता अथवा सशस्त्र क्रांति के अनेक विफल प्रयासों के बाद संन्यास ले लिया होता। किन्तु, कृपाण की दीक्षा ने श्रीबाबू के हृदय पर जो ताप उत्पन्न कर दिया वह कभी बुझा नहीं। वे तभी से उग्र विचारों के प्रेमी और पोषक हो गये। अरविन्द पर उनकी असीम श्रद्धा हो गई और "वन्देमातरम्" के लेखों को वे बड़ी ही श्रद्धा के साथ पढ़ने लगे। इस समय लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द उनके आराध्य थे तथा इनके निबन्धों को वे पीयूष मानकर पीते थे। क्रान्तिकारियों का प्रभाव उनके हृदय पर जम कर पड़ा था और भारतीय राजनीति के तत्कालीन रहस्य को वे ठीक तिलक और अरविन्द की आँखों से देखना चाहते थे। जो लोग तिलक और अरविन्द के साथ थे, वे श्रीबाबू की श्रद्धा के अधिकारी थे; जो लोग तिलक और अरविन्द को नापसन्द करते थे उनके लिए श्रीबाबू के हृदय में भी अवज्ञा और अवहेलना का भाव था।

दो अनोखे दृष्टान्त

सूरत-कांग्रेस में झगड़े के बाद जब तिलकजी अपने गर्मदली सहकर्मियों को लेकर कई वर्षों के लिए कांग्रेस को छोड़ कर निकल गये, तब श्रीबाबू के लिए भी कांग्रेस मर गई। यहाँ तक कि इसी अरसे में जब पटने में कांग्रेस का महाधिवेशन हुआ तब श्रीबाबू ने नर्मदली कांग्रेस के प्रति अपनी उपेक्षा प्रदर्शित करने के लिए, उसमें कोई काम नहीं किया, कोई योगदान नहीं दिया और वे, यद्यपि, उस समय पटने में ही कालिज के विद्यार्थी थे तथापि ठीक अधिवेशन के अवसर पर ही पटना छोड़कर वे घर चले गये।

जब श्रीबाबू पटना कालिज के छात्र थे उस समय एक बार बादशाह पंचम जार्ज की भी सवारी पटने आई थी। बादशाह नाव पर चढ़ कर गंगा के किनारे-किनारे दृश्य देखने को बाहर निकले। सारा किनारा लोगों से खचाखच भर गया। मिन्टो हिन्दू होस्टल के छात्र भी भीड़ में जा मिले। किन्तु, श्रीबाबू अपने कमरे से बाहर नहीं निकले। और तुर्रा तो यह कि कहीं बादशाह

के शरीर पर आँखें न पड़ जायें, इस पाप से बचने के लिए उन्होंने अपनी कोठरी की खिड़कियाँ भी बंद कर लीं।

वक्तृता की प्रेरणा

वे तत्कालीन बंगाली और मराठी नेताओं के उत्तप्त विचारों के बड़े ही समर्थक थे और इन्हीं नेताओं के अनुकरण पर उन्होंने अपने चरित्र का भी निर्माण किया। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषणों का उनके चरित्र पर अद्भुत प्रभाव पड़ा और इस विचित्र वक्ता की कोई भी वक्तृता ऐसी नहीं हुई जिसे श्रीबाबू ने बीसियों बार नहीं पढ़ा हो। मैट्रिक क्लास के छात्र की हैसियत से उन्होंने सर सुरेन्द्र को मुंगेर में आमंत्रित किया था तथा उनके सम्मान में कितनी ही सभाओं का आयोजन भी। यह एक बात इसका प्रमाण हो सकती है कि अपने छात्र-जीवन में ही श्रीबाबू कितने प्रभावशाली हो गये थे तथा अंत में जाकर उनकी अपनी वक्तृता इतनी ओजस्विनी क्यों हो गई।

राजनीति और वकालत

सन् १९१६ ई० में कालिज की शिक्षा समाप्त करके श्रीबाबू ने मुंगेर में वकालत शुरू की। थोड़े ही दिनों में चारों ओर से आवाजें आने लगीं कि मुंगेर के वकालतखाने में एक नई प्रतिमा ने प्रवेश किया है। किंतु राजनीति किसी सौत का आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। इसी समय एनीबेसेन्ट के होमरूल आंदोलन ने जोर पकड़ा और श्रीबाबू अत्यन्त सहजरूप से मुंगेर में इस आंदोलन के नेता हो गए। धीरे-धीरे राजनीति ने वकालत की नई दुलहिन का तिरस्कार करना शुरू किया और १९१९ के आते-आते तो जालियाँवाला बाग के काण्ड से श्रीबाबू आपाद-मस्तक जल उठे। इस घटना से उनके हृदय पर कठोर आघात पहुँचा और वे गंभीरता से सोचने लगे कि इस अपमान के प्रतिशोध का क्या उपाय है। जालियाँवाला बाग श्रीबाबू के दिल पर तभी से आग की तरह जलता रहा है। इस घटना ने उन्हें अंगरेजों का घोर शत्रु बना डाला और इसके वर्णनों के द्वारा उन्होंने लाखों मनुष्यों के हृदयों में अंगरेजों के विरुद्ध घृणा की आग फूँक दी। १९२०-२१ के दिनों में "माउर के वकील साहब" (आरंभ में श्रीबाबू मुंगेर जिले के गाँवों में इसी नाम से अभिहित किए जाते थे) सभाओं में जब भी जालियाँवाले बाग की दर्दनाक घटनाओं का वर्णन करते थे तब वे खुद भी रोते थे और उनके साथ अपार जनता भी आँसू बहाती थी। उन दिनों की दो-चार सभाओं की मुझे अब भी कुछ याद है और श्रीबाबू की वाणी का जो जादू उस समय मैंने देखा वह फिर कभी देखना नसीब नहीं हुआ। जिसे बगावत की आग भड़कानी हो वह भगवान से बाबू श्रीकृष्ण सिंह की-सी ज्वलंत वाणी का वरदान माँगे।

गांधीजी की ओर

पंजाब हत्याकांड के कुछ पहले ही, अफ्रीका के सत्याग्रही के रूप में महात्मा गांधी का नाम भारतवर्ष में फैल चुका था और एक मेधावी एवं जागरूक नवयुवक की हैसियत से श्रीबाबू उनकी

कीर्त्ति से खूब ही परिचित हो चुके थे। किंतु, उनकी मूल आस्था का रुझान तिलकजी पर था और वे उम्मीद कर रहे थे कि अगला सुनिश्चित नेतृत्व महाराष्ट्र या बंगाल से आएगा। लेकिन, गांधीजी को देखते ही उनकी सारी श्रद्धा उनकी ओर दौड़ पड़ी। श्रीबाबू ने महात्मा गांधी को पहले-पहल बनारस में देखा जब कि वे सेंट्रल हिंदू कालिज की सभा में अपना सुविख्यात ऐतिहासिक व्याख्यान दे रहे थे। भाषण सुनते-सुनते उन्हें ऐसा लगा कि भारत की पूर्व निश्चित मुक्ति की घड़ी आ गई है और गांधीजी ही भारत के मुक्ति-विधाता होंगे। पीछे जब महात्माजी चंपारण आए, तब श्रीबाबू ने उनके काम में हाथ बटाने की पूरी चेष्टा की, किंतु, अपने छोटे भाई की असाध्य बीमारी (जिसके कारण अंत में वे स्वर्गीय होकर रहे) के चलते वे इस कामना में कृतकार्य नहीं हो सके।

आध्यात्मिक स्तर पर वे गांधीजी की ओर बड़े वेग से खिंचते जा रहे थे कि इतने ही में गांधीजी ने भारतीय मंच पर चढ़कर बलिदान के लिए पुकार भेजी। यह १६२० का साल था। भारत की मुक्ति की घड़ी तो नहीं, श्रीबाबू की प्रेरणा की नियत घड़ी आ पहुँची। इस समय वे, प्रायः, अच्छे वकीलों में गिने जा रहे थे और कानून में अधिक योग्यता प्राप्त करने के लिए उन्होंने एम०-एल० की परीक्षा की फीस भी जमा कर दी थी। किंतु सारी सुविधाओं, समस्त भविष्य और घरवालों की सारी उम्मीदों पर लात मार देने के सिवा और चारा ही क्या था? आरंभ में ही उनका आंतरिक अस्तित्व जिस देवी के चरणों पर न्योछावर हो चुका था उसीने उनके शरीर की भी माँग भेजी थी। क्या हृदय दान करके शरीर चुराया जा सकता है?

आंदोलन की आग में

श्रीबाबू आँख मूँद कर असहयोग-आंदोलन में कूद पड़े। पैदल, टमटम और बैलगाड़ियों पर चलकर उन्होंने मुंगेर जिले के हर एक भूभाग को छान डाला। पूरे जिले में बगावत की आग अद्भुत तेज के साथ जलने लगी और श्रीबाबू के नेतृत्व में उस जिले की कांग्रेस इस ठोस रूप में संगठित हुई कि आज तक भी उसकी ईंटें अपनी जगह पर बहुत ही दुरुस्त हैं। मुंगेर जिले ने हिंदू-मुस्लिम एकता का भी बहुत बड़ा आदर्श उपस्थित किया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनाव में जब कांग्रेस बहुमत में आई तब लोगों ने श्रीबाबू से आग्रहपूर्ण अनुरोध किया कि आप बोर्ड के चेयरमैन हो जाइए। किंतु, उन्होंने अपने हितेच्छु परामर्शदाताओं को कड़ाई के साथ डाँट दिया तथा शाहजुबैर साहब को चेयरमैन बनाकर खुद उनके वायस चेयरमैन हो गये। जबतक शाह साहब जीवित रहे, मुंगेर डि० बो० की चेयरमैनी उनके लिए सुरक्षित रही और श्रीबाबू उनके अधीन रहकर आनन्द से काम करते रहे। इसी प्रकार की निःस्वार्थ सेवा और निरभिमानिता के कारण वे जिले के अप्रतिम कर्णधार बन गये और उनकी राय की जरूरत केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं रही, वरन् शादी-विवाह और खेत-खलिहान के सभी छोटे-बड़े मामलों में भी सारी जनता उन्हें एकस्वर से मध्यस्थ मानने लगी।

वोट नहीं माँगूँगा

श्रीबाबू का मुंगेर जिले पर जैसा अतुलनीय आधिपत्य रहा, वैसा आधिपत्य किसी भी नेता को विरले ही मिला करता है। शायद, यह सुनकर लोगों को घोर आश्चर्य होगा कि डि० बो० अथवा प्रान्तीय या केन्द्रीय ऐसेम्बलियों के लिए उम्मीदवारी के सिलसिले में श्रीबाबू कभी भी अपने चुनाव क्षेत्र में नहीं गये, न तो किसी को चिट्ठी लिखी और न कभी जाकर किसी से वोट माँगा। प्रांत में जब-जब चुनाव होता है तब-तब वे अपने चुनाव क्षेत्र से दूर रहकर दूसरों के चुनाव क्षेत्रों में काम किया करते हैं। और उनके विरोधी नहीं रहे हों, ऐसी बात नहीं है। सन् १९३७ ई० में श्री नवद्वीप घोष (घोसजी ग्वाले हैं और श्रीबाबू का चुनाव-क्षेत्र गोप-भाइयों का प्रधान गढ़ है) ने उनका विरोध किया था और जात के नाम पर भीषण आन्दोलन शुरू करके उन्होंने एक विकट परिस्थिति पैदा कर दी थी। पिछले चुनाव में भी उनके विरोधी कामरेड श्री कार्यानन्द (कम्युनिस्ट) थे जो मुंगेर जिले के तपे-तपाये कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं और जिनकी पीठ पर हिन्दुस्तान भर की कम्युनिस्ट शक्तियाँ केन्द्रित कर दी गई थीं। लोगों ने बहुत चाहा कि श्रीबाबू अपने चुनाव क्षेत्र में दो-चार दिन भी घूम जायँ। किन्तु उन्होंने किसी की एक नहीं सुनी और हस्ब-मामूल कहते ही रहे कि "मैं किसी से अपनी सिफारिश करने नहीं जाऊँगा। जनता मुझे जानती है और अगर वह आज मुझे छोड़कर किसी और को अपना प्रतिनिधि चुनना चाहती है तो अपनी इच्छा को पूर्ण करने का उसे पूरा अधिकार है।" यह है एक निःस्वार्थ देश सेवक की अकड़, यह है त्याग और सेवा का अभिमान जिसका जोड़ा देश में ढूँढने से ही मिलेगा।

कष्ट-सहिष्णुता

प्रान्त की जनता उनकी सेवा-वृत्ति से ऐसी मुग्ध हुई कि उसने उनके पहले से ही छोटे नाम को और भी छोटा करके उन्हें "श्रीबाबू" कहना शुरू किया और बाद को उन्हें "विहार केसरी" की पदवी से विभूषित कर दिया। सिंह जंगल का राजा केवल इसीलिए नहीं कहलाता है कि उसके हुंकार प्रबल होते हैं, बल्कि, इसलिए भी कि उसमें चरित्र की विशेषता होती है। विहार-केसरी ने भी अपने हुंकार और चरित्र दोनों ही के द्वारा इस पदवी को चरितार्थ किया है। राजनीति में पड़ जाने के बाद उन्होंने स्वयं ही कष्ट नहीं उठाया, किन्तु, अर्जन नहीं करने से जो विपत्ति नेताओं के परिवार पर आती है, वह उनके परिवार पर भी आई और, प्रायः अत्यन्त कठोर रूप में आई। यह एक ऐसी विपत्ति है जिससे महाराणा प्रताप की भी छाती हिल गई थी। फिर निर्धन, बेकार और भावुक श्रीकृष्ण सिंह की इस समय क्या अवस्था हुई होगी, यह सिर्फ अनुमान करने की चीज है। इतना ही पर्याप्त समझिये की अगर बाबू महेश प्रसाद सिंह ने इस हिलती दीवार को आगे बढ़कर नहीं थामा होता तो आज दशा ही कुछ और होती।

सिंह की साहसिकता

बिहार-केसरी में सिंह की-सी ही साहसिकता और निर्भीकता भरी हुई है। भाई की ओर से उन्हें अकृपा का जो पुरस्कार मिला उसे उन्होंने हर्ष के साथ स्वीकार किया और आनन्द के साथ झेला। सब मिलाकर कारागार में उन्होंने कोई आठ वर्ष व्यतीत किए और जेल से जब भी वे बाहर रहे, सरकार के लिए भीषण आतंक बनकर रहे। अंगरेजों के ताव को बर्दास्त करना जैसे उनके स्वभाव में ही नहीं रहा हो। देश के अंगरेज अफसर और गवर्नर कांग्रेसी हुकूमत में बिहार के प्रधान मंत्री से जितना घबड़ाते थे उतना शायद अन्य प्रान्तों के मंत्रियो से नहीं।

मुट्ठी टूट जाय, पर खुले नहीं

वीरता का यह हाल है कि १९३० के नमक-सत्याग्रह में गढ़पुरा (बेगूसराय) में उन्होंने एक भीषण दृश्य ही उपस्थित कर दिया। श्रीबाबू का स्वास्थ्य उन दिनों कुछ गिरा हुआ था और पूज्य राजेन्द्र बाबू नहीं चाहते थे कि वे सत्याग्रह का नेतृत्व स्वयं करे। किन्तु श्रीबाबू ने गांधीजी से प्रेरणा ली। जब देश का सबसे बड़ा नेता आगे जा रहा था, तब भला श्रीबाबू को क्या अधिकार था कि रोग से डरकर पीछे रह जाते? वे जत्था लेकर पैदल ही बेगूसराय से गढ़पुरा की ओर चल पड़े। बीस-बाईस मील का सफर पूरा करते-करते उनके पैरों में फलके निकल आये। नियत समय पर कड़ाह चूल्हे पर चढ़ाया गया और नमक बनाने का काम शुरू हुआ। किन्तु, अभी पानी जलकर आधे पर ही आया था कि पुलिस आ गई और कड़ाह को चूल्हे पर से उतारने लगी। उसी दिन अखबार में गांधीजी का हुक्म छपा था कि 'मुट्ठी टूट जाय, पर खुले नहीं।' श्रीबाबू जरा देर किकर्त्तव्यविमूढ़-से दीखे। किन्तु, दूसरे ही क्षण उन्होंने जलते हुए कड़ाह की दोनों मूठें अपने हाथों से पकड लीं और सच्चे सत्याग्रही की भाँति खौलते हुए पानी पर अपनी छाती रोप दी। जनता में एक कुहराम मच गया। श्रीबाबू के हाथ और छाती में फोड़े निकल आये। लोग रोने और चिल्लाने लगे किन्तु, किसी भी तरफ से एक तिनका भी नहीं बढ़ा। क्योकि बिहार-केसरी का हुक्म था कि "मेरी लाश भी गिर जाय तब भी तुम शान्त रहो।" उस दिन पुलिसवालों ने श्रीबाबू को बड़ी बेरहमी से घसीटकर चूल्हे से अलग ले जाकर गिरफ्तार किया। गढ़पुरा के लोगों के सामने अंगरेजो का जुल्म आशकार हो गया और उन्होंने शाप दिया कि इस नादिरशाही का नाश अवश्य होगा।

अभी गिरफ्तार करो

एक और भी सुनिये। सन् १९४५ की जनवरी या फरवरी में सरकार ने बिहार के पाँच बड़े कांग्रेसी नेताओं (परामर्शदात्री समिति के सदस्य) पर प्रतिबन्ध लगाना चाहा। उन दिनो श्रीबाबू की सहधर्मिणी पटना अस्पताल में बीमार थीं। संयोग की बात कि जिस दिन बेचारी स्वर्गारोहण

की तैयार कर रही थीं उसी दिन सरकार ने श्रीबाबू पर फरमान जारी करना चाहा। सेक्रेटेरियट के एक बड़े अफसर ने फोन पर मुझे यह सूचना दी और कहा कि यह खबर तुम महेश बाबू को दे आओ। मैं जो अस्पताल पहुँचता हूँ तो देखता हूँ कि चारों ओर काफी सरगर्मी छायी हुई है। बात यह थी कि मुझसे पहले ही पटने के कमिश्नर वहाँ पहुँच चुके थे। उन्होंने श्रीबाबू से यह कहने की हिम्मत की कि "आपकी पत्नी मरणासन्न हैं। अतएव सरकार आप पर ज्यादा सख्ती करना नहीं चाहेगी। केवल आप इतना कह दें कि आप पटने में जबतक हैं, राजनीति के कामों में भाग नहीं लेंगे।" सुनते ही बिहारकेसरी आपादमस्तक जल उठे। यह चिनगारी उनके देशाभिमान के उस गढ़ पर गिरी थी जिस में वे हर वक्त बारूद भरे रहते हैं। वे क्रोध में काँपते हुए गरज उठे, "मिस्टर ! आकाश और जमीन देखकर बातें करो। तुम्हें शऊर होना चाहिए था कि तुम मुझसे बातें कर रहे हो। मुझे पत्नी की मृत्यु की परवाह नहीं है। दुःख है कि तुमने दुरवस्था में मेरी कमजोरियों का फायदा उठाना चाहा। लेकिन, वह नहीं होगा। मैं जेल चलने को तैयार हूँ। लो, मुझे अभी गिरफ्तार करो।" बेचारा कमिश्नर ऐसा डरा कि उलटे पाँव गवर्नमेंट हाउस की ओर भागा और उसके जाने के सिर्फ ४५ मिनट बाद श्रीबाबू की पत्नी उन्हें अंग्रेजों से निश्चिन्त होकर जूझने को छोड़कर स्वयं स्वर्ग सिधार गई।

बिहारकेसरी की जय

श्रीबाबू ने त्याग-तपस्या, सचाई, निर्भीकता, कष्टसहिष्णुता और साहसिकता की बड़ी बड़ी परीक्षाएँ दी हैं और बराबर कामयाब उतरे हैं। कोई तीस वर्षों से उनका सिंहनाद इस प्रांत के कोने-कोने में गूँजता रहा है। स्वाधीनता के संग्राम में बिहार की जनता ने जो मोर्चे की अगली पंक्ति अख्तियार की उसमें श्रीबाबू के समान निर्भीक नेताओं की प्रेरणा ही सबसे बड़ा कारण रही है। उन्होंने प्रांत को जगाया, उसे युद्ध की ओर उन्मुख किया और स्वयं आदर्श उपस्थित करके जनता को निर्भीकता की राह दिखलायी। आज प्रांत उनकी हीरक-जयंती मनाने में जो इतना उत्साह दिखा रहा है, वह एक योग्य पुरुष का योग्य सत्कार है। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे श्रीबाबू को स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करें जिससे स्वतंत्र भारत के निर्माण में उनकी परिपक्व बुद्धि का पर्याप्त उपयोग किया जा सके।
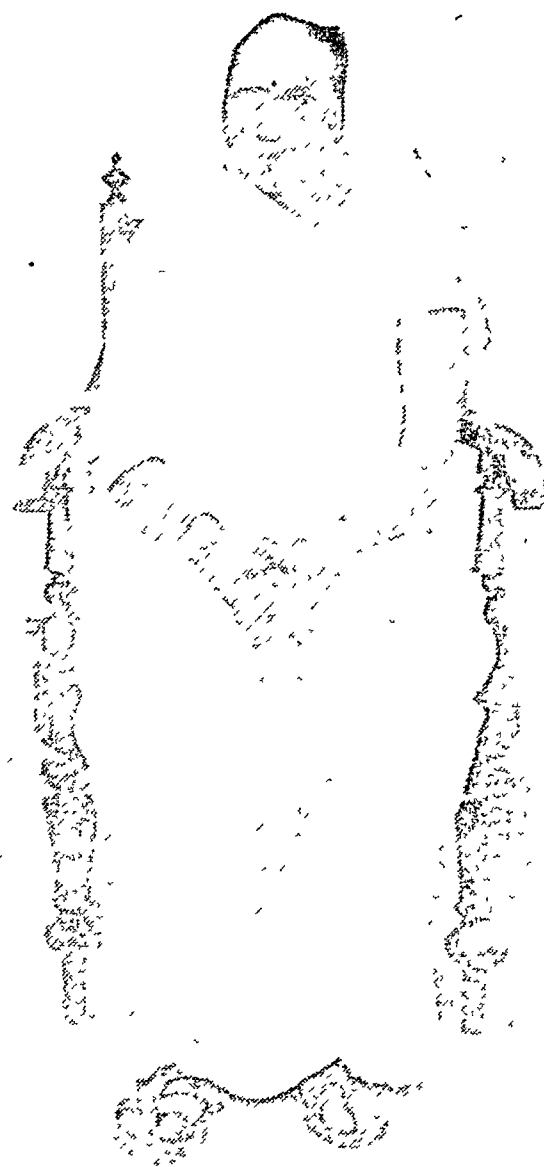
बिहारकेसरी श्रीकृष्ण सिंह जी की स्वर्गीया धर्मपत्नी

बिहारकेसरी की धर्मपत्नी की मृत्यु शय्या

बिहारकेसरी डा० श्रीकृष्ण सिंह : एक संस्मरण

[लेखक—श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु']

बिहार केसरी डॉ० श्रीकृष्ण सिंह को पहली बार मैंने कब और कैसे देखा, ठीक-ठीक याद नहीं है। प्रांतीय राजनैतिक क्षेत्र के एक प्रमुख नेता होने के कारण मैंने उनका नाम अपने विद्यार्थी-जीवन में ही सुना था, किंतु राजनीति से स्पष्ट संबंध न रखने के कारण उनका निकट-संपर्क न था। कांग्रेस के अनेक नेताओं के नाम की तरह श्रीबाबू के नाम से भी मैं अपने बचपन से ही परिचित था। आज से लगभग बीस वर्ष पहले जब श्रीबाबू हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी के बिहारी छात्रों द्वारा आयोजित एक सभा की अध्यक्षता के लिए काशी गये तब उन्हें पहली बार मैंने निकट से देखा। उस समय मैं हिंदू-विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी था और वहाँ के बिहारी छात्र-सम्मेलन के साथ कुछ संबंध रखता था। श्रीबाबू आए और चले गये। उनसे बातें करने के लिए न तो अवसर मिला और न मैंने वैसे अवसर को प्राप्त करने की चेष्टा की। नेताओं से परिचित रहने की लालसा तो रहती थी, पर परिचय प्राप्त करने की प्रवृत्ति न थी और न अब भी है। ऐसी प्रवृत्ति मेरी प्रकृति का एक अभिन्न अंग रही है। जान-बूझकर, समझ-विचार कर या अपना उल्लू सीधा करने के लिए अबतक मैंने किसी से परिचय प्राप्त नहीं किया है। परिस्थिति या संयोग ने परिचय प्राप्त करने के जो अवसर दिए हैं उनसे ही मुझे संतुष्ट रहना पड़ा है और मैं प्रसन्नता-पूर्वक संतुष्ट हूँ।

हिंदू-विश्वविद्यालय छोड़ने के कुछ दिन बाद मैं हिंदी-विद्यापीठ, देवघर चला गया और वहाँ से मैंने अपने पूर्णियाँ जिला के बनमनखी में होनेवाले राजनैतिक सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया। यह सन् १९३५ ई० की बात है। मुझे सूचना मिल चुकी थी कि बिहार-केसरी बाबू श्रीकृष्ण सिंह उस सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे। देवघर और बनमनखी के मार्ग में ही ट्रेन में श्रीबाबू के दर्शन हुए। उनके साथ बिहार-विभूति श्रीअनुग्रहनारायण सिंह और बाबू मथुरा-प्रसाद (अब स्वर्गीय) भी थे। बनमनखी की स्वागत-समिति ने अतिथि-सत्कार का भार मुझपर ही सौंपा था। मेरे लिए यह एक गौरव की बात थी। अपने जिले के सम्मेलन में आए हुए प्रमुख अतिथियों की सेवा-सुश्रूषा करने का सौभाग्य प्राप्त करना उनके निकट-संपर्क में आने का एक दुर्लभ

अवसर भी था। मुझे यह प्राप्त हुआ और मैंने श्रीबाबू को, अबतक जितनी दूर से देखा था उससे बहुत निकट जाकर, देखा। प्रकृति ने श्रीबाबू के जीवन में कई विशेषताएँ दी हैं। दया, दाक्षिण्य, विनयशीलता, मुक्तहास, स्नेहार्द्रता आदि गुण तो विशेषतः निकट रहने पर ही ज्ञात होते हैं, किंतु उनकी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति दूर बैठे श्रोता को भी रोमांचित कर सकती है। सभा-स्थल में जबतक उनकी वक्तृत्व शक्ति का प्रवाह चलता रहता है, कौन उनके विरोध की कल्पना कर सकता है। उनका जादू श्रोता के सिर पर सवार रहता है। वाणी का चढ़ाव उतार, लय-सुर श्रोता को मन्त्र मुग्ध रखता है। यह उनकी क्षमता है, प्रतिभा है।

श्रीबाबू के व्यक्तित्व की एक मर्यादा है। देखते ही मालूम पड़ता है कि कोई पुरुष सिंह है। उनका हृदय जहाँ कुसुम सम कोमल है वहाँ वज्रवत् कठोर भी। यह कोई विरोधाभास नहीं, प्रत्युत हृदय की स्वाभाविकता है। सहृदयता का यही अर्थ है। क्रोध के अवसर पर क्रोध, हास्य के अवसर पर हास्य और दया के अवसर पर दया दिखाना सहृदयता है। श्रीबाबू असीम भावुक हैं और उनकी भावुकता एक ऐसी पूँजी है जिससे वे सहज ही अपने विरोधियों को भी मित्र बना लेते हैं।

कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्रीनंदकुमार सिंह ने, जो अपने को नेता कहे जाने की अपेक्षा कार्यकर्त्ता माना जाना ही गौरव और प्रतिष्ठा की बात समझते हैं, मुझसे अनुरोध किया कि हवेली खड़गपुर में होनेवाले मुंगेर-जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन की मैं अध्यक्षता करूँ। अधिवेशन की तिथि भी उन्होंने ऐसी सुविधाजनक रखी जिसमें मैं पूजावकाश में देवघर से हवेली खड़गपुर होता हुआ पूर्णियाँ जा सकता था। मेरे लिए कोई कारण नहीं था कि मैं उनके अनुरोध की रक्षा न करूँ। मैंने उनके आदेश को शिरोधार्य किया और जिला हिंदी-साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित हुआ। १६३५ ई० के भारतीय शासन-विधान के अनुसार प्रांतीय मन्त्रिमंडल का गठन हो चुका था और कांग्रेस की ओर से बाद में श्रीबाबू ने प्रांतीय शासन सूत्र के संचालन का भार अपने हाथों में ले लिया था। यह १६३७ ई० के अक्तूबर की बात है। श्रीबाबू ने भी वहाँ पधारने की कृपा की थी। सम्मेलन के अध्यक्ष होने के नाते मैंने उस अवसर पर उनसे भाषण करने का अनुरोध किया। उन्होंने केवल मेरे अनुरोध का सम्मान ही नहीं किया, वरन् अपना स्वाभाविक सौजन्य दिखलाते हुए यह कहकर—जिस राजा के राज्य में अभी मैं हूँ उसका आदेश है कि मैं भी कुछ बोलूँ—अपनी अद्भुत वक्तृत्व शक्ति का परिचय दिया। श्रीबाबू स्वयं प्रांतीय शासन के सर्वोच्च प्रतिनिधि अधिकारी थे, किन्तु शासक होने के गर्व ने उन्हें एक क्षुद्र सभा-मंडल तक सीमित राज्याधिकारी के अनुरोध को, आदेश की भाँति पालन करने से न रोका। यह केवल सामान्य शिष्टाचार की बात नहीं है। उनकी विनम्रता बड़ी विमोहक है।

पिछले दस बारह वर्षों के भीतर उनसे कई बार मिलने के अवसर मिले हैं। कई बार यात्रा या भ्रमण में कई दिनों तक साथ साथ रहने के अवसर मिले हैं। उनकी प्रकृति के ध्यान-

पूर्वक अध्ययन के बल पर मैं कह सकता हूँ—बड़ा आदमी होने के कारण उनमें विशेषताएँ नहीं दिखलाई पड़तीं, प्रत्युत अपनी विशेषताओं के कारण ही वे बड़ा आदमी बन सके हैं। उनका बड़प्पन अर्जित बड़प्पन है।

श्रीबाबू बड़े अध्ययनशील हैं, बल्कि मैं इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि वे भीषण स्वाध्यायशील हैं। पुस्तकें ही उनकी संपत्ति हैं। सरकारी फाइलों को देखने के लिए वे ज्यादा समय न भी निकाल सकें, पर स्वाध्याय के लिए समय बनाना अनिवार्य है। इसी प्रवृत्ति ने उन्हें, आज वृद्धावस्था में भी, अध्यापक रखकर संस्कृत पढ़ने को बाध्य किया है। श्रीबाबू का स्वाध्याय स्वांतःसुखाय ही है। मेरी जानकारी में दो-चार फुटकर लेखों के अतिरिक्त उन्होंने अपनी विद्वत्ता को लिपिबद्ध करने की चेष्टा नहीं की है। इस सम्बन्ध में मैंने कई बार उन्हें उपालंभ भी दिए हैं, किन्तु स्वाध्याय के आनंद को छोड़ वे रचना का आनन्द पसंद ही नहीं करते।

आज राष्ट्रभाषा या राजभाषा के पद पर हिंदी को आसीन करने का आग्रह चारों ओर से हो रहा है। बिहार सरकार ने भी हिंदी को यह मान्यता दे दी है। नागरी के साथ हिंदी सरकारी कार्यालयों में धीरे-धीरे प्रवेश पा रही है। श्रीबाबू हिंदी के प्रबल समर्थक हैं और बिहार में हिंदी को राजभाषा के रूप में जो यह स्थान मिलता जा रहा है उसका सारा श्रेय श्रीबाबू को ही है। ईश्वर उन्हें स्वस्थ और दीर्घायु करें।
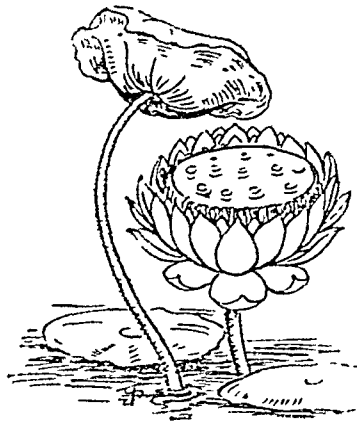
संस्मरण

[लेखक—श्री शिवपूजन सहाय, राजेन्द्रकालेज, छपरा]

मैंने राजनीति क्षेत्र में कभी काम किया नहीं, इसलिए किसी नेता से कभी किसी प्रकार का सम्पर्क भी न हुआ। अगर कभी हुआ भी, तो केवल साहित्यिक कारण से ही। श्रीबाबू से भी पहले-पहल इसी कारण मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह भी राजनीतिक क्षेत्र के एक प्रसिद्ध व्यक्ति और साहित्यिक क्षेत्र के यशस्वी कलाकार श्रीबेनीपुरीजी के साथ।

सभवत १९४५ या ४६ के शीतकाल का आरम्भ था। रात के आठ बजे होंगे। पटना में, बोरिङ्ग रोड पर अमावाँ-राज्य की कोठी में, आपके दर्शन हुए। श्रीबेनीपुरीजी ने मेरा परिचय दिया। मैंने श्रीराजेन्द्र-अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए आपसे एक लेख की प्रार्थना की। आपने फिर एक बार याद दिलाने पर भेज देने का वादा किया। ग्रन्थ के बारे में आप और और बातें भी पूछने लगे। मैंने सब विवरण बतलाया।

बस, आपसे मिलने के उतने ही क्षण अब तक नसीब हुए हैं। किन्तु उतने ही क्षणों में आपके मधुर व्यक्तित्व ने बहुत प्रभावित किया। आपके उदार व्यवहार से बड़ा सन्तोष भी हुआ।

आपके प्रथम दर्शन का सुअवसर असहयोग-युग में प्राप्त हुआ था—पटना में ही। उस समय आपकी सेवा में उपस्थित होकर आपसे बातें करने का सुयोग तो न मिला, पर आपके ओजस्वी भाषण की छाप दिल पर गहरी पड़ी।

सन् १९२० में आरा (शाहाबाद) के एक हाईस्कूल से मैं असहयोगी बनकर निकला और वहीं के नवस्थापित राष्ट्रीय विद्यालय में हिन्दी का अध्यापक हुआ। प्रति रविवार को छात्रों के दल के साथ गाँवों में जाकर प्रचारकार्य करता। विद्यालय में भी विद्यार्थियों को राष्ट्रीयता का ही सन्देश सुनाना पड़ता। सार्वजनिक सभाओं की सूचना पाते ही उनमें पहुँच कर जोशीले भाषण सुनने की चाट लगी रहती। यहाँ तक कि गरमागरम भाषण सुनने के लोभ से कभी कभी पटना तक की दौड़ लगाता।

उन्हीं तूफानी दिनों में पटना में आप का भाषण सर्वप्रथम सुना। नये खून में उबाल-सा आ गया। देखा कि आप बोलते समय स्वदेशाभिमान से उन्मत्त हो उठे हैं। बोलते-बोलते आपके

मुख से फेन निकलने लग जाता। यहाँ तक कि आप हाँपने लग जाते। गले की नसें खूब तन जातीं। भुजाएँ फड़कती-उछलती रहतीं। बँधी मुट्ठी से दृढ़ संकल्प का संकेत मिलता। पैरों की धमक पृथ्वी को सचेत करती। कभी-कभी पानी पीकर आप कुछ दम लेते फिर पानी पी-पीकर निर्भीक स्वर में विदेशी सरकार को कोसते। तेजस्वी वाणी के उत्तेजक स्वर से सभास्थल गूँजता रहता। आपके चेहरे की तमतमाहट लोगों में जीवट भर देती। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। आँखों में रह-रह आँसू उमड़ पड़ते। रगों में बिजली-सी दौड़ गई। दिल में नई उमंगें लहराने लग गईं। जान पड़ा, मानों, एक नई चेतना और नई प्रेरणा पा गया होऊँ। भाषण के कई मार्मिक वाक्यों को मन-ही-मन दुहराता-गुनगुनाता आरा लौट गया।

शायद उन दिनों आपकी जवानी पूरे ओज पर थी। 'लाउडस्पीकर' का वह युग नहीं था। बड़ी-से-बड़ी सभा में भी नेता या वक्ता को अपनी वाणी की शक्ति की ही आजमाइश करनी पड़ती थी। आपकी वाणी निस्सन्देह बड़ी शक्तिशालिनी थी। अब भी है वह वैसी ही, मगर उम्र का असर तो तन-मन-वचन पर पड़ता ही है। राष्ट्रीय जोश का ज्वारभाटा जितना उन दिनों हहास बाँधकर आता रहा उतना अब संभव भी नहीं। फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि आपकी समर्थ वाणी ही आपके लिए 'बिहार-केसरी' की उपाधि लाने में समर्थ हुई। जिन्होंने गान्धीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन के आरम्भिक युग में आपके सनसनीदार भाषण सुने हैं, वे कभी यह कहने में न हिचकेंगे कि सचमुच आप बोलते नहीं, दहाड़ते हैं।

आपका शरीर पहले से अब अधिक भव्य हो गया है। वाणी में भी पहले से अधिक निखार आ गया है। पुरानी स्मृति उसमें सिंह-गर्जन की झलक आज भी देख लेती है। उसने सोये को जगाया है, गिरे को उठाया है; डरे को निडर किया है, हताश को उत्साह दिया है। उसने हनुमानी हाँक की तरह भय का भूत भगाने में सफलता पाई है। उसने मुर्दों में नई जान फूँकी है। उसके जादू का असर वे ही परख सकते हैं जो इस बीसवीं सदी की आरम्भिक दो दशाब्दियों में देश-दशा देख चुके हैं। उस समय लोगों के दिल पर एक प्रकार का शासनातंक छा रहा था। आपके भाषणों ने आतंकनिग्रह गोलियों-सा असर किया। ईश्वर ने आपको जो वाणी की विमल विभूति दी है उसका जैसा सदुपयोग हुआ वैसा ही सुपरिणाम भी। बिहार का कोना-कोना गूँज गया। जन-जन के मन में जागृति की जोत जगी।

एक बार बिहार-प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आपका साहित्यिक भाषण सुना। आरा में चम्पारण के भाई मूनिसजी के सभापतित्व में अधिवेशन हुआ था। आप पहली बार बिहार के प्रधान मंत्री हुए थे। उस भाषण से यह स्पष्ट लक्षित हुआ कि आपके साहित्यिक विचार आपके अत्यन्त गंभीर अध्ययन के फल हैं। उसी दिन एक संगीत-सम्मेलन में भी आप संगीत-साहित्य पर जो कुछ बोले उससे भी आपके सतत स्वाध्याय की महत्ता प्रकट हुई।

आपकी अध्ययनशीलता बिहार में बेजोड़ मानी जाती है। उत्तमोत्तम ग्रंथ ही आपके चिरसंगी हैं। आपके अहर्निश स्वाध्याय-यज्ञ का प्रसाद यदि साहित्य को मिल पाता तो और भी लोकोपकार हो सकता। आपके पार्श्ववर्त्तियों को आपके रत्नकोष से कुछ ग्रहण-वितरण करना चाहिए। यदि आपकी ज्ञानगरिमा साहित्य को एक मणिमंजूषा दे जाती तो निश्चय ही वह राष्ट्र की एक अमूल्य सम्पत्ति होती। इसी कामना के साथ मैं ईश्वर से आपकी चिरायुकामना करता हूँ। तथास्तु।

माननीय डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह

[लेखक:—श्री श्यामनन्दन सहाय]

माननीय डाक्टर श्री कृष्णसिंह बिहार के प्रथम जनप्रिय प्रधान मंत्री हुए जब कि स्वाधीनता नहीं आयी थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी वे बिहार के प्रधान मंत्री हैं। वह सच्चे अर्थों में जनप्रिय प्रधान मंत्री हैं। उन की जनप्रियता उन के दल और सम्प्रदाय की सीमा को पार कर दूर चली गयी है। प्रान्तो में ऐसे बहुत थोड़े लोग हैं जो सभी वर्गों के लोगों के इतने बड़े विश्वास-पात्र हों। किसी ही आधुनिक राजनीतिक हथकंड़ों के द्वारा नहीं, बल्कि अपने स्वभाव की मृदुता के द्वारा, अपने विचारों की गंभीरता के द्वारा, अपने हृदय की दयाप्रवणता के द्वारा, अपने विरोधियों के प्रति उदारता के कारण और सबसे बढ़ कर अपने व्यक्तित्व की मिठास के कारण उन्होंने यह विश्वास प्राप्त किया है। श्रीबाबू ने कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अविचलित रह कर बड़े-बड़े पेंचीदे प्रश्नों का हल ढूढ़ निकाला है। यह चीज उस समय देखी जाती है जब कि धारा सभाओं में सरकार कुछ प्रस्ताव लाती है और उसके बड़े विवादग्रस्त प्रश्नो पर बहस चलती रहती है।

उनके जिस गुण ने मुझे उनकी ओर सबसे अधिक आकृष्ट किया है, वह है अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण समझने की उनकी इच्छा और तत्परता। सरकार और विरोधी दल के बीच उन्होंने सदा पुल का काम किया है। साम्प्रदायिक दंगों के गर्हित दिनों में भी मुसलमानों ने जिनमें से कुछ के साथ मेरा निकट परिचय है, मुझसे निस्संकोच कहा था कि बाबू श्रीकृष्ण सिंह में उनका पूरा विश्वास है। और प्रान्त में वही उनकी आशा हैं।

मुझे पिछली पुलिस-हड़ताल के दिनों की एक प्रमुख घटना याद आ रही है। पुलिस के सिपाहियों ने बड़ी तादाद में हड़ताल कर दी थी। हड़तालियो और दर्शकों का एक झुण्ड धारा सभा-भवन की बरसाती और उसके बाहर नारे लगाता हुआ आ धमका था। निस्संदेह उनके नारों में सरकार के लिए प्रशस्ति नहीं, निन्दा थी और वे उपद्रव मचाने पर उतारू थे। प्रधान मंत्री दोतल्ले पर अपने कमरे में बैठे थे। दोपहर के व्यालू के लिए मैं घर जा रहा था। जब कि मुझे भीड़ दिखाई पड़ी, मैंने अपनी गाडी वापस भेज दी और पहले अध्यक्ष महोदय के पास गया और फिर प्रधान-मंत्री के पास। परिस्थिति बेहद नाजुक और खतरनाक थी। अगर हड़ताल को ठीक से नहीं सम्भाला गया होता तो शासन को लकवा मार जाता। मुझे यह देख कर बड़ा सन्तोष और सुख हुआ कि श्री-

बाबू बिल्कुल शान्त और विचारमग्न थे। मैंने उन्हें परिस्थिति को सँभालने के सम्बन्ध में अपने विचार दिये। उन्होंने बड़ी तत्परता और निर्णयात्मक तरीके से काम किया और किसी सिद्धान्त पर बिना झुके और शासन की मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए उन्होंने स्थिति को सँभाल लिया। उस समय उनके पास न पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल थे और न सरकार के चीफ सेक्रेटरी। यह एक व्यक्ति का कार्य था और एक व्यक्ति की सफलता। और यही हैं बाबू श्रीकृष्ण सिंह। इस एक घटना ने पुलिस-हड़ताल का रुख ही बदल दिया।

श्रीबाबू में स्वाभिमान कूट कूट कर भरा है। जिस जनता के नेतृत्व उनके कन्धों पर आया है उसके चुने हुए प्रतिनिधियों की मर्यादा और अधिकार की रक्षा में श्रीबाबू कभी भी आगापीछा नहीं करते। बिहार का जब इतिहास लिखा जायगा तो उसमें स्वाधीनता प्राप्ति के पहले और बाद श्रीबाबू ने गवर्नरों के साथ मन्त्रिमण्डल के वैधानिक अधिकारों के लिए जो सघर्ष किया है, वह बड़े गर्व के साथ अंकित होगा। आज भी जब केन्द्र में और प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें हैं, श्रीबाबू ने प्रान्तीय शासन की स्वाधीनता को बाहरी हस्तक्षेप से अक्षुण्ण रखने में मूल्य कार्य किया है। श्रीबाबू एक प्राचीन और प्रतिष्ठित परिवार के वंशधर हैं जिसकी अपनी ही अभिजात परम्परायें हैं। इसलिए मौजूदा दुनिया में जब सभी तरह के लोगों की सभी तरह की जरूरतें और माँगें बढ़ती जा रही हैं तो श्रीबाबू को उनका साथ देने में कठिनाई पैदा हो जाती है। यहाँ तक कि वह अस्थिर ही नहीं, विचलित तक हो उठते हैं। लेकिन फिर भी मानना होगा कि उन्होंने परिस्थिति के साथ अपना सामंजस्य बढ़िया ढग से स्थापित कर लिया है।

श्रीबाबू में मस्तिष्क और हृदय का मणिकांचन-योग हुआ है। और यही कारण है कि उन्होंने प्रान्त के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में ऐसा स्थान बना लिया है जिसे पाकर कोई भी अभिमान कर सकता है।

विभिन्न तरह के काम और राजकीय दायित्व से लदे रहने पर भी श्रीबाबू पढ़ने के लिए समय निकाल ही लेते हैं। अध्ययन उनका एक व्यसन है और उनके खर्च का एक बड़ा हिस्सा पुस्तकों के खरीदने में जाता है। श्रीबाबू सुरुचि और सुस्वाद के व्यक्ति हैं। यद्यपि वह रूक्षता में भी जी सकते हैं किन्तु, कौन नहीं जानता कि अच्छा भोजन और अच्छा जीवन उनको बहुत प्रिय है।

ऐसा ही व्यक्ति आज बिहार का प्रधान मंत्री है। उनके जीवन के स्वार्थ को उपहास करनेवाले प्रयत्नों में हम देख रहे हैं कि प्रेरक वृत्तियाँ ही बलवान हैं।

———

मेरे श्रीबाबू

[लेखक—माननीय डा० श्री अनुग्रह नारायण सिंह]

मैंने १९०८ में पटना कालेज में नाम लिखाया और उसके बाद श्रीबाबू से मेरी जान-पहचान हुई। श्रीबाबू से मेरी जान-पहचान करानेवाले थे स्वर्गीय शम्भुनाथ वर्मा जो हम दोनों के समान रूप से मित्र थे और जिनका बच्चों-सा सरल तथा प्रसन्न स्वभाव भुलाये भी नहीं भूलता। उस समय के नौजवानों पर बंगभंग-आन्दोलन का स्थायी प्रभाव पड़ा था। तिलक और पाल उस समय के नौजवानों के प्रिय नेता थे। श्रीबाबू की श्रद्धा बालगंगाधर तिलक के प्रति थी और वे उनकी तथा उनके लेखों की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। श्रीबाबू तिलक के पक्के भक्त थे। वह संघर्ष का जमाना था। उग्रवादी समझे जानेवाले छात्रों के उत्साह को दबाने के लिए कालेज के अधिकारी विशेष रूप से सचेष्ट रहते थे; क्योंकि ऐसे छात्र स्वदेशी-आन्दोलन का समर्थन करते और उसमें भाग लेते थे। उन दिनों छात्रावास-जीवन में अनेक परिवर्त्तन हुए। कालेज-अधिकारियों से बराबर संघर्ष चलता रहता था। एक बार तो आम हड़ताल भी हो गई जो पटने की शिक्षा-संस्थाओं के इतिहास में पहली आम हड़ताल थी। स्वर्गीय मजरूल हक तथा स्वर्गीय हसन इमाम-जैसे तत्कालीन नेताओं के हस्तक्षेप करने पर हड़ताल समाप्त हुई; मगर तत्कालीन साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ उठती हुई विद्रोह की भावना किसी प्रकार भी दबाई नहीं जा सकी। हालांकि उस समय खुलकर कानून की अवज्ञा नहीं की जा रही थी, मगर श्रीबाबू और उनके साथी उग्रवादी साहित्य के अध्ययन में डूबे रहते थे। वे आगे चलकर विदेशी सरकार के खिलाफ चलनेवाली लड़ाई की तैयारी कर रहे थे। छात्रजीवन समाप्त होने के बाद श्रीबाबू वकालत करने लगे और कुछ समय के लिए हम दोनो के बीच का संपर्क टूट गया। थोड़े ही समय में श्रीबाबू की वकालत चमक उठी और प्रमुख वकीलों में उनकी गणना होने लगी।

चम्पारन में महात्मा गांधी के आगमन और बिहार-छात्र-सम्मेलनों से राष्ट्रवादी आन्दोलन और भी जोरदार हो उठा। नौजवानों के दिलों में धीरे-धीरे देशभक्ति की भावना भर रही थी और वे उस महान स्वतन्त्रता-संग्राम की तैयारी कर रहे थे जो महात्मा गांधी के कांग्रेस में आने के परिणाम-स्वरूप सामने पहुँच गया था। उस समय की एक घटना मुझे याद आती है। १९१६ में गंगा नदी में बड़ी भीषण बाढ़ आयी थी। मैं उस समय भागलपुर टी० एन० जे० कालेज में प्रोफेसर था। मैंने

सहायता कार्य अपने हाथों में लिया। छात्रों के एक दल के साथ जगह जगह जाकर चन्दा इकट्ठा करता और बाढ़-पीड़ितों को सहायता प्रदान करता। इसी सिलसिले में मैं मुंगेर पहुँचा। मुंगेर में मैं अपने पुराने दोस्त से मिल सकूँगा, इस बात से मैं बहुत खुश था। जब मैं उनसे मिला, उन्होंने मेरा हार्दिक स्वागत किया और हँसते हुए कहा कि म पेडेगाग (घुमक्कड़) हूँ। उत्तर में मैंने कहा कि आप भी तो डेमेगाग (व्याख्यानों के जरिये लोगों को गुमराह करनेवाले) ही हैं। अनेक वर्षों के बाद दो साथियों का यह बड़ा ही सुखमय मिलन था।

जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने असहयोग-आन्दोलन शुरू किया तो श्रीबाबू उसमें कूद पड़े। उन्होंने अपनी वकालत स्थगित कर दी और नये मतवाद का डटकर प्रचार करने लगे। उन्होंने मुंगेर जिले के सुदूर गाँवों तक का दौरा किया और उस जिले का शायद ही कोई गाँव ऐसा हो जहाँ वे नहीं गये। उस समय आज के समान तेज चलनेवाली कोई सवारी नहीं मिलती थी। पैदल, बैलगाड़ी या ऐसी दूसरी सवारी पर उन्हें दौरा करना पड़ता था जो उस समय मिल जाती थी। मगर इतनी असुविधाओं के बावजूद भी श्रीबाबू ने तब तक चैन नहीं लिया जबतक अपने मुंगेर जिले के एक-एक गाँव का उन्होंने दौरा नहीं कर डाला।

१६२१ में नागपुर-कांग्रेस अधिवेशन के प्रस्तावानुसार सभी प्रान्तों में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों का संघटन किया गया। उसी वर्ष बिहारप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का जन्म हुआ। श्रीबाबू बराबर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठकों में भाग लेते थे। जिसके परिणामस्वरूप हमलोगों का सम्पर्क और गाढ़ा होता गया। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के बीच पूर्ण सहयोग की भावना थी और मुझे हर कार्यक्रम में श्रीबाबू की सहायता का विश्वास रहता था। देश के लिए अपने महान बलिदान, अटूट साहस और राष्ट्रीयता के प्रति अद्भुत भक्ति के कारण श्रीबाबू जनता के सबसे प्यारे नेता हो गये। बिहार के राजनीतिक जीवन में श्रीबाबू का सबसे आगे आना निश्चित था। बिहार के प्रमुख राजनीतिज्ञों में उनका निराला स्थान है। १६२१ के बाद बिहार का इतिहास श्रीबाबू के जीवन का इतिहास है। १६२१ के बाद बिहार में एक भी ऐसे काम का नाम बताना कठिन है जिसमें प्रमुख रूप से उनका हाथ नहीं रहा हो। तबसे वे बराबर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे हैं और श्रीबाबू उन विरल लोगों में हैं जिन्होंने बिहार को उन्नति की इस सीढ़ी पर पहुँचाया है।

कांग्रेस ने जब पहलेपहल चुनाव लड़ने का फसला किया तो श्रीबाबू लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये और कांग्रेस पार्टी का नेता भी उन्हें ही निर्वाचित किया गया। जिला बोर्ड के चुनाव में उन्होंने कांग्रेस के लिए बहुत काम किया। अगर वे चाहते तो आसानी से मुंगेर जिला बोर्ड के चेयरमैन हो सकते थे, मगर उनकी आत्म-नियन्त्रण और आत्म-बलिदान की भावना प्रबल हो उठी और उन्होंने अपने परम मित्र स्वर्गीय शाह मुहम्मद जुबैर साहब को चेयरमैन बनने दिया और स्वयं उनके मातहत वाइस चेयरमैन बनना पसन्द किया।

१६३४ में बिहार में प्रलयकारी भूकम्प आया जिसने मुंगेर और बिहार के दूसरे अनेक शहरों को विनष्ट कर दिया। श्रीबाबू अभी जेल से रिहा ही हुए थे, मगर वे पुनर्निर्माण के कार्य में सारी शक्ति के साथ जुट गये और उन्होंने तबतक आराम की साँस न ली जब तक उजड़ा बिहार फिर से बस नहीं गया। मुंगेर जिले के योरोपियन अफसरो के साथ उनका बराबर संघर्ष होता रहा। मगर उन्होंने उनकी परवाह किये बिना अपना काम जारी रखा। उन्होंने इन योरोपियन अफसरों के क्रोध के परिणामों की कभी भी चिन्ता नहीं की। उनसे श्रीबाबू ने बराबर लोहा लिया और जहाँ उनके सामने अन्य व्यक्ति दब जाते थे वहाँ श्रीबाबू ने हमेशा अपना सिर ऊँचा रखा। जब-जब कांग्रेस ने देश के सामने लड़ाई का कार्यक्रम रखा, चाहे वह असहयोग-आन्दोलन हो या १६३० का नमक-सत्याग्रह, चाहे वह १६४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह हो या १६४१ का भारत छोड़ो आन्दोलन, श्रीबाबू हमेशा मोरचे पर सबसे आगे रहते और नौकरशाही तुरन्त उन्हें चुन लेती और जेल भेज देती।

बार-बार जेल जाने से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। भूकम्प के बाद कांग्रेस ने धारासभा में अपने प्रतिनिधियों को भेजने का फैसला किया। श्रीबाबू मुंगेर-गया-निर्वाचन-क्षेत्र से बहुत बड़े बहुमत से चुने गये और जब उन्हें प्रान्तीय असेम्बली में आने को आह्वान किया गया तो वे कांग्रेस-दल के नेता निर्वाचित किए गये और बिहार के प्रधान मंत्री हुए। उनके ढाई वर्षों के शासनकाल में बिहार के गौरव और स्थान में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई और १६३८ में राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के प्रश्न पर जब गवर्नर से उनका मतभेद हुआ तो उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के इस्तीफा दे दिया। १६४६ में वे फिर प्रान्तीय असेम्बली के सदस्य चुने गये और फिर बिहार के प्रधान मंत्री के उसी प्रमुख पद को सुशोभित कर रहे हैं।

प्रान्त की जनता इस महीने में उनकी हीरक-जयन्ती मना रही है। मेरी कामना है कि ऐसे पवित्र अवसर पर उनके एक तुच्छ सहकर्मी और मित्र-द्वारा आँका गया उनका यह रेखाचित्र अनुपयुक्त न हो।

श्रीबाबू का जेल-जीवन

[लेखक—श्रीरामेश्वर शर्मा 'कमल']

असहयोग-आन्दोलन और पहली जेल-यात्रा

श्रीबाबू की पहली जेल यात्रा सन् १९२२ ई० में हुई। सरकार ने असहयोग-आन्दोलन के दमन के सिलसिले में कांग्रेस के स्वयंसेवक दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया था। इस परिस्थिति पर विचार करने के लिए छपरे में प्रान्त भर के कांग्रेस जनों और प्रमुख कार्यकर्त्ताओं की एक सभा बुलाया गई, जिसमें सभी लोगों ने एकमत होकर सरकार की इस खुली चुनौती को स्वीकार करने का फैसला किया। श्रीबाबू जब इस सभा से लौटे, तब उन्होंने मुंगेर पहुँचने के पहले जिले के कई प्रमुख स्थानों का दौरा किया और सभी जगह लोगों से यह कहते गये कि सरकार के इस फरमान की अवज्ञा अवश्य की जानी चाहिए। मुंगेर पहुँचकर उन्होंने यह फैसला किया कि सरकार की आज्ञा के विरोध में हर रोज स्वयंसेवकों के जत्थे निकाले जाने चाहिए। पहला जत्था शहर में निकल चुका था और श्रीबाबू तेजेश्वर बाबू के साथ बैठ कर विचार कर रहे थे कि दूसरा जत्था कब निकाला जाय। इतने में ही स्वर्गीय धर्मनारायण सिंह कचहरी से वापस आए और हँसते हुए उन्होंने कहा कि "श्रीबाबू! वह देखिए! ये कौन लोग आ रहे हैं?" और सचमुच ही सशस्त्र पुलिस की एक टुकड़ी अफसरों के साथ उधर को ही चली आ रही थी जिधर श्रीबाबू अपने मित्रों के साथ बैठे हुए बातें कर रहे थे।

पुलिस लेकर श्रीबाबू को गिरफ्तार करने के लिए जो दो अफसर आए थे, उनमें से एक थे श्री रामप्रसाद नारायण शाही, जो अब पटना डिवीजन के कमिश्नर हैं और दूसरे थे मौलवी हमीद, जो अब बिहार पुलिस के प्रधान यानी आइ० जी० हैं।

श्रीबाबू अपने मित्र श्री तेजेश्वर प्रसाद, स्वर्गीय शाह मुहम्मद जुबैर और स्वर्गीय धर्मनारायण सिंह के साथ गिरफ्तार करके मुंगेर पहुँचा दिए गये। जेल जाने का यह पहला ही मौका था और ये सभी राजनैतिक बन्दी जेल की सभी मुसीबतें उठाने को तैयार थे। रात के भोजन के समय चारों मित्र फर्श पर ही पलथी लगाकर बैठ गये। सब के सामने लोहे की बाटी में काली-काली पानी-सी दाल परोसी गई और हर एक के हाथ में तीन तीन अधजली रोटियाँ और उन्हीं पर कोबी के पत्ते का कुछ साग रख दिया गया। कहते हैं, उस दिन श्रीबाबू के किसी भी मित्र से वह
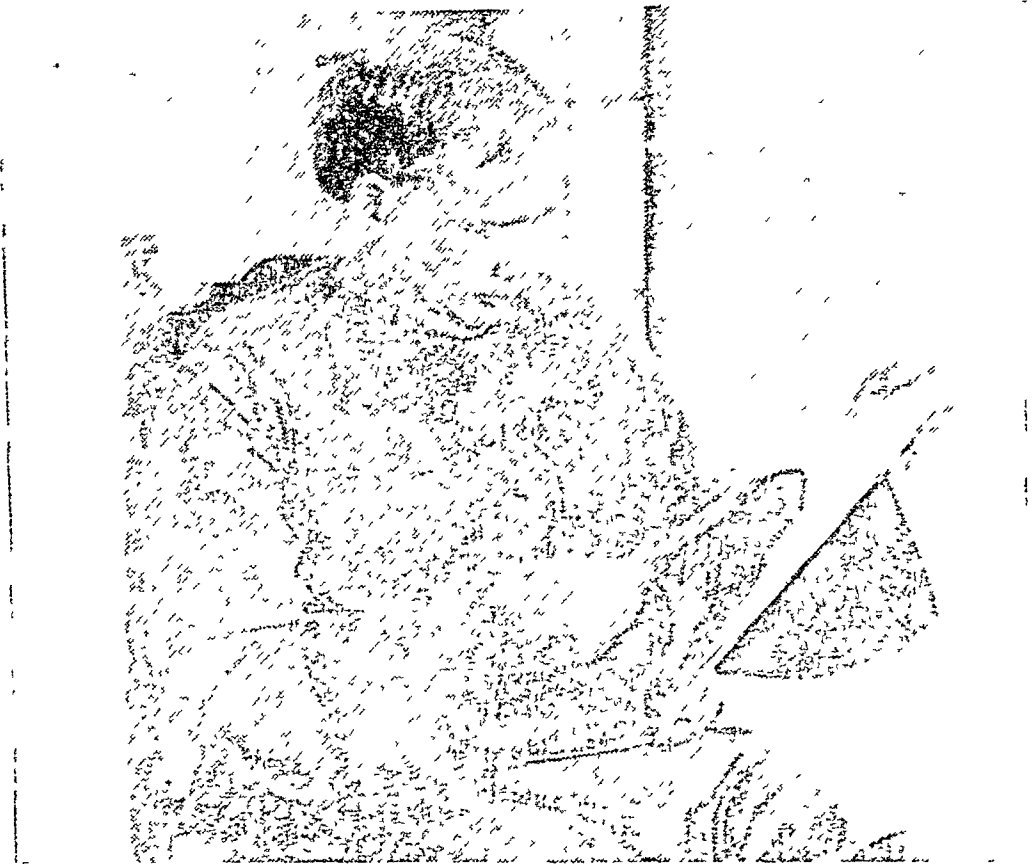
डॉ० श्री श्रीकृष्ण सिंह जी, १९३८ ई० में जेल से लौटने के बाद
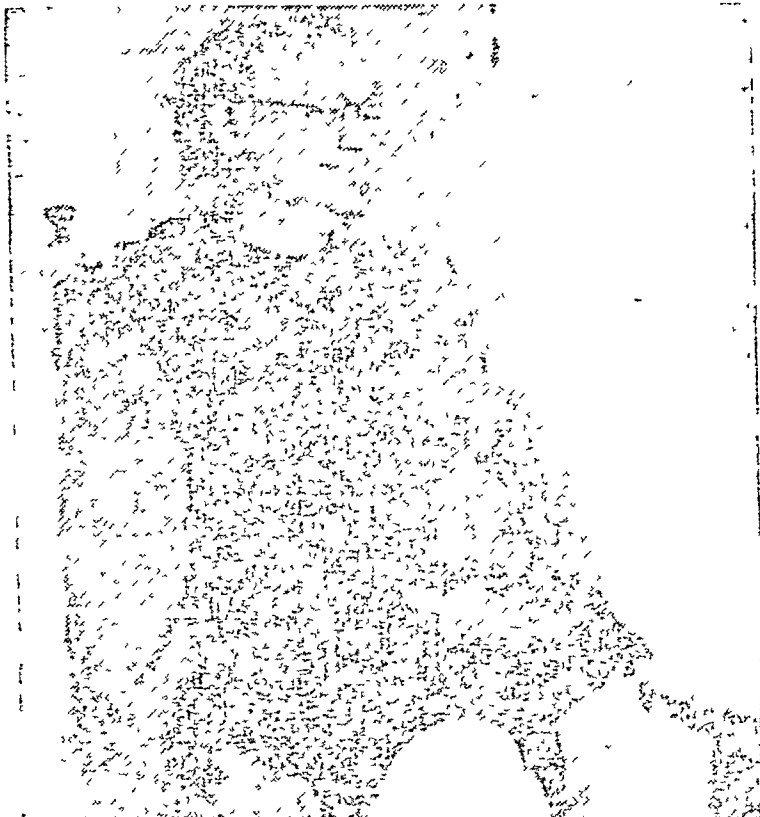
१९३९ ई० में श्री श्रीकृष्ण सिंह
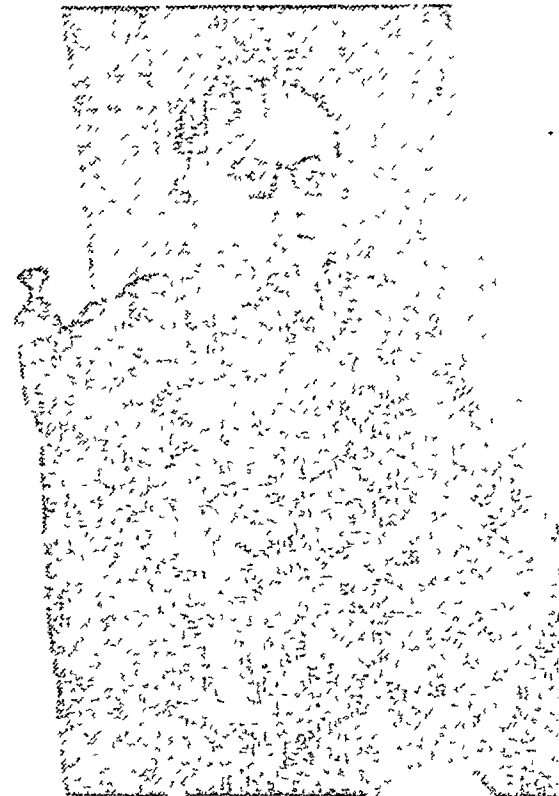
जेल से लौटने के बाद १९४१ ई० में
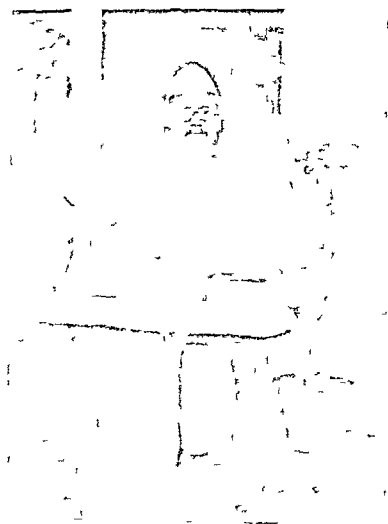
श्री श्रीकृष्ण सिंह जी, १९२१ ई० में चरखा चला रहे हैं

१९२५ ई० में श्री श्रीकृष्ण सिंह जी

श्री श्रीकृष्ण सिंह जी १९३६ ई० में

भोजन नहीं खाया गया। सिर्फ श्रीबाबू ही अपने हिस्से का खाना चट कर गये; क्योंकि जैसा उन्होंने ब्राडकास्ट वाले भाषण में कहा था कि "तब तक मुझे यह मालूम नहीं था कि भूख एक ऐसी चीज है जो कभी-कभी नहीं भी लगती है।"

भोजन के बाद सोने का समय आया। कमरे में हर आदमी के लिए एक-एक लोहे का पलंग था जिस पर बिछाने और ओढ़ने के लिए कुछ रुखड़े कंबल पड़े थे। साधारण अवस्था में ये कैदी इन कम्बलों को छूने से भी डरते; किन्तु, जो सर्वस्व होम करने को निकल चुका हो, उसे छोटे-छोटे सुखों को भी तिलांजलि तो देनी ही पड़ती है। निदान, अपने नये अनुभव की सनसनाहट का मजा लेते हुए सभी लोग आनन्द से सो गये।

जब तक मुकदमे का फैसला नहीं हुआ, श्रीबाबू मुंगेर जेल में रखे गये। इस जेल के कई अनुभव उन्हें आज भी याद हैं। सब से बढ़कर वह निम्नलिखित पंक्तियों की याद करते हैं जो उन दिनों जेल के भीतर और बाहर भी काफी प्रचलित थीं।

आज शान्त काले सागर में उमड़ेगा तूफान महान,
फट जायेगा शासन बादल, चमक उठेगा हिन्दुस्तान।

आखिर, मुकदमे का फैसला हुआ और चारों मित्रों में से हर एक को एक-एक साल की सादी कैद की सजा दी गई और वे भागलपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। इस जेल में कुमार कालिका-सिंह (हीराजी) और पण्डित धनराज शर्मा पहले से ही मौजूद थे। अतएव, ये ६ कैदी एक साथ दो कमरों में रहने लगे। धीरे-धीरे, जेल में राजनैतिक कैदियों की संख्या काफी हो गई और इसका एक शुभ परिणाम यह हुआ कि जेलजीवन की एकरसता में काफी कमी हो गई।

श्रीबाबू में पढ़ने का शौक आरंभ से ही वर्तमान रहा है। इसलिए, जब अधिकांश कैदी गप्पों में अपना समय काटते थे तब श्रीबाबू पुस्तकों में लीन रहकर अपना समय बिताने लगे। यहीं उन्हें पहलेपहल यह सूझा कि अंग्रेजी इतिहास पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा जाय। यह ग्रन्थ बहुत दूर तक लिखा भी गया, किन्तु, इसकी पाण्डुलिपि आज भी सन्दूक में ही सड़ रही है।

भागलपुर जेल में रविवार का दिन बड़ी ही उत्सुकता का दिन होता था, क्योंकि उस दिन कैदियों को अपने मित्रों और परिजनों से मुलाकात करायी जाती थी। एक बार ऐसा हुआ कि स्वर्गीय मौलाना शौकत अली और मौलाना मोहम्मद अली की पूजनीया माता जी, जिन्हें सारा देश आदर और प्यार से बी-अम्माँ (बड़ी माँ) कहने लगा था, एक रविवार को ही भागलपुर पधारीं और उन्होंने राजनैतिक कैदियों से मिलना चाहा। लेकिन, जेल के अंगरेज सुपरिंटेंडेंट ने यह कह कर उनकी माँग को ठुकरा दिया कि "जिस महिला ने शौकत अली और मोहम्मद अली जैसे बागियों को जन्म दिया है उसे राजनैतिक कैदियों से मिलने नहीं दिया जा सकता।"

बी अम्माँ तो लौट गईं, लेकिन, जब यह खबर जेल में पहुँची तब कैदियों में बड़ा ही क्षोभ फैल गया और सुपरिंटेंडेंट के इस काम के विरोध में लोगों ने भूख हड़ताल शुरू कर दी। जब भूख हड़ताल जारी थी तभी भागलपुर की प्रदर्शनी में राष्ट्रीय झंडे को लेकर होनेवाले टंटे को निबटाने के लिए तत्कालीन एक्जेक्युटिव काउन्सिलर श्रीसच्चिदानन्द सिन्हा भागलपुर पधारे और जब उन्हें भूख हड़ताल की बात मालूम हुई तब उन्होंने जेल जाकर इस झगड़े को भी निबटा दिया।

कुछ महीनों तक भागलपुर जेल में रखे जाने के बाद श्रीबाबू हजारीबाग सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। ये दिन असहयोग और खिलाफत के थे तथा राजनैतिक कैदियों में मुसलमानों की भी संख्या बहुत काफी थी। यहाँ मौलाना शफीदाउदी ही नहीं थे जो बाद को मुस्लिम लीग के प्रचण्ड समर्थक हो गये, बल्कि मौलाना वहाब साहब जैसे अल्लामा भी मौजूद थे जिनसे लोग कुरआन शरीफ पढ़ा करते थे।

हजारीबाग जेल में खाने-पीने की बड़ी दिक्कत थी। जेल के भण्डार में गर्मी के दिनों में एक प्रकार की पत्ती सुखा कर रख ली जाती थी और बरसात भर उसी पत्ती को उबाल कर तरकारी की जगह पर परोसा जाता था। इस सुखौते से एक प्रकार की बदबू भी आया करती थी जिससे भोजन की दूसरी सामग्री भी बेस्वाद हो जाती थी। कैदियों ने सुपरिंटेंडेंट से इसकी शिकायत की, लेकिन, उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। लोग झगड़ना तो चाहते नहीं थे, अतएव, वे सुखौते को छोड़ कर और चीजें खाकर ही रहने लगे।

लेकिन, झगड़ा रुका नहीं। जेल के हिन्दू और मुसलमान राजनैतिक कैदी हर शाम को बन्द होने के पहले ईशवन्दना किया करते थे किन्तु, सुपरिंटेंडेंट और जेलर इसे जेल के अनुशासन के खिलाफ मानता था और चाहता था कि यह ईशवन्दना बन्द कर दी जाय। किन्तु, उसके हुक्म को मानने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। निदान, उसने अपने आइ० जी० बनातवाला को खबर दी। बनातवाला ने आकर सभी कैदियों के सेलों का मुलाहिजा किया। जब वह श्रीबाबू के पास पहुँचा तब उसने कहा कि "अच्छा, आपने तो पूरा पुस्तकालय ही जुटा रखा है। क्या ये सारी किताबें रूस के सम्बन्ध की हैं।" लेकिन, इसके उत्तर के लिए उसने इन्तजारी नहीं की और अपने रोब में आगे बढ़ गया।

बनातवाला ने भी कैदियों को हुक्म दिया कि ईशवन्दना नहीं होनी चाहिए। लेकिन, जब किसी ने भी इस आज्ञा को स्वीकार नहीं किया तब आइ० जी० ने गुस्से में आकर हुक्म दे दिया कि सभी को सेलों में बन्द कर दो।

सेलों में कैदी बन्द तो हो गये, मगर, प्रार्थना का क्रम जारी रहा। नियत समय पर सभी सेलों से प्रार्थना की आवाज आने लगती और जेल में एक अजब किस्म का समाँ बँध जाता

ठीक एक वर्ष के बाद, पूरी सजा भुगत कर श्रीबाबू मुंगेर वापस आये।

लेकिन, इस बीच देश के वातावरण में काफी परिवर्तन हो गया था। चौरी-चौरा काण्ड के बाद गांधीजी ने सत्याग्रह को बन्द कर दिया था और वे खुद भी जेल चले गये थे। श्रीबाबू की रिहाई के कुछ दिन पहले ही गया-कांग्रेस समाप्त हो चुकी थी और देश में पार्लियामेंटरी कार्यक्रम की निश्चित रूप से नींव पड़ चुकी थी। जेल छोड़ कर लोग काउन्सिलों की ओर देखने लग गये थे और इस प्रकार दूसरी चढ़ाई के लिए देश शक्ति-संचय कर रहा था।

नमक-सत्याग्रह और दूसरी जेलयात्रा

दण्डी पहुँच कर जब गांधीजी ने सरकार के नमक-कानून का भंग किया, तब देश में अद्भुत उत्साह की लहर दौड़ने लगी और सारा देश उनका अनुसरण करने के लिए बेचैन हो उठा। श्रीबाबू ने यह तय किया कि बेगूसराय सबडिवीजन के गढ़पुरा गाँव में नमक-कानून का भंग किया जाय। उन दिनों उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और राजेन्द्र बाबू नहीं चाहते थे कि कमजोर स्वास्थ्य लेकर श्रीबाबू जेल जायें। लेकिन, बिहारकेसरी के लिए विश्राम करना असंभव था। अतएव, जत्थे के साथ बीस-बाइस मील तक पैदल चल कर वे गढ़पुरा पहुँचे और वहाँ नमक बनाने लगे। इन दिनों चाल यह थी कि सरकार की पुलिस लोगों की मुट्ठी मरोड़ कर नमक छीन लेती थी अथवा नमक बनानेवाला कड़ाह ही उलट देती थी। गांधीजी ने भी अपने सैनिकों को हुक्म दिया था, "मुट्ठी टूट जाय, पर, खुले नहीं"। और गढ़पुरा में श्रीबाबू इस आज्ञा का पालन करके जनता के सामने एक अद्भुत दृष्टान्त उपस्थित कर दिया। ज्यों ही पुलिस कड़ाह की ओर बढ़ी कि श्रीबाबू ने चुल्हे पर चढ़ी हुई कड़ाही की दोनों डंटियाँ अपनी मुट्ठी से पकड़ लीं और खौलते हुए पानी पर अपना सीना रोप दिया। चारों ओर हाहाकार मच गया और ऐसा लगा कि लोग अब सिपाहियों पर टूट पड़ेंगे, मगर, हाँफते हुए बिहारकेसरी के अंगुलि-निर्देश ने लोगों को शान्त कर दिया। पुलिस ने बड़ी ही बेरहमी के साथ श्रीबाबू को घसीट कर चूल्हे से अलग किया और उन्हे गिरफ्तार किया। वे बेगूसराय लाए गये और एस० डी० ओ० मिस्टर ऐयर के इजलास में, जो अब जूडिशियल सेक्रेटरी हैं, उनके मुकदमे की सुनवाई हुई और उन्हें ६ महीने की कैद की सजा दी गई।

सजा पाकर वे भागलपुर भेज दिये गये और वहाँ से फिर हजारीबाग सेन्ट्रल जेल। भागलपुर से हजारीबाग जाने के समय वे तीन-चार मित्रों के साथ हथकड़ियों से बाँधे भी गये। श्रीबाबू एक किनारे थे इसलिए उनका एक हाथ खुला हुआ था मगर दूसरा हाथ मुंगेर के तपे-तपाये प्रतापी नेता श्री नन्दकुमार सिंह के साथ बँधा था। नाथनगर स्टेशन पर उन्हें देखने के लिए जनता की अपार भीड़ जमा हो गई और अपने प्यारे नेता को डाकुओं की तरह

हथकड़ियों में बँधा देखकर लोग रोने लगे। लेकिन बिहारकेसरी ने अपने मित्र और साथी नन्दकुमार बाबू के हाथ के साथ अपने हाथ को उठा कर जनता को दिखलाया और इतना ही कहा कि "इसकी कुंजी आपके हाथ है।"

वे हथकड़ियाँ गया पहुँचने तक बदस्तूर चढ़ी रहीं और वहाँ तक सभी लोग एक अंगरेज सार्जेंट की मातहती में पहुँचाये गये। गया में उस सार्जेंट ने इन लोगों का पिण्ड छोड़ा और तब हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने सभी की हथकड़ियाँ उतार दीं।

हजारी बाग जेल में छ महीनों की सजा बात की बात में बीत गई और श्रीबाबू रिहा हो फिर मुंगेर आये।

नमक-सत्याग्रह और तीसरी जेलयात्रा

नमक सत्याग्रह के दिनों में श्रीबाबू पर युद्ध का उन्माद छाया हुआ था। वे एक पल को भी आराम लेने के पक्ष में नहीं थे। अतएव, जेल से वापस आते ही उन्होंने फिर से अपनी सरगर्मी शुरू कर दी और इसके फलस्वरूप तुरत ही अठारह महीनों की सजा लेकर वे हजारीबाग जेल में अपने दोस्तों और साथियों से जा मिले।

इस बार हजारीबाग जेल में प्रान्त के सभी प्रमुख कांग्रेसजन एकत्र थे और रामायण तथा गीता के पाठ और प्रवचन के साथ साथ स्वर्गीय दीप बाबू जैसे सुसंस्कृत व्यक्तियों का ब्रिज भी खूब चल रहा था और इधर बाबू श्रीकृष्णसिंह भी अपनी पुस्तकों में गर्क थे।

जेल का सुपरिंटेंडेंट वर्क काफी कड़ा और प्राय अभद्र मनुष्य था तथा उसके प्रति अपनी घृणा व्यंजित करने के लिए कैदियों ने वर्क बतीसा लिखा था जो सभाओं में अक्सर ही पढ़ा जाता था।

इस बार जेल में काफी चहल-पहल थी और लोग खुशी खुशी अपना समय काटने लगे। धीरे धीरे राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स के सम्बन्ध में समझौते के लिए वायसराय इरविन के किये गये प्रयत्नों का समाचार जेल में पहुँचने लगा। आखिर को यह खबर भी आई कि समझौता संपन्न हो गया। लोग किश्तों में छोड़े जाने लगे और इस असमंजस ने कि देखें हमारी बारी कब आती है, अच्छों-अच्छों की कमर तोड़ डाली। अस्तु, कुछ दिनों में सभी कैदी छोड़ दिये गये और श्रीबाबू भी जेल से रिहा होकर बाहर आये।

नमक सत्याग्रह और चौथी जेलयात्रा

समझौते की शर्त के अनुसार कैदी छोड़ दिये गये और गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने को लन्दन चले गये। लन्दन में गोलमेज की चर्चा चलती रही, किन्तु, कांग्रेस के दृष्टिकोण

से भारतवर्ष का मामला तय नहीं हो सका। परिणाम यह हुआ कि गांधीजी के लन्दन से लौट कर भारतवर्ष की भूमि पर पैर रखने के पूर्व ही अचानक जोरों से गिरफ्तारी शुरू हो गई। चुन-चुन कर देश भर के सभी प्रमुख नेता पकड़े जाने लगे और श्रीबाबू भी अपने कुछ साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिये गये।

इस बार श्रीबाबू को दो वर्ष की कड़ी कैद और एक हजार रु० जुर्माने की सजा दी गई और मैजिस्ट्रेट ने उन्हे "सी" क्लास में रख दिया। यद्यपि सरकार ने पीछे चल कर श्रीबाबू को "ए" श्रेणी में कर दिया किन्तु, इस बार हजारीबाग जेल में उन्होंने "सी" श्रेणी के कैदी की हैसियत से ही प्रवेश किया। इस बार फिर उन्हें रुखड़े कंबल के कुरते और पाजामे पहनने को दिये गये जिन्हें उन्होंने शौक से धारण किया। श्रीबाबू महीन से महीन खादी का व्यवहार करने के लिए शुरू से ही बदनाम रहे हैं। फिर ये रुखड़े कम्बल उन्होंने किस प्रकार अंगीकार किये होंगे इसका उत्तर, शायद, बलिदानियो की उस भावना में मिलेगा जो उन्हें आदर्श की राह पर काँटों को भी फूल बना कर दिखलाती है।

इस बार हजारीबाग जेल में उन्हें अपने बरतन और कपड़े-लत्ते भी आप ही साफ करने पड़ते थे। इस बार का गाड़ीवाल नामक सुपरिंटेंडेंट भी काफी बदमिजाज आदमी था। उसने श्रीबाबू की प्रायः सारी किताबें बाहर ही रोक दीं। एक्स्चेंज के संबन्ध की कुछ किताबें तो उनके साथ जा सकीं, किन्तु Political Economy की कोई भी किताब वे साथ नहीं ले जा सके। यहाँ तक कि KEYNES THEORY OF MONEY जैसे निर्दोष पुस्तक भी उन्हें नहीं मिल सकी। निदान, वे तुलसीकृत रामायण की एक प्रति के साथ जेल में सोते और जगते रहे।

जुर्माने के रुपये तो सरकार ने पहले ही वसूल कर लिये थे। अपनी पूरी सजा भोग कर श्रीबाबू सन् १९३३ ई० के अक्तूबर महीने में जेल से बाहर आये और अगली जनवरी (१९३४) में बिहार में प्रलयकारी भूकंप हुआ।

पहला प्रधानमंत्रित्व

देश में कांग्रेस का पहला मंत्रिमंडल सन् १९३७ में बना जिस के प्रधान मंत्री, अत्यन्त सहजता के साथ बाबू श्रीकृष्ण सिंह बनाये गये। इस मंत्रिमंडल के सामने आण्डमन के कैदियों को लेकर एक संकट १९३८ में उपस्थित हुआ जब कि श्रीबाबू का गवर्नर के साथ इस बात पर मतभेद हो गया कि जो राजनैतिक बन्दी कालापानी भेज दिये गये थे वे वापस मँगाये जायँ या नहीं। गवर्नर कहता था कि ये कैदी वापस नहीं मँगाये जा सकते हैं और प्रधान मंत्री बाबू श्रीकृष्ण सिंह कहते थे कि "अगर अपने इन बहादुर साथियों को हम कालापानी में ही सड़ने को छोड़ देते हैं तो फिर यह वजारत ही किस काम की है और इस पर हम टिकें ही क्यों ?" आखिर को उन्होंने

प्रधान मंत्री की गद्दी पर लात मार दी और मन्त्रिमंडल तोड़ करके सरकार से बाहर आ गये। उनके इस काण्ड से देश भर में हलचल मच गई और अंगरेजों ने दो चार दिनों में ही प्रधान मंत्री की बातों को मान लिया तथा श्रीबाबू फिर से सरकार के प्रधान होकर प्रान्त का राजकाज चलाने लगे।

मगर, दूसरे ही वर्ष विश्वयुद्ध छिड़ गया और कांग्रेस ने हुक्म निकाला कि चूँकि वायसराय ने देश की राय लिये बिना ही देश को युद्ध में सम्मिलित कर दिया है इसलिए कोई भी कांग्रेसी मन्त्रिमंडल सरकार का साथ नहीं दे। अतएव, बिहार के प्रधान मंत्री ने भी अपने पद से इस्तीफा दे दिया और मन्त्रिमंडल को तोड़ कर सन् १९३९ ई० के नवम्बर महीने में सरकार से बाहर आ गये।

वैयक्तिक सत्याग्रह और पाँचवीं जेलयात्रा

सन् १९४० ई० में गांधीजी ने वैयक्तिक सत्याग्रह का जो सिलसिला निकाला उसमें उन्होंने बिहार में सबसे पहले श्रीबाबू को ही सत्याग्रह करने की इजाजत दी। तदनुसार श्रीबाबू ने बाँकीपुर-लान (अब गांधी-मैदान) में युद्ध के विरुद्ध नारे लगाये और गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार जेल में भी उनके स्वागत के लिए शाही इन्तजाम था और बाँकीपुर जेल से जब वे हजारीबाग पहुँचाये गये तब यह यात्रा भी मोटर पर करायी गई।

इस बार जेल में महेश बाबू भी मौजूद थे और सुपरिंटेंडेंट के पद पर भी कर्नल नाथ के समान भद्रपुरुष काम कर रहे थे। इसलिए शारीरिक कष्ट की कोई बात ही नहीं हो सकती थी। श्रीबाबू ने इस बार फिर डट कर अध्ययन किया और मन्त्रित्व के दिनों में पुस्तकों से उनका जो जरा जरू विछोह हो गया था उस क्षति की पूर्त्ति उन्होंने व्याज के साथ की।

लगभग नौ महीनों के कारावास के बाद वे रिहा होकर बाहर आये और देश की गतिविधि का अध्ययन करने लगे कि अब आगे क्या होगा।

बयालिस की महाक्रान्ति और छठीं जेलयात्रा

महाक्रान्ति के आते ही देश के सभी बड़े-बड़े नेता दो-तीन दिनों के अन्दर ही गिरफ्तार कर लिये गये और श्रीबाबू भी छठीं बार पकड़ कर बाँकीपुर जेल पहुँचा दिये गये जहाँ राजेन्द्र बाबू पहले से ही मौजूद थे और अनुग्रह बाबू दो एक दिनों के बाद आ पहुँचे। इस बार बाँकीपुर जेल के भीतर का नजारा भी कुछ अजब किस्म का था। ईंटों की एक दीवार थी जो नेताओं को उस अपार जनता से अलग किये हुए थी जिस जनता ने नेताओं की अनुपस्थिति में कौम की किस्मत का लेखा लिखनेवाली कलम को अपने हाथ में ले लिया था। रह-रह कर जेल के बाहर नारों और जयकारों के रणनाद सुनायी पड़ते थे जो नेताओं को यह सूचित करते थे कि सारा देश आणद मस्तक हिल

रहा है और जनता भूखी बाघिन की तरह अन्यायियों पर टूट पड़ने को तैयार है। अखबार नहीं, रेडियो नहीं। लेकिन, बाहर की कोई भी बात जेल के भीतर पहुँचे विना नहीं रहती थी। चारों ओर पहरा ; चारों ओर कोलाहल। जेल की दीवारों से घिरा हुआ ऊपर एक छोटा आसमान जिसमें भी वायुयान नाद करते हुए इधर से उधर को निकल जाते थे। इस समाँ के बीच श्रीबाबू से फूलन-बाबू कहते थे—"श्रीबाबू! द रेवल्यूशन इज आन्" यानी महाक्रान्ति आ गई है और वह अपने पथ पर अग्रसर हो रही है।

सेक्रेटेरियट के गोलीकाण्ड की खबर से नेतागण काफी बेजार थे। ऐसे में एक दिन पटने के कलक्टर, आर्चर से श्रीबाबू की मुलाकात हो गई। श्रीबाबू उसके कृत्यों से अत्यन्त क्षुब्ध थे और उन्होंने मिलते ही उससे पूछा कि "आर्चर! तुमने सेक्रेटेरियट पर मरनेवाले नौजवानों के पैरों का निशाना क्यों नहीं लिया? अगर भीड़ को तितर-बितर करना ही ध्येय था तो उनके मर्म पर गोलियाँ चलाने का तुम्हें कौन अधिकार था? जानते हो कि इन बेगुनाह, बहादुर नौजवानों का खून करके तुमने सभ्यता के प्रति कितना बड़ा अपराध किया है?" आर्चर चुप रहा। उसे बध लग गया था। उसके मुँह से केवल इतना ही निकला कि "मैं क्या करता? उनका इरादा इतना मजबूत था कि गोलियों की वर्षा के बीच भी वे आगे को ही बढ़े जा रहे थे।" सुनते ही बिहारकेसरी का चेहरा तमतमा गया। उन्होंने काँपते हुए कहा—"मिस्टर आर्चर! क्या आप लन्दन में रहनेवाले भारत-सचिव को यह खबर दे देंगे कि इस आन्दोलन के पीछे भारतीय जनता किस कठोर इरादे को लेकर खड़ी है?"

इस समय पटरियों के उखड़ जाने के कारण ट्रेनें बन्द थीं। अतएव, सरकार ने चाहा कि मोटरों में बिठाकर नेताओं को हजारीबाग पहुँचा दिया जाय। लेकिन नेता मोटरों में चलने को तैयार नहीं हुए। लिहाजा, सभी लोग कुछ दिनों तक के लिए बाँकीपुर में ही रोक लिये गये। पीछे जब ट्रेन चलने लगी तब श्रीबाबू और अनुग्रह बाबू तथा कुछ और लोग बाँकीपुर-जेल से हजारीबाग भेज दिये गये।

हजारीबाग-जेल में इस बार फिर बड़ा जमाव था। जयप्रकाशजी अपने कुछ साथियों के साथ वहाँ पहले से ही नजरबन्द थे। अब प्रान्त के प्रायः सभी प्रधान नेता भी वहाँ पहुँचा दिये गये। जेल में अध्ययन, अध्यापन, खेल-कूद, संगठन आदि का जो सिलसिला होता है वह सभी चलने लगा। धीरे-धीरे दीवाली आई और उसी रात को जयप्रकाशजी भारत की असली राज-लक्ष्मी की खोज में अपने चन्द साथियों के साथ जेल की दीवार को लाँघ कर बाहर भाग गये। इस दुर्घटना के बाद जेल के सुपरिंटेंडेंट का तबादला हो गया और मेजर नाथ की जगह पर कर्नल नलवा सुपरिंटेंडेंट होकर हजारीबाग आये। वे मिजाज के कड़े, दिल के छोटे और जबान के फूहड़ थे तथा उनके प्रति सभी राजबन्दियों को घोर घृणा थी। स्वतंत्रता-दिवस के समीप आने

पर उन्हें यह चिन्ता सताने लगी कि कहीं जेल में राष्ट्रीय झंडा न फहरा दिया जाय। अपने उद्देश्य को सफल करने के लिए उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। किन्तु, उन्हें सफलता मिली नहीं। क्योंकि २६ जनवरी के आने पर कई बन्दियों ने राष्ट्रीय झंडे फहरा दिये।

एक वर्ष कुछ महीने बीत जाने के बाद श्रीबाबू अचानक भयंकर रूप से बीमार हो गये और कुछ ही घंटों में उनकी अवस्था संकटपूर्ण हो गई। डाक्टर बुलाया गया। उसने माफिया की सूई लगाई। श्रीबाबू को नींद आ गई। लेकिन नींद से जगने पर फिर वही हालत हो गई। उनके पेट में खून और सारे शरीर से पानी चल रहा था और ऐसा लगता था, मानों, वे चन्द घंटों के ही मेहमान हैं। निदान वे अस्पताल ले जाये गये जहाँ शाहाबाद के प्रसिद्ध नेता श्रीसरदार हरिहर सिंह ने उनकी बहुत ही सेवा की। जब श्रीबाबू जेल से बाहर के अस्पताल में रखे गये तब भी सरदार उनके साथ रहे। सरकार ने बीमारी को असाध्य जान कर श्रीबाबू को रिहा कर दिया। यह भी एक दर्दनाक नजारा था कि अस्पताल से रिहा हो कर श्रीबाबू पटने जा रहे थे और उनकी सेवाशुश्रूषा में दिन-रात एक कर देनेवाले सरदार हरिहर सिंह अस्पताल से लौट कर फिर जेल को वापस जा रहे थे। श्रीबाबू इस दृश्य को सँभाल नहीं सके और फुफ्का फाड़ कर रोने लगे। किन्तु उपाय क्या था? सरदार को रोते-रोते जेल को वापस जाना पड़ा।

क्या आवृत्ति संभव है?

इस प्रकार बिहार केसरी की ६ जेलयात्राओं की कहानी खत्म होती है।

जेल और मंत्रित्व की गद्दी! मंत्रित्व की गद्दी और फिर जेल!! क्या वर्तमान मंत्रित्व के बाद भी जेल की बात सोची जा सकती है?

किंतु, उस दिन श्रीबाबू ने ही तो रेडियो पर यह शंका अभिव्यक्त की थी कि 'ईश्वर ही जानें कि यह मेरे राजनैतिक जीवन की आखिरी जेलयात्रा थी या इसकी आवृत्ति भी होगी?"

कौन जाने?

मेरी नजरों में बिहारकेसरी

[लेखक—श्री कृष्णमोहन प्यारे सिंह, वायस चेयरमैन, डि० बोर्ड, मुंगेर]

बिहारकेसरी माननीय डा० श्रीकृष्ण सिंह जी प्रधान मंत्री के ६१ वें वर्षगांठ के अवसर पर उनकी जन्मभूमि तथा राजनैतिक कार्यक्षेत्र मुंगेर जिला की ओर से उनकी सेवा में श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रन्थ उपस्थित करने का आयोजन हुआ है और मुझसे कहा गया है कि मैं भी अपने भावों को कुछ शब्दों में बाँध कर इस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करूँ। यह कार्य जितना सरल है उतना ही कठिन भी है। सरल इसलिए कि मन जिस देवता की पूजा करता आया है उसी की स्तुति पाठ करने को उसे कहा गया है और कठिन इसलिए कि पुजारी इतना भावुक है कि समय पर उसे एक भी स्तोत्र स्मरण नहीं। और तब भी पुजारी कलम लेकर बैठ गया है, अजीब दुःसाहस है यह! और देखें तो इसके शीर्षक को—'मेरी नजरों में बिहार-केसरी!' ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि अलग-अलग नज़रों में बिहारकेसरी की अलग-अलग मूर्ति हो। पर ऐसा होता भी तो है। गोस्वामी तुलसीदासजी की यह चौपाई कि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' क्या कोई अर्थ नहीं रखता। लोगो की नजरों में बिहारकेसरी शेरे-बिहार हैं, उनकी दहाड़ प्रान्त-विख्यात है, वह राजनीति-विशारद हैं। हजार कामों में व्यस्त रहने पर भी पुस्तकों के अध्ययन का समय तो आप निकाल ही लेते हैं। आपके निजी पुस्तकालय का शानी प्रान्त का कोई दूसरा निजी पुस्तकालय नहीं कर सकता। आपने एक नहीं, दो बार प्रान्त का शासनसूत्र अपने हाथों में लिया है। भला, इतना बड़ा अधिकार जिनके हाथों में हो, उनके ईर्द गिर्द यदि हजारों नये नये लोग घेरे फिरें तो आश्चर्य क्या है। पर क्या इन्हीं कारणों से मैं अपने को बिहारकेसरी का पुजारी मानता हूँ? नहीं, हजारों बार नहीं। तब फिर मेरी नज़रों में बिहार-केसरी क्या हैं, सुनिए।

इस क्षुद्र को भी जिसमें हज़ारों खामियाँ हैं, अपने दो गुणों पर गौरव है। एक है इसकी भावुकता और दूसरा है इसकी क्षमाशीलता। लोगों के साधारण दुखों से भी इसकी आँखें छलछला जाती हैं और अपने वैरियों से भी बदला नहीं लेने की यह चेष्टा करता है। और इन्हीं दो गुणों को इतनी प्रचुर मात्रा में यह बिहारकेसरी में पाता है कि इसके जी में सदा यही होता है कि बिहारकेसरी के इन गुणों का ग्राहक बन कर उनके चरणों में लोटता रहे और अपने को कृत-

कृत्य मानता रहे। पाठकगण इन पंक्तियों के लेखक को पागल कहेंगे जब उन्हें यह मालूम होगा कि लेखक के आराध्य देव जब अधिकारारूढ़ होते हैं तो वह उनके पास कम जाने और उनका समय कम से कम लेने की चेष्टा करता रहा है। भला जहाँ अधिकाररूपी मधु हो वहाँ मधु मक्खियों की क्या कमी। पर, यह पुजारी ही पागल है और यह अपने देवता के चरणों में तभी लोटना चाहता है जब कि उसका देवता दूसरे के दुःख से दुःखी होकर रो रहा हो अथवा जब वह अपने वैरियों से बदला लेने के बदले आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता कर रहा हो। यों तो १९१५ से ही यह लेखक बिहारकेसरी के प्रति श्रद्धा रखने लगा और १९२०-२१ से १९२९ तक मुंगेर से दूर पटना में रहकर दोनों का कार्यक्रम एक होने पर भी दूर से ही उनकी प्रशंसा करता रहा। पर, १९३० से जब से लेखक ने बिहारकेसरी का जन्मस्थान माउर जिस थाने में है, थाना बरबीघा को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया तब से तो वह उनका अन्धभक्त बन गया है। इन १८ वर्षों के बीच अनेकों बार आंधी के झोंके आये जिन्होंने यह चेष्टा की कि भक्त की जड़ को उखाड़ कर फेंक दें, पर सौभाग्य से वह अटल रहा।

बिहारकेसरी, तुम्हारा यह भक्त चाहता है कि तुम में उपर्युक्त दोनों गुणों का विस्तार होता रहे। तुम भावुकता में बहकर रोते और भक्त को रुलाते रहो, और माँगता है तुमसे वह एक वरदान, कि समय पड़ने पर यदि तुम उसे ठुकराओ तब भी उसकी भक्ति तुम में अटल रहे।

यही है लेखक की श्रद्धांजलि और इन्हीं शब्दों से वह करता है बिहारकेसरी का अभिनन्दन।
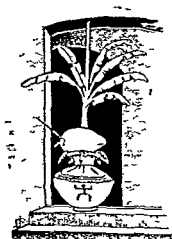
हमारे नेता

[लेखक—श्री बलदेवप्रसाद सिंह]

आज बिहार में कौन ऐसा है जो बिहारकेसरी को उनकी कर्मठता तथा निपुणता के लिए नहीं जानता है। लोगों ने इन्हें प्यार से श्रीबाबू कहना प्रारम्भ किया था किन्तु, आज तो यही नाम हम सबों की जुबान पर है। ये कुछ ऐसे व्यक्तियों में नहीं हैं जिन्हें अधिकार मिलने पर ख्याति मिली हो। बाल्यवस्था से ही ये जहाँ रहे, जिस संस्था में रहे हैं, वहाँ ये श्री ही बन कर रहते आये हैं।

जीवन के प्रारम्भ में ही इन्होंने बिहारी छात्र-सम्मेलन में हृदय से भाग लिया था फिर तो १९२० की स्पेशल कांग्रेस के बाद पूज्य बापू ने जब स्वतंत्रता की लड़ाई छेड़ दी तो यह देशानुरागी भी मैदान में उतर आया—उनका आना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा। राजनीति में प्रवेश करते ही ये हम सबों के रहनुमा नेता बन गये और हमलोगों ने अनुसरण करना शुरू किया। उसी समय 'कानून-विरोधक' प्रस्ताव देश के सामने आया और इस सिलसिले में श्रीबाबू को जेल जाना पड़ा। तत्कालीन जिलाधीश ने जेल में इनसे कहा—"आप जुलूस बन्द करवा दें, मैं आप लोगों को छोड़ दूँगा।" कलक्टर का इतना कहना था कि वे ठठा कर हँस पड़े, संभवतः उसकी नादानी पर ही। काश! कलक्टर महोदय उन्हें ठीक-ठीक समझ पाते! कुछ ही दिनो के बाद गिरफ्तारी बन्द हुई और हम सबों के साथ बिहारकेसरी भी कारागार से मुक्त हुए।

कारागार से मुक्त होने के पश्चात् गाँवों में दौरे और बैठक का क्रम प्रारम्भ हुआ। गाँव-गाँव के लोग इन्हें देखने के लिए उत्कंठित होने लगे—महिलायें भी घर से झाँक-झाँक कर दर्शन लाभ करतीं और अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित किया करती थीं। मीटिंग और दौरे के क्रम में अनेक बाधायें सामने आती थीं किन्तु, ये विकास के पथ पर बाधाओं को कुचल कर आगे बढ़ ही जाते थे। कभी-कभी तो भूखे-प्यासे बड़ी लम्बी-लम्बी यात्रा भी करनी पड़ती थी किन्तु, ऊबना तो ये जानते नहीं थे। अपने तूफानी दौरो में इन्हें स्व० शाहमुहम्मद जुबैर साहब का सहयोग सदा ही मिलता रहा। शाह-साहब इन्हे बहुत ज्यादा मानते थे और ये भी उन्हें सदा अपना ज्येष्ठ भाई समझते रहे। शाह-साहब उन दिनों मुंगेर के राजनीतिक गगन के चमकते हुए नक्षत्र थे फिर भी बिहारकेसरी से प्रेरणा

लेनी पड़ती थी।\ मुझे याद है कि शाह साहब मृत्युशय्या पर पड़े जिन्दगी के अंतिम क्षणों में भी श्री-श्री करते ही मरे, किंतु, हाय रे दैव! बिहारकेसरी उस समय वहाँ नहीं थे। उनकी मृत्यु की खबर सुन कर श्रीबाबू का एक एक रोम रो पड़ा था।

श्रीबाबू ने जनसेवा को ही अपना धर्म तथा कर्म मान लिया था। इस सेवाकार्य के कारण न जाने कितनी बार जेल जाना पड़ा, पारिवारिक यातनायें सहनी पड़ीं, पर, ये सब दिन चट्टान की तरह अचल और दृढ़ ही रहे। जमालपुर स्टेशन का एक दृश्य भूला नहीं जा सकता जब केसरी को जंजीरों में बँधा देख दर्शनार्थी जनता का समूह विह्वल हो उठा था किन्तु, उनके चेहरे पर वही चमक थी, अधरों पर वही मुस्कान थी जो साठ पार कर चुकने पर भी मौजूद है। इन्हें देखकर चकबस्त की वह पंक्ति याद हो आती है कि "बेडियाँ पैर में हों और दिल आजाद रहे।" सचमुच शरीर से जेल में रहने पर भी इनका हृदय प्रान्त के कोने कोने में रमा हुआ रहा है। इनके अजेय हृदय पर कभी भी किसी ने विजय नहीं पाई, यह निर्विवाद सत्य है। इस सेवाव्रती ने जेलों में बन्द होकर ही जनता की सेवा नहीं की, वरन्, साधारण लोगों की तरह मुंगेर डि० बोर्ड के चेयरमैन के रूप में रहकर भी जनता की अपार सेवा की है। स्वराज्य-फंड की वसूली तथा पंचायत आदि के कामों में भूखे प्यासे गाँव के गाँव पहुँच जाना इनके लिए उन दिनों साधारण-सी बात थी। कोई यदि सवारी की बात करता तो ये झट यह कह उठते कि—"चलो जी, मैं तुमसे कमजोर थोड़े ही हूँ।" छोटे से छोटे कार्य को करने में भी हिचकिचाहट नहीं होना श्रीबाबू का एक खास गुण रहता आया है। प्रारम्भ में भी स्वामी सत्यदेव के मुंगेर आने पर मैंने धोपी टोले की गन्दगी को अपने हाथों साफ करते हुए देखा है।

श्रीबाबू मुंगेर के ही नहीं, अपितु सारे प्रान्त के नेता रहते आये हैं। आज बिहार के लोकनायकों में डा० राजेन्द्रप्रसादजी के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में आप ही हैं। महात्माजी के चरणों में अडिग तथा दृढ भक्ति ने राष्ट्रयज्ञ के प्रत्येक हवन में इन्हें तपाकर खरे स्वर्ण की तरह चमका दिया है। बापू द्वारा प्रचारित '२१ का असहयोग, '३० का नमक सत्याग्रह तथा '४२ का भारत छोड़ो प्रस्ताव इनके मन के सर्वथा अनुकूल हुआ। नमक सत्याग्रह के अवसर पर इन्हें पुलिस द्वारा घसीटे जाते देखकर लोगों की आँखों में आँसू छलक आये थे किन्तु, ये हिमालय की तरह अटल और दृढ़ थे। विद्रोह की ज्वाला भड़कानेवाले बिहारकेसरी इन्हीं कारणों से अपने आपको कभी-कभी हनुमान भी कहा करते थे।

श्रीबाबू की भावुकता और सहृदयता तो कोई तब देख सकता है जब वे चिर बिछुड़े हुए सहकर्मियों से सजल नयन भेंटते हैं। उनका हृदय कवि का हृदय है, इन्हें एकान्त में कोई खोया हुआ-सा पा सकता है। इनकी कल्पना किसी भव्य संसार की सृष्टि करती रहती है। इन सारे गुणों को

देखकर यह समझ में नहीं आता कि मैं इन्हें चतुर राजनीतिज्ञ कहूँ या साहित्यिक भावुक कवि कहूँ या वीर कर्मठ योद्धा ? जो भी हो, वे एक विशिष्ट मानव हैं—वह मानव जिसे मानवता के प्रति पूर्ण ममत्व है।

बिहार के जनकंठहार श्रीबाबू दीर्घायु हों, दीर्घ काल तक अपने प्रान्त की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने में समर्थ हो सकें, यही मेरी कामना है।

अस्तु,

बिहारकेसरी—जिन्दाबाद
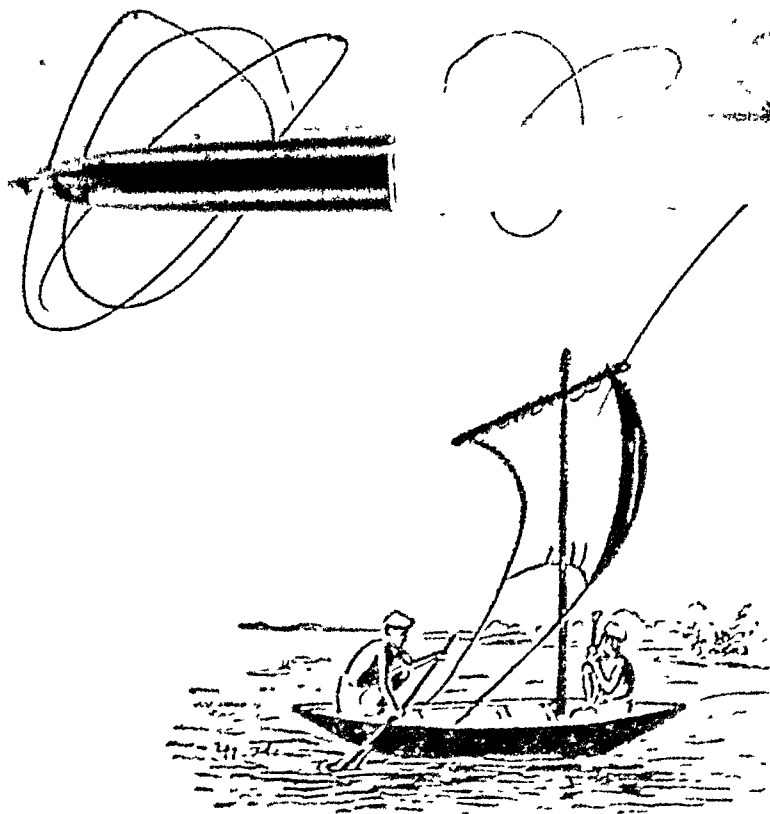
पत्रं पुष्पम्

[लेखक—श्रीकृष्ण मिश्र, एम० ए०, बी० एल०, मुंगेर]

"बिहारकेसरी"—मेरी समझ में यह उपाधि देकर उस महान् व्यक्तित्व के साथ पूर्ण न्याय नहीं किया गया जिसके सम्बन्ध में कुछ लिखने का मुझे अवसर दिया गया है। इसका कारण उस व्यक्तित्व की एक विशेषता से सम्बंध रखता है। मेरी धारणा है कि जिस महापुरुष के हाथ में हमारे प्रांत के शासन का बागडोर है, प्रचार के द्वारा प्रकाश में आने की, अपने कृत्यों और अपनी प्रशंसा की डौंड़ी पिटवाने की आंतरिक कामना उनको कभी नहीं रही। यह युग वैज्ञानिक प्रचार का है, व्यवसाय के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीति के संसार में भी। मैंने कुछ बड़े बड़े प्रसिद्ध पुरुषों को देखा है, उनके साथ नियमित रूप से प्रचार का प्रबंध रहता है, अपनी गतिविधि की सूचनाओं के लिए, अपने विचारों को फैलाने के लिए, चाहे वे सामयिक गौण विषयों पर ही क्यों न हो। अगर यथार्थ का सम्यक् प्रचार होता तो "भारतकेसरी" श्रीकृष्ण सिंह का नाम भारत के कोने कोने में सुनायी पड़ता।

मुझे बम्बई की चौपाटी पर श्री चित्तरंजन दास की वक्तृता सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। भाषण क्या था, अन्तरात्मा में लगी हुई आग की लपट अजस्र धाराओं में चारों ओर प्रवाहित हो रही थी। वह आग थी गुलामी की परवशता को जलाकर भस्म कर डालने की तीव्राकांक्षा, समस्त विघ्न बाधाओं को एक ठोकर से हटाकर आगे बढ़ने की उत्कट प्रेरणा, आजादी के संग्राम में सर्वस्व बलिदान कर देने की अटल प्रतिज्ञा। वही आग, वही आकांक्षा, वही प्रेरणा मैंने देखी श्रीकृष्णसिंह में,—जब जब मैंने उन्हें देखा और बहुत बार देखा, सारा जीवन देखता आया। उनका हृदय सर्वदा उद्भ्रांत देशप्रेम के भावों से सराबोर रहा और रहा गुलामी की जंजीरों को झटका देकर तोड़ डालने का प्रबल आवेग। उनके जीवन में यही भाव सर्वोपरि रहा। और बातों की उन्हें कभी परवा न रही। इन्हीं महान व्यक्तियों ने भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के भावों में वह जोश भरा, उनमें ऐसा प्राण भर दिया कि अंत में दासता का अडिग इमारत बालू की भीत साबित हुई और आज हम स्वतंत्र भारत में सुख की साँस ले रहे हैं। जो लोग इस ख्याल के हैं कि पदलोलुपता अथवा स्वोत्कर्ष की कामना ने प्रधान मंत्री को कभी भी प्रेरित किया है वे सर्वथा गलतफहमी में हैं।

बिहारकेसरी में ढोंग या दिखाव की भावना का बिल्कुल अभाव है। उनकी जीवन-चर्य्या में एक सादगी है। स्वाभाविकता और सरलता तो उनकी निजी हैं जिनका साथ बुरे दिनों में, अच्छे दिनों में उन्होंने नहीं छोड़ा। उनकी सद्भावना सब के साथ है चाहे वह आदमी अमीर व बड़ा कहलानेवाला हो अथवा साधारण व्यक्ति हो। सब के सुख-दुख को सुनने के लिए वह बराबर तैयार रहते हैं। उनके कोमल हृदय में सबके लिए स्थान है। यों तो—

जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के सच्चे हिमायती हैं हमारे सुयोग्य प्रधान मंत्री। राजनीतिक परिस्थिति के वशीभूत होकर नहीं, सच्चे हृदय से। यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि इस समय के विषम वातावरण में जब मुस्लिम राजनीतिक चालें भारतीयों के धैर्य पर चरम चोटें पहुँचा रही हैं, शासन का बागडोर ऐसे समर्थ हाथों में है जिसने राजनीति का गूढ़ अध्ययन किया है।

भारतवर्ष में उन महापुरुषों की पंक्ति में जिन्होंने अपने गहरे अध्ययनों के द्वारा बहुज्ञता और राजनीति-पटुता हासिल की है, बिहारकेसरी श्रीकृष्ण सिंह का स्थान बहुत आगे है।

विद्वत्ता, सौजन्य, सरलता और विनय की मूर्ति, असाधारण राजनीतिज्ञ बिहारकेसरी श्रीकृष्ण सिंह चिरकाल तक अपने पिछड़े हुए प्रांत को आगे बढ़ाते रहें, परमात्मा से यही हार्दिक प्रार्थना है।

हमारा सरदार

[लेखक—श्री रामगुलाम शर्मा]

१६२१ का जमाना। विश्ववन्द्य बापू की तपश्चर्या से भारत की सोयी हुई आत्मा चेतना प्राप्त कर चुकी थी। उनके सफल नेतृत्व में लाख लाख लोग प्राणों को हथेली पर रखकर स्वातन्त्र्य-प्राङ्गण में आ डटे। सरकार पशुबल द्वारा राष्ट्र की विद्रोही भावनाओं को कुचल डालने पर तुल गई। लाठियों और गोलियों की वर्षा से भारत की जमीन शोणित से पट गई। सर्वत्र जालियाँवाला बाग के दृश्य का नजारा था। आजादी के मतवाले पशुवत् जेलों में ठूँसे जाने लगे। भारत माँ और महात्मा के जयनाद से आकाश कम्पायमान हो उठा। वृटिश सल्तनत डगमगाने लगी। हमारे सरदार का दिल तो कब का ज्वालामुखी बन चुका था, केवल अवसर की प्रतीक्षा थी। उसकी धमनियों में मर्यादापुरुषोत्तम राम का आदर्श, योगिराज श्रीकृष्ण की राजनीतिज्ञता, वीर-पुङ्गव शिवा का अपार बल और पौरुष एवं स्वतन्त्रता के महान पुजारी महाराणा प्रताप का अपूर्व बलिदान निरन्तर तूफान मचाते रहते थे। सती सावित्री, वीराङ्गना कलावती तथा जौहर-व्रत धारिणी देवी पद्मिनी का पातिव्रत्य तथा आत्मोत्सर्ग पढ़कर उसका कलेजा बाँसों उछलने लगता था। विश्व-शिरोमणि भारत वसुन्धरा के वक्षस्थल पर विदेशियों का खूनी पंजा उसके कलेजे में शूल सा बिंधता रहता था। मुल्क की बेकसी, लाचारी और साधनहीनता देखकर वह तिलमिला उठता था। वह भगवान तिलक के सिद्धान्त का पुजारी था। 'शठं प्रति शठ' के सिद्धान्त का कायल था। स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इस महामन्त्र को वह क्षण भर भी नहीं भूल पाता था। उसके हृदय में अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ था। उसकी बुद्धि लोकमान्य के साथ थी तथा हृदय गांधीजी के साथ। लेकिन बापू द्वारा चलाया हुआ भद्र अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ होने पर वह भी अहिंसा-व्रत का व्रती बन कर राष्ट्र के मान की रक्षा के हेतु मैदानेजंग में कूद पड़ा। उसकी मेधा-शक्ति, कार्य करने की अद्भुत प्रणाली, संगठन करने की अपूर्व क्षमता तथा वक्तृत्वकला को देख कर जनता दंग रह गई। भविष्य में सूबे तथा देश का बागडोर उसके हाथ में जानेवाला है, कौन जानता था? सुनहले व मोहक संसार उसके सामने थे, और थे दिल में छिपे हुए बड़े-बड़े अरमान। लेकिन देशोद्धार की प्रतिज्ञा लेकर वह क्रान्ति का पुजारी जनता के बीच जाकर आग उगलने लगा। गाँव-गाँव पैदल, बैलगाड़ी पर सवार हो, कभी भूखा, कभी चना चबाकर धूनी रमाने
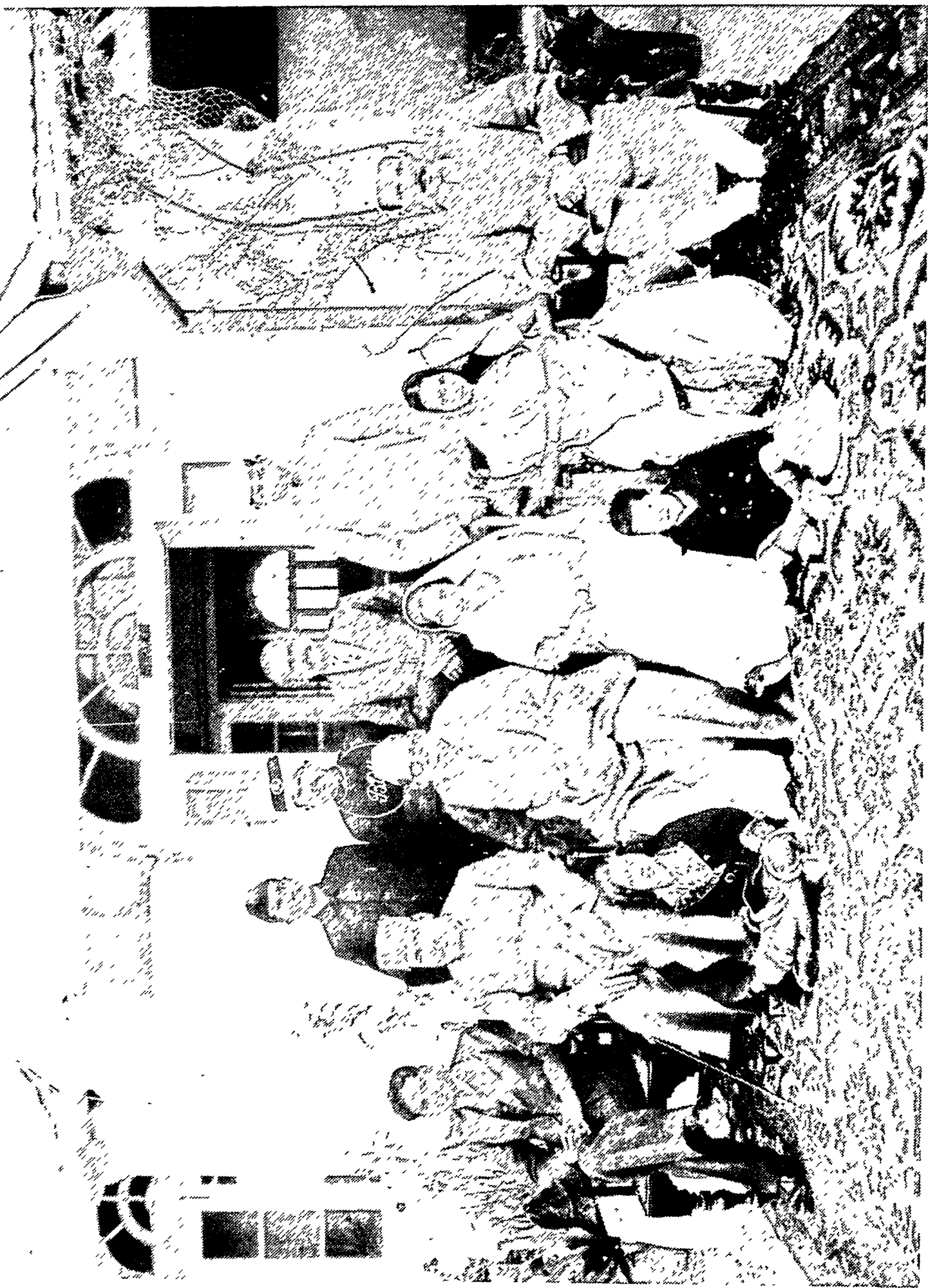
लगा। उसकी हुंकार से मुर्दों में प्राण, बूढ़ों में तरुणाई, पस्तहिम्मतों व नपुंसकों में मर्दानगी तथा राजभक्तों में विद्रोहाग्नि भड़क उठी। सारा मुङ्गेर जिला तवा की भाँति जलने लगा। नौकरशाही का दम घुटने लगा। फलस्वरूप एक वर्ष के कठिन कारावास का दण्ड ले, वह सिंह सीकचों में डाल दिया गया।

[२]

देश के दुर्भाग्य से चौराचौरी काण्ड ने बापू को आन्दोलन बन्द करने के लिए बाध्य किया। वे जेल भेज दिये गये। उचित पथ प्रदर्शन के अभाव में आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। सर्वत्र शान्ति छा गई। एक बार मुल्क फिर प्रमाद की गाढ़ी निद्रा में खर्राटे भरने लगा। कृष्णागार से मुक्त होने पर हमारे सरदार ने देश में मायूसी का वातावरण देखा, पर वह निराश होनेवाला नहीं था और न उस की हिम्मत ही पस्त होनेवाली थी। वह तो हिमालय-सा अडिग और सागर-सा गम्भीर था। असहयोग-आन्दोलन में जहाँ उसने किसानों और मजदूरों में बलिदान का भाव देखा था, वहाँ उसमें उसने निर्भयता की अत्यन्त कमी भी पाई थी। प्रत्यक्ष अनुभव ने उसे यह सबक सिखलाया था कि सरकार से भी बढ़कर अन्नदाता किसानों का घराऊ मामलों में महाजन और जमीन्दार शोषण करनेवाले हैं। राह चलते उन पर जुल्म होते रहते हैं, उनके साथ अमानुषीय व्यवहार किये जाते हैं। जब तक उन्हे आत्माभिमान तथा स्वावलम्बन का पाठ नहीं पढ़ाया जायगा, भविष्य में आजादी के जंग में वे सफलतापूर्वक दृढ़ता के साथ भाग लेने में असमर्थ सिद्ध होंगे। अतएव उसने किसानों के बीच काम करना प्रारम्भ कर दिया। तत्काल अपनी ईमानदारी, लगन और तत्परता से वह सूबे का प्राण बन गया और बन गया देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी का दाहिना हाथ। वैधानिक कार्यक्रम के अपनाने पर कांग्रेस की ओर से बिहार-कौंसिल के स्वराज्यदलपति निर्वाचित होने पर उसने अपने भाषणों में जिस प्रतिभा का परिचय दिया, उससे उसकी गहरी राजनीतिज्ञता, विशाल अध्ययन एवं पूर्ण विद्वत्ता का परिचय मिलता है। और यही कारण था कि विधान-पण्डित विट्ठल भाई पटेल ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। उसकी दहाड़ सूबे में गूंज उठी। हजारोंहजार जनता उसके ओजस्वी, वीरतापूर्ण, सारगर्भित भाषण सुनने के लिए व्याकुल हो उठी।'

जनताजनार्दन ने उसे बिहारकेसरी की उपाधि से विभूषित किया। नमक-सत्याग्रह आया। बापू ने दंडी की यात्रा की। देश ने करवट बदली। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक देश हिल उठा। हमारे सरदार ने गढ़पुरा को अपना धर्मक्षेत्र बनाया। जलती हुई कड़ाही, पुलिस की छीनाझपटी, लेकिन वाह रे हमारे बहादुर सेनानी! नाजुक हाथों से पकड़ी हुई कड़ाही की मुट्ठियों को कौन खोल सकता था। वह तो वज्र बन गई थी। आग की लपट से बदन व हाथों में फफोले हो गए। लेकिन टस से मस नहीं। उसके शरीर धरती पर घसीटे जा रहे थे। जनसमुद्र

की क्रोधाग्नि भड़क उठी। वे अपने आराध्य देव, प्यारे नेता, सरदार को छुड़ाने आगे बढ़ चले। इतने में मधुर आवाज सुनायी पड़ी—धर्म की जय! हमारा मत अहिंसा है। महान गुरु गांधी हैं। पुलिस हमारे भाई हैं। भगवान इन्हें सुबुद्धि दें। यही हमारी मन कामना है। महात्मा गांधी तथा बिहारकेसरी की जय से आकाश गूँज उठा। इसी तरह ३२-३४-४२ में वह हमारा सरदार सदा संग्राम में आगे रहा। उसने जंजीरों की झंकार को पसन्द किया। वह जन्मजात बागी है, विद्रोही है। बगावत उसका मजहब है। क्रान्ति उसका मित्र है। जनता का दुख दर्द उसका साथी है। वह गरीबों का बन्धु, अनाथों का सहारा है। उसके प्रशस्त ललाट, चिनगारी निकलती हुई चमकीली आँखें दुश्मनों की छाती में हड़कम्प पैदा कर डालती हैं। उसका हृदय वज्र-सा कठिन एवं मक्खन-सा मुलायम है। वह सागर सा गम्भीर, समय आने पर युद्ध देवता सा ताण्डव नृत्य करने वाला है। उसकी वाणी में जादू है, आकर्षण है और है जनता के हृदय को जीतने का नैतिक बल। उसका चरित्र, निर्लोभ, निर्मल एवं महान है। वह एक साथ सेनापति तथा दुर्धर्ष योद्धा दोनों है। वह हमारा प्रधान मन्त्री है। कुशाग्रबुद्धि और अपने कर्मठ नेतृत्व द्वारा वह प्रांत और देश को अधिकाधिक गौरवान्वित करते हुए मजदूर किसानों के युग का निर्माण कर सकेगा, ऐसा अटल विश्वास है। आज मैं अपने सरदार बिहारकेसरी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

बिहार की एक याद

[लेखक—श्री सी० वी० एच० राव, भूतपूर्व सम्पादक, इंडियन नेशन]

श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रणेताओं ने मुझे अपने संस्मरण लिखने का जो सुअवसर प्रदान किया है उससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है। लेकिन ऐसा करने के पहले, औरों की नाईं, मैं श्री श्रीकृष्ण सिंह का, उनकी ६१ वीं वर्षगांठ के अवसर पर अभिनन्दन करता हूँ। जब मैं 'इण्डियन नेशन' का सम्पादक था, उसी समय श्री श्रीकृष्ण सिंह से मेरा परिचय हुआ और उनके प्रथम प्रधानमंत्रित्वकाल (१६३७-३६) में तो मैं एक तरह से उनके निकट-सम्पर्क में आ गया। उद्देश्य की सच्चाई, ईमानदारी और स्पष्टवादिता एवं कठिन परिश्रम करने की क्षमता उनके चरित्र की बुनियादी विशेषतायें हैं। जो कुछ उन्हें कहना रहता था, उसे वे साफ-साफ कहते थे। मगर उनके कथन में लेशमात्र भी व्यक्तिगत विद्वेष कभी नहीं रहता था और न उससे किसी को आघात ही पहुँचता था। उस समय 'इण्डियन नेशन' की नीति कांग्रेस-परस्त नहीं थी; और न, मेरे जानते, अभी भी वह कांग्रेस-परस्त है। 'इण्डियन नेशन' की नीति की यह विशेषता थी कि वह कांग्रेस-मंत्रिमंडल के कार्यों पर यथासंभव स्वतंत्र रूप से विचार करता था। कांग्रेस-मंत्रिमंडल के जो कार्य प्रशंसनीय होते थे, उनकी वह प्रशंसा करता; मगर आलोच्य कार्यों की आलोचना करने से भी वह कभी नहीं चूकता था। चूंकि वह जमीन्दारों का समर्थक है, इसलिए मंत्रिमंडल के जिन कार्यों और नीतियों से जमीन्दारों और उनके हितों पर आघात पहुँचता था उनकी उसे कटु आलोचना करनी पड़ती थी। इस प्रकार यद्यपि हम लोगों के दृष्टिकोण अलग-अलग थे, तथापि मेरे हृदय में श्री श्रीकृष्ण सिंह के प्रति जो सम्मान के भाव थे, उनमें कभी तनिक भी कमी नहीं हुई। इसके अतिरिक्त उनमें साहस और विश्वास की भरपूर मात्रा थी। 'ब्रेट सर्कुलर' के सम्बन्ध में श्री श्रीकृष्ण सिंह ने जो कड़ा रुख अख्तियार किया था, उसकी स्मृति अभी भी मेरे मस्तिष्क में बिल्कुल ताजा है। अगर मेरी स्मरणशक्ति मुझे धोखा नहीं देती, तो उनके कड़े रुख के कारण ही बिहार सरकार के तत्कालीन चीफ सेक्रेटरी श्री डब्ल्यू० बी० ब्रेट को अवकाश ग्रहण करना पड़ा था। १६४६ में जब कांग्रेस ने फिर शासन की बागडोर सँभाली तो वे बिहार-असेम्बली में कांग्रेस के नेता चुने गये। जनता के प्रतिनिधियों ने उन्हें पुनः अपना नेता निर्वाचित कर, न केवल बिहार के नेताओं में उनके उच्च स्थान को मान्यता प्रदान की है, बल्कि अपने प्रान्त की जनता की सुदीर्घ काल तक जिन्होंने लगातार सेवा की है उनके प्रति भी उन्होंने सम्मान प्रदर्शित किया है।

श्रीबाबू : एक झाँकी

[लेखक—डाक्टर जनार्दन मिश्र, एम० ए०, डी० फिल०, बी० एन० कालेज, पटना]

आज से तीस वर्ष पूर्व की बात है। मैंने मुंगेर जिला स्कूल की चौथी श्रेणी में नाम-लिखाया था। मैं मुंगेर नगर एवं उसकी जनता से परिचित नहीं था। पर मुझे यह मालूम होने में देर नहीं लगी कि मुंगेर नगर, एक तरुण और उदीयमान वकील की प्रशंसा से गूंज रहा है। इस तरुण ने जिला एवं दौरा जज के इजलास में इस खूबी से बहस की थी कि उक्त जज को बरबस खुली अदालत में उसकी प्रशंसा करनी पड़ी जो उस जमाने के लिए साधारण बात नहीं थी। यह वकील थे श्री श्रीकृष्ण सिंह।

श्रीबाबू ने एम० ए०, बी० एल० पासकर कुछ ही वर्ष पहले, वकालत शुरू की थी। इतने थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी असाधारण योग्यता के कारण यश अर्जन कर लिया था।

श्रीबाबू के बड़े भाई श्री देवकीनन्दन सिंह की मुख्तारी खूब चली हुई थी। देवकी बाबू की धर्म में आस्था थी, उनका व्यक्तित्व दीप्तिमय था और वे ऊँची संस्कृति के व्यक्ति थे। उनके देखने मात्र से मालूम पड़ता था कि मानों स्वर्गलोक से उतर कर कोई देवता साक्षात् पृथ्वीतल पर विचरण कर रहा हो। उनके उच्च चरित्र के कारण सभी उन्हें सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखते थे। श्रीबाबू के दूसरे भाई राधिका बाबू भी बी० एल० पास कर चुके थे और तीसरे कालेज में अध्ययन कर रहे थे।

श्रीबाबू के स्कूल के सभी साथी स्कूल से निकल चुके थे। उनके समय में जो लड़के निम्न श्रेणियों में पढ़ते थे, वे अब उच्च कक्षाओं के छात्र थे। वकील की हैसियत से श्रीबाबू ने जो यश अर्जन किया था और जनता के बीच उनके जो ओजस्वी भाषण हुआ करते थे, उनका इन विद्यार्थियों के दिलों पर गहरा प्रभाव था। जब कभी वे इकट्ठे होते तो श्रीबाबू की ही प्रशंसा करते। वे कहा करते कि श्रीबाबू अद्भुत पुरुष हैं। उनके भीतर आश्चर्यजनक आग है जो उन्हें छात्रों का नेतृत्व करने के लिए वाध्य करती रहती है। वे छात्रों के जन्मजात नेता हैं।

छात्रावस्था में वे जलपान की छुट्टी के समय खेल के मैदान में छात्रों की सभा करते। किले की खाई की ढलुवा जमीन गैलरी का काम देती और खाई का ऊँचा किनारा मञ्च का और

श्रीबाबू इसी मंच से छात्रों के सम्मुख व्याख्यान देते। गत वर्ष जब मैं मुंगेर-जिला-स्कूल के एक उत्सव में शामिल होने के लिए वहाँ गया तो लोगों ने बड़े ही गौरव के साथ इस कहानी को दुहराते हुए कहा कि खेल के मैदान में भाषण करनेवाला छात्र आज हमलोगों का सम्माननीय प्रधान मंत्री है।

कुछ समय के बाद श्रीबाबू के भतीजे गौरी से मेरी गहरी दोस्ती हो गई। अब मेरी पहुँच उनके विशाल पारिवारिक पुस्तकालय तक हो गई तथा श्रीबाबू एवं उनके परिवार के अन्य लोगों के साथ मेरा परिचय भी हुआ। साधारणतः वे विभिन्न देशों के इतिहास, विधान और राजनीति पर बातें करते और हमलोगों को उच्च लोकतंत्र, और अमेरिकन स्वतंत्रता के इतिहास, वर्क के भाषण, और इसी प्रकार की दूसरी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया करते।

हमलोग यथासंभव अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करें, इसके लिए वे बड़े ही चिन्तित रहते थे। वे कभी-कभी मिन्टो होस्टल की चर्चा करते, जहाँ उन्होंने अपना कालेज-जीवन व्यतीत किया था। उस समय पटना कालेज और उसके छात्रावासों में, अनुशासन और सुप्रबन्ध के नाम पर, छात्रों का जो दमन किया जाता था, उसने उन्हें पूरा विद्रोही बना दिया था। वे प्रायः कहा करते कि अगर मेरे हाथों में कभी ताकत आई तो सबसे पहले मैं गुलामी के इस पिंजड़े को ही तोड़ डालूँगा।

बिहारकेसरी

१६२१ में असहयोग-आन्दोलन देश में तूफान की गति से आया। श्रीबाबू उस आन्दोलन में उस पक्षी के समान कूद पड़े जिसे आँधी में ही उड़ने में स्वाभाविक आनन्द आता हो। जनता और देश की सेवा करने की संचित व्यग्रता, महत्त्वाकाँक्षा और भावनाओं को अब उन्मुक्त क्षेत्र प्राप्त हुआ और वह अपनी पूरी गति के साथ बाहर फूट पड़ीं। जिन लोगों ने असहयोग के दिनों में श्रीबाबू को काम करते देखा है, उन्हें यह समझने में तनिक भी देर नहीं लगेगी कि श्रीबाबू को बिहारकेसरी क्यों कहा जाता है। प्रान्त के विभिन्न भागों में, विशेष कर मुंगेर, मुजफ्फरपुर और भागलपुर जिले में असहयोग-आन्दोलन को उनके वंशगत गौरव, उनकी विद्वत्ता, उनके चरित्र, उनकी सच्चाई और देशभक्ति एवं जनता पर उनके महान प्रभाव से बड़ा ही बल मिला।

कुछ दिनों के बाद असहयोग-आन्दोलन शिथिल पड़ गया। श्रीबाबू जेल से बाहर आये। मैं उन दिनों बी० एन० कालेज में लेक्चरर के पद पर काम कर रहा था। मुझे पता चला कि श्रीबाबू पटने आये हैं और अपने मित्र शम्भु बाबू के साथ ठहरे हैं। मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझे तुरन्त बुला भेजा। जाकर देखा—श्रीबाबू वही श्रीबाबू हैं। मुंगेर में गौरी ने मुझसे कई बार कहा था कि अत्यधिक अध्ययन के कारण उन्हें अनिद्रा का रोग हो गया है। अतः उनको सुलाने के लिए उनके

पैरों को घण्टों गर्म पानी में डुबो कर रखना पड़ता है। मैंने देखा कि यहाँ भी श्रीबाबू निधान की तीन मोटी मोटी पुस्तकों के साथ बैठे हैं और उनके हाथों में है लाल और नीली पेन्सिल। बातचीत का क्रम प्रारम्भ होने पर श्रीबाबू ने कहा कि मुझे एक ही बात का खेद है, और वह यह है कि वकालत करने के समय मैं पुस्तकों के क्रम में जितना व्यय कर सकता था, उतना अब नहीं कर पाता। मैंने सुझाव के रूप में पूछा—"तो क्यों नहीं वकालत फिर से प्रारम्भ करते ? अब तो वकालत करने पर कांग्रेस की ओर से कोई मनाही नहीं रही और बहुत-से वकीलों ने वकालत शुरू भी कर दी है।" श्रीबाबू गंभीर हो गये। उन्होंने कहा—'मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह तो दूसरों की कमजोरियों से अनुचित लाभ उठाकर रोटी अर्जन करना है। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।" फिर उन्होंने कहा—"एक ही दिन मुझे वकालत पुनः शुरू करने की इच्छा उत्पन्न हो गई थी। मुंगेर जिला बोर्ड के प्रचार कार्य के लिए मैंने अमुक धनी व्यक्ति से मेजिक लेंटर्न खरीद देने का अनुरोध किया। इसे खरीदने में शायद पाँच सौ रुपये लगते। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि, चूंकि उन्हें मोटर-गाड़ी खरीदनी है, इसलिए वे इस कार्य के लिए रुपये नहीं दे सकते। इससे मुझे बड़ी चोट पहुँची और मुझे पुनः वकालत शुरू करने की इच्छा होने लगी। लेकिन यह क्षणिक कमजोरी दूर गई और अब मैंने उस विचार को सदा के लिए छोड़ दिया है।" फिर मैंने कहा—"मैं राजनीति में शामिल होना चाहता हूँ।" श्रीबाबू ने उत्तर दिया—'अगर आप राजनीति में आ जायँगे तो इससे मुझे बड़ी खुशी होगी। मैं चाहता हूँ कि आप जैसे लोग राजनीति में आयें। लेकिन इसके लिए बड़े ही संघर्ष की जरूरत है। एक अनुभवहीन दार्शनिक की नाईं मैंने कहा—"जीवन ही संघर्ष है।" श्रीबाबू कुछ देर तक चुप रहे और फिर बोले—"क्या स्वतंत्र हिन्द को अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता नहीं होगी ?" मैंने कहा,—"हाँ, अवश्य होगी" उन्होंने कहा—"तब आप अच्छे अध्यापक होने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ?" श्रीबाबू के इस छोटे से वाक्य ने मेरे दिमाग की सारी अस्थिरता और चंचलता को दूर कर दिया। मैं देश की सेवा करने के लिए अच्छा अध्यापक बनने का निश्चय कर लिया और श्रीबाबू के उस छोटे-से वाक्य का मुझपर गुरुमंत्र के समान प्रभाव पड़ा। गत वर्ष मैं उनसे कई बार मिला। मुझे यह देखकर सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्रीबाबू छात्रों के अभी भी उतने ही बड़े हितचिन्तक हैं। इतने वर्ष बीत जाने पर भी उनकी उस चिन्ता में जरा भी कमी नहीं हुई है। हमलोग उनकी हीरकजयन्ती के अवसर पर उनको अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रदान कर रहे हैं, यह बड़ी ही प्रसन्नता की बात है। यह विद्वान और तपा-तपाया जनसेवक अपने ज्ञान, अनुभव और सेवाभावना से वर्षों तक हमलोगों का नेतृत्व करने के लिए दीर्घायु हो।

हमारे प्रधान

[श्री केदारनाथ गोयनका, दीवान बहादुर']

मैं श्रीबाबू को अपने बचपन से ही देखता आ रहा हूँ। आज वे हमारे प्रान्त के प्रधान हैं किन्तु, उनका व्यक्तित्व प्रारम्भ में भी कुछ इतना प्रभावशाली था कि हम उन्हें देखकर सहज श्रद्धा के भाव से झुक जाते थे। उन दिनों जब कि हम केवल स्वतंत्र राष्ट्र की कल्पना मात्र किया करते थे, श्रीबाबू स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिकों के हृदय में विश्वासपूर्वक उत्साह और प्रेरणा भरने में व्यस्त थे।

मुंगेर-निवासी होने के नाते मैंने श्रीबाबू को प्रायः निकट से ही देखा है। बिहार के भाग्य-विधाता को उन दिनों जेठ की दुपहरी में पैदल और टमटम पर चलते-फिरते देख कर अंग्रेजों के प्रति उनके हार्दिक विरोध का पता चल जाता था, क्योंकि वे उन दिनों शासक नहीं, शासन के विरोधी क्रान्तिकारी थे।

अब तो उन्हे देखकर गर्व होता है, क्योंकि, वे हमारे ही घर के हैं। यद्यपि उनके सामने अनेकानेक समस्यायें सदा ही रहीं तथापि देश को बन्धन-विमुक्त करने की ही चिन्ता सर्वोपरि थी।

श्रीबाबू में आकर्षण की एक खास बात यह है कि वे अपने परिचितों को सदा स्नेहभाव से देखते रहे हैं और संभवतः इसीलिए ऊँचाई पर चले जाने पर भी स्नेहियों को स्नेह दान देने में उन्हें किंचित् हिचक नहीं होती।

भगवान् उन्हे लम्बी जिन्दगी दें, यही मेरी कल्याणकामना है।

मालिक

[लेखक—श्री विपिनविहारी वर्मा]

मैं बिहारकेसरी श्री श्रीकृष्ण सिंह को आज पचीस बरसों से भी अधिक से जानता हूँ जब से हम लोग महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करने लगे थे। शुरू से ही मेरी उनके प्रति श्रद्धा रही है और उसी प्रेम भाव के नाते मैं बराबर "मालिक" कहकर संबोधन करता आया हूँ और उनका भी मेरे प्रति बराबर प्रेम बना रहा है। श्रीबाबू बिहार के इनेगिने व्यक्तियों में एक हैं जिनके त्याग, ज्ञान-भंडार, लगन और राजनैतिक कुशलता ने हमारे प्रांत को आगे बढ़ाया है। कांग्रेस के कामों में जैसे वे आगे रहे वैसे ही शासन चलाने में भी आगे रहे हैं। उनकी शासन कुशलता का परिचय तभी से लोगों को मिलने लगा था जब उन्होंने मुंगेर जिलाबोर्ड की चेयरमैनी का भार अपने ऊपर लिया। श्रीबाबू ने बड़ी खूबी से इस प्रांत के प्रधान मंत्री के पद को निबाहा है। सब तबके के लोग इनको प्रेम की दृष्टि से देखते हैं। हमारे प्रांत के उच्च श्रेणी के वक्ता की हैसियत से श्रीबाबू ने प्रांत को आगे बढ़ाया है। हमारे प्रांत के सार्वजनिक जीवन में इनकी जनप्रियता बहुत बढ़ी हुई है। आपने महात्माजी को नेता मान कर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने की बराबर चेष्टा की है और बहुत सफलता के साथ अपनी जवाबदेही को निभाया है।

श्रीबाबू को मैंने काम करते देखा है और इतने अधिक तथा अथक परिश्रम के बाद भी शांत और प्रसन्नचित्त पाया है। श्रीबाबू को मुझे बहुत नजदीक से देखने का मौका मिला है जिससे मैं कह सकता हूँ कि वे एक योग्य नेता, सफल राजनीतिज्ञ, प्रवीण वक्ता, गंभीर पंडित के अतिरिक्त एक सदय मित्र और कृपालु सखा हैं। हर व्यक्ति में कोई न कोई कमजोरी भी रहती है और वह उनमें भी है। वह यह है कि वे मरउनी हैं जिसका नाजायज नफा उनके प्रेमी तथा हम जैसे नजदीकी उठाकर उन्हें कभी-कभी असमंजस में रख छोड़ते हैं।

भगवान करें, श्रीबाबू चिरायु हों और इस प्रकार कार्य करने में सफल हों जिससे बिहार प्रांत का सिर भारतवर्ष में सब प्रांतों से ऊँचा बना रहे।

पूज्यवर श्रीबाबू

[लेखक—श्री कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद']

सन् १९२१ ई० में गांधीजी ने असहयोग की जो आँधी चलायी, उसमें अन्य असंख्य विद्यार्थियों के साथ मेरा भी पढ़ना समाप्त हो गया और मैं स्कूल छोड़कर छपरे में ही काम करते-करते गिरफ्तार हो गया। जेल से छूटने के बाद मैं अपने भाई के यहाँ बेगूसराय में जा डटा। उन दिनों मैं दमे की बीमारी से परीशान था और बेगूसराय में ही उसका इलाज करवा रहा था। याद आता है कि ठीक उसी समय मुंगेर के वकील साहब (उस समय लोग श्रीबाबू को इसी नाम से पुकारते थे) बेगूसराय आये और एक विशाल सभा में उनका भाषण हुआ। मुझे अब भी याद है कि उनका भाषण अत्यन्त ओजस्विता से पूर्ण था और जनता का हृदय सहज ही भावाकुल होकर उनकी ओर दौड़ता जा रहा था। पंजाब-हत्याकांड का वर्णन वे ऐसी मार्मिकता से कर रहे थे कि लोगों की आँखों से आँसुओं का प्रवाह जारी हो रहा था तथा सभी के हृदय में अंग्रेजों के प्रति क्रोध भरता जा रहा था। मेरा भावुक हृदय तो पहले से ही मेरे हाथों से निकल चुका था और मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अगर हुकूमत को पलटने का बीड़ा हमारे नेताओं ने उठा लिया है तो मैं भी इस हुकूमत की जड़ खोदने में उनका सहायक अन्त तक बनूँगा।

श्रीबाबू मुंगेर जिले के एकच्छत्र नेता हो गये। केवल चुनावों और आजादी की लड़ाइयों में ही नहीं, बल्कि हर सामाजिक प्रश्न, विवाह-शादी, यहाँ तक कि आपसी झगड़ों में भी लोग श्रीबाबू का पथ-प्रदर्शन चाहने लगे। जनता का यह अलभ्य प्रेम श्रीबाबू को आज भी प्राप्त है और आज भी अपने जिले के सार्वजनिक जीवन की कुंजी उन्हीं की जेब में रहती है। मुंगेर जिले का राजनैतिक जीवन और जिलों की अपेक्षा कुछ अधिक ठोस रहा है। वहाँ बैर-फूट और तनाव और जगहों की अपेक्षा बहुत ही कम हैं और इस अवस्था का प्रधान कारण मैं उनके मधुर व्यक्तित्व को मानता हूँ जिसमें सभी कार्यकर्त्ताओं का प्रेम एक स्थान पर बसता है।

जनता उन्हें बहुत ही प्यार करती है। नमक-सत्याग्रह के समय जब वे बीमारी की हालत में ही नमक-कानून तोड़ने के लिए गढ़पुरा जाने लगे तब लोग हुजूम बाँध कर उनके पीछे हो

लिये। श्रीबाबू के गले में फूलों की मालाएँ ढेर की ढेर डाली जा रही थीं। इस प्रेम को देख कर श्रीबाबू अकुला उठे और उन्होंने कहा कि "आज जिस रास्ते से मैं फूलों की माला पहिन कर जा रहा हूँ, उसी रास्ते से कल मुझे आप जंजीरों में जकड़ा हुआ लौटते देखेंगे।" जंजीर तो नहीं डाली गई, मगर, गढ़पुरा में श्रीबाबू के साथ काफी सख्ती की गई। जब पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने को आई तब वे चूल्हे पर चढ़े हुए कड़ाह पर सो गये और सिपाहियों ने उन्हें पशु की भाँति बुरी तरह घसीटा। जनता रोती रही, किन्तु, श्रीबाबू की आँखों से आँसुओं की एक बूँद भी नहीं निकली। हाँ, उनके शरीर में छाले अवश्य पड़ गये।

मैंने यह सारा दृश्य अपनी आँखों से देखा था। इस घटना से मेरा हृदय दहल गया और श्रीबाबू की इस अप्रतिम वीरता को अनुकरणीय मानकर मैं बराबर पुलकित होता रहा। पीछे जब सत्याग्रह की भावना को फैलाने के उद्देश्य से मैंने 'बेगूसराय-गोलीकाण्ड" नामक एक प्रचार-पुस्तिका लिखी (जो तुरत जब्त कर ली गई) तब श्रीबाबू के प्रति मैंने अपने भाव इस प्रकार लिखे थे —

जगी बिहार का शेर वहाँ श्रीकृष्ण पहुंच कर आया है।
जनता का बढ़ता जोश देख ऐय्यर मन में घबड़ाया है।
श्रीकृष्ण नहीं यह ब्रज का है, यह कुरुक्षेत्र की ज्वाला है।
अंधड़, तूफान, बवंडर है, यह हालाहल का प्याला है।
छाती में उसकी आग और बातों में उसकी शोले हैं।
वक्तृता वह्नि की धारा है, शब्दों में गोली गोले हैं।
वह सेनापति है, योद्धा है, उसका बल, तेज निराला है।
वह देशभक्ति की मदिरा पीकर बना हुआ मतवाला है।
सारा बिहार है एक विपिन, श्रीकृष्ण सिंह बलशाली है।
इस वीर केसरी के उर में माता की भक्ति निराली है।
इस जादूगर के जादू से, कुछ ऐसा भाव उमड़ता है।
सुनते उसका आदेश मौत पर बच्चा भी चल पड़ता है।
"राजेन्द्र" शान्ति के दूत, क्रान्ति "श्रीकृष्ण" रूप धर आई है।
"राजेन्द्र-कृष्ण" ये नहीं, मान्य में राम लखन दो भाई हैं।

श्रीबाबू की देशभक्ति बराबर ऊँचे धरातल पर रही है। वे उनलोगों में से हैं जो देश-सेवा के लिए अपनी सुविधाएँ तो क्या, हँसते हँसते अपनी जान भी दे दे सकते हैं। भारतवर्ष धन्य है कि उसकी गोद में ऐसे नररत्न भरे हैं।

वे अपने सिपाहियों पर विशेष कृपा रखा करते हैं। देश के लिए थोड़ा भी बलिदान करनेवाला आदमी सहज ही उनकी सहानुभूति का अधिकारी हो जाता है। अपनी तीनों जेल से लौटने पर मैंने देखा कि वे मुझ-जैसे नाचीज स्वयसेवकों के सुख-दुख में भी काफी दि. च. हैं। भगवान उन्हें शतायु करें, क्योंकि इस देश की जनता की आशाओं और । के वे प्रतीक हैं।

पूज्य श्रीबाबू

[लेखक—श्री बनारसी सिंह, चेयरमैन, जिला बोर्ड, मुंगेर]

मैं उन दिनों जिला स्कूल का एक छात्र था, जब श्रीबाबू राष्ट्रयज्ञ के पुरोहित बन चुके थे। सर्वप्रथम मैंने उन्हें जिला स्कूल में ही देखा और उसी समय श्रद्धा का जो बीज हृदय में अंकुरित हुआ, वह आज सुदृढ़ वृक्ष बनकर तैयार है। उन दिनों ये छात्रों के एकमात्र मित्र, दार्शनिक तथा रहनुमा थे। अतएव हम सबों की उनमें बड़ी आस्था थी। मेरे एक दो साथी तो ऐसे थे जिन्हें उनका पूर्ण स्नेह तथा आशीष प्राप्त था। वह युग राष्ट्रीय उथलपुथल का था। एक ओर पूज्य गांधीजी असहयोग का शंख फूँक रहे थे, दूसरी ओर कुछ क्रांतिकारी उस शंखध्वनि में क्रान्ति की लहर पैदा करने की चेष्टा में थे। एक ओर अहिंसा की सुघोषम वाणी थी, दूसरी ओर हिंसा की प्रतिशोध भरी ललकार। उस लहर ने हमलोगों को भी आकृष्ट किया—खुदीराम बोस की तसवीर प्रेरणा देने लगी, किन्तु, श्रीबाबू ने उस लहर से खेलने से हमलोगों को रोका। आज यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया कि उन्होंने हमें उधर जाने से क्यों रोका था।

हम सबों ने उनके आदेश का पालन किया, फिर तो मुझे उनसे मिलने जुलने का शुभ अवसर सदा ही मिलता रहा—वे हम सबों के नेता थे और हम सब पद-चिह्नों पर चलनेवाले सेवक। जिले की राजनीति उनके इशारों पर चलने लगी। इधर बापू उन्हीं दिनों चंपारन के किसानों का पक्ष लेकर नीले साहबों से मोर्चा लेने बिहार पधार चुके थे—बिहार के किसानों में इसके कारण एक नवजागरण आया। कई कारणों से श्रीबाबू चंपारन नहीं जा सके थे, पर, उनके सद्भाव प्रान्त के एक एक किसान के लिए फूट रहे थे।

१९२० में कुछ ही दिनों के बाद कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। असहयोग की समस्या को लेकर बड़े-बड़े नेता दुविधा में थे। श्रीबाबू भी उस समय किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके थे। जब देश के नेता इसी उलझन में फँसे हुए थे, गोपाष्टमी के पुनीत अवसर पर मैंने खड़गपुर किसानों की एक विराट सभा का आयोजन किया था। श्रीबाबू ने उस विराट जनसमूह के निकट सारी दुविधायें छोड़ कर सिंहनाद किया और असहयोग का पूरा समर्थन किया। उस दिन प्रथम प्रथम श्री नन्दकुमारसिंहजी को श्रीबाबू से साक्षात्कार हुआ था और उन्होंने अपनी दिलेरी तथा

ओजस्वी वक्तृता से श्रीबाबू को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। नंदकुमार बाबू उन दिनों यद्यपि छात्र ही थे तथापि उनके इस भविष्य की सूचना राष्ट्रयज्ञ की प्रथम आहुति से ही चमक उठी थी।

असहयोग के समय से ही खड़गपुर तथा तारापुर के इलाकों के लिए श्रीबाबू के हृदय में एक स्थान-सा हो गया था—दूर तक फैले हुए खेतों की हरीतिमा, वर्षा की रिमझिम, पकी हुई मकई की बाली तथा फागुन के चने आदि आज भी उन्हें उसी तरह याद हैं। इन इलाकों की पैदल-यात्रा में समय-समय पर जो आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ था, वह सचमुच स्मरणीय है। हमलोगों की पैदल-यात्राओं के एक बड़े ही जिन्दादिल साथी थे पं० दशरथजी! दशरथजी जब गाय और घोड़ी का अंग्रेजी अनुवाद क्रमशः oxwife और horsewife करते थे तो उनके विलक्षण अंग्रेजी ज्ञान के कारण बड़ा मनोरंजन होता था। इन्हीं यात्राओं के क्रम में एक दिन तारापुर बाजार में हमलोगों की ठहरने की भी व्यवस्था नहीं हो सकी थी, सारे बाजार से आतिथ्य-भाव का जैसे लोप हो गया था। फलस्वरूप हम सबों को जाड़े की रात में एक किसान के आग्रह पर ईख का रस पीना पड़ा था—ते हि नो दिवसा गताः।

मुंगेर के राजनीतिक जीवन की एक खास विशेषता रही है, वह है—नेतागिरी के चढ़ाव-उतार का अभाव। वस्तुतः यह श्रीबाबू के समन्वयवादी व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। मुंगेर के कुछ ऐसे भी कार्यकर्त्ता थे जिनके प्रति आज भी श्रीबाबू के हृदय में असीम श्रद्धा के भाव हैं—वे हैं शाहजुबैर साहब तथा नेमधारी श्रीबाबू। अपने से बड़ों के प्रति आदर का तथा छोटों के प्रति सहानुभूति और स्नेह का भाव इनके हृदय में सदा ही रहा है। इनकी इसी निरभिमानिता के कारण आज भी यहाँ के राजनीतिक जीवन में कटुता का विष नहीं फैल सका है। जिस अपनत्व तथा ममत्व से वे अपने सहयोगियों तथा साथियों को देखते रहे हैं वह वास्तव में प्रशंसा की चीज है। अपने साथियों का साथ वे छोड़ना कभी भी पसन्द नहीं करते थे। अभी भी अपने पुराने साथियों के साथ उनका वही व्यवहार है। मुझे याद है—जब श्रीबाबू हम सबों के साथ थर्ड क्लास में बैठकर मद्रास कांग्रेस के लिए ट्रेन से सफर कर रहे थे तब इन्हें थर्ड क्लास में अपने साथियों के साथ देख कर उसी ट्रेन में जानेवाले बंगाली कार्यकर्त्ताओं को बड़ा क्षोभ हुआ था; क्योंकि उनके नेता उसी ट्रेन में उनसे अलग फर्स्ट क्लास में यात्रा कर रहे थे।

राजनीतिक जीवन में श्रीबाबू की एक और उल्लेख योग्य विशेषता रही है कि अबतक उन्होंने कभी भी अपने निर्वाचन क्षेत्र में जाकर वोट के लिए कनभासिंग नहीं किया है। और तो और, उन्होंने चुनाव-काल में आवश्यक कार्य के लिए भी अपने निर्वाचन-क्षेत्र की यात्रा स्थगित कर दी है। फिर भी विजय सदा ही इनके साथ रही है। १६२० में बोर्ड के चुनाव के अवसर पर

श्रीबाबू के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण ही कांग्रेस प्रत्येक क्षेत्र में विजयी हुई थी जब कि प्रान्त के अन्य जिलों में कांग्रेस को कहीं-कहीं हार भी खानी पड़ी थी।

आज देश आजाद है—श्रीबाबू हमारे प्रान्त के प्रधान हैं—हमारे नेता हैं। मैं हृदय से अपने जननायक की लम्बी जिन्दगी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

तुम सलामत रहो, हजार बरस
हर बरस के दिन हों पचास हजार।

बिहारकेसरी

[लेखक—श्री मौलवी मोहम्मद युसुफ]

बहुत छोटा रहा होऊँगा, तभी विहारकेसरी बाबू श्रीकृष्ण सिंह का दर्शन पहलेपहल नसीब हुआ था। वे किसी सभा में भाषण दे रहे थे और सभी लोग एकटक उनकी ओर देख रहे थे। मुझे अब भी अच्छी तरह याद है कि बीच-बीच में लोगों की आँखों से आँसू छलछला पड़ते थे और सभी सुननेवालों में खूब ही उत्साह था। श्रीबाबू जादूगर की तरह एक-एक शब्द बोलते जाते थे और लोगों का दिल आप से आप खिंच कर उनकी ओर चला जाता था। जब उन्होंने बोलना खत्म किया, लोगों को ऐसा मालूम हुआ, मानों, कोई ऐसी आवाज अचानक रुक गई हो, जिस आवाज के सहारे वे किसी दूसरी दुनिया में घूम रहे थे। क्योंकि श्रीबाबू उन कुछ थोड़े से लोगों में से हैं जो अपनी जीभ के जोर से जनता को कुछ से कुछ बना देते हैं। इस सूबे में तो उनके-जैसा बोलनेवाला कोई दूसरा है ही नहीं; सारे देश में भी उनके समान सफल वक्ता ज्यादा नहीं हैं।

श्रीबाबू गांधीजी के बहुत बड़े भक्त हैं और उनके उपदेशों पर चलने का वे बहुत कोशिश करते हैं। बटवारे के बाद भी वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता के वैसे ही प्रेमी रहे जैसे उसके पहले थे। पिछली बार जब सूबे में साम्प्रदायिक गड़बड़ी हुई तब वह अक्सर ही रो पड़ते थे और कहते थे कि गांधीजी को मैं कौन मुँह दिखाऊँगा कि मेरी वजारत में ही मुसलमानों पर मुसीबत का यह पहाड़ टूट पड़ा। और मुस्लिमलीग के स्वार्थी नेता चाहे जो भी कहें, किन्तु, साधारण मुसलमान-जनता श्रीबाबू की सचाई पर यकीन करती है और उसे पूरा भरोसा है कि श्रीबाबू की वजारत में मुसलमानों का बाल भी बाँका नहीं होगा।

आजादी की लड़ाई के जमाने में हमने श्रीबाबू को एक जोशीले नेता के रूप में देखा था। किन्तु, वजारत की गद्दी पर जोश की जगह होश आ गया है। यह भी सूबे की खुशकिस्मती की निशानी है। जो बिहारकेसरी पहले निडर सिंह की तरह अंगरेजों के खिलाफ दहाड़ते फिरते थे, वे ही अब अपना पाँव फूँक-फूँक कर उठाते हैं।

श्रीबाबू की सरलता बिलकुल बच्चों-जैसी है। वह एकदम निश्छल व्यक्ति हैं और कभी भी किसी का दिल नहीं तोड़ते। वह आज भी अपने से बड़ों का आदर करते तथा छोटे छोटे नौजवानों का दिल बढ़ाते हैं। देश के लिए जिसने थोड़ी भी कुर्बानी की है, वह आसानी से उनका प्रेमपात्र हो जाता है। चरित्र की उनकी नजर में बड़ी ही कीमत है और चरित्रवान लोगों की वह मदद भी खूब करते हैं।

जनता का श्रीबाबू पर दिली यकीन है और सभी लोग उनकी वजारत को बहुत ही काम याब देखना चाहते हैं। हमारी भी अल्लाह-तआला से दुआ है कि वह श्रीबाबू को लंबी उम्र और तन्दुरुस्ती बख्शे जिससे वे सूबे की हुकूमत की बागडोर अभी कई वर्षों तक अपने मजबूत हाथों में लिये रहें।

बिहारकेसरी जिन्दाबाद।
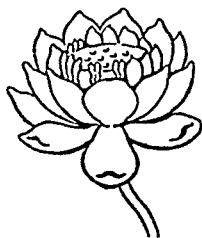
बिहार-केसरी, अध्ययन-कक्ष में

Dr. Shreekrishna Sinha—as I know Him

By

Dr. Sachin Sen, M.A., B.L., Ph.D.

The common man in Bihar knows Dr. Sreekrishna Sinha more as a politician. They have found in him a great political leader guiding the destiny of the province in a free India. It is a hard task. Much is expected of the leader. They are nursing and nourishing him with their active and cheerful co-operation. But Dr. Sinha impressed me as an intellectual, as a loving and lovable person. His ways are charming; his talks are invigorating; his urbanity and culture are striking; he has a correct historical perspective. He has both vision and imagination. History will record if Dr. Sinha will leave his foot-prints in the path of unfoldment of Bihar. But he will be remembered as a person with a sympathetic heart and a dynamic mind.

Every student of political science knows that politics is at bottom a search for power, and in the chase after power one often forgets the larger interests of the country and worships the vested interests of his party or his group. It may be good or bad, but it is a stern reality. At every period in history all political struggles are fought in the name of the common man, and history shows that the ruling party or group grows its vested interests and the dominating social classes. This forms the philosophical background of power politics. Does it mean that one should abandon politics ? Certainly not. In the modern scheme of things, progress or regress comes through the gateway of politics, that is through the apparatus of the state. A modern state touches on all the fronts of national life, and the state is acted for by those who are in power for the time being. Today Dr. Sreekrishna Sinha is the leader of the province, and his

party is in possession of the state machinery It is said that the Congress is in power. True that the Congress party is the ruling party But Congress is an abstract concept, its character can be assessed from the understanding of persons who dominate the Congress organisation If Bihar Congress is to be known, we must turn to Dr Sreekrishna Sinha and his party men In sober realism, to understand the Bihar Congress politics, one must know its leader—his ways, manners, and tactics That is why Dr Sreekrishna Sinha occupies a large space in the public life of the province The future is in his keeping People have superb faith in him and in his leadership That is a great point to take note of The leader must lead, and he can lead if he succeeds in inspiring confidence among people People speak through the leader and hear through the leader That is why it is epigrammatically said that people get the kind of leadership they deserve

He is a fighter, not an agitator He knows how to fight for a cause, how to continue a crusade against wrongs and injustice, but he dislikes the agitation for personal aggrandisement It is difficult to distinguish between a fighter and an agitator A fighter loves his cause, pursues certain approved principles, leaves aside unapproved sniping activities to further his gains A fighter must have faith and grit But an agitator has passion, lust and tactics He changes his tactics to suit his convenience, and he always remembers hisself and subordinates the cause An agitator may succeed in politics, but it is bound to be a short-lived victory He will instal personal leadership when he gets into power Dr Sreekrishna Sinha hates the role of an agitator He is in power He will continue to be a democratic leader, so long as people willingly and cheerfully give him cooperation But he will cease to be a democratic leader, if people cooperate with him through fear and for a share in power and patronage Democracy is not vindicated if one is returned to power by people The main question is this if people support the leader through their own free will and without any coercion I am impressed with Dr Sinha's leadership, because it is broadbased on the free support of people Should it happen that people's support is given through fear or under duress, the leadership loses its democratic stamp It is not

a strange phenomenon in history that many successful democratic politicians have turned out to be the worst dictators.

My conviction is that Dr. Sreekrishna Sinha is loath to behave undemocratically. His nature and nurture have made him a genuine democrat. He wants a free press ; he detests an irresponsible press; he discards a subservient press. I had had talks with him. This forms the sheet-anchor of his political faith. He is fully conscious of the educative, the chastening influences of press criticisms. He values them greatly. He knows that the administration is likely to go wrong without proper guidance. And that guidance can only come from vigilant public opinion and from a free press. It is only genuine democrats who can be genuinely appreciative of a free press, of the positive role of an independent press.

The one thing that is remarkable about Dr. Sreekrishna Sinha is that he scorns all forms of ugliness, pettiness, smallness and vindictiveness It may be that the chariot of his administration has gathered dirt and filth ; it is not improbable that his party men are infected with specks of leprous thinking and political vendetta. But he is most miserable and unhappy when all this happens He feels suffocated in the dark chamber of political conspiracy. He is brave, bright and bold ; he has no taste for guile, grab and greed. If he is exploited for foul purposes, that is his ill luck. If designing men gather around him, that is a tragedy. The jewel in him cannot be affected by the surrounding base chemicals in the furnace of politics. That is why he is anxious to come out of the shell of a political group. When he accepted the prime-ministership of Bihar, he was truly speaking, the leader of the dominant Congress group. He was not happy. He worked for the unification of his cabinet, and it was through the magic of his personality, the opposition group in the Bihar cabinet melted away. That undoubtedly improved his political stature. In a free India, he wanted to extend the frontiers of his leadership in the province, and he succeeded in bringing the B. P. C. C. under the flag of his leadership. His ambition is to broadbase his leadership on the active and cheerful cooperation of people. Today he has come out of the narrow channel of his group leadership, and he swims in the open stream of public appre-

ciation He is now the leader of Bihar, accepted in the legislature and in the Congress organisation It will be tragic for Bihar f he fails, or if we work for his failure Our task is to see that there is no fungous growth in the stream of the public life of Bihar If we can keep his leadership free from the stain of mud and malevolence by our watchful vigilance and healthy criticisms, we shall be discharging a historic task It is a travesty of democracy if vigilance and criticism are shut out Dr Sinha accepts the implications of democracy He does not want, nor do we desire, that his leadership will stagnate in pools of unenlightened adulation and of profligate group politics

In this short article I have tried to analyse and to understand Dr Sreekrishna Sinha As a public journalist my function is to study the social forces and to watch how they behave I need not raise the academic question if social forces throw up the leader or if the leader creates the social forces The inter-play of personalities and social forces is a fascinating study But in the given political set up, much depends on the leadership He may release, further or arrest the creative role of social forces Dr Sinha attracted me profoundly because I found him a great lover of good food, good books and good souls If a man is known by the company he keeps, Dr Sinha must attract all decent men If such a person, as Dr Sinha is, becomes the leader, he is bound to play a revolutionary role If the wheels are clogged by dirt and mud, that is indicative of bad roads Dr Sinha is to cleanse the roads, to level up the ditches, to strengthen the bridges, so that his chariot can proceed at top speed If there are inevitable jerks we do not mind them But if the route is changed and the blind alley pre erred, that will be a bad day for Bihar We intensely wish for the success of his leadership I salute the leader of Bihar

———

BabuShree Krishna Sinha—Glimpses of His Personality

By

Kumar Kalika Prasad Singh, M.L.A.

When between 1919 and 1922 Mahatma Gandhi dazed the world by churning upsingle-handed the Indian political waters with the celestial strings ofTruth and Non-violence, many a bright jewel came to the surface;and Babu Shree Krishna Sinha was easily one of the brightest. This churning up of the political blues, with hands so pure and means so sublime, threw up, as it were, for the service of the motherland the very cream of society—men for whom Mammon had little charms, and for whom the values of life were very different from those of men who preferred then to bask in the sunshine of the foreigner's favours.

So, when in 1521 Babu Shree Krishna Sinha turned once and for all his back on his rapidly mounting practice at the bar, he had his hands firm on the oars; for he has since moved with firm and unfaltering steps towards that distant charmed light held by the Mahatma, heading right through the certain life of sorrow, suffering and political wilderness until resounding victory was his. Well might the scoffers of those days cry with Alexander selkirk, addressing "Freedom's battle" for "Solitude" and with consequential other changes :—

"Oh ! Freedom's battle ! where are the charms
That patriots have seen in thy path !
Better live in perpetual disdain than
Take thy dreadful blood-bath."

And indeed it was not without passing through many a veritable bloodbath that he is today adorning the *gaddi* of the people's Raj in the province of his birth

He is the Lion of Bihar—not for the brute force that terror-of the-forests represents—nor even for its resounding roarings which in the earlier days his thundering orations recalled so closely—but for possessing that steel courage and largeness of heart the lion has always symbolised—a largeness of heart that ever aims high, but never derides the small and the petty Like the king of forests again, he is cast in a right royal mould in every fibre of his make up The prince in him peeps out generally in his preferences for the fair and the fine, as also in the fastidiousness of his choices for the delicacies of the dinner table

But where he is pronouncedly a prince among his compeers it is in the majestic magnanimity and gracious generosity of his heart which ever keeps him above pettinesses of every kind, even through the grimmest of political rivalries that invariably surround men of his position This bountiful charity in Babu Shree Krishna Sinha's nature covers friends and foes alike Whenever any of his many opponents would contact him on any business, he has a knack of touching them with a wand of magnanimity that, apart from instantly melting all traces of bitterness that opposition generates, readily removes much of the earth from under the feet of their opposition, even in many cases leading to completest conversion and change-over I have myself observed this magic transformation occur in several cases But alas for the rivalries and bickerings that would not spare even the most angelic among our politicians today ! Perhaps this detestable phase of politics is in the very nature of things as they are—human nature being instinctively a lover of power, and politics being inextricably attached to that very covetable commodity

It was an intriguing complexity of human nature that puzzled you when you saw Babu Shree Krishna Sinha on the one hand display a lion's courge in standing out like a rock in defence of popular rights in the face of the erstwhile Governors and other white I C S men, and

on the other saw that very courage melt like wax when it came to facing his own followers against their indefensible shortcomings and misdeeds. He sometimes even almost looks like being afraid of his own men. The explanation however lies in the intrinsic goodness and simplicity of his heart which provides a standing restraint against his ever venturing to wound his comrades' sentiments, even in public interest. He is too good and too soft for this essential qualification of a leader. It is in contexts like these that his critical admirers sometimes wish that he showed somewhat tougher nerves as the head of the administration.

The cause of the weak and the backward could not have found a sturdier champion than in Babu Shree Krishna Sinha; and his generosity goes all out for such a cause. But the rub comes when he appears to dethrone merit from its rightful pedestal in public administration and enthrone thereon the cause of these backward classes. But Babu Shree Krishna Sinha appears to be inspired, as it were, by a vision into the realities of the future, which seems to goad him on to be more and more generous to the cause of the suppressed and the backward. Anyway, at the moment these unfortunate classes must thank Providence that their best champion and friend is today at the helm of affairs in Bihar. I, for one, rejoice in their good luck.

Babu Shree Krishna Sinha's uncommon erudition and scholarship is at once a pride and an asset to our first national government. His insatiable zeal for the acquisition of books is equalled only by his assiduity in making excellent use of them. Like the industrious bee he knows no rest in gathering the honey of knowledge from the flowers of books. This provides his greatest solace and is the sole hobby of his life. In the midst of his multifarious public engagements he is never so happy as when he can steal some moments to be alone with his books. Big cities attract him for their large bookshops, and once in them all his cash would invariably change pockets before he is out of them. His critics, however, are sometimes heard whispering sarcastically that he is a rather selfish lover of books, for he has yet to share with the public at large, through writings, the fruits of his voracious readings. But I feel that is largely a figment of impatience, and these too will be forthcoming in good time.

And he has a minor hobby too—that of collecting varieties of red and blue pencils ! If you present him with a new variety of such a pencil, you can see his inner joy beam out of his eyes like a child's This, however, is a derivation from his major hobby, for, he must carry a red-and blue pencil while reading his books

His outstanding contribution to the public life of this province has been through his striking and majestic oratory—especially when he spoke in the vernacular His was an oratory perfect in the modes of delivery, as in the modulations of his voice,—one that carried but a single, yet striking, gesture of a raised arm with a swinging forefinger, while the upper trunk swung gently from side to side His was an oratory rich in conception and presentation of his theme, and richer still in the uncommon flights of imagination which for a whole generation has swept audiences off their feet in Bihar It was indeed an excellent and matchless specimen of oratory that the present generation of Bihar has heard from Babu Shree Krishna Sinha I use a past tense deliberately because his advancing age and failing health, coupled with rheumatic knees, have depleted considerably the quality of his performances in recent years Yet even now, when roused, he could hold his own on the public platform of this province or even of India In fact, judging from the specimens of vernacular oratory heard in the sessions of the All-India Congress, I dare say Babu Shree Krishna Sinha's oration has remaine dunequalled—far less excelled-in the whole length and breadth of India I dare say again that in rousing and inspiring a whole generation of Biharis into political consciousness, and making Bihar a leading Congress province, Babu Shree Krishna Sinha's oratory has had the largest share and credit

Is it not a tragedy, therefore, of the first magnitude that nature should have smothered all its uncommon gifts it so bountifully showered on our Shree Krishna Babu by bestowing alongside that unwanted trait of a false modesty but for which our hero today would have shone among the brightest in New Delhi ? A man's innate nobility s sometimes a liability, especially when it generates an inexplicable modesty and shyness, at times even making one cruelly unfair to oneself We know for certain that Babu Shree Krishna Sinha

would have shot to the moon and the stars in the Indian firmament, were it not for this over-modesty and shyness he displays when placed in an All-India setting. It is this unhappy trait of his character that has given his numerous lovers and admirers the mortification of seeing their hero sometimes by-passed by men of lesser worth and merit. But Babu Shree Krishna Sinha moves on unhurt by such dodges of destiny, and is even instinctively happy that the other man has got the distinction. Such is the plane on which Babu Shree Krishna Sinha lives, moves, and has his being.

Babu Shree Krishna Sinha abhors nothing like limelight, but limelight has a knack of catching him up on its focus; and when he attempts to hide in the shades of that light, there his own light reveals him.

Reminiscences of 'Bihar Kesari'

By

Hemchandra Basu, M. A., B. L., Advocate, Monghyr

I have had the privilege of knowing Shri intimately since his very early days as he, along with his brother, happened to read under my father, the late Babu Baidyanath Basu, the then headmaster of the Monghyr Zila School. My father was very fond of the Sinha brothers and often brought them to our house. Gopikrishna being a good musician, sang Bhajan in so appealing a way that my parents grew to like him immensely. As a pupil however, Shri was a special favourite of my father, who was much impressed with his genius and saw in him a bright and promising youth of the country. Shri was noted for his power of expression and elocution. Even then he could deliver a speech extempore in English—a quality he rather inherited than acquired. In his first performances one could detect the germs of his fine oratory which has swayed the masses for decades now.

There was a rift in the lute, for Shri had to leave Monghyr for his higher studies at Patna first and Calcutta later. In the meantime a great intimacy developed between myself and the late Babu Deokinandan Sinha, elder brother of Shri, who was a leading lawyer of the day on the criminal side. I distinctly remember the occasion one day in 1916 when Deoki Babu brought Shri to my place and entrusting him to my charge said, "Now that Shri has joined the bar, it is up to you to train him in the line." I was highly pleased to see the charming young man, whom I had known as a mere stripling, now grown up to the stature of manhood, full of energy and promise, with a face radiant with intelligence and spirit.

Shri worked with me in many cases and I was highly impressed with his keen intelligence, his amazing legal acumen and his

perfect grasp of facts. His geniality and graceful smile which he ever bore on his face, coupled with his uprightness and sincerity made him popular with the bar and the bench. One of the remarkable features about Shri which struck me was the combination of antinomies in him. Ordinarily he was meek and submissive, but when occasion arose which involved principles he held dear to his heart, he could be strong and unflinching like a rock. I remember instances when he used to fight fearlessly with everybody—both bar and bench—for safeguarding the interests of his client and would not yield by giving a good point of law and fact. A student of history that he was, he had a prodiguous memory which stood him in good stead in his cases. Had he chosen to remain in the bar, there is no doubt he would have come to the top very soon. But his interest lay elsewhere. His spirit longed for something higher and nobler—for sacrifice and for service to his country. His public activities, even before 1921, showed the direction along which his native genius tended. He worked in the Students' Conference, Young Bihar Association and the People's Association, in collaboration with Dr. Rajendra Prasad, the late Babu Deep Narain Sinha of Bhagalpur, and the late Babu Shri Krishna Prasad, a leading member of the Monghyr bar. Finally, when the country's call came to him in 1922, he left his lucrative practice and joined the movement. Once he joined politics, he brought to bear upon his activities the abundant energy and indomitable spirit he had shown as a lawyer. Since then his career has been a long tale of continuous suffering and sacrifice. While many others could not stand the hardship of struggle and fell out, he became firmer in his devotion to his cause. Persecution and incarceration made him more and more adamantine in the pursuit of his mission and gave him fresh impetus towards the realisation of his principles. A true follower of the great saintly leader, Shri is not only a politician, but also a great humanitarian. After the calamitous earthquake of 1934, Shri did yeoman's service in connection with relief to the distressed. I was a member of the various committees formed and I have personally seen the tireless energy with which he worked day and night to relieve the sufferings of the people. He rendered signal services in relief works during flood havoc and famine in the province.

Though he has risen to the top and is in fact the first citizen of the province, he has not lost his simplicity, earnestness and sweetness of temper and native charm His warm sympathy goes out readily to those he finds in distress

A faithful disciple of the Mahatma, Shri has trod the path of peace and non-violence and attained the heights Ever noble and dignified in all walks of life, he has proved to be a beloved leader of his people and an efficient administrator of the province. May God give him many more days to steer the ship of the state through the storm and dark that loom large on the horizon !
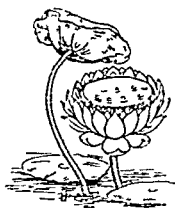
Shree Babu

By

Aghorenath Banerjee, Advocate, Monghyr,
Retired District and Sessions Judge.

I consider it a great privilege to recount my personal reminiscences of a great patriot, who is now at the helm of affairs, political and administrative, in the province of Bihar. I am, perhaps, one of the few persons still alive who have seen him grow up from a student to a lawyer and from a lawyer to a statesman.

Born in an obscure village in the interior of the district, Shree Babu was brought to Monghyr as soon as he attained the school-going age. His father was a pious gentleman of the old school—a devout worshipper of Lord Shiva and, although he did not himself have the advantage of high English education, he was much ahead of his time and was anxious that his sons should be educated and trained on modern lines. His eldest son, Babu Deokinandan Singh, was, perhaps, the first man of his community in the district of Monghyr to pass the mukhtearship examination and join the bar at Monghyr. Deoki Babu's rise in the profession was phenomenal and I have not yet come across any other mofussil lawyer who could shine so much in opposition to eminent counsels of those days. It was to his house in Mohalla Bellan bazar that Shree Babu and his other brothers were brought for receiving their school education. Shree Babu was, of course, the most brilliant of all the brothers, but two other brothers of his, namely, Radhika Babu and Gopi Babu, were also brilliant students.

In those days Mohalla Bellan Bazar was predominently a lawyers' mohalla. So many lawyers, most of whom were successful in the profession, living in the same mohalla created an atmosphere

of independence and had a considerable effect on the mental outlook of the sons and wards of those lawyers Politics was then confined to the Bar Association and all political thoughts originated from there In those days even delegates to the Indian National Congress were elected in the Bar Associations

Brought up in these surroundings, Shree Babu started taking an interest in politics from his school days People who saw and came in contact with him then were at once impressed by the handsome, quiet, amiable and grave boy whose brightness of intellect marked him out from the average run of school boys and it was universally believed that he had a bright future in store for him

As we were situated then, we could not think that India would be liberated in one generation and that Shree Babu would be the Prime Minister of Bihar, but our faith in his future greatness was so firm that we unhesitatingly believed he would surely rise to great eminence, in whatever avocation of life his lot was cast After passing the matriculation examination in the First Division and earning a Government scholarship, he left Monghyr to prosecute higher studies, and his scholastic career was so meritorious that he could easily get himself appointed to any gazetted post for the mere asking But none of the allurements which drew the brilliant graduates of those days to the folds of Government service had any attraction for him and he preferred the independent profession of law to any glamorous post under the Government Indeed, it was a lucky day for Bihar when, instead of following the usual inclinations of young men of his time, Shree Babu selected the thorny path of law so that he might have freedom enough to take part in the great struggle which was to free the country from foreign domination

Shree Babu joined the Monghyr bar on the 1st April 1915, and within a very short time gained considerable success and picked up a lucrative practice full of immense possibilities He was also contemplating seriously to sit for the D L Examination, preparatory to his shifting his practice to the High Court, when in the month of August 1921 he suddenly walked out of the Monghyr Bar Library,

never again to cross its threshold and plunged headlong into the non-co-operation movement, started by Mahatma Gandhi. His name, however, continued on the rolls of the Bar Association for a few weeks more and was eventually removed at his request on the 21st September 1921.

Shree Babu was not born with a silver spoon in his mouth and his people expected that he would stick to the profession and earn money to give a little more comfort to his family. He had already shown sufficient legal acumen, merit and power of advocacy, and was steadily going up the ladder when the call of Mother India reached him and it did not take him long to abandon the path of ease, luxury and wealth and select a life of privation, imprisonment and discomfort. He did not even allow himself to be swayed by the thought that he was leaving behind a young wife and infant children wholly unprovided for and entirely dependent upon others.

After leaving the profession, Shree Babu started making whirlwind tours of the district, preaching the doctrine of non-violent non-co-operation to the masses and it did not take him long to capture the hearts of the people of the district, both educated and uneducated, and he soon attained the rank and status of a first-rate political leader. The authorities had all the while kept a watchful eye on him, and, finding that the masses were implicitly ready to follow Shree Babu, decided to arrest him, along with his friends and co-workers

These arrests caused so much indignation amongst the members of the legal profession that the members of the bar in a body abstained from attending the courts for several days. with the result that judicial administration on the civil, criminal and revenue sides at the district headquarters of Monghyr came to a standstill, and the forlorn look of the courts gave the impression that the mighty British empire had come to an end. This was the first occasion in the history of India when our foreign masters had a foretaste of what total non-co-operation by the people of India would mean.

The fact that all the lawyers, without any exception and irrespective of caste, religion or creed, refused unanimously to attend court

for several days as a mark of protest against the arrest of Shree Babu at the risk of being dealt with by the authorities for unprofessional conduct, shows in what high esteem Shree Babu, still a beginner in the profession, was held by his fellow-practitioners—some of whom were old enough to be his father

To-day the name of the Bihar Kesari is a household word in Bihar and it will be borne down to posterity in the annals of Indian history and in the chronicles, anecdotes and folk lore of Bihar, but none will know the sufferings which he and his near and dear ones bore in silence and the sacrifices made by him His frequent incarcerations have ruined his health and still he is bearing the burden of an entire province with a smiling face and trying his best to ameliorate the conditions of the people He is accessible to the poorest of the poor and he is always ready to help those who need his help You will hardly find a more charming politician and administrator with a better sense of humour, and we all know how kind and sympathetic he still is towards his old friends and comrades His mild and amiable behaviour does not, however, convey the impression that he is soft—because it is known to all that he is as strong as well-tempered steel and as sharp as a razor and while he is always ready and willing to receive and bear honest and wholesome criticism, he knows how to put down undeserved opposition and unwarranted interference No wonder he commands implicit obedience from his subordinates and unqualified support from his colleagues and political co workers

May God keep him in good health and spare him long to serve his country and people and bring peace, happiness and prosperity to the province of Bihar !

श्रीबाबू :—संक्षिप्त जीवन-चरित

[प्रोफेसर कपिल, एम० ए०]

बाल-काल और विद्यार्थी-जीवन

मुंगेर जिले के बरबिघा थाने में माउर नामक एक प्रसिद्ध ग्राम है जिसमें सिरियार मूल के भूमिहार ब्राह्मणों की प्रधानता है। यहीं २१ अक्टूबर, १८८८ ई० तदनुसार कार्तिक शुक्ल पंचमी संवत् १९४५ को बाबू हरिहर प्रसाद सिंहजी के चतुर्थ तनय के रूप में श्रीबाबू का शुभ जन्म हुआ।

श्रीबाबू के सबसे बड़े भाई बाबू देवकीनन्दन सिंहजी मुख्तार थे जिनकी विद्या-बुद्धि और शील-चरित्र को अब भी सभी लोग बड़े ही आदर के साथ याद करते हैं। उनके दूसरे भाई रामकृष्ण बाबू भी बड़े ही चतुर गिने जाते थे। श्रीबाबू के तीसरे भाई, राधाकृष्ण सिंहजी ने भी वकालत पास की थी और वह अपने समय के छात्रों में, शायद, सर्वश्रेष्ठ वक्ता के रूप में विख्यात हो चुके थे; किन्तु, वह अकाल ही काल-कवलित हो गये। इसी प्रकार श्रीबाबू के छोटे भाई गोपी बाबू में संगीत तथा कला का अद्भुत प्रेम था, किन्तु, वह भी खिलने के पहले ही मुरझा गये।

बालक श्रीकृष्ण सिंह को अक्षरज्ञान करानेवाले ग्रामीण गुरुजी आज भी जीवित हैं। वह जाति के ग्वाले हैं तथा उनका शुभ नाम श्रीलक्ष्मीदास है। और अब वह अवकाश ग्रहण करके शान्ति का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह अपने शिष्य के विषय में तरह-तरह की कहानियाँ कहा करते हैं। कैसे उनका शिष्य पहलेपहल उनकी पाठशाला में लाया गया, कैसे उसने खल्ली पकड़ी, कैसे उसने शीघ्र ही अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लिया और गुरुजी के कोप में पड़कर कैसे उसने बेंत खाये, आदि कहानियाँ वह बड़े ही उत्साह के साथ कहते हैं।

घर पर बालक श्रीकृष्ण कुछ नटखट ही रहे होंगे; क्योंकि कई लोगों के मुँह से सुना गया है कि वह खाने-पीने में काफी हठी थे और घी की मात्रा कम होने से अथवा व्यंजन में स्वाद की कमी पाने पर वह सीधे थाली को ही उठाकर फेंक देते थे। पढ़ने में उनका खूब जी लगता था और वह अपने पूज्य पिताजी के स्तोत्र भी पढ़ लिया करते थे। पुस्तकों के संग्रह की ओर उनकी प्रवृत्ति

आरंभ से ही रही है और उनके भीतर की धर्मानुरक्ति एवं धार्मिक भाव भी बचपन से ही चले आ रहे हैं। यह संस्कार, शायद, उन्हें अपने परम पूज्य पितृदेव से प्राप्त हुआ जो अपने समय के नामी शैव थे।

ग्राम में आरंभिक पढ़ाई समाप्त करके श्रीबाबू मुंगेर ले आये गये और वहाँ उनका नाम जिला स्कूल में लिखाया गया जहाँ से उन्होंने एन्ट्रेंस की परीक्षा, बड़ी ही योग्यता के साथ पास की। उनकी कॉलिज की शिक्षा पटना कॉलिज में हुई तथा १९१६ ई० में उन्होंने मुंगेर में ही वकालत आरंभ कर दी।

राजनीति में प्रवेश

राजनीति का चस्का श्रीबाबू को अपने विद्यार्थी-जीवन से ही लग गया था। वह जब स्कूल में पढ़ रहे थे तब देश में स्वदेशी आन्दोलन का जमाना था और क्रान्तिकारी अरविन्द के लेखों, बंगाल के व्याघ्र, सर सुरेन्द्रनाथ के भाषणों तथा लोकमान्य तिलक के उद्‌गारों से देश में वही धड़ाका सुनायी पड़ता था जो आतंकवादियों के बम विस्फोट से सुनायी देता था। श्रीबाबू इस अपूर्व जागर्ति से अत्यन्त प्रभावित थे तथा गर्म विचारवाले इन नेताओं की वाणी के प्रभाव में उनकी अपनी मनोदशा धीरे-धीरे अपना आकार ग्रहण करती जा रही थी। स्वभावत ही, उनका झुकाव आतंकवाद की ओर हुआ और मुंगेर के कष्टहरणी घाट पर गंगा में प्रवेश करके उन्होंने गीता उठाकर अपने आतंकवादी गुरु के सामने शपथ खायी कि चाहे प्राण ही क्यों नहीं चले जायँ, किन्तु, मैं देशसेवा के पथ से कभी भी विचलित नहीं हूँगा। इस आतंकवादी गुरु के मुंगेर से चले जाने के कारण, आतंकवाद की राह पर श्रीबाबू बहुत आगे नहीं जा सके, किंतु, जो प्रतिज्ञा उन्होंने गंगा के बीच खड़े होकर की थी, उसने उन्हें बलिदान और देशसेवा की राह पर अविचल रखा है तथा कड़ी से कड़ी जाँच में भी वह बिलकुल पूरा उतरे हैं।

उन्होंने छात्र जीवन में ही सभाएँ करना, तत्कालीन नेताओं को उनमें आमंत्रित करना और संपर्क में आनेवाले युवकों पर देशभक्ति का रंग चढ़ाने की कोशिश करना शुरू कर दिया था। उनकी वाणी में आरंभ से ही अद्‌भुत प्रभाव था तथा उनके साथ रहनेवाले छात्र स्वभावत ही उन्हें अपना नेता माने हुए थे।

वकालत में आने पर उनकी राजनीति प्रियता घटी नहीं, बल्कि, और भी बढ गई और पहले उनका क्षेत्र अगर युवक मंडली के बीच था तो अब वह वयस्क लोगों के बीच देशसेवा के भाव फैलाने लगे। जिन लोगों की छत्रच्छाया में उन्होंने अपनी वकालत शुरू की थी, उनका कहना है कि पहले महीने से ही लोगों की यह राय हो गई थी कि श्रीबाबू एक दिन इस पेशे में नेतागिरी हासिल कर लेंगे। वह सत्य के पक्ष को जोर से पकड़ते थे और प्राय हठपूर्वक अपने पक्ष की स्थापना

के लिए निर्भीक होकर प्रयत्न करते थे। वाणी पर स्वामित्व रखने के कारण वह जो कुछ कहते थे वही श्रवणीय होता था। इस प्रकार, उनकी प्रसिद्धि बढ़ती गई एवं लोग उनके भविष्य के विषय में सुदृढ़ता के साथ विश्वास करने लगे।

वकालत उन्होंने सन् १९१६ ई० से लेकर सन् १९२१ ई० तक की। इस बीच वह मुंगेर जिले में होम रूल आन्दोलन के नेता भी रहे। एक बार की बात है कि शहर की किसी सभा में, जिसमें कलक्टर और दूसरे सरकारी अफसर भी मौजूद थे, श्री बाबू ने प्रसंगवश अपना परिचय यह कहकर दिया कि वह अखिल भारतीय होम रूल आन्दोलन के सक्रिय सदस्य हैं। सिर्फ इतनी-सी बात पर, उस समय के लोग श्रीबाबू के साहस पर चकित हो गये और सरकारी अफसरों के चेहरे का पानी उतर गया।

अपने छात्र-जीवन में श्री बाबू बिहारी छात्रसंघ के प्रमुख सदस्य थे। वकील हो जाने पर वह आल इंडिया होमरूल आन्दोलन के मंत्री भी रहे। इसके सिवा, मुंगेर में उन्होंने "पीपुल्स एसोशियेसन" नामक एक स्थानीय लोकसंस्था की स्थापना की और इसके वह मंत्री और संचालक रहे।

१९१७ ई० में जब गांधीजी चंपारन आये तब श्रीबाबू ने होम रूल आन्दोलन को छोड़ कर गांधीजी के साथ रहकर काम करना चाहा। किन्तु, दुर्भाग्यवश अपने भाई की बीमारी और पीछे चल कर उनकी मृत्यु के कारण वह इस आन्दोलन में साथ नहीं हो सके।

असहयोग-आन्दोलन में

१९२१ ई० में जब असहयोग-आन्दोलन का आविर्भाव हुआ, तब श्रीबाबू को यह निश्चित करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं हुई कि इस सम्बन्ध में उनके कर्तव्य की दिशा क्या होनी चाहिए और वह सीधे अपनी वकालत को छोड़ कर गांधीजी के दल में जा मिले। गांधीजी का दर्शन उन्होंने इससे पूर्व ही, पहलेपहल काशी में किया था और वहाँ से वह इस विश्वास के साथ लौटे थे कि भारतवर्ष की मुक्ति की घड़ी निकट आ गई है और महात्मा गांधी ही उसके उद्धारक होंगे। अतएव, जब गांधीजी ने स्वतंत्रता के महासमर की घोषणा की और राष्ट्र को अंगरेजी सलतनत से असहयोग करने का निमंत्रण भेजा तब श्रीबाबू को यह समझने में देर नहीं लगी कि यही देश की मुक्ति के लिए किये जानेवाले संघर्ष का आरंभ है।

असहयोग-आन्दोलन के समय श्रीबाबू ने मुंगेर जिले के चप्पे-चप्पे को छान डाला। उस समय मोटर की सुविधा तो राष्ट्र-कर्मियों को उपलब्ध थी नहीं, अतएव, देहात की सारी यात्रा टमटम, बैलगाड़ी, हाथी पर या पैदल ही करनी पड़ती थी। तब भी श्रीबाबू खूब घूमे और जिले भर की जनता के गहरे संपर्क में वह इस तरह आ गये कि सर्वत्र उनके नाम की धूम मच गई और बच्चा-बच्चा उन्हें एक प्रतापी नेता के रूप में जानने और मानने लगा।

कारावास

१६२१ के दिसम्बर या १६२२ की जनवरी में सरकार की आज्ञा के विरोध में स्वयंसेवकों का जत्था निकालने के अपराध में श्रीबाबू पहली बार गिरफ्तार हुए। उनके साथ उनके तीन मित्र श्री तेजेश्वर प्रसाद, स्वर्गीय शाह मोहम्मद जुबैर और स्वर्गीय धर्मनारायण सिंह भी गिरफ्तार किये गये और ये सभी साथ ही जेल भेज दिये गये। पहले ये लोग मुंगेर जेल में रखे गये, किन्तु मुकदमे का फैसला हो जाने पर जब इन्हें एक साल की कड़ी कैद की सजा हो गई, तब ये भागलपुर सेंट्रल जेल भेज दिये गये और वहाँ कुछ महीने रह लेने के बाद उनकी बदली हजारीबाग जेल कर दी गई।

श्रीबाबू को आरम से ही पुस्तकों से विलक्षण प्रेम रहा है और जेलों में किताबें उनका सबसे बड़ा मित्र रही हैं। जेलों का कोई भी कष्ट उन्हें इतना याद नहीं है जितना पुस्तकों का अभाव। किन्तु, पहली बार के जेल-जीवन में पुस्तकें उन्हें काफी मिलती रहीं और उन्होंने डट कर अध्ययन किया।

जब वह जेल से बाहर आये तब तक देश का वातावरण बदल चुका था। चौरीचौरा-कांड के बाद गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन का रोक दिया था और वह स्वय भी जेल जा चुके थे। इसके सिवा गया कांग्रेस समाप्त हो चुकी थी और देश बड़ी ही गंभीरता के साथ यह विचार कर रहा था कि कौंसिल प्रवेश की नीति को कैसे अपनाया जाय।

जिला बोर्ड में

१६२३ या २४ के चुनाव में श्रीबाबू पहले पहल मुंगेर जिला बोर्ड के सदस्य चुने गये। इस समय तक वह मुंगेर जिले के एकच्छत्र नेता हो चुके थे और सभी सदस्यों और मित्रों का आग्रह था कि वह जिला बोर्ड के चेयरमैन हो जायँ। किन्तु, उन्होंने यह कहकर इस प्रलोभन को ठुकरा दिया कि "शाह मोहम्मद जुबैर साहब मेरे बड़े भाई के समान हैं तथा जब तक वह मौजूद हैं तब तक चेयरमैनी की गद्दी उन्हीं के लिए महफूज रहनी चाहिए।" अपनी इस प्रतिज्ञा को उन्होंने शाह साहब के जीवन-पर्यन्त निबाहा और उनके अन्दर स्वय वायस चेयरमैन रहकर वह प्रसन्नता के साथ बोर्ड की सेवा करते रहे।

प्रान्त और देश की राजनीति पर, विशेषत हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर इस छोटी सी घटना का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। अपने प्रान्त के एक दूसरे प्रसिद्ध नेता, श्री अनुग्रहनारायण-सिंह इस घटना का उल्लेख करते हुए "मेरे संस्मरण" नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "मुंगेर में शाह जुबैर और श्री श्रीकृष्ण सिंह की जोड़ी ऐसी थी जिसकी तुलना किसी दूसरे जिले से नहीं की जा सकती थी। दोनों प्रभावशाली और परस्पर मित्र थे। जितने काम हुए दोनों की रजामन्दी से

हुए। श्रीबाबू अपनी वाग्मिता के जोर से बिहारकेसरी का पद पा चुके थे। जिले के कोने-कोने में उनके सिंहनाद की गूँज पहुँच चुकी थी और जहाँ कहीं भी किसी तरह का मतभेद होता, उनके पहुँचने के साथ दूर हो जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों संप्रदायों के मेम्बरों का चुनाव वहाँ संतोष-जनक रूप से हुआ और शाह साहब को चेयरमैन बनाकर श्रीबाबू ने अपनी उच्चता का परिचय दिया और इससे मुसलमानों के दिल पर एक जबर्दस्त असर हुआ।"

मुंगेर जिला बोर्ड का प्रबन्ध प्रान्त भर में आदर्श रहा है। श्रीबाबू ने आरम्भ से ही सद्भावना, पारस्परिक प्रेम और त्याग तथा उदारता एवं सहिष्णुता की जो परंपरा वहाँ कायम कर दी, वह आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। चेयरमैनी का सवाल हर जिले में उस जिले की राजनीति में जटिलता उत्पन्न करनेवाला रहा है। किन्तु, मुंगेर में वह कभी भी राजनीति को दूषित नहीं कर सका। इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए अनुग्रह बाबू लिखते हैं कि "प्रान्त के सारे कांग्रेस बोर्डों में मुंगेर का नम्बर बहुत ऊँचा रहा। आपस की तू-तू मैं-मैं से बचकर बोर्ड का प्रबन्ध इस तरह होता रहा कि श्री गणेशदत्त के बहुत कोशिश करने पर भी कोई नुक्श नहीं निकल सका। वह अपना एक भी अनुयायी वहाँ नहीं बना सके। बहुत कोशिश करने पर भी कांग्रेस के विपक्ष में वहाँ दाल नहीं गली। आज भी इस गिरते हुए जमाने में मुंगेर बोर्ड प्रान्त के सभी बोर्डों में अपना ऊँचा स्थान रखता है। बावजूद इसके कि किसान-सभा तथा और-और लोगों का प्रवेश वहाँ काफी संख्या में होता रहा है, बिहारकेसरी के प्रभाव को उखाड़ फेंकने में किसी को भी सफलता नहीं हुई।"

कौन्सिल-प्रवेश

१९२७ ई० में जब कांग्रेस ने कौन्सिल-प्रवेश का निश्चय किया तब श्रीबाबू कौन्सिल के सदस्य एवं सर्वसम्मति से स्वराज्य पार्टी के नेता चुने गये। इस पद पर रहकर उन्होंने कांग्रेस की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिये। अंगरेजी सलतनत के खिलाफ देश में जो भावना थी, उसकी अभिव्यक्ति उनकी वाणी में होती रही। कौन्सिल में विरोधी दल के प्रधान नेता की हैसियत से उन्होंने कितने ही ऐसे भाषण दिये जिनकी गूँज देश भर में फैल गई और श्रीबाबू का सम्मान कांग्रेस दल के एक प्रधान वक्ता के रूप में किया जाने लगा।

कौन्सिल में सरकारी पक्ष के प्रबल समर्थक प्रातःस्मरणीय सर गणेशदत्त सिंह थे जिनके चरित्र-बल और त्याग के प्रशंसक केवल श्रीबाबू ही नहीं, बल्कि, प्रान्त के और भी नेता लोग थे। किन्तु, बात-बात पर श्रीबाबू ने कांग्रेस की ओर से सर गणेश का विरोध किया एवं उनकी दलीलों की धज्जियाँ उड़ा दीं। कौन्सिल के भीतर वह सर गणेश की ऐसी धज्जी उड़ाते थे कि लोग उनके व्यवहार को कटु भी कहते थे। किन्तु, स्वराज्य पार्टी का नेता किसी सरकारी आदमी को बर्दास्त ही क्यों करता !

देश के हित के सामने और कांग्रेस की प्रतिष्ठा के प्रश्न पर श्रीबाबू ने कभी भी किसी विरोधी के साथ नर्मी नहीं बरती, चाहे वह उनका मित्र ही क्यों नहीं रहा हो। बिहार में वह जातीयता की मलिनता से मुक्त और राष्ट्रीय गौरव की धरोहर को जुगानेवाले सबसे बड़े योद्धा रहे हैं। इस सबन्ध में उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल एव अनुकरणीय रहा है एव इसके लिए उनकी जो भी प्रशसा की जाय वह थोड़ी ही है। माननीय श्रीअनुग्रहनारायण सिंह जी, जो इस प्रान्त की राजनीति को अथ से इति तक बारीकियों के साथ जाननेवाले नेता हैं, लिखते हैं कि जब सर गणेशदत्त के मन्त्रित्व-काल में गया बोर्ड जब्त कर लिया गया और उसके चेयरमैन (अनुग्रहबाबू) के खिलाफ जिले में कुत्सित प्रचार किये जाने लगे तब बिहारकेसरी ने सरकार की इस नीति का प्रचडता के साथ विरोध किया। अनुग्रह बाबू कहते हैं कि "श्रीबाबू ने अपने ओजस्वी भाषण में सर गणेश और सरकार के कारनामों पर काफी रौशनी डाली। उन दिनों उनकी तबीयत अच्छी नहीं थी, इसलिए सफर में वह नहीं जाया करते थे। मेरी वजह से और सरकार की इस ज्यादती के खिलाफ आवाज उठाने के लिए ही श्रीबाबू ने उस कष्ट का सहन किया।"

केन्द्रीय एसेम्बली में

सन् १९३४ ई० के चुनाव में श्रीबाबू केन्द्रीय एसेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। किन्तु, यहाँ उन्हें वक्तृता का उपयोग करने का कम मौका मिला। इसका कारण यह नहीं था कि वह काम करना या बोलना नहीं चाहते थे, बल्कि, यह कि दूसरों को धक्के देकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। जहाँ आगे बढने के लिए धक्कमधुक्की मची हुई हो, वहाँ श्रीबाबू ठहर नहीं सकते और सीधे पीछे की ओर जा बैठते हैं। एसेम्बली में उनका व्याख्यान शायद एक ही बार हुआ, किन्तु, वह इतना प्रभावोत्पादक रहा कि देश के अखबारों ने टिप्पणियाँ लिखीं कि ऐसा मालूम होता है कि "एसेम्बली के अद्भुत वक्ता अभी पीछे की बेंचों पर बैठ रहे हैं।"

वक्तृता

श्रीबाबू की वक्तृत्वशक्ति विलक्षण है। इसी गुण के कारण उन्हें देश ने बिहारकेसरी का पद प्रदान किया। इसी गुण के कारण वह सदैव सर्वसम्मति से अपने दल के नता चुने जाते रहे हैं। इसी गुण के कारण उन्हे अनेक भक्त मिलते रहे हैं और इसी गुण से वह अपने युग में जागति के सदेशवाहक बनकर पूजनीय पद पर पहुँचे हैं। अब तो उनके भाषण की पृष्ठभूमि में बौद्धिकता और विद्या का अप्रतिम प्रभाव आ कर खड़ा हो गया है, किन्तु, काफी वर्षों तक उनके भाषण की रीढ़ उनकी अद्भुत भावुकता रही है। समस्त सग्राम के बीच वह देश के क्रोध, क्षोभ और वेदना की वाणी थे और उनके एक-एक शब्द पर जनता का हृदय दोलायमान होता था। सन् १९३१ में जब भगत सिंह फाँसी पड़नेवाले थे और कांग्रेस राउण्ड टेबुल में जानेवाली थी, उन दिनों श्रीबाबू पर विद्रोह

का एक उन्माद-सा छाया हुआ था। यह उनके बारंबार जेलगमन का समय था। किन्तु, जिस दिन भगत सिंह फाँसी पड़े, उस दिन वह जेल से बाहर थे और पटने में ही थे। दूसरे दिन भँवरपोखर में एक शोक-सभा हुई जिसके प्रधान वक्ता श्रीबाबू होने वाले थे। किन्तु, अपने एक बच्चे के मर जाने के कारण उस दिन वह काफी गमगीन थे। वह जब सिर मुड़ाये हुए सभास्थल पर पहुँचे, श्रोताओं को उनकी कर्तव्यनिष्ठा पर एक प्रकार की दया का भाव हुआ। किन्तु, जब वह बोलने को उठे, तब एक अपूर्व समाँ बँध गया। उस दिन उनके उद्गार आग, आँसू और खून, तीनों ही से सने हुए उद्गार थे और सभा में रह-रह कर साधुवाद की गूँज उठने लगी। उस दिन का उनका यह वाक्य, शायद, अभी भी बहुतों को याद होगा कि "राउण्ड टेबुल कान्फ्रेन्स में एक ओर हिन्दुस्तान और दूसरी ओर इंगलिस्तान होगा, किन्तु, दोनों के बीचोंबीच भगतसिंह की लाश पड़ी होगी। मैं नहीं जानता कि हिन्दुस्तान का हाथ इंग्लैण्ड के उस हाथ से कैसे मिलेगा जिसमें भगतसिंह का खून लगा हुआ है?"

सत्याग्रह आन्दोलन और तीन जेल-यात्राएँ

प्रान्त में यह घटना अब बहुत लोग जानते हैं कि १९३० ई० में श्रीबाबू जब गढ़पुरा (बेगूसराय) में नमक बनाने गये तब पुलिस ने नमक के कड़ाह को चूल्हे पर से उतार लेना चाहा, किन्तु, श्रीबाबू ने सत्याग्रही मनुष्य की विलक्षण वीरता का अद्भुत परिचय देते हुए उस खौलते हुए कड़ाह पर अपनी छाती रोप दी और उसकी तप्त मूठों को अपने हाथों से पकड़ लिया। यह मनुष्य के अद्भुत साहस का प्रमाण था और लोगों ने उस दिन यह मान लिया कि इस साहस का परिचय कोई सिंह ही दे सकता है। इसी घटना के बाद वह गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें छः महीनों की कड़ी कैद की सजा हुई।

सजा पाने के बाद श्रीबाबू भागलपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये और वहाँ से फिर उनकी बदली हजारीबाग जेल में कर दी गई। किन्तु, सजा भोगकर वह निकले ही थे कि फिर पकड़ लिये गये और इस बार अठारह महीनों के लिए कैद करके हजारीबाग सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये।

कारावास की अवधि अभी पूरी नहीं हुई थी कि गांधी इरविन पैक्ट की शर्तों के अनुसार कैदियों की रिहाई होने लगी और श्रीबाबू भी अन्य कैदियों के साथ समय से कुछ पहले ही रिहा कर दिये गये।

श्रीबाबू छूट कर बाहर आये, लेकिन, अभी गांधीजी जेल से लौटे भी नहीं थे कि सारे देश में धर-पकड़ जोरों से शुरू हो गई। पहले चुन-चुन कर चोटी के नेता ही पकड़े जाने लगे और इसी सिलसिले में श्रीबाबू फिर से गिरफ्तार कर लिये गये। इस बार उन्हें दो वर्षों की सजा हुई और वह फिर अपने तपःस्थान, हजारीबाग जेल भेज दिये गये। मैजिस्ट्रेट ने उन्हें सिर्फ दो वर्ष की सजा ही

नहीं दी थी, बल्कि, उनकी सजा कड़ी थी, उन्हें "बी" क्लास दिया गया था और सबके ऊपर एक हजार रुपये जुर्माने की भी शर्त थी।

इस सजा को भोग कर वह सन् १९३३ के अक्टूबर महीने में जेल से वापस आये। जुर्माने का रुपया तो पहले ही वसूल कर लिया गया था।

दो चुनावों में हार

चुनाव की राजनीति यह है कि जहाँ दायरा छोटा हो, वहाँ अच्छे लोग भी चुनाव हार जाते हैं। उदाहरणार्थ, अगर जवाहरलालजी किसी ग्राम-पंचायत के मुखिये के पद के लिए उम्मीदवार हों तो अजब नहीं कि वह हार जायँ। कितनाभाज आदमी को भी पटकने के लिए उसे बड़े अखाड़े में ले जाना पड़ता है। इसी न्याय के अधीन, मुंगेर के एकच्छत्र नेता बिहारकेसरी श्री श्रीकृष्ण सिंहजी सन् १९२९ ई० में मुंगेर म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में हार गये।

१९२९ ई० में जब कौन्सिल आव् स्टेट का चुनाव होने लगा, तब श्रीबाबू भी उसके उम्मीदवार थे। किन्तु, इस चुनाव में भी उन्हें कम वोट मिले और वह निर्वाचित नहीं हो सके। उस समय इस चुनाव के सम्बन्ध में कई तरह की टीकाएँ की जाती थीं, किन्तु, अब तक कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकी और न बिहारकेसरी को ही इस घटना की तह में जाने की इच्छा रही है।

कांग्रेस-संगठन में

मन्त्रित्व ग्रहण के पहले तक कौन्सिलों और एसेम्बलियों के बाहर, श्रीबाबू का प्रधान कार्यक्षेत्र मुंगेर ही रहा। मुंगेर और बिहारकेसरी, ये दो नाम एक-दूसरे के बोधक समझे जाते रहे हैं और मुंगेर की राजनीति में १९२० से लेकर अब तक श्रीबाबू का स्थान शीर्ष स्थान रहा है। सन् १९२३ से ही वह अखिल भारतीय कांग्रेस-समिति के सदस्य रहे हैं एवं १९३६ ई० में वह बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के सभापति भी थे। बिहार प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन (जिसका अर्थ कांग्रेस ही है) के छपरे वाले अधिवेशन के वह सभापति भी हुए थे। इस प्रकार पदों की दृष्टि से भी वह सन् १९२० से आज तक कांग्रेस-संगठन के महत्त्वपूर्ण एवं अविच्छिन्न अंग रहे हैं।

पहला प्रधान मन्त्रित्व

सन् १९३७ ई० में जब कांग्रेस ने प्रान्तों में मन्त्रिमंडल बनाने का निश्चय किया तब श्रीबाबू एसेम्बली में कांग्रेस पार्टी के नेता और मन्त्रिमंडल के प्रधान चुने गये। लेकिन मन्त्रिमंडल अभी एक वर्ष भी नहीं चला था कि सन् १९३८ ई० में आण्डमन के राजनैतिक कैदियों को भारत लाने के प्रश्न पर तत्कालीन प्रान्तीय गवर्नर सर मौरिस हैलेट से श्रीबाबू का झगड़ा हो गया और उन्होंने राष्ट्रीय

गौरव एवं राजबन्दियों के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर समझौता नहीं करके मंत्रिमंडल की ओर से अपना इस्तीफा दाखिल कर दिया। बिहारकेसरी के इस कदम से सारे देश में हलचल मच गई और दिल्ली में वायसराय का सिंहासन डोलने लगा। अतएव, अंगरेजो ने अपना हठ छोड़ दिया और प्रधान मंत्री के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करने का आश्वासन देकर मन्त्रिमण्डल को फिर वापस बुला लिया।

लेकिन, दूसरे ही साल (यानी सन् १६३६ ई० में) विश्वयुद्ध आ गया और सरकार की युद्ध-नीति के विरोध में श्रीबाबू के मंत्रिमंडल ने फिर अपना इस्तीफा दाखिल कर दिया, और वह यह कहते हुए सेक्रेटेरियट से निकल आये कि "मैं फिर रेगिस्तान की ओर जाता हूँ; लेकिन, स्मरण रहे कि हम विजयी होकर लौटेंगे।"

वैयक्तिक सत्याग्रह और कारावास

१६४० में गांधीजी ने जब वैयक्तिक सत्याग्रह का कार्यक्रम निकाला तब बिहार में उन्होंने सबसे पहले श्रीबाबू को ही सत्याग्रह करने की इजाजत दी। यह सत्याग्रह श्रीबाबू ने पटना के मैदान में किया और वहीं से गिरफ्तार होकर पटना जेल होते हुए हजारीबाग पहुँचा दिये गये। इस जेल में वह कोई नौ महीने कैद रहे और मुक्त होने के बाद उन्होंने फिर से युद्ध-विरोधी प्रचार शुरू कर दिया।

बयालिस की महाक्रान्ति में

श्रीबाबू स्वभाव से एक प्रचंड योद्धा हैं और युद्ध की अवस्थाओं में वह अधिक जीवित तथा चैतन्य रहते हैं। ज्यों-ज्यों सन् १६४२ की महाक्रान्ति समीप आती गई, त्यों-त्यों उनकी वीरता पूरे उभार पर आती गई और उन्होंने अपने प्रान्त में भयानक गर्मी फूँक दी। महाक्रान्ति के आगमन के सिर्फ आठ दिन पूर्व, उन्होंने मुजफ्फरपुर की एक महती सभा में जनता को संदेश देते हुए कहा था कि 'जिस महाक्रान्ति की आराधना इतने वर्षों से करते रहे हो, उसका आगमन समीप है। समय आ गया है कि जिसके भी हृदय में देश-सेवा का अरमान हो, वह उसे पूरा कर ले। पीछे पछताने से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। खेलि ले रंग मनाइ, फिर नहि राम जनकपुर अइहैं।"

जिस दिन बम्बई में गांधीजी और उनके साथी गिरफ्तार हुए, उस दिन श्रीबाबू पटने में ही मौजूद थे। भला यह कब संभव था कि क्रान्ति के आगमन पर वह युवकों को बधाई नहीं देते? अतएव, वह तुरत अपने प्यारे अनुगामी नवजवान छात्रों से अपने हृदय की बात कहने के लिए कॉलिज के छात्रावासों की ओर चले गये और जो कुछ समझाना था उन्हें समझाकर गिरफ्तार हो गये।

इस बार का जेल-जीवन बहुत काफी लंबा रहा। वह प्रायः एक महीने तक पटना जेल में राजेन्द्र बाबू और अनुग्रह बाबू तथा अन्य साथियों की संगति में क्रान्ति के आगमन पर पुलकित होते रहे। बाद को रेल की लाइनों के ठीक हो जाने के बाद वह हजारीबाग भेज दिये गये।

हजारीबाग जेल में प्राय एक वर्ष और कुछ महीने रह लेने के बाद वह बीमार हो गये और ऐसे बीमार हो गये कि उनके बचने की किसी को कोई आशा नहीं रही। ऐसी अवस्था में वह अस्पताल भेज दिये गये और जब बीमारी कुछ काबू में आई तब उनकी रिहाई हो गई।

सोशलिस्टों के लिए गवर्नर से युद्ध

मगर, जेल से आकर वह चैन लेनेवाले नहीं थे। बाहर दमन के नाम पर जैसे जैसे अत्याचार हो रहे थे, उन्हें बर्दाश्त करना उनकी शान के खिलाफ था और वे घूम घूमकर सरकार के जुल्मों का पर्दाफाश करने लगे। खासकर भागलपुर में सरकार सोशलिस्ट नौजवानों की बहादुरी को जिस प्रकार कुचलना चाहती थी, उसे देखकर उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा तथा उन्होंने लंबे लंबे वक्तव्यों के द्वारा सरकार की तीव्र आलोचना करनी शुरू कर दी। यह बात यहाँ तक बढ़ गई कि गवर्नर ने श्रीबाबू को अपना खास दुश्मन मान लिया और हर तरह से उन्हें परीशान करने की योजना सोची जाने लगी। इस समय श्रीबाबू बिहार में सोशलिस्ट पार्टी के बहुत बड़े समर्थक के रूप में विख्यात हो गये और बम्बई के "फोरम" पत्र ने उनका चित्र छापते हुए लिखा कि "श्रीबाबू की दृष्टि में सोशलिस्टों पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।"

पत्नी-वियोग

रिहाई के बाद श्रीबाबू पर एक विपत्ति यह भी पड़ी कि उनकी जीवन-संगिनी का देहावसान पटना अस्पताल में उनके सामने ही हो गया। जब उनकी पत्नी सिर्फ दो घंटों का मेहमान थीं, तभी सरकार का एक बड़ा अफसर श्रीबाबू के पास यह कहने को पहुँचा कि सरकार उन्हें राजनीति में भाग लेने से रोकना चाहती है और उन्हें कहीं इन्टर्न करना चाहती है। किन्तु, चूँकि उनकी पत्नी बीमार हैं इसलिए सरकार उन्हें यह रियायत देना चाहेगी कि अगर वह यह वादा करें कि पटने में वह किसी किस्म की राजनैतिक हरकत नहीं करेंगे, तो सरकार उन्हें गिरफ्तार नहीं करेगी। इस बात से मानों बारूद में सलाई पड़ गई और श्रीबाबू ने उस अफसर को फटकारते हुए कहा कि "पत्नी की बीमारी से कुछ आने-जानेवाला नहीं है। मैं हैरत में हूँ कि ऐसी बात बोलने की तुम्हें हिम्मत कैसे हुई। मैं चलने के लिए तैयार हूँ। लो, अभी गिरफ्तार करो।" कहना व्यर्थ है कि वह अफसर चुपचाप खिसक गया।

दूसरा प्रधान मंत्रित्व

आज जो मन्त्रिमंडल काम कर रहा है वह १९४६ के एप्रिल महीने में बना था और उसके भी प्रधान मंत्री, बिहारकेसरी डा० श्री श्रीकृष्ण सिंह ही हैं। प्रान्त ने दो-दो बार उन्हें अपना प्रधान मंत्री चुन कर और पटना-विश्वविद्यालय ने डाक्टर की उपाधि से विभूषित कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ही प्रकट की है।

बिहार केसरी : एक संस्मरण

[प्रोफेसर श्री परमानन्द, एम० ए०, बी० एल०]

बिहारकेसरी को मैं अपनी आठ-दश साल की उम्र से ही जानता हूँ। यों तो नमक-सत्याग्रह के समय में सातवीं कक्षा का ही विद्यार्थी था, परन्तु खगड़िया और बिहपुर इलाकों के श्रीबाबूमय वातावरण से मैं केवल परिचित ही नहीं था, बल्कि बहुत प्रभावित भी। मैं छोटा बच्चा था, अत: मेरे माता-पिता सत्याग्रह की लड़ाई के क्षेत्रों में मुझे जाने नहीं देते थे। परन्तु श्रीबाबू को नजदीक से देखने की मेरी इच्छा बहुत उत्कट थी। जो प्रयास करता है, उसे फल अवश्य मिलता है। मुझे भी अपने प्रयास का फल मिला। मैं स्कूल गया और वहाँ से टिफिन के समय चुपचाप स्वर्गीय बाबू नेमधारी सिंह के मकान पर चला गया। श्रीबाबू और नेमधारीबाबू में परस्पर बहुत प्रेम था और जब तक उनका स्वर्गवास नहीं हुआ तबतक खगड़िया में श्रीबाबू उनके यहाँ ही ठहरा करते थे। इस बार भी यही बात थी। मैंने अपनी चिर-पोषित अभिलाषा की पूर्ति की और बिहार-केसरी का दर्शन किया। स्कूल नजदीक ही था। टिफिन की घंटी बजी और मास्टर साहब की छड़ी के डर से तुरत वापस हो गया। वापस होते समय न जाने मुझे क्यों दिल में सूना-सूना मालूम पड़ने लगा; लेकिन लौटना तो था ही, इसलिए लौट कर स्कूल चला आया।

यह थी मेरी पहली मुलाकात और इसी प्रकार की थी मेरी मूक प्रसंशा। दिन बीतते गए और १९३४ का भूकम्प का भयंकर झकोर मुंगेर शहर पर हुआ। इस समय बिहारकेसरी ने भूकम्प पीड़ितों की जो सेवा की इसका मुझ पर अमिट प्रभाव पड़ गया। इन्हीं दिनों मैंने इनके कई ओजस्वी तथा मर्मस्पर्शी भाषणों को सुना और सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि मैं स्वयंसेवकों में भर्ती हो गया।

१९३७-३८ के जमाने में मैं जब कम्यूनिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आया तो मेरे मन में श्रीबाबू के प्रति कई प्रकार के राजनीतिक भ्रम पैदा हुए और इस भ्रमजाल में पड़कर १९४० तक श्री बाबू को मैं कांग्रेस की प्रतिक्रियावादी नीति का एक आवश्यक स्तम्भ के रूप में मानता रहा। १९४० की जनवरी में मैं नजरबंद हुआ और हजारीबाग जेल भेजा गया। उस समय श्रीबाबू भी हजारी-

बाग जेल को सुशोभित कर रहे थे। उन्होंने मुंगेर जिला के राजनीतिक कैदियों की एक बैठक बुलाई। इसी बैठक में मुझे बिहारकेसरी से पहलेपहल सुनकर मिलने और बोलने का अवसर मिला। पहली बार की ही बातचीत ने मेरे मन में अपने पूर्व निश्चित विचारों के प्रति शंका उत्पन्न कर दी। परन्तु, पार्टी की शिक्षा का रंग इतना गहरा चढ़ा हुआ था कि तत्काल अपने भ्रम-पूर्ण विचारों को मैं त्याग नहीं सका। जेल में कम्युनिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी और अग्रगामीदल के सदस्यों के अतिरिक्त दर्शन, अर्थ और राजनीतिशास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के लिए बिहारकेसरी और श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती ही बहुत प्रसिद्ध थे। बिहारकेसरी और स्वामीजी के पास कितावें भी बहुत थीं। किताबों से मुझे भी बहुत प्रेम रहा है, इसलिए मैंने अपना आना-जाना बिहारकेसरी से बढ़ाना शुरू किया और ज्यों ज्यों मेरा परिचय इनसे घनिष्ट होता गया, त्यों-त्यों मैंने अपने को एक नये और निर्मल प्रकाश में पाया। छ महीनों तक नित्य साथ रहने के बाद, धीरे-धीरे मेरे मन से सचित सभी बौद्धिक विकार दूर हो गये और अन्त में मैं ने अपने बिहारकेसरी के वास्तविक रूप का दर्शन किया। तब से मैं यह मानता हूँ कि हमारे प्रिय प्रधान मंत्री बिहारकेसरी बाबू श्री कृष्ण-सिंह केवल एक राष्ट्रीय योद्धा और नेता ही नहीं हैं, बल्कि वह ऋषियों की कोटि के विद्वान, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा इन सब गुणों से भी बढ़कर एक सुसंस्कृत, सुविकसित, विशाल और अति भावुक हृदय के मानव भी हैं।

मैं जब कभी भी श्रीबाबू से मिलता हूँ तो मैं उनके अन्दर जो एक शुद्ध मानव का रूप है, उसी का दर्शन करता हूँ। आज की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता से परिपूर्ण गम्भीर परिस्थिति में कोई राजनीतिक पुरुष मेधावी, पुस्तक-प्रेमी और दूरदर्शी ही नहीं बल्कि एक विशाल हृदय का भावुक और पूर्ण विकसित मानव हो सके, यह अत्यंत बहुत आश्चर्य की बात है। बिहार का यह सौभाग्य है कि बिहारकेसरी जैसे महा मानव का नेतृत्व, इसे इस संधिकाल की संकटावस्था में भी मिला हुआ है। ईश्वर उन्हें दीर्घजीवि करें मेरी यही प्रार्थना है।

माननीय डा० श्रीकृष्ण सिंह जी और बिहार सरकार के सिंचाई मंत्री माननीय श्रीरामचरित्र सिंह जी गृहरक्षा-वाहिनी के सैनिकों के प्रदर्शन देखने में तल्लीन है।

माननीय डॉ० श्री श्रीकृष्ण सिंहजी बिहार गृहरक्षा वाहिनी के सैनिकों के बीच उनका अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं
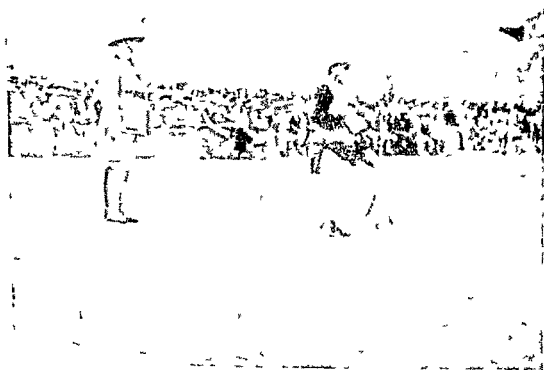
माननीय डॉ० श्री श्रीकृष्ण सिंह जी, गृहरक्षा वाहिनी के प्रथम जत्थे के बीच भाषण देते हुए

: ४ :

अभिनन्दन, वन्दन और आशीर्वाद
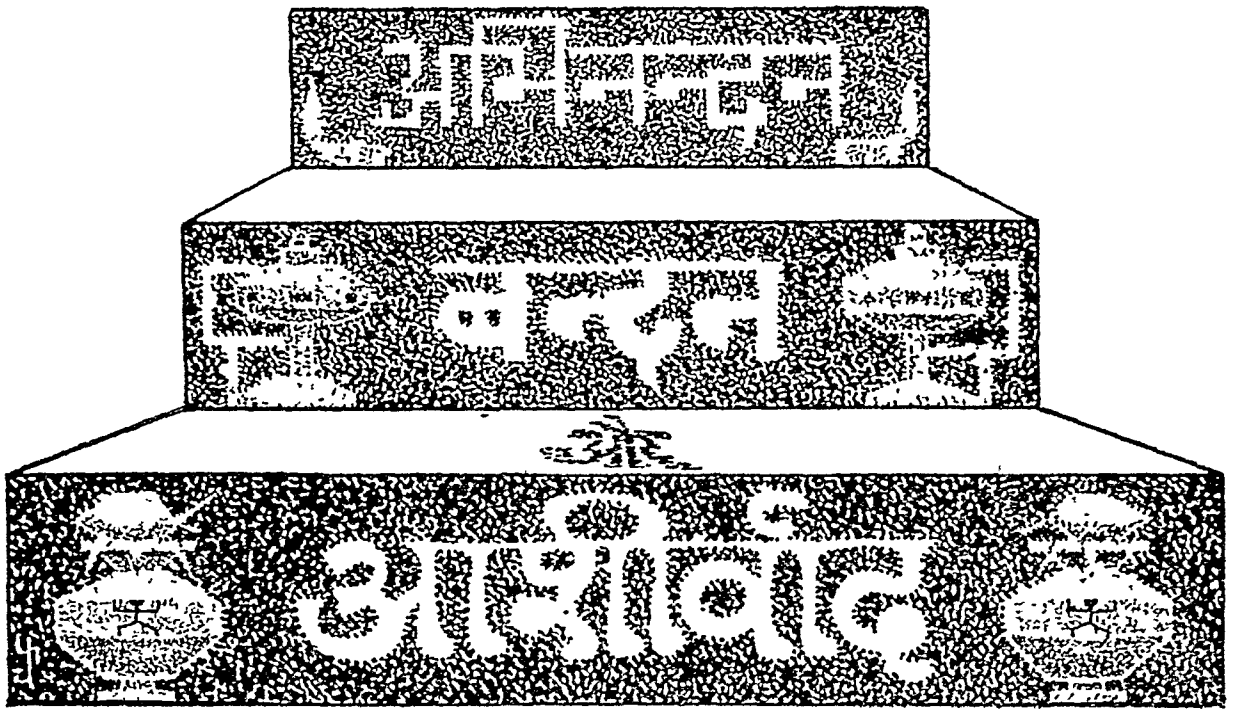
राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

तुम स्वराज्य-संयुग के योद्धा, सिंह-निहिंसन-वृत्ति-वितृष्ण;
लो, स्वीकार करो हे विजयी, इस जन का भी 'जय श्रीकृष्ण'!

श्री भदन्त शान्तिभिक्षु

श्रीकृष्णमभिनन्दामि विहारवसुधा-मणिम् ।
गाथया ह्यनया नित्यं श्रमणैरनुगीतया ।।
"सव्वीतया विवज्जन्तु
सव्वरोगो विनस्सतु ।
मा ते भवत्वन्तरायो
सुखी दीघायुको भव ।।"

सरदार श्री वल्लभभाई पटेल, उपप्रधान मन्त्री, हिन्द-सरकार

I send my sincerest felicitations and best wishes on Shri Babu's diamond jubilee His Services and sacrifices in the cause of the Province and Country are well known to Beharis He has borne the responsibility of Prime-Ministership in two successive difficult terms His devotion to duty and loyalty to Congress have been articles of faith with him

मैं श्रीबाबू की हीरक-जयन्ती के अवसर पर अपना हार्दिक अभिनन्दन तथा अपनी शुभकामना प्रेषित करता हूँ। प्रान्त तथा देश के लिए उनकी त्याग तपस्या और सेवा से बिहार की जनता परिचित है। उन्होंने प्रधान मन्त्रित्व के दायित्व का निर्वाह दो बडे सकटपूर्ण कालो में किया है। कर्त्तव्य-परायणता तथा कांग्रेस के प्रति भक्ति के भाव उनके लिए धर्म के सिद्धान्त रहे हैं।

देशमान्य श्री जयप्रकाश नारायण

"श्रीबाबू"---ये दो शब्द बिहार के बच्चे-बच्चे की जुबान पर हैं। इस लिये नही कि आप प्रान्त के प्रधान मन्त्री है, बल्कि, इसलिये कि आप भारतमाताके एक सपूत है, स्वतन्त्रता-समर के सेनानी हैं और हैं जनता के एक सच्चे सेवक। देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद जी के बाद प्रान्त के जननायकों में आपका ही स्थान सर्वप्रथम रहा है और आज भी है।

श्रीबाबू की ६१ वी जन्मतिथि के अवसर पर मैं शुभकामना करता हूँ कि आप दीर्घजीवी हो और प्रान्त तथा देश की सेवा दीर्घकाल तक करते रहें।

राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन

भाई श्रीकृष्ण सिंह को उनकी हीरक जयन्ती के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की जो योजना बनाई गई है, मैं उसका हृदय से स्वागत करता हूँ। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में श्रीबाबू का आदर बिहार के प्रधान सचिव होने के नाते ही नही है। वह हमारे स्वतन्त्रता सग्राम के तपाये हुए वीर सेनानायकों में से हैं। आज देश की परिवर्तित और परिवर्तनशील स्थिति मे नये नये प्रश्न हमारे सामने उठ रहे हैं। उनके सुलझाने के लिए अनुभवी और निडर नेताओ की बडी आवश्यकता है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह श्रीबाबू को बडी आयु दे जिससे वह बहुत वर्षों तक भारत के सकटो को हटाने और उसके हितो को आगे बढाने में समर्थ हो।

माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, युक्तप्रान्त के प्रधान मन्त्री,

मै अपने मित्र बिहारकेसरी बाबू श्रीकृष्ण सिंह को उनकी ६१ वी वर्षगाँठ पर हार्दिक बधाई देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। देशरत्न राजन्द्र प्रसाद जी के देशसेवा के दूसरे कामों मे लग जाने पर बिहार का पूरा भार श्रीबाबू के सबल कन्धो पर पड़ा। उन्होने जिस धैर्य, सहिष्णुता, विवेक और दूरदर्शिता से यह भार वहन किया, वह युवको के लिये तो अनुकरणीय है ही, हम मे से अनेक के लिए भी स्पृहा का विषय है। यह बिहार का सौभाग्य है कि उसे ऐसा नेता मिला। राजेन्द्रबाबू ने त्याग, सदाचार और सरलता की जो परिपाटी चलाई, उसका निर्वाह भी श्रीबाबू ने बहुत उत्तम प्रकार से किया है। बिहार की अपनी समस्याये है, जिनमे से कई तो ऐसी है जो भारत के अन्य प्रान्तो के सामने है ही नही। ये समस्याये बहुत जटिल है। इन सबको दूर करने मे जिस प्रकार की लगन, धैर्य और साहस की आवश्यकता है, वह श्रीबाबू मे पूर्ण रूप से विद्यमान है। श्रीबाबू ने बिहार की सेवा में अपना जीवन लगा दिया है और यही कारण है कि उन्हे अखिल भारतीय राजनीति मे काम करने का लोभ संवरण करना पड़ता है। यह आज की स्थिति मे कम त्याग की बात नही है। मुझे पूरी आशा है कि बिहारवासी इस त्याग का महत्व समझेगे और श्रीबाबू की महानता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगे।

मेरी और श्रीबाबू की मित्रता बहुत पुरानी है। सार्वजनिक जीवन के कई क्षेत्रों मे मुझे उनके साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मुझ पर उनकी सहृदयता, मधुर स्वभाव आदि का काफी प्रभाव पड़ा है। मुझे इस बात की प्रसन्नता ही नही, गर्व भी रहा है कि उन्होने राजनीतिक जीवन मे सदा नैतिकता और चरित्र की शुद्धि को विशेष महत्व दिया है। जैसा मैने ऊपर कहा है, इस विद्वान् राजनीतिज्ञ का जीवन भावी पीढ़ी के लिये एक आदर्श और वर्त्तमान पीढ़ी के लिये स्पृहा का विषय है। मुझे विश्वास है कि परमपिता जगदीश्वर श्रीबाबू को दीर्घकाल तक हमारे बीच बनाये रखेगा जिससे न केवल बिहार को, बल्कि समस्त देश को उनकी सेवाओं से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होता रहे।

माननीय पं० रविशंकर शुक्ल, मध्यप्रान्त तथा बरार के प्रधान मन्त्री

बाबू श्रीकृष्ण सिह की बिहार के प्रति और सारे देश के प्रति सेवाये ही उनकी सर्वश्रेष्ठ स्मृति है। उनकी ६१ वी जन्मतिथि के अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामना है कि वे चिरायु होकर इसी तरह देश की सेवा करते जायँ।

माननीय श्री बाल गंगाधर खेर, बम्बई सरकार के प्रधान मन्त्री

अपने साथी बिहार-केसरी बाबू श्रीकृष्ण सिह जी की ६१ वी वर्षगाँठ के अवसर पर मै हार्दिक शुभकामना भेजता हूँ और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे श्री बाबू को शतायु करे, ताकि वह आनेवाले कठिन दिनो मे बिहार की अधिकाधिक सेवा कर सके।

माननीय श्री सम्पूर्णानन्द, युक्तप्रान्त के शिक्षा मन्त्री

या तो मैं श्री बाबू को कांग्रेस कार्य के सम्बन्ध से बहुत दिनों से जानता था, परन्तु, बिहार भूकम्प के बाद कुछ दिनों तक उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। मुंगेर में, जहाँ श्री बाबू का घर है, काशी सेवा समिति की ओर से सहायता समिति भेजी गयी थी। मैं उसके चार्ज में था। उन दिनों मुंगेर में एक तो सरकार की ओर से सहायता कार्य चल रहा था जिसके लिए उस कोष से रुपया मिलता था जो वायसराय की ओर से खोला गया था। उसके सिवा वहाँ काशी-सेवा-समिति की भाँति अन्य कई सार्वजनिक संस्थाएँ, जैसे मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, विवेकानन्द मिशन आदि ने सहायतार्थ अपने अपने शिविर खोल रखे थे। ये सब गैर सरकारी संस्थायें राजेन्द्र बाबू की रिलीफ सोसाइटी से मिल कर काम करती थीं। श्री बाबू मुंगेर क्षेत्र में इस सोसाइटी के प्रधान प्रतिनिधि थे। यों तो सेवा के क्षेत्र में काम करनेवालों में सदैव सहयोग होना ही चाहिये, फिर भी कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो ही जाती थीं जिनमें आपस में मनोमालिन्य बढ़ने और सेवा-कार्य में बाधा पड़ने की सम्भावना हो सकती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी समस्याओं को सुलझाने में श्री बाबू के सौम्य स्वभाव और मधुर बोलचाल से बड़ी सहायता मिलती थी। किसी को उनसे रुष्ट होने का अवसर स्यात् ही मिला होगा। उनका अपना घर भी गिर गया था। वे खुले मैदान में एक कामचलाऊ झोपड़ी में रहते थे। परन्तु उन्होंने कभी चेहरे पर शिकन न आने दी। इससे दूसरे क्षतिग्रस्त लोगों को ढाढ़स बँधता था और काम करनेवालों का उत्साह बढ़ता था। ऐसी प्रकृतिवाले व्यक्ति का उत्तरोत्तर सार्वजनिक क्षेत्र में आगे बढ़ना और लोक-सेवा के गुरु से गुरुतर कर्त्तव्यों के पालन करने का अवसर पाना स्वाभाविक ही था। स्वातन्त्र्य युद्ध के दिनों में वे बिहार में राजेन्द्र बाबू के उत्तराधिकारी माने जाते थे। मैं समझता हूँ कि वह अपने इस पद को अक्षुण्ण रखते हुए स्वतन्त्र भारत में अपने प्रान्त और देश को समुन्नत बनाने के क्षेत्र में बहुत ही यशस्वी स्थान प्राप्त करेंगे।

माननीय आचार्य श्री बदरीनाथ वर्मा, बिहार के शिक्षा-मन्त्री

श्रीबाबू के घटना-बहुल जीवन के साठ साल पूरा होने पर, हृदय के आनन्दपूर्ण भाव और आन्तरिक शुभकामनाएं प्रकट करने तथा प्रेम और श्रद्धा की भेंट अर्पण करने के उद्देश्यसे जो एक अभिनन्दन-ग्रन्थ उनके कर कमलों में समर्पित करने का आयोजन हुआ है, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। दुख है कि इच्छा रहने पर भी मैं कोई लेख ग्रन्थ के लिये लिख नहीं सका। अतएव, ग्रन्थ की सम्पूर्णता पर हर्ष प्रकट करके ही मुझे अब सन्तोष करना पड़ता है। श्रीबाबू चिरजीवि हों और पूर्ण स्वस्थ रहकर दीर्घकाल तक हमारा मार्ग प्रदर्शन करते रहें, यही मेरी हार्दिक कामना और ईश्वर से विनम्र प्रार्थना है।

हिज एक्सेलेन्सी श्री माधव श्रीहरि अणे, बिहार के गवर्नर

The people of Bihar are conversant with the manifold services rendered by Dr. S. K. Sinha to the country during the period of his public life extending over more than thirty years. He is one of the few men in Bihar who are respected by people of all shades of opinion. His example of service and sacrifice should be an inspiration to the younger generations which will soon be called upon to shoulder the responsibilities of administering this country. I very much appreciate the effort of the Committee to present Dr, Sinha with a Commemoration volume on the attainment of his sixty-first birthday in October next, and pray Almighty to grant him long life in sound health to serve his Motherland still further.

डाक्टर श्रीकृष्ण सिह जी ने अपने तीस वर्षों के सार्वजनिक जीवन मे देश की जो भिन्न-भिन्न सेवाएँ की हैं उनसे विहार के लोग भलीभाँति परिचित हैं। वे उन थोड़े से लोगों मे से है जिनको सभी दलों के लोगों का सम्मान प्राप्त है। उन्होने सेवा का जो उच्च उदाहरण उपस्थित किया है उससे उन नई संतानों को प्रेरणा मिलेगी जिन पर शीघ्र ही इस देश का शासन चलाने का भार पड़नेवाला है। उनकी इकसठवी वर्षगाँठ के अवसर पर समिति जो उन्हे एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का प्रयत्न कर रही है, उस प्रयत्न का मै अभिनन्दन करता हू और सर्वशक्तिमान परमात्मा से यह प्रार्थना करता हूँ कि मातृभूमि की और भी अधिक सेवा करने के लिए वे श्रीबाबू को पूर्ण स्वास्थ्य से युक्त दीर्घायु प्रदान करे।

हर एक्सेलेंसी श्रीमती सरोजनी नायडू, युक्त प्रान्त की गवर्नर

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के अपने साथी योद्धा एवं सखा की इकसठवी जन्मतिथि के अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभेच्छा तथा अभिनन्दन भेट करती हूँ।

हिज एक्सेलेंसी सर महाराज सिंह जी, बम्बई के गवर्नर

The Honourable Dr. Shrikrishna Sinha, Premier of Bihar, is a well known all-India figure. He has reached his present high position by his ability, spirit of sacrifice and power of organization. In congratulating him on his sixty-first birthday I hope that he will be spared for many years for the service of his country and province.

विहार के प्रधान मन्त्री, माननीय डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह जी एक ऐसे पुरुष है जिन्हे समस्त भारतवर्ष जानता है। आज जिस उच्च आसन पर वे विराजमान हैं, वह उन्हे अपनी योग्यता, वलिदान की भावना और संगठन-शक्ति से ही प्राप्त हुआ है। उनकी इकसठवी वर्षगाँठ पर उन्हे बधाई देता हुआ मैं यह कामना करता हूँ कि अपने देश और प्रान्त की सेवा करने के लिए अभी वे बहुत वर्षों तक हमारे बीच मौजूद रहें।

हिज एक्सेलेंसी श्री आसफ अली, उडीसा के गवर्नर

I have known Shrikrishna Babu for a number of years as one who eschews words in favour of action Bihar needs action to mobilise her immense potentialities Bihar once led India in both the spiritual and material fields, and we may confidently hope that she will do it again Srikrishna Babu has a very heavy responsibility to help Bihar to realise this dream

श्री बाबू को मैं बहुत वर्षों से जानता हूँ और इस रूप में जानता हूँ कि वे बातों में कम, मगर काम में ज्यादा रहते हैं। बिहार के भीतर जो अनन्त सभावनाएँ छिपी हुई हैं, उन्हें प्रकट करने के लिए बिहार को कमठता की बडी आवश्यकता है। एक समय था जब कि बिहार आधिभौतिक और आध्यात्मिक, दोनो ही क्षेत्रो मे सारे देश का नेतृत्व करता था और आज भी हम आशा करते हैं कि बिहार अपना खोया हुआ नेतृत्व एक बार फिर प्राप्त करेगा। बिहार का यह स्वप्न पूरा हो, इसकी बहुत बडी जवाबदेही श्री बाबू के ऊपर हैं।

हिज एक्सेलेंसी श्री मङ्गलदास पकवासा, मध्यप्रान्त के गवर्नर

एक बडे सूबे के प्रधान मन्त्री के बारे में थोडे शब्दो में कुछ कहना आसान नहीं है, क्योकि वे अपने प्रान्त की ही नहीं, बल्कि दूसरे प्रान्तो की जनता को भी वे अच्छी तरह विदित हैं। इस विकट समय मे जब कि हिन्दुस्तान के प्रधान मन्त्री तथा केन्द्रिय सरकार तथा सभी प्रान्तीय सरकारें कई विकट समस्याओ और मुश्किलो में उलझी हुई है, तब हम सिर्फ भगवान से प्रार्थना ही कर सकते हैं कि वह हमारी जनता तथा उसके नेताओ को सच्चा रास्ता बतलावे ताकि वे सुराज का प्रभात देख सकें और इस तरह हमारी भारतमाता को सब कसौटियो और सकटोसे पार लगावें। इसके लिये धैर्य, सहिष्णुता, कुशलता तथा बुद्धिमत्ता एवं महात्मा गांधी जी के बनाए हुए मार्ग मे चलने की ताकत और प्रबल इच्छाशक्ति की जरूरत हैं। भगवान हिन्दुस्तान की जनता को और उसके नेताओ को यह सुप्रभात लाने की प्रेरणा और शक्ति दे।

माननीय डाक्टर श्री गोपीचन्द जी भार्गव, पूर्वी पजाब के प्रधान मन्त्री,

मुझे अत्यन्त हर्ष है कि बिहारकेसरी श्रीकृष्ण सिंह जी ६१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेनेवालो में उनकी पदवी ऊँची रही है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतवर्ष उनके साया-तले खूब फले-फूलेगा। मेरी प्रार्थना है कि परमात्मा उनकी आयु लम्बी करे।

माननीय श्री जगजीवन राम, हिन्द-सरकार के श्रम-मन्त्री

बिहारकेसरी माननीय बाबू श्रीकृष्ण सिंह की हीरक-जयन्ती के शुभ अवसर पर जब मैं उनके महत्त्वपूर्ण जीवन का सिंहावलोकन करता हूं, तब कितनी ही मधुर स्मृतियाँ सामने आ जाती है। श्रीबाबू हमारे उन देशभक्तों मे है जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रथम सन्देश को सुनकर अपने आपको मातृभूमि पर न्योछावर कर दिया।

श्रीबाबू के महान व्यक्तित्व की नींव उनके हृदय की उदारता, उनके दृष्टिकोण की व्यापकता और उनके विचारों की विशुद्धता पर पड़ी है। उनके मस्तिष्क के साथ, जिसमे दार्शनिक भावुकता भरी है, एक सफल और सिद्धहस्त शासक की दृढ़ता का कैसा सुन्दर सामंजस्य है।

उनका हृदय इतना उदार और विशाल है कि उसमे संकीर्णता की गुंजाइश ही नहीं। उनकी यह अपनी विशेषता है कि जिसे वे एक बार अपनाते है, उसे कभी नहीं छोड़ते। यही कारण है कि लोग उनकी ओर आकृष्ट और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। यह बड़े हर्ष का विषय है कि बिहार के भाग्य का सूत्र ऐसे उदार व्यक्ति के सबल हाथों मे है। हम श्री बाबू की इज्जत सिर्फ इसलिए नहीं करते कि वे एक महान प्रान्त के नेता और प्रधान मन्त्री हैं, बल्कि इसलिए कि वे एक महान और सच्चे व्यक्ति है तथा उनका आदर्श दलित-शोषित जनसमुदाय को उन्नत करना है। ऐसा व्यक्ति देश की एक अनमोल थाती है। मेरी कामना है कि उनका सेवा-निरत जीवन दीर्घकाल के लिए हमे सुलभ रहे। ईश्वर उन्हे चिरायु करे।

श्री सादिकअली, अखिल भारतीय लोकसेवा-संघ के प्रधान मन्त्री

मुझे नजदीक से श्रीबाबू को जानने का मौका नहीं मिला। कॉंगरेस-संगठन के सिलसिले में मुझे दो-तीन बार बिहार जाना पड़ा। उस वक्त श्रीबाबू से मिलने का इत्तफाक हुआ। उनके बारे में कार्यकर्त्ताओं की जो राय थी, वह भी मुझे मालूम हुई और उनके तकरीरों से भी मुझे यह अन्दाजा हुआ कि उनके सामने मुल्क के भविष्य की एक सुन्दर तस्वीर है, जिसे हासिल करने का एक मार्ग भी उन्हे साफ नजर आता है। इसी मार्ग पर वे अपने प्रान्त को चलाने की कोशिश कर रहे हैं। आजकल हमारे मुल्क और उसके बाशिन्दों का जो हालत है और तरह-तरह की जो समस्यायें उसके सामने है, उनको देखते हुए किसी भी महामन्त्री का रास्ता आसान नहीं हो सकता। श्रीबाबू से पूरी उम्मीद की जा सकती है कि मुल्क को आगे बढाने के रास्ते मे जो कठिनाइयां हैं, उन पर वे अपनी काबिलियत और शकशियत के जोर से काबू पा सकेंगे।

माननीय श्री मोहनलाल सक्सेना, हिन्द-संघ के पुनर्वास मन्त्री

I feel a bit embarrassed in writing about a colleague All I can write is that Dr Shree Krishna Sinha's sacrifice in the cause of freedom and his services to Bihar are too well known and need no enumeration from me I wish and pray that he may see the fruition of his efforts in building up a more prosperous and happier Bihar

अपने एक साथी के विषय में कुछ लिखते हुए थोड़ी हिचकिचाहट होती है। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह यह है कि डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह जी ने बिहार की सेवा और देश की स्वाधीनता के लिए जो भी बलिदान किया है, उन्हें सारा देश जानता है। यह जरूरी नहीं है कि मुझ जैसे लोग उनका वर्णन करें।

मैं तो केवल इतनी ही प्रार्थना और कामना करता हूं कि भगवान अभी उन्हें बहुत वर्षों तक हमारे बीच में मौजूद रखें जिससे वे आज की अपेक्षा अधिक सुखी और अधिक समृद्ध बिहार का निर्माण करने में समर्थ हों।

माननीय श्री सत्यनारायण सिंह, डिप्टी मिनिस्टर, हिन्द-सरकार

बिहारकेसरी श्रीकृष्ण सिंह के सम्बन्ध में मैं कुछ संस्मरण लिखूं यह मेरे लिए संकोच की बात मालूम हो रही है। उनकी महानता का मेरी लेखनी व्यक्त कर सके, यह मेरे लिये एक दुःसाहस मात्र है। तथापि मुझे अपने हृदय के भाव को श्रीकृष्ण अभिनन्दन ग्रन्थ में इसलिये देना है कि यह पुस्तक बिहार और मुंगेर के लिए या यों कहा जाय कि भारतवर्ष के लिये एक उत्तम और स्थायी वस्तु होगी और भविष्य की पीढ़ी उससे कुछ लाभ उठा सकेगी।

बिहार में जब से स्वतन्त्रता का युद्ध प्रारम्भ हुआ, मुझे उनको जानने का अवसर मिला। मैंने उन्हें बराबर अपना नेता और भाई माना है। बिहार में श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू के बाद आपका ही स्थान समझा जाता है। और वास्तव में वह ऐसे ही हैं भी। मुझे तो १९२६-२७ का वह समय स्मरण हो आता है जिस समय जातीयता बिहार में प्रभाव जमाने को उठ खड़ी हुई था और उस दलदल में कांग्रेस घसीटे जानेवाली थी। आपके ही स्वच्छ, निर्भय, निस्स्वार्थ और स्वतन्त्र विचार के जोरदार प्रभाव ने उसको चकनाचूर कर दिया था।

उनके लिये मुझे श्रद्धा और गौरव है। मुझे ही नहीं, बिहार प्रान्त को और बिहार की सरकार को भी गौरव है और होना चाहिए। उनकी सेवाओं के लिये संपूर्ण भारतवर्ष कृतज्ञ रहेगा तथा आनेवाली सन्तान उन्हें स्मरण करती रहेगी। भगवान से मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि वह उन्हें चिरायु करे।

डा० श्री अमरनाथ झा, कुलपति, काशी विश्वविद्यालय,

श्री बाबू की प्रशंसा अनावश्यक है। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास मे उनका नाम सदा आदर से लिया जायगा। केवल राजनीति में ही नहीं, राज-शासन मे भी उन्हे यथेष्ट ख्याति मिली है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के वे प्रबल समर्थक है। उनकी सरलता उनको सर्व जनप्रिय बनाने में समर्थ हुई है। श्री बिहार-केसरी केवल बिहार के ही नहीं, समस्त देश के गौरव है। ईश्वर उनको स्वास्थ्य और अनेक वर्ष तक देश-सेवा का अवसर दे।

श्री श्रीप्रकाशजी, पाकिस्तान मे हिन्द-सरकार के हाई कमिश्नर

बिहार के प्रधान मन्त्री, डाक्टर श्रीकृष्ण सिहजीको उनकी इकसठवी जन्मतिथि पर जो अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित किया जा रहा है, इस प्रयास का मै अभिनन्दन करता हूँ और इस अवसर पर और लोगों के साथ मै भी अपना हर्ष प्रकट करता हूँ। श्रीबाबू, जिस नाम से लोग उन्हे प्रेमवश पुकारा करते है, हमारे देश के सार्वजनिक जीवन के एक विशिष्ट पुरुष रहे है। आज इस शुभ अवसर पर मै भी उन्हें अपना हार्दिक अभिनन्दन भेंट करता हूँ और यह शुभेच्छा प्रकट करता हूँ कि वे बहुत दिनों तक देश और देशवासियों के लिए उपयोगी बने रहे।

डाक्टर श्रीकृष्ण सिह जी-जैसे विद्वान और जन-नायक के जन्मोत्सव के अवसर पर उनके सम्मानार्थ अभिनन्दन-ग्रन्थ ग्रथित किया जाना बहुत उचित है। श्रीकृष्ण बाबू की देशसेवा और त्याग को सब जानते है। श्री राजेन्द्र बाबू द्वारा आरम्भ की हुई परम्परा को आपने अच्छी तरह चलाया है। श्रीबाबू दीर्घायु हों और अधिकाधिक राष्ट्रसेवा करे, यह मेरी प्रार्थना है।

माननीय गोपीनाथ बारदोलाइ, आसाम के प्रधान मन्त्री

To honour one, who has done great public service, is only our duty. To his great-record of public service for which any public man can be legitimately proud, Shree Babu possesses a personality. He is so quiet and yet so charming that he has become such a popular figure in the political life of the country. May he live long to render more service to his province and to the Dominion of India

जिस पुरुष ने जनता के निमित्त बड़े-बड़े काम किये है उसका सम्मान करना हमारा परम कर्त्तव्य है। श्रीबाबू का व्यक्तित्व सार्वजनिक सेवा के उन महान कार्यो का प्रतीक है जिन पर किसी भी नेता को उचित गर्व हो सकता है। उनका व्यक्तित्व इतना मौन और साथ ही इतना मधुर तथा आकर्षक है कि देश के राजनैतिक जीवन मे वे एक अत्यन्त लोकप्रिय पुरुष हो गये है। वे दीर्घायु हो जिससे वे अपने प्रान्त तथा भारतीय उपनिवेश की अधिकाधिक सेवा कर सकें।

पण्डित के० एल० दुबे, कुलपति, नागपुर विश्वविद्यालय -

I convey my felicitations on the occasion of the 61st birthday of that distinguished Premier of Bihar—Dr Shri Krishna Sinha He has always been a leading warrior in the non-violent War of Independence of India and we shall only be honouring ourselves by expressing our joy by celebrating his 61st birthday

May Providence spare him long for the constructive services our motherland needs so urgently

बिहार प्रान्त के सुविख्यात प्रधान मन्त्री, डा० श्रीकृष्ण सिंह जी की ६१ वी जन्म तिथि के अवसर पर मै अपना अभिनन्दन प्रेषित करता हूं। भारतवर्ष के अहिंसक स्वातंत्र्य संग्राम के वे सदा ही अग्रणी योद्धा रहे हैं। अतएव उनकी इकसठवीं वर्षगांठ पर उत्सव मनाकर एवं अपना उल्लास प्रकट करके हम अपना ही सम्मान करेंगे।

भगवान उन्हें उन रचनात्मक कार्यों के लिए बहुत दिनों तक जीवित रक्खें जो हमारी मातृभूमि के लिए बहुत ही आवश्यक है।

माननीय श्री हरेकृष्ण महताब, उड़ीसा के प्रधान मन्त्री

Shri Babu was our leader when I was a member of the Bihar and Orissa Legislative Council in 1926 for a few months He is brave and his integrity is beyond question As a leader he has maintained his success for long twenty five years Pray he may live long to lead Bihar to all round prosperity

सन् १९२६ ई० में जब मै कुछ महीनो के लिए बिहार और उड़ीसा की लेजिस्लेटिव काउन्सिल का सदस्य था तब श्री बाबू हमारे नेता थे। वे एक वीर पुरुष हैं एवं उनका चरित्र बल प्रश्न के स्तर से बहुत ऊपर है। एक नेता की हैसियत से इन्होने पिछले पच्चीस वर्षों मे अपनी सफलता को अक्षुण्ण रखा है। मेरी प्रार्थना है कि श्री बाबू दीर्घायु हों जिससे वे बिहार को चतुर्मुख विकास के लक्ष्य की ओर ले जा सकें।

श्री शंकर राव देव, प्रधान मन्त्री, अ० भा० का० कमिटी

On this occasion of the Sixty-first birthday of Shrikrishna Babu, Premier of Bihar, I wish, God gave him long life and sound health to serve our country

बिहार के प्रधान मन्त्री श्रीकृष्ण बाबू की इकसठवीं वर्षगांठ के अवसर पर भगवान से मेरी प्रार्थना है कि वे देशसेवा के लिए श्री बाबू को लम्बी आयु और पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करें।

बिहार-केसरी के प्रति

(श्री वाल्मीकि प्रसाद "विकट")

हे नरता के अभिमान ! तुम्हारी जय हो।

जय हो विहार के प्राण ! ज्योति-निर्माता !
जय हो पीड़ित जनता के सौख्य-विधाता !
अग्रणी वीर की गाता कीर्त्ति गगन है,
युग के उर मे उसके यश का गुंजन है।
हे बुद्ध-भूमि की शान ! तुम्हारी जय हो,
हे नरता के अभिमान ! तुम्हारी जय हो।

जिह्वा पर बोली गिरा, जभी तुम बोले,
हो गई दिशा निस्तब्ध, धराधर डोले।
इङ्गित पर मृत्युंजय बन युवक कढ़े थे,
ललकार मृत्यु को आगे वीर बढ़े थे।
इतिहास आँकता गान, तुम्हारी जय हो,
हे नरता के अभिमान, तुम्हारी जय हो।

जब-जब स्वदेश ने दुख मे तुम्हे पुकारा,
सब छोड़ तुरत तुमने अपनायी कारा,
सुन सके न माँ की चीख ठहर कर क्षण भर,
सर्वस्व लुटाया एक-एक क्रन्दन पर।
हे-हे युग–पुरुष महान ! तुम्हारी जय हो,
हे नरता के अभिमान ! तुम्हारी जय हो।

गाँधी-युग के वरदान, तुम्हारी जय हो।
भारत माँ के अरमान, तुम्हारी जय हो,
वर वीरो के उपमान, तुम्हारी जय हो,
हे-हे कोमल तूफान ! तुम्हारी जय हो।
जनता की भुजा महान, तुम्हारी जय हो,
हे नरता के अभिमान ! तुम्हारी जय हो।

अभिनन्दन

[पोद्दार श्री रामावतार 'अरुण']

प्राण
गान
अभिमान
गान मे
ओ विहार केसरी तुम्हारा
करते जन अभिनन्दन !

हरित
भरित
मुखरित
कानन
वन तुम्हें बुलाते।
विकसित कुसुमित
लता डालियाँ
चचल तृण-तृण कर फैलाते।
कोमल
अलिदल
विमल फूल पर
झूम झूम कर
स्वर्ण प्रहर में
स्वागत के सगीत सुनाते,
तुम्हें रिझाते !
आज दिशाएँ दास फूक कर
करतीं अर्चन-पूजन !
ओ बिहार-केसरी ! तुम्हारा
करते जन अभिनन्दन !

यह किसकी जय
कहता चुप चुप आज हिमालय ?

करती गंगा
विमल गर्जना,
करती है गण्डकी अर्चना,
अंग, मगध, मिथिला, वैशाली
मना रही है आज दिवाली।
माता की मिट्टी पर शोभित
नव वसन्त की नूतन कलियाँ।
खुले देश के बन्धन, गूंजी
विजय गान से स्वर्णिम गलियाँ!
मुक्त करो हे, जन-गण मन के
महा तिमिर का बन्धन!
ओ बिहार-केसरी! तुम्हारा
करते जन अभिनन्दन!

नमस्कार

[प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश', एम.ए.]

हे बिहार-केसरी!

करो स्वीकार हमारा नमस्कार!
तुम त्याग-मूर्ति, तुम तप-विभूति,
तुम सत्य-अहिंसा के सपूत,
तुम करुणा - प्रेम - दया-सागर,

तुम हो गरिमामय देश-दूत
माँ के गौरव! राष्ट्राभिमान!!
अर्पित जन-जन - हृदयोपहार,
अर्पित स्वदेश के स्नेह-सुमन,
अर्पित युग-युग के नमस्कार।

बिहारकेसरी

(जमील मजहरी)

(१)

अय कि तू है चमन-आराये-गुलिस्ताने-बिहार,
फस्ले-गुल तेरी मुहब्बत से है मेहमाने-बिहार।
आसमांगीर हुई खावे-बयाबाने बिहार,
तू है वह जौहरे-ताबिन्द-बदामाने-बिहार।
आज बाजारे-सियासत में है शोहरत जिसकी
आज तक दे न सका कोई भी कीमत जिसकी

(२)

सर बलन्द आज है ऐवाने-हुकूमत तुझ से,
और ऊँची हुई कुर्सी-ए-वजारत तुझ से।
दर्स एखलाक का लेती है सियासत तुझ से,
हुक्मरानी को मिला जज्बये खिदमत तुझ से,
तेरे साये में शजर अदल का फलता है आज,
जुल्म के दिल में दिया रहम का जलता है आज।

(३)

मरहबा, फख्रे-वतन ! फख्रे अजीजाने वतन!
तेरी आवाज से ताजा हुआ ईमाने वतन !
तेरी तकरीर से दुनिया में बढ़ी शाने वतन !
अपने नारों से है तू शेरे-नयस्ताने-वतन !
है गरज तेरी सियासत के जो मैदानों में,
एक नये जोश की तहरीक है दीवानों में।

(४)

जब कोई मुल्क गुलामी से रिहा होता है,
मौजें टकराती हैं, तूफान बपा होता है।
नशा आजादिए मुतलक का बुरा होता है,
मनकी जानी है हवा, देखिये क्या होता है।
डूबती नाव का तूफाँ में सहारा तू है,
इस अँधेरे में चमकता हुआ तारा तू है।

(५)

ह दुआ यह कि बने कौम का दिल तेरा दिमाग,
लहलहाये तेरे हाथों का लगाया हुआ बाग ।
रास्ते में तेरे कदमों का निशाँ बन के चिराग,
चलनेवालों को बताते रहे मंजिल का सुराग ।
कौम के सर पँ रहे साया बुजुर्गाना तेरा,
एक नये अहद की तारीख हो अफसाना तेरा ।

सदाकत का फूल

[वफा बराही]

यादे-माजी में निहाँ हैं जिंदगी की तल्खियाँ
आ सुनाता हूँ तुझे हिन्दोस्ताँ की दास्ताँ
रूह एहसासात थी ना-आशनाये-इन्कलाब
छुप गया था बदलियों में हुर्रियत का आफताब
मुरदनी छाई हुई थी आलमें-जर्रात पर
पड़ रही थी बरबरीयत की किरण जज्बात पर
बेखबर थी जुल्मते होलआफरी अंजाम से
रौशनी घबड़ा रही थी रौशनी के नाम से
कारवाने शैतनत था हरतरह मसरूफेकार
आदमीयत मुजमहिल, इन्सानियत थी सोगवार
थी गुलामी जिंदगी के हर नफस पर हुक्मराँ
पल रहा था पस्तियों की गोद में हिन्दोस्ताँ
रहमते-यजदाँ से टक्कर ले रहा था अहरमन
खत्म होने ही को था इन्सानियत का बाँकपन
नागेहाँ बापू ने बढ़ कर वक्त को आवाज दी
हाँ तड़प, कुछ तो तड़प ऐ गैरते-बेचारगी
काविशे-पैहम से इन्साँ को न डरना चाहिये
रूहे-आजादी की खातिर काम करना चाहिये

सरकशी की तुंद आँधी को दबाना चाहिए
वहमे जाईदा खुदाओं को मिटाना चाहिए
तेग की झंकार में पिन्हाँ है नामूसे-वतन
मौत से ही फूटती है जिंदगानी की किरण
सुन के य आवाज उट्ठा एक बिहारी नौजवाँ
केसरी ए हिंद कहता है जिसे हिन्दोस्ताँ
बन के बापू का पुजारी हिन्द का रहबर बना
मशग़ले राह सियासत लेके आगे चल पड़ा
ख्वाबे-गफलत में झिझोरा वक्त की रफ्तार को
हरियत—की—लहर—बख्शी—जज्बये-पैकार को
जिन्दगी में ये कहा कि सुम अगारा पै चल
तेगे-हिन्दी की कसम तलवार की धारों पै चल
म्हे ख्वेदारी ने करवट ली अजब अन्दाज मे
नग्मा आजादी का फूटा बेबसी के साज से
धज्जिया उड़ने लगीं जब देवे इस्तबदाद की
बज्मे-काविश में सदा गूँजी मुबारकबाद की
अज्मे-रासिख देखकर कोहे गिरा भी टल गया
गर्मिये-सोजे अमल से तौके जिल्लत गल गया
नक्शे ऐय्यारी का जब के मिट गया नामोनिशा
नूरे-आजादी म रौशन हो गया हिन्दोस्ताँ
खत्म आखिर हो गया हगामये-दहशत फिजा
जिन्दगी को मिल गया, यो जिन्दगी का मुद्दआ
अजमते-काविश ने बढकर अहले दानिश से कहा
केसरी ही हो वजीर आजम है इतनी इल्तजा
बेकसों की आरजू का बस सहारा है यही
आसमाने हिंद का रौशन सितारा है यही
अदलें-परवर इसका दिल है, दूरबीं इसकी नजर
केसरिये-हिन्द कहिये या सियासी राहबर

बिहार-केसरी है तू

(बिस्मिल इलाहाबादी)

हर एक को तुझ पे नाज है
छुपा कुछ ऐसा राज है
बिहार-केसरी है तू
बिहार-केसरी है तू

तुझे है प्रेम देश से
डरा कहाँ कलेश से
बिहार-केसरी है तू
बिहार-केसरो है तू

वतन की तुझ से शान है
कुछ ऐसी आन-बान है
बिहार-केसरी है तू
बिहार-केसरी है तू

तुझ हर एक का ध्यान है
इसी से तेरी शान है
बिहार-केसरी है तू
बिहार-केसरी है तू

कहाँ तुझे करार है
वतन पे तू निसार है
बिहार-केसरी है तू
बिहार-केसरी है तू

अभिनन्दन

श्री शीलभद्र साहित्यरत्न

धरती की चीख आकाश के वक्षस्थल में, महाशून्य में, टकरा कर लौट आती थी। मनुष्य अपने प्रयत्न में विफल था। कोलाहल के मध्य एक स्वर, और केवल एक ही ध्वनि सुनाई पड़ती थी—"भगवन्, एक नेता दो।"

नेता वह जो अंगारों पर चले, नेता वह जो हिमालय से टकराने की क्षमता रखता हो और नेता वह जो वैषम्य की सर्वग्रासिनी लपलपाती जिह्वा को शान्त करने को प्रस्तुत हो, आप अपनी हथेली पर जान लेकर।

पर भगवान मौन थे—चुप चाप।

जनता के मध्य से उसका पौरुष बढ़ रहा था नेता बनकर। जनता उसकी पूजा कर रही थी। भगवान हँस रहे थे—"अरे तुम यह क्या करने लगे, आप अपनी पूजा क्यों?"

"देव! हमारी ही श्रद्धा के बल पर तो तुम भी भगवान बने हो। यदि तुम इसकी पूजा को अपनी पूजा कहकर स्वीकार न कर सको तो फिर यही समझो, हम अपने प्रयत्नों का, अपनी सद्वृत्तियों का और आप अपनी साधना का अभिनन्दन करते हैं।"

अभय मुद्रा में भगवान कह रहे थे—"अभिनन्दन करो, वन्दन करो, पर यह मत भूलो कि तुम वही हो जिसके अभिनन्दन के लिये हम भी लालायित रहते हैं, यदि तुम नेता बन सको—नाना बन सको—उद्धारक बन सको।"
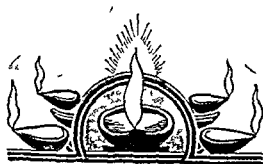
: ५ :

मुंगेर जिले की राजनीतिक प्रगति का इतिहास

मुंगेर जिला कांग्रेस कमिटी के तत्वावधान में

श्रीकृष्ण-अभिनन्दन-समिति

के लिए

श्री गदाधर प्रसाद अम्बष्ट

द्वारा लिखित।

मुद्रक
योगी प्रेस, पटना

विषय-सूची

मुंगेर जिले की राजनीतिक प्रगति

पृष्ठ

१. प्राचीन काल ५
२. मुसलमानों का आगमन ११
३. मुसलमानी शासन का अन्त और अंगरेजो की श्रीवृद्धि १७
४. मुगेर जिले का निर्माण २०
५. असहयोगकाल २८
६. राष्ट्रीय-शिक्षण की तैयारी ३६
७. सत्याग्रह और उसकी तैयारी ४१
८. काँगरेस का कौसिल-प्रवेश ४५
९. औपनिवेशिक से पूर्ण स्वाधीनता की ओर ४६
१०. साइमन कमीशन का वहिष्कार ४६
११. नमक-सत्याग्रह ४७–५१
१२. मादक द्रव्य-निषेध, विदेशी वस्त्र-वहिष्कार ५१–६१
१३. गाधी-इरविन समझौता ६१
१४. १९३२-३३ का भयंकर दमन-चक्र ६२–७२
१५. दमन के नवीन अस्त्र ६८
१६. हरिजन-कार्य ७२–७४
१७. प्रलयंकर भूकम्प ७४
१८. सत्याग्रह स्थगित और काँगरेस का पुनस्संगठन ७५–७७
१९. किसान और मजदूर आन्दोलन ७७; ८४
२०. डिस्ट्रिक्टवोर्ड और म्युनिसिपैलिटियां ८४–८६
२१. द्वितीय महायुद्ध और काँगरेस ८६–८८
२२. व्यक्तिगत सत्याग्रह ८८
२३. क्रिप्स का मायाजाल ८९
२४. क्रान्ति का सूत्रपात ९०–९२
२५. ९ अगस्त, १९४२ ... ... ९२–१२०
२६. स्वराज्य या औपनिवेशिक पद की प्राप्ति के बाद १२०–१२१

२७ प्रान्तीय एसेम्बलियो के चुनाव १२१
२८ हिन्दू-मुसलिम दगा १२२
२९ मुगेर जिला कांगरेस कमिटी का नव निर्वाचन .. १२३
३० विभिन्न राजनीतिक दल . १२४–१२७
३१ मुगेर जिले की चार विभूतिया . १२९
१—स्व० शाह मोहम्मद जुव्वैर साहब .. १३१
२—स्व० रफीउद्दीन अहमद रिजवी १३४
३—स्व० नेमधारी सिंह .. १३६
४—स्व० धर्मनारायण सिंह १३९
३२ मुगेर जिला का औद्योगिक भविष्य श्री त्रिवेणी प्रसाद सिंह, आई०सी० एस० .. १४१

तिलक मैदान मे मुगेर जिला काँगरेस समिति का कार्यालय
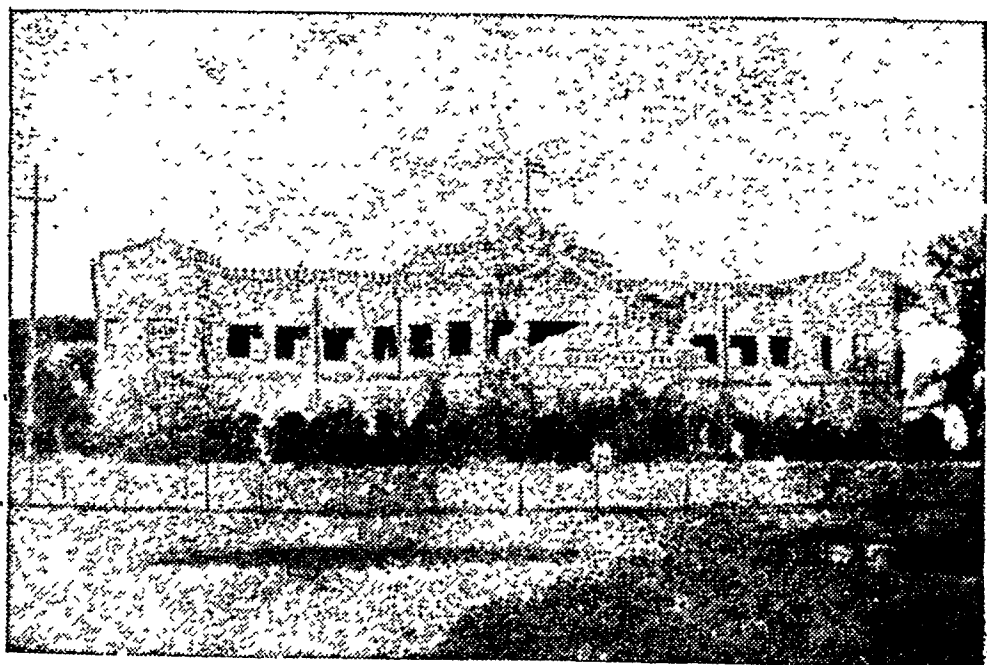
मुगेर जिला वोर्ड का कार्यालय

पीर पहाड़ी अथवा हिरण्यपर्वत

सीताकुंड के गर्म जल का झरना

प्राचीन काल

अति प्राचीन काल से ही मुंगेर जिले का भूभाग भारतीय इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान रखता आया है। वैदिक युग में इस जिले का उत्तरी भाग तीरभूक्ति या मिथिला के अन्दर, पूर्वी भाग अंगदेश की सीमा के भीतर एवं पच्छिमी और दक्षिणी भाग कीकट अर्थात् मगध देश के अन्तर्गत था। शतपथ ब्राह्मण, अथर्ववेद-संहिता आदि वैदिक ग्रन्थों में इन प्रदेशों के उल्लेख हैं। जान पड़ता है, उस समय अंग, वंग और मगध शक्तिशाली-देश तो थे, किन्तु, आर्यो का आधिपत्य वहाँ नहीं हो पाया था और उनकी सभ्यता-संस्कृति भी वहाँ नहीं पहुँच सकी थी। सम्भवतः इसी कारण मनुसंहिता मे तीर्थयात्रा छोड़कर अंग, वग और मगध जाने पर पुनः संस्कार का उल्लेख मिलता है। हो सकता है कि चिढ़ से ही आर्यों ने वेदों में भी कीकटवासियों के लिए दस्यु आदि अप शब्दो का व्यवहार किया हो और यहाँ आनेवाले आर्यो को संस्कारहीन व्रात्य माना हो।

रामायण और महाभारत मे इस जिले की कितनी ही बातों का विशद विवरण मिलता है। रामायण-काल मे कश्यप ऋषि के प्रपौत्र और विभांडक के पुत्र ऋष्यश्रृंग का आश्रम इसी जिले के एक पर्वत की अधित्यका मे था। यह परम रमणीक स्थान कजरा स्टेशन से ६ मील की दूरी पर है। इस पर्वत को लोग ऋष्यश्रृंग या श्रृंगी ऋषि पर्वत कहते हैं। यह हिन्दुओं का तीर्थस्थान माना गया है। यहाँ गरम जल के झरने है तथा पहाड़ी के नीचे एक सुन्दर जलाशय है। ऐतिहासिक युग में भी इस स्थान की विशेषता बनी रही। जेनरल कनिंघम ने यहाँ बौद्धकालीन और ब्राह्मणकालीन बहुत-सी मूर्त्तियाँ और दो शिलालेख देखे थे। ऋष्यश्रृंग सदा वन में अपने पिता के साथ रहकर, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए परम पवित्र और प्रतापी महात्मा हुए। एक बार अंग देश मे किसी पाप से भयंकर अनावृष्टि हुई तो अंगदेशाधिपति राजा रोमपाद ने वेदाध्यायी ब्राह्मणों की प्रेरणा से ऋष्यश्रृंग को अपने राज्य मे बुलवाया। इनके जाने पर वहाँ खूब वृष्टि हुई। राजा रोमपाद ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या शान्ता का विवाह इनसे कर दिया। अयोध्यापुरी के सुप्रसिद्ध राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ भी इन्हीं ऋष्यश्रृंग द्वारा सम्पादित हुआ था, जिसके फलस्वरूप राम आदि चारो भाइयों का जन्म होना बताया जाता है। पीछे महाराजा रामचन्द्र और उनकी पत्नी महारानी सीता, दोनों ही यहाँ पधारे थे, ऐसा लोगो का विश्वास है। वर्त्तमान कष्टहरनी-घाट, गंगा के बीच अवस्थित दो युग्म पदचिह्नवाला मानपत्थर या मणिपर्वत तथा शहर से कुछ दूर स्थित सीताकुंड का सम्बन्ध लोग श्रीरामचन्द्र और सीता से ही बताते हैं।

महाभारत-काल मे मोदगिरि—वर्त्तमान मुंगेर—एक स्वतन्त्र राज्य था। इसका प्रमाण महाभारत में सभापर्व के दिग्विजय प्रकरण से स्पष्ट मिलता है। लिखा है कि द्वितीय पांडव भीम ने पूर्व के अनेक

राजाओं को जीतते हुए अंग देश आकर यहाँ के राजा कर्ण को परास्त किया । फिर यहाँ से चलकर वे मोदगिरि पहुँचे और उन्होंने यहाँ के राजा को युद्ध में मार डाला । सम्भव है, मुंगेर के वर्तमान किले का निर्माण उस समय हो चुका हो, क्योंकि आज भी लोग इस किले का और पास के एक सिद्धपीठ चण्डी-स्थान का सम्बन्ध उसी समय के राजा कर्ण से बतलाते हैं और किले के भीतर के सब से ऊँचे टीले को कर्ण चौरा कहते हैं । यहाँ के राजा के मारे जाने के बाद या पहले से ही यदि अंग के राजा कर्ण का सम्बन्ध इस स्थान से भी रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

कहते हैं, किसी समय यहाँ की पहाड़ी पर कोई एक मुद्गल ऋषि रहते थे, जिससे यह मुद्गल-गिरि या मुद्गलपुरी कहलाने लगा । मुंगेर शब्द मोदगिरि या मुद्गलगिरि अथवा मुनिगृह शब्द से ही बना बताया जाता है । उक्त मुद्गल ऋषि कौन थे, यह ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता । किसी मुद्गल की सन्तान मोद्गलायन, बुद्ध भगवान के परम प्रिय शिष्य हुए । किन्तु, मोद्गलायन का जन्मस्थान राजगृह के पास बताया जाता है । वह यहीं के प्राचीन मुद्गल ऋषि के वंशज थे, इसका ठीक पता नहीं । महाभारत में मोदगिरि का नाम आया है, अतएव नाम साम्य के कारण अनुमान किया जा सकता है कि निश्चय ही मुद्गल ऋषि उसी युग के या उसके भी पहले के व्यक्ति रहे होंगे । महाभारत (वनपर्व २६१ अध्याय) में एक मुदगल ऋषि का वर्णन आया है, पर, उनका निवासस्थान कुरुक्षेत्र बताया गया है । ऋषि-मुनियों का सदा एक निवासस्थान तो होता नहीं, अतएव यदि उक्त ऋषि कहीं से यहाँ आये हो या यहाँ से वहाँ चले गये हों तो आश्चर्य ही क्या ?

बौद्ध-काल में भी इस भूभाग का कम महत्व नहीं था । बौद्ध-साहित्य तथा ईसा की ७ वीं सदी के चीनी पर्यटक ह्वेनच्वांग (ह्वेनसन) के यात्रा वृत्तान्त से पता चलता है कि समय समय पर भगवान बुद्ध यहाँ के भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए अपने दिव्य ज्ञान का प्रचार करते रहे । वे शेखपुरा के पास के किसी ग्राम में एक रात ठहरे थे और यहाँ के लोगों को धर्मोपदेश किया था । उनकी स्मृति में बने एक विशाल स्तूप को ह्वेनच्वांग ने देखा था । पास के बड़े गाँव में, जो सघन बसा हुआ था, उसने कई देव-मंदिर भी देखे । इस स्थान का ठीक पता नहीं चल सका है, पर शेखपुरा भी एक प्राचीन बौद्ध स्थान था, इसका पता यहाँ पायी जानेवाली प्राचीन मूर्तियों से लगता है ।

लक्खीसराय थाने के रजौना चौकी ग्राम में, भगवान बुद्ध ने वर्षा-वासकर अपने तीन मास का बहुमूल्य समय बिताया था और लोगों को धर्मोपदेश दिया था । पीछे सम्राट् अशोक ने यहाँ विहार और स्तूप बनवाये, जिनके भग्नावशेष अब भी वर्तमान हैं । ह्वेनच्वांग इस स्थान को लो इन-नीलो कहता है । उसने यहाँ संघाराम देखे थे, जिसके कुछ दूर उत्तर ५-६ मीलों के विस्तार में एक झील थी और जिनमें कमल के फूल बहुतायत से होते थे । लगभग ५ मील लम्बे और २ मील चौड़े भूभाग में कयूल नदी के दोनों ओर रजौना चौकी, लगोल, लक्खीसराय, कवैय्या, जयनगर, हसनपुर, वृन्दावन, गोड्डी आदि ग्रामों में अनेक प्राचीन मठों, मंदिरों, स्तूपों के भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं । यहाँ प्राचीन बौद्ध और हिन्दू मूर्तियाँ बहुत

मिलती हैं, जिनमे कितने ही पर अभिलेख भी पाये जाते हैं । यहाँ से बहुत-सी मूर्त्तियाँ भिन्न-भिन्न म्युजियमों और मन्दिरों में चली गयीं ।

सूर्यगढ़ा थाने के उरेन ग्राम मे भी एक छोटी-सी पहाड़ी पर भगवान वृद्ध के वर्षावास करने की बात बतायी जाती है। इस पहाड़ी के पश्चिम च्वनच्वाँग ने ६-७ गर्म जल के झरने देखे थे। कहते हैं, भगवान बुद्ध ने यही यक्षराज नकुल को परास्तकर अपना शिष्य बनाया था । वह लिखता है कि पहाड़ के दक्षिण-पूरब कोने के नीचे एक बड़ा भारी पत्थर है, जिसके ऊपर भगवान बुद्ध के बैठने के चिह्न बने हैं । यह चिह्न पाँच फीट दो इंच लम्बा, दो फीट एक इंच चौड़ा और एक इंच गहरा है । यह पत्थर एक स्तूप के भीतर रक्खा हुआ है। दक्षिण दिशा मे एक पत्थर पर आठ पंखुड़ियोंवाला कमल का फूल चित्रित है, जो क़रीब एक इंच गहरा है। बुद्धदेव ने अपनी कुंडिका यही रखी थी । वह आगे लिखता है कि इस स्थल के दक्षिण-पूरब मे थोड़ी दूर पर नकुल यक्ष के पदचिह्न हैं। ये चिह्न लगभग १ फुट ५ इच लम्बे, ७ या ८ इंच चौड़े और २ इंच गहरे हैं। इसके पीछे छ-सात फीट ऊँची ध्यानावस्था में बैठी बुद्धदेव की पाषाण-प्रतिमा है । इसके पच्छिम थोड़ी दूर पर एक स्थान है, जहाँ बुद्धदेव ने तपस्या की थी । वह कहता है कि इस पहाड़ की चोटी पर यक्ष का निवास-भवन है । इसके उत्तर में एक फुट आठ इंच लम्बी, ६ इंच चौड़ी और आध इंच गहरी बुद्धदेव की पदछाप है । इसके ऊपर एक स्तूप बना दिया गया है । इस यात्री द्वारा वर्णित बहुत-सी वस्तुओं के भग्नावशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं तथा बची-बचायी अनेकों बौद्धकालीन और ब्राह्मणकालीन मूर्त्तियाँ मिलती हैं । यहाँ के कई शिलालेखों और मूर्त्तियों को संगतराशों ने तोड़-फोड़ डाला। उरेन से आठ मील पूरब जलालाबाद नामक ग्राम में यक्ष नकुल का मंदिर है, जहाँ काले पत्थर की बनी उसकी एक विशाल मूर्त्ति है । आदिम जाति के लोग अब भी देवता समझकर उसको पूजते है और उसे बान ठाकुरनाथ नाम से पुकारते है । उरेन ग्राम के पास ही एक खंडहर है जो प्राचीन बौद्धमठ-सा मालूम पड़ता है । उसके आस-पास बहुत सी बुद्ध-मूर्त्तियाँ हैं ।

मुगेर की पीर पहाड़ी भी, जिसका प्राचीन नाम हिरण्य पर्वत बताया जाता है, एक प्राचीन बौद्ध-स्थान था । पीर पहाड़ी नाम तो मुसलमानी वक्त मे किसी पीर के कारण पड़ा । इस समय भी उस पर किसी मुसलमान पीर की कब्र दिखाई पड़ती है। च्वनच्वाँग इसे इलान्नापोफाटो कहता है और लिखता है कि प्राचीन काल मे यहाँ तथागत भगवान ने निवास करके देवताओ के निमित्त विशेष रूप से धर्म का निरूपण किया था । वह कहता है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक समय-समय पर ऋषि और महात्मा लोग अपनी आत्माओ की शान्ति के लिए यहाँ आया करते हैं । बौद्ध-साहित्य में मुंगेर का प्राचीन नाम मद्दिया भी आया है ।

च्वनच्वाँग ने हिरण्यपर्वत-राज्य की राजधानी मुगेर के दक्षिण मे भी एक स्तूप देखा था । वह कहता है कि इसके पास तीनों गत बुद्धों के बैठने-उठने इत्यादि के चिह्न थे । वह यहाँ भी भगवान बुद्ध के तीन मास तक धर्मोपदेश करने की बात बताता है । जहाँ भगवान बुद्ध ठहरे थे और जहाँ पीछे स्तूप

बनाया गया था, वह ठीक कौन-सा स्थान है, इसका पता अब तक किसीने नहीं लगाया। मेरा अनुमान है कि यह जमालपुर पहाड़ी के पास का कोई रमणीक स्थान रहा होगा। सम्भव है, यह काली मंदिर के आस पास का ही कोई स्थान हो, जहाँ पर्वत श्रेणियों के बीच छोटी सी झील के कारण दृश्य इतना मनोरम है कि साधु सन्यासियों का उधर ध्यान खिंच जाना स्वाभाविक है।

इस स्थान से कुछ ही दूर पश्चिम ह्वेनच्वांग ने एक स्तूप देखा था, जहाँ बुद्ध के समकालीन, श्रुतविंशति कोटि भिक्षु का जन्म हुआ था। उसकी बड़ी लम्बी और रोचक कहानी ह्वेनच्वांग ने दी है। अन्य बौद्ध ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख आया है। वह लिखता है कि श्रुतविंशति बहुत बड़ा धनी व्यक्ति था। एक बार मुद्गलपुत्र उसके यहाँ उपदेश देने आये। उसने इन्हें इतना सुन्दर भोजन कराया कि उसकी ख्याति राजगृह तक पहुँच गई। उसका नाम सुनकर मगधराज बिम्बिसार ने उसे राजगृह बुलवा भेजा। उसने वहीं भगवान बुद्ध का उपदेश सुनकर अर्हत पद को प्राप्त किया। उसी स्तूप उसके स्मारक-स्वरूप बनाया गया था। इस स्तूप के निश्चित स्थान का पता अब नहीं चलता; पर यह जमालपुर के आसपास ही रहा होगा।

भगवान बुद्ध के गंगा पार और मुंगेर के उत्तरी भाग में भी घूमने का वृत्तांत मिलता है। इस भूभाग में बरियारपुर थाने का जयमंगलागढ़ तथा पास के गढ़पूरा आदि कई स्थान, तेघड़ा थाने का नौलागढ़ और खगड़िया थाने का अलौनी गढ़ आदि प्राचीन बौद्ध-स्थान माने जाते हैं, जहाँ अभी भी तिब्बत, बर्मा, श्याम आदि देशों के बौद्ध पर्यटक आते रहते हैं, यद्यपि वहाँ ऊँचे टीलों और खंडहरों के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया है। बौद्धों के प्राचीन स्थान जितने इस जिले में मिलते हैं, उतने अन्यत्र बहुत कम ही देखने में आते हैं।

मुंगेर जिले में जैनियों का भी एक प्राचीन स्थान लछुआर में देखने में आता है जो सिकन्दरा से चार मील दक्षिण है। वहाँ दो समानांतर पर्वतश्रेणियों के बीच मठ बुद्धरूप और मठ पारसनाथ नाम के दो मंदिर हैं, जिनमें महावीर की प्राचीन मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति सन् १५०५ ई० की और दूसरी उससे भी पुरानी है। लछुआर शब्द का सम्बन्ध भगवान महावीर के जन्मस्थान वैशाली के लिच्छवियों से जान पड़ता है।

बुद्ध और महावीर के जीवनकाल में ही मगधराज बिम्बिसार ने अंग के राजा ब्रह्मदत्त को पराजित कर अंग और मोदगिरि को अपने राज्य में मिला लिया था। पर मगध-राज्य में मिलने के बाद भी मोदगिरि की विशेषता बनी रही। गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त के समय यहाँ का गढ़ गुप्तगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह नाम कष्टहरणी घाट के दसवीं शताब्दी के शिलालेख में भी मिलता है। मुंगेर में गुप्तयुग का एक ताम्रपत्र मिला था, जो सन् ४८८ ई० का था। उसी काल का और प्रायः उसी भाषा और उसी लिपि में एक दूसरा ताम्रपत्र बंगाल प्रान्त के बैग्राम नामक स्थान में पाया गया था।

५ वीं शताब्दी के आरम्भ में चीनी यात्री फाहियान भारतवर्ष आया था। वह पाटलीपुत्र से गंगा

के किनारे चलकर आया और वहाँ से ताम्रलिपि की ओर मुड़ा। वह मुंगेर के भूभाग होकर ही गया होगा और यहाँ के मुख्य स्थानों को उसने देखा भी होगा; किन्तु यहाँ के या चम्पा के विषय में उसने कुछ चर्चा नहीं की है।

७वीं शताब्दी के मध्य में चीनी यात्री च्वनच्वाँग ने मुंगेर के सभी बौद्ध-स्थानों में भ्रमण किया जिसका उल्लेख ऊपर भी हो चुका है। वह यहाँ के अनेक बौद्ध-स्थानों को देखता हुआ खड़गपुर पहाड़ी होकर मुंगेर पहुँचा। उसने यहाँ की पीर पहाड़ी—हिरण्य पर्वत का वर्णन किया है। वह लिखता है कि राजधानी के निकट और गंगा के किनारे हिरण्य पर्वत है, जिससे धुआँ और वर्फ इतना अधिक उठता है कि सूर्य और चाँद भी छिप गये-से मालूम पड़ते हैं। वह पास के कई गर्म झरनों का वर्णन करता है। उसका कहना है कि उस समय यहाँ दस बौद्ध मठ थे, जहाँ चार हजार भिक्षु रहा करते थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध-धर्म-विरोधी विविध सम्प्रदायों के भी यहाँ कोई २० मन्दिर थे। उसने यहाँ के नगर का भी हिरण्य पर्वत के नाम से ही वर्णन किया है। उसके द्वारा वर्णित हिरण्य पर्वत राज्य, मुंगेर जिले का दक्षिण-पूर्वी भाग है जिसकी राजधानी वह मुंगेर ही बताता है। वह इस राज्य का क्षेत्रफल ३००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल ६० ली (५ ली = १ मील) बताता है। राजधानी वह मुंगेर ही बताता है। इस राज्य के उत्तर मे गंगा नदी, दक्षिण मे पारसनाथ की पहाड़ी, पच्छिम में मगध और पूरब मे चम्पा राज्य था। इस बात का समर्थन बुद्धिष्ट रेकार्ड ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड और कनिंघम-लिखित ऐनसियेन्ट ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थों से भी होता है। च्वनच्वाँग लिखता है कि थोड़े दिन हुए कि सीमान्त प्रदेश के नरेश ने यहाँ के शासक को हराकर राजधानी पर अधिकार कर लिया। इसने नगर में दो संघाराम भी बनवाये जिनमें प्रत्येक में लगभग १००० साधु निवास करते हैं। ये दोनों संघाराम सर्वास्तिवादिन संस्था के ही संदल सम्प्रदाय के हैं।

ईसा की ८ वी शताब्दी से १२ वी शताब्दी तक पाल राजवंश का प्रबल प्रताप उत्तरोत्तर बढ़ता गया और वह अन्त में लगभग सारे भारतवर्ष में अपना साम्राज्य स्थापित करने मे समर्थ हुआ। इस राजवंश के समय में, मुंगेर भारत का एक प्रमुख नगर था। पालवंश के द्वितीय नरेश पालधर्म ने कान्यकुब्ज के राजा इन्द्रायुद्ध को जीतकर चक्रायुद्ध को सिंहासन पर बैठाया था। इस पर गुर्जरप्रतिहार राजा नागभट्ट ने मुंगेर के पास धर्मपाल और चक्रायुद्ध को परास्त किया। किन्तु, कुछ ही दिनों के बाद गोविन्दपाल ने राष्ट्रकूट के राजा की सहायता से गुर्जरराज को पराजित कर उसे राजपूताने की मरुभूमि में भगा दिया। इसके बाद ही पालवंशी राजे उत्तर भारत के सार्वभौम सम्राट माने जाने लगे। गोविन्दपाल के पुत्र देवपाल का लिखा एक ताम्रपत्र मुंगेर मे, १७८० ई० के लगभग मिला था। यह ताम्रपत्र किसी ब्राह्मण को श्रीनगर (वर्त्तमान पटना) में जमीन देने के लिए मोदगिरि (मुंगेर) मे ही लिखा गया था। इसकी भाषा संस्कृत है। इसमें गोपाल और उसके पुत्र धर्मपाल का उल्लेख हुआ है। धर्मपाल ८३० ई० के लगभग मुंगेर में ही निवास करता था। इस ताम्रपत्र में देवपाल की विजय का वर्णन है। उसे हिमालय

से लेकर सेतुबन्ध तक का सम्राट बताया गया है। इसमें मुंगेर में, एक बहुत बडी सभा होने का वर्णन है। उस सभा में धर्मपाल की अभ्यर्थना के लिए देश देश के राजे महाराजे अपनी बडी-बडी सेनाएं लेकर पहुँचे थे। लिखा है कि काले काले बादलों की भाँति हाथियों के समूह को देखकर लोगों को वर्षा ऋतु का भान होता था। घोडे इतनी अधिक संख्या में थे कि उनके पैर की धूलि से आकाश भर गया था और चारों ओर अन्धकार प्रतीत होता था। असंख्य व्यक्तियों की भीड से धरती धसी-सी जाती थी। लोगों के आने के लिए गंगा में नावों का पुल बनाया गया था।

मुंगेर में एक और ताम्रपत्र मिला था जो पालवंश के पाँचवें राजा नारायणपाल द्वारा दानपत्र के रूप में दिया गया था। इसमें भी गोपाल और धर्मपाल का उल्लेख है। पर नारायणपाल की प्रशंसा विशेष रूप से की गयी है। उस समय भी मुंगेर में एक बडी सभा होने, उसमें भिन्न भिन्न देशों के राजाओं के सदल बल आने, हाथी घोडा का भारी जमघट लगने और गंगा में नावों का पुल रहने का वर्णन है। इतिहासकार राजेन्द्रलाल मित्र ने नारायणपाल का राज्यकाल ६३५ ई०,से ६५८ ई० के बीच माना है।

पालराजाओं के बहुत से प्रसिद्ध ताम्रपत्र मुंगेर से ही दिये गये थे। इन बातों से तथा अन्य अनेक घटनाओं से जान पडता है कि मुंगेर पालराजाओं की एक राजधानी रहा है। नालन्दा में प्राप्त एक विख्यात ताम्रपत्र से हमें यह मालूम होता है कि यवद्वीप के राजा श्रीबालपुत्र देव के अनुरोध पर नालन्दा के एक मठ का खर्च चलाने के लिए उसने पटना के पास पाँच ग्राम प्रदान किये थे। वह ताम्रपत्र भी मुंगेर से ही दिया गया था।

पालवंशीय राजा रामपाल ने कैवर्तराज भीम को पराजित कर अपने पिता के खोये हुए राज्य को पुनः अपने अधिकार में किया था। उसके जीवन का दुःखद अन्त यहीं हुआ था। कहते हैं कि जब वह मुंगेर में निवासकर रहा था तो उसे अपने प्रिय मामा मदन देव की मृत्यु का संवाद सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। उसने ब्राह्मणों को बहुत धन दान दिया और मुंगेर में ही गंगा में प्रवेश कर अपना प्राण त्याग दिया।

पालवंश का अंतिम राजा इन्द्रद्युम्नपाल मुंगेर में ही राज्य कर रहा था कि मुसलमान विजेतागण दिल्ली पर अधिकार कर बिहार और बंगाल की ओर बढ़े। उनके आक्रमण करने पर इन्द्रद्युम्न मुंगेर छोड़कर उडीसा की ओर भाग गया। इन्द्रद्युम्न का एक किला जमुई से ८ मील दक्षिण इंदपे ग्राम में बताया जाता है। यह किला १६५० फीट के वर्गाकार में है। इसकी दीवाल १० फीट मोटी और उसके चारों ओर की खाई की चौडाई १५ फीट है। बीच में राजमहलों के विशाल भग्नावशेष पडे हैं। उसके पास ही एक पुराने स्तूप का भी भग्नावशेष है। जमीन पर इस स्तूप का व्यास १२५ फीट है और ऊपर जाकर इसका व्यास ३५ फीट हो गया है। कुछ वर्ष पहले यहाँ खुदाई हुई थी। यहाँ कुछ पुरानी चीजें भी मिली थीं। किले के अन्दर अभी गाँव बसा हुआ है, जहाँ छोटी-बडी बहुत सी पुरानी बौद्ध और हिन्दू मूर्तियाँ हैं जिनमें एक पर पुराना शिलालेख भी है। लक्खीसराय के पास जयनगर पहाडी पर भी टूटे-फूटे

मकानों के चिह्न है जिसे लोग इन्द्रद्युम्न का गढ़ समझते है। पहाड़ी पर एक कब्र है। इसके विषय में लोगों का विश्वास है कि यहाँ राजा का धन गड़ा है। लोगों का कहना है कि इन्द्रद्युम्न मकदुम मौलाना नूर द्वारा परास्त हुए जिसकी कब्र लक्खीसराय के पास खगौल मे है।

पाल-युग की बौद्ध और हिन्दू मूर्त्तियाँ तथा शिलाभिलेख मुगेर शहर तथा मुंगेर जिले के अनेक स्थानों में बहुतायत से मिलते हैं। जेनरल कनिंघम ने वगूल के पास वृन्दावन नामक गाँव के एक पुराने स्तूप की खुदाई की थी जिससे एक छोटा-सा मकान निकला था जो पाल-युग का ही ९ वीं या १० वीं शताब्दी का था। इस मन्दिर में एक सोने के छोटे वक्स में हड्डी का टुकड़ा और चाँदी के वक्स में हरी कांच की माला थी जो किसी मृत व्यक्ति के स्मरणार्थ रखी गई थी। एक दूसरें मकान में कुछ बौद्ध मूर्त्तियाँ और लाह की सैकड़ों मुहरे मिली थी जो १० वी या ११ वीं सदी की थी।

मुसलमानों का आगमन

१२ वी शताब्दी के अन्त मे वख्तियार खिलजी ने पालवंशी राजा को जीतकर उनकी राजधानी उदन्तपुरी विहार (पटना-जिलान्तर्गत विहार शरीफ) और मोदगिरि को अपने अधिकार में कर लिया। मुसलमानों ने अपनी राजधानी बिहार मे रक्खी। पर प्रान्त के अन्दर मुंगेर का दूसरा प्रधान स्थान बना ही रहा। प्रारम्भ मे वख्तियार खिलजी के पुत्र महम्मद खिलजी के सरदारों का मुगेर आकर लूटपाट और उपद्रव करने का वृत्तान्त मिलता है। सन् १३३० तक मुगेर बंगाल के सुलतान के अधीन रहा। दिल्ली के बादशाह बलबन के पौत्र और बगाल के सुलतान रुक्नुद्दीन कैकश का सन् १२९७ का एक शिलालेख लक्खीसराय के मखदुमशाह की दरगाह पर है जिसके अक्षर अब मिट-से गये है और मुश्किल से कुछ पढ़े जाते हैं। इसमे रुक्नुद्दीन कैकस (१२९१-१३०२) और फिरोज एतगीन नामक सूबेदार के विषय मे कुछ लिखा गया है। सुलतान का एक दूसरा शिलालेख दिनाजपुर जिले मे पाया जाता है। १३३० ई० में महम्मद तुगलक ने मुगेर को दिल्ली की वादशाहत के अन्दर कर लिया। इसके पश्चात् १३३७ ई० से यह जौनपुर राज्य के अधीन रहा। दिल्ली के वादशाह वहलोल लोदी के मरने के वाद उसके लड़के सिकन्दर लोदी ने १४८८ ई० मे विहार जीत कर मुगेर पर अधिकार कर लिया। परन्तु, फिर १४९४ ई० में वंगाल के सुलतान हुसैनशाह ने दिल्ली के वादशाह को परास्तकर विहार को अपने कब्जे मे कर लिया।

इसके उपरान्त सुलतान हुसैनशाह का लड़का राजकुमार दनियाल पूर्वी वंगाल का सूबेदार बना। उसने मुंगेर किले की मरम्मत कराकर १४९७ ई० मे फारस के एक पुराने पीर की कब्र पर दरगाह बनवाई जो शाह नफह की दरगाह कहलाती है। दरगाह किले के दक्षिण फाटक के पास एक ऊँचे टीले पर है। यहाँ दनियाल द्वारा लिखाया गया इस सम्बन्ध का शिलालेख अब भी देखने में आता है। कहते हैं कि जब दनियाल ने किले की मरम्मत कराना आरम्भ किया तो रात मे उसे स्वप्न हुआ कि किले की दीवार के निकट एक पीर की कब्र है जिससे कस्तूरी की गंध निकलती है। अन्त में कब्र का पता लगाया गया

और उस पर दरगाह उठायी गयी। उस घटना के कारण उस पीर को लोग शाह नफह कहने लगे। नफह का अर्थ फारसी में कस्तूरी है।

हुसैन शाह के मरने के बाद उसका लड़का नसरत शाह सन् १५२१ में बंगाल का सूबेदार हुआ। उसने अपने सेनापति कुतुब खां को मुंगेर का सरदार बनाया। बाबर की आत्मकथा बाबरनामा से पता चलता है कि बाबर के बिहार पर चढ़ाई करने पर १५३० ई० में कुतुब खां ने नसरत शाह की ओर से बाबर से संधि कर ली। कुछ दिनों के पश्चात् अफगान सरदार शेरशाह ने कुतुब खां को परास्त कर मुंगेर पर अधिकार कर लिया। जब हुमायूँ बंगाल से भागकर आ रहा था तो मुंगेर में शेरशाह के साथ उसका युद्ध हुआ। लोग कहते हैं कि एक बार शेरशाह विद्रोह को दबाने के लिये बंगाल जाते समय कुछ दिनों के लिए मुंगेर में ठहर गया। एक दिन वह अपने दरबारियों के साथ शेखपुरा के जंगल में शिकार करने निकला। वह हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हो बहुत आगे निकल गया। गर्मी का दिन था, वह भूखा-प्यासा एक ग्वालिन के घर पहुँचा जिसने उसे कुछ खाने-पीने को दिया। कहा जाता है इस उपकार के बदले ग्वालिन के कहने पर शेरशाह ने गाम की पचना पहाड़ी को काटकर एक रास्ता बना दिया जो आज ग्वालिन-खांड कहलाता है।

१५४५ ई० में मुंगेर मियाँ सुलेमान के अधीन हुआ जो शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह की ओर से दक्षिण बिहार का सूबेदार बनाकर यहाँ भेजा गया था। मियाँ सुलेमान एक स्वतन्त्र शासक होने की इच्छा से इस्लाम शाह के उत्तराधिकारी आदिल शाह के साथ विद्रोह कर बैठा। सन् १५५७ में जब आदिल शाह अकबर की सेना से परास्त होकर लौट रहा था तो मियाँ सुलेमान ने बंगाल के सरदार बहादुर शाह से मिलकर सूरजगढ़ा से चार मील पश्चिम फतहपुर नामक स्थान पर आदिल शाह पर आक्रमण कर उसे मार डाला। १५६३ ई० में सुलेमान बंगाल और बिहार का शासक बन बैठा। पर उसे अकबर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। १५७३ ई० में जब उसका दूसरा लड़का दाऊद शाह उत्तराधिकारी बना तो उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर मुगल बादशाह को कर देना बन्द कर दिया। अतएव अकबर ने दूसरे ही वर्ष इस पर आक्रमण कर इस सूबे को अपने अधिकार में कर लिया।

१५८६ ई० में जब बंगाल के मुसलमान सैनिकों ने विद्रोह किया तो अकबर ने उन्हें दबाने के लिए राजा टोडरमल को भेजा, जिसने अपना अड्डा मुंगेर में ही कायम किया। विद्रोही सेना, तीन हजार घुड़सवारों के साथ सामना करने के लिए भागलपुर में ठहरी हुई थी। टोडरमल ने यहाँ पहुँचते ही अपनी सेना को आज्ञा दी कि शहर से पहाड़ियों तक घेरा दे दे जिससे सारी सेना और किला सुरक्षित रहे। महीनों तक दोनों ओर की सेना डटी रही, यद्यपि बीच-बीच में थोड़ी मुठभेड़ हो ही जाती थी। टोडरमल ने अपने प्रभाव से स्थानीय हिन्दू जमींदारों को अपनी ओर मिलाकर उन्हें विद्रोहियों के हाथ भोजन-सामग्री न बेचने पर राजी कर लिया। फिर घोषणा कर दी कि पूजा की जो कुछ सामग्री बेचनी हो उसे हम खरीद लेंगे। फल यह हुआ कि बलवाइयों को रसद नहीं मिलने लगी और वे अन्त में तितर-बितर हो गये।
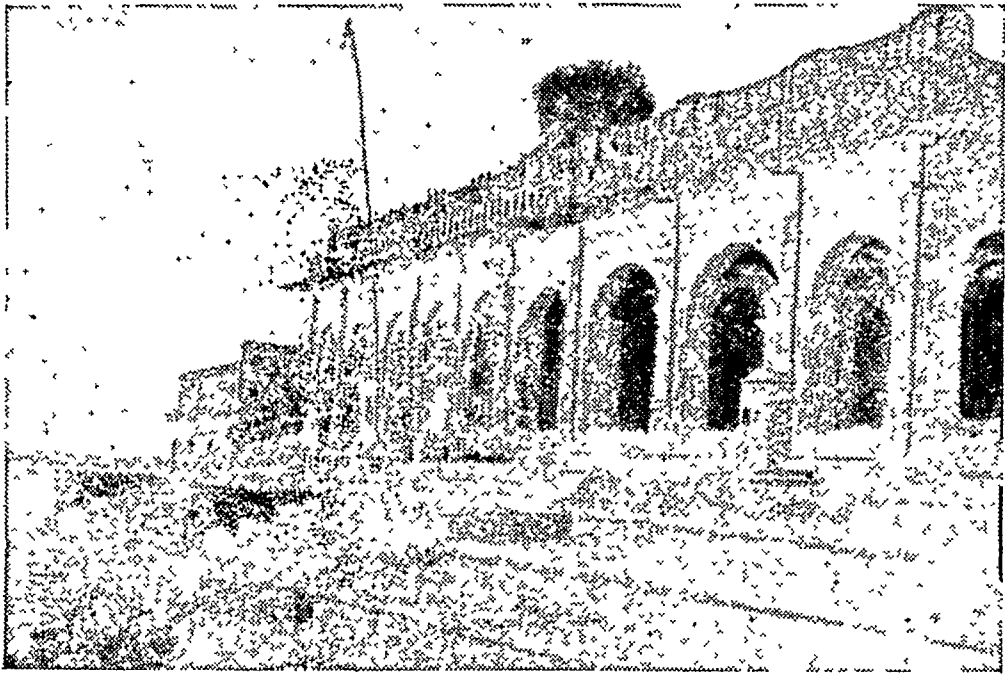
मुंगेर का कष्टहरिणी घाट
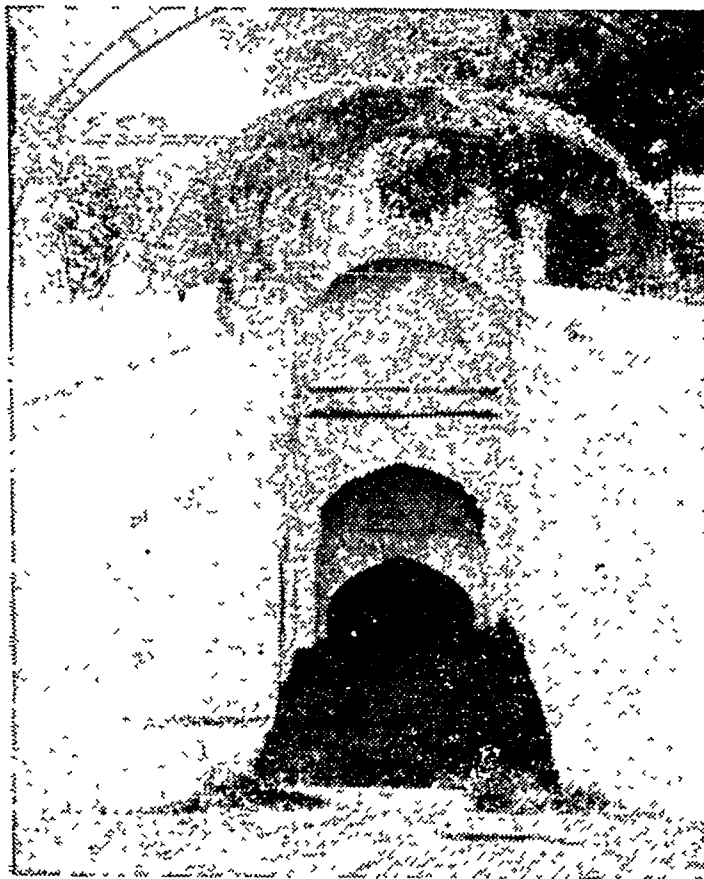
कष्टहरिणी घाट में प्राचीन सुरंग-मार्ग
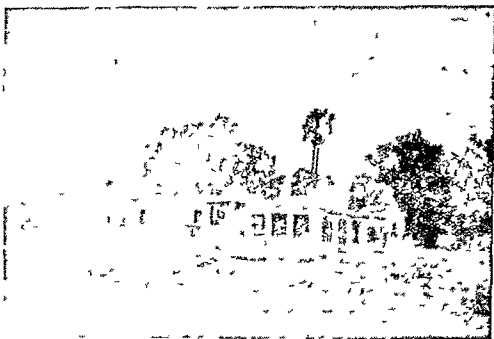
प्रसिद्ध चण्डी-स्थान
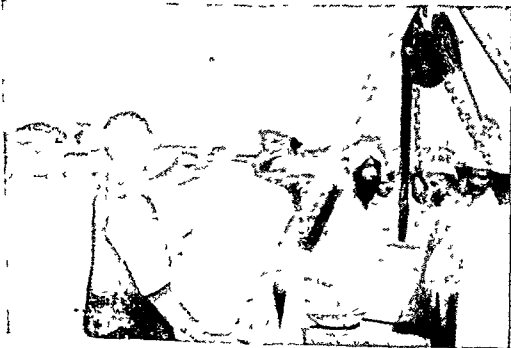
श्रीकृष्ण सेवा-सदन के शिलान्यास का एक दृश्य

कहते हैं कि अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिए जब अकबर आया था तो फारस के एक विद्वान हजरत मौलाना शाह मुस्तफा शफी को अपने साथ लाया था। वह यहाँ एक पीर के पास रह गया जिसने उसे सज्जादे नशीन बना दिया। १६५०ई० में उसकी मृत्यु हुई। उसकी कब्र दिलावरपुर मे अब भी मौजूद है और उसके वंशधर भी कायम हैं। अकबर के दरबार के नवरत्नो मे एक सुप्रसिद्ध राजा मान सिंह भी मुंगेर मे बहुत दिनों तक निवास करता रहा। यहाँ शाह दौलत नामक पीर ने उसे मुसलमान बनाने की बड़ी चेष्टा की।

सन् १५७४ मे जब अकबर बगाल और बिहार को अपने अधिकार मे कर रहा था, उस समय बिहार मे तीन शक्तिशाली जमींदार थे—एक तो हाजीपुर के राजा गजपति और शेष दो मुंगेर जिले के ही गिद्धौर के राजा पूरनमल और खड़गपुर के राजा सग्राम सिह। गजपति तो तुरत ही विनष्ट कर दिया गया, पर ये दोनों अपनी बुद्धिमानी से अपना अस्तित्व कायम रख सके। दोनों ने अकबर से मिलकर अफगानो को परास्त करने मे पूरी सहायता की। संग्राम सिह ने खड़गपुर से ६ मील उत्तर अपना एक महदा का किला अकबर के सेनापति शाहब ज खाँ को दे दिया। इस किले का कोई चिह्न अब यहाँ नही रह गया है। संग्राम सिह अकबर की मृत्यु-पर्यन्त उसकी अधीनता स्वीकार करता रहा; यद्यपि वह कभी उसके दरबार मे नही गया। हाँ, उसके पुत्र टोरलमल को जमानत के तौर पर शाही दरबार में अवश्य रहना पड़ा था। अकबर के बाद जब जहांगीर राजगद्दी पर बैठा और राजकुमार खुसरो ने उसके विरुद्ध बलवा ठाना तो संग्राम सिह स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगा। उसने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली। जहांगीर-नामा मे लिखा है कि उस सेना मे ४००० घुड़सवार और बहुत से पैदल सैनिक थे। जहांगीर ने बिहार के सूबेदार को संग्राम सिह का सामना करने के लिए भेजा। उसी युद्ध मे संग्राम सिह मारा गया। कहते हैं, उसके मरने के बाद उसकी पत्नी चन्द्रज्योति ने मुगल सेना का सामना किया। पर, अन्त मे उसे सन्धि करनी पड़ी। यह घटना १६०६ ई० की है। संग्राम सिह का पुत्र दिल्ली मे पहले से कैद था। वह पिता की मृत्यु के पश्चात् तुरत पिता के राज्य का उत्तराधिकारी नही बनाया गया। ९ वर्ष बाद जब उसने मुसलमान होना स्वीकार किया तभी वह गद्दी पर बैठने के लिए भेजा जा सका। मुसलमान धर्म स्वीकार करने पर भी उसने अपने पूर्वजों की पदवी 'राजा' कायम रखी; पर उसका नाम बदल कर राजेफ़ज़्न रखा गया। कहते हैं, जहांगीर उसे बहुत चाहता था। मुसलमान होने पर पहले तो उसे एक सरदार की बेटी व्याहने को दी गई, पीछे बादशाह ने खुद अपनी एक बहन दी। समय-समय पर युद्ध मे भी वह जाता रहा। शाहजहाँ के समय मे वह बल्ख के सुलतान से लड़ने के लिए महावत खाँ के साथ काबुल गया। उसके पश्चात् वह बुन्देल के जुझार सिह को दबाने के लिए भेजा गया। राजकुमार शुजा की अधीनता मे उसने परेन्दह की लड़ाई में भाग लिया था। सन् १६३४ मे वह तीन हजार सैनिको का मनसबदार बनाया गया। इसके कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका लड़का बिहरांज उत्तराधिकारी बना। उसने कान्धार विजय करने मे सम्राट की सहायता की। राजा बिहराज का बनाया महल टूटे-फूटे रूप मे

अब भी गंगा नदी के किनारे सुशोभित हैं। यहीं एक मस्जिद है जिसकी दीवाल पर के लेखानुसार यह १६५६ की बनी मालूम पड़ती है। खड़गपुर में उस समय के बने पुराने मकानों के खंडहर बहुत देखने में आते हैं।

शाहजहां का दूसरा लड़का शाह शुजा बंगाल का शासक था और उसकी राजधानी संथाल परगना जिले के अंतर्गत राजमहल में थी। १६५७ ई०में उसने अपने पिता की सख्त बीमारी का समाचार सुनकर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने के लिए विद्रोह कर दिया। वह मुंगेर आकर लड़ाई की तैयारी करने लगा और यहां से वह लड़ने के लिए आगे बढ़ा, पर बनारस के पास अपने भाई दाराशिकोह के पुत्र सुलेमान से परास्त होकर मुंगेर लौट आया। इस बीच औरंगजेब ने अपने पिता की गद्दी ले ली। पर शाह शुजा गद्दी लेने के लिए प्रयत्न करता ही रहा। वह बहुत बड़ी सेना एकत्र कर औरंगजेब से लड़ने के लिए आगे बढ़ा परन्तु फिर भी उसे हार खाकर मुंगेर लौट आना पड़ा। लौटकर उसने यहां के किले को मजबूत किया, इसके चारों ओर खाई खुदवाई और किले से पहाड़ियों तक घेरा खिंचवाया जिससे दुश्मन की सेना आगे नहीं बढ़ सके। परन्तु उसकी होशियारी नहीं चली। औरंगजेब का पुत्र महम्मद उसका पीछा करता हुआ पटना पहुंचा। उसने वहां से मीर जुमला के अधीन बारह हजार घुड़सवारों की एक सेना गया के दक्षिण होकर शेरघाटी के रास्ते से भेजा और खुद सीधे मुंगेर की ओर बढ़ा। यहां उसने शहर से कई मील की दूरी पर अपना डेरा डाला। यहां उसके कुछ सैनिक बाहर निकलकर बहुत दिनों तक यह दिखलाने की चेष्टा करते रहे कि वे घेरे को तोड़ डालना चाहते हैं। इससे शुजा का ध्यान इस ओर लगा रहा और उधर मीर जुमला ने पीछे से आकर चढ़ाई कर दी। शुजा को जब यह बात मालूम हुई तो वह बहुत चकित हुआ। परन्तु अब हो क्या सकता था। मीर जुमला शहर में घुस पड़ा। शाह शुजा से युद्ध करते नहीं बना। वह अपनी सेना लेकर वहां से राजमहल की ओर गया, परन्तु वहां भी अपने को सुरक्षित न पाकर वहां से बंगाल की ओर भाग गया।

मुंगेर में शाह शुजा का महल वनमाली जेल के अन्दर अब भी देखने में आता है। उस समय का शस्त्रागार, मस्जिद तथा और भी कई मकान वहां देखने में आते हैं। मस्जिद के नीचे से कई सुरंगें बाहर गयी मालूम होती हैं। पास में दमदम कोठी नामक टीले पर भी एक पुराना मकान था जो हाल में ही कलक्टर की कोठी बनाने के लिए बारूद से तोड़ा गया। उस मकान के नीचे तथा पास के एक कुएं में गई सुरंग का भी पता चला था। किले से तीन मील दक्षिण निल्वारा के पास पुरानी दीवाल का एक हिस्सा मिलता है। सम्भव है, वह शाह शुजा द्वारा खिंचाये किले से पहाड़ियों तक के घेरे का ही एक टुकड़ा हो।

शाह शुजा के बाद कुछ समय तक मुंगेर में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना नहीं हुई। 'आइने अकबरी' में मुंगेर जिले के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखी हैं। उसमें लिखा है कि मुंगेर सरकार ३१ महाल या परगनों में बंटी थी, जिसकी मालगुजारी १०,९६,२५,९८१ दाम थी। ४० दाम का एक अकबरी रुपया

होता था। उसी मुगेर सरकार को थोड़ा-बहुत घटा-बढाकर आज का मुगेर जिला कायम हुआ है। 'आइने-अकबरी' मे यह भी लिखा है कि मुगेर में २१५० घुडसवार और ५०००० पैदल सैनिक रहते थे। परन्तु, कहा जाता है कि ये सब सस्थाएँ नाम की ही थी, इनमे वास्तविकता नही थी।

जहाँगीर के शासनकाल मे अलीउद्दीन इस्लाम खाँ का भाई कासिम खाँ, मुंगेर सरकार का प्रबन्धक हुआ। परन्तु, अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् वह बगाल का सूबेदार हो गया। इसके बाद मुंगेर क्रमशः कई व्यक्तियो के हाथ मे रहा जिनमे सरदार खाँ और हसनअली खाँ (१६१९ ई०) का उल्लेख मिलता है।

शाहजहाँ के राज्यकाल के आरम्भ में सैयद महम्मद मुख्तार खाँ मुगेर का तमुलदार नियुक्त किया गया था। सन् १६३७ में, डुमराँव के राजा के साथ लड़ाई लड़ने मे उसने बड़ी ख्याति प्राप्त की। एक दूसरा तमुलदार महालदार खाँ नामक व्यक्ति था।

औरङ्गजेब के शासनकाल मे एक और उल्लेखनीय घटना मुगेर मे हुई। मुल्ला महम्मद सैयद नामक कवि, जो अशरफ नाम से कवितायें रचता था, १७०४ मे बंगाल से मक्का जाते समय मुगेर मे मर गया और यही उसकी कब्र बनी जो अभी भी गगा के किनारे किले के पच्छिम भाग मे मौजूद है। औरङ्गजेब का पोता, बिहार का सूबेदार अजीमुश्शान का वह बड़ा कृपापात्र था। उसका पिता कास्पियन समुद्र के निकट का रहनेवाला था। मुल्ला महम्मद सैयद ने बहुत दिनो तक औरङ्गजेब की प्यारी बेटी जेबुन्निसा बेगम को पढ़ाया था। जेबुन्निसा स्वय भी एक प्रसिद्ध कवियित्री थी।

डच डॉक्टर निकोलस ग्राफ के वृत्तान्तानुसार १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे मुगेर का किला बिल्कुल दुरुस्त था। वह उस समय गिरफ्तार करके मुगेर लाया गया था। उसने मुगेर का वृत्तान्त लिखा है, और यहाँ के किले की बडी तारीफ की है। वह किले की सफेद दीवारो और बुर्जो को देखकर चकित हो गया था। १८ वी शताब्दी के मध्य मे किला भग्नावस्था मे था, तथापि उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। सन् १७४५ ई० मे अलीवर्दी खाँ के विद्रोही सेनापति मुस्तफा खाँ ने उत्तर की ओर बढ़ते समय मुगेर पर आक्रमण किया था। उसने अपने एक सम्बन्धी अब्दुल रसूल खाँ को एक छोटी-सी सेना के साथ किले पर अधिकार करने के लिए भेजा। आक्रमणकारी लड़ते-भिडते किले की दीवार पर चढ गये और उन्होने किले पर अधिकार कर लिया। परन्तु, एक सिपाही के दीवार पर चढने से उसका पत्थर खिसक कर नीचे गिरा जिसकी चोट से अब्दुल रसूल खाँ मर गया। अपने वीर सरदार की मृत्यु के बावजूद भी मुस्तफा खाँ ने अपने विजयोत्सव मे बाजे बजवाये। वह तीन दिन वहाँ रहकर किले से बन्दूकें तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र लेकर पटने की ओर चला गया।

कहते है, अलीवर्दी खाँ एकबार सूर्यगढ़ा गया। वहाँ शाह नजीमुद्दीन अली नामक एक पीर से उसे भेंट हो गई जो मौला शाह नाम से प्रसिद्ध था। उसके आशीर्वाद से अलीवर्दी खाँ को एक लड़ाई मे विजय प्राप्त हुई, इससे प्रसन्न होकर उसने धर्म-कार्य मे लगाने के लिए उस पीर को बहुत बड़ी जायदाद दी।

यह उसके वंशज के पास आज भी कायम है। जहां मौला शाह की गद्दी थी उसे आज मौला नगर कहते हैं। शाह साहब के छत्र आदि बहुत से सामान अभी भी मौजूद हैं।

सूर्यगढ़ा एक पुराना स्थान जान पड़ता है। गंगा के किनारे होने से यह एक प्रमुख स्थान रहा है। यहाँ पाल-युग की तरह इससे भी आगे की बहुत-सी मूर्त्तियाँ मिलती हैं। यहाँ पहले एक किला था जिसका भग्नावशेष हाल तक मौजूद था। अब सब गंगा के गर्भ में चला गया। लोग इसे सूर्यमल का किला कहते थे। मुसलमानी वक्त में भी यहाँ एक छोटा-सा शहर था, जहाँ मुकद्दमे सुनने के लिए एक काजी रहता था।

सन् १७४३ ई० में पूना का पेशवा बालाजी राव अलीवर्दी खाँ को बचाने के लिए सेना लेकर बंगाल गया था तो वह उस समय मुंगेर भी पहुँचा था।

सन् १७५७ ई० के पलासी-युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद अंगरेज आक्रमणकारी मुंगेर आने लगे। सिराजुद्दौला के दल का एक फ्रांसीसी सरदार जीन ला का पीछा करता हुआ आयरकूट मुंगेर आया था। मुंगेर के दीवान ने उसे किले में तो घुसने नहीं दिया, पर उसे नावों से सहायता पहुँचाई।

१७६० ई० में जब दिल्ली का बादशाह शाह आलम बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद पर चढ़ाई करने के लिए बिहार पहुँचा तो वह यहां से मुंगेर जिले के दक्षिण होकर ही बंगाल की ओर रवाना हुआ। उसने सोचा कि गंगा किनारे की सड़क से आगे बढ़ने पर वह सकड़ी गली जाकर मेजर केलौड और मीरन द्वारा, जो उसका पीछा कर रहे थे, पकड़ लिया जा सकता है। अतएव वह चुपचाप लक्खीसराय, मलयपुर, चकाई और देवघर होकर पहाड़ी और जंगल के रास्ते से ही आगे बढ़ा। इस रास्ते से कभी कोई सेना नहीं गई थी। इसे न तो बादशाह की सेना जानती थी और न नवाब की सेना। अंगरेजों को तो इसकी और भी जानकारी नहीं थी। फिर भी मेजर केलौड ने बहुत साहस कर के उसी रास्ते बादशाह की सेना का पीछा किया और अंत में रास्ते को पार करने में समर्थ भी हुआ।

उसी वर्ष अंगरेजों ने नवाब की ओर से खड़गपुर के राजा पर चढ़ाई कर दी। खड़गपुर का राजा नये नवाब कासिम अली खां का, जो अंगरेजों द्वारा बनाया गया नवाब था, आधिपत्य मानने को तैयार नहीं हुआ। उस समय मेजर केलौड ने अपने एक छोटे अफसर जॉन स्टैबुल्स को मुंगेर में रख छोड़ा था। अतएव उसी को खड़गपुर पर चढ़ाई करने के लिए कहा गया। उस समय अंगरेजों के पास मुंगेर में ५५० सैनिक थे। स्टैबुल्स के आक्रमण का विचार सुनकर राजा ने अपने २००० सैनिकों को मुंगेर की ओर भेजा। राजा के सैनिक सावधान होकर मुंगेर से तीन मील की दूरी पर एक पुराने घेरे के पीछे खड़े थे। अंगरेजी सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। जब राजा की सेना परास्त होकर पीछे भाग चली तो स्टैबुल्स ने उसका पीछा किया और उसे खदेड़ता हुआ वह खड़गपुर से तीन मील की दूरी पर पहुँचा जहाँ राजा सारी सेना इकट्ठा कर उसका मुकाबला करने को तैयार था। पर राजा की वहाँ भी हार हुई। अन्त में स्टैबुल्स ने खड़गपुर आकर राजमहल और नगर में आग लगा दी। राजा बिल्कुल तबाह हो गया और

अन्त मे उसने अधीनता स्वीकार कर ली। फिर उसे कभी सर उठाने का साहस नहीं हुआ। स्टैबुल्स और उसके सैनिक मुंगेर लौट आये।

मुसलमानी शासन का अन्त और अंगरेजों की श्री-वृद्धि

मुसलमानी शासन-सूर्य के अस्त होते समय उसकी अन्तिम आभा से प्राचीन नगर मुंगेर फिर उद्भासित हुआ और उसका ध्वंसोन्मुख प्राचीन दुर्ग पुनः चमक उठा। १७६१ ई० मे बंगाल और बिहार का नवाब मीर कासिम अली खां मुर्शिदाबाद से अपनी राजधानी हटा कर मुगेर लाया। उसने मुर्शिदाबाद से घोड़े हाथी, सेना आदि सभी चीजे हटा ली। खजाना भी वह यही ले आया। उसने किले की मरम्मत कराई, अपने रहने के लिए महल बनवाया, बन्दूक के कारखाने खोले तथा एक शस्त्रगार का भी निर्माण किया। उसके सेनापति गुरगीन खाँ ने अंगरेजी ढंग पर अपनी सेना का संगठन किया। परन्तु मुगेर आने के कुछ ही दिनो के बाद मीर कासिम का अंगरेजो से झगड़ा चल पड़ा। यों तो झगड़े का आरम्भ किले के अन्दर तलाशी लेने की बात से हुआ; पर वास्तव मे झगड़े का मुख्य कारण वाणिज्य-व्यवसाय ही था। अंगरेजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने व्यापार के लिए किसी तरह का कर न देना, पहले से ही निश्चय कर लिया था, और विवश होकर नवाब को भी यह बात मान लेनी पड़ी थी। किन्तु पलासी के युद्ध के बाद कम्पनी के यूरोपियन नौकरो ने स्वय भी व्यापार करना आरम्भ कर दिया और उस व्यापार के लिए भी कर देने को तैयार नही हुए। कर माँगने पर वे उल्टे नवाब के कर्मचारियों के साथ जोर-जुल्म करने लगते थे। इधर देशी व्यापारियो पर भारी कर लगा हुआ था जिसका फल यह हुआ कि देशी व्यापारी प्रतिद्वन्द्विता मे टिक न सके। प्राय: सारा व्यापार गोरो के ही हाथ में चला गया। थोड़े-से बचे-खुचे देशी व्यापारी भी अंगरेजों को घूस देकर उन्ही के नाम से व्यापार करने लगे और अपने माल के साथ कम्पनी के सर्टिफिकेट और झंडे रखने लगे। व्यापार के चलते बहुत-सी ज्यादतियाँ भी शुरू हो गई जिससे सब लोग व्याकुल हो उठे। नवाब की सल्तनत की धाक जाती रही और कर मिलना बन्द होने से उसे शासन-कार्य चलाने में भी कठिनाई मालूम पड़ने लगी।

नवाब ने इस बात की कड़ी शिकायत गवर्नर के पास की। इस पर गवर्नर वान्सिटार्ट स्वयं तहकीकात करने आया। वह गुरगीन खाँ के अपने रहने के लिए बनवाये हुए पीर पहाड के महल मे ठहराया गया जो आज भी मौजूद है। उसके शानदार स्वागत मे नवाब ने लाखो रुपये खर्च किये, तथा उसे और उसके घर की स्त्रियों को बहुत से रत्न, जवाहर भेट मे दिये। किन्तु, इतनी खुशामद करने पर भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ। गवर्नर ने कर्मचारियो के निजी व्यापार पर नाममात्र का कर देना तो स्वीकार कर लिया; पर, यह बात पीछे व्यवहार मे नही लाई गई। अन्त मे नवाब ने तंग आकर सब के लिए कर उठा दिया। अगरेजो को यह बात अच्छी नही लगी; क्योकि सबके साथ प्रतिद्वन्द्विता हो जाने से वे मनमाने ढंग पर व्यापार नही कर सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने दो दूत एमेट और हे को कुछ लोगो के साथ नवाब के पास भेजा। नवाब को उनका व्यवहार अच्छा नही लगा, इसलिए वे लोग गिरफ्तार कर लिये गये। बस

फिर क्या था, दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। एलिस के नेतृत्व में अंगरेजी सेना ने पटने के किले पर कब्जा कर लिया। परन्तु, जब मुंगेर से नवाब की सेना पटना पहुँची तो किले पर नवाब का फिर अधिकार हो गया। पटने में बहुत से अंगरेज गिरफ्तार कर मुंगेर लाये गये और कैद में रखे गये। राजदूत एमेट मुर्शिदाबाद में मार डाला गया। किन्तु, जब सूती में नवाब की सेना की हार हुई तो वह निराश हो गया। उसने बेगमों और बच्चों को रोहतास के किले में भेज दिया और स्वयं अपने सेनापति गुरगीन खाँ के साथ राजमहल की ओर बढ़ा जहाँ उधुआ नाला के किनारे उसकी सेना जमी हुई थी। मुंगेर छोड़ने के पूर्व उसने अपने बहुत से बंदियों को मार डाला जिसमें बिहार का नायब सूबेदार राजा रामनारायण भी था। कहते हैं, अंगरेजों के पक्षपाती मुर्शिदाबाद के दो धनी व्यक्ति—जगत् सेठ महताब राय और सरूपचन्द जो कैद कर लिये गये थे, पीछे गंगा में डुबा दिये गये। पर शेर उल मुताखरीन तथा लार्ग साहब के सैनेरामन रेकर्ड से मालूम होता है कि ये दोनों पीछे बाढ़ के पास मीर कासिम की आज्ञा से कत्ल कर दिए गए थे। नदिया के राजा कृष्णचन्द्र की भी यही दशा हुई थी।

मीर कासिम उधुआनाला की ओर बढ़ा था, पर वहाँ पहुँचने के पूर्व ही उसे अपनी दूसरी हार की खबर लगी। वह रास्ते से ही मुंगेर लौट आया और दो-तीन दिन यहाँ रहकर पटने के लिए रवाना हुआ। वह अपने साथ कुछ अंगरेज कैदियों को भी पटना ले गया। जाते समय अंगरेजों को पीछा करने से रोकने के लिए उसने दस्तरानाला के पुल को तोड़वा दिया था जिसका भग्नावशेष यहाँ अब भी दिखलाई पड़ता है। आगे बढ़कर रास्ते में मीरकासिम लक्खीसराय के निकट रहुलानाला के किनारे ठहरा। वहाँ, उसके सेनापति गुरगीन खाँ को अपने ही कुछ सैनिकों ने, जिन्हें बहुत दिनों से वेतन नहीं मिल रहा था, मार डाला। इसपर किसी ने भागते हुए उन विद्रोही सैनिकों पर तोप दागना शुरू किया। तोप की आवाज सुनकर अपने ही दल के दूसरे लोगों को भ्रम हो गया कि अंगरेजों ने चढ़ाई कर दी। इससे सब लोगों ने रात में ही जैसे-तैसे नावों की पुल से रहुआनाला को पार किया। वहाँ जाकर लोगों को सच्ची स्थिति का ज्ञान हुआ। दूसरे ही दिन वहाँ से सब लोग पटने के लिए रवाना हुए।

मीरकासिम के चले जाने पर अंगरेजी सेना मुंगेर आने लगी। मीरकासिम मुंगेर किले को अरबली खाँ की संरक्षता में छोड़ गया था। वह दो दिनों तक अंगरेजों से घोर युद्ध करता रहा। अन्त में, २ अक्टूबर १७६३ ई० को उसने आत्मसमर्पण कर दिया और मुंगेर अंगरेजों के हाथ आ गया। पटने में नवाब को जब यह समाचार मिला तो उसने वहाँ के सब अंगरेज कैदियों को मरवाकर एक कुएँ में डलवा दिया, जहाँ पीछे अंगरेजों ने मृत व्यक्तियों के स्मारक-स्वरूप एक मीनार बनवाई।

मीरकासिम ने दिल्ली के बादशाह और अवध के नवाब से मिलकर १७६४ ई०में फिर अंगरेजों पर चढ़ाई कर दी पर वह इस बार भी हार गया। इसके बाद वह फिर कभी उठने की हिम्मत नहीं कर सका।

मीरकासिम के सम्बन्ध में विशेष विवरण मुंगेर निवासी गुलाम हुसैन खाँ की पुस्तक शेर-उल-मुताखरीन में मिलता है। मीरकासिम के एक सरदार इब्राहिम अली खाँ के वंशज अब भी शेखपुरा थाने के

मुंगेर में गंगा नदी का एक दृश्य

मुंगेर में गंगा नदी का एक दृश्य
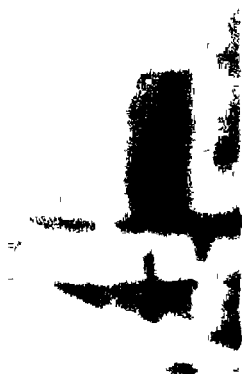
हुसैनागंद नामक स्थान में रहते हैं। मुंगेर शहर के पुराने महल्ले चोग्राबाग ग्रौर कासिम बाजार मे बन्दूक के कई छोटे-छोटे कारखान मीरकासिम के समय से ही चले ग्रा रहे हैं।

मुगेर जिले के ग्रन्दर शाहनफह की दरगाह के पास चार छोटी-छोटी कब्रे हैं जो मीरकासिम के दो लड़के ग्रौर दो लड़कियों की बताई जाती है। इनके सम्बन्ध मे रहस्यपूर्ण ग्रौर रोमाचकारी दन्तकथाएँ कही-सुनी जाती हैं। कहते हैं, मीरकासिन के भाग जाने पर उनकी षोड़सवर्षीय यमज सन्तान शाहजादी गुल ग्रौर शाहजादा बहार, दोनो गंगा किनारे की सुरग मे रह कर दिन बिताते थे ग्रौर ग्रंगरेज ग्रफसरों को मारने की ताक मे लगे रहते थे। रात मे प्रायः वे दोनों बाघ की खाल ग्रोढ़कर निकलते थे। एक रात जब शाहजादा बहार बाहर निकला तो उसे बाघ समझकर ग्रगरेज सेनापति ने उस पर गोली चला दी। जब निकट जाकर उसने देखा तो रहस्य का पता चला। बहार, शाहनफह की दरगाह पर गाड़ा गया। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी बहन राजकुमारी गुल पुरुष वेष मे उसकी कब्र के पास सोई हुई मरी पाई गई। उसकी कब्र भी बहार की बगल मे बनी। पीछे शेष दो छोटे भाई बहन की कब्रे भी वही बनी। ये दोनों कैसे मरे इस विषय मे कुछ नही सुना जाता है। कहते हैं, बहार को मारनेवाला ग्रगरेज सेनापति जब तक मुगेर मे रहा, इन बच्चो के सम्मानार्थ प्रति दिन बन्दूके दगवाता था। मुसलमान इसे पीरशाही कहकर सम्मान प्रगट करते थ। किन्तु, इतिहासकार इस कहानी की सत्यता पर विश्वास नही करते; क्योकि जैसा ऊपर कहा गया है, मीरकासिम ने ग्रपने बाल-बच्चो को पहले ही यहाँ से बाहर भेज दिया था। शाहनफह दरगाह के बगल की चार कब्रे किन्ही ग्रौर बच्चे की हो सकती है।

१७६६ ई० मे, मुगेर मे ग्रंगरेजी सैनिक, लड़ाई का भत्ता बन्द होने पर विद्रोह कर बैठे। पर लार्ड-क्लाइव ने ग्राकर उसे दबा दिया। इसके बाद बहुत दिनो तक कोई उल्लेख-योग्य ऐतिहासिक घटना नही हुई। किन्तु, मुगेर ग्रपने प्राकृतिक सौन्दर्य, उत्तम जलवायु तथा ऐतिहासिक स्थान के कारण बराबर प्रसिद्ध रहा। वारन हेस्टिंग्स, लार्ड कर्जन ग्रादि बड़े-बड़े शासक यहाँ ग्राते रहे। टी-ट्विनिग, बिशाप हेबरे, एरमिली एडने, फेनी पार्क्स, जॉसेफ हूकर, बेवेरिज ग्रादि यूरोपीय पर्यटकों ने ग्रपने-ग्रपने भ्रमण वृत्तान्तो मे उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध के मुगेर का सुन्दर चित्र खीचा है। इन सबों ने मुगेर के नैसर्गिक सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस समय मुगेर उन्मादरोग-ग्रस्त, ग्रशक्त ग्रौर ग्रवसर प्राप्त ग्रगरेज सैनिको की ग्रावारा-भूमि के रूप मे परिणत हो गया था। वारन हेस्टिंग्स की पत्नी भी ग्रपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए यहाँ रही थी।

मुगेर की प्रसिद्धि ऐसी थी कि ग्रठारहवी ग्रौर उन्नीसवीं सदी के प्रगतिशील बंगला-साहित्य के ग्रनेक प्रमुख काव्यों, ग्रन्थों, उपन्यासों, नाटको ग्रादि मे यहाँ की इतिवृत्ति संकलित की गयी है। विजय-राम सेन के 'तीर्थमंगल' मे, दीनबन्धु मित्र के 'सुरध्वनि' काव्य मे, नवीनचन्द्र के 'पलाशीर युद्ध' मे, बलदेव पालित के 'मंजरी' काव्य मे, बंकिमचन्द्र के 'चन्द्रशेखर' मे, रमेशचन्द्र के 'माधवी ककण' मे, शरद् चन्द्र की 'परिणीता' मे, द्विजेन्द्र नाथ राय के एक पद्य में, प्रभात मुखोपाध्याय के ग्रनेक गल्पों मे, देवेन्द्र नाथ की

'माँ'-शीर्षक कविता में और इसी प्रकार अन्य अनेक कवियों और लेखकों की कृतियों में हम मुंगेर का उल्लेख पाते हैं। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वयं यहाँ आये थे और यहाँ कई दिनों तक ठहरे थे। उनके कनिष्ठ पुत्र शमीन्द्रनाथ ठाकुर का दुःखद अन्त यहीं हुआ था।

मुंगेर जिले का निर्माण

अंगरेजी राज्य-काल में, मुंगेर शहर जिले का एक सदर आफिस रह गया। वर्तमान मुंगेर जिले का निर्माण १८१२ ई० के लगभग आरम्भ हुआ था। उस समय इविंग नाम का एक अंगरेज फौजदारी अदालत का प्रधान अफसर बनाकर भेजा गया था। वह ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट कहलाता था और भागलपुर के मजिस्ट्रेट के अधीन काम करता था। गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी ने भागलपुर के मजिस्ट्रेटके पास २२ अक्टूबर १८१३ ई०को जो एक पत्र लिखा था उनमे पता चलता है कि उस समय तक मुंगेर में कोई अलग मजिस्ट्रेट नहीं रहता था। उक्त पत्र में भागलपुर के मजिस्ट्रेट को लिखा गया था कि वह पहले की भाँति फिर वर्ष में एकबार मुंगेर में कचहरी किया करे। १८१८ ई० के कागजो से पता चलता है कि उस समय मुंगेर जिले मे मुंगेर, तारापुर, सूरजगढा, मलेपुर और गोगरी ये पाँच थाने थे।

१८३२ई० मे मुंगेर मालगुजारी वसूल करने का भी केन्द्र बनाया गया और यहाँ के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट का डिप्टी कलक्टर का भी पद दिया गया। किन्तु, डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलक्टर तो वह नाम मात्र का ही रहा, वास्तव में वह मजिस्ट्रेट और कलक्टर के प्राय सभी अधिकारो को काम में लाता था। वह इक्जक्यूटिव अफसर और रेवेन्यू अफसर के पास सीधा पत्र-व्यवहार करता था। मुंगेर के मालगुजारी वसूल करने का केन्द्र बनाये जाने पर भागलपुर, विहार और तिरहुत जिले के कुछ भाग काट कर मुंगेर में मिलाये गये। भागलपुर जिले से सूरजगढा, मुंगेर, चन्दनभुक्ता, कजरा, फरकिया, अमरपुर और गिद्धौर परगने लिये गये। विहार जिले मे अमरथू, रोह (कुछ अंश), नरहट (कुछ अंश), सतदह, बिहार (कुछ अंश) और समुई परगने मिलाये गये। उसी प्रकार तिरहुत जिले से मलकी, बलिया, मस्जिदपुर, अकबरपुर रानी, मुसरी, नादापुसरी, नयपुर, इमादपुर, कबखंड और उत्तर खंड परगने उस समय मुंगेर में सम्मिलित किये गये। यह याद रखने की बात है कि उस समय विहार जिला वर्त्तमान पटना, गया और कुछ हजारीबाग जिले का भाग था और तिरहुत जिला वर्तमान दरभंगा और मुजफ्फरपुर जिले का सम्मिलित रूप था।

उसके बाद समय-समय पर परिवर्त्तन होते रहे। सन् १८३४ ई० मे रामगढ जिले से चकाई परगना और सन् १८३६ में पटना जिले मे गिसथाजरी परगना अलग कर मुंगेर में मिलाये गये। सन् १८७४ ई० में भागलपुर जिले से फिर सखरबादी, बरहरा, सिवौल, खड्गपुर और परवतपारा के इलाके मुंगेर जिले में सम्मिलित किये गये। लोदवह और सिमरवन तप्पा एवं लखनपुर परगने के २८१ गाँव भी मुंगेर में शामिल किये गये।

जिले के अन्दर समय-समय पर भिन्न-भिन्न सबडिवीजन कायम होते रहे। जमुई-सबडिवीजन सन् १८६४ ई० में कायम किया गया। उसका सदर आफिस पहले सिकन्दरा में था। पीछे सन् १८६९ ई० में
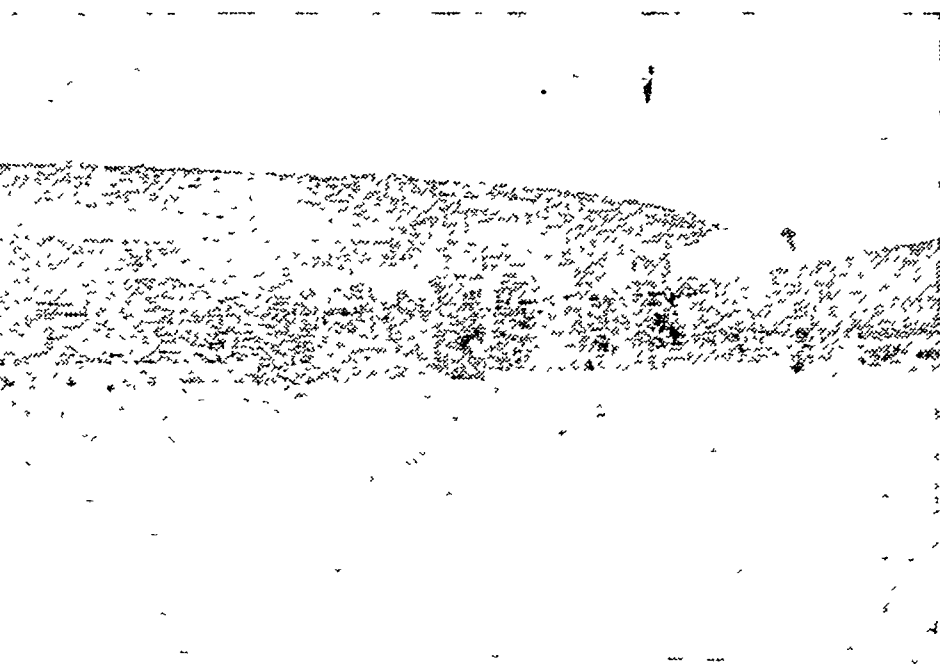
रावाला के नवाब मीरकासिम द्वारा खण्डित ऐतिहासिक पुल का भग्नावशेष
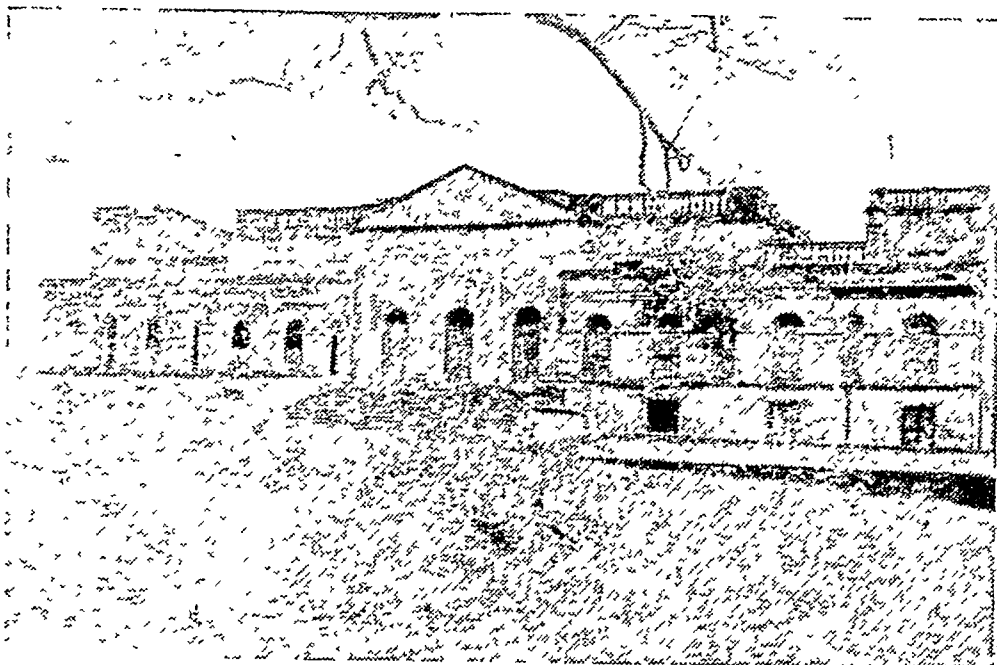
कर्णचौरा का राजभवन
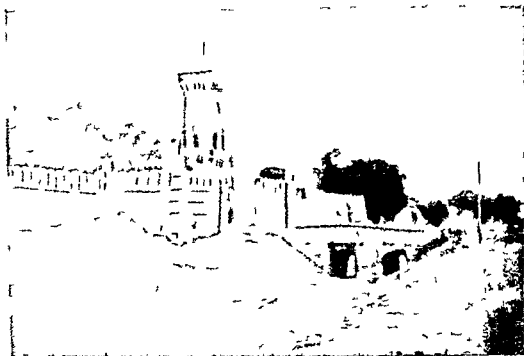
मुगेर किला के वनौर-टावर का पूर्वी द्वार

भूकम्प के वाद—मुगेर-किला का पूर्वी द्वार

वह जमुई लाया गया। बेगूसराय सब-डिवीजन सन् १८७० ई० में बना। पहले यह बलिया सब-डिवीजन कहलाता था, किन्तु इसका आफिस बराबर बेगूसराय में ही रहा। खगड़िया सब-डिवीजन सदर सब-डिवीजन के कुछ हिस्सों को काटकर सन् १९४६ ई० मे अलग किया गया।

इसी प्रकार समय-समय पर थाने मे भी परिवर्तन होता रहा। इस समय सदर सब-डिवीजन के अन्दर १० थाने हैं—सदर थाना, सदर मुफस्सल, खड़गपुर, तारापुर, जमालपुर, सूर्यगढ़ा, लक्खीसराय, बड़हिया, शेखपुरा और बरबीघा। शेखपुरा थाना सन् १९०४-५ मे जमुई सब-डिवीजन से हटाकर सदर सब-डिवीजन में मिलाया गया। बड़हिया थाना सन् १९४४ ई० मे लक्खीसराय से काटकर अलग किया गया।

खगड़िया सब-डिवीजन मे इस समय खगड़िया, गोगरी, पर्वत्ता, चौथम और बख्तियारपुर थाने हैं। पहले इन थानों का भूभाग गोगरी थाने के नाम से ही विख्यात था। पीछे इसीसे अलग होकर खगड़िया और बख्तियारपुर थाने बने। गोगरी अलग थाना बना रहा। फिर इससे कटकर सन् १९३० ई० में चौथम थाना बनाया गया। गोगरी जो कुछ भी बचा था उससे भी सन् १९४४ ई० में कुछ भाग काटकर पर्वत्ता थाना अलग किया गया।

बेगूसराय सब-डिवीजन मे पहले बलिया और तेघड़ा, दो थाने थे। फिर बलिया से बेगूसराय अलग किया गया। बेगूसराय से बरियारपुर अलग हुआ। सन् १९४४ ई० मे बेगूसराय और बरियारपुर का कुछ भाग काटकर बखरी थाना कायम हुआ। उसी साल तेघड़ा से बछवाड़ा थाना अलग किया गया। इस तरह बेगूसराय में छः थाने हुए।

जमुई सब-डिवीजन में इस समय ५ थाने हैं—जमुई, सिकन्दरा, चकाई, झाझा और लक्ष्मीपुर। पहले जो मलयपुर (मल्लेपुर) थाना था वही जमुई कहलाया। चकाई से सन् १९३० ई० के लगभग झाझा अलग किया गया। लक्ष्मीपुर अभी हाल में जमुई से अलग हुआ है।

नवजागरण

मीरकासिम के पतन के पश्चात् अंगरेजों का बल बहुत तेजी से बढ़ने लगा था। वे भारतवर्ष में आये तो थे व्यापार करने, पर अब शासन करने लग गये थे। उन्होंने छल-बल से एक-एक कर भारत के सभी भागों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार थोड़े ही दिनो मे सारा देश गुलामी की जंजीर मे जकड़ गया। राजनीतिक पतन के साथ-साथ देश में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सभी तरह के पतन हुए। कुछ समय तक लोग किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये। पर थोड़े ही दिनों के बाद धीरे-धीरे लोगों में चेतना आने लगी। लोग विदेशी सल्तनत के बोझ से ऊबने लगे और वे इस चिन्ता में पड़े कि अपने को किस प्रकार इससे विमुक्त किया जाय। लोगों ने अपना संगठन आरम्भ किया। देश में बड़े-बड़े राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारक उत्पन्न होने लगे; और वे जनता मे नवजागरण पैदा करने लगे। इस जागृति में मुंगेर जिला देश के किसी भूभाग से पीछे नहीं रहा।

इस युग के सुधारकों में बंगाल के राजा राममोहन राय प्रथम व्यक्ति हुए। उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना कर देश में धार्मिक और सामाजिक क्रांति पैदा की। राजनीतिक सुधार के लिए भी वे बराबर चेष्टा करते रहे। सन् १८३३ ई० में उनकी मृत्यु के बाद केशवचन्द्र सेन पर ब्रह्मसमाज के संचालन का भार पड़ा। इनके समय में ब्रह्मसमाज दो दलों में विभक्त हो गया। जिस समय पूरब में ब्रह्मसमाज का प्रचार हो रहा था उसी समय उत्तर-पश्चिम भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्यसमाज की स्थापना कर समाज में जागृति ला रहे थे। उधर दक्षिण में एनीबेसेंट के नायकत्व में थ्योसोफिकल सोसाइटी देश को आगे बढ़ाने का कार्य कर रही थी। इसी समय पूर्वी भारत में एक और सुधारक स्वामी रामकृष्ण-परमहंस हुए जिनके पट्टशिष्य स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों में भी भारत का शिर ऊँचा किया। उनका भी एक समाज सुधारक दल रामकृष्ण मिशन कायम हुआ। ये सभी सुधारक भारत के प्रमुख स्थानों में जाकर और वहां अपने समाज की स्थापना कर सब तरह के सुधार के काय करने लगे।

१८६८ ई० में मुंगेर में सतीकुमार चट्टोपाध्याय के सहयोग से तथा जमालपुर में डा० अनुकूल मित्र के प्रयत्न से ब्रह्म मन्दिर की स्थापना हुई। इस अवसर पर केशवचन्द्र सेन और राजनारायण बसु का मुंगेर और जमालपुर में शुभागमन हुआ था। मुंगेर के ब्राह्म मन्दिर में केशवचन्द्र सेन की चिता-भस्म पर समाधि बनी हुई है। जमालपुर में उनके नाम पर एक महल्ले का नाम ही केशवपुर रखा गया है। इस ब्राह्म आन्दोलन के प्रतिरोध स्वरूप मुंगेर में श्रीकृष्णप्रसन्न सेन के नेतृत्व में पहले तो आर्यधर्म-प्रचारिणी नाम की एक सभा स्थापित हुई। पीछे उन्होंने तथा श्यामाचरण भट्टाचार्य ने १८७५ ई० में जमालपुर में हरिसभा और सुनीति प्रचारिणी सभा कायम की। श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन ने मुंगेर में एक सनातनधर्म सभा की भी स्थापना की थी जिसके द्वारा आज भी एक संस्कृत-विद्यालय चलाया जा रहा है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस भी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व किसी तीर्थ-यात्रा में जाते समय जमालपुर पधारे थे। उनकी मृत्यु सन् १८८४ ई० में हुई। कहते हैं, उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द का भी किसी समय मुंगेर आगमन हुआ था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का सन् १८७० ई० के लगभग यहां पदार्पण हुआ था। वे चण्डी स्थान के पास कहरवा मठ से थोड़ी दूरी पर एक कबीर पंथी मठ में तीन चार दिनों तक ठहरे थे। वहाँ उनकी चूड़ामणि मिश्र, लक्ष्मण मिश्र, मत्तू मिश्र आदि पंडितों से बातें हुई थीं। वे कष्टहरणी घाट और कर्ण-चौरा पर भी आते जाते रहे। पीछे सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी प० लेखराम भी यहाँ आये थे। उन्होंने स्वामी जी की जीवनी में यहां की बातें लिखी हैं। अभी हाल में मुंगेर के आर्यसमाजी महाशय डा० कार्तिक प्रसाद ने उस स्थान को खरीद कर यहां दयानन्द कुटी नाम का एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया है। मुंगेर में आर्यसमाज की स्थापना सन् १८९७ ई० में हुई। पीछे जिले के अन्दर जमालपुर, खगड़िया गोगरी आदि अन्य जगहों में भी धीरे धीरे समाज की स्थापना होने लगी और बाहर के बड़े बड़े प्रचारक

जैसे आर्यमुनि स्वामी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्द आदि आने लगे। शिक्षा-प्रचार तथा अछूतोद्धार आदि के कार्य मे आर्यसमाज का विशेष हाथ था।

मुगेर मे थ्योसोफिकल सूसाइटी का भी कार्य पहले बहुत दिनों तक होता रहा। बाबू छेदीप्रसाद चौधरी और पं० हरिमोहन मिश्र इसके प्रमुख सदस्य थे। बाबू छेदीप्रसाद चौधरी सन् १८९५ ई० से ही यहाँ वकालत कर रहे थे, और सार्वजनिक कार्य ये बहुत दिलचस्पी रखते थे। पं० श्रीकृष्ण मिश्र के पिता पं० हरिमोहन मिश्र एक सिरिस्तेदार थे और सरकारी नौकरी करते हुए भी सामाजिक कार्यो मे भाग लिया करते थे।

१८५७ ई० के विद्रोह के समय मुगेर मे भी खलबली मची थी। किन्तु, यहाँ भारतीय सैनिकों के बहुत थोड़ी संख्या मे रहने से आन्दोलन आगे नही बढ सका। इसके अतिरिक्त यहाँ भागलपुर के कमिश्नर यूल ने ठीक मौके पर ५० अंगरेज सैनिको को भेज दिया और १०० अंगरेज सैनिकों को भागलपुर मे भी मुस्तैद रखा, जिससे जरूरत पड़ने पर उनसे काम लिया जा सके। इसके फलस्वरूप यहाँ कुछ नहीं हो सका। अंगरेज सैनिक गंगा के रास्ते निःशंक होकर विद्रोहियो को दबाने के लिए आगे बढ़ते रहे।

सन् १८७७ मे ही मुगेर मे शिक्षित व्यक्तियों का एक क्लब स्थापित हुआ था जिसका नाम मेरियट क्लब पड़ा। नीलकमल भट्टाचार्य, गोपालचन्द्र सेन, नेपालचन्द्र सेन, शशिभूषण चट्टोपाध्याय आदि उसके प्रमुख सदस्य थे। यह क्लब अब भी कायम है। इधर बहुत पीछे आकर यहाँ ओरिएन्ट क्लब और गैरेट क्लब भी कायम हुए।

देश-हित के लिए संगठित होकर काम करने के उद्देश्य से सन् १८८५ ई० मे, बम्बई मे अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था काँगरेस की स्थापना की गयी। इसके कुछ वर्ष पहले से कलकत्ता, बम्बई, पूना, मद्रास आदि मे स्थानीय सस्थाएँ थी जिनके नाम की छाया मे कुछ लोग काम किया करते थे। काँगरेस का द्वितीय अधिवेशन अगले वर्ष सन् १८८६ ई० मे कलकत्ते मे हुआ। उस समय से विहार के प्रतिनिधि भी उसमे सम्मिलित होने लगे। उन्नीसवी सदी के अन्त मे गोपालचन्द्र सेन, ताराभूषण बनर्जी, भूपालचन्द्र मजूमदार, छेदीप्रसाद चौधरी, जगन्नाथप्रसाद आदि मुगेर के शिक्षित समाज मे अग्रगण्य व्यक्ति थे। सार्वजनिक कार्यो मे ये लोग दिलचस्पी रखते थे और कॉगरेस के साथ भी इनकी सहानुभूति थी। सम्भव है, इनमे से कुछ लोग उन दिनो काँगरेस के अधिवेशन मे भी सम्मिलित होते रहे हो।

सन् १८९७ ई० मे महारानी विक्टोरिया की हीरक-जयन्ती के उपलक्ष में मुगेर मे एक कालेज की स्थापना हुई जिसमे आई० ए० तक की पढाई होने लगी। इस कालेज के प्रथम आचार्य्य (प्रिन्सिपल) वैद्यनाथ बसु हुए जिन्होने बंगाल के सुप्रसिद्ध व्यक्ति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को कलकत्ते के मेट्रोपोलिटन कालेज के संस्थापन मे सहयोग दिया था और जो उक्त कालेज के प्रिन्सिपल भी रहे थे। उनके पुत्र हेमचन्द्र वसु एक अच्छे विद्वान और मुगेर के नामी वकील हुए। इस कालेज मे अब बी० ए० तक की पढ़ाई होती है।

पहले बिहार, बंगाल, आसाम और उड़ीसा मिलाकर एक प्रान्त था जिसे लोग बंगाल कहते थे। इस बंगाल प्रांत के राजनीतिक कान्फ्रेंस का वार्षिक अधिवेशन कुछ वर्षों से होता चला आ रहा था। १९०१ ई०में इसका अधिवेशन भागलपुर में हुआ जिसमें माननीय गोपालकृष्ण गोखले भी आये थे। स्वागताध्यक्ष थे भागलपुर के सुप्रसिद्ध नेता स्व० दीपनारायण सिंह, जो ६ साल बाद इस कान्फ्रेंस के सभापति भी हुए। भागलपुर अधिवेशन में मुंगेर के भी कई व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। बाबू तेजेश्वर प्रसाद, जो उस समय विद्यार्थी अवस्था में थे, इस कान्फ्रेन्स में शरीक हुए थे।

उन दिनो मुंगेर जिले के सार्वजनिक कार्यों में नरम दल के व्यक्तियो में गोगरी के रायबहादुर लक्ष्मीप्रसाद सिन्हा, मुंगेर के राजा शिवनन्दन प्रसाद और खाँ बहादुर महम्मद यहिया सर्वप्रमुख व्यक्ति थे। राय बहादुर लक्ष्मीप्रसाद सिन्हा, सन् १९०८ ई० से लेकर अठारह वर्षों तक, जिला बोर्ड के वाइस चेयरमैन के पद पर कायम रहे। उसी प्रकार राजा शिवनन्दन प्रसाद, मुंगेर म्युनिसिपैलिटी के बहुत वर्षों तक वाइसचेयरमैन बने रहे। इन दोनो सभाओं के चेयरमैन का पद तो नियमानुसार जिला मजिस्ट्रेट के लिए सुरक्षित रहता था। पीछे जब भारत सरकार की कौंसिल आफ स्टेट और सेन्ट्रल एसेम्बली तथा प्रान्तीय सरकार की कौंसिल का चुनाव आरम्भ हुआ तो इस जिले मे यही लोग पहले पहल सदस्य चुने गये।

सन् १९०५ ई० में, बंगभंग आन्दोलन आरम्भ होने पर, मुंगेर ने भी उसमें पूरा योग दिया। सन् १९०६ ई० मे सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जो, कांग्रेस की स्थापना के पहले से ही भारत के एक अग्रगण्य नेता थे और सार्वजनिक कार्यों में सक्रिय भाग लेते थे, मुंगेर बुलाये गये और बनैली राज्य के अहाते में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमे उनका भाषण हुआ। मुंगेर जिले के साथ उनका पुराना सम्बन्ध था। बारह वर्ष पहले, सन् १८९४ ई० में, वह सिमलतला में बहुत दिनो तक सपरिवार रह चुके थे। उनके मुंगेर बुलाने में गोपालचन्द्र सोम, ताराभूषण बनर्जी और भूपालचन्द्र मजूमदार का विशेष हाथ था। सुरेन्द्रनाथ-बनर्जी के भाषण का लोगों पर खासा प्रभाव पड़ा और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी प्रचार का काम चल पड़ा। इस आन्दोलन में उपर्युक्त व्यक्तियो के अतिरिक्त छेदीप्रसाद चौधरी, परमेश्वर-प्रसाद मोख्तार, कमलाप्रसाद मोख्तार आदि ने भी भाग लिया था। विद्यार्थीगण भी इस आन्दोलन में सम्मिलित थे। इनमें प्रमुख आज के बिहार प्रान्त के प्रधान मन्त्री श्रीकृष्ण सिंह, श्री तेजेश्वर प्रसाद, श्री राधिका प्रसाद, श्री रामकिशोर सिंह, श्री रामप्रसाद जी आदि थे। श्री बाबू के बड़े भाई स्व० देवकीनन्दन सिंह मोख्तार भी उसमें सम्मिलित थे। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की सभा में, उनके अङ्गरेजी भाषण का हिन्दी अनुवाद का काम, इन्होंने ही किया था।

इस समय बंगाल में क्रान्तिकारी दल का संगठन बहुत बढ़ रहा था और उसका प्रभाव बिहार पर भी था। यहाँ भी उस दल के बहुत से लोग आ रहे थे और क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचारकर लोगों को इस दल में सम्मिलित कर रहे थे। विद्यार्थी-समाज के बीच उनका काम विशेष रूप से होता था। ऐसे ही

एक शिक्षक के प्रभाव में आकर विद्यार्थी श्रीकृष्ण सिंहजी भी इस दल में कुछ दिनों के लिए आ गये थे, और उन्होंने गंगा मे पैठकर मातृभूमि की सेवा की शपथ ली थी।

इन्हीं दिनों पूना मे माननीय गोखले ने सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी (भारत सेवक-संघ) की स्थापना की। उनकी इच्छा थी कि विहार के कुछ सुयोग्य नवयुवक इसमे सम्मिलित किये जायें। उन्होने इस सम्वन्ध मे, उस समय के एक प्रमुख विहारी नेता श्री परमेश्वर लाल वैरिस्टर से बाते की। श्री परमेश्वर लाल ने इस सम्वन्ध मे उनका ध्यान श्री राजेन्द्र प्रसाद और मुंगेर के वावू श्रीकृष्ण प्रसाद की ओर दिलाया। ये दोनों महानुभाव अपने समय के प्रतिभावान विद्यार्थी थे और कलकत्ते में वकालत का तैयारी कर रहे थे। विहारी छात्र-सम्मेलन मे विशेष भाग लेने के कारण इन्हे वहुत लोग जान गये थे। ये लोग गोखलेजी से कलकत्ते मे मिले। उन्होने देश-सेवा के हेतु 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' मे सम्मिलित होने के लिए इनसे आग्रह किया। इसमे शामिल होनेवालो को, अपनी जीविका-मात्र के लिए छोटी-सी रकम लेकर, आजीवन देश-सेवा करने का व्रत लेना पड़ता था। वहुत सोच-विचार के वाद देशरत्न श्री-राजेन्द्र प्रसादजी ने अपने घरवालो के दवाव के कारण इसमे सम्मिलित होने में असमर्थता प्रगट कर दी। परन्तु, श्रीकृष्ण प्रसाद ने पूना जाकर वहाँ की स्थिति का अध्ययन करना चाहा। वे कुछ दिन तक वहाँ जाकर रहे भी। परन्तु, अन्त मे उन्होंने भी यही निश्चय किया कि वे सोसाइटी मे सम्मिलित नही हो सकेंगे। यह सन् १९१० की वात है। श्रीकृष्ण प्रसादजी वहाँ से लौट तो आये, पर देश-सेवा के कार्य मे यथासाध्य बराबर लगे रहे। सन् १९२१ ई० मे उन्होने 'देश-सेवक' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला था।

विहारी छात्र-सम्मेलन की स्थापना सन १९०६ ई० मे हुई थी और उसका अधिवेशन प्रति वर्ष निश्चित रूप से हुआ करता था। देश के बड़े-बड़े नेता उसके सभापति होते थे। जगह-जगह उसकी शाखाएँ थी। इन शाखाओं मे लेख पढ़े जाते, भाषण होते और खेलकूद आदि का प्रवन्ध रहता था। यह हिन्दुस्तान मे अपने ढंग की एक ही संस्था थी। सब लोग वड़े उत्साह से इसमे भाग लिया करते थे। यह उस समय का एक वड़ा सार्वजनिक कार्य हो गया था। मुगेर जिले मे भी विहारी छात्र-सम्मेलन की शाखाएँ थी और यहाँ खूब काम हुआ करता था। सन् १९१३ ई० मे इस सम्मेलन का १३ वाँ अधिवेशन मुगेर में ही हुआ। देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद जी उसके सभापति थे और विहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह जी के एक वड़े भाई श्री राधिका प्रसाद सिंह, जो उस समय वकालत पढ़ रहे थे, स्वागताध्यक्ष। उस समय पटना युनिवर्सिटी कायम की जा रही थी। उसकी जो रूप-रेखा तैयार हो रही थी, वह इतनी बुरी थी कि लोगों को उसका घोर विरोध करना पड़ा था। इस बार के छात्र-सम्मेलन का यह खास विषय हो गया था। प्रवल विरोध के फलस्वरूप युनिवर्सिटी के स्वरूप में वहुत कुछ-सुधार हुआ।

सन् १९१४ ई० मे, मुगेर मे स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का आगमन हुआ। अमेरिका से लौटने के बाद उन्होंने देश-भर का दौरा किया था। उस समय उनकी पुस्तको का खूब प्रचार हो रहा था और वे बड़े ही लोकप्रिय नेता माने जाते थे। उन्होंने देहातों का भी दौरा किया और बेगूसराय, मंझौल आदि कई

स्थानों पर गये। गाँवों में प्रवेशकर काम करनेवाले वे पहले बड़े नेता थे। उनके प्रचार का लोगों पर खूब प्रभाव पड़ा। पीछे सन् १९२५-२६ ई० में भी वे मुंगेर आये तथा इसके कई थानाओं जैसे—बेगूसराय, मझौल, खगडिया, गोगरी, सूर्यगढा आदि में भी घूमते रहे।

बिहार प्रांत सन् १९११ ई० में अलग हुआ। किंतु, काँगरेस ने इसे सन्-१९०८ से ही अलग प्रान्त मान लिया था, और तभी से बिहार प्रांतीय राजनीतिक कान्फ़ेन्स भी होने लगा था। उसका एक वार्षिक अधिवेशन, सन् १९१७ या १८ में मुंगेर में हुआ। खाँ बहादुर नवाब सफ़राज हुसैन खाँ इसके सभापति थे। प्रांत के श्री सच्चिदानन्द सिंह आदि कई प्रमुख व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए थे। स्वागताध्यक्ष थे बाबू श्रीकृष्ण प्रसाद के पिता श्री जगन्नाथ प्रसाद, जो उस समय यहाँ के वयोवृद्ध वकील और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। इनके कई वर्ष पहले एक स्थानीय सार्वजनिक संस्था, 'पिपुल्स एसोसिएसन' कायम हुआ था, जिसमें बाबू तजेश्वर प्रसाद, बाबू मुरलीधर आदि प्रमुख भाग लिया करते थे।

बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह मुंगेर में जब से वकालत करने लगे, उन्होंने अपना अधिकांश समय सार्वजनिक कार्य में ही लगाया। विद्यार्थी समाज के बीच उनका बड़ा मान था। १९१७ ई० में श्रीमती एनीबेसेन्ट और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का होमरूल आन्दोलन बहुत जोरों से चल पड़ा था। बाबू श्रीकृष्ण सिंह अपने को गरम दल के नेता, लोकमान्य तिलक के अनुयायी मानते थे। जिले के देहातों में भ्रमण करना उन्होंने उसी समय से आरम्भ कर दिया था, और स्वराज्य का सन्देश लोगों को सुनाने लग गये थे। वह सन् १९१७ ई० में गोगरी थाने के भभरा गाँव के किसान-सम्मेलन में गये थे। वहाँ उस समय बाहर से स्वामी विद्यानन्द का भी आगमन हुआ था। सन् १९१८ ई० में श्री अर्जुन मिश्र के अनुरोध पर श्री बाबू गोगरी, जमालपुर की एक सार्वजनिक सभा में भी भाषण के लिए पहुँचे थे। इनके अतिरिक्त श्री तेजेश्वर प्रसाद वकील, श्री राधिका प्रसाद वकील और परमेश्वरी प्रसाद मोख्तार भी होमरूल आन्दोलन से सम्बन्ध रखते थे। तेजेश्वर बाबू और परमेश्वरी बाबू सन् १९१७ ई० के कलकत्ता काँगरेस में भी सम्मिलित हुए थे। श्रीमती एनीबेसेन्ट कांगरेस की सभानेत्री थीं। होमरूल आन्दोलन के समय सरकार ने जोरों से दमन शुरू कर दिया था। बहुत जगहों से गिरफ्तारियाँ हुई थीं। यह जिला भी अछूता नहीं रहा। गोगरी थाने के रामा ग्रामवासी श्री अभयनाथ मिश्र, भागलपुर के एक मारवाड़ी हाइस्कूल में शिक्षक का काम करते समय, कई महीनों के लिए गिरफ्तार कर लिए गये थे। पीछे उन्हें घर पर नजरबन्द रखा गया और थाने में उन्हें हाजिरी देती रहनी पड़ी। गोगरी थाना दूर पड़ने के कारण पीछे उन्हें भागलपुर के सुलतानगंज थाने में हाजिरी देने की इजाजत मिली। इसी प्रकार तेघड़ा थाने के कार्यकर्त्ता श्री मानेलाल, पटने के किसी स्कूल में पढ़ते समय गिरफ्तार कर लिये गये थे। जेल से छूटने के बाद वे अपने ग्राम में एक वर्ष के लिए नजरबन्द रहे। इन दोनों पर क्रान्तिकारी होने का सन्देह था।

प्रान्त में अंगरेजों की नील की खेती लगभग सौ वर्षों से चली आ रही थी। मुंगेर जिले में भी

प्राय: सभी प्रमुख स्थानो मे नील पैदा किया जाता था और उसकी फैक्टरियाँ चलती थी। बेगूसराय सब-डिवीजन मे ही नील की कई दर्जन कोठियाँ थी। खगड़िया, गोगरी, खड़गपुर, तारापुर, सदर मुफस्सल, सूर्यगढ़ा आदि थानाओं मे नील बहुतायत से पैदा किया जाता था और सभी जगह इस सिलसिले मे किसान बेतरह सताये जाते थे। खड़गपुर के श्री सिहेश्वर प्रसाद चौधरी ने किसानो पर किये गये अत्याचारों के विरुद्ध पहले ही आन्दोलन खड़ा कर रखा था। सन् १९१७ ई० मे जब चम्पारण के श्री राजकुमार शुक्ल, महात्मा गांधी जी को अपने यहाँ लाने के लिए कलकत्ता पहुँचे, उस समय तारापुर थानान्तर्गत पामरा ग्रामवासी श्री सिहेश्वर चौधरी ने भी कलकत्ता जाकर महात्माजी को लाने की चेष्टा की थी। महात्माजी ने, एक ही जगह, चम्पारण जाकर जो काम किया, उसका प्रभाव सभी जगहो पर पड़ा। खड़गपुर मे नीलहे साहबो ने गौरखडीह, बरसडा, टेटिया, बम्बर, कलई, मजरा, जमुआ, कुवागढी आदि के कितने ही किसानों पर सन् १९१८ ई० मे मुकदमा चला दिया था। लगभग डेढ़-दो दर्जन व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे। किसानों की ओर से मुकदमे की पैरवी करनेवाले बाबू श्रीकृष्ण सिहजी थे। उन्होंने उस समय स्वय खड़गपुर जाकर इस सम्बन्ध मे काम किया था। पीछे देशबन्धु चित्तरजन दास बुलाये गये। उनके नही आ सकने पर उनके भाई, पटने के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर, श्री प्रफुल्लरजन (पी० आर०) दास काम करने आये थे। अन्त मे किसानों की ही जीत हुई और सब लोग छोड़ दिये गये। उन दिनों खड़गपुर मे इस बात को लेकर खूब हलचल मची हुई थी और नीलहो के अत्याचारो के सम्बन्ध मे देहाती गाने बनाए और गाए जाते थे।

उन्ही दिनों काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना के दूसरे या तीसरे वर्ष, पं० मदनमोहन मालवीयजी, विश्वविद्यालय के लिए धन-सग्रह के निमित्त मुगेर पधारे और यहाँ एक धर्मशाला मे ठहरे। यहाँ एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमे स्व० बाबू श्रीकृष्ण प्रसाद की धर्मपत्नी ने भी अपने शरीर के कुछ गहने उतार कर दिये।

भारतवर्ष मे राजनीतिक जागृति की लहर सन् १९१७ ई० से ही जोरो से उठने लगी थी। एनीबेसेन्ट और लोकमान्य तिलक का होमरूल आन्दोलन तथा महात्मा गाँधी का चम्पारण-सत्याग्रह ऐसी घटनाएँ थीं जो ब्रिटिश अधिकारियों के दिल मे बेचैनी पैदा कर रही थी। इस राष्ट्रीय जागृति को दबाने के लिए महासमर के समय सरकार के पास भारतरक्षा कानून मौजूद था। पर वह युद्ध के बाद छः महीना तक ही चालू रह सकता था। सन् १९१८ ई० के नवम्बर मे युद्ध समाप्त हो चुकने पर, सरकार आगे दमन आसानी से जारी रखने के लिए नया कानून बनाने की तैयारी करने लगी थी। इस विषय पर विचार करने के लिए सिडनी रौलेट के अधीन एक कमिटी नियुक्त की गई। उसने सिफारिश की कि षड्यन्त्रकारियो को उपद्रव करने से रोकने के लिए सरकार को वे सब अधिकार दिये जायँ जो युद्ध के समय उसे प्राप्त थे। इसी सम्बन्ध का कनून रौलेट कानून के नाम से कुख्यात हुआ। महात्मा गाँधी तथा देश के अन्य नेता इस दमनकारी कानून के पास हो जाने से बड़े चिन्तित हुए। महात्मा गाँधी ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह

करने का निश्चय किया। ६ अप्रैल सन् १९१९ ई० को इस कानून के विरोध में, सारे देश में हड़ताल करने, उपवास रखने, प्रार्थना करने और जलूस निकाल कर सभा करने की घोषणा की गई। तदनुसार मुंगेर जिले में मुंगेर, जमुई, बेगूसराय तथा अन्य प्रमुख स्थानों में उपर्युक्त प्रोग्राम के अनुसार कारंरवाइयाँ हुईं। इस अवसर पर देश के कई बड़े-बड़े शहरों में—जैसे कलकत्ता, लाहौर, दिल्ली, अमृतसर आदि में गोलियाँ चली और बहुत लोग मारे गए। अमृतसर के जालियाँवाला बाग में तो हजारों आदमी एक साथ गोली से भून दिये गए थे।

असहयोग-काल

पंजाब में जो यह हत्याकांड मचा, फिर जंगी कानून के नाम पर वहाँ जो जोर-जुल्म हुए तथा स्त्री-पुरुषों की बेइज्जतियाँ की गईं, उनकी खबरों से देश में खलबली मच गई। उधर तुर्की के साथ अंगरेजों के अन्यायपूर्ण व्यवहार से मुसलमानों में सनसनी फैली हुई थी। मुसलमानों ने, खिलाफत सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर आन्दोलन चलाने के लिए, खिलाफत कमिटियाँ कायम कीं। सन् १९२० के प्रारम्भ में ही मौलाना शौकत अली ने बिहार के कई स्थानों का भ्रमण किया। वह इस दौरे में मुंगेर भी आये और यहाँ टूटी मस्जिद में उनका भाषण हुआ। उसी समय, यहाँ के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर शाह मुहम्मद जुब्बैर साहब ने, समय आने पर, अपनी बैरिस्टरी छोड़ने की घोषणा की थी। उसी साल अगस्त में, भागलपुर में, प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें मुंगेर के भी लोग अच्छी संख्या में जुटे। उसमें असहयोग का प्रस्ताव पास किया गया। उसके एक महीना बाद ही कलकत्ते में, लाला लाजपत राय के सभापतित्व में, कांगरेस का विशेष अधिवेशन बड़े जोश खरोश के साथ हुआ। वहाँ कांगरेस का उद्देश्य शान्तिमय और जायज उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना घोषित किया गया। महात्मा गांधी के नेतृत्व में देशव्यापी असहयोग-आन्दोलन छेड़ने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। कांगरेस का संगठन मजबूत कर, उसकी शाखा प्रशाखाएँ खोलने का निश्चय किया गया। अब कांगरेस और खिलाफत कमिटियाँ, दोनों मिलकर काम करने लगीं। महात्मा गाँधी ने देशभर का दौरा किया। मौलाना शौकत अली और मौलाना महम्मद अली भी इस दौरे में उनके साथ थे। दिसम्बर सन् १९२० ई० में महात्मा गांधी और शौकत अली मुंगेर पहुँचे। उनके यहाँ आने की खबर बिजली की तरह जिलेभर में फैल गई। गाँव गाँव से लोग, उनके दर्शन करने तथा उनके भाषण सुनने को टूट पड़े। कष्टहरणघाट के मैदान में सभा का प्रबन्ध किया गया। वहाँ लोगों का इतना रेल पेल मचा कि उनके भाषण भी पूरे नहीं हो सके। फिर सन्ध्या समय, जुब्बैर साहब की कोठी पर विद्यार्थियों के बीच, महात्मा गांधी और शौकत अली के भाषण हुए। उन्होंने विद्यार्थियों को असहयोग-आन्दोलन में कूद पड़ने की सलाह दी। महात्मा गांधी जी ने मकसूदपुर महल्ले में जाकर वहाँ के सज्जादा नशीन उमर साहब से भी भेंट की।

सन् १९२० ई० के दिसम्बर में कांगरेस का साधारण अधिवेशन चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य के सभापतित्व में, नागपुर में हुआ। उसमें थाने-थाने से लोग प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। उसमें
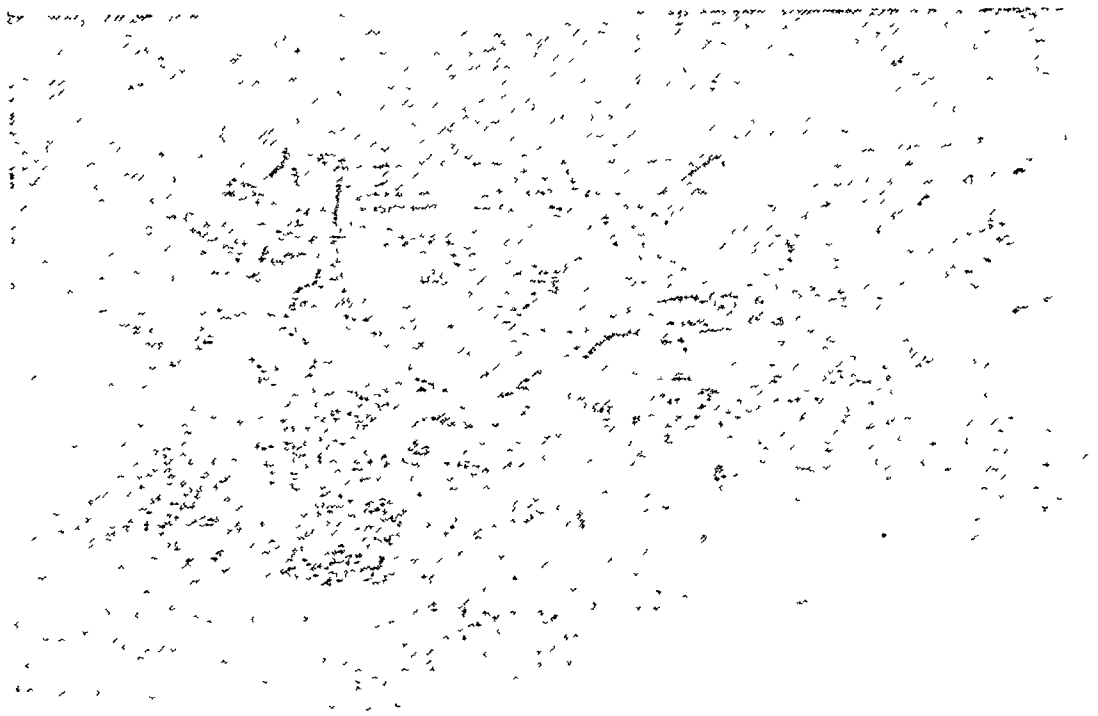
मुंगेर, श्री शृंगीस्थान के समीपस्थ दृश्य
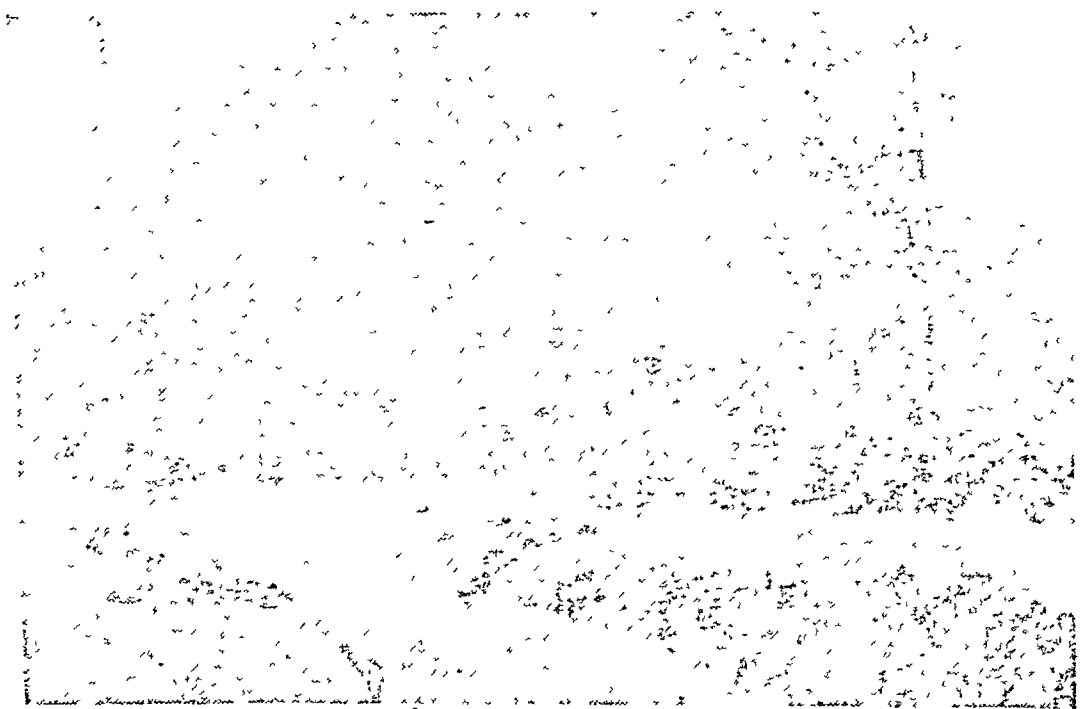
मुंगेर, जिलान्तर्गत पहाड़ी स्थान का एक दृश्य

श्री शृंगीस्थान, मुंगेर
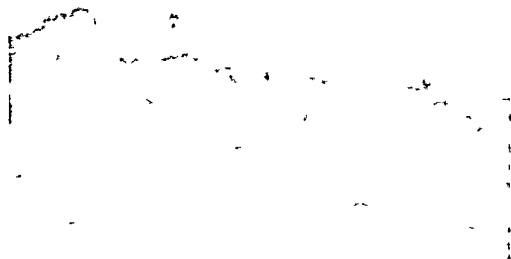
असहयोग का प्रस्ताव फिर दुहराया गया। अब क्या था? देश में असहयोग की आँधी वह चली।। बड़े-बड़े लोग सरकारी उपाधियाँ छोड़ने लगे। वैरिस्टरों, वकीलों और मुख्तारो ने कचहरियों का परित्याग किया। विद्यार्थी भी स्कूल, कालेज छोड़ने लगे। राष्ट्रीय विद्यापीठो की स्थापना होने लगी। नये विधान के अनुसार जो राष्ट्रवादी सरकारी कौंसिलों और एसेम्वली मे जाने की तैयारी कर रहे थे, उन्होने उसका परित्याग किया। गाँव-गाँव मे पंचायत कायम होने लगी। कचहरियों मे न जाकर, वहीं मुकदमों का फैसला होने लगा। विदेशी वस्त्र एव अन्य विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार जोरो से आरम्भ हुआ। चरखे करघे के प्रचलन होने लगे। विदेशी वस्त्रो की होलियाँ जलाई जाने लगी। हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई की तरह रहने लगे। अछूतोद्धार का कार्य भी जारी हुआ। इस प्रकार सारे देश का कायापलट हो चला। उस समय के लोगो की उमंग और उत्साह देखते ही बनता था। कुछ ही दिनों मे घर-घर स्वराज्य का सन्देश पहुँच गया। मुगेर जिला भी इस कार्य मे किसी जिला से पीछा नही रहा; वल्कि अपने पुराने गौरव के अनुरूप ही इसने देश के स्वतन्त्रता सग्राम मे पूरा भाग लिया।

शाह महम्मद जुव्वैर साहव ने अपनी चलती वैरिस्टरी पर लात मारी। वावू श्रीकृष्ण सिंह जी ने भी अपनी वकालत को तिलांजलि दे दी। वावू तेजेश्वर प्रसाद और वावू राधिका प्रसाद ने भी वकालत छोड़कर सदा के लिए आन्दोलन का साथ दिया। इसी समय, शहर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति स्व० धर्म-नारायण सिंह भी काँगरेस मे सम्मिलित हुए। जिले भर मे जोर-शोर से काँगरेस का काम चलने लगा। जुव्वैर साहव की कोठी मे ही जिला कॉगरेस कमिटी का दफ्तर खुला और वे ही इसके प्रथम सभापति वनाये गए। तेजेश्वर वावू ने मन्त्रित्व का कार्य सँभाला। वावू श्रीकृष्ण सिंह ने पदाधिकार के भार से मुक्त रह कर, जिले भर का दौरा किया और जिले भर के संगठन की जड़ को मजवूत किया। टूटी मस्जिद के इमाम अली अजीम साहव भी काँगरेस-कार्य मे जुट गये थे। मुसलमानो के वीच उनकी वड़ी कदर थी। पर कुछ ही दिनो के वाद उनकी मृत्यु हो गई। वावू वलदेव प्रसाद सिंह, जो मुख्तारी परीक्षा छोड़कर आये थे, कार्यालय का संचालन करने लगे। शहर के कुछ और हिन्दू-मुसलमान भी इस आन्दोलन मे शरीक हुए, जिनमे नवाव मियाँ, मौलवी जफीरुद्दीन, श्री रामेश्वर मिस्त्री, मियां महम्मद इशाक, श्री प्यारे-महतो आदि मुख्य थे। वकीलो मे वावू नेमधारी सिंह, पं० श्रीकृष्ण मिश्र, वावू हरिशकर दास आदि की सहानुभूति आरम्भ से ही रही।

गोगरी थाने मे शिक्षा का प्रचार अन्य अनेक थानो से कुछ अधिक था। इसलिए यहाँ इस आन्दोलन ने कुछ पहले विस्तार पाया। सन् १९०८ ई० मे राका निवासी श्री अभयनाथ मिश्र ने, जो पीछे गिरफ्तार और नजरवन्द भी हुए थे, (और अव संन्यास ग्रहण कर हरिद्वार मे निवास करते हैं) अपने इलाके मे किसान-आन्दोलन चलाया था। सन् १९११ ई० मे यहाँ वावू माधव प्रसाद जी, स्कूल सव इन्स-पेक्टर के प्रयत्न से हरिकीर्तन-समाज की स्थापना हुई। इसका प्रचार भागलपुर और पूर्णियाँ जिले की कई जगहों मे भी हुआ। एक-दो वर्ष वाद यहाँ से 'भक्ति-प्रचारक' नाम की एक मासिक पत्रिका निकली, जो

कई साल तक चलती रही। यहाँ से भगवद्‌भक्ति-सम्बन्धी कई छोटी-बड़ी पुस्तकें भी निकलीं। सन् १९१४ ई० में, गोगरी में, स्थानीय श्री गोकुल प्रसाद और गिरनिया के प० मोहित मिश्र के प्रयत्न से आर्यसमाज की स्थापना हुई। इस सिलसिले में, बाहर से श्री राजाराम शास्त्री आदि अनेक बाहरी विद्वान, वहाँ आते रहे और उनके शास्त्रार्थ और भाषण होते रहे। बाबू लक्ष्मी प्रसाद सिन्हा के दो लड़के, श्री मुनेश्वर प्रसाद और श्री रमेश प्रसाद, विलायत में बैरिस्टर होकर आये थे, अतएव उनके परिवार ने छूतछात को पहले ही दूर भगा दिया था। उन दिनों विदेश जाकर शिक्षा पाना हिंदू-समाज के लिए बहुत बड़ी क्रान्ति थी। जिले के अन्दर इस तरह का दूसरा कोई परिवार तो था ही नहीं। प्रान्त के अन्दर भी ऐसे परिवार उंग-लियों पर ही गिने जा सकते थे। आर्यसमाजी प० मोहित मिश्र को सन् १९१९ ई० में, गाँव वालों ने घर में आग लगाकर, गाँव से भगा दिया था, और तब से वे झोपड़ी बनाकर बाहर ही रहते थे। फिर भी वह समाज के सामने झुकने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने अपनी कन्या कुमारी विद्याधरी को पढ़ने के लिए गुरुकुल कांगड़ी भेजा था, जिसकी मृत्यु वहीं हुई। समाज-सुधार की इन सब बातों का लोगों पर खासा प्रभाव पड़ा और सार्वजनिक कार्य के लिए यहाँ एक सुंदर क्षेत्र तैयार हो गया। असहयोग-काल में प०—मोहित मिश्र के सुपुत्र श्री सुरेन्द्र चन्द्र मिश्र, जिले के एक प्रमुख कार्यकर्ता हुए। वह पटना युनिवर्सिटी के एक प्रतिभावान विद्यार्थी थे और आई० एस-सी० की टेस्ट परीक्षा देकर असहयोग में सम्मिलित हुए थे। वह जैसे प्रतिभावान थे, वैसे ही धुन के भी पक्के थे। अतएव उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर पीछे गोगरी थाने के सैकड़ों युवक कांग्रेस में आ जुटे। जोरों से काम होने लगा। इनके फुफेरे भाई प० रामानुग्रह झा, पहले ही वहाँ राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना कर चुके थे तथा गिरनिया के प० दशरथ झा और प० चन्द्रधर झा, जो पहले से ही सार्वजनिक कार्यों में दिलचस्पी रखते थे, कांग्रेस कार्य में लग गये थे। पीछे कैंयाचक के श्री सूर्यनारायण शर्मा भी सम्मिलित हुए। एक प्रतिष्ठित होमियोपैथिक डाक्टर केशवप्रसाद ने भी साथ दिया। मुरकीपुर के हाफिज अब्दुला साहब भी खिलाफत के नाम पर शरीक हुए। राष्ट्रीय विद्यालय और आश्रम, जिसकी चर्चा आगे होगी, धीरे-धीरे यहाँ के कार्य का केन्द्र हो गया और उसके शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के सहयोग से यहाँ का काम खूब आगे बढ़ा। थाना कांग्रेस-कमिटी भी कायम हुई, जिसकी बैठक प्रतिमास भिन्न भिन्न गाँवों में हुआ करती थी। बैठक का नियन्त्रण जिला करता था और मत लेकर निश्चय किया जाता था कि आगामी बैठक कहाँ होगी।

चौथम का इलाका, उस समय गोगरी थाने का एक पिछड़ा हुआ इलाका था। फिर भी दो चार कार्यकर्ता और स्वयंसेवक यहाँ ऐसे थे, जो जरूरत पड़ने पर काँग्रेस-कार्य में साथ देते थे। ये थे लालपुर के श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह और श्री जानकीप्रसाद सिंह। डुमरी सात्तरखा के श्री रामचरित्र सिंह और श्री पुनीतलाल सिंह तथा मलया के रामदेव आर्य।

बख्तियारपुर थाना भी एक पिछड़ा हुआ इलाका था। वहाँ शिक्षा की कमी थी, पर इससे भी बढ़कर बात यह थी कि वहाँ एक जबरदस्त मुसलमान घराने की जमींदारी थी, जिसे लोग चौधरी घराने के

नाम से जानते थे। ये लोग अंगरेजों के खुशामदी थे और अपने रैयतों को इन लोगों ने खूब कुचल रखा था। इनका इतना बड़ा आतंक था कि किसी की हिम्मत नही होती थी कि इनके या अंगरेजों के खिलाफ यहाँ कुछ बोले। असहयोग के आरम्भ मे एक बार शाह महम्मद जुव्वैर तथा बाबू श्री कृष्ण सिंह जी यहाँ पहुँचे और उन्होंने एक सभा मे भाषण देना चाहा। पर चौधरी साहब के कुचक्र से वहाँ सभा नही हो सकी और उन्हे चुपचाप लौट ही जाना पड़ा।

खगड़िया एक जाग्रत थाना था। यहाँ बाबू जयगोविन्द लाल आदि कुछ सज्जन सन् १९०८-९ ई० से ही विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और स्वदेशी वस्त्र का प्रचार कर रहे थे। उनलोगों ने स्वदेशी कपड़े की एक दूकान भी खोल रखी थी। सन् १९१४ ई० मे यहाँ आर्यसमाज की स्थापना हुई। समाज-सुधार का कुछ काम चला। स्कूल आदि खोलकर शिक्षा-प्रचार का काम भी ये लोग करने लगे। पुस्तकालयो की भी स्थापना की। उपदेशकों और वक्ता लोगों को भी, समय-समय पर ये लोग बुलाते रहे। पर, इनमें अगरेजी हुकूमत का बहुत भय था। एक बार जब यहाँ स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को बुलाने की राय हुई, तो सबने विरोध किया। यहाँ के एक आर्यसमाजी बाबू श्यामलाल ने अपनी बहुत बड़ी सम्पत्ति एक स्कूल को दे दी थी। असहयोग के समय कुछ लोगो के आग्रह से वही राष्ट्रीय-विद्यालय मे बदल दिया गया। यहाँ के सबसे बड़े नेता बाबू नेमधारी सिंह थे, जो वकालत करते हुए भी कॉंगरेस के कामो मे साथ देते थे। एक साल बाद तो सालभर के लिए उन्होने वकालत करना स्थगित कर दिया और पूरा समय देकर काम करते रहे।

बेगूसराय बहुत दिनो से सब-डिवीजन का सदर आफिस था। देशमे असहयोग आन्दोलन छिड़ने पर उस समय के एक प्रमुख वकील श्री सतीशचन्द्र बोस, अपनी वकालत छोड़कर कॉंगरेस-कार्य मे लग पड़े। एक सब-डिवीजनल कॉंगरेस कमिटी कायम की गई। सभापति यहाँ के वयोवृद्ध वकील बाबू मुसाहब लाल बनाए गए। सतीश बाबू मन्त्री बने। कुछ दिनों के बाद, बाबू मुसाहब लाल के हटने पर, सतीश बाबू ही सभापति हुए और बदलपुरा के श्री यमुना प्रसाद सिंह मन्त्री। इन लोगोने कोई दस बारह साल तक इन पदों पर काम किया। यमुना बाबू अपने ग्राम बदलपुरा मे भी एक छोटा-सा आश्रम चलाते थे। यहाँ चरखे-करघ का प्रबन्ध था और गरीबो मे दवा भी बाँटी जाती थी। थाने मे इनके साथ काम करनेवालो मे इटवा के श्री अशर्फी कुवर, रामदीरी के श्री वैद्यनाथ प्रसाद सिंह और श्री कपिलदेवनारायण सिंह तथा सिंहिया के श्री सिंहेश्वरप्रसाद सिंह थे। श्री अशर्फी कुवर स्वयसेवक-दलके नायक थे। श्री वैद्यनाथप्रसाद-सिंह एक सम्पन्न व्यक्ति थे और कॉंगरेस को आर्थिक सहायता पहुँचाया करते थे। श्री कपिलदेवनारायण-सिंह ने मैट्रिक मे पढ़ते समय असहयोग किया था। तेघड़ा थाने के श्री सोनेलाल और श्री रघुनाथ ब्रह्मचारी ने भी बेगूसराय के कॉंगरेस-कार्य को आगे बढ़ाने मे बहुत प्रमुख भाग लिया। श्री यदुनन्दनप्रसाद सिंह और श्री रामाधीन सिंह ने राष्ट्रीय-विद्यालय की सहायता मे यथेष्ट शक्ति लगाई। ये दोनों ग्रैजुएट थे और वहाँ के हाई स्कूल के शिक्षक-पद से असहयोग कर यहाँ आये थे।

तेघड़ा थाने मे कॉंगरेस-कार्य का आरम्भ दुलारपुर के ब्रह्मचारी रघुनाथ प्रसाद वर्मा ने किया। वह

हिन्दू-विश्वविद्यालय से आई० ए० की पढाई छोडकर आये थे। विद्यार्थी-जीवन से ही सार्वजनिक कार्यों में उनकी दिलचस्पी थी। कार्यक्षेत्र में उतरने पर तो उन्होंने बहुत लगन के साथ काम किया और अनेक बार जेल भी गये। चमथा के कार्यकर्त्ता रामचरण भगत, बछवाडा के दामोदर शर्मा तथा बीहट के श्री बलदेव-सिंह और श्री नथुनी सिंह थे। बाबू नथुनी सिंह, सन् १९२४ ई० मे, बिहार विद्यापीठ में पढने चले गए और तब से व वहीं काम करते रहे। इस थाने के कुछ सुयोग्य कार्यकर्त्ता प्रारम्भ में बहुत दिनो तक बाहर काय करते रहे। बीहट के बाबू रामचरित्र सिंह (इस समय के माननीय सिंचाई मन्त्री) मुजफ्फरपुर कालेज के अध्यापक-पद को त्यागकर बिहार विद्यापीठ, पटना में अध्यापन का कार्य करने लगे थे और ७ ८ वर्षो तक काय करने के बाद (उनका विज्ञान-विभाग बन्द हो जाने पर) वहा से चले आए। फिर, अपने इलाके के कांगरेस-काय में भाग लेने लगे। रसीदपुर के बाबू मिट्ठन चौधरी सन् १९१७ ई० से ही कांगरेस के अधिवेशनो मे सम्मिलित हुआ करते थे। असहयोग आन्दोलन के छिडते ही उन्होंने मुजफ्फरपुर कालेज से, आई० ए० में पढते समय असहयोग कर दिया। वह ७-८ मास तक दरभगा जिले के नेता धरणी बाबू के साथ, दलसिंहसराय मे काय करते रहे। इसके बाद वह अपने थाने में कार्य करने लगे, परन्तु सन् १९२३में वह फिर पढने चले गए। महन्त सियाराम दासजी प्रारम्भ मे दरभगा जिले में काय करते रहे, कुछ दिन बाद यहा आये और पीछे यहा के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता हुए।

बरियारपुर थाने म कांगरेस काय का केन्द्र मभौल रहा। वहां के श्री रामकिशोरप्रसाद सिंह उर्फ राम बाबू, बगभग आन्दोलन के समय से ही राष्ट्रीय-कार्यों में भाग लेते आये थे। बरियारपुर थाने में मभौल एक सम्पन्न और शिक्षित गांव है। राष्ट्रीय-जागरण मे भी चूंकि यह गांव अग्रसर था, इसलिए थाना कांगरेस कमीटी का दफ्तर भी यहीं खुला। रामबाबू प्रारम्भ से ही मंभौल थाना कां० क० के सभापति बने रहे। आपके सदुद्योग से सन् १९१४ ई० मे, मभौल में स्वामी सत्यदेव का आगमन हुआ। राम-बाबू के अतिरिक्त भी आस-पास के कई व्यक्ति, कांगरेस-आन्दोलन के साथ थे। इस ग्राम के श्री रामदेव-सिंह भी, जो एक अच्छे कमठ व्यक्ति हैं, आरम्भ मे ही कागरेस काय में लगे हुए थे। यहां के सम्पन्न व्यक्तियो में श्री फुलेना सिंह और श्री भागवत सिंह, आरम्भ में कुछ महीना तक कागरेस से साथ रहे, पर पीछे उससे विमुख हो गए। श्री फुलेना सिंह स्वयसेवको के नायक भी थे। इनके अतिरिक्त सिंहमा के श्री लक्ष्मी सिंह, पहसारा के श्री नृपति सिंह, गढपुरा के श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह, श्री बनारसी सिंह और श्री महावीरप्रसाद सिंह कनौसी के श्री कारी सिंह, बभनगावा के श्री रामजी सिंह, सुजानपुर के श्री नूनू चौधरी तथा दुनही के श्री महावीर सिंह भी आरम्भ से ही कागरेस-काय में लगे हुए थे।

बलिया थाने के कार्यकर्त्ता थे सदानन्दपुर के बाबू ब्रह्मदेव नारायण सिंह और भगतपुर के बाबू हृदयनारायण प्रसाद। ब्रह्मदेव बाबू जिले के कांगरेस-कार्यकर्त्ताओ में एक सम्पन्न व्यक्ति हैं। इन्होंने आई० ए० में असहयोग किया और तब से बराबर काय करते रहे। वह प्रारम्भ से ही थाना कांगरेस कमिटी के सभापति बने रहे। हां, बीच मे, सन् १९३५-३६ ई० में बाबू प्रतापनारायण सिंह सभापति हुए, जो

सन् १९२१ ई०से ही काँगरेसमे भाग लेते आ रहे थे। वावू हृदयनारायण प्रसाद कुछ दिन पहले से ही सार्व-जनिक कार्यों मे रुचि ले रहे थे। वह सन् १९१९ ई० मे स्कूल मे पढते समय ग्रीष्मावकाश मे, हिन्दी-प्रचार के उद्देश्य से मद्रास जाकर स्वामी सत्यदेव से मिले थे और श्री देवदास गाँधी के साथ ठहरे थे। एक महीना वाद वीमार पड़ जाने से व, लौट आये। परन्तु दूसरे ही साल वह लोकमान्य तिलक से मिलने के लिए पूना गए और उनके साथ वही रहना चाहा। लोकमान्य तिलक उस समय बीमार थे, इससे उन्होंने इन्हे लौट जाने की सलाह दी। उसी साल के अन्त मे असहयोग-आन्दोलन छिड़ने पर, इन्होंने मैट्रिक मे पढ़ते समय असहयोग कर दिया और तव से लेकर अभी हाल तक वहाँ की काँगरेस कमिटी के मन्त्री वने रहे। विनटोली के श्री-भूजो भगत, महात्मा गाँधी के अनन्य भक्त थे। उन्होने महात्मा गाँधी जी का एक मन्दिर वनाकर, उसमे उनकी मूर्त्ति की स्थापना की थी और नित्य नियमित रूप से उसमे पूजा-पाठ होता था। महात्मा जी के विरोध करने पर, पीछे मूर्त्ति गगा मे प्रवाहित कर दी गई और पूजा-पाठ वन्द हुआ।

खड़गपुर थाना मे भी जागृति पहले से थी। अतएव काँगरेस-आन्दोलन के छिड़ते ही वहाँ जोरों से काम होने लगा। उस समय तारापुर थाना अलग था। पर, काँगरेस का सगठन दोनो थाने को मिलाकर ही किया गया। जिले मे खड़गपुर, गोगरी और लक्खीसराय काँगरेस-संगठन में सव से आगे वढ़े हुए थाने माने जाते थे। गोगरी और खड़गपुर मे आगे कौन है, यह सव दिन एक विवादग्रस्त प्रश्न रहा। पर स्वतन्त्रता की लड़ाई के अन्त होते न होते, गोगरी इस होड़ मे पिछड़ गया, यह वात तो निर्विवाद ही है। असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ मे कुछ दिनो तक, खड़गपुर के प्रमुख कार्यकर्त्ता पं०घनश्याम मिश्र थे। वह वकालत की पढ़ाई छोड़कर खड़गपुर के राष्ट्रीय विद्यालय मे प्रधानाध्यापक का काम करने लगे थे। पर कई साल वाद ही वह फिर पढ़ने चले गए और लौटकर वकालत का काम करने लगे। गाँवों के भीतर वैठकर काम करनेवाले व्यक्तियो मे, गौरवडीह ग्रामके श्रीयुतनन्दकुमार सिंह प्रमुख थे। उस समय नन्दकुमार वावू भागलपुर कालेज की आई० ए० कक्षा के विद्यार्थी थे और वही से उन्होने असहयोग किया था। प्रारम्भ मे कई साल तक वह थाना काँगरेस कमिटी के मन्त्री थ, और सभापति थे घोरूपुर के श्री हरिप्रसाद सिंह। हरिप्रसाद वावू एक सम्पन्न व्यक्ति थे और समय देने के साथ-साथ वह काँगरेस की कुछ आर्थिक सहायता भी करते थे। खड़गपुर के कार्यकर्त्ताओ में दूसरा स्थान मिल्की के श्री वनारसी सिंह को मिला। खडगपुर वाजार के श्री मदनराम मारवाड़ी की मदद भी काँगरेस मे वरावर रहती थी। नन्दकुमार वावू के वड़े भाई श्रीयुत राम प्रसाद सिंह शिक्षा-विभाग के सव-इन्सपेक्टर के पद से इस्तीफा देकर आये थे और राष्ट्रीय विद्यालय मे कार्य करने लगे थे। वहाँ के उस समय आम कार्यकर्त्ताओं मे जवाइद के श्री वागीश्वरी प्रसाद सिंह, रतैठा के श्री अनन्त कुँवर, श्री आयोध्या कुँवर और श्री अजव लाल पाठक, लक्ष्मीपुर के श्री धीरज प्रसाद सिंह, मिल्की के श्री सहदेव सिंह, पुलुकटांड के श्री नारायण प्रसाद, तिलकाडीह के श्री रामानन्द सिंह आदि थे।

तारापुर थाने में पहले ऐसे कार्यकर्त्ता नही थे, जो अपने थाने का कार्यभार अपने ऊपर ले। इस-लिए वहाँ जो भी कार्यकर्त्ता थे, वे खड़गपुर थाने के साथ मिलकर ही काम करते थे। उस समय, इस

थाने में कार्य का मुख्य केन्द्र अमरगंज था। यहाँ एक राष्ट्रीय विद्यालय चल रहा था। यदि लोग चाहते, तो यहाँ भी कांग्रेस संगठन कायम कर सकते। यहाँ बाबू नारायण प्रसाद भगत और बाबू शम्भु नारायण-सिंह आदि अच्छे कार्यकर्ता थे। मुंगेर के राष्ट्रीय विद्यालय के मुख्याध्यापक बाबू सूर्यकुमार लाल यहीं के आरोगा ग्राम के वासी थे। खड़गपुर राष्ट्रीय विद्यालय के संस्कृत पंडित श्री दशरथ झा, यहीं के कुर्वांगढी के रहनेवाले थे। उनके छोटे भाई श्री शेषनाग झा भी एक कार्यकर्ता थे। यहाँ के ग्राम कार्यकर्ताओं में चाहफा के दीनानाथ सहाय, रहमनपुर के गोपीकृष्ण सिंह, नौगांव के ज्वाला प्रसाद सिंह और चतुर्भुज सिंह, डुमरिया के मिश्री महतो, बभनचकरा के केशवनाथ चौधरी, बलिया के सरवारू सिंह, सग्रामपुर के निवारी महतो और मुरलीपुर के श्यामसुंदर सिंह थे। हलवाराचक के बाबू वासुकीनाथ शर्मा और बनेली के बाबू जयमंगल सिंह शास्त्री, जो आज यहाँ के अग्रगण्य कार्यकर्ता हैं, उस समय राष्ट्रीय विद्यालय में पढ रहे थे। भागलपुर के श्री वासुदेव झा शास्त्री भी, जो पीछे राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करते रहे, राष्ट्रीय विद्यालय के ही विद्यार्थी थे।

जमालपुर और मुंगेर मुफस्सल थाने का काम, एक वर्ष पहले तक, बराबर साथ ही होता रहा। जमालपुर थाने का दायरा सिर्फ जमालपुर शहर भर ही है। मुफस्सल थाने का पुलिस आफिस मुंगेर शहर में है। परन्तु, इस थाने का कांग्रेस काम जमालपुर में ही आफिस रखकर होता रहा है। असहयोग के आरम्भ-काल में जमालपुर के राय यमुना प्रसाद, जिन्होंने हालही में वकालत पास की है, कांग्रेस काममें साथ देते रहे। इसके बाद वह वकालत करने लग गए। उस समय इन्दरुख के बाबू तारिणीप्रसाद सिंह ने, भागलपुर कालेज से बी०ए०में पढते समय, असहयोग कर रखा था। किन्तु, कुछ ही दिनों के बाद वह असेम्बली में दाखिल हो गए। उसी समय जिला की ओर से तेजेश्वर बाबू के भाई श्री कुलेश्वरप्रसाद जमालपुर में काम करने को भेजे गए। वह वहाँ डेढ-दो वर्षों तक रहे। इस थाने में सबसे अधिक समय और शक्ति लगा कर काम करनेवाले कमलदह के बाबू भूपनमंडल हुए। ये प्रारम्भ से लेकर अभी हाल तक, जब तक कि वह वृद्ध और असमर्थ नहीं हो गए, कांग्रेस-काम बडी ही लगन और धुन से करते रहे। उनके लडके श्री अर्जुन-मंडल अभी भी कांग्रेस-काम में लगे हुए हैं। इनके अतिरिक्त इन्दरुख के श्री सरयूप्रसाद सिंह, शिवकुंड के श्री बनारसीप्रसाद सिंह, बिन्दा दियारा के श्री सिद्धनाथ चौधरी, जमालपुर के श्री रामरक्षा झा, टीकापुर के श्री मूकर भगत आदि भी इस थाने के पुराने कांग्रेस-कार्यकर्त्ता हैं।

सूर्यगढा थाने में प्रारम्भ में ऐसे कार्यकर्त्ता नहीं हुए, जो अपने थाने का कार्य-संचालन कर सकें। जिला कांग्रेस आफिस से बाबू बलदेवप्रसाद सिंह यहाँ आते थे और भिन्न भिन्न गावों में जो दो-एक उत्साही व्यक्ति मिलते थे, उनकी सहायता से यहाँ का काम चलाया करते थे। प० कार्यानन्द शर्मा ने, जो इसी थाने के सहूर ग्राम के निवासी हैं, अपना कार्यक्षेत्र लखीसराय थाना ही बनाया। हाँ, कभी-कभी वह इस थाने में भी कार्य करते थे। कन्हैयाचक (गोगरी) के श्री रामधारी मिश्र, सूर्यगढा मिड्ल स्कूल के प्रधानाध्यापक थे, वह भी कुछ कांग्रेस-कार्य में सहायता करते थे।

लक्खीसराय, पिछड़े हुए थानों की कोटि मे होनेपर भी एक व्यक्ति की अटूट लगन के कारण काँगरेस-कार्य में, जिला के दूसरे उन्नत थानो के कक्ष मे आ गया। वह व्यक्ति थे श्री कार्यानन्द शर्मा। शर्माजी मुगेर कालेज के आइ० ए० मे पढ़ना छोड़कर लक्खीसराय आए और यहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे। इनके सतत प्रयत्न से जनसाधारण मे अच्छी जागृति आई और इन्होने अपने अनेक अच्छे सहकर्मी तैयार किए।

वड़हिया थाना, उन दिनों लक्खीसराय थाना का ही एक अग था। इस इलाके में वड़हिया और गगासराय काँगरेस-कार्य के केन्द्र थे। उस समय के कार्यकर्त्ताओं मे वड़हिया के सर्व श्री काशीप्रसाद-सिह, रामकृष्णप्रसाद सिह (उर्फ सिद्धजी) स्व० विलायतीप्रसाद सिह आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त गंगासराय के सर्व श्री मुद्रिका पाण्डेय, रामरक्षा सिह और श्रीधरजी और हृदनवीघा के श्री अश्विनीकुमार, और पिपरिया के श्री गिरिवर नारायण सिह के भी नाम उल्लेखनीय है।

शेखपुरा थाने मे मुसलमानों की संख्या अधिक है। यहाँ शिक्षा की कमी भी थी। इसलिए यहाँ आरम्भ में ऐसे कोई काँगरेस-कार्यकर्त्ता नही हुए, जो स्वतन्त्र रूप से कुछ कर सके। जिला-दफ्तर से वलदेव बाबू तथा लक्खीसराय से प० कर्यानन्द शर्मा यहाँ काँगरेस-कार्य के लिए अक्सर आया करते थे।

वरबीघा थाने की भूमि विहारकेशरी श्रीकृष्ण सिह आदि को जन्म देकर धन्य हुई अवश्य। परन्तु, इस भूमि का दुर्भाग्य ही कहिए कि अपने इन सुयोग्य सन्तानो की उचित सेवा वह स्वयं प्राप्त नही कर सकी। श्रीबाबू और देवकी बाबू का कार्यक्षेत्र बराबर बाहर ही रहा। यहाँ के दूसरे उत्साही व्यक्ति थे तेउस ग्रामवासी श्री कृष्ण मोहन प्यारे सिह, उर्फ लाला बाबू। लाला बाबू बी० एन० कालेज पटना के आई० ए० क्लास मे असहयोग कर विहार विद्यापीठ आये और कुछ दिनो वाद यहाँ से भी हटकर वह पटना जिला मे ही कार्य करते रहे। तदुपरान्त फिर पढ़ने चले गये; और अन्त मे सन् १९३० ई० मे, प्लीडरशिप परीक्षा की तैयारी करते समय, उसे छोड़कर पुनः काँगरेस मे आ गए और अपने थाने के संगठन-कार्य में लग पड़े। तब से आज तक वह बराबर काँगरेस का कार्य करते आ रहे है।

जमुई थाने ने अपने सबडिवीजन और जिले को दो ऐसे नेता प्रदान किए जो सम्भ्रान्त कुल के होते हुए भी अपने अथक परिश्रम तथा लगन और धुन के साथ सेवा की भावना लेकर जनता के वीच काम करते रहे। इनमे एक, प्रान्त के पुराने और प्रसिद्ध गिद्धौर-राज-परिवार के व्यक्ति, कुमार कालिका-प्रसाद सिंह (उर्फ हीरा जी) है। इन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय से, वी० ए० मे पढ़ते समय, असहयोग किया और अपने सबडिवीजन के अन्दर गाँव-गाँव घूमकर काँगरेस का कार्य करने लगे। इन्होने गिद्धौर के पास वंझलिया ग्राम मे एक आश्रम की स्थापना की, जो करीव चार वर्षो तक वहाँ चलता रहा। इनके वड़े भाई कुमार रणवीर सिंह की भी काँगरेस से सहानुभूति थी। कुमार कालिका सिह जी का, सरकार से असहयोग कर इस तरह कार्य करने का, खासा प्रभाव जिले की जनता पर पड़ा। सरकारी अधिकारी भी घवड़ा गए और उन्होने गिद्धौर महाराज के द्वारा उन पर दवाव डालने का प्रयत्न भी किया। परन्तु वह

विचलित नहीं हुए। अंत में अधिकारियों ने उन्हें जनता के बीच में हटा कर, लोगों में असंतोष फैलाने के लिए, उनपर (दफा १०७ जाब्ता फौजदारी के अनुसार) मुचलका देने का मुकदमा चला दिया। उस अवसर पर प्रो० कृपलानी, जो हिन्दू-विश्वविद्यालय में उनके अध्यापक रह चुके थे, यहाँ आये। इस मुकदमे में कुमार साहब को एक वर्ष कैद की सजा हुई। उन्होंने मजिस्ट्रेट के सामने जो अपना वक्तव्य दिया था, उसकी प्रशंसा महात्मा गांधी ने यंगइण्डिया में की थी और कहा था कि यह वक्तव्य एक राजकुमार के योग्य ही है। उनके जेल जाने पर, मुंगेर के बाबू श्यामा प्रसाद सिंह, उनकी जगह पर काम करने लगे। वह उस वक्त कलकत्ता में (वकालत पढ़ते समय असहयोग कर) वहां के एक समाचार-पत्र में काम कर रहे थे। उनके यहाँ आ जाने से काम निरन्तर जारी रहा जो सरकार को अच्छा नहीं लगा। उस समय झाझा में रेलवे का हड़ताल चल रहा था। श्यामा बाबू कुछ साथियों को लेकर मजदूरों के बीच वहाँ काम करने चले गए। सरकार ने मौका पाकर इन पर, और इनके साथियों पर मुकदमा चला दिया जिसमें सब को चार-चार मास कैद की सजा हुई।

सिकन्दरा थाने का अपना संगठन नहीं था। सबडिवीजन के प्रमुख कार्यकर्त्ता ही यहाँ काम करने आते थे। तथापि भिन्न भिन्न स्थानों में इसके कुछ ऐसे कार्यकर्त्ता थे, जो बाहर से कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के आने पर उनका साथ दिया करते थे। इनमें सिकन्दरा के सर्वश्री गंगाधर पाण्डेय और मौलवी मोहीब शाह, मिश्र डीह के श्री गिरिनन्दन मिश्र, हलसी के श्री नरसिंह सिंह, चौढी के श्री जटाधारी सिंह, बाढ़ा के श्री देवकी सिंह तथा महादेव, सिमरिया के श्री हरिमिश्र थे। शेखपुरा के अब्दुल सत्तार मियां (उर्फ दारोगा जी) अच्छे कार्यकर्त्ता थे। और बहुत दिनों तक थाने का कार्यभार इनके ऊपर था। इस समय के थाने के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री हरिप्रसाद शर्मा, सन् १९२८ में कांग्रेस में सम्मिलित हुए।

चकाई और झाझा थाने जिले के सब से पिछड़े हुए इलाके हैं। इस भूभाग में पहाड़ और जंगल अधिक हैं तथा पिछड़ी हुई जातियों के लोग अधिक रहते हैं। शिक्षा का बहुत अभाव है। अतएव यहाँ असहयोग-काल के प्रथम दस वर्षों में कांग्रेस के कोई सुयोग्य कार्यकर्त्ता नहीं हुए। यहाँ जमुई और झाझा के कार्यकर्त्ता ही समय-समय पर काम के लिए आया करते थे।

राष्ट्रीय-शिक्षण की तैयारी

सन् १९२०-२१ ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार, सरकारी स्कूल, कालेजों का बहिष्कार ही था। महात्मा गांधीजी ने प्रारम्भ में इस विषय पर बहुत जोर डाला था और इस कार्य में उन्हें सफलता भी बहुत मिली थी। इस आन्दोलन में सैकड़े ८० या ९० कार्यकर्त्ता सरकारी स्कूल, कालेजों के बहिष्कार करनेवाले विद्यार्थी ही थे। आरम्भ में, सरकारी संस्थाओं से, विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में निकल आये थे और उनकी शिक्षा के लिए जगह-जगह राष्ट्रीय-संस्थाएँ कायम की गई थीं। उन दिनों प्रायः जहाँ जहाँ सरकारी हाई स्कूल थे, वहाँ वहाँ राष्ट्रीय-उच्च विद्यालयों की स्थापना हुई। इस प्रकार के विद्यालय, सारे प्रान्त में,

५० से अधिक हो गये थे और इनमें ८ मुगेर जिले मे थे। माध्यमिक और निम्न श्रेणी के विद्यालयोकी संख्या भी कम नही थी। प्रायः सभी विद्यालयो मे चरखे और करघे की शिक्षा दी जाती थी। अधिकांश विद्यालय सन् १९२३ ई० तक वन्द हो गए। सन् १९३० ई० के बाद तो प्रान्त के प्रायः सभी राष्ट्रीय-विद्यालय वन्द हुए। पर मुगेर जिले में दो राष्ट्रीय उच्च विद्यालय अब तक खड़गपुर और खगड़िया में चल रहे हैं। असहयोग के आरम्भ में प्रायः सभी प्रान्तो मे सरकारी युनिवर्सिटियो के मुकावले मे राष्ट्रीय-विद्यालयों की स्थापना हुई थी। विहार के विद्यार्थी मुख्यतः विहार-विद्यापीठ या काशी-विद्यापीठ के अन्दर शिक्षा प्राप्त करते थे। अव तक विहार प्रान्त मे ५०० से कुछ अधिक विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय-विद्यापीठों से प्रवेशिका (मैट्रिकुलेशन) परीक्षा पास की है, जिनमे लगभग १२५ मुगेर जिले के विद्यार्थी हैं। इनमे आधा दर्जन मुसलमान हैं। प्रारम्भ मे मुगेर के कुछ छात्र, वंगाल के राष्ट्रीय-विद्यापीठ गौड़ीय विद्यायतन मे भी सम्मिलित हुए थे। विहार विद्यापीठ का महाविद्यालय-विभाग सन् १९३० ई० से वन्द हो गया। उस समय तक ८० स्नातक (ग्रैजुएट) वहाँ से निकले। इनमे ११ मुगेर जिले के थे। उसी प्रकार काशी-विद्यापीठ से, जहाँ भारत के सभी प्रान्तो के विद्यार्थी आते हैं, सन् १९४७ तक १५१ स्नातक तैयार हुए। इनमें १४ इसी जिले के हैं। इस समय भी काशी-विद्यापीठ मे जितने विद्यार्थी है उनमे करीव एक तिहाई विहारी हैं और विहारी विद्यार्थियो मे भी लगभग आधे मुगेर जिले के विद्यार्थी हैं, जिनकी संख्या एक दर्जन है। इस प्रकार हम देखते है कि राष्ट्रीय-शिक्षा मे विहार सभी प्रान्तो से आगे रहा और विहार मे भी मुगेर जिले का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा। यही कारण हुआ कि यहाँ राष्ट्रीय-आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा। उस समय वास्तव में राष्ट्रीय-विद्यालय ही राष्ट्रीय-आन्दोलन के केन्द्र हुआ करते थे। जहाँ राष्ट्रीय-विद्यालय नही थे, वहाँ स्थायी-रूप से कार्य भी नही हो रहा था।

मुगेर शहर का राष्ट्रीय-विद्यालय सन् १९१९ ई० मे स्थापित होकर १९२३ ई० तक चलता रहा। विद्यालय वड़ा वाजार मे खोला गया था। पीछे वह यहाँ से हटकर वेलन वाजार चला गया। इसके प्रधानाध्यापक श्री सूर्यभूषण लाल थे। ये तारापुर थानान्तर्गत अरोगा ग्रामवासी हैं और इस समय भागलपुर मे वकालत करते हैं। मुगेर के असहयोगी वकील वावू राधिका प्रसादजी भी विद्यालय में पढ़ाया करते थे। इनके अतिरिक्त श्री गोखुलप्रसाद, श्री भोला मिश्र, श्री रतिनाथ झा, श्री सत्यनारायणप्रसाद आदि कई शिक्षक थे। सन १९२३ ई० मे इस विद्यालय से निकले हुए तीन विद्यार्थी श्री गौरीशकर प्रसाद, श्री जगजीत नारायण-श्रीवास्तव और श्रीवीरेन्द्र शर्मा विहार-विद्यापीठ के स्नातक हुए। श्री गौरीशंकर प्रसाद पटना जिला के रहने वाले थे, परन्तु, उनका कार्य-क्षेत्र मुगेर जिला ही था। ये वहुत दिनों तक लक्खीसराय राष्ट्रीय-विद्यालय के प्रधानाध्यापक रहे। श्री जगजीत नारायण श्रीवास्तव सारन जिला-वासी थे। स्नातक होने के वाद उनका कार्य-क्षेत्र पटना या सारन जिला ही रहा। मुगेर के श्री वीरेन्द्र शर्मा आर्यसमाजी थे। वह वहुत दिनो तक कलकत्ते मे रहकर अपनी एक जातीय पत्रिका निकालते रहे।

गोगरी राष्ट्रीय-विद्यालय की स्थापना सन् १९२१ ई० की ३ फरवरी को पं० रामानुग्रह झा ने की

थी। बी० ए० में पढ़ना छोड़कर ये इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक हुए थे। इसके एकाध-महीने बाद प० सुरेशचन्द्र मिश्र आ गये और उन्होंने इस विद्यालय के संचालन का भार अपने ऊपर लिया। जून में प०-रामानुग्रह झा के खगड़िया चले जाने पर, सारन जिले के श्री गदाधरप्रसाद श्रीवास्तव विद्यालंकार, जो बी० ए० की टेस्ट परीक्षा देकर बिहार विद्यापीठ से स्नातक हुए थे, यहाँ प्रधानाध्यापक होकर आये। वह बड़े ही योग्य और प्रभावशाली व्यक्ति थे। बवनूरद शक्ति भी इनकी बड़ी अच्छी थी। इनके आने से विद्यालय की दशा सुधर गई। कांगरेस काम में भी इनसे बड़ी सहायता मिली। सन् १९२४ ई० में ये यहाँ से मुंगेर डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मेम्बर भी हुए और इस हैसियत से भी इन्होंने गोगरी इलाके की बड़ी सेवा की। सन् १९२५ ई० में वह यहाँ से खगड़िया राष्ट्रीय विद्यालय में चले गए। उसके बाद वहाँ से भी हटकर प्लीडरशिप की परीक्षा देकर सिवान में वकालत करने लगे। इनके बाद यहाँ श्री मुक्तिनाथ दास विद्यालंकार मुख्याध्यापक होकर आए। सन् १९२६ ई० में गदाधर बाबू के सहपाठी श्री रामबिहारीप्रसाद और सुरेश-बाबू के सहपाठी श्री सिद्धेश्वरप्रसाद सिंह भी कुछ महीनों के लिए यहाँ अध्यापक हुए थे। रायबहादुर सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह यहाँ से जाकर फिर सरकारी विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे और पीछे डिप्टी मजिस्ट्रेट, सबडिवीजनल अफसर, तथा बिहार सरकार के सेक्रेटरी हुए। विद्यालय के अन्दर कुछ करघे बैठाये गए थे और इसके लिए एक खास शिक्षक भी नियुक्त हुए थे। उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए एक मौलवी भी थे। यहाँ के छात्रों में ६ स्नातक हुए जिनमें सर्वप्रथम इन पंक्तियों का लेखक हुआ। बिहार विद्यापीठ से निकलने के पश्चात पत्र सम्पादन आदि विविध साहित्यिक काम करता रहा। शेष स्नातक भी राष्ट्रीय आंदोलनों के विविध क्षेत्रों में मुस्तैदी से काम करते रहे और कुछ ने तो अपनी लगन में कमाल ही कर दिखाया।

खगड़िया के एक आर्यसमाजी महाशय श्री श्यामलाल ने ५०००) वार्षिक आमदनी की अपनी कुछ सम्पत्ति देकर एक स्कूल स्थापित किया था। वही असहयोग-आन्दोलन के समय राष्ट्रीय विद्यालय के रूप में परिणत कर दिया गया। बाबू दुलारी साहु, जिन्होंने एम० ए० में पढ़ते समय असहयोग किया था, इस विद्यालय के मुख्याध्यापक बनाये गए। पर शिक्षकों में कोई राष्ट्रीय विचार के व्यक्ति नहीं थे, अतएव दो-चार साल बाद ही कुछ लोग इसे फिर सरकारी विद्यालय बना देने की चेष्टा करने लगे। इस समाचार को पाकर प्रान्त के नेता बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद और बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी यहाँ आये और उन्होंने इसे राष्ट्रीय विद्यालय के रूप में ही सुचारु रूप से चलाने का प्रबन्ध कर दिया।

नेताओं के इस नवीन प्रबन्ध से विद्यालय तो राष्ट्रीय विद्यालय के रूप में चलने लगा। तथापि, यह अपने थाने के राष्ट्रीय आंदोलन का वैसा केन्द्रस्थल नहीं बन सका, जैसा कि गोगरी, खड़गपुर या लक्खी सराय के विद्यालय थे। वस्तुतः यह विद्यालय कुछ हद तक सरकारी स्कूल के सहायक के रूप में रहा, जहाँ लड़के निःशुल्क शिक्षा प्राप्तकर अन्त में सरकारी स्कूल से परीक्षा दे देते थे। यहाँ के बहुत थोड़े विद्यार्थी राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हुए। यहाँ के लगभग २० विद्यार्थियों ने बिहार-विद्यापीठ की प्रवेशिका-परीक्षा

दी, जिनमें ५ गोगरी थाने के और २ चौथम थाने के थे। खगड़िया थाने के सिर्फ दो छात्र, श्री रामानन्द शर्मा और श्री प्रभुनारायण सिंह काशी-विद्यापीठ के स्नातक हुए। आज भी रामानन्दजी इसी विद्यालय के अध्यापक हैं और श्री प्रभुनारायण सिंह १९४२ की क्रान्ति मे शहीद हुए। विद्यालय के मुख्याध्यापक वाबू द्वारका प्रसाद इस समय थाने के सर्वप्रमुख कांगरेस कार्यकर्त्ता हैं।

वेगूसराय मे, राष्ट्रीय-विद्यालय २ जनवरी १९२१ मे खुला और करीव ढाई वर्षों तक उच्च विद्यालय के रूप मे चलता रहा। उसके वाद फिर कई वर्षों तक वह माध्यमिक विद्यालय रहा। उसके मुख्याध्यापक श्री यदुनन्दन प्रसाद सिन्हा थे तथा द्वितीय अध्यापक श्री रामाधीन सिंह थे। ये दोनो पहले स्थानीय हाई-स्कूल के अध्यापक थे और उच्च विद्यालय के वन्द होने पर वकालत पासकर वकील हो गए। इनकी चर्चा पहले भी हो चुकी है। शिक्षकों मे सर्वश्री सोनेलाल, रामेश्वर प्रसाद, रामदास राय, गैनालाल झा, हीरालाल-गुप्त, छितनूलाल, गोविन्द पोद्दार आदि मुख्य थे।

वेगूसराय थाने के अन्दर दो माध्यमिक राष्ट्रीय-विद्यालय थे, एक मटिहानी मे और दूसरा साम्हो में। मटिहानी विद्यालय में वावू त्रिशूलधारी प्रसाद मुख्याध्यापक तथा श्री रामदेव सिंह और श्री महावीर-लाल अध्यापक थे। साम्हो-विद्यालय मे श्री मथुरा प्रसाद और श्री रामाश्रय सिंह शिक्षक का काम करते थे। ये विद्यालय भी दो-तीन वर्षो तक चलते रहे।

तेघड़ा थाने के अन्दर तेघड़ा और वीहट मे माध्यमिक राष्ट्रीय-विद्यालय खुले थे। सव की देखरेख उस थाने के नेता व्रह्मचारी रघुनाथ प्रसाद वर्मा किया करते थे। तेघड़ा विद्यालय मे वे कभी-कभी पढ़ाते भी थे। वहां के मुख्याध्यापक श्री वोढन कुंवर थे। मौलवी इसाक साहव भी यहाँ पढ़ाया करते थे। इनके अतिरिक्त वहाँ श्री वनारसी शर्मा और मौलवी रमजान उद्दीन भी शिक्षकका काम करते थे। वीहट स्कूलमे श्री लखनलाल शर्मा मुख्याध्यापक के पद पर थे। इन दो विद्यालयों के अतिरिक्त मनसूरचक, चमथा, मधुरापुर और वारो मे अपर प्राइमरी दरजे के विद्यालय थे। मनसूरचक मे श्री चक्रधर प्रसाद, चेमथा में श्री भगवान सिंह और श्री मेदिनी प्रसाद, मधुरापुर मे श्री रामावतार सिंह और श्री शिवनारायण सिंह तथा वारो मे श्री नथुनी सिंह शिक्षक थे।

मंझौल का माध्यमिक विद्यालय तीन-साढ़े तीन वर्षों तक चलता रहा। श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह मुख्याध्यापक और श्री शिवरक्षा प्रसाद सिंह द्वितीय अध्यापक थे। यहाँ का सरकारी मिड्ल स्कूल साल-डेढ़ साल के लिए वन्द हो गया था, पीछे वह भी खुल गया।

खड़गपुर का सरकारी हाईस्कूल ही राष्ट्रीय उच्च विद्यालय के रूप मे परिणत कर दिया गया था। यहाँ के लोगों का यह वहुत साहस का काम था जो और जगहों में देखने मे नही आया। श्री घनश्याम मिश्र इसके प्रथम मुख्याध्यापक हुए। इसके वाद क्रमश. सर्वश्री द्वारका प्रसाद, सुरेन्द्र भूषण, जयदेवलाल दास, दुलारे सिंह शास्त्री, दिनेश प्रसाद वर्मा, नृसिंह पाठक, अयोध्या प्रसाद, शिवनन्दन प्रसाद सिंह मुख्याध्यापक का काम करते रहे। इनके अतिरिक्त सर्वश्री रामप्रसाद सिंह 'साधक' (वावू नन्दकुमार सिंह के वड़े भाई),

दशरथ झा, ज्योतिष प्रसाद सिंह, रामेश्वर प्रसाद, बुद्धिनाथ झा 'कैरव', अनन्त कुंवर, ब्रजनलाल पाठक, जयमङ्गल चौधरी, देवनारायण चौधरी, वटेश्वर मिश्र, भगीरथ पाण्डेय आदि समय-समय पर इसके अध्यापक रहे। यहां से अब तक दो-ढाई दर्जन विद्यार्थियों ने प्रवेशिका परीक्षा पास की। इनमें सर्वश्री सुरेश्वर पाठक, चन्द्रशेखर सिंह, भोला सिंह और नृसिंह पाठक बिहार-विद्यापीठ के तथा सर्वश्री युगल किशोर सिंह, वासुदेव झा, जयमगल सिंह, मेवालाल चौधरी और सच्चिदानन्द सिंह काशी विद्यापीठ के स्नातक हुए। इनमें प्रायः सभी अच्छे कार्यकर्त्ता और साहित्यिक व्यक्ति हुए। श्री चन्द्रशेखर सिंह का अपना कार्यक्षेत्र मुजफ्फरपुर और पटना तथा श्री भोला सिंह का कार्यक्षेत्र पास का अपना थाना अमरपुर रहा। सर्वश्री युगलकिशोर-शास्त्री, सुरेश्वर पाठक, वासुदेव झा, सच्चिदानन्द सिंह की ख्याति पत्र सम्पादक के नाते अच्छी हुई।

खड़गपुर थाने के मिल्की ग्राम में प्रताप राष्ट्रीय-माध्यमिक विद्यालय था जिसके लिए बाबू बनारसी सिंह के पिता बाबू परसन सिंह ने मकान दे रखा था। इस विद्यालय में सर्वश्री वटेश्वर मिश्र, कामेश्वरप्रसाद, सहदेव सिंह और बलदेव उपाध्याय शिक्षक थे। इसके अलावा गौरव डीह और रतैठा में अपर प्राइमरी दरजे के राष्ट्रीय-विद्यालय थे। रतैठा का विद्यालय, जिसमें श्री ब्रजनलाल पाठक और श्री अयोध्या कुंवर शिक्षक थे, दो वर्षों तक चला, परन्तु, गौरवडीह का विद्यालय अभी कुछ साल पहले तक भी चलता रहा।

तारापुर थानान्तर्गत असरगंज का राष्ट्रीय उच्च विद्यालय सन् १९ १ से १९२८ ई० तक चला। इस विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री मणीन्द्र चन्द्र घोष और श्री सत्यनारायण दूबे हुए। विद्यालय के सचालकों में, श्री नारायण प्रसाद भगत और श्री शम्भू नारायण सिंह थे। इस विद्यालय के कई विद्यार्थी प्रवेशिका परीक्षोत्तीर्ण हुए।

मुंगेर मुफस्सल थाने के इटवा गाम में बाबू भूपतमडल के प्रयत्न से एक माध्यमिक राष्ट्रीय विद्यालय खुला था, जो तीन चार वर्षों तक चलता रहा। इसके मुख्याध्यापक श्री द्वारका प्रसाद सिंह थे।

श्री कार्यानन्द शर्मा के सत्प्रयत्न से लक्खीसराय में एक माध्यमिक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना हुई। श्री सरयू प्रसाद सिंह, श्री गदाधर उपाध्याय, श्री परमेश्वर पांडेय आदि इसके अध्यापक हुए। कई वर्ष बाद, यह उच्च विद्यालय बनाया गया। उस समय श्री गौरीशंकर विद्यालंकार इसके मुख्याध्यापक थे।

कुछ दिन बाद, श्री रामानन्द शर्मा, जो मद्रास में हिंदी प्रचार का काम कर रहे हैं, लक्खीसराय विद्यालय में आये। एक मद्रासी सज्जन श्री लक्ष्मी नारायण शास्त्री भी यहाँ पहुँचे। अब विद्यालय के साथ साथ आश्रम भी चलने लगा। आश्रम का नाम चित्तरंजन आश्रम रखा गया। उसकी नींव सन् १९२६ ई० में बिहार केसरी श्रीकृष्ण सिंह द्वारा पड़ी। सन् १९२७ ई० में महात्मा गांधी जी ने उसका उद्घाटन किया। आगे चलकर यह आश्रम थाने के कार्यकर्त्ताओं का एक अच्छा अड्डा बना। सब से बड़ी बात यह हुई कि बहुत से कार्यकर्त्ताओं की पत्नियां पर्दाप्रथा हटाकर यहां रहने लगीं और वे भी राष्ट्रीय कार्य में सलग्न हुइं। इतनी बड़ी सख्या में महिलाओं का आश्रम में रहते हुए पुरुषों के साथ मिलकर काम करना सिर्फ इस जिले के लिए ही नहीं, बल्कि प्रान्त के लिए भी एक विशेष बात थी।

सन् १९४७ ई० में चितरंजन आश्रम एक वर्ष के लिए वहाँ के नये स्थापित वालिका विद्यापीठ को दिया गया। इसके संस्थापक श्री व्रजनन्दन शर्मा और उनकी पत्नी श्रीमती विद्या देवी विशारद तथा एक स्थानीय सज्जन श्री चौथमल ड़ालिया और उनकी स्त्री श्रीमती किशोरी देवी साहित्यरत्न हैं।

बड़हिया में भी एक-दो वर्षो तक एक राष्ट्रीय पाठशाला चली थी। जमुई मे भी राष्ट्रीय उच्च विद्यालय करीव तीन वर्षो तक चला। यहाँ के मुख्याध्यापक श्री यमुना प्रसाद सिह थे। इस विद्यालय में चरखे-करघे के अलावा सावुनसाजी की भी शिक्षा दी जाती थी। मौलवी लियाकत हुसैन विद्यालय के काम में वड़ी दिलचस्पी रखते थे।

सत्याग्रह और उसकी तैयारी

असहयोग-काल के प्रथम दस वर्ष का समय रचनात्मक कार्य मे लगाया गया। रचनात्मक कार्य के अन्दर कॉंगरेस का संगठन, ग्राम पंचायत, चरखे और करघे के द्वारा स्वदेशी वस्त्र का प्रचार, राष्ट्रीय-विद्यालयो की स्थापना, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, अस्पृश्यता-निवारण, मादक द्रव्य-निषेध आदि के कार्य थे। जिले-भर मे सैकड़ों-हजारों की सख्या मे जो कार्यकर्त्ता तैयार हो गये थे, वे इसी मे कार्य कर रहे थे। नागपुर-कॉंगरेस के वाद, सन् १९२१ ई० के मार्च मे, वेजवाड़ा मे अखिल भारतीय कॉंगरेस कमिटी ने निश्चय किया कि आगामी ३० जून तक देशभर मे तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए एक करोड़ रुपये जमा हों, कॉंग-रेस के एक करोड़ मेम्वर वनाये जायँ और वीस लाख चरखे चलने लगे। इसने मुगेर जिले का जो भाग था, उसे पूरा करने के लिए मौलाना शाह महम्मद जुव्वैर और वावू श्रीकृष्ण सिहजी ने थाने-थाने का दौरा किया। इसी तरह कार्यकर्त्तागण दल वना-वनाकर एक-एक गाँव मे घूमने लगे। उन्होने हर जगह चौ-अन्नियाँ मेम्वर वनाए, तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए रुपये जमा किए और चरखों का प्रचार किया। मुगेर जिला ने अपने हिस्से से कुछ अधिक ही काम कर दिखाया। इस कार्यक्रम को पूरा होने पर जुलाई मे, वम्बई मे अखिल भारतीय कॉंगरेस कमिटी की फिर वैठक हुई। कुछ लोगो ने अव आगे सत्याग्रह करनेपर जोर दिया; क्योकि, सरकारी दमन शुरू हो गया था और कार्यकर्त्तागण गिरफ्तार किए जाने लगे थे। महात्मा गाँधी ने लोगो को धैर्य रखने की सलाह दी और वैठक मे ३० सितम्वर तक विदेशी वस्त्र वहिष्कार का कार्य पूरा करने का निश्चय किया। इसके अनुसार यहाँ भी कार्य हुआ। सरकारी दमन से मुगेर भी वचा हुआ नहीं रहा। सन् १९२१ ई० के प्रारम्भ मे ही तेघड़ा थाने के ब्रह्मचारी रघुनाथप्रसाद वर्मा को गिरफ्तार कर ६ मास कैद की सजा दी गई। खगडिया थाने मे दो व्यक्ति गिरफ्तार हुए। वहाँ के नेता वावू विलास राम सभा करने के लिए अलौलीगढ़ गए। सभा के लिए मिड्ल स्कूल से टेवुल और कुछ कुर्सियाँ मँगाई गई। इसीपर मिड्ल स्कूल की ओर से लूट का मुकदमा चलवाकर श्री सियारामप्रसाद यादव और श्री हितलाल पासवान को तीन-तीन मास जेल की सजा दी गई। जमुई के कुमार कालिकाप्रसाद सिह भी गिरफ्तार कर लिए गए।

महात्मा गांधीजी ने सत्याग्रह तो स्थगित किया था, पर सरकार ने एक ऐसा मौका दिया जिससे सत्याग्रह का बीजारोपण हो गया। बात यह हुई कि देश की बढ़ती हुई उमंग और उत्साह को देखकर सरकार ने उसे रोकने के लिए इंग्लैण्ड के युवराज की भारत-यात्रा करानी चाही। उस समय लार्ड चेम्सफोर्ड के बाद लार्ड रीडिंग वाइसराय होकर आया था, जो बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ समझा जाता था। उसका खयाल था कि युवराज के आगमन से यहां की जनता में राजभक्ति की लहर उमड़ पड़ेगी और आन्दोलन खुद बखुद दब जायगा। कांग्रेस ने सरकार को ऐसा न करने की सलाह दी, पर सरकार सुनने को तैयार नहीं हुई। नवम्बर के मध्य में युवराज बम्बई पहुँच ही गए। कांग्रेस ने उनके स्वागत-समारोह के बहिष्कार की तैयारी की। इसी प्रसंग में बम्बई में दंगा हो गया। अब सरकार को दमन करने का अवसर मिला। उस समय जगह जगह कांग्रेस-स्वयंसेवकों की भर्ती हो रही थी। सरकार ने स्वयंसेवकदल को गैरकानूनी करार दे दिया और गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी। उस समय बिहार के भिन्न भिन्न जिलों में जो गिरफ्तारियां हुईं, उनमें सबसे ज्यादा मुंगेर जिले की ही गिरफ्तारियाँ थीं। शाह महम्मद जुबैर साहब की कोठी पर स्वयं शाह महम्मद जुबैर, बाबू श्रीकृष्ण सिंह और बाबू धमनारायण सिंह एक साथ ही गिरफ्तार हुए। तेजेश्वर बाबू घर पर ही गिरफ्तार किए गए। स्वयंसेवकदल पाँच पाँच की टोली बनाकर स्वयंसेवक का बिल्ला लगाये शहर के भिन्न भिन्न मुहल्लों में जुलूस में निकलते थे और वे गिरफ्तार कर लिए जाते थे।

इन गिरफ्तारियों के बाद मुंगेर के एक प्रसिद्ध वकील स्व० नेमधारी सिंह ने अपनी वकालत स्थगित कर दी और शाह साहब तथा श्री बाबू आदि के जेल से छूट आने तक जिले के असहयोग आन्दोलन के संचालन का भार, अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९२१ ई० में, अहमदाबाद कांग्रेस के बाद देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने अपने प्रान्तव्यापी दौरे के सिलसिले में, मुंगेर जिले के बेगूसराय, खगडिया, गोगरी, मुंगेर, खड़गपुर, लक्खीसराय आदि कितने ही स्थानों का भ्रमण किया और वहाँ की बड़ी-बड़ी सभाओं में उनका भाषण हुआ। उस समय भागलपुर के बाबू दीपनारायण सिंह जी ने भी मुंगेर जिले के कई स्थानों में दौरा किया था। उन दिनों गुजरात के बारदोली तालुके में सामूहिकरूप से सत्याग्रह करने की पूरी तैयारी हो रही थी। बिहार में भी तीन स्थल सत्याग्रह के लिए चुने गए थे। एक सारन जिले का शांतिपुर और दूसरा मुंगेर जिले का खड़गपुर। इस जिले में गोगरी, लक्खीसराय आदि कई थाने के कार्यकर्त्ताओं ने भी अपने२ क्षेत्रों में सत्याग्रह की तैयारी कर रखी थी। लोगों में बहुत उत्साह था। सब लोग बारदोली की ओर देख रहे थे। गांधीजी ने बारदोली-सत्याग्रह की तिथि वायसराय के पास भी लिख भेजी। परन्तु, इसी बीच गोरखपुर जिले के चौरी चौरा ग्राम में जनता और पुलिस में मुठभेड हो गई। उत्तेजित जनसमूह ने वहां की पुलिसचौकी को जला दिया और कई पुलिस कर्मचारियों को मार भी डाला। इस समाचार को सुनकर महात्मा जी स्तम्भित हो उठे। उन्होंने अशान्ति की आशंका से बारदोली में सत्याग्रह करना स्थगित कर दिया, फिर तो और

स्थानों में भी सत्याग्रह की बात स्थगित ही हो गई। परन्तु, इस बात से लोगो मे बड़ी निराशा हुई, बड़े-बड़े नेता और कार्यकर्त्ता भी असन्तुष्ट रहे और सब जगह कुछ दिनो के लिए मुर्दनी-सी छा गई। महात्माजी ने रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना जनता के सामने रखी और उसीको पूरा करने पर जोर दिया।

मुगेर जिला राजनीतिक सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन १९२२ ई०मे ही लखीसराय मे हुआ। इस सम्मेलन मे अलीबन्धु और उनकी माता श्री अम्मा आई। अलीबन्धु और उनकी माता का मुगेर भी आगमन हुआ। बेलन बाजार मे सभा की गई। उसी साल जिला कांगरेस दफ्तर का निरीक्षण करने के लिए श्री माधव हरि श्री अणे भी (जो आज बिहार के गवर्वर है) कुछ घण्टों के लिए मुगेर आये थे। उसी वर्ष बंगाल के पटुआखाली नामक स्थल मे एक मस्जिद के सामने बाजा बजाकर जलूस निकालने के प्रश्न पर सत्याग्रह छिड़ा था। इसका समर्थन राष्ट्रीय नेता भी कर रहे थे। उसमे बिहार से भी कुछ लोग गये थे। इस जिले से बेगूसराय के श्री सिहेश्वर प्रसाद सिह उस सत्याग्रह मे सम्मिलित हुए थे और उन्हें वहाँ कई महीने की कैद की सजा मिली थी। उन दिनों सरकार यत्र-तत्र मुगेर जिले मे भी दमनचक्र चला रही थी। ब्रह्मचारी रघुनाथ प्रसाद वर्मा के जेल से छूट कर आने के कुछ ही दिनो के बाद सिमरिया घाट के मेले के अवसर पर उनपर एक झूठा मुकदमा चलाया गया और फिर उन्हे जल की सजा दी गई। शराब आदि की दूकानो पर पिकेटिंग के सिलसिले मे भी श्री रामगुलाम सिह गिरफ्तार कर बक्सर जेल मे रखे गए। बीमार पड़ने पर उन्होने वहां अङ्गरेजी दवा खाने से इनकार किया। इस पर सरकार ने उन्हे चुपचाप जेल मे मरने दिया, पर देशी दवा का प्रबन्ध वह अन्त तक भी करने को तैयार नही हुई।

१३ मार्च सन् १९२२ ई० को महात्मा गाँधी गिरफ्तार कर ६ वर्ष के लिए जेल मे रख दिए गए। उनके जेल जाने के बाद लोग किंकर्त्तव्यविमूढ-से हो गए। कुछ उत्साही व्यक्ति सोचने लगे कि सत्याग्रह छेड़ ही देना चाहिए। कुछ लोगो का विचार हुआ कि यदि सत्याग्रह करना ही नही है तो कौंसिलो में घुसकर ही सरकार से लड़ाई क्यो न लडी जाय, कुछ लोग महात्मा जी के बताये रचनात्मक कार्य को ही पूरा करना चाहते थे। बिहार प्रान्त और खासकर मुगेर जिला चुपचाप रचनात्मक कार्य मे लगा। उस साल गया मे कॉगरेस अधिवेशन होना था। अतएव यहाँ के लोग अपने यहाँ के रचनात्मक कार्यो के अतिरिक्त, इस अधिवेशन को सफल बनाने की चेष्टा मे भी लगे थे।

जून मे, लखनऊ मे अखिल भारतीय काँगरेस कमिटी की बैठक हुई। इसमें काँगरेससभापति हकीम अजमल खाँ की अध्यक्षता मे पं० मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, श्री विट्ठल भाई पटेल आदि की एक कमिटी बना दी गई, जिसका काम देश की परिस्थिति की जाँचकर इस बात की रिपोर्ट देना था कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार है वा नहीं। इस समय काँगरेस में स्पष्टत: दो दल हो गये—एक परिवर्तनवादियों का जो कौसिल-प्रवेश के समर्थक थे, दूसरा अपरिवर्त्तनवादियो का जो महात्मा जी के बताये कार्यक्रम में विश्वास रखते थे। पहले दल का नेतृत्व देशबन्धु चित्तरंजन दास और पं० मोतीलाल नेहरू तथा दूसरे दल का नेतृत्व श्री राजागोपालाचारी कर रहे थे।

गया कांग्रेस देशबन्धु दास के सभापतित्व में हुआ। पर वहाँ अपरिवर्त्तनवादियों की ही जीत रही। कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव पास नहीं हो सका। अधिवेशन समाप्त होते ही देशबन्धु दास ने सभापति-पद से त्यागपत्र दे दिया और कांग्रेस के अन्दर कौंसिल प्रवेश के लिए 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की। गया कांग्रेस के बाद, मुंगेर के सभी नेता शाह महम्मद जुबैर, बाबू श्रीकृष्ण सिंह, श्रीयुत तेजेश्वर प्रसाद और स्व० यमनारायण सिंह जेल से छूट आये।

जिस समय देश में, कौंसिल-प्रवेश का झगड़ा चल रहा था उसी समय नागपुर में झंडा-सत्याग्रह आरम्भ हो गया। वहाँ १३ अप्रील सन् १९२३ को अन्य अनेक स्थानों की भाँति राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय झंडे के साथ जुलूस निकाला गया था। सरकार ने जुलूस का सिविल लाइन्स में जाना रोक दिया। इसीसे कुछ सत्याग्रही झंडे लेकर सिविल लाइन्स की ओर जाते थे और वे गिरफ्तार कर लिए जाते थे। सत्याग्रह, श्री जमुनालाल बजाज के नेतृत्व में आरम्भ हुआ और उनके गिरफ्तार हो जाने पर सरदार वल्लभ भाई पटेल नेतृत्व करने लगे। पीछे श्री विट्ठल भाई पटेल और श्री राजेन्द्र प्रसाद भी पहुँचे। यह सत्याग्रह-आन्दोलन देशव्यापी हो गया था और इसमें मुंगेर जिले के भी बहुत लोग सम्मिलित हुए थे। बेगूसराय सबडिवीजन से दो दल नागपुर गया था, एक तो ब्रह्मचारी रघुनाथ प्रसाद वर्मा के नायकत्व में जिसमें तेघड़ा थाने के रामचरण भगत, बेगूसराय थाने के श्री सिंहेश्वर सिंह और बरियारपुर थाने के श्री रामजी सिंह थे। दूसरा दल बलिया थाने के बिनटोली ग्राम से श्री चतुरी भगत के नायकत्व में गया था जिसमें श्री चम्मन भगत आदि चार व्यक्ति थे। मुंगेर शहर से श्री प्यारे महतो सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे। लखीसराय थाने से ४ व्यक्तियों का एक दल नागपुर गया था। ये व्यक्ति थे गंगासराय के श्री रामरक्षा सिंह, श्री मुद्रिका पाण्डेय और श्री श्रीधर शर्मा, बड़हिया के चण्डी पोद्दार तथा लखीसराय के श्री रामचन्द्र प्रसाद। इन सभी लोगों को कई मास की जेल की सजा भी हुई थी।

इसी समय श्री जमनालाल बजाज ने रचनात्मक-कार्य करने के लिए 'गांधी सेवा संघ' की स्थापना की और अपरिवर्त्तनवादी नेता उसके संचालक-मंडल में रहे। मुंगेर जिले में श्री सुरेशचन्द्र मिश्र और श्री गदाधर प्रसाद श्रीवास्तव इसके सदस्य हुए। उन्हें इस संघ से थोड़ी आर्थिक सहायता भी मिलती रही।

इस साल गंगा में भीषण बाढ़ आई। जिले के गंगा किनारे के गाँवों में बाढ़ के कारण बड़ा हाहाकार मचा। इसमें सबसे अधिक गोगरी थाने को क्षति पहुँची। इस संकट-काल में बाबू श्रीकृष्ण सिंहजी ने बहुत कष्ट उठाकर नावों पर इलाके का भ्रमण किया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और काँग्रेस की ओर से लोगों को सहायता पहुँचाई गई। देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी बाहर से कुछ मदद की थी।

सन् १९२३ ई० में तुलसी-जयन्ती के अवसर पर खड़गपुर राष्ट्रीय-विद्यालय में 'भारत दुर्दशा' नाटक खेला गया। जिले के नेता बाबू श्रीकृष्ण सिंह जी भी उस अवसर पर वहाँ मौजूद थे। इस नाटक के खेलने पर सरकार ने श्रीबाबू और राष्ट्रीय विद्यालय के मुख्याध्यापक बाबू द्वारका प्रसाद तथा विद्यालय से सम्बन्ध रखनेवाले उस थाने के अग्रगण्य कांग्रेस नेता बाबू हरिप्रसाद सिंह एवं बाबू नन्दकुमार सिंह
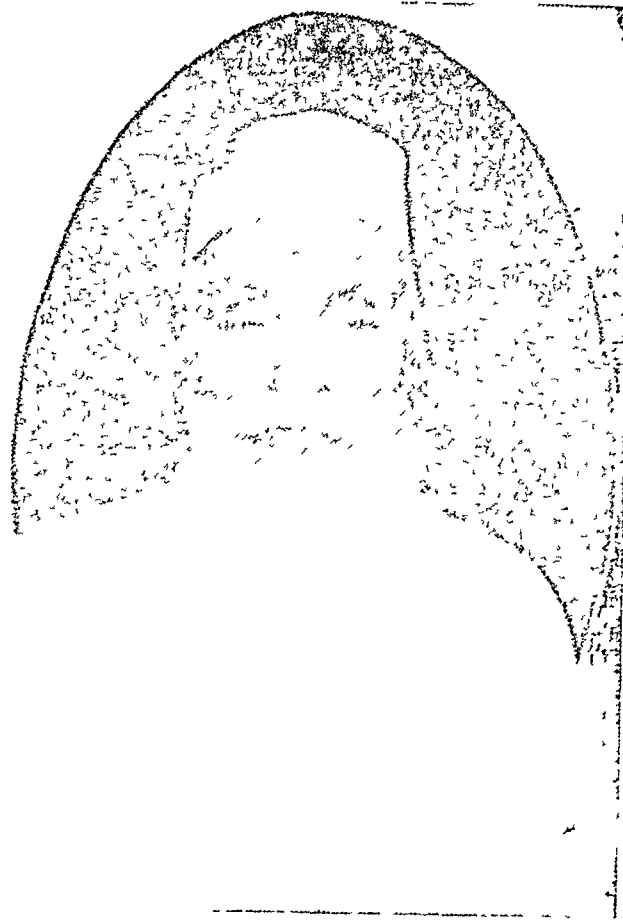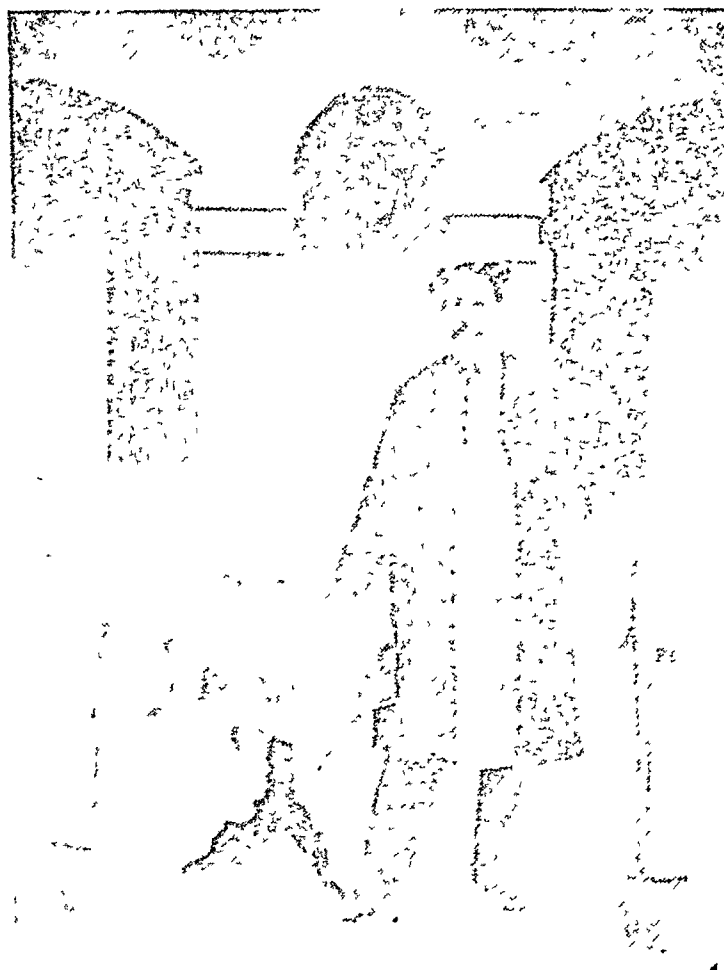
विहार केसरी के पूज्य अग्रज
स्वर्गीय देवकीनन्दन सिह

श्री लक्ष्मीदास
(श्री श्रीकृष्ण सिह के अक्षर-ज्ञान करानेवाले)
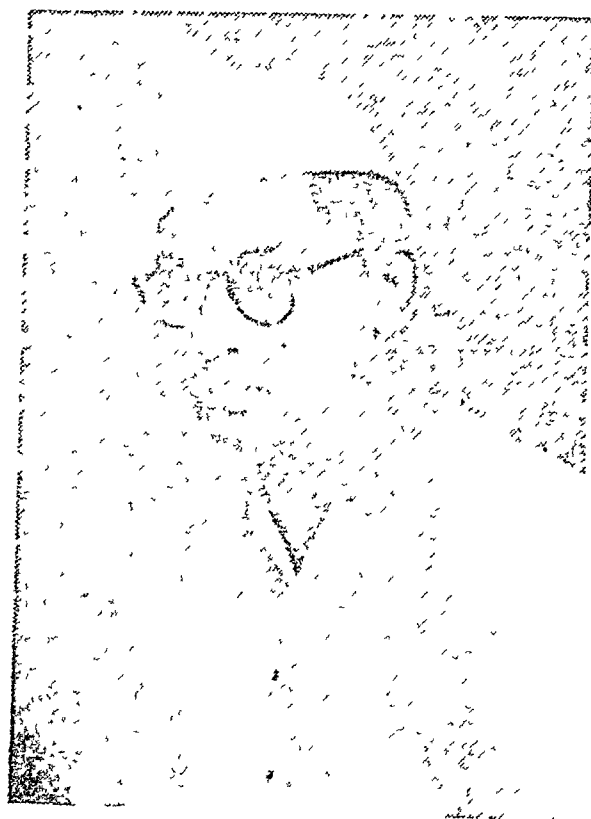
श्री वन्दीशंकर सिह, एम० ए०
(श्री श्रीकृष्ण सिह जी के द्वितीय पुत्र)
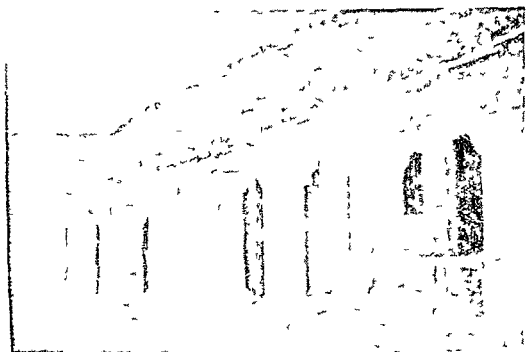
बिहारकेसरी की जन्म-भूमि माउर में उनका पुराना घर
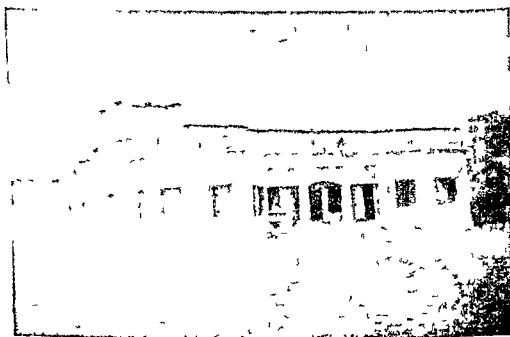
माउर का नया घर

पर मुकदमा चलाया। किन्तु, पीछे मुकदमा उठा लिया गया। इस नाटक के कारण श्री सुरेश्वर पाठक, पं० बुद्धिनाथ झा "कैरव" तथा श्री द्वारिका प्रसाद जी पर भी मुकदमा चलाया गया था और इन्हे तीन-तीन महीने जेल की सजा भी हो गई थी। पर, पीछे अपील से सभी रिहा हो गए।

काँगरेस का कौंसिल-प्रवेश

सन् १९२३ ई० के सितम्बर मास मे, दिल्ली में मौलाना अबुल कलाम आजाद के सभापतित्व में काँगरेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। इसमे स्वराज्य पार्टी को कौंसिल-प्रवेश की आजादी दी गई। दो-तीन महीने बाद ही, कोकनाड़ा के साधारण अधिवेशन ने भी इस कार्यक्रम की स्वीकृति दे दी। अखिल-भारतीय चरखा संघ की नीव भी कोकनाड़ा के महाधिवेशन मे ही पड़ी।

काँगरेस के इस निश्चय के बाद ही देश मे कौंसिलों के चुनाव की धूम मच गई। मध्यप्रान्त तथा बंगाल मे अच्छी सफलता भी मिली। बिहार मे भी चुनाव लड़ा गया और कुछ लोग सफल भी हुए। किन्तु, मुंगेर इस सिलसिले मे बिलकुल दकियानूस ही बना रहा। केन्द्रीय सरकार की ऊपरी सभा (कौंसिल आफ स्टेट) का जब चुनाव होने लगा तो स्वराज्य-पार्टी ने इस प्रान्त के चार स्थानों के लिए अपने चार उम्मीदवार खड़े किये। मुस्लिम क्षेत्र से श्री शाह मुहम्मद जुब्बैर और तीन हिन्दू क्षेत्रों से श्री बाबू, अनुग्रह बाबू तथा स्व० महेन्द्रबाबू (राजेन्द्र बाबू के बड़े भाई) चुनाव के मैदान मे गए।

इस चुनाव मे मुस्लिम क्षेत्र से जुब्बैर साहब की तो जीत हो गई। और दो क्षेत्रों से भी काँगरेस विजयी हुई, किन्तु मुगेर से श्रीबाबू की हार हो गई। श्रीबाबू की हार की कोई उम्मीद नही थी। इनकी हार सचमुच आश्चर्यजनक थी, इससे कार्यकर्त्ताओं को बहुत दुःख हुआ। दुःख मे कुछ-कुछ पारस्परिक वैमनस्य और मतभेद भी हुए।

१६ जून को दार्जिलिंग मे देशबन्धु दास की मृत्यु हो गई। इनकी अचानक मृत्यु से स्वराज्यपार्टी के काम को जोरो का धक्का लगा। एकबार समूचे देश मे शोक एव मुर्दनी छा गई।

काँगरेस का दूसरा अधिवेशन श्रीमती सरोजनी नायडू के सभानेतृत्व मे कानपुर में हुआ। यहाँ केन्द्रीय एसेम्बली द्वारा स्वराज्य की माँग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि यदि इस पर शासन की ओर से ध्यान नही दिया जाय तो काँगरेस-जन धारा-सभाओ को छोड़कर बाहर निकल आये।

इसी साल धारा-सभाओं का नया निर्वाचन होने लगा। प्रान्तभर में काँगरेसी उम्मीदवार नामजद किये गए। मुगेर से काँगरेस के टिकट पर श्रीबाबू और कुवर कालिका सिंह प्रान्तीय एसेम्बली के सदस्य चुने गए।

सन् १९२६ ई० मे गोहाटी मे श्री श्रीनिवास आयंगर के सभापतित्व मे काँगरेस ने निश्चय किया कि जब तक सरकार राष्ट्रीय माँगों का संतोषजनक उत्तर नहीं देगी, तब तक काँगरेसवादी मन्त्रित्व के पद

को स्वीकार नहीं करेंगे और किसी भी दूसरी पार्टी द्वारा निर्मित मसविदा का विरोध करेंगे। इस निश्चय के अनुसार बिहार कौंसिल में विरोधीदल के नेता श्रीबाबू ही चुने गए और आपने बड़ी खूबी से इस कार्य को निबाहा तथा अपनी विद्वत्ता तथा वाक्शक्ति का बड़ा अच्छा परिचय दिया।

औपनिवेशिक स्वराज्य से पूर्ण स्वाधीनता की ओर

उसी समय दिल्ली में एक सर्वदल सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें भारतीयों द्वारा ही भारतीय शासन-विधान तैयार करने का निश्चय हुआ। विधान का मसविदा तैयार करने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी बना दी गई। इस कमिटी ने जो मसविदा तैयार किया, वह नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १९२८ ई० के दिसम्बर में, पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में, कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें यह रिपोर्ट स्वीकृत हुई। कांग्रेस ने घोषित किया कि यदि बृटिश सरकार ३१ दिसम्बर सन् १९२९ ई० तक नेहरू रिपोर्ट के अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य देने का निश्चय नहीं करेगी तो कांग्रेस अपना ध्येय पूर्ण स्वाधीनता घोषित करेगी और अहिंसात्मक प्रतिरोध का आन्दोलन प्रारम्भ होगा।

साइमन कमीशन का बहिष्कार

कौंसिलों के अन्दर तथा बाहर स्वराज्य की निरन्तर मांग की दुहरी लड़ाई से ऊबकर सरकार ने शासन-सुधार का नाटक प्रारम्भ किया। ८ नवम्बर सन् १९२७ ई० को एक घोषणा की गई कि भारत की राजनीतिक परिस्थिति की जांच के लिए सर साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन की नियुक्ति होगी। यह कमीशन सम्राट की सरकार के पास अपनी रिपोर्ट पेश करेगा और सरकार उस पर विचार कर पार्लमेंट के द्वारा भारतीय शासन-विधान में सुधार करेगी। उसी साल मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन डा० अन्सारी के सभापतित्व में हुआ। इसमें साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया गया। कमीशनके सभी सदस्य अंगरेज थे, इस कारण यहाँके नरमदली लोगों ने भी उसका बहिष्कार करने का विचार किया।

सन् १९२८ ई० की ३ फरवरी को कमीशन भारत पहुँच गया। उसके यहां आते ही बहिष्कार का आन्दोलन जोरों से शुरू हो गया। जहाँ-जहाँ कमीशन जाता था, लोग हजारों-लाखों की संख्या में जुटकर 'साइमन गो बैक', साइमन लौट जाओ का नारा लगाते थे। इस पर सरकार ने दमन करना शुरू कर दिया। लाहौर में बहिष्कार प्रदर्शन के लिए आये हुए लोगों पर लाठियों का प्रहार हुआ। लाला लाजपतराय को कई जगह गहरी चोट आई। इससे कुछ ही दिनों के बाद उनकी मृत्यु हो गई। लखनऊ में पं० जवाहरलाल पर भी लाठियाँ पड़ीं। सरकार के इन सब कुकृत्यों से देश में बड़ी खलबली मच गई। बहिष्कार और भी जोरों से होने लगा। कमीशन जब पटना आया तो प्रान्त के भिन्न-भिन्न स्थानों से जनता की अपार भीड़ विरोध प्रदर्शन के लिए पटना पहुँच गई। मुंगेर की सभी जगहों से भी लोग सैकड़ों की संख्या में वहां पहुँचे थे।

आगामी एक वर्ष का समय भावी युद्ध की तैयारी और सरकार के उत्तर की प्रतीक्षा मे बीता। युवक-आन्दोलन जोरो से चल पड़ा और जगह-जगह युवक-संघ की स्थापनाएँ होने लगीं। उस समय के कायम हुए युवक-सघ अब भी मुगेर जिले के कई स्थानो मे मौजूद है। सर्वत्र हिन्दुस्तानी सेवादल का भी संघटन किया गया था। इसके मासिक झण्डाभिवादन का कार्यक्रम वड़ा लोकप्रिय हुआ। प्रत्येक मास के अन्तिम रविवार को सुबह ८ बजे झण्डा फहराया जाता था और ५ बजे सन्ध्या-समय वह उतारा जाता था। उन दिनों महात्मा जी के वताये अन्य रचनात्मक कार्य भी खूब हुए।

कॉगरेस के लाहौर अधिवेशन के पूर्व मुगेर मे देशरत्न राजेन्द्र वावू के सभापतित्व मे प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन मे सरदार वल्लभभाई पटेल भी यहाँ आये, और इसमे उनका अभिभापण भी हुआ।

कॉगरेस के महाधिवेशन के पूर्व देश मे कई महत्वपूर्ण घटनाए और हुई। एसेम्वली वमकांड और लाहौर षड़यन्त्र केस के अभियुक्त श्री यतीन्द्रनाथ दास ने राजनीतिक कैदियो को जेल मे विशेष सुविधा के प्रश्नपर ६४ दिन का उपवास करके आयरलैण्ड के देशभक्त मैक्स्विनी की तरह अपना प्राण त्यागा था। इसी प्रकार एक दूसरे राजनीतिक वन्दी भिक्षु विजय ने जेल मे भगवा वस्त्र पहनने के अधिकार के मामले मे अनशनकर अपना प्राण विसर्जन किया था। इन सव वातो से देश अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था और लोग प्राणों की वाजी लगाकर सरकार से लड़ने को तैयार थे। कॉगरेस अधिवेशन के पूर्व, वायसराय लार्ड इरविन ने महात्मा गाँधी और प० मोतीलालजी से मिलकर भारतीय स्थिति पर विचार करने के लिए एक गोलमेज परिपद् का सन्देश सुनाया। महात्माजी चाहते थे कि गोलमेज परिषद् की काररवाई औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर हो, किन्तु वायसराय इस तरह का आश्वासन देने को तैयार नही थे। अतः महात्माजी को निराश होकर वापस आना पड़ा।

सन् १९२७ ई० मे, लाहौर कॉंगरेस का अधिवेशन वड़ी सरगर्मी के वीच प्रारम्भ हुआ। पं० जवाहरलालजी नेहरू इस अधिवेशन के सभापति थे। ३१ दिसम्वर की १२ बजे रात के वाद कॉगरेस ने औपनिवेशिक स्वराज्य के पुराने ध्येय को छोड़कर पूर्ण स्वतन्त्रता का ध्येय घोषित किया। इसकी पूर्ति के लिए सविनय अवज्ञा और करवन्दी आन्दोलन के कार्यक्रम वनाए गए। एसेम्वली और कौसिलों के सदस्यों को वाहर निकल आने की आज्ञा दी गई। स्वाधीनता का एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। २६ जनवरी १९३० को गॉव-गॉव मे वह प्रतिज्ञा-पत्र पढ़ा गया और उसकी शपथ ली गई।

फरवरी के मध्य मे कॉगरेस कार्य-समिति की वैठक सावरमती आश्रम मे हुई। महात्मा गाँधी को आन्दोलन का सूत्रधार वनाया गया। महात्माजी ने नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आरम्भ करना चाहा। १२ मार्च १९३० को उन्होने ७९ साथियो के साथ पैदल दंडी-यात्रा के लिए प्रस्थान किया। दंडी ग्राम, समुद्र के किनारे महात्माजी के आश्रम से करीव दो सौ मील की दूरी पर था। उन्होने ६ अप्रैल को नमक कानून भंग करने का निश्चय किया। महात्माजी की इस क्रान्तिकारी यात्रा ने सारे देश में एक नई

चेतना, एक नूतन शक्ति भर दी। गाँधीजी ने कहा कि "जब तक मैं स्वराज्य हासिल नही करूंगा, साबरमती को नही लौटूगा। मैं अपने काय में या तो सफल होऊँगा अथवा मेरी लाश समुद्र में तैरती मिलेगी।" गाँधीजी की भीषण प्रतिज्ञा से देश की बेचैनी बढ गई। महात्माजी दण्डी-यात्रा में जैसे-जैसे आगे बढ रहे थे, देश का उत्साह भी वैसे ही वैसे ऊपर उठता जा रहा था। ६ अप्रील को उनके नमक कानून भग करने पर तो देश में आग-सी लग गई। देश के कोने कोने मे नमक कानून भग किया जाने लगा।

बिहार में भी इस सत्याग्रह की तैयारी बहुत जोरो से हो रही थी। प० जवाहर लाल नेहरू और देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने अनेक स्थानो का दौरा किया। बिहार के अन्य जिलो मे जब नमक सत्याग्रह चल रहा था, उस समय मुगेर मे चौकीदारी टैक्सबन्दी का प्रचार हो रहा था। किन्तु, कुछ ही दिन बाद यहाँ भी नमक सत्याग्रह का ही कायक्रम ठीक हुआ। मुगेर जिला इस सत्याग्रह-समर में किसी से पीछा नही रहना चाहता था और वास्तव मे किसी से पीछा रहा भी नहीं। यहाँ के नेता बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह जी कौंसिल का परित्यागकर गाव गाव घूम घम कर सत्याग्रह की तैयारी करने लगे। यहाँ के थाने-थाने के नेता भी अपने-अपने यहा तैयारी के काम में लग पडे। जिला कांगरेस कमिटी ने तय किया कि यहाँ सवप्रथम दो स्थानो पर २० अप्रील को नमक कानून भग किया जाय। इन दो स्थानो में एक तो गगा के उत्तर बरियारपुर थाने का गढपुरा गाम और दूसरा गगा के दक्षिण लक्खीसराय थाने का चौकी ग्राम चुना गया।

बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह के नायकत्व मे, गढपुरा में नमक कानून भग करने का निश्चय हुआ। गोगरी के ११ सत्याग्रहियो के साथ १७ अप्रील को वह मुगेर से रवाना हुए। श्रीबाबू को विदा करने के लिए हजारो लाखो की भीड मुगेर के जहाज घाट तक साथ आई। बिदाई का वह दृश्य बडा ही हृदय-द्रावक था। शाह मुहम्मद जुबैर, कुमार कालिका सिंह आदि कितने व्यक्ति तो फूट फूटकर रोने लगे। श्रीबाबू अपने ११ वीर साथियो के साथ जानको हथेली में रखकर विद्रोह के माग में आगे बढे। १७ अप्रील की रात बेगूसराय में बीती। जत्था सवेरे ही गढपुरा के लिए पैदल चल पडा। विदाई के वक्त बेगूसराय की चहल-पहल भी बहुत बढ गई। माग में पडनेवाले गावो के लोग पूरी सख्या में आ आकर अपने इस प्रथम क्रान्तिकारी नेता का दर्शन करते थे, फूल की माला पहनाते थे और उसे रोली-चन्दन का टीका दे-देकर घर लौटते थे।

जत्था रात में मझौल आया। यहा रामबाबू के घर पर आतिथ्य सत्कार हुआ। सवेरे फिर अपने अभीष्ट की ओर। श्रीबाबू के पैरो मे फफोले पड गए। शरीर क्लान्त हो गया। मुख की कान्ति मलिन पडने लगी। पर मन की उमग, देश की पुकार उनकी गति में बिजली की तीव्रता, शरीर में दधिचि का निश्चय और हृदय मे ध्रुव की प्रतिज्ञा का सचार कर रही थी।

मझौल से ११ व्यक्तियों का एक जत्था और भी साथ हो गया। १९ की रात में सकरा हरसैन नामक एक छोटे से गाव में सभी सत्याग्रही टिके। २० को कानून भग की तिथि तय कर दी गई थी।

[श्रीबाबू १९३० ई० में नमक कानून भंग करने के लिए तैयार होकर जा रहे हैं]
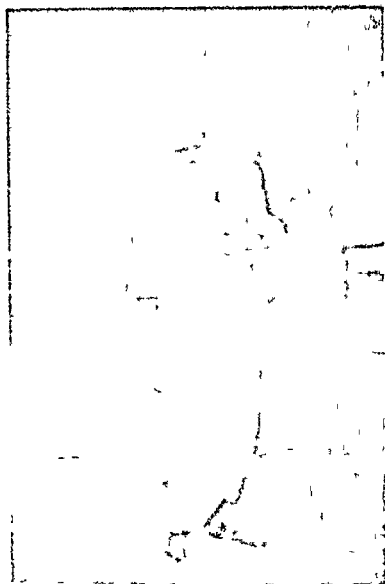
१९३८ ई० में माननीय बिहारकेसरी श्री श्रीकृष्ण सिंह जी अपने पौत्र चि० रमेश शेखर को गोद में लेकर दुलरा रहे हैं।

इसकी सूचना सरकारी अधिकारियों के पास भी पूर्व ही भेजी जा चुकी थी। एस० डी० ओ० और एस० पी० अपनी सशस्त्र पुलिस के साथ पहले ही डाकवगले मे पहुँच गए थे। नमक वनाने की प्रक्रिया के प्रारम्भ होते ही पुलिस ने धावा बोल दिया। नमक का कड़ाह छीना जाने लगा। श्रीबाबू और उनके साथी सत्याग्रही, चारो ओर से घेरकर, कडाह मे लिपट गए। उसकी डडी जोरो से थाम ली। पुलिस लाठियाँ चलाने लगी। एक पुलिस अफसर ने श्रीवाबू की टॉग पकड़कर जमीन पर घसीटना शुरू किया। उनके कपड़े, उनका अंग-प्रत्यङ्ग मिट्टी और पानी से लथ-पथ हो गया। फिर भी जव तक वह विल्कुल लाचार नही कर दिए गए, तव-तक उन्होने कड़ाह नही छोड़ा। गोगरी के एक सत्याग्रही श्री मुरलीधर झा तो इस छीना-झपटी मे कुछ-कुछ जल भी गए। इस तरह पुलिस नमक वनाने का सारा सामान जवर्दस्ती छीन ले गई। किन्त, किसी को गिरफ्तार नही किया। दूसरे दिन भी इन लोगो ने नमक वनाने का उपक्रम किया। किन्तु, इस दिन भी कोई गिरफ्तारी नही हुई। तीसरे दिन नमक वनाकर श्रीवाबू वेगूसराय लौट आए। यहीं २३ अप्रील को वह गिरफ्तार कर लिए गए। वखरी के डाकवगला मे उनके मुकदमे का फैसला हुआ। ६ मास कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। वह हजारीबाग जेल भेज दिए गए।

गढपुरा मुगेर जिले के सारे उत्तरीय भाग का केन्द्र वनाया गया था। अतएव इस भाग के प्रायः सभी थाने के सत्याग्रही वहाँ एकत्र हुए थे। लगभग १०० उत्साही सत्याग्रही वहाँ वरावर तैयार रहते थे। गोगरी थाना के नायक प० सुरेशचन्द्र मिश्र, वहाँ के शिविर के प्रवन्ध के लिए जिला से भेजे गए थे। उनकी माता भी वहाँ गई थी। लगभग तीन सप्ताह तक वहाँ नमक वना। वीच-वीच मे पुलिस की छेड़छाड़ भी होती थी। एक सत्याग्रही श्री कमलेश्वरी प्रसाद सिह गिरफ्तार भी हुए। सत्याग्रहियो द्वारा प्रस्तुत नमक आस-पास के गॉवो मे नीलाम किया जाता था और लोग ज्यादा से ज्यादा कीमत देकर उसे खरीदते थे। इन्ही रुपयो से शिविर का खर्च चलता था।

गढपुरा मे नमक वनना आरम्भ होने के कुछ दिनों के वाद वरियारपुर थाने के दूसरे ग्राम छतौना मे भी नमक वनने लगा। फिर तो और कई जगहो मे नमक वनना आरम्भ हुआ। वेगूसराय थाने के मटिहानी ग्राम मे, तेघड़ा थाने के तेघड़ा और फुलवरिया ग्राम मे तथा वलिया थाने के सादपुर ग्राम मे नमक वना। सभी जगहो मे नमक वनाने की खूब तैयारी हुई और वहुत धूमधाम के साथ नमक वना।

जिले के दक्षिणी भाग मे नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने का भार मुगेर जिला के वर्त्तमान सभापति श्रीयुत नन्दकुमार सिह पर था। वह ग्यारह सत्याग्रहियों के एक जत्था के साथ १५ अप्रील को खड़गपुर से प्रस्थान कर मुगेर आए। मुगेर से जत्था पैदल चला। मार्गस्थित गॉवो मे विश्राम लेते और जागृति की लहर विखेरते जत्था लक्खीसराय आया। लक्खीसराय के चित्तरंजन आश्रम मे विश्राम लिया। यहाँ से एक मील पच्छिम इतिहासप्रसिद्ध रजौना गॉव मे, जहाँ कभी भगवान वुद्धने वर्षावास किया था, नमक कानून भंग करना निश्चित हुआ। लक्खीसराय, वड़हिया, जमुई आदि थानो से सत्याग्रहियो का जत्था एक के वाद दूसरा पहुँचने लगा। देवघर से श्री शशिभूषण पाल के नायकत्व मे भी एक जत्था यहाँ आया। यहाँ के

शिविर के सचालन का भार श्री कुमार कालिका सिंह पर था। अतएव वह भी वहाँ सदलबल पहुँचे। २० अप्रील को नमक बनाने का निश्चय था। नमक बनाने के काय का प्रारम्भ होते ही पुलिस ने हमला कर दिया। नमक बनानेकी कढाई और सारे सामान छीन लिए गए। इस सत्याग्रहके नायक श्रीनन्दकुमार सिंहजी तथा शशि बाबू गिरफ्तार कर लिए गए। फिर भी रजौना शिविर में नमक बनाने का काय चलता रहा। पुलिस की ओर से गिरफ्तारी भी जारी रही। इस गैरकानूनी नमक की पहली पुडिया बडहिया के एक सम्पन्न व्यक्ति श्री बदरीनारायण सिंह ने १०१) देकर खरीदी थी। इसके बाद और अनेक लोगो ने भी नमक खरीदा। उस समय इस प्रकार के नमक का बनाना और खरीदना—दोनो गैरकानूनी था। फिर भी लोग इस नमक को अधिक से अधिक पैसे देकर खरीदते थे और उत्साह के साथ अपने घर ले जाते थे। इस काम मे व्यापक रूप मे नमक का कानून भी टूटता था और शिविर के चलाने के लिए सत्याग्रहियो की आर्थिक सहायता भी हो जाती थी।

बडहिया मे २२ अप्रील को श्री तेजा सिंह की ठाकुरबाडी मे शिविर की स्थापना हुई। २३ अप्रील को वहा नमक कानून तोडा गया। यहाँ का शान्ति-यज्ञ शाह मुहम्मद जुबैर तथा स्व० श्री नेमधारी सिंहजी की उपस्थिति मे प्रारम्भ हुआ। जिला के नायक श्री कुमार कालिका सिंह, जमुई और देवघर के दजनो सत्याग्रहियो के साथ, यहा आये और कई दिन तक स्वय रहकर नमक बनवाने का काम करते रहे। बडहिया मे कई सप्ताह तक नमक बनता रहा। मुगेर के एम० डी० ओ० भी सशस्त्र पुलिस के साथ वहाँ कई दिन तक टिके रहे, पर कोई गिरफ्तारी नही हुई। सत्याग्रही गाँवो में घूमघूम कर नमक बेचते थे और इस तरह बच्चे-बच्चे में क्रान्ति की आग पैदा होती थी।

इसके बाद भिन्न भिन्न थानो के भिन्न-भिन्न स्थानो मे नमक बनाया गया। सदर सब डिवीजन में खडगपुर थाने के अन्दर घोषपुर और पहाडपुर में, तारापुर के अन्दर असरगज मे, सदर मुफस्सल के अन्दर मोहनपुर मे, सूरजगढा के अन्दर पीरी बाजार मे, शेखपुरा थाने के अन्दर शेखपुरा, बसार, हुसैनाबाद, सदल बीघा और जियम बीघा मे तथा बरबीघा थाने के अन्दर बरबीघा, तेतरी, अम्बारी और नसीबचक मे कुछ दिनो तक नमक बनता रहा। इनमे बहुत से स्थानो पर पुलिस जाया करती थी और नमक बनाने का सामान छीन लिया करती थी। परन्तु कही किसी की गिरफ्तारी नही हुई। गोगरी थाने के बैना में भी नमक सत्याग्रह हुआ। सतीशचन्द्र बसु वकील ने, बेगूसराय से वहा जाकर नमक बनाया और वे गिरफ्तार हुए। गोगरी की पुलिस ने उन्हे भोजन तक नही दिया। उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। उनपर मुकदमे चले। वे जेल गये और वहा ही लकवा की बीमारी के शिकार हुए जो अभी तक उन्हें सता रही है।

जमुई थाने के अन्दर जमुई, मलयपुर और दिग्धी मे तथा सिकन्दरा थाने के अन्दर सिकन्दरा, अघौर और हरिसिंह मे नमक बना। पुलिस ने जहा-तहा छेडछाड की। परन्तु, गिरफ्तारी कही नही हुई। इन्ही दिनो देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद जी ने मुगेर जिले का दौरा किया। वे खडगपुर, तारापुर, सूर्यगढा,

लक्खीसराय तथा उत्तर मुगेर के कुछ हिस्सो मे भी गए। उनके दौरे से लोगो मे बहुत उत्साह आया और कार्य तेजी से आगे बढ़ा।

नमक कानून भंग करने का कार्यक्रम जून तक चला। एक तो बरसात शुरू हो जाने के बाद यह काम हो नही सकता था, दूसरे अब इसकी आवश्यकता भी नही रह गई थी। नमक कानून व्यापक रूप से टूट चुका था और सरकार इसपर आगे कुछ नही करके एक तरह से अपनी हार भी स्वीकार कर चुकी थी। नमक कानून भंग के आन्दोलन को लेकर गाँव-गाँव मे प्रचार-कार्य खूब हुआ और लोगों मे अच्छी जागृति आई। कानून का नाजायज रोब और पुलिस का भय लोगो के हृदय से जाता रहा।

इसके बाद विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और मादक द्रव्य-निषेध का कार्यक्रम आया। दूकानदारो ने कॉगरेस-कर्मियोके आदेशानुसार विदेशी वस्त्रो की गॉठ बाँध-बाँध कर रख दी और केवल स्वदेशी वस्त्र बेचने लगे। विदेशी वस्त्रोकी खरीद-विक्री नही करने देने का कार्य आरम्भ किया गया। शहर की बडी-बड़ी दूकानों पर ही नही, देहातो की छोटी-छोटी दूकानो पर भी धरना दिया जाने लगा। इस धारना का प्रारम्भ मे बडा अच्छा असर भी हुआ।

मादक द्रव्य-निषेध का काम कुछ कठिन था। नशाखोरों से जिन्दगीभर की बुरी आदत तुरत छुड़ा सकना सम्भाव नही। फिर, सरकार को इसमे प्रत्यक्ष रूप से क्षति भी थी, इससे कॉगरेस और सरकार के बीच बहुत जोरो का सघर्ष चला। धरणा देनेवाले अनेक सत्याग्रही बहुत पीटे गए। जेल भरी जाने लगी। कई स्थानो मे पुलिस द्वारा लूट-खसोट, लाठीचार्ज भी किए गए। चौकीदारों से इस्तीफा दिलाना और चौकीदारी टैक्स बन्द करना भी सत्याग्रह के कार्यक्रम के अन्दर था। इन सब कामों के चलते जिले से हजारों आदमी जेल गये।

इस सत्याग्रह-संग्राम के समय मुगेरके कई प्रमुख वकील जैसे बाबू नेमधारी सिह, बाबू निरापद-मुकर्जी, बाबू हरिशंकर दास (उर्फ चीनी बाबू), पं० श्रीकृष्ण मिश्र अपनी-अपनी वकालत छोड़कर देश के काम मे लग गये।

१६ नवम्बर १९३० ई० को जवाहर-दिवस के अवसर पर मुगेर मे एक बडा जलूस निकला, जिस पर पुलिस ने लाठी प्रहार किया। जलूस के नेता श्री देवेन्द्र नारायण सिह वकील के सिर मे गहरी चोट लगी। आप गिरफ्तार भी कर लिये गए। उसी दिन जिला कॉगरेस के मन्त्री नेमधारी बाबू तथा उनके सहायक निरापद बाबू पकड़ लिए गए। इस दिन जिले भर मे १७५ व्यक्ति गिरफ़्तार किये गए। विहार-केशरी श्रीकृष्ण सिह जी अक्टूबर मे, ६ मास की सजा भुगत कर लौट आये। वे फिर गिरफ्तार कर लिए गए। इन पर एक मुकदमा पटने मे भी चला जिसमे इन्हे एक साल की सजा हुई। जिले के दूसरे नेता शाह महम्मद जुब्बैर, बाबू धर्मनारायण सिह और बाबू द्वारिकाप्रसाद भी गिरफ्तार हुए थे।

पं० श्रीकृष्ण मिश्र और बाबू बलदेव प्रसाद सिह बड़हिया के १९७ दफा के मुकदमे के सिलसिले मे जेल गए। पर हाजत मे कुछ दिन रखे जाने के बाद छोड़ दिए गए।

सन् १९३० ई० के अन्त में पटने से हसन इमाम साहब की पत्नी और बाबू नवल किशोर प्रसाद (नं० १) की पत्नी यहां आईं। उन्होंने जुबैर साहब, पं० श्रीकृष्ण मिश्र आदि के घर की महिलाओं से मिलकर पिकेटिंग के काम का निरीक्षण किया और यहां की महिलाओं को इस काम में सहयोग देने के लिए प्रोत्साहित किया। सन् १९३१ ई० में सेठ जमनालाल बजाज की पत्नी श्रीमती जानकी देवी भी यहाँ आईं और यहां से रामगोविन्द बाबू वकील के साथ बेगूसराय, सावडिया आदि स्थानों में गईं। इन सबों के आने से यहां की महिलाओं में कुछ जागृति आई और वे इस आंदोलन में पुरुषों का साथ देने को तैयार हुईं।

सन् १९३० ई० में मुंगेर में एक बम का मुकदमा चला था। यहां छपरा के पशुपति सिंह के एक पाकेट में बम पाया गया जिससे उनकी गिरफ्तारी हुई और उनपर मामला चलाया गया। परन्तु, सबूत नहीं मिलने पर मुकदमा उठा लिया गया और श्री पशुपति सिंह छोड़ दिये गये।

मुंगेर जिले से बीहपुर-सत्याग्रह में भी बहुत लोग सम्मिलित हुए थे। भागलपुर जिलान्तर्गत बीहपुर नामक स्थान में जप्त आश्रम पर कब्जा करने का सत्याग्रह चल रहा था। स्वयंसेवक पांच पांच की टोली में आश्रम पर जाते थे और गिरफ्तार कर लिये जाते थे। पीछे उनपर लाठी प्रहार भी होने लगा। धीरे-धीरे इस सत्याग्रह ने एक तरह से प्रान्तीय रूप धारण कर लिया और दूसरे स्थान के लोग भी उसमें भाग लेने लगे। स्वयं राजेन्द्र बाबू और स्वर्गीय जारी साहब पर भी यहां लाठी प्रहार हुआ था।

गोगरी—सत्याग्रह समर की तैयारी में गोगरी का स्थान सर्वप्रथम था। यहां लगभग एक हजार कार्यकर्ता और स्वयंसेवक रहते थे। गोगरी, महेशखूंट और नयागांव में इसका स्थायी आश्रम था। आगे चलकर और कई स्थानों में भी शिविर खोला गया। पुराने कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त अनेक नये उत्साही कार्यकर्ता मैदान में आने लगे। विदेशी और मादक द्रव्य की दूकानों पर कई स्थानों में धरना देने का काम आरम्भ किया गया। सैकड़ों स्वयंसेवक गिरफ्तार किये गए। अनेक को मारपीट कर छोड़ भी दिया गया।

जून सन् १९३० ई० में एक बार महेशखूंट स्टेशन पर शराब के कुछ ड्राम मगाये गए। यहां से दूकानदार उन्हें अपनी दूकान पर गोगरी ले जाना चाहता था। अतएव स्टेशन पर ही धरना देनेका काम शुरू कर दिया गया। पुलिसवाले वहां पहुँच गये और स्वयंसेवकों का मारने-पीटने और गिरफ्तार करने लगे। कई दिनों तक यहां सत्याग्रह चलता रहा। पीछे पुलिस ने ड्राम, वहां से दूसरे स्टेशन, पसराहा भेज दिया। वहीं से चुपचाप दूकान पर ले जाने का प्रयत्न होने लगा। इस खबर के मिलते ही सत्याग्रही दौड पडे और वहां भी सत्याग्रह कर दिया। ड्राम फिर ट्रेन से महेशखूंट वापस लाया गया। पं० सुरेशचन्द्र मिश्र के नेतृत्व में फिर पिकेटिंग शुरू हुई। स्वयंसेवक गिरफ्तार होने लगे। अन्त में स्थिति गम्भीर देखकर कलक्टर, पुलिस सुपरिटेंडेंट आदि हथियार बन्द पुलिस के साथ वहां पहुँचे। परन्तु, उनके आने के पूर्व ही इस बात पर पिकेटिंग उठा ली गई कि अब आगे वहाँ ड्राम नहीं मंगाये जायंगे।

गोगरी थाने में टैक्सबन्दी की भी तैयारी हुई। बहुत से इलाकों में लोगों से इस सम्बन्ध में

प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराय गए। पौरा सर्कल में कुछ लोगों ने टैक्स वन्द भी कर दिया और उनके माल-असवाव कुर्क भी हुए।

चौथम—चौथम इलाके का काम गोगरी थाना काँगरेस कमिटी द्वारा ही चलाया जाता था। वहाँ उस साल पुलिस थाना कायम हो गया था। पर काँगरेस कमिटी नहीं वनी थी। चौथम थाने मे डुमरी, बलहा और मनसी खुटिया में मादक द्रव्य की दूकानों पर धरना दिये जाने का काम होता था। यहाँ भी और जगहों की भाँति स्वयसेवक पकड़े जाते थे और उन पर मार पड़ती थी।

बख्तियारपुर—वख्तियारपुर थाने मे काँगरेस का काम सन् १९२९-३० ई० से ही कुछ संगठित रूप से होने लगा था। यहाँ उस समय काँगरेस का अपना कोई कार्यालय या आश्रम नही था। बख्तियारपुर के दुर्गास्थान मे, खलखुआ के एक शिवालय मे और वलवा हाट की एक ठाकुरवाड़ी मे स्वयसेवकों के शिविर थे, जहाँ वे रहकर कार्य-संचालन करते थे। भटपुरा, सुगमा और धोपुरा मे भी कुछ दिनो के लिए शिविर खुले थे।

खलखुआ और वलवा हाट मे विदेशी कपड़े की गाँठे वँधवा देने मे कोई कठिनाई नही हुई। परन्तु, बख्तियारपुर मे स्वयंसेवकों को बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े। वहाँ पुलिस से भी ज्यादा जमीदार का जुल्म था। जमीदार अपनी जमीदारी की हाटों मे धरना होने देना नही चाहता था। अतएव उसने लठैतों को भेजकर स्वयंसेवको को तरह-तरह से सताया। श्री रौदीमण्डल नाम के एक स्वयंसेवक को जानवर की तरह खूटे म वाध कर पीटा गया था। जब मार से वे नहीं डरे तो आँखों मे मिरचाई डाली गयी। पीछे और भी कई स्वयसेवकों की आँखो मे मिरचाई डाली जाने लगी। जुल्म जितना वढ़ता गया, स्नयंसेवक उतनी ही अधिक तत्परता से काम में लगे रहे और अन्त मे कपड़े की गाँठे वँधवा कर ही उन सवों ने दम लिया।

खगड़िया—खगड़िया थाने के अन्दर हथवन, हरपुर, मोहराघाट, इचरुआ, ओलापुर, वछौता, लाभ-गाँव, रानी सकरपुरा और खगड़िया मे धरना देने का काम होता था। हथवन मे गाँजे की दूकान थी। वहाँ धरने में कुछ व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इसके वाद ही दूकान वन्द हो गई। इसी तरह इस थाने के हरपुर, ओलापुर, मोहराघाट, इचरुआ आदि गाँवो मे भी शराब-गाँजे की दूकान थी। इन सभी दूकानों पर धरना दी गई और ये एक-एक कर वन्द होने लगी।

बेगूसराय—वेगूसराय सवडिवीजन मे सवडिवीजनल काँगरेस कमिटी का निर्माण हो चुका था। अतएव थानेभर के कार्य का सचालन सदर दफ्तर से ही होता था। वेगूसराय सबडिवीजनल-सत्याग्रह के प्रथम अधिनायक (डिक्टेटर) श्री रामचरित्र सिह (मौजूदा सिचाई मन्त्री) थे, जून के अन्त में गिरफ्तार हुए। इनके गिरफ्तार हो जाने पर क्रमश. कई अधिनायक वने। श्री रामकिशोर सिंह, मझौल के श्री रामधीन सिह वकील, तेघड़ा थाने के मौलाना अवु महम्मद इशाक और जेल से छूटकर आने के वाद श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा अधिनायक हुए। इस आन्दोलन मे वेगूसराय का गोलीकाड और वीहट में पुलिस का आतंक, दो

प्रमुख घटना है। सबडिवीजन में लगभग १३०७ व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। इस सबडिवीजन से कई जत्था बिहपुर सत्याग्रह में भी भेजा गया था।

२६ जनवरी सन् १६३१ ई० को स्वतन्त्रतादिवस पर बेगूसराय में एक जुलूस निकाला गया। यह जुलूस पहाम ग्राम के निकट से, जहां अब कवि मुहृद के नामपर 'मुहृद नगर' महल्ला हो गया है, निकाला गया था। बेगूसराय टाउन-थाने के पास जब जुलूस पहुँचा, सबडिवीजनल अफसर और डिप्टी पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जुलूस भंग करने की आज्ञा दी। पर उत्साह के रंग में सराबोर भीड़ ऐसी आज्ञा को कैसे मानती? ऐसा न करने पर ब्रह्मचारी श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा आदि को गिरफ्तार कर लिया गया और सशस्त्र सिपाहियों को जुलूस के दूसरे लोगोंपर लाठी प्रहार करने की आज्ञा दी गई। लाठी-प्रहार के समय भीड़ में से कुछ लोगों ने ढेले फेंके। ढेले फेंकने ही लोगों पर गोलियों की वर्षा की जाने लगी। सिपाहियोंने लोगों को खदेड़ खदेड़ कर और दूकानों में घुसा-घुसा कर गोलियाँ चलाईं। इस गोलीकाण्ड में ६ व्यक्ति तो मर गये और बहुत घायल हुए। इन शहीद व्यक्तियों में भैरवार के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री चन्द्रशेखर-प्रसाद सिंह थे। फसला सर्किल के चौकीदारी टैक्सबन्दी आन्दोलन के वे नेता थे। उस समय भी इन पर चार-पांच मुकदमे चल रहे थे। दूसरे शहीद व्यक्ति पहसारा के श्री बनारसी प्रसाद सिंह थे जो उसी साल मैट्रिक परीक्षा की तैयारी में थे। तीसरे शहीद नन्दुआर के श्री रामचन्द्र सिंह थे जो कांग्रेस के एक उत्साही स्वयंसेवक थे। चौथे शहीद रतनपुर के एक गृहस्थ श्री छठ्ठू सिंह थे जो जुलूस देखने को आये थे। पाँचवें शहीद एक राही महापात्र और छठें शहीद एक भिक्षुक थे जिनके नामका अब तक पता नहीं चला। इस गोली-काण्ड की जांच के लिए प्रान्तीय कांग्रेस की ओर से बाबू अनुग्रहनारायण सिंह आये थे। पीछे बिहार सरकार के गृह-सदस्य श्री सिफ्टन (जो पीछे गवर्नर हुए), भागलपुर के कमिश्नर तथा मुंगेर के कलक्टर भी आये। सन् १६३० ई० के सत्याग्रह संग्राम में इस तरह का हत्याकाण्ड प्रान्त में कहीं नहीं हुआ था।

पं० मोतीलाल नेहरू का ७ फरवरी सन् १६३१ ई० को स्वर्गवास होगया था। अतएव १५ फरवरी को देशभर में मोतीलाल दिवस मनाया गया। बेगूसराय में भी इसकी तैयारी हुई और एक विराट जुलूस निकालना निश्चित किया गया। गोलीकाण्ड हुए अभी बीस ही दिन हुए थे कि फिर जुलूस की तैयारी हुई। सरकारी अधिकारियों को जनता द्वारा लूटपाट किये जाने की आशंका हुई। इससे उन्होंने बाबू-बिसुनदेव नारायण सिंह एम० एल० सी० और राय साहब रासधारी सिंह को कांग्रेस आफिस भेजा। उस समय जिला कांग्रेस आफिस से बाबू बलदेव प्रसाद सिंह आये थे। उनके साथ बात तय हुई कि पुलिसवाले जुलूस के समय सड़कपर नहीं रहे, फिर यदि किसी तरह की गड़बड़ी हुई तो उसकी जवाब-देही सरकारी अफसरों पर ही होगी और यदि पुलिस के न रहते कोई दुर्घटना घटी तो उसका उत्तरदायित्व जुलूस के आयोजकों पर रहेगा। तदनुसार पुलिसवाले और एस० डी० ओ० वगैरह अपनी तैयारी के साथ थाने के अन्दर ही रहे। जुलूस बाबू बलदेव सिंह और बाबू सिद्धेश्वर सिंह के नेतृत्व में शान्तिपूर्वक निकला और सभा भी हुई।

तेघड़ा—तेघडा थाने के अन्दर सन १६३० ई० में आन्दोलन खूब जोरों से चला और लगभग ६०० आदमी गिरफ्तार हुए। यहाँ तेघड़ा, बछवाड़ा, मनसूरचक, बीहट और फुलवरिया में स्वयंसेवको के शिविर थे। तेवड़ा और वछवारा के शिविर कई वार जलाये गये और वर्तन वगैरह पुलिस उठा ले गई। मनसूरचक में पुलिस ने दो वार लूटपाट की। पीछे अयोध्या, वैजलपुरा और दुलारपुर मे भी गुप्तरूप से शिविर खोले गए। सन १६३१ ई० के आरम्भ मे वछवाड़ा और मनसूरचक के स्थान में मरांची में शिविर था। मादकद्रव्य की दूकानों पर धरना देने का काम तेघड़ा, वछवाड़ा, मनसूरचक, फुलवरिया, मेहदौली, नौला, वीरपुर, वीहट, वारो और सिमरिया घाट मे होता था। धरना के समय स्वयंसेवकों पर वहुत मारपीट होती थी और वे गिरफ्तार किये जाते थे।

तेघड़ा थाने का वीहट ग्राम विहार का वारदोली हो गया था। यहाँ के नेता वावू रामचरित्र सिंह और वावू नथुनी सिह के प्रयत्न से विहार विद्यापीठ के कुछ अध्यापकों और विद्यार्थियों का एक दल अध्यापक रामनिरीक्षण सिंह के नायकत्व मे वीहट मे काम करने आया था। उसने ग्राम को सत्याग्रह के लिए तैयार किया। वहाँ करीव सवा सौ स्वयसेवक भर्ती किये गये जिनमे कुछ गढ़पुरा के नमक सत्याग्रह में, कुछ वेगूसराय के धरने पर और कुछ तेघड़ा के धरने पर भेजे गये थे। वीहट मे ग्राम-पंचायत कायम की गई। कुछ गाँवों को मिलाकर एक सर्किल पंचायत भी कायम हुई जिसकी वैठक हर १५ दिन पर होती थी। विदेशी वस्त्र तथा मादक-द्रव्य के वहिष्कार का काम जोरो से किया गया। कुछ ही दिनो में ग्राम के सारे ताड़ों की वल्लरियाँ काट दी गईं। इस तरह के काम से घवडाकर सरकार ने दमन करना शुरू किया। एक दिन पुलिस आकर वावू लड्डू सिंह को गिरफ्तार कर ले गई जो जेल से आते ही मर गये। दूसरे दिन एस० डी० ओ० हथियारवन्द सिपाहियो के साथ वावू वलदेव सिंह और वावू वच्चा सिह को गिरफ्तार करने आये तो उन्होने गाँववालो पर मारपीट करना भी शुरू कर दिया। पुलिसवालों की इस हरकत से गाँव के लोग उत्तेजित हो उठे। कुछ लोगो ने ढेले फेके। धक्का देने पर श्री भीखा सिंह नामक एक व्यक्ति ने एक सिपाही को पटक कर उसकी वन्दूक छीन ली जो पीछे उसे लौटा दी गई। इस घटना के वाद मुंगेर के कलक्टर कई दर्जन सशस्त्र पुलिस के साथ यहाँ आये। वन्दूक छीनने आदि के अभियोग पर गाँव के ३८ व्यक्तियो पर मुकदमा चलाया गया जिसमे ६ व्यक्ति छोड़ दिये गए, वाकी २६ को दो-दो वर्ष की सजा हुई। इस तरह के दमन से लोग दवे नही; वल्कि और भी आगे वढ़कर चौकीदारी टैक्स वन्द करने का आन्दोलन खड़ा कर दिया। सरकार ने इसको रोकने के लिए सवा सौ सशस्त्र सैनिक वहाँ भेजा और खर्चे के लिए वीहट तथा मथुरापुर ग्राम पर ८० हजार प्युनिटिव टैक्स लगाया। इन सैनिकों ने ग्राम में ऐसा आतक मचाया कि सारा ग्राम उजाड़ पड़ने लगा। स्त्री-वच्चे गाँव छोड़-छोड़कर वाहर भागने लगे। सिर्फ थोड़े से लोग जहाँ-तहाँ रह गये जो खेती-वारी और घरो की रखवाली करते थे। वीहट गाँव के कुछ कार्यकर्त्ता गिरफ्तार भी हुए जिनमें शहीद श्री रामचरित्र शर्मा प्रमुख थे। रामचरित्र शर्मा एक परम उत्साही और आदर्शवादी देश-सेवक थे। वह गिरफ्तार करके एक साल की कड़ी

सजा के साथ भागलपुर सेन्ट्रल जेल में भेजे गए। और कहना नहीं होगा कि वहीं जेल की चहार-दिवारी के भीतर घुलघुलकर उनकी मृत्यु हुई एवं उनकी आत्मा की चिर समाधि बनी।

बरियारपुर—बरियारपुर थाने में बरियार, मभौल, गढ़पुरा, मानीपुर, बाड़ा, बरियारपुर और नाव कोठी में शराब ताड़ी और गाजा-भांग की दूकानों पर धरना दिया जाता था। कांग्रेस का शिविर मभौल में कुछ दिन श्री मेदिनी सिंह के दरवाजे पर था। पीछे उसकी अपनी भोपड़ी बूढ़ी गंडक के किनारे चबरी घाट पर बनी। भिन्न भिन्न स्थानों पर धरना देने का काम कुछ तो स्थानीय स्वयसेवक करते थे, और कुछ मभौल शिविर से भेजे जाते थे। दक्खिन बरियारपुर के कामों का संचालन मभौल से और उत्तर बरियारपुर का मभौल और सिंहमा से होता था।

बलिया—बलिया थाने में गये पर विदेशी कपड़ा इकट्ठा कर जलाया गया। शीघ्र ही दूकानों पर के विदेशी कपड़े की गांठें बँधवा दी गयीं। फिर बलिया, समस्तीपुर, पचबीर, मलहीपुर और परिहरा में शराब, ताड़ी और गाजा-भांग की दूकानों पर धरना दिया जाने लगा। स्वयसेवकगण बलिया स्टेशन के पास तथा बाजार के दुगा स्थान में रहते थे। १९३०ई०के मध्य में ताड़ की बलतरियां कटवाने के अभियोग में थाने के सवप्रमुख कार्यकर्त्ता श्री ब्रह्मदेव नारायण सिंह, कुछ और साथियों के साथ गिरफ्तार हुए।

करीब दो महीने बाद पुलिस सब इसपेक्टर ने कुछ कान्स्टेबुलों के साथ पचबीर जाकर वहां की पिकेटिंग के संचालक श्री लखनलाल सिंह को गिरफ्तार करना चाहा जिस पर वहां की जनता ने गिरफ्तारी का विरोध किया। पुलिस के साथ कुछ मुठभेड भी हुई। बस फिर क्या था, दूसरे ही दिन बेगूसराय से एस० डी० ओ० अपने साथ दो लारी पर, इसपेक्टर, सर्जेन्ट और कुछ सशस्त्र पुलिस को लेकर बलिया पहुँचा। उसने थाना कांग्रेस के मन्त्री श्री हृदय नारायण प्रसाद तथा यहां के दो शिविरों में रहने वाले लगभग दस स्वयसेवकों को गिरफ्तार कर लिया। दोनों शिविरों के सामान भी पुलिस उठा ले गयी। फिर वहां से पचबीर जाकर उन सबोंने लगभग २५ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया। एक महीना के अन्दर श्री लखनलाल सिंह की मृत्यु बेगूसराय जेल में ही हो गई। उनकी लाश वहां के कार्यकर्त्ताओं के हवाले की गयी और रामदिरी घाट पर उसका अग्नि-संस्कार बड़ी सजधज के साथ किया गया।

खड़गपुर—खड़गपुर थाने के अन्दर खड़गपुर, बरियारपुर और मिल्की में स्वयसेवकों के शिविर थे। बरियारपुर वास्तव में मुंगेर मुफस्सल पुलिस थाने के अन्तर्गत है परन्तु कांग्रेस संगठन के अन्दर यह सब दिन खड़गपुर थाने में रहा। खड़गपुर थाने के सत्याग्रहियों का एक जत्था मुंगेर गया था जो वहां के काम के लिए सुरक्षित रखा गया था। नमक कानून तोड़नेवाले प्रथम जत्था के एक युवक श्री तुलानन्द सिंह मुंगेर में बीमार पड़े और वहां से खड़गपुर नेशनल स्कूल लाये गए। खड़गपुर शिविर में ही उनकी मृत्यु हो गई। खड़गपुर थाने के अधिनायकों में बाबू नन्दकुमार सिंह, बाबू बनारसी प्रसाद सिंह, बाबू जयमंगल सिंह शास्त्री और बाबू युगलकिशोर सिंह शास्त्री थे। बाबू नन्दकुमार सिंह चौकी में नमक

सत्याग्रह का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार हुए जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। बाबू बनारसी सिंह अगस्त मे राष्ट्रीय-विद्यालय मे गिरफ्तार कर लिए गए थे।

तारापुर—तारापुर थाने मे असरगंज, तारापुर, चैनपुरा, रणगाँव और बलुआहा मे शिविर थे। इन शिविरों पर समय-समय पुलिस के धावे हुआ करते थे। रणगाँव और तारापुर शिविर मे पुलिस ने सामान भी लूट लिए थे। पिकेटिङ्ग असरगंज, तारापुर, संग्रामपुर और चैनपुरा मे होती थी, जहाँ शराब-ताड़ी और गाँजा-भाँग की दूकाने थी। ताड़ी की दूकानें और कई जगहो मे थी और वहाँ भी धरना देने का काम कुछ दिनों के लिए किया जाता था। मारपीट और गिरफ्तारी तो हर जगह के लिए आम बात थी। एक संग्रामपुर मे भागलपुर जिले की पुलिस ने धरना देते समय श्री जगदीश प्रसाद नाम के एक छोटे लड़के को बहुत पीटा और गिरफ्तार भी कर लिया। इस पर जनता क्षुब्ध हो उठी और लोगों ने लड़के को पुलिस से छीन लिया, और पुलिस को मारा भी। दो तीन दिन बाद तारापुर थाना तथा भागलपुर जिलान्तर्गत बेलहर थाना से पुलिस आ जुटी। भागलपुर से भी पुलिस के तीन दर्जन हथियारबन्द सिपाही पहुँच गए। सबने मिलकर बड़ा जोर-जुल्म मचाया। उस समय थाने के कुछ प्रमुख व्यक्ति सर्वश्री वासुकीनाथ राय, श्री नारायण पाठक, सुरेश्वर पाठक वहाँ के शिविर मे थे। वे लोग पकड़ कर खूब पीटे गये और गिरफ्तार भी कर लिए गए।

विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार का एक नया ढङ्ग यहाँ अख्तियार किया गया। जो लोग विदेशी वस्त्र पहन कर मन्दिरों मे जाते थे, उन्हें रोका जाता था। अतएव मन्दिरों पर धरना देने के लिए भी स्वयंसेवक नियुक्त किए गए। यह काम रणगांव के मन्दिरो से आरम्भ किया गया। पीछे असरगंज (जलालाबाद), कुमरसार, संग्रामपुर, धौनी, लखनपुर के मन्दिरो पर भी धरना दिया जाने लगा। लखनपुर मे स्वयंसेविकाओं द्वारा मन्दिर पर धरना दिया जाता था। देखादेखी खड़गपुर थाने मे भी मन्दिर पिकेटिङ्ग चल पड़ी। इसमे पुलिस की कहीं छेड़छाड़ नहीं हुई।

जमालपुर और मुंगेर मुफस्सल—सन् १९३० ई० के आन्दोलन मे मुंगेर मुफस्सल थाने के अन्दर बहुत से नये कार्यकर्त्ता तैयार हुए। सन् १९३० ई० के प्रारम्भ मे थाना काँगरेस कमिटी संगठित की गई जिसका आफिस जमालपुर मे रखा गया। सत्याग्रह के संचालन के लिए नौआगढी मे एक शिविर की स्थापना हुई। जमालपुर, नौआगढ़ी, पाटम, धरहरा और बगलवा मे धरना दिया जाने लगा।

अक्टूबर मास में यहाँ धरना के सिलसिले मे ही एक बहुत बड़ा गोली-काण्ड हो गया। ७ नम्बर के फाटक के पास गाँजे की दूकान पर पिकेटिंग करते समय पुलिस के किसी सिपाही ने एक स्वयंसेवक को पीटा। इसकी खबर कारखाने के मजदूरों को लगी। वे उत्तेजित हो उठे। कुछ ने उस सिपाही को बहुत मारा। बस फिर क्या था? ४ बजे सन्ध्या समय जिला मजिस्ट्रेट कई दर्जन हथियारबन्द पुलिस के साथ आ धमके और चुन-चुन कर कुछ सन्दिग्ध मजदूरों को गिरफ्तार करने लगे। मजदूरो मे उत्तेजना फैली। अतएव उनमें कुछ ने पुलिस पर ढेले चलाये। इस पर पुलिस ने गोलियाँ दागना आरम्भ कर दिया। इस

गोलीकाण्ड में ६ व्यक्ति मरे और कई दजन घायल हुए। मजदूरो को उभाड़ने के अभियोग में श्री राम स्वरूप शर्मा और श्री माधोसिंह पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें डेढ-डेढ साल की सजा हुई। वे गाधी इरविन पैक्ट में भी नही छोडे गए।

सूर्यगढ़ा—सूयगढा थाने में सन् १९२९-३० ई० मे सूयगढा, घोर्नट, कजरा, उरैन, अलीनगर और देवघडा में शिविर कायम किये गये जहां स्वयमेवकगण रहने लगे। यह थाना बाबू बलदेव प्रसाद सिंह का कार्यक्षेत्र था और वे जिला बोर्ड के चुनाव में भी बराबर यही से खडा हुआ करते थे। सन् १९३० ई० के आरम्भ में वे वहां गये और स्वयसेवको का एक जत्था बनाकर उन्होने थानेभर का दौरा किया। नमक सत्याग्रह के बाद वहा सूयगढा, कजरा, पीरी, अलीनगर, मेदिनी चौकी और उरैन में धरना देने का काम आरम्भ किया गया। थाने में पहले पहल पीरी बाजार के गाँजे की दूकान पर गिरफ्तारी हुई।

लक्खीसराय—लक्खीसराय थाने मे चित्तरजन आश्रम कांग्रेस कार्य का मुख्य केन्द्र था। यहीं से स्वयसेवकगण, लक्खीसराय और मननपुर में, धरना देने का काम करते थे। धरना पर जब दल के दल स्वयसेवक पहुँचने और गिरफ्तार होने लगे, तब पुलिसवालो ने अचानक रात मे आकर आश्रम पर धावा बोल दिया और यहां के सभी कार्यकर्त्ताओ को गिरफ्तार कर आश्रम में ताला लगा दिया। इसके बाद शहर के दक्षिण हसनपुर पहाडी पर शिविर कायम किया गया। इसके सिवा बालगूदर के शिवालय तथा हलौत की धर्मशाला में भी शिविर चल रहे थे।

नवम्बर में जवाहर-दिवस के अवसर पर एक भारी जुलूस बाजे-गाजे के साथ भारतीय दड विधान का १४४ दफा तोडते हुए निकला। इसका नेतृत्व प० कार्यानन्द शर्मा की बहन श्रीमती सेवा देवी और उनकी देवरानी श्रीमती विद्या देवी कर रही थीं। दो दिन बाद आश्रम से इन दोनो देवियो की गिरफ्तारी हुई। उन्हें छ छ महीना सख्त कैद की सजा मिली। ये मुगेर जिले से पहले पहल जेल जानेवाली महिलाएँ थी।

थाने के अन्दर जेल जानवालो की सख्या लगभग पौने दो सौ थी। कार्यानन्द शर्मा, मुद्रिका पाण्डेय, मुगेर जिला कांगरेस का० क० के वर्तमान मन्त्री आदि इनमें प्रमुख थे। लक्खीसराय शिविर से एक हरिजन मेहतर भी गिरफ्तार हुआ और जेल गया। महसौन ग्रामवासी श्रीयुत ब्रह्मदेव सिंह जेल में ही यक्ष्मा रोग के शिकार हुए और लौटकर आने के दो-तीन महीने के बाद ही परलोक सिधारे।

बडहिया—बडहिया थाने में सत्याग्रह की तैयारी सन् १९२९ ई० से ही जोर पकड रही थी। उसी साल अप्रैल में, जगदम्बा पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रान्त के गण्यमान्य नेताओ के अतिरिक्त जिला के प्रमुख नेता श्रीकृष्णसिंहजी भी यहां पहुँचे। उन्ही के समक्ष कांगरेस कमिटी का सगठन किया गया और उत्साहपूर्वक काम होने लगा। हिन्दुस्तानी सेवादल के कार्यक्रम के अनुसार प्रत्येक मासके अन्तिम रविवार को झंडाभिवादन किया जाता था। प्रारम्भ मे इस काय में कुछ आदमी बाधा डालने लगे। वे अवसर झंडा चुरा लेते थे और बांस उखाड़कर फेंक देते थे। इससे कार्यकर्त्ताओ में और भी उत्साह बढ

गया और जोश मे आकर घर-घर झंडा फहराया जाने लगा। फलस्वरूप धीरे-धीरे उपद्रव भी शान्त हो गया।

नमक सत्याग्रह के वाद, १६ मई से, धरना का का काम प्रारम्भ हुआ। वाजार मे विदेशी वस्त्रों की गाँठे वँधवा दी गई। कुछ दिनों के वाद शराव और गाँजा-भाँग की दूकानों पर धरना दिया जाने लगा। इन्दुपुर में भी पिकेटिंग होने लगी। ताड़ के बगान में भी धरना दिया जाने लगा। वड़हिया के एक दूकान-दार ने श्री वैद्यनाथ शर्मा, श्रीनाथ शर्मा, श्री सरयू महतो और वेला गोप—इन चार सत्याग्रहियों पर लूट का अभियोग लगाया और उन्हें मुकदमा चलाकर जेल भेजा। इस पर उसका सामाजिक वहिष्कार हुआ। दूकानदार ने माफी माँगी, और २१ चरखे दान में दिये। नेकचलनी का २००) का मुचलका भी दिया।

वड़हिया मे चौकीदारी टैक्स-वन्दी का उद्योग भी किया गया। लोगों से प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराया जाने लगा। किन्तु, पीछे यह आन्दोलन वन्द कर दिया गया और चौकीदारों तथा दफादारों से इस्तीफा दिलाया जाने लगा। इस सिलसिले में यहाँ के दो कार्यकर्त्ता, श्री यमुनाप्रसाद सिंह और श्री वल-राम अन्य चार साथियों के साथ, पकड़े भी गए।

अव तक वड़हिया थाना काँगरेस कमिटी कोई स्वतन्त्र कमिटी के रूप में नही थी। वड़हिया लक्खीसराय थाने के अन्दर पड़ता था, अतः यहाँ की काँगरेस कमिटी भी, विधानानुसार लक्खीसराय थाना काँगरेस कमिटी की ही एक शाखा थी। सन् १९३० ई० में यहाँ के कार्यकर्त्ताओं मे से प्रमुख दो कार्य-कर्त्ता, श्री रामरीझन प्रसाद सिंह तथा श्री नन्दा प्रसाद सिंह, ने वड़हिया को लक्खीसराय से भिन्न एक स्वतन्त्र थाना काँगरेस कमिटी के रूप मे घोषित कर दिया एवं जिला काँगरेस कमिटी से सीधा सम्वन्ध रखकर काम चलाया जाने लगा। इस कमिटी की स्वीकृति जिला काँगरेस कमिटी की ओर से अगले साल हुई। लक्खीसराय से भिन्न, सत्तर गाँवों का यह एक विशेप थाना माना गया। हड़ोहर नदी इन थानाओं की सीमा वनी। उन दिनों वड़हिया मे पुलिस की फाँड़ी भी कायम नही की गई थी। फांड़ी कायम हुई सन् १९३१ ई० में और स्थायी थाना बना १९४४ ई० मे।

नवीन थाना काँगरेस कमिटी की देखरेख में सत्याग्रह-आन्दोलन का संचालन और भी विशेष उत्साह और लगन के साथ किया जाने लगा। १६ नवम्बर को जवाहर-दिवस खूव धूम-धड़ाके के साथ मनाया गया। एक वहुत वड़ा जुलूस निकाल कर वड़हिया, इन्द्रपुर, ताजपुर, गंगासराय आदि गाँवो में घुमाया गया और क्रान्तिकारी नारे लगाए गए।

सन् १९३१ ई० की २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस और १६ फरवरी को मोतीलाल-दिवस भी मनाए गए। यहाँ से सैंकड़ों कार्यकर्त्ता जेल गए। गाँधी इरविन समझौते के अनुसार सत्याग्रहियों के छूटकर आने पर यथेष्ट स्वागत किया गया था और उन्हें एक सार्वजनिक सभा कर के चाँदी की तकली भेंट की गई थी।

शेखपुरा—श्री रावेलाल की ठाकुरवाड़ी मे शिविर कायम हुआ। स्थानीय कार्यकर्त्ताओ के द्वारा

आधा मई तक काम चला। पर पीछे पुलिस की सख्ती से तंग आकर बाजारवालों ने सहयोग देना छोड़ दिया। अब लक्ष्मीराय आश्रम से सवश्री रामानन्द शर्मा और श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह, आदि पचास कार्यकर्त्ता यहाँ आकर काम करने लगे। दूकानदारों ने तो एक हफ्ते की पिकेटिंग के बाद ही विलायती कपड़े की गाठें बाँध दी, परन्तु मुसलमानों की दूकान पर महीने भर पिकेटिंग चलती रही। स्वयसेवकों पर पुलिस की मारपीट भी होती थी।

इसके बाद ही मादक द्रव्य की दूकानों पर धरना दिया जाने लगा। धरने के सिलसिले में इस थाने से सब श्री बालेश्वर प्रसाद वर्मा, नारायण महतो, बैजनाथ मिश्र, लगनलाल शर्मा, रामरूप लाल वर्मा और श्री दुक्खीलाल कायस्थ आदि गिरफ्तार हुए।

बरबीघा—यहाँ बरबीघा, काजीचक और शेखपुर में शिविर थे। बरबीघा में एक ठाकुरवाडी के अन्दर शिविर था और शेष दोनों स्थानों में अपनी झोपडियां बनाकर शिविर चलाये जाते थे। धरना देने का काम बरबीघा, काजीचक, शेखपुर और रमजानपुर में होता था। शेखपुर में १८ व्यक्ति और काजी-चक में ६-७ व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। बरबीघा में चार-पाँच साथियों के साथ श्री पचानन शर्मा खजूर के पेड और ताड की वल्लरियाँ कटवाने के अभियोग में गिरफ्तार हुए थे। पिकेटिंग में करीब दो दर्जन स्वयसेवक पकड़े गए। थाने के प्रमुख नेता श्री कृष्णमोहन प्यारे सिंह (उर्फ लाला बाबू) अक्टूबर में गिरफ्तार किये गए और और उन्हें ६ मास कैद की सजा हुई।

जमुई—जमुई थाने में जमुई, मरलेपुर, लक्ष्मीपुर, खैरा और परसडा में शिविर थे। इन्हीं स्थानों में पिकेटिंग का काम भी होता था। आन्दोलन के सिलसिले में यहा की एक घटना विशेष उल्लेखनीय है। जमुई हाई स्कूल के हेडमास्टर की नाक काट डाली गई। बात यों हुई, कुछ लडकों ने स्कूल में झंडा फह-राया। हेड मास्टर ने झंडा उतार कर आफिस में रखवा दिया। लडके आफिस में सुबह से शाम तक भूखे रहकर झंडे के लिए सत्याग्रह करने लगे। एस० डी० ओ० ने आकर आखिर झंडा दिला दिया। झंडा लेकर लडकों ने जुलूस निकाला। दूसरे दिन समय से पूर्व ही ग्रीष्मावकाश के नाम पर स्कूल बन्द कर दिया गया। अवकाश के बाद जब स्कूल खुला तो हेडमास्टर ने हुक्म निकाला कि कोई लडका झंडा नहीं लगा सकता और कोई राजनीतिक सभा में भाग नहीं ले सकता है। कुछ लडकों पर उसने दो-दो रुपये जुरमाने भी किये। उसी दिन कांग्रेस मैदान में लडकों ने सभा की और तय किया कि हेडमास्टरके सभी हुक्म तोडे जायें और लडके जुरमाना नहीं दें। इस निश्चय के अनुसार दूसरे दिन सभी लडके राष्ट्रीय झंडा लगाकर स्कूल आए। हेडमास्टर ने सब को झंडा फेंक देने की आज्ञा दी। लडके इसके लिए तैयार नहीं हुए। इसपर हेडमास्टर ने कुछ लड़कों को बेत से बडी निर्दयतापूर्वक पीटा। हेडमास्टर की इस ज्यादती पर दूसरे दिन लडकों के अभिभावकों की एक सभा हुई। कुमार कालिका सिंह जी भी आये। निश्चय किया गया कि जब तक हेडमास्टर हटाया न जाय, स्कूल में हडताल रहे। सात दिनों तक हडताल जारी रही। एस० डी० ओ० और कुमार साहब के बीच में पडने से किसी तरह हडताल तो भंग हुई, परन्तु लडकों को

गफ्फार खाँ, डा० खां साहब और दूसरे नेता एक-एक कर पकड़ लिए गए थे और अपने प्रान्तों से बाहर जहाँ-तहाँ भेज दिए गए थे। युक्त प्रान्त मे श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन और श्री तसद्दुक अहमद शेरवानी गिरफ्तार हो गए थे। पं० जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी जी से मिलने जाते समय प्रयाग से थोड़ी ही दूर एक छोटे स्टेशन पर डाकगाड़ी रोककर बन्दी बना लिए गए। बंगाल मे भी दमन जारी था। सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्त में आर्डिनेन्स का शासन शुरू हो गया था और बंगाल मे भी इसकी तैयारी थी। महात्मा गाँधीजी ने यहाँ आने के दूसरे ही दिन, वायसराय को तार भेजकर उनसे मिलना चाहा। परिस्थिति सम्हालने की यह कोशिश बेकार हुई। ३ जनवरी १९३२ तक दोनो ओर से तार से बाते होती रही। इस बीच सरकार ने अपनी पूरी तैयारी कर ली। एकाएक ४ जनवरी को महात्मा गाँधी और राष्ट्रपति सरदार-वल्लभ भाई पटेल गिरफ्तार कर लिए गए। सारे देश पर एक साथ वार हुआ। उसी दिन चार आर्डिनेन्स निकाल कर सारे देश पर लागू कर दिए गए। कॉंगरेस तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य संस्थाएँ गैर-कानूनी करार दी गईं। कॉंगरेसवाले सर्वत्र एक साथ गिरफ्तार किए जाने लगे। सभी कांगरेस आफिस, आश्रम, राष्ट्रीय विद्यालय, उनकी इमारते, सामान, रुपए-पैसे आदि जप्त कर लिए गए। प्रायः सभी राष्ट्रीय समाचार-पत्र बहुत दिनों के लिए बन्द कर दिए गए। सभी जगह जुल्म, ज्यादतियाँ शुरू हो गईं। गिरफ्तारी के साथ-साथ मारपीट खूब होने लगी। जहाँ-तहाँ पूर्ववत गोलियाँ भी चलने लगी।

वम्वई से लौटते समय, देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने बिहार प्रान्तीय काँगरेस-समिति की बैठक ...लाने के लिए रास्ते से कई तार भेजे; पर, पटना आने पर मालूम हुआ कि वे तार यहाँ पहुँचे ही नही। ...को सरकार ने रोक लिया था। अतएव जो लोग मिल सके, उन्हीसे परामर्श कर, उन्होंने शीघ्रही ... कार्यक्रम और आदेश तैयार कर लिया। तब तक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट, कई सशस्त्र सिपाहियों ...कत आश्रम पहुँच गए। उन्होने आश्रम और बिहार-विद्यापीठ की सभी इमारते जप्त कर ली। ...राजेन्द्र प्रसाद, उनके साथ प्रान्त के वयोवृद्ध नेता बाबू व्रजकिोर प्रसाद तथा अन्य कई ...गए गए।

...मधारी वावू, पटना मे राजेन्द्र वावू से कॉंगरेस का आदेश प्राप्त कर, मुंगेर लौटे। ... हिन्दुस्तानी सेवादल के ६० सैनिको की ट्रेनिंग तिलक मैदान मे हो रही थी। ...ण हो जाने के कारण सैनिकों की यह ट्रेनिग वन्द कर दी गई। सैनिक लोग ... दिये गए। दूसरे ही दिन, ५ जनवरी के प्रात काल मुंगेर मे, जिले के कुछ प्रमुख नेता ...आगे का कार्यक्रम निश्चित किया। शहर मे महात्मा गाँधी आदि की गिरफ्तारी ...नवरी को नेमधारी वावू, तेजेश्वर वावू, धर्मनारायण वावू और रामप्रसाद वावू ... दूसरे दिन शहर मे फिर हड़ताल रही। श्री वावू और निरापद वावू उस समय ... ९ को लौटने पर वे लोग भी गिरफ्तार हो गए। इन सबो के मुकदमे की सुनवाई ...ताओ को एक-एक साल या इससे ऊपर की कैद की सजा के अतिरिक्त हजार या

पाँच सौ रुपए जुरमाने भी हुए। जिनसे रुपया न वसूला जा सका, उनके माल असबाब कुर्क किए गए। नेताओं की गिरफ्तारी के साथ-साथ तिलक मैदान, जहाँ कांगरेस आफिस था, जप्त कर लिया गया। इसके बाद आगे का काम चलाने के लिए श्रीयुत बलदेव प्रसाद सिंह जिला अधिनायक चुने गए। वह जिला में दौरा के लिए फौरन निकल पड़े।

१५ जनवरी को विहार गवर्नर मुंगेर आए। कुछ लोगों ने उन्हें काला झण्डा दिखलाया। झण्डा दिखलानेवाले कई स्वयंसेवक गिरफ्तार कर लिए गए। २६ जनवरी को बड़ी धूमधाम से स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर १० हजार लोगों का एक शानदार जुलूस निकला। पुलिस ने जुलूस को लाठियों से तितर बितर कर कई लोगों को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद प्रतिमास को ४ तारीख को बन्दी दिवस मनाया जाने लगा। समय-समय पर और भी कितने दिवस, भिन्न भिन्न घटनाओं की स्मृति में मनाए जाते रहे—जैसे पेशावर दिवस, मोतीहारी दिवस, तारापुर दिवस, शिवहर दिवस आदि।

अखिल भारतीय कांगरेस कमिटी के डिक्टेटर सरदार शार्दूल सिंह के आदेशानुसार जब सारे देश में सरकारी इमारतों पर झण्डा फहराने का निश्चय हुआ तो मुंगेर में भी, १५ फरवरी १९३२ को, जज और मुंसिफ के इजलास पर स्वयंसेवकों ने एकाएक झण्डा फहरा दिया। झण्डा देखते ही लोगों में बड़ी हलचल मची और स्वयंसेवक पकड़ लिए गए। इसके पहले रात ही में कलक्टरी पर झण्डा फहराया जा चुका था। एक महीना बाद, १५ मार्च को, गोगरी के ५ स्वयंसेवकों ने ४ बजे दिन में कलक्टरी कचहरी पर चढ़कर सरकारी झण्डा गिरा दिया और राष्ट्रीय तिरङ्गा झण्डा फहराकर झण्डा-गान गाने लगे। यह प्रोग्राम कई महीनों तक चलता रहा। अप्रिल में राष्ट्रीय सप्ताह भी मनाया गया। १३ अप्रिल के जुलूस में श्री गीता प्रसाद चौधरी नाम के एक विद्यार्थी गिरफ्तार किए गए जो पीछे मुंगेर में कांगरेस के एक अच्छे कार्यकर्त्ता और वकील हुए।

अप्रिल १९३२ में दिल्ली में, कांगरेस का अधिवेशन हुआ। कांगरेस गैरकानूनी संस्था करार दी गई थी। अतएव उसका अधिवेशन होने देने से रोकने के लिए सरकार ने बड़ी तैयारी की। लोग छिपकर देश के भिन्न भिन्न भागों से अधिवेशन में जाने लगे। कहीं से बराती बनकर, कहीं से व्यापारी के रूप में और कहीं से साधु संन्यासी आदि के वेष में लोग दिल्ली पहुँचने लगे। मनोनीत सभापति पण्डित मदन-मोहन मालवीय रास्ते में ही गिरफ्तार हो गए थे। परन्तु, पुलिस की चौकसी के बावजूद भी कांगरेस का अधिवेशन सेठ रणछोड़ दास के सभापतित्व में, दिल्ली के चाँदनी चौक में, बड़ी चातुरी से हो गया। मुंगेर जिले से इस अधिवेशन में १४ प्रतिनिधि गए थे, जिनमें जिले के अधिनायक श्री बलदेव प्रसाद सिंह, श्री निरापद मुकर्जी के पुत्र श्री अनिल कुमार मुकर्जी आदि प्रमुख थे।

१५ जुलाई से ३१ जुलाई तक कांगरेस आफिसों पर धावा करने का प्रोग्राम था। अतएव २८ जुलाई को ५॥ बजे भोर में, तिलक मैदान में, कांगरेस आफिस का ताला तोड़कर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। पुलिसवाले धावा के डर से रात भर जगते रहने के कारण भोर में सो गए थे, इसीसे स्वयंसेवकगण ताला

तोड़ने मे सफल हुए। जब तक स्वयसेवको का दूसरा दल वहाँ गया, तब तक पुलिस इन्सपेक्टर, सुपरिन्टेन्डेन्ट, कलक्टर सभी वहाँ पहुँच चुके थे। ७ स्वयसेवक गिरफ्तार कर लिए गए। सन्ध्या को शहर मे कुछ स्वयंसेवकों ने जुलूस निकाला जिसके आगे बोर्ड पर बड़े अक्षरो मे लिखा था—"तिलक-मैदान पर धावे के लिए प्रस्थान।" इस जुलूस के ६ स्वयसेवक पकड़ लिए गए। उनके साथ स्वयसेवको के नायक श्री, लक्ष्मीसिंह भी, जो सड़क पर अलग खड़े थे, गिरफ्तार कर लिए गए। दूसरे दिन के धावे मे सदर मुफस्सल थाने के अधिनायक श्री रामगुलाम सिंह सैनिकों का नेतृत्व कर रहे थे। इस तरह ३१ जुलाई तक ६० स्वयंसेवक मुगेर मे गिरफ्तार किए गए।

मुगेर से करीब एक सौ सैनिक पटने के सदाकत आश्रम के धावे मे भेजे गए थे। अन्तिम दिन मुगेर के डिक्टेटर बाबू बलदेव प्रसाद सिह के नेतृत्व मे सदाकत आश्रम पर धावा किया गया था और वे वही गिरफ्तार हुए थे।

समय-समय पर विदेशी नमक, किरासन तेल, विदेशी कपडा, गाँजा, भाँग और ताडी-शराब की दूकानो पर पिकेटिंग होती थी और वहाँ से स्वयंसेवक गिरफ्तार होते थे तथा उन पर मार पडती थी। प्रचार के लिए, साइक्लोस्टाइल पर परचा आदि निकालने का भार श्री सुरेश्वर पाठक के ऊपर था। जिले के अन्दर कई थाने से भी साइक्लोस्टाइल पर परचे निकलते थे। आफिस गुप्त रूप से रखा जाता था। पता लगने पर पुलिसवाले वहाँ का सामान जप्त कर लेते थे और वहाँ रहनेवाले स्वयंसेवकों को भी पकड़ लेते थे। इस तरह आफिस को कई स्थानों पर हटाते रहना पड़ा। स्वयंसेवक प्रायः टूटे-फूटे घरों और मन्दिरों में छिपकर रहते थे और वही से अपना कार्य चलाते थे।

पोस्ट आफिस पर धरना देने में शहर की चार स्त्रियाँ—श्री विरंजी साहु की पत्नी श्रीमती सोना देवी, श्री केदार प्रसाद की पत्नी श्रीमती ठाकुर देवी, श्री यदुनन्दन की मा श्रीमती मूर्ति देवी तथा कौड़ा मैदान की श्रीमती यशोदा देवी गिरफ्तार हुई। पूरब सराय की एक और महिला श्री लक्ष्मी देवी भी जेल गयी थी। कई महिलाएँ तो दुवारे-तिवारे जेल गई और बहुत दिनो तक काम करती रही। खगड़िया थाने के अलौली ग्रामवासी श्री बदरी नारायण सिह की पत्नी श्रीमती सीतादेवी दो बार जेल गयीं। गोगरी थाने की १४ महिलाएँ पिकेटिंग और जुलूस से मुगेर मे गिरफ्तार हुई। इनमे गोगरी के सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ता प० सुरेशचन्द्र मिश्र की माता श्रीमती अनूप देवी, मधेपुर के श्री अवध नारायण सिह की पत्नी श्रीमती सुशीला देवी और गोगरी जमालपुर के पास चक युसुफ ग्राम के श्री विरंची मण्डल की पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी थी। ये अपने थाने मे वर्षो तक काम करती रही। सन् १९३२ मे इन्होंने देहातों मे घूमकर प्रचार का कार्य किया। शेष ११ महिलाएँ कन्हैयाचक की थी। इनमे प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री सूर्यनारायण शर्मा की पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी थी। वह बहुत दिनो तक गोगरी आश्रम और मुगेर मे रह चुकी थी। अन्य महिलाओ मे, दो एक को छोड़, शेष सभी श्री सूर्यनारायण शर्मा के परिवार की ही थीं।

सन् १९३३ के मार्च में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। अभी तक कांग्रेस गैरकानूनी संस्था थी। पिछले अधिवेशन की भांति इस अधिवेशन के भी सभापति पं० मदन मोहन मालवीय मनोनीत किये गए। किन्तु, कलकत्ता जाते हुए आसनसोल में वह गिरफ्तार कर लिए गये। उनके ही साथ स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू की पत्नी और डाक्टर सैयद महमूद भी पकड़े गये। मौजूदा बिहार-गवर्नर श्री माधव श्रीहरि अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार हुए। अन्त में श्री जे० एम० सेनगुप्त की पत्नी श्रीमती नेली सेनगुप्त के सभानेतृत्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में मुंगेर जिले के विभिन्न स्थानों से भी करीब एक दर्जन व्यक्ति प्रतिनिधि होकर गये थे। और कहना नहीं होगा कि इनमें अधिकांश या तो मार्ग ही में गिरफ्तार हो गए या कलकत्ते जाकर पकड़े गए।

कांग्रेस के गैरकानूनी करार दे दिये जाने पर समूचे देश, प्रान्त, जिला या थाने में कार्य का सचालन प्राय अधिनायक तन्त्र द्वारा किया जाने लगा। मुंगेर जिले में, श्री नन्दकेव सिंह के बाद, श्री रामचरित्र सिंह (वर्तमान सिंचाई मन्त्री) डिक्टेटर नियुक्त हुए। उस समय प्रान्तीय अधिनायक श्रीयुत शार्ङ्गधर सिंहजी थे। वह एकबार स्व० मथुरा बाबू के साथ मुंगेर भी आये थे। रामचरित्र बाबू मुंगेर से बेगूसराय जाने पर गिरफ्तार कर लिए गये। उन्हें एक साल कैद और ४००) रु० जुरमाने की सजा हुई। इसके बाद २८ अगस्त को रहीमपुर के श्री महेन्द्र प्रसाद सिंह डिक्टेटर बनाए गए। पर, वह मुंगेर आने के तीसरे दिन बाद ही साइकिल से गिरकर जख्मी हो गए और काम करने में असमर्थ हो गए। तत्पश्चात् बरबीघा थाने के श्री कृष्णमोहन प्यारे सिंहजी ने (उर्फ लाला बाबू) इस पद को सुशोभित किया। इनके समय में, ४ अक्टूबर को, बन्दी दिवस मनाया गया। एक जुलूस भी निकला जिसमें ११ स्वयंसेविकाएँ और कुछ स्वयंसेवक गिरफ्तार हुए। स्वयंसेविकाएँ अधिकतर गोगरी थाने से आई हुई थी। लाला बाबू उसी रात सोये हुए में गिरफ्तार कर लिए गए। इसके कुछ दिन बाद बड़हिया के श्री काशीप्रसाद सिंह जिला के डिक्टेटर बनाये गए। वह ३ दिसम्बर को घर पर ही गिरफ्तार हो गए। इन्हें एक वर्ष कैद और १०००) जुरमाना हुआ। ४ दिसम्बर को श्री राजेश्वरीप्रसाद सिंह (जिला कां० कमिटी के मौजूदा मन्त्री) डिक्टेटर नियुक्त हुए। वह भी, ठीक एक महीना बाद, बन्दी दिवस में जुलूस निकालने पर मुंगेर में ही पकड़ लिए गए। इसके बाद क्रमश श्रीजयमंगल शास्त्री और लक्खीसराय के श्री बिसुनदेवप्रसाद शर्मा डिक्टेटर होकर पकड़े गये। दुर्गापुर—बड़हिया के श्री देवेन्द्रनारायण चौधरी आफिस में रहकर डिक्टेटरोंको आन्दोलन-सचालन में सहायता पहुँचाते थे और बीच बीच में जब कभी डिक्टेटर नहीं रहते तो सब काम वही करते थे। इनके साथ श्री पं० परमेश्वर प्रसाद सिंह भी आफिस का काम चलाते थे। ये लोग भी पीछे गिरफ्तार हुए।

बड़हिया—गाँधी-इरविन समझौता के भंग हो जाने के बाद देश में जो फिर से आन्दोलन हुए और सरकार की ओर से भीषण दमन तथा ज्यादतियाँ हुईं, उसमें यहाँ सब से अधिक श्रेय बड़हिया, गोगरी और लक्खीसराय थाने को ही मिला। बड़हिया में विराम-सन्धि-काल में ही कांग्रेस कमिटी का नया निर्वाचन हुआ और फूस की छावनी में शिविर बनाकर कार्यकर्त्तागण आजादी की अगली लड़ाई की

तैयारी करने लगे। संधि के क्षणो मे यहाँ रचनात्मक कार्य पर विशेष जोर डाला गया। लाला लाजपत राय की स्मृति मे एक चरखा-सघ की स्थापना हुई और इसी के द्वारा थाने के गाँवो में कार्यकर्त्तागण घूम-घूमकर चरखा और खादी का प्रचार करने लगे। विदेशी वस्त्र, विदेशी नमक और विदेशी चीनी के बहिष्कार पर भी जोर डाला गया। मादक वस्तुओं का निषेध भी चलता रहा। ताड़ एवं खजूर के पेड़ बन्दोबस्त नही होते थे। पासी लोग कही चोरी से ताड़ी चुरा न ले इसके लिए स्वयसेवको की गश्ती बराबर होती रहती थी। निम्न श्रेणी के लोगो का संगठन इस प्रकार किया गया कि मादक वस्तुओ की दूकानों पर शायद ही कभी कोई जाता था। फल यह हुआ कि यहाँ आबकारी विभाग की आमदनी बिलकुल ही घट गई। इससे अधिकारी वर्ग बहुत घबड़ा उठे। पंचायत का काम, १९३० से ही, जोरो से चलने लगा था और इस इलाके मे दीवानी और फौजदारी सभी तरह के मुकदमे बन्द हो गये थे। जहाँ बड़हिया मुकदमाबाजी के लिए मशहूर था, वहाँ मुकदमा का नामनिशान ही मिट गया। समय समय पर यहाँ काँगरेस की ओर से जुलूस निकलता रहता था और प्रदर्शन होता रहता था। यहाँ कागरेस का सगठन इतना जबर्दस्त हो गया था कि ब्रिटिश सल्तनत यहाँ से उठती हुई जान पड़ने लगी। अतएव सरकार ने अपनी सत्ता और रोबदाब पुनः जमाने का प्रयत्न किया। यहाँ १८ जून १९३९ को पुलिस की फाँड़ी कायम की गई और यहाँ जमादार और कुछ कान्स्टेबुल रहने लगे। इन लोगों ने कुछ गुडो को फँसाकर काँगरेस-कार्यकर्त्ताओं पर झूठा मुकदमा चलाना आरम्भ किया। मुकदमेबाजी के प्रचार के लिए एस० डी० ओ० तथा दूसरे मजिस्ट्रेट सप्ताह मे दो बार डाकबगले में बिना फीस लिये मुकदमा सुनने लगे। यह सिलसिला कई महीनों तक चला।

६ जनवरी को उधर पुलिसवालो ने ढिढोरा पिटवाया कि काँगरेस गैरकानूनी सस्था है, अतएव बिना लाइसेन्स के उसकी तरफ से न कोई सभा करे और न जुलूस निकाले। पर, उसी दिन काँगरेस कार्यकर्त्ताओ ने बड़हिया के तिलक-मैदन मे एक सभा की जिसमे करीब पाँच-छ हजार व्यक्ति इकट्ठे हुए। ९ जनवरी को काँगरेस की ओर से फिर जुलूस निकालने और सभा करने का विचार हुआ। इसे रोकने के लिए पुलिस की ओर से जबर्दस्त तैयारी की गई। पहले तो करीब दो दर्जन सशस्त्र पुलिस सिपाही आये। परन्तु, उनसे काम चलते नही देखकर मुगेर से स्पेशल ट्रेन द्वारा करीब १०० सशस्त्र पुलिस और भेजी गई। उसके साथ सबडिवीजनल अफसर, असिस्टेन्ट पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा सर्जेन्ट थे। तीन बजे संध्या समय शिविर से जुलूस निकला और वह थाना होकर फिर शिविर मे वापस आ गया। शिविर पर झंडा फहराया गया। इतने मे सबडिविजनल अफसर सदलबल वहाँ पहुँच गये। पुलिस की इतनी तैयारी के बावजूद भी जुलूस निकल जाने का रोष तो उनके दिल मे था ही, अतएव शिविर में पहुँचते ही पुलिस ने लोगों पर लाठी-प्रहार करना आरम्भ किया। करीब दो सौ आदमी घायल हुए और एक दर्जन व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गये। उसी दिन अस्पताल के डाक्टर श्री रामावधेश प्रसाद गिरफ्तार कर लिये गये। डाक्टर साहब काँगरेसियो को दबाने मे पुलिस की सहायता नही कर रहे थे, इसलिए पुलिस उनको सन्धि-काल से

ही अपनी आँख पर लगाये हुए थी और युद्ध छिड़ते ही मौका पाकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। रात में पुलिस ने श्री कालीप्रसाद सिंह और श्री नन्हा प्रसाद सिंह के घर की तलाशी ली और उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया।

१० जनवरी से मादक द्रव्य की दूकानों पर जबरदस्त पिकेटिंग शुरू हो गई। अधिकारी वर्ग बौखलाये हुए थे ही, अतएव पिकेटिंग करनेवाले स्वयंसेवक बेतरह सताये जाने लगे। जाड़े का समय था तो भी स्वयंसेवक रात-रात भर नंगा करके भूखे प्यासे शीत में बैठाये जाते थे और कभी-कभी ऊपर से मार भी पड़ती थी। जब-तब वे लोग जेल भी भेजे जाते थे। २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस के अवसर पर पाँच-छः हजार व्यक्तियों का जुलूस निकला और तिलक मैदान में सभा हुई। इसी समय एस० डी० ओ० साहब ए० एस० पी० तथा एक सौ सशस्त्र पुलिस के साथ सभा-स्थल पर पहुँच गये। भाषण देते समय श्री बलराम सिंह को कई घूँसे लगाये गये और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। फिर लोगों पर लाठी-प्रहार प्रारम्भ हो गया। लोग खदेड़ खदेड़ कर पीटे जाने लगे। कितने को घरों में घुस कर पीटा गया। राह चलते मुसाफिर भी लाठी खाने से नहीं बचे। श्री मुकुन्दी साहु नामक एक व्यक्ति भाभा स्टेशन से बहुत दूर चन्द्रमंडी डीह के जंगल में जाकर छोड़ दिये गये। २६ जनवरी को पताका दिवस पर एक जुलूस गंगासराय और दूसरा बड़हिया में निकला। पर कोई गिरफ्तारी नहीं हुई।

४ फरवरी को बन्दी-दिवस पर ७ स्वयंसेवकों का एक जुलूस निकला। साथ में करीब ढाई हजार दर्शक भी थे। एस० डी० ओ० साहब ने कुछ लठ्ठधारी सिपाहियों के साथ बाजार पहुँच कर जुलूस को रोका और दो लड़कों को छोड़कर बाकी पांच सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया। दर्शकों पर लाठी प्रहार भी हुए। १५ फरवरी को थाने पर झण्डा फहराने की तैयारी थी, इसलिए ग्राम की हर मोड़ पर सिपाही तैनात कर दिए गए कि कोई थाने की ओर आने नहीं पावे।

दमन के नवीन अस्त्र

इस बार के आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने एक नई युक्ति निकाली। कांग्रेस कार्यकर्ताओं को कैद की सजा के साथ साथ प्रायः जुर्माने की सजा भी दी जाने लगी। जुरमाने में बड़ी-बड़ी रकमें वसूली जाती थीं। बड़हिया में सब मिलाकर लगभग आठ-नौ हजार रुपए जुरमाना किए गए। जिनसे जुर्माना वसूल नहीं होता था, उनके यहां से कई गुना कीमत के माल असबाब उठा लिए जाते थे। एक का जुर्माना दूसरा से भी वसूला जाता था। प्रायः जुरमाने में दूसरे के माल-मवेशी लाए जाकर नाजायज तौर पर कुछ रुपए लेकर छोड़े जाते थे। जब इस तरह के अत्याचार से भी लोग नहीं दबे, तो वहाँ साल भर के लिए सशस्त्र सैनिक बैठाए गए और उनके खर्च के लिए लोगों पर ८७,६०० रु० टैक्स लगाए गए। जून में ही १०० सशस्त्र सैनिक, १८ हवलदार, २ सूबेदार, एक इन्सपेक्टर और एक डिप्टी पुलिस सुपरिन्टेंडेंट यहां तैनात किए गए। सैनिकों में प्रायः पठान और गुरखे थे। टैक्स की वसूली में

बहुत जोर-जुल्म किया गया। सिपाहियों ने लोगों के साथ तरह-तरह के अत्याचार भी किए। स्त्रियों के साथ बलात्कार की बहुत-सी शिकायतें सुनने में आई। १७ जुलाई १६३२ को इंगलिश बाजार की एक १८ वर्ष की युवती को एक पाठान सिपाही रात में घर से उठा ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। इसी तरह एक खटिक की पत्नी के साथ, धर्मशाला के नौकर की एक कुमारी कन्या के साथ, उसी जगह के बनिये की बेटी के साथ तथा पास की एक भिखारिन लड़की के साथ बलात्कार की बातें सुनी गई। पुलिस अफसरों के पास इन बातों की शिकायतें करने पर भी कोई सुनवाई नहीं हुई।

६ अगस्त को यहाँ की हालत देखने के लिए बिहार काँगरेस के अधिनायक श्री शार्ङ्गधर सिंह, जिला के अधिनायक श्री रामचरित्र सिंह और उनके साथ पटना के स्व०श्री मथुराप्रसाद आये। २४ सितम्बर को इंग्लैण्ड के फ्रेंड्स आफ इंडिया लीग (भारत-मित्र-संघ) के प्रतिनिधिओ में से एक कुमारी मेनिका ह्वेटली यहां आई। उसने घूम-घूम कर यहाँ की दुर्दशा देखी और पुलिस के सिपाहियों द्वारा सताये गये स्त्री-पुरुषों के बयान लिए। एक सार्वजनिक सभा मे, अंगरेजी मे, उसका छोटा-सा भाषण हुआ जिसका हिन्दी-अनुवाद बाबू विश्वनाथ सिंह एम० ए०, बी० एल० ने लोगों को सुनाया। यद्यपि कुमारी ह्वेटली मुंगेर के कलक्टर से मिलकर और उसकी अनुमति से ही यहाँ आयी थी, तथापि उसका आना और खासकर उसके स्वागत की धूम, उसकी जाँच के कार्य अफसरों को अच्छे नही लगे। २८ मार्च १६३३ को बिहार-सरकार के गृहसदस्य श्री ह्वीटी यहाँ की स्थिति जानने के लिए आये। उनके साथ जिला के बड़े अधिकारी तथा प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य श्री विशुनदेव नारायण सिह भी थे

भीषण दमनचक्र के बावजूद भी बड़हिया काँगरेस-कार्य से पीछे नही मुड़ा। प्रचारार्थ साइक्लो-स्टाइल पर परचे निकलते रहे। कार्य-संचालन के लिए एक अधिनायक के बाद दूसरे अधिनायक की नियुक्ति होती रही। ऊपर से जो भी कार्यक्रम निश्चित होता, वह यहाँ पूरा किया जाता था। अप्रील में यहाँ से श्री मुकुन्दी साहु दिल्ली काँगरेस के प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये। जुलाई मे, सदाकत आश्रम के धावे में यहाँ के चार स्वयंसेवक शरीक हुए। सितम्बर मे, प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन मे भी दो सत्याग्रही यहाँ से गये और वहाँ जाकर गिरफ्तार हुए। धरना का काम भी चलता रहा और स्वयंसेवक गिरफ्तार होते रहे। पुलिस के रहते हुए भी कांगरेस के आदेश की अवहेलना करने पर, विदेशी माल के दूकानदारों से जुरमाना लिया जाता रहा। ताड़ की बालियाँ और खजूर के पेड़ भी काटे गये। ४ जनवरी १६३३ को सत्याग्रह-युद्ध की वर्षगाँठ धूमधाम से मनाई गई। प्रातःकाल झंडाभिवन्दन हुआ और अपराह्न में बहुत बड़ा जुलूस निकला। करीब एक दर्जन व्यक्ति गिरफ्तार हुए और लगभग १०० व्यक्ति लाठी से घायल किए गए। २१ जनवरी की रात मे, शिविर के धावा पर २५ स्वयसेवक गिरफ्तार कर लिए गए। वहाँ से कुछ सामान भी पुलिस उठा ले गई। २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस पर प्रभातफेरी हुई, लोगों ने अपने मकानो पर झण्डे लगाए। सुबह ८ बजते-बजते पुलिस ने तिलकमैदान और शिविर को घेर लिया जिससे झंडाभिवादन न होने पाये। उधर पाँच वीर सैनिकों ने पुलिस की छावनी में जाकर झण्डा फहरा

दिया। वहाँ दो-तीन सिपाही थे। वे आपे से बाहर हो गए। उन्होंने राष्ट्रीय सैनिको को खूब पीटा-पाटा और गिरफ्तार कर लिया। सन्ध्या-समय श्री रामरीझन सिंह के नायकत्व में एक बड़ा जुलूस निकला। जगदम्बा स्थान के पास सड़क पर सभा कर स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया। जुलूस के पास पहुँचने पर एस० डी० ओ० और असिस्टेन्ट पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने लाठियाँ बरसाने की पुलिस को आज्ञा दी। जुलूस में १२ सत्याग्रही थे। सब के सब चोट खाकर गिर गए। एक का सिर फूटा। श्री रामरीझन सिंह (थाना काँगरेस कमिटी के मौजूदा सभापति) तथा श्री रामविलास सिंहको भी सख्त चोट आई। वे लोग गिरफ्तार कर लिए गए। दर्शकों पर भी लाठी की वर्षा हुई। नये सैनिको का दूसरा जुलूस आया और उसकी भी यही दुर्दशा हुई। उस दिन इन्दुपुर में घर-घर घूमकर पुलिस ने औरतों और मर्दों को पीटा। ३२ गिरफ्तारियाँ हुईं। ११ व्यक्ति तो जेल भेजे गए, बाकी घरहरा स्टेशन लेजाकर छोड़ दिए गए। ४ फरवरी को वन्दी दिवस पर भी सत्याग्रही पीटे गए और गिरफ्तार हुए।

१९३३ की ३१ मई को अतिरिक्त पुलिस की एक वर्ष की अवधि समाप्त होने को थी। इसके कुछ दिन पूर्व बड़हिया और डुमरा स्टेशन के बीच पंजाब मेल गिर गया। इस काण्ड से बड़हिया में नई विपत्ति आई। यहाँ के प्रमुख कांगरेस-कर्मियो के घरों की तलाशी ली गई। गाँव के चौकीदारों की संख्या दूनी कर दी गई। इससे चौकीदारी टैक्स भी दूना हो गया। अतिरिक्त पुलिस की अवधि भी एक साल के लिए और बढ़ा दी गई, और फिर ७५,०००) रु० विशेष कर बैठाए गए। टैक्स वसूली में तरह-तरह के जुल्म ढाए गए। लोगों के माल असबाब भी कुर्क हुए। श्रीकृष्ण प्रसाद ने ४ सितम्बर १९३३ ई० में, प्रान्तीय कौंसिल में बड़हिया से अतिरिक्त पुलिस हटा लेने का प्रस्ताव भी लाया। पर वहाँ खुशामद परस्तों के कारण प्रस्ताव पास न हो सका। फिर टैक्स किश्तों में लेने का सुझाव भी उपस्थित किया गया, पर वह भी स्वीकृत नहीं हुआ। १९३४ की जुलाई में ब्रिटिश पार्लामेन्ट की साधारण सभा में भी बड़हिया की विशेष पुलिस के सम्बन्ध में चर्चा हुई थी और 'बिहार तथा उड़ीसा १९३१-३२ में'—नाम की एक पुस्तक में इस तरह लिखा गया था—

"Barhia village in the Monghyr District, had long been a notorious centre of disaffection, where the local Congress organization had been perfected and on repeated occasions had defied the district authorities and had attempted to place itself above the law. Additional Police had been posted in the village, but the local agitators ware still capable of mischief."

बड़हिया से लगभग १५० व्यक्ति गिरफ्तार हुए। गंगासराय, हृदनबीघा और रामचन्द्रपुर ग्राम के स्वयंसेवक लक्खीसराय में भी काम करते हुए जेल गए। कुछ लोग मुंगेर और पटने में भी काम करने के लिए गए थे। समय-समय पर बाहर के भी स्वयंसेवक यहाँ आते थे।

लक्खीसराय—विरामसन्धि के वाद आन्दोलन का दूसरा शक्तिशाली केन्द्र लक्खीसराय ही था। यहाँ सन् १९३१ ई० के ६ अप्रील में, श्री निरापद मुकर्जी की अध्यक्षता में सत्याग्रही स्वयंसेवको का एक सम्मेलन भी हुआ। मई मे देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद भी आए। श्री वावू ने भी इस थाने के कई गाँवों का भ्रमण किया। सन्धिकाल में चानन परगने के किसान वहुत कष्ट मे थे, अतः यहाँ के काँगरेस-कार्यकर्त्ताओं का ध्यान पहले उधर ही गया। श्री कार्यानन्द शर्मा, श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह आदि ने गाँवों मे घूम-घूम कर किसानों की शिकायतों के सम्वन्ध मे पूरी रिपोर्ट तैयार की और वहाँ के जमीन्दारों से वातें कीं। इससे किसानों की छोटी-मोटी शिकायते तो दूर हुई, पर मूल प्रश्न रह ही गए। इसकी रिपोर्ट प्रांतीय और जिला काँगरेस-समिति में भेजी गई। प्रान्तीय काँगरेस ने जाँच के लिए श्री विपिन विहारी-वर्मा, श्री नेमधारी सिंह और श्री मथुरा प्रसाद की एक समिति कायम की। पर युद्धारम्भ हो जाने पर इस विषय मे आगे कुछ नही हो सका।

सन् १९३१ ई० मे लक्खीसराय थाना काँगरेस-कमिटी का नया निर्वाचन हुआ। श्री मुद्रिका-पाण्डेय सभापति तथा श्री कार्यानन्द शर्मा और श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह मन्त्री चुने गए। आफिस का काम श्री किशोरी प्रसाद के जिम्मे सौंपा गया।

५ जनवरी को लक्खीसराय में हड़ताल हुई तथा सन्ध्या-समय दुर्गास्थान मे एक सार्वजनिक सभा। ६ ता० को थाने के कार्यकर्त्ताओं की एक वैठक श्री कार्यानन्द शर्मा के ग्राम सहूर मे की गई। विहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह जी भी, लक्खीसराय से चार मील पैदल चलकर, वहाँ पधारे। उन्होने कार्यकर्त्ताओं को आगे का कार्यक्रम समझाया। इस वैठक में, श्री कार्यानन्द शर्मा थाने के प्रथम अधिनायक नियुक्त हुए। ७ तारीख से ही शराव की दूकान पर धरना आरम्भ किया गया। राजेश्वरी वावू अड़ोस-पड़ोस के गाँवों से घूम-घूम कर स्वयसेवक लाने लगे। ८ जनवरी को सहूर से २५ स्वयसेवकों का एक जुलूस निकला और कई गाँवों मे घूमा। १० तारीख को लक्खीसराय तथा अन्य जगहों मे जुलूस निकालने की घोषणा की गई। इस समाचार पर डिपटी मजिस्ट्रेट श्री मैकनेल और डी० एस० पी० श्री मलिक, दर्जनों हथियार-बन्द पुलिस के साथ, लक्खीसराय आ धमके। यहाँ श्री कार्यानन्द शर्मा के नेतृत्व में ६ स्वयंसेवकों का जुलूस नया वाजार से निकला। उसके साथ लगभग ५०० दर्शक भी पीछे-पीछे घूम रहे थे। श्री मैकनेल अपनी पूरी ताकत के साथ चित्तरंजन आश्रम के पास डटा था। जुलूस के वहाँ पहुँचते ही पुलिस ने उस पर लाठी-प्रहार करना शुरू कर दिया। स्वयंसेवक सड़क पर वैठ गये। दर्शकों पर भी लाठियाँ चलने लगी। वहुत से लोगों को घरों मे घुसा-घुसाकर भी पीटा गया। अनेक व्यक्ति मार खाते हुए सड़क पर लेट गये। लगभग डेढ़ सौ व्यक्ति वेतरह घायल हुए। इस तरह दर्शकों को पीट-पाट कर पुलिस ने स्वयंसेवकों को गिरफ्तार कर लिया। चित्तरंजन आश्रम की तलाशी हुई और वहाँ से वहुत-सी चीजें पुलिस उठा ले गई।

समानान्तर कार्य और भीषण दमन—वड़हिया तथा लक्खीसराय थानों के जैसा ही गोगरी, खड़गपुर, वख्तियारपुर, जमुई, सिकन्दरा, झाझा, वलिया, वेगूसराय, तेघरा, वरियारपुर, वरवीघा, शेखपुरा

आदि थानों में भी कांग्रेस संगठन के भिन्न-भिन्न तारों को संजोकर एकत्र किया गया तथा पूरी लगन और उत्साह के साथ आजादी की लड़ाई के मोरचे बनाए गए। नगर-नगर, गाँव-गाँव तथा सभी हाट-बाट में सरकारी आज्ञा के विरुद्ध प्रदर्शन, पिकेटिंग तथा कानूनी अवज्ञा के विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए। निर्धारित पद्धति के अनुसार हर थाने में एक-एक अधिनायक बनाए जाते और उनके पकड़े जाने पर फौरन कोई दूसरे उनके स्थानों की पूर्ति करते। शिविरों में स्वयंसेवकों के संगठन होने और कार्यक्रम के मुताबिक उन्हें जुलूस, पिकेटिंग आदि विभिन्न मोरचों पर भेजा जाता। शिविरों में स्वयंसेवकों की संख्या कभी कमने नहीं पाती। सरकार भी चुप बैठी नहीं रहती। वह दमन के नये-नये अस्त्र और तरीके निकालती ही रहती। कहीं स्वयंसेवकों को बेंत लगाई जाती तो कहीं दर्शकों पर ही लाठी प्रहार होता। औरतें भी बेइज्जती से बरी नहीं होतीं। स्वयंसेवकों तथा कार्यकर्त्ताओं की पकड़-धड़ और जेल-जुर्माना तो एक साधारण-सी बात थी। इस आन्दोलन के सिलसिले में गिरफ्तार तथा जेल जानेवाले व्यक्तियों की अनुमानित संख्या निम्न प्रकार थी —

बेगूसराय लगभग १००, खगड़िया लगभग २००, गोगरी २००, तेघरा ४४, बरियारपुर १००, शेखपुरा ५०, बख्तियारपुर ४८, बलिया ४३, जमुई ४६, सिकन्दरा २६, भाझा १४।

हरिजन-कार्य

गोलमेज परिषद् से लौटते ही सन् १९३२ ई० के आरम्भ में महात्मा गाँधी गिरफ्तार कर लिए गए थे और देश में घनघोर दमनचक्र चलने लगा था। परन्तु, महात्माजी ब्रिटिश सरकार के कुचक्र से देश को बचाने के लिए जेल के अन्दर भी सतत प्रयत्नशील रहे। गोलमेज परिषद में, हिन्दू-मुसलमानों के बीच फूट डालने के साथ-साथ हिन्दू समाज को भी छिन्न भिन्न कर उसमें राजनीतिक भेदभाव पैदा करने की चेष्टा हुई थी। हिन्दू-समाज की पिछड़ी हुई जातियों का एक वर्ग कायम करके उसके लिए पृथक निर्वाचनाधिकार का प्रबन्ध हो रहा था। महात्माजी ने गोलमेज सम्मेलन में ही कहा था कि यदि वास्तव में ऐसा किया गया तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा। अतएव जब इसके लिए उपयुक्त मौका आ गया तो महात्माजी अपने प्रण को पूरा करने के लिए तैयार हो गए। ११ मार्च १९३२ को ही उन्होंने यरवदा जेल से भारतमन्त्री सर सेम्युअल होर के पास पत्र लिखकर उन्हें अपने प्रण की याद दिलाते हुए कहा कि यदि सरकार इस सम्बन्ध में अपना निर्णय नहीं बदलेगी तो वह आमरण अनशन करेंगे। महीना तक पत्र-व्यवहार चलता रहा। अन्त में, सरकार का निर्णय नहीं बदलने पर, महात्माजी ने २० सितम्बर १९३२ को जेल में ही अनशन आरम्भ कर दिया। देश में इस खबर के फैलते ही सब लोग बेचैन हो उठे। श्री राजेन्द्र प्रसादजी, महामना मालवीयजी, श्री राजगोपालाचारी आदि जो नेता जेल से बाहर थे, वहाँ पहुँचे और महात्माजी के अनशन को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। अस्पृश्य वर्ग की जनता में भी हलचल मच गई। डाक्टर अम्बेदकर को सरकार ने अस्पृश्य वर्ग का नेता मान रखा था, अतएव वह

भी पूना लाए गए। सर तेज बहादुर सप्रू, श्री जयकर, श्री अमृतलाल ठक्कर, सेठ घनश्यामदास बिड़ला आदि भी पहुँचे। कई दिनों की बातचीत के बाद समझौते का एक रास्ता निकल आया। निश्चय किया गया कि दलित वर्ग के अलग निर्वाचन-क्षेत्र नहीं होंगे। उसके बदले में अस्पृश्य वर्ग के लिए निर्धारित संख्या में जगहे सुरक्षित रहेंगी, अस्पृश्य मतदाताओं को अधिकार होगा कि वे चुनाव के समय प्रत्येक स्थान के लिए चार उमीदवार मनोनीत कर दें। यदि चार से अधिक उमीदवार हों तो केवल उनके मत से चार चुन लिए जायँ और इन चार की ही उमीदवारी कायम रहे। फिर उनके चुनाव में अवर्ण-सवर्ण सभी हिन्दू समान रूप से भाग लें। यह नियम दस वर्षो तक कायम रहे और इसके बाद इसपर फिर विचार हो। इस निर्णय को देश के सभी वर्ग के नेताओं ने मान लिया। इससे मजबूर होकर ब्रिटिश सरकार को भी इसे स्वीकार करना पड़ा। यह निर्णय पूनापैक्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गाँधीजी ने उपवास तोड़ा और सारे देश ने खुशियाँ मनाई।

इसके बाद ही देश में अछूतोद्धार की जबरदस्त लहर चल पड़ी। गाँधीजी उस समय तक अछूत शब्द के बदले 'हरिजन' शब्द का व्यवहार करने लग गये थे। अतएव हरिजन-सेवक-संघ के नाम से एक अखिल भारतीय संस्था कायम की गई। इसकी शाखा-प्रशाखाएँ हर जगह कायम हुई। मुंगेर में भी जिला-हरिजन-संघ कायम किया गया। शहर के श्री राजनीति प्रसाद सिंह, श्री दीवान बहादुर केदारनाथ गोयनका, श्री-हरशंकर दास आदि प्रमुख रईस समय-समय पर इसके सभापति हुए और श्री देवेन्द्र नारायण-चौधरी, श्री रामधारी मिश्र, श्री सुरेश्वर पाठक आदि इसके मन्त्री रहे। थाने-थाने मे हरिजन-संघ कायम किए गए और हर जगह काँगरेस के कुछ लोग इस काम मे खास तौर पर लग गए। जगह-जगह अछूतों के साथ सहभोज हुए, जिन सार्वजनिक कुओं में के पानी नही भर सकते थे उनमे उन्हे पानी भरने देने का प्रबन्ध किया गया, जिन मन्दिरों में उनका प्रवेश नही था उनमे उनका प्रवेश कराया गया, तथा स्कूल कालेजों में उनके पढ़नेकी सुविधाएँ दी गईं। प्रायः हर थाना में जिला बोर्ड की ओर से दो एक अलग प्राइमरी पाठशालाएँ भी कायम की गई।

अनशन के बाद भी महात्मा गाँधी जेल में पूर्ववत् रखे गए। हरिजन-कार्य करने की सुविधाओं से वंचित रहने पर उन्होंने इसका विरोध किया। अन्त मे बहुत पत्र-व्यवहार के बाद उन्हे नवम्बर मे अस्पृश्यता-निवारण-कार्य जारी रखने की सुविधाएँ दी गईं। इस विषय मे लोगो से मुलाकात और पत्र-व्यवहार कर सकते थे और लेख भी प्रकाशनार्थ भेज सकते थे। जब महात्मा जी जेल मे हरिजन-कार्य मे लगे थे, जेल के बाहर के कॉगरेसकर्मी हरिजन-कार्य के अतिरिक्त सत्याग्रह-संग्राम को भी चलाये जा रहे थे। पर दमन अधिक होने से काम लुक-छिपकर होने लग गया था जो महात्मा जी के सिद्धान्त के प्रतिकूल था। ८ मई सन् १९३३ ई० को महात्मा गाँधी ने अपनी तथा अपने साथियों की शुद्धि के लिए २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। अतएव उसी दिन सरकार ने उन्हे जेल-मुक्त कर दिया। जेल से निकलते ही उन्होंने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित रखने की

सिफारिश की गई। १२ जुलाई सन् १९३३ ई० को देश की राजनीतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना में कांग्रेसवादियों की एक बैठक हुई। महात्माजी ने वायसराय से मिलकर शान्ति स्थापन का कोई रास्ता निकालना चाहा, पर वह नहीं हो सका। अन्त में सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग सत्याग्रह के लिए तैयार थे, उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कांग्रेस के कार्यवाहक सभापति के आदेशानुसार सारी कांग्रेस-संस्थाएँ और समितियाँ बन्द कर दी गईं। १ अगस्त सन् १९३३ को गांधीजी गुजरात के रास नामक ग्राम की ओर यात्रा करनेवाले थे। पर वह एक दिन पहले ही आधी रात में अपने ३४ आश्रमवासियों के साथ गिरफ्तार कर लिए गए। गांधीजी ४ अगस्त को रिहा कर दिए गए और उन्हें यरवदा गांव की सीमा छोड़कर, पूना जाकर रहने की नोटिस दी गई। उन्होंने इस आज्ञा की अवहेलना की और अपनी रिहाई के आधे घन्टे के भीतर वह फिर गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें एक साल कैद की सजा दी गई। इसके बाद ही सारे देश में फिर व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ हो गया। इस बार अधिनायक चुने जाने का सिलसिला तोड़ दिया गया जिससे सत्याग्रह वास्तव में व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप धारण कर ले। सन् १९३३ ई० के अगस्त से सन् १९३४ ई० के प्रथम सप्ताह तक, व्यक्तिगत सत्याग्रह का यह सिलसिला जारी रहा और देश के अन्य भागों की भांति मुंगेर जिले में भी बहुत से लोग व्यक्तिगत सत्याग्रह करके जेल गए।

इसबार महात्मा गाँधी जी को जेल में वे सुविधाएँ नहीं दी गईं जो मई की रिहाई के पहले उन्हें जेल में मिली थी। अतएव फिर उन्हें अनशन करना पड़ा। वह बन्दी अवस्था में ही पूना के संसून अस्पताल लाए गए। जब सरकार ने देखा कि उनका प्राण संकट में है, तो २३ अगस्त को उन्हें बिना शर्त छोड़ दिया। पर इस प्रकार रिहा होकर भी महात्मा जी ने अपनी सजा की अवधि की समाप्ति तक, अर्थात ३ अगस्त सन् १९३४ ई० तक, अपने को बन्दी ही समझकर काम करते रहने और इस समय को मुख्यतः हरिजन-कार्य में लगाने का निश्चय किया। इसी कार्य से वह देश का दौरा भी करने लगे।

इस सिलसिले में महात्मा गाधी मुंगेर जिले में भी आए। मई के आरम्भ में जब वह देवघर गए तो बड़हिया से एक पहलवान कामता प्रसाद और कुछ स्वयंसेवक उनकी रक्षा में भेजे गए। देवघर के पण्डों ने जब महात्मा जी पर आक्रमण किया तो पहलवान कामता प्रसाद ने गोदी में लेकर उन्हें मोटर में चढ़ा दिया और दूसरे स्वयंसेवक लाठियों को रोकते रहे। तब भी उनकी मोटर पर चोट तो पड़ी ही और उसके शीशे टूट गए।

प्रलयंकर भूकम्प

सन् १९३४ ई० की १५ जनवरी को बिहार में प्रलयंकर भूकम्प हुआ। इस भूकम्प से लगभग ३० हजार वर्गमील के भूभाग को नुकसान पहुँचा और कोई ३० हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई। शहरों में सबसे अधिक क्षति मुंगेर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा और मोतिहारी की हुई। मुंगेर शहर तो बिलकुल नेस्तनाबूद ही हो गया। सारे के सारे मकान टूट कर ढेर लग गए और हजारों आदमी उसके नीचे दबकर मर गए।

जिला के एक प्रमुख नेता श्री धर्म नारायण सिंह भी सपरिवार दबकर परलोक सिधारे। किसी तरह उनका एक लड़का और एक लड़की बच पाई। जिले की बहुत सी उपजाऊ जमीन, दरारो से निकले हुए वालू से पट जाने के कारण, बरबाद हो गई। सैकड़ों कूएँ और तालाब भर गए। देहातों में भी हजारों मकान चूर-चूर हो गए। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। इस समय कॉगरेस कार्यकर्त्ताओ का ध्यान स्वभावतः सत्याग्रह की ओर से हटकर जनसेवा की ओर ही गया। थाने-थाने के कार्यकर्त्ता लोगों के कष्ट-निवारण के कार्य से मुगेर दौड़ पड़े। देशरत्न श्री राजेन्द्र प्रसाद इसी समय वीमारी की अवस्था मे अस्पताल से निकलकर बाहर आए थे। उन्होंने विहार-संकट-निवारण-समिति (बिहार रिलीफ कमिटी) के नाम से एक कमिटी कायम की जिसमे इस काम के लिए लाखो रुपए जमा हुए। सरकार ने भी एक फण्ड कायम किया, और सहायता का काम चलने लगा। मुगेर शहर को बिलकुल नए सिरे से बसाना पड़ा। यहाँ की दयनीय अवस्था देखने के लिए महात्मा गाँधी, पं० मदन मोहन मालवीय, पं० जवाहर लाल जी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, खॉ अब्दुल गफ्फार खाँ, सेठ जमनालाल बजाज, श्री कृपलानी आदि महानुभाव यहाँ पधारे और लोगो के दुख दूर करने मे उन सबों ने यथाशक्ति सहायता पहुँचाई। पं० जवाहर लाल नेहरू ने यहाँ स्वयं अपने हाथों मे फावड़े लेकर मकानों का मलवा खोदा और मुर्दे निकालने में मदद की। स्थानीय नेता बिहारकेशरी श्रीकृष्ण सिंह आदि भी जेल से छूटने पर भूकम्पपीड़ित क्षेत्रों की सेवा-कार्य मे लग गये। सरकार ने इस समय प्रान्त के बहुत से कार्यकर्त्ताओं को जेल से छोड़ दिया। वे लोग भी इसी कार्य मे लग पड़े।

सत्याग्रह स्थगित और काँगरेस का पुनस्संगठन

सन् १९३३ ई० के मध्य से ही सत्याग्रह-आन्दोलन मे सुस्ती आ रही थी। व्यक्तिगत सत्याग्रह से कुछ जागृति आई, पर वह भी धीरे-धीरे जाती रही। इस समय तक नये सुधारों की बात इंगलैण्ड मे कुछ आगे बढ़ चुकी थी। गोलमेज परिषद के बाद कुछ और भी काररवाइयॉ हुई थीं। एक श्वेत-पत्र निकला था। इसमें वे सिद्धान्त निश्चित किये गये थे जिनके अनुसार नया विधान बनाया जाता। जुलाई १९३३ की पूना कान्फ्रेन्स के बाद कुछ कांगरेस-बन्दी यह सोचने लगे थे कि आर्डिनेन्सों के शासन के कारण देश में जो अवस्था उत्पन्न हो गई है, उसे ध्यान मे रख कर इस निश्चेष्टता से उद्धार पाने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम फिर अपनाया जाय। इस तरह के विचारवालों की एक परिषद दिल्ली मे ३१ मार्च १९३४ को डा० अन्सारी की अध्यक्षता मे हुई। निश्चय किया गया कि स्वराज्य पार्टी पुनर्जीवित की जाय और दमन-कारी कानूनो को रद्द कराने एवं श्वेतपत्र की योजनाओ को ठुकराकर एक विधान-परिषद बुलाने के उद्देश्य से केन्द्रीय एसेम्बली के आगामी निर्वाचन मे भाग लिया जाय।

मई महीने मे, पटने मे अखिल भारतीय काँगरेस कमिटी की बैठक हुई। बैठक मे गाँधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह बन्द कर देने का प्रस्ताव पास किया गया। काँगरेस की ओर से चुनाव

लडने के लिये पालमेन्ट्री बोर्ड भी कायम किया गया। इसके पश्चात सरकार ने भी कांगरेस कमिटी पर से गैरकानूनी होने का हुक्म उठा लिया। एक-एककर प्राय सभी जप्त आश्रम और कांगरेस-भवन वापस कर दिये गए। कागरेस का पुनस्सगठन किया गया। १६३४ के अक्टूबर में देशरत्न राजेन्द्र प्रसादजी के सभापतित्व में बम्बई में कागरेस का अधिवेशन हुआ। उस समय प० जवाहर लाल नेहरू जेल में ही थे। वे भूकम्प-पीडितो के सेवाकार्य से निवृत्त होकर यहाँ से बाहर गए ही थे कि अपने कलकत्ते के दो भाषणो के कारण गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हे दो वर्ष कैद की सजा हुई। परन्तु, बम्बई-कांगरेस के कुछ दिन बाद वे छोड दिए गए।

सन् १६३६ ई० के अप्रील में लखनऊ में और उसी साल के दिसम्बर महीने में फैजपुर में जो कांगरेस के अधिवेशन हुए उनके सभापति प० जवाहर लालजी ही बनाये गये। १६३८ की हरिपुरा-कांगरेस और १६३६ के त्रिपुरी कागरेस के सभापति श्री सुभासचन्द्र बोस हुए। पर दूसरी बार बहुमत के अभाव में इन्हें अपने पद से इस्तीफा देना पडा और इनके स्थान पर देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी सभापति चुने गये। १६४० मे मौलाना अबुल कलाम आजाद के सभापतित्व मे रामगढ में कांगरेस का अधिवेशन हुआ। इसके पश्चात् सत्याग्रह-सग्राम छिड जाने पर कई वर्षों तक कागरेस का अधिवेशन नही हो सका।

सन् १६३४ मे कागरेस का पुनस्सगठन किये जाने पर मुगेर जिला कांगरेस-कमिटी तथा उसकी मातहत कागरेस-कमिटियो का नया चुनाव किया गया। जिला कांगरेस-कमिटी के सभापति बाबू नेमधारी सिंह, मन्त्री बाबू निरापद मुकर्जी तथा कोषाध्यक्ष बाबू हरशकर दास चुने गए। सन् १६३५ ई० की जनवरी से जिला कागरेस-कमिटी का आफिस तिलकमैदान में खुल गया। उसी साल के अन्त या अगले साल के आरम्भ में बेगूसराय में चतुर्थ जिला राजनीतिक सम्मेलन हजारीबाग के श्री रामनारायण सिंह के सभापतित्व में किया गया।

१६३५ ई० में केन्द्रीय एसेम्बली का नया चुनाव हुआ। मुगेर जिले से बिहार केशरी श्रीकृष्ण-सिंह जी उसके सदस्य चुने गए। कुछ दिन बाद ही जब प्रान्तीय एसेम्बली का निर्वाचन हुआ तो यहाँ से श्री श्रीकृष्ण सिंह जी, श्री निरापद मुकर्जी, श्री रामचरित्र सिंह, कुमार कालिका प्रसाद और डा० रघुनन्दन उसके सदस्य निर्वाचित हुए। इस चुनाव के सिलसिले में कृपलानी जी और राजेन्द्र बाबू का दौरा जिले के भिन्न भिन्न भागो में हुआ। प्रान्तीय एसेम्बली में जाने पर श्रीकृष्ण सिंह जी ने केन्द्रीय एसेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। मुगेर जिले के लिए यह गौरव की बात हुई कि नये विधान के अनुसार १६३७ ई० की जुलाई में जब कांगरेस-मन्त्रिमण्डल कायम हुआ तो बिहार केशरी श्रीकृष्ण सिंह जी ही प्रधान मन्त्री बनाये गये।

मार्च १६३६ ई० में जिला कांगरेस-कमिटी के सभापति श्री बाबू, मन्त्री श्री सुरेशचन्द्र मिश्र, कोषाध्यक्ष बाबू रामप्रसादजी और हिसाब-परीक्षक बाबू नन्दकुमार सिंह चुने गए। दिसम्बर में

श्री सुरेशचन्द्र मिश्रके मन्त्री-पद से त्यागपत्र देने पर, सहकारी मन्त्री रामप्रसाद बाबू ही उनकी जगह पर काम करने लगे। १९३७ ई० मे सभापति तो श्रीबाबू ही रहे। पर मन्त्री श्रीयुत नन्दकुमार सिंह चुने गए। १९३८ ई० में नेमधारी बाबू और १९३९ ई० मे रामचरित्र बाबू सभापति बनाए गए। मन्त्रिपद पर नन्दकुमार बाबू बराबर कायम रहे। इसके बाद सत्याग्रह-युद्ध छिड़ जाने पर, आठ वर्षो तक कोई चुनाव नही हुआ। जिला-राजनीतिक-सम्मेलन का पचम अधिवेशन १९३७ ई० मे जमुई में किया गया। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने सभानेतृत्व का भार ग्रहण किया था। इस सम्मेलन का छठाँ अधिवेशन बरबीघा में १९३९ ई० में श्रीअनुग्रहनारायण सिंह की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ था।

१९३७ ई० से १९३९ ई० तक, भिन्न-भिन्न थानाओ मे थाना-राजनीतिक सम्मेलन किए गए। १९३७ ई० में चौथम का थाना राजनीतिक सम्मेलन श्री कृष्णवल्लभ सहाय के सभापतित्व में, खगड़िया का श्री श्रीकृष्ण सिंह के सभानेतृत्व मे, बलिया का श्री अनुग्रहनारायण सिंह की अध्यक्षता मे तथा खड़गपुर का डा० सैयद महमूद की सदारत मे किया गया। खड़गपुर थाना-सम्मेलन टटिया बम्बर मे हुआ था। उस वर्ष बलिया मे, थाना-युवक-सम्मेलन श्री योगेन्द्र शुक्ल की अध्यक्षता मे तथा अलौली में जिला-युवक-सम्मेलन श्री जयप्रकाश नारायण जी के सभापतित्व में हुए। उसी साल खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ और प्रो० अब्दुलबारी साहब का दौरा शेखपुरा, बरबीघा आदि कई स्थानों मे हुआ। सन १९३८ ई० में थाना-राजनीतिक-सम्मेलन खगड़िया के सभापति श्री नन्दकुमार सिंह, खड़गपुर के श्री कृष्णवल्लभ सहाय, तारापुर के प्रो० अब्दुलबारी, मुगेर मुफस्सल के सैयद रफी उद्दीन अहमद रिजवी और गोगरी एवं सूर्यगढ़ा के श्री श्रीकृष्ण सिंह हुए। खड़गपुर थाना-सम्मेलन लक्ष्मीपुर में, तारापुर थाना-सम्मेलन असरगंज मे और मुंगेर मुफस्सल थाना-सम्मेलन धरहरा मे हुए थे। १९३९ ई० मे बख्तियारपुर थाना-राजनीतिक-सम्मेलन श्री निरापद मुखर्जी की अध्यक्षता मे तथा तेघड़ा थाना-राजनीतिक-सम्मेलन डा०-सैयद महमूद के सभापतित्व मे किए गए। उस साल मनसी मे भी राजनीतिक-सम्मेलन प्रो० अब्दुलबारी का अध्यक्षता मे किया गया था। गोगरी थाने का राजनीतिक-सम्मेलन कुलहरिया मे श्री जयप्रकाश-नारायण के सभापतित्व मे हुआ था। उन्ही दिनों बेगूसराय का प्रथम थाना-राजनीतिक-सम्मेलन रामदीरी मे हुआ। द्वितीय सम्मेलन १९४८ मे आकर बनहपुर मे माननीय श्री रामचरित्र सिंह के सभापतित्व मे किया गया। इस अवसर पर श्रीबाबू भी यहाँ पधारे थे। इसी प्रकार कई और थानाओं में भी राजनीतिक सम्मेलन हुए।

किसान और मजदूर आन्दोलन

१९३६ ई० मे नए विधान के अनुसार चुनाव हो जाने पर, प्रान्तों मे अपना मन्त्रिमण्डल कायम होने की बात से लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएँ हुई। किसानों ने भी अपने दुख दूर होने की आशा लगाई। वे संगठित होकर जमीन्दारों द्वारा की गई ज्यादतियों का विरोध करने लगे। कॉंगरेस की ओर से उन्हे सहायता मिली। इस तरह सब जगह किसान-आन्दोलन की लहर जोरों से चल पड़ी। यों तो

मुंगेर जिले का किसान आन्दोलन बहुत पुराना है, पर इधर आकर वह बहुत व्यापक हो गया। इस जिले में, १९१० ई० में या उससे भी कुछ पहले खड़गपुर में नीलहे साहबों के विरुद्ध किसान आन्दोलन हुआ था। १९२२-२३ ई० में भी यहां किसान सभा कायम हुई। शाह महम्मद जुबैर साहब उसके सभापति, बिहार केसरी उपसभापति और बाबू सिद्धेश्वर चौधरी तथा बाबू नन्दकुमार सिंह मन्त्री हुए। बेगारी दूर करने और बाधं बँधवाने के लिए दरभंगा और बनैली राज के विरुद्ध आन्दोलन चलाया गया।

मार्च १९२९ ई० में जिला कांग्रेस-कमिटी ने किसानों के बीच काम करने के लिए एक कमिटी बनाई जिसके सदस्य श्री कार्यानन्द शर्मा, श्री नन्दकुमार सिंह और श्री महन्थ रामस्वरूप दास हुए। श्री कार्यानन्द शर्मा उसके संयोजक बनाए गए। जिला कांग्रेस-कार्यसमिति ने जून की बैठक में तय किया कि सिकन्दरा, बरियारपुर (खड़गपुर), चानन और बलिया में प्रान्तीय किसान-जांच-समिति का दौरा कराया जाय। दूसरे साल जिला कांग्रेस-कमिटी ने फिर नई किसान कमिटी बनाई जिसके सर्वश्री नन्दकुमार सिंह, महन्थ सियाराम दास, श्यामाप्रसाद सिंह, बनारसी प्रसाद सिंह, बलदेव प्रसाद सिंह, सूर्य नारायण और परमानन्द ठाकुर सदस्य चुने गए। थाने-थाने में किसान आन्दोलन चल पड़ा। कुछ दिनों के बाद श्री कार्यानन्द शर्मा ने स्वामी सहजानन्द सरस्वती के साथ होकर स्वतन्त्र रूप से किसान सभाएं कायम कीं।

इन्हीं दिनों कांग्रेस की ओर से खड़गपुर में जिला किसान सम्मेलन किया गया जिसके सभापति श्री देवव्रत शास्त्री बनाए गए। बिहार केसरी श्रीकृष्ण सिंह और स्वामी सहजानन्द सरस्वती भी इस सम्मेलन में पधारे थे। बरियारपुर में भी दियारा किसान सम्मेलन हुआ, जिसके सभापति स्वामी सहजानन्द सरस्वती रहे।

१९३१ ई० में, चौथम थाने में बेगारी प्रथा के विरुद्ध आदावारी, मालपा और कुरबन में किसान आन्दोलन खड़ा किया गया। उस समय चौथम थाना किसान-सभा के सभापति श्री रघुनाथ चौधरी और मन्त्री श्री रघुवीर सिंह थे। १९३७ ई० में चौथम में और १९३८ ई० में पिपरा में किसान सम्मेलन किए गए जिनमें स्वामी सहजानन्द सरस्वती और श्री कार्यानन्द शर्मा के भाषण हुए। उन दिनों चौथम थाने में किसानआन्दोलन का कार्य श्री सूर्यनारायण सिंह और श्री महावीर मण्डल के नेतृत्व में चल रहा था।

खगड़िया थाने में श्री मुन्नीलाल वर्मा और श्री परमानन्द ठाकुर के नेतृत्व में किसान आन्दोलन आरम्भ हुआ। १९३७ ई० की १ जनवरी को अलौली में श्री नन्दकुमार सिंह के सभापतित्व में थाना किसान सम्मेलन किया गया। महन्थ सियाराम दास और श्री कार्यानन्द शर्मा भी आए थे। वहां के चौर में बड़े-बड़े जमीन्दार और सरकारी अफसर चिड़िया का शिकार करने आते थे। अतएव चिड़ियों की रक्षा के नाम पर किसानों के साथ ज्यादती की जाती थी। चिड़ियाँ किसानों की फसल नष्ट करती थीं पर किसानों को यह अधिकार नहीं था कि वे अपने खेतों से चिड़ियों को उड़ा सकें। ऐसा करने पर उनके साथ जोर-

जुल्म होता था। इसलिए सबोने मिलकर इसका विरोध करना आरम्भ किया। उस समय प्रान्तीय-एसेम्बली मे भी इस विषय पर प्रश्न पूछा गया था। कुछ दिनों के बाद सिमराहा, छिलकौड़ी और भिखारी-घाट मे बेगारी-प्रथा के विरुद्ध किसानों ने आन्दोलन चलाया। महंथ रामरूप दास के प्रयत्न से किसान-सभा के नेता महंथ सियाराम दास और जिला कॉंगरेस-कमिटी के मन्त्री बाबू बलदेव प्रसाद सिह ने गाँवों का दौरा किया। इसके पश्चात् रहीमपुर, दुर्गापुर, मेहसौरी, रानी सकरपुरा, लाभगाँव, खुटहा और बभन-गाँवा मे नजराना, फरकाना वगैरह के कारण किसानों के आन्दोलन हुए। मेहसौरी का जमीन्दार गाँजा पीने का आदी था, अतएव वह 'गंजेरी' नाम से नाजायज कर लिया करता था। किसान कुछ देना नही चाहते थे। १९३८ ई० में रानी शकरपुरा और कामाथान इकरुआ मे श्री कार्यानन्द शर्मा के सभापतित्व मे किसान सभाएँ की गई। रानी शकरपुरा मे बेगूसराय के श्री सरयू प्रसाद सिह और गोगरी के श्री सुरेश-चन्द्र मिश्र भी आए थे। इसी समय प्रान्तीय किसान-जांच कमिटी के सदस्य श्री अनुग्रह नारायण सिंह और श्री कृष्णवल्लभ सहाय का खड़गपुर, खगड़िया, बलिया, इलाके मे दौरा हुआ था। बिहार केसरी इनके भी साथ थे।

१९४६ ई० मे उखदौरा और सिमराहा के किसानो ने शकरपुरा के श्री रामेश्वर प्रसाद सिह की जमीन्दारी मे बकाश्त जमीन को लेकर आन्दोलन खड़ा किया। इस आन्दोलन के सिलसिले मे लगभग दो सौ किसान गिरफ्तार हुए। यहाँ की स्थिति की जाँच करने के लिए पार्लमेंट्री सेक्रेटरी श्री शिवनन्दन-मण्डल और प्रान्तीय एसेम्बली के स्थानीय सदस्य श्री कमलेश्वरी प्रसाद यादव आए। अन्त मे, जिला कॉंगरेस के उद्योग से किसानो को १५ वर्ष के अन्दर नीलाम की हुई जमीन, ३००) बीघा की दर पर, वापस कर दी गई।

१९३६ ई० मे बलिया थाना के बॉक ग्राम मे सदानन्दपुर के जमीन्दारों के विरुद्ध किसान-आन्दोलन आरम्भ हुआ। वहाँ के एक कार्यकर्त्ता श्री हृदय नारायण ने बॉक मे एक सभा की आयोजना की जिसमे बाहर से श्री कार्यानन्द शर्मा और महंथ सियाराम दास को बुलाया गया। जमीन्दारो के लठैतो ने लाठी चलाना शुरू किया, इससे लोगों मे भगदड़ मच गई। पुलिस ने परिस्थिति सँभाली, पर सभा न हो सकी। कार्यकर्त्ता और आगत सज्जनो को लौट आना पड़ा। इसी समय और-और जमीन्दारो के खिलाफ ननसेर, बलिया, बड़ी बलिया, पहाड़पुर, मलहीपुर, फुलमलिक धर्पट्टी, परौड़ा आदि ग्रामो मे भी आन्दो-लन छिड़ गया। यहाँ की गम्भीर परिस्थिति को देखकर प्रान्तीय किसान जाँच कमिटी के कुछ सदस्य बलिया पहुँचे। उनके सामने किसानों का मामला पेश करने के लिए श्री कार्यानन्द शर्मा आए। किसानों और जमीन्दारों के बयान लिए गए। परन्तु, उस कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित नही हुई। इसके बाद वहाँ के मामले की जाँच के लिए श्रीबाबू और ठाकुर नन्दकुमार सिंह भी पहुँचे। उन्होने सदानन्दपुर के जमीन्दारो को ज्यादतियाँ बन्द करने की सलाह दी। उसी साल अक्टूबर मे बलिया मे थाना-किसान-सम्मेलन हुआ। इसमें स्वामी सहजानन्द जी आए। इस आन्दोलन के फलस्वरूप जमीन्दारों की ज्यादतियों का भय कुछ कम

हुआ। १९४६ ई० में, वलिया मे फिर एक किसान सम्मेलन हुआ जिसमें उस समय भी किसानों की परिस्थिति पर विचार किया गया।

१९३८ ई० मे, नेघ थाने के अन्दर बछवाड़ा में श्री यदुनन्दन शर्मा के सभापतित्व में प्रान्तीय किसान सम्मेलन किया गया। स्वागताध्यक्ष महंथ सियाराम दास थे। आगत सज्जनों में श्री जयप्रकाश नारायण, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, श्री रामानन्द मिश्र, श्री यमुनाकार्यी, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री गंगाशरण-सिंह, डा० कयूम अन्सारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सम्मेलन में किसान लोग बहुत बड़ी संख्या में आए हुए थे। इस किसान-सम्मेलन से कांगरेस का मतभेद था इसलिए कांगरेसवाले इसमें सम्मिलित नहीं हुए। उस साल के जून में अयोध्या ग्राम में श्री यमुना कार्यी के सभापतित्व में थाना किसान सम्मेलन किया गया। बहुत दिनों के बाद, उसी गाम मे हसनपुर के जमींदार श्री बच्चू सिंह के खिलाफ ७५ बीघा बकाश्त जमीन के लिए झगड़ा हुआ। पंचों ने ४५ बीघा जमीन किसानों को दिलाया।

गोगरी थाने के अन्दर १९३६ ई० में, श्री काशी प्रसाद तिवारी की जमींदारी लगार दियारे में किसान आन्दोलन चला। उनकी दो-ढाई सौ बीघे जमीन सरवे के पहले से किसानों के पास बटाई पर थी। अब वह एक तरह की बटाई का करार कराकर किसानों को जमीन देना चाहते थे। किसान इस पर राजी नहीं थे। फलस्वरूप करने पर किसानों से जमीन छीनी जाने लगी, पर किसान जमीन छोड़ने को तैयार नहीं होते थे। जो जमीन पर जाता था वह गिरफ्तार कर लिया जाता था। गोगरी थाना-कांगरेस कमिटी ने इस आन्दोलन को अपने हाथ में लिया। इस सिलसिले में वहाँ के प्रमुख कांगरेसकर्मी सर्वश्री सुरेशचन्द्र-मिश्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, योगेन्द्र प्रसाद राय, द्वारका दास, रामलखन चौधरी, डा० यमुना प्रसाद आदि जेल भी गए। सब मिलाकर लगभग डेढ़ सौ व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई। उस समय जिला कांगरेस की ओर से बनाई गई किसान समिति के सदस्य सर्वश्री नन्दकुमार सिंह, बलदेव प्रसाद सिंह, श्यामा प्रसाद सिंह, मुंशीलाल वर्मा और जगबहादुर प्रसाद थे। ये लोग इस सत्याग्रह के पक्ष मे नहीं थे। चूंकि जिला कांगरेस कमिटी से इस सत्याग्रह के बारे में अनुमति नहीं ली गई थी, इसलिए पूरा मतभेद था। जिला कांगरेस कमिटी ने वहां की स्थिति की जांच करने के लिए कुमार कालिका प्रसाद सिंह को नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट पर जिला कांगरेस कमिटी ने गोगरी थाना कांगरेस कमिटी को सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दिया और जमीन्दार किसान के झगड़े का फैसला करने के लिए सैयद रफीउद्दीन अहमद रिजवी को पंच नियुक्त किया। आखिर फैसला जमीन्दार के पक्ष में ही दिया गया और किसान जमीन से बेदखल हुए।

मुंगेर मुफस्सल थाने के अन्दर बिन्दा दियारा में, १९३१ ई० से ही खास महाल की जमीन को लेकर आन्दोलन चल रहा था। १९३० ई० तक गंगशिकस्त जमीन के सम्बन्ध में कानून यह था कि यदि पुराना जोतदार चार आना बीघा मालगुजारी बराबर देता रहे तो वह जमीन का मालिक बना रहेगा और पानी से जमीन के बाहर होने पर उसीका उस पर हक होगा। पीछे यह कानून बना कि जब जमीन गंगशिकस्त हो तो रयतों से मालगुजारी नहीं ली जाय और जमीन बाहर होने पर नए सिरे से

किसी रैयत के हाथ बन्दोवस्त की जाय। यह कानून रैयतों के हक मे अच्छा नहीं था। इसलिए उन लोगों ने आन्दोलन मचाया और चाहा कि जमीन गंगशिकस्त होने पर भी रैयतों की बनी रहे। उसकी माल-गुजारी कुछ नही ली जाय और यदि ली भी जाय तो वह फी बीघा चार आना से अधिक नहीं हो। इस बात को लेकर कई बार सभाएँ हुई जिनमे स्वामी सहजानन्द सरस्वती, श्री नन्दकुमार सिंह आदि आए। कुमार कालिका सिह जी ने इस विषय को विहार कौंसिल मे भी रखा। जब काँगरेस मन्त्रिमण्डल बना तो उसने रैयतो के विरोध को देखते हुए यह कानून बनाया कि रैयतों को गंगशिकस्त जमीन के लिए एक आना बीघा मालगुजारी देना होगा और वह जमीन उनकी ही बनी रहेगी। किसानो को इससे बहुत सन्तोष हुआ।

सन् १९३५ ई० मे सुन्दरपुर ग्राम मे श्री कार्यानन्द शर्मा की अध्यक्षता मे थाना किसान-सम्मेलन हुआ जिसमे स्वामी सहजानन्द जी भी आए। १९३७-३८ ई० मे दरभगा राज के बंगलवा ग्राम मे, जहाँ अधिकतर सन्थाल, मुसहर आदि निम्न श्रेणी के लोग रहते है, बेगारी के खिलाफ आन्दोलन खड़ा किया गया। उन गरीबों की सहायता करने पर कुछ काँगरेस कार्यकर्त्ताओ को राज के अमलो ने पीटा और रैयतो पर भी वे ज्यादा सख्ती करने लगे। इस पर वहाँ शिविर कायम कर काँगरेस के बहुत से कार्यकर्त्ता रहने लगे और उन लोगो ने वहाँ के किसानो और मजदूरो को संगठित किया। वहाँ उनकी एक सभा भी हुई जिसमे श्री निरापद मुकर्जी और श्री नन्दकुमार सिह गए। आन्दोलन के फलस्वरूप उन लोगों की बहुत सी शिकायते दूर की गई और वहाँ के अमले भी बदल दिए गए।

सूर्यगढा थाने में धोसैट और मानिकपुर मे किसान-आन्दोलन चला। इस सिलसिले मे स्वामी-सहजानन्द सरस्वती, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री विश्वेश्वर प्रसाद सिन्हा, श्री कार्यानन्द शर्मा, मौलाना मजर रिजवी और बनारस के श्री सम्पूर्णानन्द जी यहाँ आए थे।

बड़हिया टाल में, श्री कार्यानन्द शर्मा ने १९३६ ई० मे, किसान-आन्दोलन चालू किया। पहले तो यह आन्दोलन बेगारी आदि प्रथा को लेकर खड़ा किया गया, पीछे बकाश्त आन्दोलन को लेकर इसका उग्र रूप हो गया। जब किसान तरह-तरह की शिकायतों को लेकर जमीन्दारों के खिलाफ उठ खड़े हुए तो जमीन्दारो ने उनसे अपनी जमीन छीनना शुरू किया। किसान जमीन छोड़ने को तैयार नही थे; इसीपर संघर्ष आरम्भ हुआ। किसान संगठित होकर सभाएँ करने लगे और बाहर से नेताओं को भी बुलाने लगे। कई बार उन लोगो ने बहुत बड़ी संख्या मे मुगेर आकर कलक्टर के सामने भी अपनी शिकायते पेश की। विरोध-प्रदर्शन के लिए मुगेर आने पर लोग विना टिकट के रेलयात्रा करने लगे। एक बार इस तरह यहाँ आने मे श्री कार्यानन्द शर्मा और श्री पंचानन गिरफ्तार कर लिए गए। कुछ दिनों के बाद जेल मे अनशन करने पर वे लोग छोड़े जा सके। उनकी गिरफ्तारी पर श्री यदुनन्दन शर्मा यहाँ आकर आन्दोलन चलाने लगे थे। इस आन्दोलन के सिलसिले मे बाहर से समय-समय पर किसानो के नेता स्वामी सहजानन्द सर-स्वती, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री अवधेश्वर सिंह, श्री श्यामनन्दन सिंह, महथ सियारामदास आदि आते

रहे। मन्त्री पद ग्रहण करने के पूर्व श्री बाबू श्रीकृष्ण सिंह भी व्यक्तिगत रूप से यहाँ आए और मामला सुलझाने की कोशिश की और स्थिति का अध्ययन किया। बाद में, जमुई में राजनीतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें बड़हिया टाल के मामले को सुलझाने के लिए सर्वश्री नन्दकुमार सिंह, श्यामा प्रसाद सिंह और महन्थ सियाराम दास की समिति नियुक्त की गई। उपरोक्त सज्जनों ने बड़हिया टाल के गाँवों में घूम-घूमकर सच्ची स्थिति का अध्ययनकर राजेन्द्र बाबू के सामने उसका विवरण रखा। इस पर राजेन्द्र बाबू ने बड़हिया टाल घूम आने का कार्यक्रम बनाया। वहाँ जाकर उन्होंने दोनों पक्षों से बातें की और समझौता का आधार तैयार किया। उसी आधार पर उपरोक्त सज्जनों ने श्रीबाबू के साथ मिलकर किसानों को जमीन दिलाने की व्यवस्था की। कुछ दिनों तक शान्ति रहने के बाद जब किसानों ने पुनः आन्दोलन मचाना शुरू किया तो सरकार की ओर से बाबू नन्दकुमार सिंह, श्यामा प्रसाद सिंह, किसानों की ओर से बाबू द्वारिका प्रसाद, भुवनेश्वर दास तथा जमीन्दार की ओर से बच्चू बाबू पंच नियुक्त किए गए। इन लोगों ने बहीखातों तथा कागजों को देखकर किसानों को जमीन दिलाने की सिफारिश की।

शेखपुरा में भी किसान आन्दोलन १९३६ ई० में श्री कार्यानन्द शर्मा ने ही आरम्भ किया। उन्हीं दिनों वहाँ एक किसान सम्मेलन किया गया। कुसुम्भा डीह और कुसुम्भा घाट में बकाश्त जमीन लेकर झगड़ा खड़ा हुआ। इसी समय गया में अखिल भारतीय किसान-सम्मेलन समाप्त होने पर श्री कार्यानन्द शर्मा ने वहाँ से कामरेड रणन, श्री इन्दुलाल याज्ञिक आदि को साथ लाकर शेखपुरा और बरबीघा थाने के कई गाँवों में दौरा किया। उपरोक्त दो स्थानों का झगड़ा सन १९३७ ई० में सरकार की ओर से पंचायत के सामने रखा गया।' पहले राजेन्द्र बाबू ने आश्रम में टेंडीघाट के नवाब साहब को समझाया। बाद में श्रीबाबू ने भी जोर डाला और नवाब राजी हुए। बाबू नेमधारी सिंह और बाबू श्यामा प्रसाद सिंह पंच चुने गए थे। करीब १७०० सौ बीघे जमीन रैयतों को दी गई। उसी साल उदरदिया, अकबरपुर, जीयन डीहा, गगौर, माफो वगैरह में बैठ बेगारी और बकाश्त जमीन लेकर आन्दोलन चला। बैठ बेगारी तो किसी तरह दूर हुई, पर जमीन किसानों को नहीं मिल सकी।

१९३६-३७ ई० गोहदा में आन्दोलन चला। जमीन्दार किसानों से जमीन लेकर दूसरों के हाथ बन्दोबस्त करना चाहते थे। किसान जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे। वे हलबैल लेकर खेतों पर जाते थे और जमीन्दार पुलिस मँगाकर उनकी गिरफ्तारी कराते थे। इस तरह १५-२० आदमी गिरफ्तार हुए जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी थी। स्त्रियाँ पीछे छोड़ दी गईं। मुकदमा के दौरान में ही आपस में समझौता हो गया जिससे कुछ जमीन रैयतों को मिली।

१९४६ ई० में, गया जिले के टुकौली के महन्त की जमीन्दारी महुऐत, जसौर, जगली बीघा और कुटिया में आन्दोलन छिड़ा। वहाँ रैयतों की नकदी जमीन भावली बना ली गई थी। रैयतों पर कई तरह की और भी ज्यादतियाँ थी। सर्वे के समय किसानों को कटनी में 'अटिया' देने का रिवाज था, पर खुद कटनी करने पर रैयतों को नहीं दिया जाने लगा। फसल मलने का मेहनताना 'दिनौरा'

१४ बोझा मे एक बोझा दिया जाता था, वह १७ बोझा मे एक बोझा कर दिया गया और अमला प्रत्येक बोझा में से आधा पाँजा "चोंगी' के रूप मे लेने लगा। इसके सिवा फसल बटने के बाद अमला रैयत के हिस्से से 'खोईछन्दी' लिया करता था। हलबैल लेना तथा तरह-तरह की और भी बेगारी साधारण बात हो गई था। श्री रामचरित्र सिंह ने एक बार वहाँ जाकर सभा की। दूसरी सभामे श्री नन्दकुमार सिंह गए। पीछे बुधौली के महंत, और उनके मैनेजर तथा सर्वश्री बलदेव प्रसाद सिंह, रामेश्वर मेहता, बड़ेलाल, चुनकेश्वर प्रसाद श्रीबाबू के पास गएऔर उन लोगों ने वहाँ उनकी राय से आपस में कुछ तय-तसफिया कर लिया।

बरबीघा थाने मे भी किसान सभाएँ होती रही और उनमें स्वामी सहजानन्द सरस्वती, श्री यमुना कार्यी, राहुलजी, श्री कार्यानन्द शर्मा आदि आते रहे। १९४१ ई० मे श्री यमुना कार्यी के सभापतित्व मे एक किसान सम्मेलन हुआ।

तारापुर थाने मे १९४१ ई० में राज बनैली की तमादी की नालिश लेकर आन्दोलन खड़ा हुआ। उस समय रायबहादुर सिहेश्वर प्रस सिह राज के रिसीवर थे। तारापुर और शम्भूगंज मे सभाएँ की गई जिनमे सर्वश्री नन्दकुमार सिह, बनारसी सिह और बासुकीनाथ राय के भाषण हुए। तीसरी सभा असरगंज मे सैयद रफी अहमद रिजवी के सभापतित्व मे हुई। सभा मे श्रीबाबू और राज के रिसीवर भी मौजूद थे, परन्तु आपस मे कोई समझौता नही हो सका। राज की ओर से किसानों पर तमादी की नालिश कर दी गई। अतएव खड़गपुर, तारापुर, अमरपुर तथा बेलहर इन चारो थाने के किसानों की एक सभा कायम की गई और आन्दोलन जोरों का चल पड़ा। एक बार नौगाँय मे श्रीबाबू ने एक बहुत बड़ी सभा की। उसी समय किसानो के कब्जे की नीलामी जमीन का धान जमीन्दार ने काट लिया। पीछे किसानों ने उस धान को छीन लिया। एक तहसीलदार ने गोली भी चला दी, जिससे एक किसान उग्रमोहन सिंह घायल हुआ। किसान और राज, दोनों की ओर से मुकदमे चले। पीछे आपस मे समझौता कर लिया गया जिसके फलस्वरूप दस बारह हजार बीघा नीलाम हुई जमीन रैयतों को ६ वर्ष की मालगुजारी देने की शर्त पर मिल गई। ६ वर्ष के साथ-साथ और ३ बाते थी, (१) ११२ की छूट दी गई, (२) खर्चा नही (३) २० रु० से अधिक लगान नही। रसीद ऐसी दी गई जिससे पुरानी रैयती हक कायम रहे।

१९४२ ई० के मध्य मे श्री कृष्णवल्लभ सहाय के सभापतित्व मे तारापुर मे बनेली राज किसान-सम्मेलन धूमधाम से हुआ जिसका उद्घाटन कृपलानी जी ने किया। इस सम्मेलन मे राजेन्द्र बाबू, अनुग्रह बाबू और श्रीबाबू भी आए थे। मुंगेर-भागलपुर के प्राय सभी थाना से कार्यकर्त्ता आए हुए थे।

१९४७-४८ ई० मे जिले के भिन्न-भिन्न भागों मे सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट दल के लोगों ने 'जो जोते उसकी जमीन' का नारा लगाकर खेत के मजदूरों, किसानो और जमीन्दारों के बीच हलचल मचा रखी है। जहाँ-तहाँ दगे और खून-खराबियाँ भी हुई है। जिनके पास दो चार या दस पाँच बीघे जमीन है और किसी कारणवश स्वयं जमीन जोत-बो नही सकते है, वे भी अपनी जमीन सुरक्षित नहीं समझते है। वास्तव में ऐसे कुछ लोगों की जमीन पर हमले भी हुए है। दूसरी ओर हजारों बीघा जमीन रखने

वाले अभी सुरक्षित है। इस तरह सर्वत्र आतंक छाया हुआ है और एक प्रकार से अव्यवस्था-सी फैली हुई है। जिले में जितनी राजनीतिक पार्टियां हैं उन सबकी अलग अलग किसान सभाएँ हैं। स्वामी सहजानन्द की किसान सभा भिन्न ही है। इस प्रकार से चार पांच किसान सभाएँ हैं। सब अधिकार की लड़ाइयाँ ही लड़ती हैं। कृषि के सुधार या उन्नति की ओर किसी का ध्यान नहीं है।

१९३९ ई० में यहां के कांग्रेसकर्मियों का मजदूर-संगठन की ओर भी विशेष ध्यान गया। उस साल जुलाई में जिला कांग्रेस कमिटी ने कांग्रेस मजदूर विभाग कायम किया। एक कांग्रेस-मजदूर-समिति कायम की गई जिसके सदस्य सर्वश्री निरापद मुकर्जी, सैयद रफीउद्दीन अहमद रिजवी, किशोरी प्रसाद, रामगुलाम शर्मा और रामप्रसाद जी हुए। इस जिले में मुंगेर के टुबैको फैक्टरी में तथा रेलवे के अन्दर जमालपुर, क्यूल, भाना, बरौनी और सिमरियाघाट में मजदूर बहुतायत से हैं जिनके सम्बन्ध में समस्याएँ उठती रहती हैं और उनका हल करना आवश्यक हो जाता है। इन स्थानों में मजदूर-यूनियन (संघ) पहले से थे और कुछ बाद में भी कायम हुए। इनके अतिरिक्त जिले की छोटी-छोटी मिलों और फैक्टरियों में भी मजदूर रहते हैं और वहाँ भी यूनियन कायम होने लगे हैं। कांग्रेस ने इन मजदूरों के बीच काम करने के लिए अपने आदमी नियुक्त किए। इनमें से कुछ लोग सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दल के भी थे जो अब कांग्रेस से अलग हो गए हैं। सब से अधिक मजदूर जमालपुर के रेलवे कारखाने में हैं जहाँ उनकी संख्या १७ हजार के लगभग है। मजदूरों को देहातों से लाने के लिए कुली ट्रेन चलती है। यहां मजदूरों के ४ यूनियन थे। कुछ दिन पहले तक यहां मजदूर यूनियन, रेलवेमेन्स यूनियन, रेलवे इम्प्लाइज एसोसिएशन, मुस्लिम रेलवे इम्प्लाइज एसोशिएसन, थे। पहले दो यूनियनों के साथ कांग्रेस का विशेष सम्बन्ध रहा और बहुत समय पर श्री निरापद मुकर्जी सभापति रहे। अब यहाँ के यूनियनों में कई हेरफेर हुए हैं। मजदूर यूनियन की जगह पर राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस कायम हुई है जो कांग्रेस की देखरेख में चलती है। इसके सभापति श्री नन्दकुमार सिंह हैं। रेलवेमेन्स यूनियन सोशलिस्ट पार्टी के हाथ में चला गया है। बड़े बड़े अफसरों का इम्प्लाइज एसोशिएन पूर्ववत कायम है और स्वतन्त्र रूप से संचालित होता है। अधिकांश मुसलमान मजदूरों के यहाँ से पाकिस्तान चले जाने से उनका यूनियन टूट गया। रेलशेड यूनियन नया कायम हुआ है जो कम्युनिस्टों के हाथ में है।

डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्युनिसिपैलिटियाँ

मुंगेर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा सदर, बेगूसराय और जमुई के लोकलबोर्डों की स्थापना १८८७ ई० में हुई। १९२२ ई० के पहले डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का प्रबन्ध मुख्यत गवर्नमेंट के हाथ में था। कलक्टर अपने पद की हैसियत से उसके अध्यक्ष अर्थात चेयरमैन हुआ करते थे, पर उपाध्यक्ष—वायसचेयरमैन एक गैरसरकारी व्यक्ति होते थे। १९०४ ई० से १९२० ई० तक मुंगेर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वायस चेयरमैन गोगरी के राय बहादुर लक्ष्मी प्रसाद मिश्र रहे। पहले पहल यहाँ १९२२ ई० में निर्वाचन की प्रथा जारी की गई। इस निर्वाचन में कांग्रेस के लोग भी सम्मिलित हुए और उनकी कुछ जीत भी हुई। उसी साल से चेयरमैन

और वाइस चेयरमैन निर्वाचित गैर सरकारी व्यक्ति होने लगे। उस वर्ष चेयरमैन मुंगेर के कुमार देवकी नन्दन प्रसाद सिंह और वाइस चेयरमैन गोगरी थानान्तर्गत राटन के मौलवी वहाब खां हुए।

१९२४ ई० में, नये सुधार के अनुसार जिला-बोर्ड का संगठन हुआ। बोर्ड के ३६ सदस्यों में २८ का निर्वाचन होने लगा, ४ जिला मजिस्ट्रेट की सिफारिश पर स्वायत्त शासन-विभाग के मन्त्री द्वारा मनोनीत किये जाने लगे और ४, जैसे बेगूसराय और जमुई के सबडिवीजनल अफसर, सिविल सर्जन और स्कूलों के डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्टर, पद की हैसियत से सदस्य माने जाने लगे। १९२४ ई० से १९४७ ई० तक जिला बोर्ड के सभी निर्वाचित सदस्य प्रायः कॉंगरेस जन ही होते आये हैं। हाँ, १९४२ ई० की क्रान्ति के कुछ पूर्व जब कॉंगरेसवाले बोर्ड से हट गए तो दूसरे लोग इसके अन्दर आ सके। जिला-बोर्ड पर मुंगेर जिले की तरह कॉंगरेस का एकाधिकार प्रान्त के और किसी जिले में नहीं रहा। इस सफलता का प्रधान कारण, मुंगेर जिला के प्रायः प्रत्येक थाने में कॉंगरेस का पक्का संगठन ही था। बोर्ड पर कॉंगरेसवालों के इस स्थायी अधिकार के कारण कॉंगरेस-संगठन में यहाँ और भी दृढ़ता आई। शिक्षा, स्वास्थ्य और सड़क आदि के द्वारा जनता की सेवा का कुछ काम हो जाता था। बोर्ड के कई शिक्षक कॉंगरेस के अच्छे कार्यकर्त्ता भी हुए।

१९२४ ई० से १९३० ई० तक लगातार मुंगेर जिला-बोर्ड के चेयरमैन शाह महम्मद जुब्बैर और वाइस चेयरमैन श्री बाबू थे। १९३० ई० में, चुनाव के दो महीने बाद शाह महम्मद जुब्बैर साहब के देहावसान हो जाने से श्री नेमधारी सिंह जिला-बोर्ड के चेयरमैन बनाये गए। १९३२ ई० में उनके इस्तीफा देने पर श्री सतीशचन्द्र बोस उनकी जगह पर काम करने लगे। १९३३ ई० के चुनाव में श्री रामचरित्र-सिंह चेयरमैन निर्वाचित हुए। १९३४ ई० में उनके त्यागपत्र देने पर श्री बाबू चेयरमैन बने। १९३७ ई० में उनके हट जाने के बाद नेमधारी बाबू फिर चेयरमैन चुने गए। १९३९ ई० के चुनाव में वे अपने पद पर पूर्ववत् निर्वाचित हुए। १९४१ ई० की मई में उनके अलग हो जाने पर सैयद रफीउद्दीन अहमद-रिजवी चेयरमैन बनाये गए। १९३० ई० के नवम्बर से, श्री बाबू के इस्तीफा देने पर, वह वाइस चेयरमैन के पद पर काम कर रहे थे। अब उनके चेयरमैन हो जाने से श्री रामाधीन सिंह वाइस चेयरमैन निर्वाचित हुए।

व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय, १९४१ ई० के ३० अक्टूबर को चेयरमैन और वाइस चेयरमैन सहित कॉंगरेस के सभी सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद बोर्ड का काम चलाने के लिए सरकार की ओर से राजा देवकी नन्दन सिंह चेयरमैन मनोनीत कर दिये गए। सदस्यों के रिक्त स्थानों पर उपनिर्वाचन हुआ।

स्वतन्त्रता की लड़ाई समाप्त होने पर, १९४७ ई० के बोर्ड के चुनाव में कॉंगरेस ने फिर भाग लिया और सभी स्थानों से कॉंगरेस सदस्य ही चुने गए। इस चुनाव में गोगरी थाने के अन्दर कॉंगरेस-जनों के बीच ही खूब संघर्ष चला। पं० सुरेश चन्द्र मिश्र ने कॉंगरेस उम्मीदवार के विरुद्ध अपनी प्रजा

पार्टी का एक उम्मीदवार खड़ा कर दिया, जिससे दोनों पक्ष की ओर से जबरदस्त प्रचार होने लगा। अपने अपने पक्ष के लिए अधिकाधिक मत सग्रह करने के हेतु,—स्त्री समाज के बीच भी स्त्री-प्रचारिकाएँ काम करने लगी। प० सुरेशचन्द्र मिश्र की बहन श्रीमती कौशल्या देवी और देवी जी की सुपुत्री कुमारी सावित्री ने घर-घर जाकर स्त्री-मतदात्रियो को जुटाया। दूसरी ओर कागरेस की ओर से भी कुछ महिलाएँ काम करने लगी। श्री जगदम्बा शरण शर्मा की पत्नी ने भी खूब काम किया। जीत कॉंगरेसी उम्मीदवार श्री जगदम्बा प्रसाद मण्डल की रही। पीछे जिला कागरेस ने श्री सुरेशचन्द्र मिश्र के १०४ सहायकों के प्रति अनुशासन की कारवाई की और उन्हें कॉंगरेस से कुछ वर्षों के लिए अलग कर दिया। श्री सुरेशचन्द्र मिश्र पर अनुशासन की कारवाई हुई और उन्हें कागरेस छोडना पडा। इस चुनाव में बोर्ड के चेयरमैन श्री बनारसी प्रसाद सिंह और वाइस चेयरमैन श्री कृष्ण मोहन प्यारे सिंह (उर्फ लाला बाबू) बनाये गए। इस बार सब प्रथम एक भारतीय महिला श्रीमती चन्द्रकला देवी (बेगूसराय) जिला-बोर्ड की सदस्या मनोनीत हुई। पहले एक अगरेज महिला कुमारी सी० डी० मुरी बहुत दिनों तक बोर्ड की सदस्या थी। एक दूसरी महिला श्रीमती मनुस्मृति देवी (खगडिया) लोकल बोर्ड की शिक्षा समिति की सदस्या बनाई गई। निरापद बाबू की स्त्री भी लोकल बोर्ड की मेम्बर थी।

मुंगेर जिले के अन्दर मुंगेर और जमालपुर में म्युनिसिपैलिटियाँ भी हैं। मुंगेर की म्युनिसिपैलिटी १८६४ ई० में कायम हुई थी और जमालपुर की १८८३ ई० में। स्वायत्त शासन-विभाग के नय सुधार के अनुसार जिला बोर्डों और म्युनिसिपैलिटियों में एक ही समय सार्वजनिक चुनाव की प्रथा जारी की गई। असहयोग-काल के आरम्भ में कागरेस ने मुंगेर म्युनिसिपैलिटी पर भी कब्जा करने का प्रयत्न किया, पर उसकी बडी हार हुई, यहाँ तक कि कागरेसी उम्मीदवार बाबू श्रीकृष्ण सिंह जी को भी हार खानी पडी। हा, एक बार १९३८ ई० के चुनाव में कॉंगरेस का बहुमत कायम हुआ। बाबू तेजेश्वर प्रसाद मुंगेर म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन बनाये गए और उनके त्यागपत्र देने पर बाबू निरापद मुकर्जी इस पद पर आये।

द्वितीय महायुद्ध और कॉंगरेस

१९३४ ई० से कागरेस, आजादी की लडाई का स्थगित कर विधानवादी (पार्लमिन्टरी) कार्यक्रम की ओर मुडी। परन्तु, १९३९ ई० के सितम्बर में, विश्व व्यापी द्वितीय महायुद्ध की आग धधक उठने पर, इस देश की स्थिति बिलकुल बदल गई। अब कागरेस के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस लडाई के सम्बन्ध में उसकी क्या नीति हो। वह युद्ध में मित्र राष्ट्रों की सहायता करे अथवा इससे बिल्कुल तटस्थ रहकर लडनेवालो का तमाशा देखे ? गाँधी जी की दौडधूप, वायसराय के साथ पत्र-व्यवहार तथा नेताओं के साथ के तर्क-वितर्क के बाद, कागरेस कार्य समिति, वर्धा की बैठक में, एक निश्चय पर पहुँची। उसने अपने प्रस्ताव में नात्सी और फासिस्टवाद के प्रति विरोध प्रकट करने के साथ-साथ साम्राज्यवाद के प्रति भी अपना विरोध प्रकट किया और बृटिश सरकार से युद्ध-सम्बन्धी अपने उद्देश्यो को स्पष्ट करने का आग्रह किया।

युद्ध में संलग्न होने के पूर्व या पश्चात् सरकार ने किसी भी भारतीय संस्था या नेता से कभी कुछ विचार नही किया। उसने भारत की अनुमति के बगैर भी इसे युद्ध-निरत राष्ट्र के रूप मे घोषित कर दिया और इसके जन-धन को पानी की तरह लड़ाईके कामों में खर्च करने लगा। भारत के इस अपमान की ओर जब काँगरेस ने जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया तो समूचे देश में बड़ी खलबली मच गई। जनता अपने नेताओ से किसी आदेश की प्रतीक्षा करने लगी और अपने इस अपमान का बदला चुकाने की बात सोचने लगी।

काँगरेस के आग्रहमूलक प्रस्ताव और देश के विक्षुब्ध वातावरण देखकर अक्टूबर में सम्राट की सरकार ने एक वक्तव्य दिया। उसमें उसने, युद्ध समाप्ति के बाद, भारत के औपनिवेशिक स्वराज्य का वादा किया और तत्काल वायसराय का कार्यकारिणी कौंसिल की सदस्य-संख्या बढ़ाकर कुछ विशेष भारतीयों को उसमे रखने का निश्चय किया। पर कॉगरेस को इतने से सन्तोष नही मिल सकता था। काँगरेस तो चाहती थी कि सरकार लड़ाई के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के साथ-साथ भारत की भावी स्वतन्त्रता के लक्ष्य को स्वीकार करे एवं तत्काल भारतीय प्रतिनिधियों को इतना शासनाधिकार दे जिसमे वे अपनी इच्छानुसार यहाँ का प्रवन्ध कर सके। कॉगरेस का खयाल था कि तभी भारत लड़ाई मे मित्रराष्ट्रों की सच्ची सहायता कर सकेगा।

तत्कालीन वृटिश राजनीतिज्ञ इस महासमर को जनतान्त्रिक युद्ध के नाम से अभिहित करते थे। अतः जब कॉगरेस ने पूछा कि क्या यह सिद्धान्त केवल पाश्चात्य देशो के लिए ही है या भारत तथा एशिया के अन्य पददलित देशो के लिए भी, तब वहाँ से कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिला। दुनिया को मूर्ख बनाए रखकर अपना उल्लू सीधा करने के निमित्त चाहे जितना और जैसा भी कहा जाता, पर दरअसल लड़ाई का उद्देश्य तो वृटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखना ही था। अतः कॉगरेस के उपर्युक्त प्रश्न का जब सरकारने कोई समीचीन उत्तर नही दिया तो १९३९ ई० के अक्टूबर महीने मे, कॉगरेस कार्यसमिति ने अपनी तीसरी बैठक मे, वर्धा से एक प्रस्ताव पास करके कॉगरेसी मन्त्रि-मण्डलो को त्यागपत्र देकर बाहर निकल आनेका आदेश दिया। फलत. सभी प्रान्तो से काँगरेसी सरकार हट गई। शासन-विधान का अन्त हो गया और वृटिश नौकरशाही की तानाशाही सब जगह खुलकर खेलने लगी।

१९४० ई० के मार्च मे रामगढ़ मे काँगरेस का अधिवेशन हुआ। उसमे कार्य समिति के पूर्व प्रस्तावो का समर्थन किया गया और एकबार फिर भारत की आजादी की माँग दुहराई गई। वृटिश साम्राज्य से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद की उसने घोषणा की और बतलाया कि भारत की आजादी वृटिश साम्राज्यवाद की परिधि के भीतर सार्थक हो नही सकती। अतः भारतको पूर्ण स्वाधीनता चाहिए, प्रजातन्त्र, राष्ट्रीय एकता से सम्पन्न।

किन्तु, रामगढ़ काँगरेस के इस प्रस्ताव के बाद भी सरकार का आसन तनिक नही डोला। वह अपने निश्चय पर पूर्ववत् चलती रही। भारत की भूखी जनता मे सिर की कीमत लेकर पेट पालनेवालो

की कमी न थी। इधर लोभी पूंजीपति लड़ाई के सामग्री संग्रह का ठेका लेने के लिए मुंह बाये रहते थे। फिर वृटिश सरकार को चिन्ता किस बात की थी? वह उपेक्षा की फूंक में कांग्रेस को बिल्कुल उड़ा देना चाहती थी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

सहनशीलता की भी एक सीमा होती है। देश का क्षोभ चरम सीमा पर आया। रामगढ़ कांग्रेस के समय से ही सुभाष बाबू समझौता द्वारा स्वाधीनता का सौदा पटाने की नीति का घोर विरोध कर रहे थे। कांग्रेस के लिए भी अब कोई दूसरा चारा नहीं रह गया। बम्बई में कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई और वहीं वृटेन की युद्ध विषयक नीति के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। सत्याग्रह-संचालन का सूत्र गांधी जी के हाथों में सौंप दिया गया। सत्याग्रह से तत्काल अधिक उपद्रव हो जाने की सम्भावना थी। अतएव गांधी जी ने वैयक्तिक सत्याग्रह करने का ही कार्यक्रम बनाया। आन्दोलन का सूत्र बिल्कुल अपने हाथों ही में रखा। गांधी जी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति नहीं सत्याग्रह नहीं कर सकता था, और अनुमति तपे-तपाए प्रतिनिधि व्यक्तियों को ही दी जाती थी। आन्दोलन का रूप पूर्णतः प्रचारात्मक था। अनुमति प्राप्त सत्याग्रही सरे बाजार घूम-घूमकर लोगों को समझाते थे कि यह लड़ाई साम्राज्य-विस्तार के लिए ही लड़ी जा रही है। इसमें प्रजातन्त्र की रक्षा की जो बात कही जाती है, वह बिल्कुल धोखा है, प्रवचना है। इसलिए भारत के रहनेवाले इस लड़ाई में किसी प्रकार की सहायता नहीं करें। "है साम्राज्यवादी यह लड़ाई। न देंगे एक पाई, न देंगे एक भाई।" व्यक्तिगत सत्याग्रह करनेवालों का यही नारा था। इस आन्दोलन में पूर्ण शान्ति और शिष्टता थी, साथ ही विरोध भी। लगभग एक वर्ष आन्दोलन चला।

प्रान्त के प्रथम सत्याग्रही—बिहार प्रान्त में व्यक्तिगत सत्याग्रह का श्री गणेश कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल के प्रधान मन्त्री बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह जी के द्वारा ही हुआ। श्री बाबू निश्चित समय पर सत्याग्रह के लिए बांकीपुर के मैदान में आये। उनके मैदान में आने के पूर्व ही बहुत से लोग जमा हो गए जिनमें अधिकांश विद्यार्थी थे। विद्यार्थियों ने श्री बाबू की गिरफ्तारी के वक्त बड़ा हंगामा मचाया। वे जेल के फाटक तक साथ आए और जब तक श्री बाबू उनकी आंखों से ओझल नहीं कर दिये गए, तब तक हल्ला मचाते रहे। जेल के फाटक पर भीड़ ने श्री बाबू को देखने की इच्छा प्रकट की, किन्तु पुलिस ने उस अपार जनसमूह की मांग का उत्तर लाठियां चलाकर दिया। श्री बाबू के बाद अनुग्रह बाबू ने सत्याग्रह किया और फिर दूसरे-दूसरे व्यक्ति भी सत्याग्रह करने लगे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह और मुंगेर जिला—मुंगेर के प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही थे स्वर्गीय नेमधारी सिंह। उन्होंने तिलक मैदान में सभा की और व्यक्तिगत सत्याग्रह का उद्देश्य स्पष्ट किया। बाहर निकल कर आगे बढ़ते हुए लालदरवाजा में वह पुलिस द्वारा पकड़ लिए गए। क्रमशः श्री रामचरित्र सिंह (मौजूदा सिंचाई मन्त्री), सैयद रफीउद्दीन अहमद रिजवी, श्री नारायण लाल, श्री रामगोविन्द प्रसाद

शर्मा, श्री रामप्रसाद और नुरुल्ला साहव ने सत्याग्रह किया और गिरफ्तार हुए।

इसके वाद तो जिला भर मे व्यक्तिगत सत्याग्रह की धूम मच गई। ऊपर से जैसे जैसे लोगों के नाम मंजूर हो-हो कर आने लगे, तैसे-तैसे सत्याग्रह-आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। गोगरी, चौथम, बख्तियारपुर, खगड़िया, बेगूसराय, तेघड़ा, वरियारपुर, वलिया, खड़गपुर, तारापुर, जमालपुर, सूर्यगढ़ा, लक्खीसराय, वड़हिया, शेखपुरा, वरवीघा, जमुई, सिकन्दरा और चकाई थानों में भी व्यक्तिगत सत्याग्रह की धूम मची और लोग 'यह है साम्राज्यवादी लड़ाई; न देंगे एक भाई, न देंगे एक पाई।' का नारा लगाते हुए गाँव-गाँव घूमने लगे। प्रारम्भ मे तो सरकार सत्याग्रहियो को गिरफ्तार करती रही। किन्तु जव आन्दोलन तीव्र हुआ और एक के वाद दूसरे व्यक्ति क्षेत्र मे सामने आते ही गए, तो उसने पकड़ना भी छोड़ दिया। इस सत्याग्रह के सम्बन्ध मे जेल जानेवाले कतिपय प्रमुख व्यक्तियो के नाम इस प्रकार है:—

श्री कृष्ण मोहन प्यारे सिंह, श्री श्यामा प्रसाद सिंह, कुमार कालिका प्रसाद सिंह, श्री राजेश्वर प्रसाद सिंह, श्री रामगुलाम शर्मा, श्री वासुकी नाथ राय, ठाकुर कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद', श्री सर्यू प्रसाद सिंह, वावा सियाराम दास, श्री रामरीझन सिंह, श्री लषनलाल मिश्र, मौ० अब्दुल अजीम अनसारी, शेख अब्दुला आदि।

क्रिप्स-योजना, या माया-जाल ?

युद्ध की लपटें दिन-दिन भीषण रूप से बढ़ती जा रही थी। हिटलर की फौज एक के वाद दूसरे देश को रौंदकर इठला रही थी। फ्रांस के वाद इङ्गलैण्ड मे दिन गिने जा रहे थे। अंगरेज वड़े ही पशोपेश में थे। और तव, जापान भी युद्ध मे कूद पड़ा। वातोंवात मे अंगरेजों का सुदृढ गढ़ सिगापुर भी हाथ से निकल गया। फिर तो ऐसा मालूम पड़ने लगा कि वृटिश सल्तनत हिन्दुस्तान मे भी चार दिनों की मेहमान है। श्री सुभाषचन्द्र वोस, सी० आई० डी० और पुलिसके घेरे को तोड़, विदेश निकल गए थे; और जर्मनों का सहयोग पाकर मातृभूमि की स्वतंत्रता के पक्ष मे प्रचार कर रहे थे। भारत असहयोग के नारे लगा रहा था। युद्धोद्योग विफल-सा होता दिखाई पड़ रहा था। अव तो वृटिश राजनीतिज्ञो की नींद निस्सन्देह हराम हो गई। वे रात-दिन सोचने लगे कि किस तरह भारत के साधनो और भारतीयों को मुट्ठी में रखा जाय। भारत को अप्रसन्न रखने के काम को खतरनाक समझकर चर्चिल की सरकार ने सर स्ट्रैफोर्ड-क्रिप्स को हिन्दुस्तान की आजादी की एक योजना लेकर यहाँ भेजा।

योजना में भावी भारत को एक संघ शासन वनाने का अधिकार सौंपा गया। उसकी मर्यादा स्वतन्त्र उपनिवेश जैसी मानी गई। लड़ाई के वाद, प्रतिनिधि सभा वुलाकर, संघ शासनका विधान वनाने की वात कही गई। पर, उस विधान मे किसी भी प्रान्त को इतना अधिकार देना पड़ता कि वह संघ में शामिल न होकर जैसा है, वैसा ही रहना पसन्द करे। ऐसा प्रान्त अपना अलग विधान भी वना सकता। फिर, इस संघ को भी वैसी मर्यादा दी जाती, जो भारत संघ को दी जाती। ब्रिटेन विधान वनानेवाली सभा से सन्धि कर लेता, जिसकी शर्तो के मुताविक भारत संघ को अल्प संख्यक जातियों तथा धार्मिक दलो की रक्षा

करनी पडती। लडाई की समाप्ति के बाद तुरत निर्वाचन होता, और प्रान्त की नवीन साधारण व्यवस्थापिका सभा को विधानवाली सभा में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार। आनुपातिक-प्रतिनिधित्व के नियमानुसार प्रतिनिधियो की सख्या व्यवस्थापिका सभा की सख्या का दसवा हिस्सा रहने की बात भी थी।

इस प्रकार योजना, भारत की तात्कालिक माग को उलझा रखने के लिए, एक भीषण माया का जाल लेकर आई। नकली स्वराज्य की तह में छिपा हुआ था इसमें भरकर साम्राज्यवाद का भूत, किन्तु, महात्मा गाधी की आखें धोखा नहा खा सकी। उसने अगरेजो की प्रवचना को समझा और इसे "एक दिवालिए बैंक के नाम बाद में भेजा गया चेक' (Post Dated Cheque of Liquidated Bank) बतलाया। फिर, उन्होंने क्रिप्स से कहा—"तुमने ऐसे खरीते को लाने की तकलीफ व्यर्थ ही उठाई। क्यों नाहक परेशान हुए ? उलटे पाँव वापस जाओ।"

गाँधी जी की उपर्युक्त सम्मति के बावजूद भी, कागरेस के नेताओ ने क्रिप्स की इस योजना को कई तरह से उलट पलटकर देखा, परखा। वे बड़े लाट लिनलिथगो, प्रधान-सेनापति लार्ड वावेल तथा योजना के जन्मदाता क्रिप्स से कई दिन, कई वार मिले, बातें की और कुछ गुत्थियो के सुलझाव की माँग की। एक दिन यह भी अफवाह फैली कि समझौता हो गया, पर दूसरे ही दिन इस खबर का खडन हो गया। अत में यह भी सुनने में आया कि सर क्रिप्स ने तत्कालीन राष्ट्रपति मौलाना आजाद से कई बातें बतलाईं, जिनसे वे पीछे मुकर गए। इस प्रकार इतनी दौड धूप और परिश्रम के बाद भी काँगरेस को वह योजना नही जँची और १२ अप्रील को क्रिप्स साहब इङ्गलैण्ड लौट गए।

क्रान्ति का सूत्रपात

इधर क्रिप्स योजना ठुकराई गई, उधर जापानी पश्चिम की ओर बढते चले आ रहे थे। अगरेजो को भारतीय जनता और सैनिको पर उतना भरोसा नहीं रहा। अत वे भारत में निरन्तर विदेशी सैनिक भेजने लगे। अङ्गरेज, अमेरिकन, आस्ट्रेलियन, चीनी, न्यूजीलैण्डसी आदि विदेशी सैनिक भारत में भर गए। जगह-जगह हवाई अड्डे और छावनिया तैयार होने लगीं। कितने लोग अपने घरबार तथा जमीन-जायदाद से बेदखल होने लगे। गोरे सैनिको का देश में आतक छा गया। सरकार और-और तरहो से भी धाँधली मचाने लगी। इससे गाधी जी, भारत सम्बन्धी अङ्गरेजो की नीयत से, और भी सशकित हो उठे। वह आसन्न जापानी आक्रमण, भारत की रक्षा, उसकी स्वतन्त्रता और भारत के प्रति अङ्गरेजी सल्तनत के इस रुख पर बहुत गम्भीरता से सोचने लगे। आपके मस्तिष्क में बहुत-सी बातें आईं, जिन्हें एक-एक कर उन्होंने 'हरिजन' में व्यक्त किया। उन्होंने 'भारत में विदेशी सेना' शीर्षक लेख में लिखा—

"भारत में विदेशी सैनिक पहले से मौजूद हैं। अब निरतर अमेरिका, और सम्भवत चीन से भी सैनिको का आगमन जारी हो गया है। इससे मेरा मन अशान्त हो उठा है। क्या भारतीयो की अनगिनत सेना शिक्षित कर तैयार नही की जा सकती ? क्या दुनिया के और देश के सैनिको जैसा वे वीर योद्धा

नही हो सकते ? हम जानते हैं, अमेरिका की सहायता का क्या अर्थ है। अन्त में इसका अर्थ ब्रिटेन के साथ-साथ अमेरिका का शासन अथवा प्राधान्य अवश्य है।" फिर 'हरिजन' के एक दूसरे अंक मे उन्होंने लिखा:—

"मै जान गया हूँ कि आजकल मेरा रहना भीषण अराजक परिस्थिति में हो रहा है। हिन्दुस्तान के मौजूदा शासन को सुशासन मान लेना शासन नाम को वदनाम करना है। इसलिए एसी व्यवस्थित और कायदे-कानून के अनुसार चलनेवाली अराजकता को भी मिट ही जाना चाहिए। यदि इसके फलस्वरूप भारत में बिल्कुल उच्छृंखलता भी फैली, तो मै इस खतरे को भी बरदाश्त करूँगा; क्योकि मुझे विश्वास है कि २२ वर्षों से जनता को जो अहिंसा की शिक्षा मिलीहै, वह वेकार नही गई होगी; और उस विशृंखलता से ही जनता अपना लोकतन्त्र भी विकसित कर लेगी।"

वृटिश हुकूमत यद्यपि वहुत असह्य हो रहा था, फिर भी जापानी व्यवस्था से जो भय था, वह तनिक कम नही हुआ था। उन्होने 'हरिजन' मे ही लिखा था—"जापानियो को दूर रखने मे अंगरेजों से ज्यादा मेरा ही स्वार्थ है। अगर वे यहाँ हार खा गए तो उनके हाथ से सिर्फ हिन्दुस्तान निकल जायगा, पर, हिन्दुस्तान का तो जापानी जीत से सर्वनाश ही हो जायगा।"

अपनी उक्ति की सदाशयता के इतने कायल गाँधी जी हो रहे थे कि अंगरेज उनकी सुन लेगे—ऐसी उमीद उनको थी ही। 'हरिजन' मे उन्होंने लिखा—'ब्रिटिश शासकों के ईमानदारी के साथ, हमेशा के लिए बिलकुल चले जाने के वाद हिन्दुस्तान के अनुभवी नेता अपनी जवाबदेही समझेंगे और उस मौके पर अपने मतभेदों को भूलकर उन साधनों के सहारे, जिन्हे ब्रिटिश छोड़ गये रहेंगे, काम चलाकर सरकार का संगटन कर लेगे। यदि वह सरकार मेरी आशा के अनुकूल हुई तव सव से पहला काम उसका होगा रक्षा की व्यवस्था करने के लिये संयुक्त राष्ट्रों से सन्धि कर लेना। यदि उस सरकार की रीति-नीति ठीक करने मे मेरा हाथ रहा, तब तो वह सरकार सयुक्त राष्ट्रों को इतनी ही मदद देगी कि उन्हे स्पष्ट शर्तों के मुताबिक भारत-भूमि पर अपना काम करने दे।। हाँ, व्यक्तिगत हैसियत से कोई हिन्दुस्तानी चाहे रंगरूट बने, चाहे उन्हे धन दे।"

गाँधी जी की वाणी और लेखनी ने जनता मे नई जान डाल दी। 'अगरेजो! भारत छोड़ दो' असंख्य कण्ठों का नारा वन गया। ऐसी परिस्थिति में काँगरेस की कार्य-समिति १४ जुलाई को वर्धा में बैठी और उसने अपना सुप्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया। कार्य-समिति ने कहा कि "गुलामी वुरी है इसलिए ही भारत आजादी नही चाहता है। उसकी आजादी तो दुनिया की हिफाजत के लिए, नाजीवाद, फासिस्टवाद, युद्धवाद और साम्राज्यवाद के विभिन्न रूपों को नष्ट करने के लिए आवश्यक है।

"जब से लड़ाई शुरू हुई, काँगरेस फूंक-फूंककर पैर धरती रही ताकि ब्रिटेन के युद्धोद्योग में खलल न पहुँचे। आशा थी कि वह काँगरेस की सद्भावना को समझेगा और हिन्दुस्तान को आजाद कर देगा; पर उसकी आशा पर पानी फिर गया है।

"आज देश में ब्रिटेन के प्रति विद्वेष है। जापान की सफलता पर खुशी है। कांगरेस को इसलिए बड़ी चिन्ता है। वह भारत को मलाया, सिंगापुर और बर्मा की राह चलने नहीं देखना चाहती। वह उसमें ऐसी मजबूती लाना चाहती है कि वह विदेशियों के आक्रमण का मुंहतोड़ जवाब दे सके। ऐसा तभी सम्भव है, जब उसे आजादी मिल जाय।

"विदेशी हुकूमत के हटने पर ही यहाँ राष्ट्रीय एकता होगी। राजा, जमीन्दार और जागीरदार अपनी शोषण-वृत्ति को समझेंगे और कल-कारखानों तथा खेतों के श्रमिक अपना महत्व पहचानेंगे, और शक्ति तथा सत्ता का सूत्र उनके हाथ आवेगा। फिर, स्वतन्त्र भारत और ब्रिटेन के प्रतिनिधि साथ बैठकर अपने भविष्य सम्बन्ध का रूप तय कर लेंगे।

"कांगरेस इसके लिए राजी है कि मित्र शक्तियाँ अपनी फौज यहाँ आक्रमणों के प्रतिकार के लिए रखें। भारत छोड़ दो का मतलब यह नहीं है कि सभी अंगरेज यहाँ से चले जाय। मतलब है कि विदेशी हुकूमत उठ जाय और जो अपने को विदेशी समझते हैं, चले जाय। जो यहाँ वालों के जैसे हो गये हैं, इस देश को जिन्होंने घर बना लिया है, उन्हें तो रहना ही है।

"कांगरेस उतावला नहीं बनना चाहती। वह ब्रिटिश सरकार से अपील करती है कि भारत की माग को मंजूर कर ले।

"अगर उसकी अपील नहीं सुनी गई तब अपने हकपर पहुँचने के लिए कांगरेस अपनी सारी शक्तियों का उपयोग करेगी, जिनका १९२० से अहिंसात्मक नीति का अवलम्बन करके उसने सचय किया है।

"पर यह प्रस्ताव इतना महत्वपूर्ण है कि अखिल भारतीय कांगरेस कमिटी की राय पर इसे छोड़ देना जरूरी है। और अखिल भारतीय कांगरेस कमिटी बम्बई में ७ अगस्त १९४२ को बैठेगी।"

इस प्रस्ताव को पढ़कर भारत का दृष्टिकोण समझने के बजाय, इंगलैंड के राजनीतिज्ञों ने कांगरेस को धमकाना शुरू किया और धमकी देनेवालों में क्रिप्स साहब भी शामिल हो गये।

६ अगस्त

अङ्गरेजों की लीक पर चलकर ही अमेरिकन भी गांधीजी और कांगरेस के विरुद्ध बहुत ही भ्रमपूर्ण प्रचार करने लगे। किन्तु, जैसे-जैसे विदेशियों के ऐसे कुत्सित प्रयत्न बढ़ने लगे, वैसे-वैसे कांगरेसजन परस्पर के मतभेदों को भुलाकर, एक माग, एक कार्यक्रम की बात सोचने लगे। अगस्त आते-आते तो ऐसी हालत हो गई कि सभी एक स्वर से बृटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने की आवश्यकता पर जोर देने लगे। सब लोग यह भली प्रकार समझ गए कि अंगरेज जाति राजी खुशी से कभी कुछ देने को तैयार नहीं होगी। वह स्वयं मिट जायगी, हिंदुस्तान को भी मिटा देगी, पर स्वेच्छापूर्वक हमारे देश की गुलामी का बन्धन ढीला नहीं करेगी। अगर वह इस युद्ध को जीत भी जायगी, तो उसकी वह जीत हिन्दुस्तान के लिए और भी घातक होगी। हारेगी तो जो दूसरा देश आयेगा, वह हमें और अधिक पामाल करेगा, और

नन्दकुमार बाबू की वृद्धा माता
जिन्होंने अगस्त-क्रान्ति का अपने
थाने में सफल नेतृत्व किया।

अगस्त-क्रान्ति का शहीद
श्री राधा प्रसाद सिंह

अगस्त-क्रांति के शहीद—कुलानन्द दास
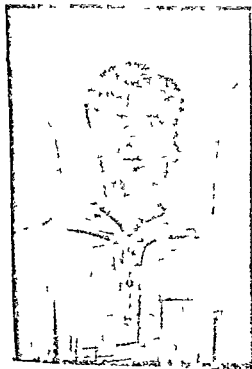
अगस्त क्रान्ति के शहीद—प्रभुनारायण सिंह

भी किसी विशेष बुरी गुलामी के शिकंजे मे कसेगा। इसलिए अभी अवसर है कि हम एक हो जायँ और जान को जोखिम मे डालकर भी देश की आजादी हासिल कर ले।

इसी प्रकार की विद्रोही विचारधारा से ओतप्रोत वातावरण मे अखिल भारतीय कांगरेस-कमिटीकी बैठक ता० ७ अगस्त को बम्बई में हुई। पण्डित जवाहरलालजी के द्वारा सुप्रसिद्ध अगस्त-प्रस्ताव पेश हुआ। प्रस्ताव का आशय निम्न प्रकार था:—

"आजाद भारत-काँगरेस-समिति पूरी दृढ़ता के साथ भारत से अंगरेजो की विदाई की माँग करती है। भारत की स्वाधीनता की घोषणा के साथ ही एक अस्थायी सरकार की स्थापना होगी और स्वतंत्र भारत संयुक्त-राष्ट्र का मित्र बन कर रहेगा और स्वाधीनता के संघर्ष मे उसके साथ सभी मुसीबतों मे हाथ बँटायेगा। अस्थायी सरकार की स्थापना देश के प्रमुख दलो के सहयोग से ही होगी। इस प्रकार यह भारत के विभिन्न दलों की एक प्रतिनिधि सरकार होगी, जिसका प्राथमिक कार्य होगा भारत की रक्षा और किसी भी आक्रमण का विरोध। साथ ही, इसका कर्तव्य होगा खेतो और फैक्टरियो मे काम करनेवालो की भलाई तथा उनकी उन्नति के कार्य करना, जिनके हाथों मे ही सारी ताकत चली जायगी।

"अस्थायी सरकार विधान-निर्मातृ परिषद के लिए एक स्कीम तैयार करेगी, जो भारत सरकार के लिए सभी दलों को मान्य एक विधान तैयारी करेगी।

"भारत की स्वतंत्रता, सारे एशियाई देशो की विदेशी गुलामी से मुक्ति की दिशा मे एक संकेत होगी।

"स्वतत्र भारत प्रसन्नतापूर्वक एक विश्व-सघ का सदस्य होना चाहेगा, जो स्वतंत्रता का समर्थक होगा, और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओ के समाधान मे दूसरे देशो के साथ बराबरी के आधार पर सहयोग करेगा। ऐसे संघ का कोई भी राष्ट्र सदस्य हो सकता है, जो इसकी मौलिक नीति को मानेगा।

"स्वतत्र भारत-काँगरेस-महासमिति इस अन्तिम क्षण मे भी, विश्व-स्वतंत्रता के हक मे, ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र के प्रति की गई अपनी अपील को दुहराती है। लेकिन, समिति इसे महसूस करती है कि राष्ट्र को साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपने जोर लगाने के प्रयत्न मे कोई उसे रोक नही सकता। अत. समिति भारत के स्वतंत्रता के जन्मसिद्ध अधिकार को स्वीकृत करती है और प्रस्ताव करती है कि अहिसा के आधार पर जन-व्यापाक आन्दोलन छेड़ा जाय, ताकि विगत २२ वर्षो के शान्तिपूर्ण सघर्ष से देश ने जो अहिसात्मक शक्ति प्राप्त की है, उसका सदुपयोग हो सके। यह सघर्ष निश्चय ही गाँधी जी के नेतृत्व मे होगा और समिति उनसे प्रार्थना करती है कि वे नेतृत्व अपने हाथो मे ले और राष्ट्र को इस कार्य मे मार्ग दिखावें।

"समिति देशवासियो से अपील करती है कि इसके चलते उनपर जो भी खतरे और मुसीबते आयें, उनका सामना वे धैर्य और अध्यवसाय के साथ करे और गाँधी जी के नेतृत्व मे दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें

तथा अनुशासित सैनिक की नाईं उनके आदेशों का अनुसरण करें। उन्हें याद रखना होगा कि इस आदोलन का आधार अहिंसा है। इस आंदोलन के बीच ऐसा भी समय आ सकता है कि जब आदेश जारी करना सम्भव नहीं हो, चाहे जनता तक आदेश पहुँच ही नहीं सके और न कोई काँग्रेस कमिटी ही काम कर रही हो। जब ऐसा हो जायगा, तो प्रत्येक स्त्री और पुरुष, जो इस आन्दोलन में भाग ले रहे होंगे, जो साधारण आदेश जारी किए जा चुके रहेंगे, उनके अन्तर्गत कार्य करने को स्वतंत्र होंगे। प्रत्येक भारतवासी, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए युद्ध कर रहे हैं, अपना नेता आप होगा। आजाद भारत काँग्रेस समिति इस बात को भी स्पष्ट कर देना चाहती है कि काँग्रेस स्वयं शक्ति अपने हाथ में लेने के लिए ऐसा नहीं करती, बल्कि विजय होने पर शक्ति सभी भारतीयों के हाथ में रहेगी।

"समिति अहिंसा के आधार पर गाँधी जी के नेतृत्व में व्यापक जन-आन्दोलन चलाने की स्वीकृति देती है और उनसे प्रार्थना करती है कि वे राष्ट्र का नेतृत्व तथा उसका मार्ग प्रदर्शन करें।"

८ अगस्त को १० बजे रात में आजाद भारत-काँग्रेस समिति का अधिवेशन समाप्त हुआ। अधिवेशन को सबोधित करते हुए महात्मा गाधी ने कहा—"यह संघर्ष आरम्भ करने के पूर्व मैं वायसराय महोदय से मिलने की भरसक चेष्टा करूँगा।"

महात्मा गाधी ने सभी भारतीयों को सबोधित कर कहा कि वे यह महसूस करें कि हम स्वतंत्र हैं। आपने पत्रों को सबोधित कर कहा कि वे अपना प्रकाशन स्थगित कर दें और जब भारत स्वतंत्र हो जायेगा, वे अपना प्रकाशन फिर आरम्भ करेंगे। सरकारी कर्मचारियों को सबोधित करते हुए आपने कहा कि उन्हें शीघ्र इस्तीफा देने की कोई जरूरत नहीं, हाँ, वे सरकार को लिख दें कि हम काँग्रेस के साथ हैं। विद्यार्थियों और सैनिकों को सबोधित करते हुए आपने उनसे तैयार रहने को कहा। अधिवेशन समाप्त होने के पूर्व मौलाना आजाद ने घोषणा की कि मैं प्रेसिडेंट रूजवेल्ट, चीन तथा लदन स्थित रूसी राजदूत को प्रस्ताव की नकल भेज रहा हूँ। आपने कहा कि यदि हमारे सभी प्रयत्न असफल हो जायेंगे तभी भारतीय कोई दृढ़ कदम आगे बढ़ायेंगे। चाहे कुछ भी हो जाय, हम अपने संघर्ष में डूब जायें या तैर कर किनारे लगें, विजयी हों या पराजित, हमें अपना संघर्ष चलाना ही है।

महात्मा गाधी ने आसन्न आंदोलन को 'खुला विद्रोह' बताया और मौलाना साहब ने काँग्रेस के प्रस्ताव को एक चेतावनी बतलाई। इसके बाद उस दिन की बैठक समाप्त हुई।

यज्ञ की आहुतियाँ और लपट—अगस्त की आठ तारीख। आजाद भारत-काँग्रेस की बैठक का दूसरा दिन। पहले दिनवाले प्रस्ताव पर विविध तर्क वितर्क हुए। रात के ग्यारह बजे, सदस्यों को सूचना मिली कि कल उन्हें फिर एकत्र होना है। झंडोत्तोलन के बाद गाँधी जी आंदोलन की गति-विधि के सम्बन्ध में उन्हें आदेश देंगे। उमंग और आशाभरी उत्सुकता में सभी ९ अगस्त की प्रतीक्षा में सोये।

किन्तु यह क्या? ९ अगस्त के सबेरे ५॥ बजे गाधी जी पकड़ लिए गए। अपनी अपनी जगहों पर काँग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्य भी गिरफ्तार कर किसी अज्ञात स्थान को रवाना कर दिए गए।

गिरफ्तारी इतनी झटपट हुई कि किसी से कुछ कहते या सन्देश देते नही बन पड़ा । विभिन्न स्थानों में टिके हुए प्रतिनिधियों को घटनाचक्र की कोई खबर न थी । सभी लोग, ६ अगस्त के सबेरे शिवा जी पार्क में, जहाँ झंडोत्तोलन होने का निश्चय था, जुटने लगे । किन्तु, समय पर जब नेता लोग दर्शन नही देने लगे और लोगो ने फोन का सम्बन्ध कटा हुआ पाया, तो उनका माथा ठनका । फिर तो बिजली की तीव्रता से नेताओं की गिरफ्तारी के समाचार शहर के कोने-कोने मे फैलने लगे और लोग दल बाँध-बाँध कर शिवा जी पार्क की ओर आने लगे ।

पुलिस भी चुप नही बैठी । वह शिवा जी पार्क की ओर आनेवाले जत्थों को रोकने लगी । रोक के न मानने पर गोलियाँ चली, लाठियाँ बरसी और आँसू गैस के प्रयोग हुए । लोगों को भयभीत करने के लिए ऊपर-ऊपर हवाई जहाज भी मड़राने लगे । लेकिन यहाँ तो 'करो या मरो' की दीक्षा मिल चुकी थी । जनता भी जान पर खेल गई । दुश्मन के अचानक हमले से उत्तेजित होकर उसने ट्राम, ट्रक आदि मे आग फूँक दी, सड़क काट डाली और उन्हे भलीभाँति जाम कर दिया ।

बम्बईमे होनेवाली इस घटना का समाचार मानो हवा पर चढ़कर देश के कोने-कोने मे फैल गया । जनता तो पहले ही से सशंकित थी । जब उसने अपने नेताओ की गिरफ्तारी, बम्बई के दमन और उपद्रव की बातें सुनी तो बौखला गई । सर्वत्र उसकी प्रतिक्रिया होने लगी । सड़क काटने, टेलीफोनिक सम्बन्ध बिगाड़ने, रेल की पटरियाँ उखाड़ने, सरकारी ईमारतों पर झंडे फहराने आदि के काम होने लग गए ।

प्रान्त की राजधानी में—देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद जी उस समय बहुत बीमार थे । इसीलिए वह बम्बई वाली बैठक मे भी नही गए । ६ अगस्त के सबेरे सदाकत आश्रम मे बिहार पुलिस ने उनको भी गिरफ्तार किया और पटना जेल मे ला रखा । सदाकत आश्रम पर भी पुलिस ने कब्जा कर लिया और सभी कागज-पत्र जप्त कर लिए ।

राजेन्द्र बाबू की गिरफ्तारी की खबर मिलते ही बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह निकल पड़े । १० अगस्त के १० बजे दिन मे उन्होंने विद्यार्थियो को ललकारा और उन्हे देशकी लड़ाई की इस आखरी मंजिल में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया । फिर तो कालेज के छात्रावासो में जो चिनगारियाँ थीं, वे सब मिलकर विस्फोट बन गईं । जलूस निकलने लगे । 'बम्बई से आई आवाज, इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों से दिशाएँ गूँजने लगी । रेल, तार और सड़क नष्ट-भ्रष्ट किए जाने लगे । ११ अगस्त को एक जबरदस्त टोली पटना सेक्रेटेरियट को रवाना हुई । वहाँ सरकार भी बैठी नहीं रही । भीषण गोलीकांड हुए । सात विद्यार्थी इस कांड के शहीद हुए । फिर तो प्रान्त के कोने-कोने मे चिनगारी फैली, आग लगी और बृटिश सत्ता धूधूकर जल उठी ।

एक लपट यहाँ भी—और-और स्थानों की भाँति मुगेर जिले में भी ६ अगस्त से ही आंदोलन और भीषण दमन प्रारंभ हो गया । उसी दिन सबेरे श्री सुरेशचन्द्र मिश्र पकड़ लिए गए । दो दर्जन पुलिस तिलक मैदान पहुँची और उसे जप्त कर, जिला-कांगरेस के मन्त्री श्री नन्दकुमार सिंह को गिरफ्तार कर लिया । उसी

रात बिहार के भूतपूर्व मन्त्री श्री जगलाल चौधरी, भविष्य का कार्यक्रम लेकर, पटना से मुंगेर आए, तिलक मैदान को जप्त पाकर, खादी भण्डार में रुके। स्थानीय कार्यकर्त्ता सैयद रफीउद्दीन रिजवी साहब के यहाँ स्थानीय कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक हुई। आगे के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श हुआ। श्री जगलाल चौधरी जो पर्चे अपने साथ लाए थे, उन्हें सभी थानाओं में भेजने का प्रबन्ध किया गया।

११ अगस्त को कन्या-विद्यालय की बालिकाओं का एक जुलूस, श्रीकृष्ण मिश्र की सुपुत्री श्री राजेन्द्र कुमारी के नेतृत्व में निकला। उसके पीछे स्कूल, कालेज के लड़कों का भी जुलूस था। जुलूस कचहरी पहुँचा और वहाँ की इमारतों पर राष्ट्रीय झंडे उड़ने लगे। पुलिस दौड़ पड़ी। उसने लड़कियों को घंटों तक अपने घेरे में रखा। पीछे एक डेढ़ दर्जन लड़कियाँ गिरफ्तार कर ली गई। शेष छोड़ दी गई।

जिला भर में आन्दोलन को सगठित और पुरअसर बनाने के लिए कामों का बटवारा किया गया। श्री बलदेव प्रसाद सिंह पर जिले के सचालन, श्री परमेश्वर प्रसाद सिंह पर आफिस निरीक्षण तथा श्री सुरेश्वर पाठक को पर्चे तैयार करने, साइक्लोस्टाइल पर उन्हें छापने और जिले में बटवाने की जिम्मेवारी सौंपी गई। श्री जयश्री पाठक और श्री जगदीश मिश्र उनकी सहायता में रहने लगे। शहर का काम श्री रामेश्वर मिस्त्री बड़ी तत्परता से करते थे। वकीलों ने दो हफ्ते तक कचहरी न जाने का निश्चय किया। पर कुछ मुसलमान वकीलों ने जाना नहीं छोड़ा। अतएव १४ अगस्त से किले के पूर्वी फाटक पर धरना शुरू किया गया। उस धरने में पुलिस और जनता के बीच संघर्ष भी हुआ। १८ को ही खड़गपुर से श्री बनारसी प्रसाद सिंह के नायकत्व में स्वयंसेवकों का एक जत्था आया। वे लोग शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिए गए। १४ अगस्त को गोरे सैनिक मुंगेर पहुँच गए और जोर जुल्म मचाने लगे।

१६ अगस्त को नुरुल्ला साहब के यहाँ कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक थी। पुलिस को इस बैठक का पता लग गया। उसने नुरुल्ला साहब के घर को घेर लिया। इधर रामप्रसाद बाबू अपनी दूकान पर पकड़ लिए गए। गिरफ्तारी तेजी से होने लगी। तोड़-फोड़ के अभियोग में विद्यार्थियों ने प्रमुख भाग लिया। इसी सिलसिले में कुछ उत्साही लोग पकड़े भी गए और लम्बी अवधि की सजाएँ उन्हें दी गई।

अराजकता फैल जाने के कारण गंगा में नावों की डकैतियाँ होने लगी। इस प्रकार की अराजकता को रोकने में बाबू बलदेव प्रसाद सिंह, श्री रामगोविन्द प्रसाद वर्मा, श्री गीता प्रसाद चौधरी आदि बहुत प्रयत्नशील हुए। अपने प्रयत्न में इन्हें सफलता भी मिली। डकैती बन्द हुई। बहुत से लूट के माल लोगों को वापस मिले। ६ सितम्बर को रामगोविन्द प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गए। फिर, बलदेव बाबू भी गिरफ्तार हुए। घासी टोला के श्री गदाधर राम के घर पर साइक्लोस्टाइल पकड़ा गया और उसी अभियोग में वे गिरफ्तार कर लिये गये। १९४२ ई० में, भागलपुर जेल में उनकी मृत्यु हो गई। १९४२ ई० के २८ सितम्बर को श्री रणवीर सिंह 'वीर' पर्चे निकालने के सदेह पर शीतलपुर में गिरफ्तार किए जाकर २० मास नजरबन्द रखे गए। श्री सुरेश्वर पाठक पर बहुत दिनों तक वारंट था पर वे फरार हो गए। उनके गिरफ्तार करानेवाले को सरकार की ओर से कुछ ईनाम का भी लोभ दिया गया था। १९४३ ई० में,

१२ अगस्त को मनसी स्टेशन के सामान और कागज-पत्र जलाए गए, लाइन की पटरियाँ उखाड़ी गई और तार काटे गए। तीन इंजिनों की मशीने चूर-चूर कर दी गई। १३ अगस्त को मुगेर से डी० एस० पी० कुछ पुलिस के सशस्त्र सिपाही और एक सर्जेण्ट को लेकर मनसी पहुँचा। उस दिन भी एक बड़ी भीड़ स्टेशन की ओर आ रही थी। पुलिसवालो ने गोली चलाई जिससे माधव सिह नामक एक कम-उम्र बालक उसी क्षण मर गया और १८ वर्षीय युवक धाना मडल खगड़िया अस्पताल जाकर मरा। इस गोलीकाण्ड से लोगो मे बड़ी उत्तेजना फैली। पुलिस वाले तो तुरत लौट गए पर उत्तेजित भीड़ ने स्टेशन पर के ६४ डब्बों के माल, जिनमे मुख्यत. युद्ध की सामग्री थी, लूट लिए। एक अङ्गरेज इंजिनियर का सारा सामान भी लूटा गया। लूट दो-तीन दिनों तक चलती रही।

लोगो के उत्पात से डर कर मनसी के स्टेशन मास्टर ने खगड़िया कॉगरेस कमिटी से अपनी रक्षा के लिए कुछ स्वयसेवक मागा था। इधर मुगेर से नाव पर कुछ गोरे सैनिक भी मनसी पहुँच गए। स्टेशन पर इन स्वयंसेवको को देखकर उन्होने गोली मारने की तैयारी की, पर स्टेशन मास्टर के समझाने पर किसी तरह रुके। तो भी गोरो ने उनको बहुत मार मार कर ही छोड़ा। श्री देवेन्द्र प्र० चौधरी, श्री नन्दकिशोर सिह और श्री सहदेव शर्मा के सख्त चोट आई। उसी दिन से मनसी में गोरे सैनिक रहने लग गए।

मनसी के गोरे सैनिको ने आसपास के इलाके मे भीषण आतंक फैला रखा था। लोग बेतरह त्रस्त थे। अतएव उनमें हिम्मत लाने के लिए प्राणो को हथेली पर लेकर सात स्वयंसेवको ने एक जुलूस निकाला और वे गॉव-गॉव घूमने लगे। ६ अगस्त को ठाठा के पास जत्था रेलवे लाइन पार कर रहा था तो ट्राली पर जाते हुए गोरो ने इन पर गोली चला दी। गोली बलदेव पण्डित की नाभी को छेदते हुए एक पाड़ा को लगी। पाड़ा तो वहीं मर गया, पर श्री बलदेव पण्डित की मृत्यु आश्रम मे २४ घण्टे बाद हुई। पण्डित एक लोअर प्राइमरी स्कूल के शिक्षक थे।

शहीद बलदेव पण्डित के कुछ साथी गगलिया-रोहियार के थे। वहाँ भी एक हवाई जहाज गिरा। उसमे तीन अगरेज थे। चौथम थाना बरसात मे बिलकुल जलमग्न रहता है। अंगरेज हवाई जहाज के पंख पर बैठ कर, उस जलमग्न प्रदेश से बाहर होने की युक्ति करने लगे। शहीद के शोक-संतप्त साथियों की नजर अगरेजो पर पड़ी। प्रतिहिसा की भावना जग उठी। वे लोग एक नाव से उस हवाई जहाज के पास पहुँचे। अगरेजो को मनसी पहुँचाने की बात कह कर नाव पर बैठा लिया। धीरे-धीरे उनके हथियार अपने अधिकार मे कर लिए। फिर भाले-बरछो से उन तीनो का अन्त कर दिया। उनकी लाश नदी मे डुबा दी गई। हवाई जहाज भी लोगो ने कीचड़ मे गाड़ दिया।

इसके बाद गोरे सैनिक मोटर लचसे उस स्थान पर पहुँचे। साथियोकी खोज करने लगे। २ सितम्बर को रोहियार आकर उन्होने गाववालो पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाई। इस गोलीकाण्ड से दस व्यक्ति मरे, जिनमे स्त्री और बच्चे भी थे। ये दस थे श्री कारेलाल वर्मा, श्री ललजी गोप, श्री नगरू गोप, श्री जागो

गोप, हुँकरी तेलिन और उसकी गोद की तीन वर्ष की बच्ची, सात वर्ष का बच्चा महादेव, सुरनी देवी और उसका तीन वर्ष का बच्चा तथा ठट्ठी के डोमन ठाकुर।

३ सितम्बर को गोरे मनिव उनहा बाजार आए। वहाँ से श्री अनन्त पांडुरग नातू और श्री नारायण पाडुरग नातू नामक दो महाराष्ट्र बन्धुओं को मनसी पकड लाए। ये दोनो भाई, बडे ही समाजसेवक और लोकप्रिय व्यक्ति थे। बडे भाई श्री अनन्त पाडुरग नातू चौथम थाना कागरेस कमिटी के सभापति भी रह चुके थे। इस क्रान्ति मे भी दोनों भाइयो का कुछ हाथ था। अत गोरे सैनिको ने पाडुरग बन्धुओ को पकड, कई दिनो तक उन्हें भीषण यन्त्रणाएँ दी। सगीन से उनके शरीर छलनी कर दिए गए, और अत मे गोरो ने उन्हें पमराहा काटन के पास ले जाकर गोली से मार दिया और उनकी लाशे पानी मे बहा दी।

वर्गनिया और रोहियार के स्त्री पुरुषो को गोरे सैनिकों ने अपना साधारण शिकार बना लिया था। उनकी जब मरजी होती वहा जाते, लूटपाट मचाते और वहाँ की स्त्रियो के साथ बलात्कार करते थे।

६ सितम्बर को थानेदार कुछ सशस्त्र सैनिको के साथ थाने में पहुँच गए। १० ता० को मनसी के एक दस्ता गोरे चौथम आए। उन्होने चौथम अस्पताल के डा० विभूतिभूषण देव के सब सामान नाव पर से लूट लिए और उनको साथ लेकर यहाँ के जमीन्दार श्री सुरेन्द नारायण सिह के घर पर पहुँचे। उनके घर के किवाडो को तोडकर गोरो ने बहुत से सामान जला दिए और जेवर वगैरह कीमती चीजें वे उठा ले गए। एक फूस के घर में उन्होंने आग भी लगा दी। थाना के यहाँ आ जाने के बाद ही जोरो का दमन शुरू हुआ। सब जगह लूटपाट मचाई गई। गाँव गाव मे स्पेशल पुलिस बनाए गए। थाना जलाने और लूटने तथा रेल की पटरिया और तार आदि तोडने के अभियोग में कितने ही लोगो पर मुकदमे चलाए गए।

चौथम थाने के डिक्टेटर श्री मूसनारायण सिह को किसी तरह कुछ बम मिले। उन्होने जाँच के लिए उन बमो को श्री महेन्द्र चौधरी के सुपुर्द किया। उन्होने काशी विद्यापीठ के अपने साथी श्री बलदेव चौधरी को मुजफ्फरपुर जिले के वाजिदपुर नामक स्थान मे बुलाकर उनकी जाच कराई। एक दिन श्री बलदेव चौधरी बम के ढक्कन को खोलकर अपने कमरे मे सो गए। उनके साथ श्री अयोध्या पोद्दार और श्री त्रिवेणी महतो नाम के दो और स्वयसेवक थे। श्री अयोध्या पोद्दार खुले हुए बम को हाथ में लेकर उसकी मिट्टी सुन्घने लगे कि बम हाथ से छूटकर फट गया। इस घटना में तीन व्यक्ति मरे।

श्री मूसनारायण सिह के बाद चौथम थाने के अधिनायक श्री छत्रधारी सिंह बनाए गए थे। उन्होने पिपरा के श्री महेन्द्र चौधरी को विध्वसक विभाग का अध्यक्ष बनाया। श्री महेन्द्र चौधरी गोगरी और खगडिया राष्ट्रीय विद्यालय के विद्यार्थी थे और थोडे दिनो तक बिहार विद्यापीठ और काशी विद्यापीठ में भी पढकर पीछे चरखा सघ में काम करने लगे थे। आन्दोलन के समय उन्होने कुछ हथियार जमा कर

अपना एक दल कायम किया। प्रारम्भ मे इस दल का उद्देश्य राष्ट्रीय ही था। किन्तु, आगे इस दल के द्वारा नाजायज हरकते भी होने लगी। दल के अनेक लोग लोभ में पड़ गए और डकैती द्वारा सम्पत्ति अर्जित करने लगे। सन् १६४५ ई० मे महेन्द्र चौधरी एक डकैती के मामले में ही गिरफ्तार हुए और उन्हे फाँसी की सजा हुई। राजेन्द्र बाबू और महात्मा गाँधीजी ने इनके पहले के कार्यों को यादकर इन्हें फाँसी से छुड़ाने की बड़ी कोशिश की। पर फल कुछ नही हुआ। उन्हे फाँसी हुई।

बख्तियारपुर—बख्तियारपुर थाने मे १५ अगस्त से आन्दोलन का रूप भीषण हुआ। पहले बख्तियारपुर स्टेशन के कागजात और सामान नष्ट किये गये और रेलवे के तार तोड़े गये। फिर आबकारी आफिस, कलाली और डाकघर नष्ट-भ्रष्ट किये गये। दारोगा भी राष्ट्रीय झंडा उठाकर जुलूस में साथ हो गया। परन्तु, उसी रात मे वह चुपके खगड़िया भाग गया और थाने के मुन्शी और सिपाही स्थानीय जमीदार की ड्योढी पर। १६ को ही कोयरिया (सलखुआ) के डाकघर और कलाली के सामान नष्ट किये गये। कठमारा मे अंगरेजों की कोठी थी। उसके सामान को लोगो ने बरबाद किया और वहाँ का गल्ला भी लूट लिया। यहाँ के कार्यकर्त्ताओं ने भागलपुर के सोनबरसा थाना पे भी तोड़-फोड़ का काम किया। एक अंगरेज ए० एस० पी० का डाकिया रास्ते में मार दिया गया।

इस विध्वंसक कार्य के साथ ही शान्ति-सुव्यवस्था का कार्य भी चल रहा था। गाँव-गाँव में पंचायत कायम हुई। बलवा हाट में एक जेलखाना बना, जहाँ अपराधी पकड़-पकड़ कर रखे जाते।

३० अगस्त को कुछ गोरे और भारतीय सैनिक सहर्षा और मधेपुरा का सरकारी खजाना उठाकर भागलपुर जा रहे थे। रात मे वे बख्तियारपुर ड्योढ़ी मे ठहरे और आश्रम पर जाकर झंडे को उखाड़ दिया। श्री सरयू सिंह और श्री महताब पोद्दार पकड़ कर ड्योढ़ी लाय गये। वहाँ दोनों की बड़ी दुर्दशा हुई। श्री महताब पोद्दार के मुँह से खून आने लगा और वह एक सप्ताह के अन्दर परलोक सिधारे।

८ सितम्बर को कई दर्जन गोरे सैनिक भागलपुर से आकर बख्तियारपुर ड्योढ़ी मे रहे। वहाँ से अस्पताल जाकर उन्होने डाक्टर रामप्रसाद को पीटा और बहुत तरह से उन्हे तंग किया। फिर रंगिनिया पहुँचकर उन सबो ने श्री जीयालाल मडल को बहुत तंग किया। उन्हे पकड़कर पीटा और कई दिनों तक सेल में बन्द रखा।

करीब एक महीना बाद १० सितम्बर से सरकारी थाना फिर चालू हुआ। कुछ बलूची सैनिक लाये गये जो महीनो ठहरे। ये बलूची सैनिक थाने के दूर-दूर गावों मे जा-जाकर आन्दोलनकारी और फरार व्यक्तियो की खोज करते और उनके न मिलने पर दूसरे लोगों को पीटते, तंग करते और घर में लूट-पाट मचाते। सैनिकों की शक्ति और अत्याचारो के बावजूद भी ये फरार व्यक्ति बहुत दिनों तक गिरफ्तार नही हो सके। पीछे कुछ व्यक्ति गिरफ्तार हुए और कुछ स्वयं जाकर हाजिर हो गए। मुकदमा चला, पर सबूत नहा मिलने पर अधिकाश व्यक्ति छोड़ दिये गये। कचौत के श्री रामजी महतो इसी आन्दोलन मे जेल गये और जेल ही मे बीमार होकर स्वर्ग सिधारे।

खगड़िया—१० तारीख को खगड़िया बाजार में हड़ताल हुई। ११ को पुलिस ने थाना कांग्रेस कमिटी का आफिस जप्त कर लिया। १२ अगस्त को बहादुरपुर सकरपुरा हाई स्कूल के विद्यार्थी, एक रेलगाड़ी से, क्रान्ति का सन्देश देते हुए खगड़िया पहुँचे। स्थानीय स्कूल के विद्यार्थी भी उनके साथ हो गए। कुछ जनता भी साथ हुई। फिर सबो ने एक एक कर पुलिस थाना, पोस्टआफिस और स्टेशन पर धावा किया और उन्हें कब्जे में लाकर उनपर अपनी राष्ट्रीय पताका फहरायी। इसके बाद वे इम्पीरियल बैंक पर आये। पहरेदार ने रोका। इस रोकटोक में नेमधारी बाबू के भतीजा श्री रामदेव सिंह बन्दूक की संगीन से घायल भी हुए। किन्तु, लोगो ने भीतर घुसकर कुछ कागजपत्रो को नुकसान कर ही दिया।

१३ अगस्त को मुंगेर से एस० डी० ओ०, एस० पी०, सर्जेंट मेजर और कुछ सशस्त्र सैनिक यहाँ पहुँचे और आतंक फैलाने लगे। उसी दिन काशी विद्यापीठ के छात्र प्रभुनारायण सिंह (माड़र निवासी) काशी से यहा आये। आस पास के टोले महल्ल से कुछ स्वयसेवको को इकट्ठा कर उन्होंने जुलूस निकालना चाहा। बड़े-बुजुर्गो ने उन्हें बहुत समझाया कि आज वह जुलूस नही निकालें। पर, वह किसी की एक भी सुनने को तैयार नही हुए। जुलूस जब थाना के पास पहुँचा, तो एस० पी०, सर्जेन्ट और सशस्त्र सैनिकों ने आकर उसे रोका। स्वयसेवको को लौट जाने का आदेश दिया। परन्तु, श्री प्रभुनारायण पीछे पाँव देने को तैयार नहीं हुए। वह साहसपूर्वक 'इनकलाब जिन्दाबाद' और 'करेंगे या मरेंगे' का नारा लगाते हुए निर्भीक आगे बढे। सैनिको ने गोली चलाई। श्री प्रभुनारायण की छाती और नाभी में लगी। वह वहीं जननी-जन्मभूमि की गोद में गिरकर मुक्त हो गए। बलिया थाना, हुसैना ग्राम के श्री लक्ष्मी पोद्दार और खगड़िया थाना, मदास के श्री ढोढाय दास को भी गोली लगी। श्री लक्ष्मी पोद्दार की मृत्यु बलिया अस्पताल में हुई। श्री ढोढाय दास को अपना एक पाव खोना पड़ा और जान बची। गगौर के एक व्यक्ति को भी दाहिने हाथ में गोली लगी।

इसके बाद भी तोड-फोड का काम होता ही रहा। इचक्आहरपुर और मोहराघाट में शराब की दूकान जलाई गई। ओलापुर स्टेशन के पास रेलवे पटरियाँ भी उखड़ी। गोरे सैनिक देहातो में घुस घुस कर उपद्रव मचाने लगे। नेमधारी बाबू के भतीजे श्री रामदेव सिंह के घर में आग लगाई। फिर सन्होली जाकर श्री उचित नारायण सिंह, श्री बालेश्वर सिंह और श्री जनार्दन प्रसाद के घरो को भी जलाया। श्री केदार नारायण सिंह आजाद के घर के सामान लूटे गये। यहाँ से तीन मील दूर, विद्यार्थी टोला जाकर इन्होंने श्रीकान्त विद्यार्थी के घर को जला डाला। रानी सकरपुरा में सर्वश्री परमेश्वरी प्रसाद, कमला प्रसाद सिंह, बिन्देश्वरी पोद्दार, पलटू पासवान और दुर्जन दास आदि के घरो में आग लगा दी। इसके बाद गगौर के श्री नसीब लाल आदि व्यक्तियो के घर जला दिये गये। अलौली के श्री रामलखन यादव का भी घर लूटा गया।

जनवरी १९४३ ई० में जब आदोलन गुप्त रूपसे चल रहा था, उस समय कार्यकर्त्ताओ का शिविर रानो और माड़र में था। १९४४ ई० के सितम्बर में, खगड़िया के उत्तरीय भाग में मलेरिया,

का विशेष प्रकोप हो गया। अतएव उसकी जाँच करने के लिए श्री वावू और नन्दकुमार बाबू का यहाँ आगमन हुआ।

बेगूसराय—यहाँ नेताओ की गिरफ्तारी की खबर ९ अगस्त को ही रेडियो से मिली। तुरत बाजार में हड़ताल हुई। विद्यार्थियों ने भी स्कूल से निकल कर एक जुलूस निकाला। इस जुलूस मे सर्वसाधारण सम्मिलित हुए। लोकलबोर्ड के मैदान मे एक सभा हुई। इसमे कामरोड ब्रह्मदेव का भाषण हुआ। १० अगस्त को श्री रामनारायण चौधरी एम० ए०, बी० एल० के नेतृत्व मे विद्यार्थियोंने कचहरियों पर राष्ट्रीय झडे लगाये और वकील मुख्तारों से कचहरी छोड़ने का आग्रह किया। कचहरी सचमुच बन्द हो गई। प्रारम्भ मे हा पुलिस ने श्री सरयू प्रसाद सिंह एम० एल० ए० के घर की और कांगरेस-भवन की तलाशी ली। कागरेस-भवनसे सब कागज और सामान पुलिस उठा ले गई और उसमे ताला भी लगा दिया

पटना सेक्रेटरियट मे विद्यार्थियो पर गोली चलने की खबर सुनते ही जनता उत्तेजित हो गई। देहातों से आ-आकर लोग जुटने लगे। १२ अगस्त को कागरेस भवन का सरकारी ताला तोड़ कर भीड़ने फिर उस पर कब्जा कर लिया। रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगी और तार काटे जाने लगे। श्री सरयू प्रसाद सिंह और श्री रामनारायण चौधरी इस आंदोलन को बढ़ावा देते हुए घूम-घूम कर कार्यकर्त्ताओ का संगठन करने लगे।

१३ को बेगूसराय के तीन आनरेरी मजिस्ट्रेट श्री विश्वेश्वर सिंह, श्री खड़गनारायण सिंह और श्री विसुनदेव नारायण सिंह ने इस्तीफा दिया। प्रायः सभी वकीलों ने दो सप्ताह तक कचहरी छोड़ी। १४ को स्थानीय जेल के कैदी इनक्लाव का नारा लगाते हुए जेल से बलपूर्वक निकल आगे। उसी दिन बेगूसराय स्टेशन का मालगुदाम लूटा गया। १५ को बखरी स्टेशन जला, रेलकी पटरी उखड़ी और राष्ट्रीय झंडे उड़े। २३ को गोरी फौज बखरी गई। फौज आने के साथ ही गोली दागने लगी। घूम-घूम कर गांवो में कार्यकर्त्ताओं के घर को लूटने और जलाने लगी।

१५ अगस्त को बेगूसराय थाना कब्जा मे कर लिया गया। उलाव के श्री चन्द्रमौलि देव से मोटर लेकर पुलिसवाले वाहर जाने लगे। विद्यार्थियों ने मोटर को वाहर नही जाने दिया। तिरहुत रोडके सभी पुल तोड़ दिये गये और पेड़ काटकर सड़क पर डाल दिये गये। १६ को थाने के सभी पोस्ट आफिस बन्द किये गये और बहुतों के कागजपत्र भी जलाये गये। उसी दिन लाखो स्टेशन भी जलाया गया। जेल मे महात्मा गाँधीजी के निजी मन्त्री श्री महादेव भाई देसाई की मृत्यु की खबर १६ को सुबह ही मिल गई थी। अफवाह यह फैली हुई थी कि उन्हे विष देकर मारा गया है और इसी तरह अन्य नेताओ को भी मारा जायगा। इससे जनता बेतरह उत्तेजित हो उठी। दूसरे ही दिन १७ को लोगो ने सरकारी खजाने पर धावा बोल दिया। वे नेताओं की रिहाई तक उसे बन्द कर उस पर अपना कब्जा बनाये रखना चाहते थे। एस० डी० ओ० सशस्त्र पुलिस के साथ खड़ा थे। भीड़ को आगे बढ़ते देखकर उन्होंने झूठा फायर किया। जनता और भी बौखला उठी और एस० डी० ओ० पर टूट पड़ी। एस० डी० ओ० ने फौरन

खजाना और आफिस बंद कर दिया और अपनी भूल कबूल कर ली। उसने जनता का राज्य भी स्वीकार कर लिया।

१८ को कुछ गोरे सैनिक बेगूसराय पहुंचे। शहर में करफ्यू जारी किया गया। लोगों ने करफ्यू ऑर्डर भंगकर जुलूस निकाला। दूसरे दिन दो लारी गोरे सैनिक पहुँच गये। परन्तु, इस दिन भी विराट जुलूस निकला और कुछ लोग गिरफ्तार हुए। २० की रात में फिर जुलूस निकाला गया। परन्तु इस बार सैनिकों ने जुलूस पर निर्मम प्रहार किया। पचासों स्वयंसेवक घायल होकर धराशाई हो गये। उनकी देखरेख करनेवाला कोई नहीं था। कवि श्री कपिलदेवनारायण सिंह 'सुहृद' ने ८ बजे रात को घायलों को अस्पताल पहुँचाया और करफ्यू के होते हुए भी काफी साहस दिखलाया।

एस० डी० ओ० ने करीब दो सौ सशस्त्र सिपाहियों को लेकर, जिनमें बहुत से गोरे सैनिक भी थे, एक रात में रामदीरी गांव को घेर लिया। गांववालों ने डकैत समझ कर उनका सामना किया। गोरे गोली चलाने को तैयार थे, पर एक दारोगा की बुद्धिमानी से संघर्ष बचा। सुबह होते ही घरों में तलाशियां होने लगी, पर पुलिस को वहीं कुछ नहीं मिला। कहते हैं, श्री सरयूप्रसाद सिंह और श्री शिवव्रत नारायण सिंह को गिरफ्तार करने एवं साइक्लोस्टाइल और परचों का पता लगाने के लिए ही यह धावा किया गया था। १९ मई की रात में दर्जनों बलूची सिपाहियों ने रतनपुर के श्री धनिक लाल शर्मा के घर पर छापा मारा और खलिहान में सोये श्री धनिक लाल शर्मा और श्री व्रजमोहन शर्मा को गिरफ्तार कर लिया। ९ अगस्त को नेताओं की गिरफ्तारी की वर्षगांठ में लाखा के निकट फिर तार काटे गये और डाक लूटी गयी। श्री रामस्नेही सिंह, जो हाल में ही जेल से छूटे थे, इस अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। उनके बूढ़े पिता को भी कुछ दिन पकड़ कर रखा गया। कामरेड ब्रह्मदेव सन् १९४० में ही नजरबन्द किये जाकर १९४२ की जुलाई में छोड़े गये थे। परन्तु, अगस्त में फिर आन्दोलन छिड़ने पर उन पर वारन्ट हुआ। कामरेड-ब्रह्मदेव यद्यपि कम्यूनिस्ट थे, तथापि इस महान क्रान्ति में हृदय से उन्होंने भाग लिया था।

इस आन्दोलन में थाने से सौ डेढ़ सौ आदमी गिरफ्तार हुए। दो बार सामूहिक जुरमाने लगे। पहली बार बेगूसराय, रामदीरी और रतनपुर को पचीस हजार रुपये देने पड़े और दूसरी बार भी—रामदीरी, रतनपुर, अयोध्याबारी, लाखो और गोदरगावा को उतनी ही रकम चुकानी पड़ी।

तेघड़ा—तेघड़ा बाजार में १० अगस्त को हड़ताल हुई। १२ को पुलिस आफिस पर धावा किया गया। मकान कब्जा में आया। थानेदार और सिपाहियों को बाहर निकल जाने का हुक्म मिला। तिरंगा झंडा फर-फर उड़ने लगा। रजिस्ट्री आफिस और डाकघरों पर भी झंडे फहरे और उनमें भी ताले लगा दिये गये। बरौनी जंक्शन में तोड़-फोड़ और लूटपाट का काम बहुत हुआ। लाइन और तार तोड़े गये तथा इंजिन, बिजलीघर आदि नष्ट किये गये। स्टेशन के कागजपत्र जला डाले गये। माल के सोलह सौ डब्बे स्टेशन के यार्डों में थे। सर्वसाधारण ने उन्हें दिनभर में खाली कर दिया। किवाड़ और खिड़कियाँ तक भी लोगों ने नहीं छोड़ा।

सिमरिया घाट और रुपनगर स्टेशन की भी यही हालत रही। सिमरिया घाट के रेल्वे कर्मचारी जहाज को वीच गंगा मे ले जाकर ठहरे। सिमरिया मे सैनिकों के रहनेके घर थे, उनका होटल थावे सभी नष्ट-भ्रष्ट कर दिए गए। पीछे इस सम्बन्ध में सिमरिया के श्री शिवकुमार शर्मा तथा उनके परिवार वालों को पुलिस ने पकड़ा और वहुत तंग किया।

वछवाड़ा का स्टेशन सामान के साथ जलाथा गया। स्टेशन के पास का एक पुल तोड़ दिया गया और मालगाड़ी के कुछ डव्वे वहाँ गिरा दिये गए।

तेघड़ा थाने मे कई दिनों तक जनता का राज्य वना रहा। तुरत जहाँ-तहाँ ग्राम-पंचायते कायम हुई और मुकदमो का फैसला होने लगा। रुपौली के एक व्यक्ति पर किसी के यहाँ चोरी करने का अभियोग था। ग्राम-पंचायत से उसे सजा मिली। पर वह सजा मानने को तैयार नहीं हुआ। इस पर हुक्म हुआ कि उसका हाथ काट डाला जाय और उसका हाथ काट ही लिया गया।

१८ अगस्त को गोरे और वलूची सैनिको का आगमन हुआ। वरौनी जंकशन मे उनका अड्डा जमा। वे यहीं से विभिन्न रेलवे स्टेशनों और गाँवो मे जा-जाकर भीषण उपद्रव मचाने लगे। वारो का एक वहरा पासी कोयले की ढेर के पास से गुजर रहा था। गोरे ने उस पर गोली चला दी और वह वहीं ढेर हो गया। फिर, उन्होने तेघड़ा आकर काँगरेस आश्रम को जलाया और वाजार की कुछ दूकानो को लूटा। सड़कपर एक कुजड़ा निर्भीक होकर तरकारी वेच रहा था। गोरो ने गोली मार दी और वह वेचारा वहीं पड़ा रह गया। दनियालपुर के श्री भरोसी कुवर ने गोरो का मुकावला करने के लिए लोगों को ललकारा। गोरों ने उनपर भो गोली चलाई। उनकी जान तो वच गई, पर उनका दाहना पैर काट डाला गया। वछवाड़ा पहुँचकर इन लोगों ने एक नेपाली मुसाफिर को घायल किया जिसे काँगरेस स्वयसेवको ने उठाकर अस्पताल पहुँचाया। वहीं श्री उमाकान्त चौधरी झंडा लेकर रेल-तार काटने आ रहे थे। गोरों ने उन्हे देखा—और उन पर गोली चला दी। वह वहीं पर वीरगति को प्राप्त हुए। २२ अगस्त को वे वीहट पहुँचे। वहाँ का रंगढंग देखकर कुछ करने की हिम्मत उन्हे नही हुई। जव वे लौटे जा रहे थे तो वहाँ के श्री उचितसिह ने उन्हे ललकारा। इस पर वह गोली का शिकार हुआ। परलोक सिधारा। उसी दिन गोरो ने फुलवरिया वाजार और वरौनी गाँव में जाकर वड़ा उत्पात मचाया। श्री वदरी पोद्दार के घर का सारा सामान लूट लिया। वरौनी के श्री रावनेश्वर प्रसाद सिह उर्फ हरिहर वावू पर पुलिस का वारन्ट था। उनकी खोज मे पुलिस ने वरौनी गाँव मे भी वहुत ही उत्पात मचाया। श्री वदरी पोद्दार का सव सामान लूट लिया। दूसरे दिन शोकहरा मे जव गोरी फौज श्री अम्विका शर्मा के घर में आग लगा रही थी तो पास के एक वयोवृद्ध व्यक्ति श्री हृद्मणि मिश्र घर से निकले। उनको देखते ही गोरों ने उन्हे भी अपनी गोली का शिकार वनाया और वे वेचारे स्वर्गवासी हुए। इस ग्राम मे श्री व्रह्मदेव राय और श्री रामेश्वर सिह के भी घर जलाये गए। पिपरा मे श्री लखन राय नामक व्यक्ति को गोरो ने सड़क पर काटकर डाले हुए पेड़ों को हटाने के लिए कहा। वे इसके लिए तैयार नही हुए इससे उन पर भी गोली चला दी गई जिससे वे सख्त घायल हुए।

१ सितम्बर को थाना चालू हो गया और गिरफ्तारी जारी हुई। श्री रामचरित्र सिंह उसी दिन पकड़ लिए गए। १० सितम्बर को श्री सीताराम मोख्तार पकड़े जाकर गोरों के हवाले किये गए। गोरों ने उन्हें बेंत से बहुत पीटा। पीछे वे जेल भेज दिये गए। दमन शुरू हो जाने पर तोड़ फोड़ का काम गुप्त रूप से चलने लगा। कार्यकर्त्ता फरार रहने लगे। फरार व्यक्तियों की खोज में पुलिस गाँव गाँव में जाती और लूटपाट मचाती।

बरियारपुर—१० अगस्त। पुलिस थाना पर झंडे फहरे और ताला लगा। ११, १२, १३ तक चेरिया बरियारपुर, मझौल आदि गावों से हजारों हजार की तादाद में जनता का जुलूस निकला और अड़ोस पड़ोस के गावों में घूम घूमकर तोड़-फोड़ के कामों के लिए दूसरों को प्रोत्साहित किया। १४ को थाना का दारोगा कागज पत्र को लेकर बेगूसराय भाग गया।

१५ को बेगूसराय से श्री रामनारायण चौधरी, श्री मीठन चौधरी और श्री सर्यूप्रसाद सिंह (एम० एल० ए०) यहां पहुँचे। आगे का कार्यक्रम निश्चित किया। यहां से ४ जत्थे भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर भेजे गए। श्री रामदेवप्रसाद सिंह, श्री अखिलेश्वरप्रसाद सिंह, श्री जागेश्वर सिंह, श्री जलधर ईश्वर और श्री महादेव सिंह इन जत्थों के अलग अलग नायक थे। थाने के सभी पोस्ट आफिसों में ताले लगा दिये गए। मझौल के टेलीग्राफ आफिस का तार काटा गया और वहां के आबकारी महाल का आफिस भी जलाया गया। पास के दरभंगा जिले के रोसड़ा, नरहन और हसनपुर के स्टेशन जलाये गए और जहां-तहां की रेलवे लाइनें तोड़ दी गई और तार भी काट डाले गए। बेगूसराय के उन तीनों नेताओं ने १६ को गढ़पुरा और चेरिया बरियारपुर में सभाएँ कीं जिनमें कांग्रेस का कार्यक्रम समझाया गया और चौकीदारों से इस्तीफा लेकर उनकी वर्दियां जला दी गईं। इसका असर थाने के और-और ग्रामों पर भी पड़ा और दूसरी जगहों के चौकीदारों ने भी इस्तीफा दिया तथा जगह-जगह ग्राम-पंचायतें कायम हुईं। करीब एक महीना तक पंचायत सरकार ने थाने भर में सुव्यवस्था कायम रखी।

मेघौल से एक जत्था दौलतपुर कोठी गया। उस कोठी का साहब सी० जी० एटकिन्स घबड़ाकर समस्तीपुर भाग गया। २८ अगस्त को वह वहां से दो लारी गोरे सैनिकों के साथ मेघौल आया। लारी गाव के बाहर ही रोक दी गई। सैनिक गोली चलाते हुए गांव में घुस गए। उनकी गोली से रामवती नाम की एक लड़की घायल हुई। सैनिकों को आंदोलनकारियों के नाम का किंचित पता था। वे उनकी तलाश करने लगे। पहले वे सीधे श्री राधाप्रसाद सिंह के घर पर गए। भीतर घुसकर उन्होंने घर का सारा सामान बाहर निकाल दिया और पेट्रोल छिड़क कर उसमें आग लगा दी। श्री राधाप्रसाद सिंह के बड़े भाई श्री कैलाश प्रसाद सिंह रोसड़ा में पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। यहां श्री राधाप्रसाद सिंह पकड़ लिए गए और बूटों और बन्दूक के कुन्दों से उन्हें निर्ममतापूर्वक पीटा जाने लगा। फिर, उन्हें अपने साथ घसीटते हुए वे लोग गाँव में घूम-घूमकर आग लगाने। रामजीवन झा नामक एक विद्यार्थी, पास की एक बुढ़िया के घर को जलते हुए देखकर बुझाने दौड़ा। गोरों ने उसे गोली मार दी। वह सख्त घायल हुआ।

लौटते समय गोरोंने श्री राधा प्रसाद सिंह पर भी गोली दाग दी और उन्हें वहीं छोड़ दिया। गाँव के लोग दोनों घायल व्यक्तियों को वेगूसराय ले जाने लगे। श्री राधाप्रसाद सिंह की मृत्यु तो मार्ग में ही हो गई। श्री रामजीवन झा वेगूसराय अस्पताल जाकर मरे।

६ सितम्बर को एस० डी० ओ० और डी० एस० पी० दो दर्जन सैनिकों के साथ वरियारपुर पहुँचे। वहाँ से वे लोग श्री रामनारायण चौधरी तथा उनके परिवार के कई व्यक्तियों को पकड़ कर वेगूसराय ले गए। श्री रामनारायण चौधरी को तो चार मास कैद की सजा हुई। परन्तु, शेष व्यक्ति कुछ दिनों के वाद ही छोड़ दिए गए। इसके वाद थाने मे गिरफ्तारी का ताँता लग गया। थाना कॉगरेस के तत्कालीन सभापति श्री रामकिशोर प्रसाद सिंह भी गिरफ्तार हो गए। इनके अतिरिक्त सर्वश्री अखिलेश्वर-प्रसाद सिंह, नीलकंठ राय, जागेश्वर प्रसाद, रामनारायण सिंह उचितलाल सिंह, यमुना सिंह, श्याम नारायण सिंह. जागेश्वर चौधरी, मिश्री चौधरी, रामखेलावन चौधरी, रामस्वरूप सिंह आदि वहुत लोग गिरफ्तार हुए, पर कुछ दिन बाद छोड़ दिए गए।

जेल से छूटने पर श्री रामनारायण चौधरी सब डिवीजन के डिक्टेटर होकर काम करने लगे; परन्तु, १५-२० दिनों के बाद ही ६ महीने के लिए वह फिर जेल भेज दिए गए। फिर भी आन्दोलन चलता रहा। छिटपुट गिरफ्तारियाँ होती रही।

दमन के कारण जव आन्दोलन गुप्त रूप से चल रहा था तो भागलपुर के सुप्रसिद्ध फरार व्यक्ति श्री सियाराम सिंह और तेघड़ा के श्री रामबहादुर शर्मा वहुत दिनो तक इस थाने मे रहे। जिले भर मे गुप्त रूप से कार्य-करनेवाले व्यक्तियों की एक सभा यहाँ पहसारा मे हुई। श्री रामनारायण चौधरी जेल से छूटने पर, जुलाई १९४३ ई० मे २ वर्ष के लिए फिर नजरवन्द कर लिए गए। १९४४ ई० मे मेघौल मे शहीद राधाजीवन सिंह और शहीद रामजीवन शर्मा के स्मारक-स्वरूप श्री राधाजीवन पुस्तकालय का शिलान्यास बिहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह द्वारा हुआ।

वलिया—१० अगस्त। पुलिस ने थाना-कांगरेस-कमिटी के आफिस को जब्त कर ताला लगा दिया। १२ को थाने के भिन्न-भिन्न भागो में भिन्न-भिन्न जत्था काम करने को निकल पड़ा। एक वड़ा जुलूस वलिया बाजार से निकला। लोगो ने वाजार की शराव की दूकान को नष्ट-भ्रष्ट किया। यहाँ से लोग थाने पर आए। थाने के कागज-पत्र जलाए गए और वहाँ पर मौजूद दफेदारो और चौकीदारो की वर्दियाँ जलाकर उन्हे गाँधी टोपियाँ दी गईं। पोस्ट आफिस पर झंडा फहराया गया और आवकारी थाने के कागज-पत्र भी जलाए गए। रेलवे स्टेशन पहुँचकर लोगो ने स्टेशन के सभी सामान जला दिए। रेल की पटरियाँ उखाड़ी और तार भी काटे। जुलूस लौटकर फिर थाने गया और वहाँ का वचा-खुचा सामान भी जला दिया गया। उसके बाद ही मुंगेर घाट के स्थायी और अस्थायी दोनो स्टेशन जला दिए गए तथा शाहपुर कमाल का स्टेशन भी नष्ट किया गया। शाहपुर कमाल और मुँगेर घाट पर मालगाड़ियां लूटी गई।

१७ अगस्त का मुंगेर से कई दजन सैनिक यहा पहुँचे। इनमें कुछ गोरे भी थे। दूकानदारो न इनके डर से दूकाने वन्द कर दी। सैनिको का कुछ खाने को नहीं मिला। क्रोध में आकर उन्होंने कई दूकानो का लूट लिया। उसी दिन सन्ध्या समय कागरेस आफिस भी जला दिया गया। बाजार मे १४४ दफा लगाया गया और रात क लिए करफ्यू। १८ का पुलिस स्टाफ के सब लोग थाना उठाकर सैनिको के साथ बेगूसराय को रवाना हुए। रास्ते मे जहां-तहा पेड काटकर गिराये गए थे। सैनिको ने आस पास के लोगा एव मुसाफिरो मे सडक साफ कराई। जिन्होने इससे इनकार किया, उनके साथ ज्यादतिया की गई और लूटपाट मचाया गया। थाना के उठ जाने पर पचवीर और परोरा से एक दल बलिया पहुँचा। उसन थाने के ताले और खिडकियो को तोड कर बचे हुए सामान और वर्दी वगैरह जला दिए।

६ सितम्बर का बेगूसराय से थाना का ऑफिस फिर बलिया आ गया। उस दिन एस० डी० ओ० भी दो दजन गोरी फौज तथ एक दजन सशस्त्र सिपाही के साथ वहा पहुँचे। १०सितम्बर को एस० डी० ओ० कुछ सैनिको को लेकर भगनपुर और सदानन्दपुर गए। वहा इन्होने श्री ब्रह्मदेव नारायण सिंह तथा श्री प्रतापनारायण सिंह का गिरफ्तार किया। प्रतापनारायण सिंह के परिवार के कुछ और लोग भी पकडे गए। इनके साथ पुलिस ने बहुत ज्यादा ज्यादती की।

दिसम्बर मे बलिया पोस्ट आफिस में फिर आग लगाई गई। २६ जनवरी को पुलिस की निगरानी के बावजूद भी स्वाधीनता दिवस मनाया गया। इस थाने के विध्वसक कार्य में बलिया हाई स्कूल के शिक्षक श्री भुवनेश्वर प्रसाद साहु का बहुत बडा हाथ था। वह तीन वर्षो तक फरार भी रहे। पीछे गांधीजी के आदेशानुसार उन्होने आत्मसमर्पण किया। इन्हीं के साथ श्री सीताराम अग्रवाल और मिड्ल स्कूल के हेडमास्टर श्री भुवनेश्वर मिश्र ने भी आन्दोलन में अच्छा भाग लिया था एव वह भी पकड कर जेल भेजे गए थे।

परोरा और बलिया से लगभग चार हजार रुपए सामूहिक जुरमाने मे लिए गए। कई जगह स्त्रियो पर गोरा द्वारा बलात्कार की बात भी सुनी जाती है। बलिया में १० सितम्बर १९४२ ई० को एक लहेरी की लडकी क साथ तथा बिन्दटोली मे जनवरी १९४३ मे एक बिन्द की लडकी के साथ गोरो ने अत्याचार किया। बिन्द की लडकी २४ घण्टे के बाद सैनिक कैम्प से लाकर बिन्दटोली के पास बेहोशी की हालत में छोडी गई।

खडगपुर—६ अगस्त। बरियारपुर स्थित कागरेस का आफिस जप्त कर लिया गया। वहा के प्रधान नेता श्री नन्दकुमार सिंह ६ को ही मुंगेर में पकड लिए गए। १० को राष्ट्रीय विद्यालय के विद्यार्थी, छोटा-छोटा दल बना कर, गाव-गाव में निकल पडे। इसके बाद ही थाना के कांगरेस कार्यकर्त्ताओ की एक बैठक बुलाई गई। युद्ध-समिति का निर्माण हुआ।

११ को एक जुलूस निकला जिसका नेतृत्व नन्दकुमार बाबू की वृद्धा माता कर रही थीं। सबसे पहले हाईस्कूल जाकर लोगो ने उस पर राष्ट्रीय झंडा फहराया। स्कूल का नाम जिला के कलक्टर

ली साहब के नाम पर था। ली तारापुर के गोलीकाण्ड के कारण १९३२ मे बड़ा बदनाम हो चुका था। उस अत्याचारी का नाम स्कूल से हटाने के लिए, स्कूल के नाम का पहला शब्द ली मिटा दिया गया।

१२ अगस्त। बनारसी बाबू के सभापतित्व में एक सार्वजनिक सभा हुई। ग्राम-सुधार-विभाग के जिला इन्सपेक्टर श्री वासुदेव झा शास्त्री ने अपने आधे दर्जन सहायको के साथ सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और वे आन्दोलन के कार्य मे लग पड़े। एक वृहत् जुलूस निकाला गया जिसने थाना, डाकघर और रजिस्ट्री आफिस में जाकर वहाँ ताले लगा दिए। मुंगेर मे स्वयंसेवकों की मांग थी। अतएव यहाँ से १४ को एक जत्था बनारसी बाबू के नेतृत्व मे मुगेर भेजा गया, जो तुरत गिरफ्तार हो गया। इसके बाद यहाँ से फिर दूसरा जत्था गया और उसके स्वयसेवक भी पकड़े गए।

खड़गपुर से ४ मील दक्षिण, बनहरा ग्रामके पाससे लेकर गंगटा जंगल तक, पुल तोड़कर और पेड़ काटकर मार्ग रोक दिया गया। दुमुहियाँ पोखर के बीचोबीच जानेवाली डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पर का पुल तोड़ा जा रहा था। इसी समय मुगेर की ओर से सशस्त्र सैनिकों की एक लारी पुल के पास आकर रुकी। उसे देखकर भीड़ तितर-बितर हो गई। भागते हुए कुछ छात्रो को सैनिको ने पकड़ा और बेरहमी से पीटकर उन्हे अपनी लारी पर चढ़ा लिया। पुल बहुत कुछ टूट चुका था। इसलिए लारी बहुत मुश्किल से पुल पार कर सकी। सैनिक पैदल मार्च करते हुए थाने तक आए। सैनिकों को देखकर नौजवानो का जोश फिर उमड़ा। राष्ट्रीय विद्यालय से एक जुलूस निकाला गया। अभी वह मणि नदा के लोहेवाले पुल तक ही पहुँचा था कि थाने के पास से सैनिको ने उसे लक्ष कर गोलियाँ चलानी शुरू कर दी। उनकी गोलियो से नेवाजी मोदी, सबीर मियाँ और विद्यार्थी कृष्णानन्द सिह घायल हुए। मोटर स्टैण्ड के पास आकर सर्जेण्ट ने रमनकाबाद के श्री कल्लर पोद्दार को अपने पिस्तौल का निशाना बनाया और वह बेचारा तत्काल शहीद हुआ।

थाने के कुछ प्रमुख कार्यकर्त्ताओ--सर्वश्री नरेन्द्र प्रसाद सिह, राम प्रसाद सिह 'साधक', ब्रजबलाल पाठक, सच्चिदानन्द सिंह शास्त्री आदि के नाम वारन्ट जारी हो गया था, पर ये लोग एक साथ गिरफ्तार हो जाना पसन्द नही करते थे। इसलिए गुप्त रूप से काम करते हुए ये एक-एक कर गिरफ्तार हुए। इसके बाद कलकत्ते से श्री अकबाल बहादुर सिह और श्री बसन्त प्रसाद सिह तथा पटने से श्री मेदिनी प्रसाद सिंह आये और इन सबो ने आन्दोलन के संचालन का भार अपने ऊपर लिया। इसी समय राष्ट्रीय विद्यालय जप्त कर लिया गया और कार्यकर्त्ता लोग हटा दिए गए। राष्ट्रीय विद्यालय और उसके पुस्तकालय का बहुत सा सामान पुलिस लूट ले गई। मुलुक्टॉड़ के एक शिवालय मे कॉंगरेस का शिविर कायम किया गया। शराब की दूकान पर पिकेटिंग करने के सिलसिल मे स्वयसेवको पर बड़ी-बड़ी ज्यादतियाँ की गई। वे प्राय. रात्रि के समय जगल मे ले जाये जाते थे और नगा कर तथा चेहरे पर रंग लगाकर छोड़ दिए जाते थे। आन्दोलन को बढ़ाने तथा जनता तक ठीक-ठीक समाचार पहुँचाने की दृष्टि से यहाँ से 'बागी' और 'विद्रोही' नामक पत्र और परचे साइक्लोस्टाइल से निकाले जाते थे। साइक्लोस्टाइल जप्त करने के

लिए पुलिस ने गौरवडीह गाव पर कई बार हमला किया, पर सफलता नही मिली। बढहरा, गौरवडीह, बरसडा, रमनवा, खडगपुर बाजार, घोसपुर, रतैठा और पहाडपुर जवायद आदि गाँवो पर, जहाँ प्रमुख कार्यकर्त्ता रहते थे, सामूहिक जुरमाने किये गये।

तारापुर—तारापुर कांगरेस-कार्य के लिए पहले ही से बहुत उत्साहित था। देश की आजादी के लिए जब कभी कोई लडाई हुई उसमें यहा के लोग जी-जान से कूद पडे। यहाँ के राजनैतिक आन्दोलन को दबाने में नौकरशाही को भी काफी जोर जुल्म करना पडता था। १९३१ में यहाँ के जलूस पर भीषण लाठी प्रहार हुआ था। १९३२ ई० में भी लोगो के कदम जब पीछे नही हटे तो उनपर गोली चलाई गई। १५ आदमी उस गोलीकाण्ड मे शहीद हुए थे और सैकडो बुरी तरह घायल। शहीद व्यक्तियो के नाम निम्न प्रकार है—सर्व श्री (१) चडी महतो, चोरगाव, (२) शीतल चमार, जलालाबाद, (३) शुक्ल सोनार, तारापुर, (४) सत पासी, तारापुर, (५) मोटी झा, सतखरिया, (६) विश्वनाथ सिंह, छतहार, (७) सिंहेश्वर राजहस, बिहमा, (८) बदरी मण्डल, धनपुरा, (९) वसन्त धानुक, लोरहिया, (१०) रामेश्वर मडल, परमरा, (११) गैबी मडल, महेशपुर, (१२) असना मण्डल, कष्टिकरी, (१३) महिपाल सिंह, रामचुगर।

अगस्त क्रान्ति म लगभग एक महीना तक यहाँ जनता का राज्य था। १० अगस्त को पुलिस ने यहा का काँगरेस आश्रम जप्त कर लिया। किन्तु, दो दिनो के बाद ही लोगो ने पुलिस को खदेड दिया और आश्रम पर अधिकार कर लिया। अब शासन-सत्ता को बेकार बनाने के काम खूब जोर शोर के साथ शुरु हुए। असरगज डाकघर का सामान जलाया गया तथा सग्रामपुर, बढौनिया और तारापुर के डाकघर जप्त किए गए। इन स्थानो में शराब की दूकानो की चीजें भी बरबाद की गई। असरगज हाई-स्कूल के कुछ कागज-पत्र नष्ट किए गए। थाने पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। देवगाँव और कुमरसार मे बनैली राज की कचहरियाँ जलाई गई, क्योकि किसान पहले से ही राज की हरकतो से क्षुब्ध थे। सुलतानगज बेलहर सडक के कई पुल तोड गए और पेड काटकर सडक पर डाल दिए गए। सग्रामपुर का डाकबगला भी जलाया गया।

१५ की रात में सैनिक आए और थाने के कागज पत्र के साथ वहाँ के सभी कर्मचारियो को लेकर मुंगेर चले गए। थाना खाली पड गया। लोगो ने बचेखुचे सामान भी जला दिए। अब जनता का राज्य कायम किया गया। एक व्यवस्था-समिति बनाई गई, जो सब तरह का काम करने लगी। चौकीदार गाँव-गाव मे रिपोर्ट लाकर कागरेस आफिस में दाखिल करने लगे। जगह-जगह पचायते कायम हुई और ग्राम-रक्षा के लिए सेवा दल सगठित किए गए। थाने में एक केन्द्रीय पचायत भी कायम हुई। असरगजका हाईस्कूल बद हो ही गया था, उसी मकान मे जेल कायम किया गया। व्यवस्था समिति को रुपये-पैसे का कोई अभाव नही रहा। गरीबो को सस्ते भाव में अनाज देने का भी प्रबन्ध किया गया।

उस समय कई जगह लोग धनियो को लूटना चाहते थे, पर, कार्यकर्त्ताओ ने उनको

रक्षा की। चोर-डकैतों का पता लगा-लगाकर पकड़ा गया और उन्हे कड़ी से कड़ी सजाएँ दी गईं। १८ अगस्त की रातमे, माधोडीह मे २२ टीन किरासन का तेल डकैतों ने लूट लिया। इसी समय कमरगाँवाँ माधोडीह में एक ब्राह्मण को डकैती की नोटिस दी गई। श्री वासुकीनाथ राय कुछ साथियों को लेकर माधोडीह आए। डकैतों का पता लगाया गया और १९ डकैत पकड़े गए। चोरी-डकैती के साथ-साथ उन पर कई तरह के दुराचार के भी अभियोग थे। पंचायत वैठी और फैसला दिया। १९ अभियुक्तों में ६ सरदार समझे गए। इन ६ मे तीन की एक-एक आँख फोड़ने और उनके दाहिने हाथ का पंजा काटने का, दो के सिर्फ दाहिने हाथ का पंजा काटने का तथा एक को सिर्फ एक आँख फोड़ने का फैसला हुआ। ५ को गरम लोहे से दागना और ८ को वेत मारना तय हुआ। शाम को सभी डकैत नदी के किनारे लाए गए। व्यवस्था-समिति के सभी सदस्य और बहुत से स्वयसेवक एकत्र हुए। दर्शक भी हजारों की संख्या में पहुँचे। वहाँ पंच का मुखिया एक-एक को सजा सुनाता गया और सजा दिलाता गया। एक व्यक्ति वँधे हुए बदमाश को पटक देता, फिर दो-एक मिलकर उसको दवाये रखते और तीसरा व्यक्ति उसको सजा देता। आंख फोड़ने, पंजा काटने, दागने और वेत मारने के लिए अलग-अलग आदमी नियुक्त थे। सजा देने का दृश्य ऐसा भयंकर था कि सब लोग उसे नही देख सके। अभियुक्त लोग सजा पाकर वही अचेत हो गए। अभियुक्तों की आँखे पूरी तरह नही फोड़ी जा सकी, इससे प्रायः सब की आँखे अच्छी हो गई। हाँ, सिर्फ एक व्यक्ति की आँखें ही नहीं, जान भी जाती रही। इस घटना से इलाके मे ऐसा आतंक छा गया कि चोरी-डकैती बिलकुल वन्द हो गई।

ढोल पहाड़ी तथा पचमूर मे शिविर थे। पीछे, भागलपुरा मे भी एक शिविर खोला गया। बहुत दिनों के वाद लगभग एक सौ सैनिक तारापुर पहुँचे। इनमे गोरे भी आए। थाना भी चला आया। जोरों से दमन आरम्भ किया गया। तारापुर आश्रम से श्री जागेश्वर प्रसाद सिंह और पचमूर शिविर से पं० दशरथ झा गिरफ्तार किये गए। सैनिकों और पुलिसवालों ने श्री वासुकीनाथ राय के घर जाकर घर के सब लोगों को पीटा और वहाँ से जेवर आदि सब सामान उठा ले गये। पुलिस के अत्याचार के मारे उनकी पत्नी भी कुछ दिन फरार रही। श्री दीनानाथ सहाय, श्री जयमंगल शास्त्री, श्री यमुना पासवान आदि अन्य व्यक्तियों के घर भी लूटे गये। श्री जयमंगल शास्त्री के घर पर सरदारी मंडल नाम के उनके एक नौकर पर गोली चलाई गई जिससे वह घायल हुआ। एक दिन कुछ गोरे सैनिक और पुलिसवाले फरारों की खोज मे रात को रहमत पुर वासा ग्राम में गए। वहाँ एक आदमी को गिरफ्तार किया। कुछ आहट मिलने पर श्री विश्वनाथ सिह नाम का एक व्यक्ति हाथ में लाठी लेकर निकल पड़ा। गोरों ने उस पर गोली चला दी। वह वेचारा वही ढेर हो गया।

२६ जनवरी १९४३ ई० को स्वतन्त्रता-दिवस मनाने की वात थी। पुलिसवालों ने इसे भी रोकने की पूरी तैयारी कर रखी थी। असरगंज में कई जगह मशीनगन लगाये गए थे, लेकिन फिर भी वहाँ जुलूस निकल कर ही रहा। उस दिन कई कार्यकर्त्ता गिरफ्तार भी हुए।

तारापुर का आन्दोलन बहुत दिनों तक चलता रहा। इससे वहा मार्च १९४३ ई० में करीब एक सौ बलूची सैनिक भेजे गए जो वहाँ तीन मास तक बने रहे। इनमें कई लोगों के पास ट्रांसमीटर मशीन थी जिससे वे देहातों से अपने काम की सूचना तारापुर आफिस को दे दिया करते थे। इन्होंने थाने भर में आतंक फैला दिया। प्राय सभी फरार गिरफ्तार कर लिए गए। बहुत लोगों पर मार पड़ी और उनके साथ तरह तरह के अन्याचार किये गए। फरारों को छिपाकर रखने में सहोड़ा और गोविन्दपुर गांव ने बड़ी मदद की थी। प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के गिरफ्तार हो जाने पर टोल पहाडी शिविर पर आतंकवादियों का कब्जा हो गया।

इस थाने के सहोड़ा के घनौल सिंह को पसराहा हवाई जहाज काण्ड के मामले में डेढ साल जेल मे रहना पड़ा। पुरुषोत्तमपुर चोरगांव के श्री विन्ध्याचल सिंह डाक लूटने के मामले में पकड़े जाकर दस महीना हाजत मे रहे। जिस दिन उन्हें सजा सुनाई गई, उसके तीसरे दिन मुंगेर जेल में उनकी मृत्यु हो गई। बीहमा के श्री विशु मण्डल पुलिस की मार से अस्पताल में जाकर मरे। शम्भुगंज के श्री हंसराज मण्डल, श्री शनिश्चर बेलदार और श्री विश्वनाथ भागलपुर जेल में गोली से मारे गए।

जमालपुर और मुंगेर मुफस्सल—मुंगेर मुफस्सल थाने के अन्दर, आन्दोलन छिड़ने के कुछ ही दिन पूर्व यहां के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री राम गुलाम शर्मा जमालपुर की एक सभा में भाषण देने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिए गए। श्री रामस्वरूप शर्मा पर भी वारंट था, पर वे फरार हो गए। महीनों बाद वह श्री सुरेश्वर पाठक के साथ महेशपुर में गिरफ्तार हुए।

अगस्त आन्दोलन के छिड़ते ही जमालपुर और मुफस्सल के स्कूलों में लड़कों ने हड़ताल की। धरहरा, बरियारपुर, रतनपुर के स्टेशनों पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये गए और उनमें ताले बन्द कर दिये गये। बरियारपुर में वहां के तथा खड़गपुर के कार्यकर्त्ताओं ने जो तोड फोड के काम किये, उसकी चर्चा पहले हो चुकी है। यह इलाका मुफस्सल थाने के अन्दर होते हुए भी, कांग्रेस के अन्दर, सदा खड़गपुर के साथ रहा।

१३ अगस्त को धरहरा में मुफस्सल थाने के कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक हुई, जिसमें आन्दोलन चलाने के लिए डा० रामचरण मेहता अधिनायक बनाये गये। १८ को इस थाने के अन्दर इटहरी, पाठन, माताडीह, इटवा, धरहरा आदि स्थानों में रेल की लाइनें काटी गयीं और बहुत से तार के खम्भे उखाड डाले गये। गांवों से चौकीदारों का थाना आना बन्द हो गया। रेलवे लाइन उखाड़े जाने के कारण जमालपुर रेलवे कारखाना भी करीब बन्द ही जैसा हो गया। धरहरा में कांग्रेस के जुलूस पर जबरदस्त लाठी-प्रहार हुआ, जिसमें ३-४ आदमी बुरी तरह घायल हुए।

६ सितम्बर को इटहरा गांव में कार्यकर्त्ताओं की एक गुप्त बैठक हुई। यहां बिहार के बड़े-बड़े पुलों को डिनामाइट द्वारा उड़ा देने की तैयारी थी। जब पुलिस को यह खबर लगी, तो उसने १६ को श्री रामनारायण सिंह को गिरफ्तार कर लिया। दूसरे दिन पुलिस ने एक साथ भिन्न भिन्न स्थानों में छापा

मारा और दर्जनों व्यक्ति गिरफ्तार किये गये। एम० ए० के एक विद्यार्थी श्री भागवत प्रसाद (अब बिहार-एसेम्बली और विधान परिषद के सदस्य) और कुतलूपुर मिड्ल स्कूल के हेडमास्टर श्री मुरलीधर को इन्दरुख-योजना का प्रमुख कार्यकर्त्ता समझ कर, इन्हे पकड़ने के लिए पुलिस ने गोपालीचक गाँव के काँगरेस शिविर पर छापा मारा। मुरलीधर पकड़े गए और सारा रहस्य बताने के लिए उनपर बहुत दबाव डाला गया। नही बताने पर, गोली मार देने की भी धमकी दी गई। पर वह कुछ भी बताने का तैयार नही हुए। इसके कुछ दिन बाद पुलिस ने अमभर के जगल मे ४०० बम बरामद किये और इसके सम्बन्ध मे श्री नारायण प्रसाद सिह को पकड़ा। तलाशी लेने पर माताडीह और दरियापुर के कुछ घरो मे भी बम पाये गये और इस सिलसिले मे श्री अच्छेलाल सिह, श्री लखन लाल आदि कुछ समाजवादी कार्यकर्त्ता भी गिरफ्तार किये गये। कहते है, ये सब बम अमभर के मिलिटरी कैम्प से कुछ सिपाहियों के जरिये समय-समय पर उड़ाये गये थे। इसके सम्बन्ध मे कुछ लोगों पर मुकदमा चला और हीलाल, नारायण प्रसाद तथा लखन लाल को सात-सात साल की सजा हुई। इसी मुकद्मे के एक अभियुक्त श्री काशी चमार की मृत्यु जेल में ही हुई।

आतकवादियो के पीछे दो दल हो गये थे। कुछ अच्छे विचार के लोग तो विदेशी सरकार और उसके पिट्ठुओं से ही मोरचा लेना चाहते थे, पर कुछ दूसरे लोग धन के लोभ मे पड़ कर जहाँ कही भी डकैती करने लग गए थे। इस दूसरी तरह के लोग श्री लक्ष्मी सिंह से, जो बम आदि सभी हथियारों के थातीदार थे, डकैती के लिए हथियार माँगने लगे। इन्होने देने से इन्कार किया। इस पर उन लोगों ने एक पार्टी की बैठक के बहाने इन्हे एक जगल मे बुलाया और वहाँ इनके बम देने से फिर इन्कार करने पर, इन्हे वही गोली मार दी।

इसी समय हेमजापुर के श्री गोविन्द सिह ने कुछ साथियो को जुटा कर थाने मे जहाँ-तहाँ डकैती और खूनखराबी करना आरम्भ कर दिया था। उन लोगो ने काफी हथियार और रुपये भी एकत्र कर लिये थे। अतएव उनके बढ़ते हुए बल को देख कर बहुत से राजनीतिक फरारों ने उनका आश्रय लिया, जिनमें मुफस्सल और सूर्यगढा थाने के व्यक्ति भी थे। कुछ सशस्त्र क्रान्तिकारियों को भी उनसे आर्थिक सहायता मिली। फिर तो वे लोग भी अपने को क्रान्तिकारी बताने लगे। पीछे पुलिस ने गोविन्द-दल के लोगों पर मुकदमा चलाया, जिसमे गोविन्द सिह और कुशेश्वर सिह को फाँसी हुई तथा उनके कई साथियो को कैद की सजा मिली।

इस आन्दोलन मे महेशपुर के सरदार नित्यानन्द सिंह भागलपुर जिलान्तर्गत सोनबरसा ग्राम में गोली से मारे गए।

सूर्यगढ़ा—१३ अगस्त को सूर्यगढ़ा आश्रम मे थाने भर के कार्यकर्त्ताओ की एक बैठक हुई। आगे का कार्यक्रम निश्चित किया गया। लोगों ने थाने पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया और वहाँ के कुछ कागजात जलाये। थाने मे ताला लगा दिया गया। दूसरे दिन दारोगा अपने स्टाफ और परिवार को लेकर नाव से मुंगेर को रवाना हुआ।

रेलवे लाइन हर जगह छिन्न भिन्न की गयी, और तार काटे गये। कजरा, कयूल और लक्खीसराय स्टेशनों को जलाने में यहाँ के लोगों ने भाग लिया। कजरा और पीरी तथा कजरा और कयूल के बीच कई बार पटरियाँ उखाड़ी गईं और तार काटे गये।

अंगरेजी राज के उठ जाने पर लोगों ने यहाँ अपना राज कायम किया। चौकीदारों की वर्दियाँ लेकर जला दी गयीं और उन्हें गांधी टोपी देकर शांति कायम रखने के लिए फिर बहाल किया गया। वे लोग परेड के लिए बराबर आने लगे। जगह जगह पंचायतें कायम की गयीं और रक्षा-दल संगठित किये गये। एक सशस्त्र सेना कायम करने का भी प्रबन्ध हुआ। पंचायत सरकार का सूयगढा में एक छोटा सा जेल बनाया गया जिसमें अपराधी रखे जाने लगे। पांच व्यक्तियों का एक थाना न्यायालय कायम किया गया। जो मुकदमा ग्राम पंचायत में नहीं तय हो पाता था, वह यहाँ लाया जाता था।

आरम्भ में थाना के उठते ही दो एक जगह अशान्ति मची, पर पंचायत सरकार द्वारा वह तुरंत दबा दी गयी। पोखरामा और ऋषि पहाड़पुर में खून हुए। पोखरामा में श्री बटेश्वर सिंह और श्री सुख राम सिंह में पहले से अदावत चली आ रही थी। थानेके उठ जानेपर सुखराम सिंह मार दिये गये। उनकी लाश मुंगेर लाई गई और उनकी ओर से श्री बटेश्वर सिंह वगैरह पर मामला दायर किया गया। उधर ऋषि पहाड़पुर में भी श्री रचल सिंह और श्री मादो सिंह में पुरानी दुश्मनी थी। पुलिस के जाते ही श्री रचल सिंह भी मारे गये। जब पंचायत सरकार को इसकी खबर लगी तो नोटिस भेज कर श्री मादो सिंह को बुलाया गया। आने से इन्कार करने पर स्वयंसेवकों की सेना उन्हें गिरफ्तार करने गयी, पर उनके घर के सभी लोग भाग निकले। इस पर इलाके के हजारों व्यक्ति वहाँ जमा हो गये। सभा कर के निश्चय किया गया कि उन्हें जहां पाया जाय गिरफ्तार किया जाय और पंचायत में उनका मुकदमा पेश हो। इस तरह की व्यवस्था से थाने भर में शान्ति बनी रही। पंचायत सरकार ने अमीरों से अन्न लेकर गरीबों में बांटा। गंगा में जाती हुई मकई से भरी कई नावें लूटी गयी थीं। उनका पता लगाकर माल वापस किया गया और कसूरवार को सजा मिली।

जिस समय कार्यकर्त्ता थाने में शांति और सुव्यवस्था कायम करने में व्यस्त थे, उस समय गोरे सैनिक रेलवे की लाइन मरम्मत कर थाने में घुसने की तैयारी कर रहे थे। बीच-बीच में लाइन उखाड़ दी जाती थी, जिसे ट्राली और पैट्रोलिंग ट्रेन पर घूमनेवाले सैनिक जोड़ दिया करते थे। लाइन खोलने से एक बार पैट्रोलिंग ट्रेन का इंजिन रात में अभयपुर स्टेशन के पास पटरी से नीचे उतर कर गिर गया और बहुत दिनों तक वहीं पड़ा रहा। सैनिकों ने इधर उधर बहुत गोलियां चलायीं, परन्तु कोई घायल नहीं हुआ। इसके कुछ दिन बाद, १८ अगस्त को, एक पेट्रोलिंग ट्रेन जा रही थी। उस पर से एक गोरे ने, खेत में मचान के पास, औजार लिए एक आदमी को देखा। बस, झट उसने गोली चला दी। वह वहीं जाता रहा। वह सूयगढा थाने के सहूर ग्राम का कुशेश्वर या शसो नामका एक धानुक था, जो खेत में काम करने आया था। २१ अगस्त को पेट्रोलिंग ट्रेन

के गोरो ने उरैनवासी श्री वेनीसिह को, कजरा और उरैन के बीच, गोली से मार दिया। लाइन उखाड़ने के अभियोग मे गोरे सैनिकों ने रामपुर ग्राम के ५-६ आदमियों को गिरफ्तार किया और श्री रामगुलाम सिह पर गोली चलाई जिससे वे कुछ घायल हुए।

२६ अगस्त को एक डिपटी मजिस्ट्रेट और डी० एस० पी०, कुछ गोरे सैनिक और थाने के पुलिस कर्मचारियो को साथ लेकर, एक खास जहाज से सूर्यगढ़ा पहुँचे। वे लोग सीधे कॉंगरेस आफिस आये। उस समय यहां श्री रूपकान्त शास्त्री आदि गिरफ्तार कर लिये गये। राष्ट्रीय झण्डा उखाड़ कर पुलिस ने कॉंगरेस आफिस मे ताला लगा दिया। श्री तिलकधारी चौधरी पर मार भी पड़ी।

दूसरे ही दिन २७ अगस्त को लोगो ने पुलिस का ताला तोड़कर कॉंगरेस आफिस पर फिर कब्जा कर लिया और अपना राष्ट्रीय झण्डा गाड़ा। इसके विरोध मे आश्रम मे २९ अगस्त को एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा हुई। थाने से डी० एस० पी० ने कुछ सैनिक और पुलिस को लाकर गोली चलवायी जिससे सलेमपुर का श्री कार्यानन्द मिश्र नामका १४ वर्ष का लड़का वहीं मारा गया। निस्ता के श्री डोमन गोप गोली से सख्त घायल होकर मुगेर अस्पताल मे मरे। ये दोनो अपनी विधवा मा की एकमात्र सन्तान थे। नवका टोला, सलेमपुर के श्री रामकिसुन सिंह को दाहिनी जांघ मे गोली लगी जिससे उन्हे वहुत दिनो तक पटना अस्पताल मे रहना पड़ा। अब तो आराम हुआ, पर पैर नाकाम ही रहा। कुछ और लोग भी मामूली तौर पर घायल हुए थे। पुलिसवालों ने आश्रम मे ताला वन्द कर दिया। २९ को श्री सत्यदेव प्रसाद सिंह अपने दस-वारह साथियों को लेकर आश्रम पहुँचे और पुलिस का ताला तोड़कर वहाँ रहने लगे। करीव एक हफ्ता वाद, एक दिन ३ वजे भोर मे, दो लारियो पर गोरे सैनिकों ने आकर वाजार और पास के गाँवों को घेर लिया। उन्होंने करीव एक हजार आदमियों को, जिन्हे वे लोग पकड़ सके, सव जगह से लाकर सड़क पर जुटाया और सवों को पानी मे भीगाते हुए १ वजे दिन तक बैठाये रखा। श्री सत्यदेव सिह, विजयादशमी के दिन घर पर, गिरफ्तार कर ६ महीने के लिए जेल भेज दिये गये।

पवैय के श्री विन्दोसिह जेल मे यक्ष्मा रोग से ग्रस्त होकर वाहर निकले और कुछ ही दिनो के वाद परलोक सिधारे। सूर्यगढा थाने मे २२-हजार रुपया सामूहिक कर भी लगाया गया।

लक्खीसराय—लक्खीसराय मे १० अगस्त को दुर्गास्थान पर सभा हुई। उसी दिन चित्तरंजन आश्रम का एक कमरा, जहाँ कॉंगरेस आफिस था, पुलिसने जप्त कर लिया। वाकी कमरो मे श्री कार्यानन्द शर्मा और उनके कम्युनिस्ट साथी रहते थे, इससे उन कमरों पर पुलिस ने अधिकार नही किया।

१२ अगस्त। स्थानीय हाई स्कूल के लड़कों ने तोड़फोड़ का प्रोग्राम वनाया। गया से मुगेर जाने वाली गाड़ी पर इन लोगों ने कब्जा कर लिया और उस पर सवार होकर आगे वढ़े। मानो ग्राम के पास उतर कर थाना कागरेस कमिटी के सभापति श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह के घर पर गये और उनसे इस आन्दोलन का नेतृत्व करने का अनुरोध किया। मानो मे एक सभा हुई और वहाँ से सव लोग नारे लगाते हुए लक्खीसराय आए।

१३ को सुबह से ही तोड़फोड़ का कायक्रम आरम्भ हुआ। करीब दस हजार आदमी एकत्र हो गये। पोस्ट आफिस का तार काटा गया, रेल की पटरियाँ उखाड़ी गयीं और लक्खीसराय स्टेशन के सामान नष्ट किये गये। इसके बाद भीड़ क्यूल की ओर बढ़ी। वहाँ क्यूल स्टेशन का सब सामान बरबाद किया गया। रुपये-पैसे लूट लिये गये और कुछ नोट जलाये भी गये। मालगाड़ी के ६५ डब्बे लूटे जाने लगे। कांग्रेस की ओर से श्री नुनुमणि सिंह, श्री श्याम सुन्दर शर्मा आदि लूट को रोकने के लिए क्यूल गये, परन्तु, उन्ही पर लोगों ने हमला कर दिया, जिससे उन्हें लौट आना पड़ा। लूट में स्टेशन के कर्मचारी, कुली और पुलिस के आदमी भी शामिल हुए। दिन के २ बजे से लेकर दूसरे दिन के ४ बजे शाम तक लगातार लूट जारी रही। १३ को एक हवाई जाहज आकर इस दृश्य को देख गया। मालगाड़ी का एक डब्बा युद्ध के अस्त्र शस्त्र से भरा था। उसमे १४ को सुबह आग लगा दी गई। उसकी जोरो की फटाफट की आवाज से बहुत लोग भाग चले। उसी समय वहा एक हवाई जहाज पहुँचा, जिसने ऊपर से बम गिराया। पर उससे किसी की कुछ हानि नहीं हुई। हाँ, भीड़ में भगदड़ मची, जिसमे एक बूढ़ा कुचल कर मर गया।

इधर १४ को लक्खीसराय में श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह के नायकत्व मे लोगो ने थाने पर दखल जमाया। वहा के कागजात जलाये और पुलिस के कर्मचारियो को बाजार के एक मकान में सुरक्षित रूप से रखा। रजिस्ट्री आफिस, आबकारी विभाग के दफ्तर और डाकघर म ताले लगाए गए।

१६ को ही गोरे सनिको की दो गाड़िया, एक झाझा की ओर से और दूसरी जमालपुर की ओर से क्यूल पहुँची। क्यूल मे गोरा ने अपना अड्डा जमाया। १७ की शाम से करफ्यू आर्डर जारी हुआ, जिसकी खबर देहातो मे अभी नहीं पहुँची थी। कोई तीन अनजान व्यक्ति सध्या समय क्यूल के पास आये और वे गोली से मार दिये गये। १७ को श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह, चित्तरजन आश्रम मे गिरफ्तार कर क्यूल ले जाये गये। गोरे सैनिको ने क्यूल की लूट का उत्तरदायी इन्हें ही मान कर इनको वहाँ गोली मार देने की तैयारी की, किन्तु एक अमेरिकन अफसर ने इन्हें बचा लिया। ये वहा से जमालपुर भेज दिये गये। वहा भी इनके साथ फौजी अदालत की कारवाई की गई। परन्तु, इस खबर से वहा की भारतीय सेना में बड़ा असन्तोष फैला। इमस इनकी जान बची और ये वहाँ से जेल भेज दिये गये।

२४ अगस्त को १४४ धारा तोड़ कर कार्यकर्ताओ ने लक्खीसराय में एक जुलूस निकाला। वह जुलूस धूमधाम कर, जब पुल के पास पहुँचा, तो गोरे सैनिक क्यूल से वहाँ आ धमके और पुल पर से उन्होंने जुलस पर गोलियां चलानी शुरू कर दीं। गोलियां से बहुत लोग घायल हुए तथा ६ आदमी मारे गये। दो लाशो को गोरा ने बरसात की उमड़ी हुई क्यूल नदी में बहा दिया। चार का अग्नि-संस्कार जनता ने किया। ये चार थे मन्साय डीहा के श्री बैजनाथ सिंह, सामनडीह के श्री हरी सिंह, सलोनाचक के श्री गुज्जू सिंह और महसौरा के श्री दारो साह। गोली-काड की जगह पर, शहीदो की स्मृति में, इस समय एक द्वार बनाया गया है।

बड़हिया—बड़हिया १० अगस्त। स्कूल और बाजार मे हड़ताल हुई। श्री रामरीझन सिह आगे का कार्यक्रम जानने के लिए पटना गये और दूसरे दिन ११ को लौट आये। ११ को ही यहाँ प्रांतीय-काँगरेस की ओर से भेजा गया कार्यक्रम, मुँगेर द्वारा मिल गया। जनता ने उसी दिन बड़हिया स्टेशन पर अधिकार जमा लिया। १२ को जुलूस निकला, सभा हुई और जन- ाधारण को कार्यक्रम समझाया गया। उस दिन थाने पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया। १३ को कुछ लोगों ने एक मारवाड़ी के कपड़े की दूकान लूट ली। काँगरेस-कार्यकर्त्ताओ ने पता लगाकर कपड़ा वापस करवाया। उस दिन तार घर का तार काटा गया। १४ को रेलवे लाइन उखाड़ी गयी, तार काटे गये और मालगाडी के तीन डव्वे के अनाज के वोरे लूटे गये। १५ को थाने पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा कर ताला लगा दिया गया। उस दिन पटने से भी कुछ विद्यार्थी यहाँ पहुँच गये थे, इससे विध्वंसक कार्य अधिक हुए। रेलवे पुल का कुछ हिस्सा तोड़ा गया, स्टेशन के पार्सल रूम का सामान लूटा गया और स्टेशन मे आग लगा दी गयी। बाजार को लूटपाट से बचाने के लिए वहाँ स्वयसेवको का पहरा वैठा दिया गया। परन्तु, व्यापारियों को आदेश दिया गया कि अनाज सस्ते दर पर ही वेचे। डाक घर पर कब्जा कर के उस पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया।

१६ अगस्त से गोरे सैनिक आने लगे और उन्होंने उपद्रव मचाना शुरू किया। उस दिन संध्या समय सैनिकों की एक पेट्रोलिंग ट्रेन आई। आगे-आगे दो ट्रालियाँ चल रहीं थी। उसी समय कुछ लोग लाइन उखाड़नेमे लगे थे। उन्हे देखकर सैनिकों ने गोलियाँ चलायी जिससे बड़हिया इगलिश के एक धानुक का १५ वर्ष का लड़का, जुलमी महतो मारा गया। पीछे जुलूस निकाल कर लोगो ने उसका अग्नि, संस्कार किया। उस जुलूस पर पुलिस का लाठी-प्रहार भी हुआ। दो-ढाई दर्जन सशस्त्र सैनिकों ने बाजार मे गश्ती की। दूसरे दिन कुछ और गोरे सैनिक यहाँ पहुँचे।

१८ अगस्त से गिरफ्तारियाँ शुरू हुई। श्री सूर्यनारायण सिह और श्री रामरीझन सिह गिरफ्तार हुए। तेघड़ा थाने के बुढ़िवन न्याय ग्रामवासी श्री हरिनाथ पाठक मालगुदाम के पास गोली से मारे गये।

२८ को एक डिप्टी मजिस्ट्रेट पुलिस सव-इन्सपेक्टर तथा कुछ सशस्त्र सैनिको को लेकर बड़हिया ग्राम मे आये और उन्होने वहाँ के कुछ प्रतिष्ठित लोगों को स्टेशन पर बुलाकर लाइन, तार की रक्षा के लिए स्पेशल कान्सटेवुल बनाया। ३० को उसी डिप्टी मजिस्ट्रेट ने वहाँ के अस्पताल के डाक्टर श्री शुक-देव सिह को वुला भेजा और आन्दोलन के संचालन मे उनका छिपा हाथ समझ कर उन्हे गिरफ्तार करना चाहा। परन्तु, ग्रामवासियो के कहने पर पीछे उन्हे छोड़ दिया गया। ३१ अगस्त की वात है। गोरे सैनिकों की एक लारी थाने के पास से जा रही थी। इन्दुपुर के श्री वनारसी सिह हाथ पीछे करके किसी दूकान पर खड़े थे। गोरों को इन पर शक हो गया। वस एक ने झट इन पर गोली दाग दी। ये अस्प-ताल पहुँचाये गये; पर, तीसरे ही दिन इनकी मृत्यु हो गयी। आप भागलपुर कालेज के विद्यार्थी थे।

थाने मे गिरफ्तारियाँ जव-तव होती रही। १० सितम्बर को श्री चद्रभानु सिह और १६ को श्री यमुना सिह और श्री वलराम सिह पकड़े गये।

आन्दोलन के प्रारम्भ में पिपरिया दिआरा के सर्वश्री रामविन्द, कमल गोप और गनौरी वहार मुकामा घाट में गोरे सैनिकों द्वारा मारे गये। बड़हिया थाने को २८५००) सामूहिक जुरमाना लगा। इसमें २०,००० बड़हिया पर, ५०००) गंगा सराय, इन्दुपुर और हृदन बीघा पर तथा ३५००) पिपरिया और उसके आसपास के टोलों पर बैठाये गये। इस आन्दोलन को गति देने के लिए यहाँ से रोनियो पर 'विद्रोही' नाम का परचा भी निकलता था। इस परचे के निकालने और लिखने में श्री योगीन्द्र शर्मा आयुर्वेदाचार्य तथा सिद्ध जी का बहुत बड़ा हाथ था।

शेखपुरा—शेखपुरा थाने के अन्दर १९४२ ई० में थाना कांग्रेस कमिटी के सभापति श्री चुनकेश्वर प्रसाद सिंह और मंत्री श्री सिद्धेश्वर शर्मा ने। आन्दोलन छिड़ने पर १६ अगस्त को थाने और रजिस्ट्री आफिस पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये गये। स्कूलों में हड़ताल रही। थाना कायम रहा, पर दारोगा चतुराई से आन्दोलनकारियों की अधीनता स्वीकार करता रहा। रेल की लाइनें जहाँ तहाँ तोड़ी गयीं। सैनिक ६ सितम्बर को यहाँ पहुँचे और आते ही उन सब ने उत्पात शुरू कर दिया। स्थानीय पुलिस ने भी अपना रंग बदला। उसी समय बाजार की एक दूकान लूटी गयी। ९ सितम्बर को गोरे सैनिक पैट्रोलिंग ट्रेन में फिर यहाँ आये। उस दिन लुलही कस्बा में एक सभा हो रही थी। वहाँ जाकर उन सबों ने ९ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया, जिनमें ७ तो किसी तरह जान बचाकर चले आये, पर श्री रामेश्वर प्रसाद महतो और श्री मदिनी सिंह, दो दिनों तक स्कूल में रखे जाकर मुंगेर भेज दिये गये। तीन महीना तक हाजत में रखे जाने के बाद इन्हें एक एक वर्ष कैद की सजा हुई।

बरबीघा—बरबीघा थाने में १७ अगस्त को एक सार्वजनिक सभा हुई और १६ को थाना, डाकघर और डाकबंगले पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये गये। ७ दिनों तक पुलिस का थाना बन्द रहा। पर थानेदार अपने निवासस्थान पर पूर्ववत था। २३ अगस्त को एक दर्जन हिन्दुस्तानी सैनिक यहाँ पहुँचे। उनके आते ही पहले तो श्री भगवती चरण वर्मा और फिर श्रीकृष्ण मोहन प्यारे सिंह (उर्फ लाला बाबू) गिरफ्तार कर लिये गये। उस दिन एक जुलूस निकला, जिसमें कई कार्यकर्त्ता पकड़े गए। २४ ता० को यहाँ गोरे सैनिक भी आये। इनलोगों ने अड़ोस पड़ोस के गांवों में घूम घूम कर आतंक फैलाना शुरू किया। बहुत से राह चलते लोगों को भी पकड़-धकड़ कर बन्द रखा और कई को बुरी तरह पीटा। लाला बाबू को पहली बार की गिरफ्तारी में ८ मास की सजा काट लेने के बाद, फिर दुबारे गिरफ्तार किया गया और १६ महीने की सजा दी गई।

जमुई—जमुई में १० अगस्त। श्री श्यामा प्रसाद सिंह अपने घर मल्लेपुर में गिरफ्तार कर लिये गये। उसी दिन जमुई में कांग्रेस आफिस जब्त हुआ। पुलिस वहाँ का सब सामान उठा ले गयी। ११ को मल्लेपुर के लोगों ने जमुई स्टेशन के कागजात जलाये, तार काटे और केबिन को तोड़ डाला। इस काम में विशेष हाथ श्री जगदीश मिस्त्री का था। उसी दिन जमुई के विद्यार्थियों ने पोस्ट आफिस का तार तोड़ा और जानकी बाग से एक जुलूस निकाला। जब जुलूस मुन्सफी कचहरी के पास पहुँचा, तो

वहाँ के गोरे एस० डी० ओ० श्री उड ने लड़कों पर छाता चलाया। इस पर श्री शिवशरण शर्मा वकील ने एतराज किया जिससे ये गिरफ्तार कर लिये गये। विद्यार्थियो ने एस०डी० ओ० की कचहरी पर जाकर झण्डा फहराया।

१२ अगस्त को फिर जुलूस निकला। १३ को पाँच दर्जन गोरे और गोरखे सैनिक यहाँ पहुँच गये और जोर-जुल्म मचाने लगे। थाने के वयोवृद्ध नेता श्री यमुना प्रसाद सिंह ने वकालत छोड़ दी और वह आन्दोलन का सचालन करने लगे। परन्तु, तुरत गिरफ्तार कर लिये गये। गोरों ने उन्हे वहुत तंग किया। वह पीछे छोड़ दिये गये, पर करीव एक महीना वाद फिर गिरफ्तार कर डेढ़-दो वर्षो तक नजरवन्द रखे गये।

अक्टूवर के आरम्भ मे जमुई मे एक जुलूस निकला। इसमे कई लोग पकड़े गए और गोरों द्वारा पीटे गए। श्री जनार्दन प्रसाद सिंह, श्री उपेन्द्र लाल और श्री महावीर प्रसाद सिंह को अत्यधिक मार पड़ी। उनके शरीर फूट-फूट गये और वे कई दिनो तक चलने-फिरने से लाचार रहे।

उसी समय सुप्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान स्वर्गीय प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीके सुपुत्र श्री रमावल्लभ चतुर्वेदी को भी पकड़ कर एस० डी० ओ० ने स्टेशन पर के गोरो के हवाले कर दिया। इन्हे वहाँ वड़ी यन्त्रणाएँ दी गयौ। गोरों ने इनके मुह पर थूका तथा उनसे पैखाना और पेशाव साफ कराया। पीछे इन्हे तथा मल्लेपुर के श्री वलदेव मिश्र को दो वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया। मल्लेपुर मे सामुहिक जुरमाने भी लगाये गये। हाफिज उमर साहव को भी अगस्त मे ही एक वर्ष की सजा मिली। गरसण्डा के श्री दुखहरण प्रसाद, जेल से वीमारी की हालत मे छूटकर, कई दिनो के वाद ही घर पर मर गये। देहातों मे गोरो ने कितनी ही स्त्रियो के साथ वलात्कार किया। खैरा मे एक दूध वेचनेवाली के साथ तथा मेहसौरी चक मे भी किसी औरत के साथ उनके वलात्कार करने की वात वतायी जाती है।

इस आन्दोलन के समय कुछ क्षुब्ध किसानो ने जमीदारी कचहरियो को भी जलाया और लूटा। गिद्धौरराज की महादेव सिमरिया कचहरी मे, खैरा की विसनपुर कचहरी मे तथा कुमार कालिका सिंह की डुमर कोला कचहरी मे आग लगाई गई थी।

सिकन्दरा—सिकन्दरा थाना मे पुलिस ने १० या ११ अगस्त को काँगरेस का आश्रम जव्त कर लिया और वह सव सामान वहाँ से उठा ले गयी। पर दूसरे ही दिन आन्दोलन की आग यहाँ भी भड़की और लोगो ने थाना को अपने अधिकार मे कर लिया। फिर तो शीघ्र ही पुलिसवाले अपना सव सामान लेकर जमुई चले गये और आन्दोलन शान्त होने पर करीव एक महीना वाद लौटे। गोरों को आने से रोकने के लिए राँची से सिकन्दरा आनेवाली सड़क के एक पुल को तोड़ दिया गया तथा लक्खीसराय और जमुई से सिकन्दरा आनेवाली सड़कों पर पेड़ की डाले काट-काट कर डाल दी गई।

दो-तीन हफ्ता वाद सैनिक लोग आने लगे और थाना के फिर कायम हो जाने पर, तो दमन ही आरंभ हो गया।

परिषद निर्माण करने की बात बताई गई और केन्द्र में तत्काल एक राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की। यह भी कहा गया कि १९३८ ई० के विधान के अनुसार अन्तिम अधिकार तो वायसराय के ही हाथ में रहेगा, पर व्यवहारतः प्रायः सभी काम वायसराय की कार्यकारिणी-समिति ही करेगी। यह स्पष्ट कर दिया गया कि पीछे यदि भारत चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद भी कर सकता है। इस योजनानुसार यद्यपि पाकिस्तान मंजूर नहीं किया गया था, पर प्रान्तों के जो कई समूह बनाए गए और उन्हें जो आत्म निर्णय का अधिकार दिया गया, उस में पाकिस्तान का बीजारोपण स्पष्ट तरीके से हो गया था। इस योजना को कांगरस और मुस्लिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया। अब विचार किया जाने लगा कि वायसराय की कौंसिल में कितने सदस्य रखे जायें कि सभी दलों का प्रतिनिधित्व सन्तोषजनक रूप से हो सके। शीघ्र कुछ निर्णय होते नहीं देखकर सरकारी अफसरों को लेकर ही एक कामचलाऊ सरकार कायम कर दी गई और कैबिनेट-मिशनवाले वापस हो गए।

इस बीच विधान परिषद के सदस्यों का चुनाव हुआ। मुसलमानों में दो चार को छोड़ सभी मुस्लिम लीग के ही व्यक्ति परिषद के सदस्य चुने गए। अब तो लीगियों का हौसला बढ़ा। उन्होंने योजना को बिलकुल नामंजूर कर दिया और निश्चय किया कि पाकिस्तान की स्थापना के लिए सीधी कारवाई की जाय। यह बात पहले तय हो चुकी थी कि यदि कोई दल योजना को नामंजूर कर दे तो भी वायसराय दूसरे दलों की सहायता से सरकार कायम करे। फलतः वायसराय ने कांगरस की सहायता से अन्तरिम सरकार कायम करने का निश्चय कर लिया और पं० जवाहरलाल नेहरू को इसके लिए निमन्त्रण भेजा। नेहरूजी ने भी जिन्ना से अन्तरिम सरकार में शामिल होने का एक बार फिर अनुरोध किया, पर वे किसी तरह राजी नहीं हुए। जिस समय इधर अन्तरीम सरकार कायम करने की बातें चल रही थी, उसी समय लीगियों के पाकिस्तान के लिए कारवाई करने के फलस्वरूप १६ अगस्त से कलकत्ते में भीषण हत्याकाण्ड मच गया। अपनी नीति के प्रचार के लिए लीगियों ने देश भर में १६ अगस्त को एक दिवस मनाने का निश्चय किया था अतएव बलपूर्वक हड़ताल कराने में ही यह काण्ड हुआ। वायसराय और कांगरस ने तय कर लिया था कि इस तरह की कारवाई के कारण शासन का काम न रुकेगा, अतएव २ सितम्बर १९४६ ई० को पं० जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार कायम कर ली गई। अक्टूबर में वायसराय के प्रयत्न से मुस्लिम लीगवाले भी अन्तरिम सरकार में शरीक हुए। परन्तु, इतने पर भी देश के अन्दर दंगा फसाद रुका नहीं, बल्कि और बढ़ गया। पूर्वी बंगाल में नोआखाली और त्रिपुरा जिले के अन्दर, जहां मुसलमान बहुत अधिक संख्या में हैं, हिन्दुओं पर भयंकर रूप से हमले किये गये। गाँव के गांव जलाये गए, हजारों की संख्या में हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये और उन पर जघन्य अत्याचार हुए। पड़ोसी प्रान्त बिहार पर इसका बुरा असर पड़ा। प्रतिशोध की भावना लोगों में जग उठी। कई जिले में हिन्दुओं ने मुसलमानों से बदला लेना आरम्भ किया।

मुंगेर जिले में तारापुर थाने के अन्दर दंगा अधिक हुआ। यहाँ लखनपुर, गाजीपुर, रामपुर,

खड़वा, भदेरी, गोरहो, जोराही, मदारपुर, वनगाँवा आदि गाँवों मे मारकाट और आगलगी हुई। खड़गपुर थाने के खड़गपुर, मुड़ेड़ी, राजाडीह, हटिया, रुपहुआ, खाजेचक, तिलवरिया, पतघाघर में कुछ दंगा-फसाद मचा। इसी प्रकार मुफस्सल थाने के अहरा, खिरोधपुर और हलीमपुर मे, सूर्यगढ़ा के अन्दर काशीचक, कजरा और महम्मदपुर मे, लक्खीसराय के आलापुर और सिगारपुर, मे वड़हिया स्टेशन के एक ट्रेन मे, शेखपुरा थाने के शेखपुरा, प्रभुबीधा, और वरूई गाँव में, वरवीघा थाने के पाँचीपुर और रमजानपुर में कुछ छिटफुट दंगे हुए। इस दंगे मे वहुत मुसलमान मारे गये और उनके घरों में आग लगाई गई। यत्र-तत्र कुछ हिन्दू भी मारे गये और उनके भी घर जलाये गये। उस समय महात्मा गाँधी नोआखाली मे थे। विहार का दंगा वन्द न होने पर उन्होने आमरण अनशन की चुनौती दी। इसका भय यहाँ के लोगों पर वहुत हुआ और दंगा शीघ्र ही वन्द हो गया। पीछे यहाँ की स्थिति देखने और शान्ति-स्थापन के लिए तारापुर मे पं० जावहर लाल नेहरू, श्री अब्दुल गफ्फार खाँ, श्री फिरोज खाँ नून, श्री अब्दुल रव-निस्तर, विहार के गवर्नर, डा० सैयद महमूद, श्री अनुग्रह नारायण सिह, प्रो० अब्दुलवारी, वावू श्रीकृष्ण सिह, श्री जयप्रकाश नारायण आदि नेताओं के पदार्पण हुए।

१९४७ ई० मे, आठ वर्षो के वाद, मुगेर जिला-काँगरेस-कमिटी का नया निर्वाचन हुआ। सभापति श्री नन्दकुमार सिह, प्रधान मन्त्री श्री वलदेव प्रसाद सिह, मन्त्री रामगुलाम शर्मा, श्री राजेश्वरी प्रसाद सिह और श्री वासुकी नाथ राय तथा कोषाध्यक्ष श्री रामप्रसाद जी चुने गये। उसी साल की फरवरी में माननीय श्रीकृष्ण वल्लभ सहाय के सभापतित्व मे जिला-राजनीतिक-सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ। सम्मेलन मे ही विहार-केसरी श्रीकृष्ण सिंह जी की हीरक जयन्ती के उपलक्ष मे मुंगेर मे एक पुस्तकालय और संग्रहालय के निमित श्री कृष्ण-सेवा-सदन की स्थापना और उन्हे एक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करने की योजना स्वीकृत हुई। इसी वर्ष जमालपुर मे श्री नन्दकुमार सिह के सभापतित्व मे जिला-कार्यकर्त्ता-सम्मेलन हुआ। भारतीय काँगरेस-कमिटी के आफिस सेक्रेटरी श्री सादिक अली, श्रीवावू, श्री रामचरित्र-वावू आदि पधारे। इस वर्ष जिले के अन्दर भिन्न-भिन्न स्थानो मे, श्री प्रताप नारायण सिंह के नायकत्व मे काँगरेस-सेवादल कायम करने का निश्चय हुआ और तद्नुसार काम होने लगा।

मेरठ काँगरेस के वाद ही दिसम्बर १९४६ के आरम्भ मे व्रिटिश मन्त्रि-मण्डल ने प० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वलदेव सिंह, श्री जिना और श्री लियाकत अली खाँ को इंगलैंड वुलाया और वहाँ उन्होंने मुस्लिम लीग के अनुकूल योजना मे कुछ परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किया जो ६ दिसम्वर के वक्तव्य में प्रगट किया गया। ९ दिसम्वर से दिल्ली मे विधान-परिषद की वैठक आरम्भ हुई। इस परिषद में मुगेर जिले के दो सदस्य लिये गये। एक विहार के माननीय प्रधान सचिव श्री श्रीकृष्ण सिह जी और दूसरे भाई श्री भागवत प्रसाद जी हरिजन।

मुसलमानो का पाकिस्तान के लिए हठ जारी रहा। अंगरेजों का उनके ऊपर वरदहस्त था ही। अतएव सदा विरोध करते रहने पर भी काँगरेस को अन्त मे उनके अनुसार झुकना ही पड़ा। मुसलमान

बहुमस्यक प्राता मे अलग निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार जनमत लिया गया और देखते ही देखते भारत के कई टुकडे कर दिये गये। पूर्वी बगाल और आसाम का कुछ भाग लेकर पूर्वी पाकिस्तान तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त बलूचिस्तान, सिंध और पश्चिम पजाब को काट कर पश्चिमी पाकिस्तान बनाया गया। श्री जिना, श्री लियाकत अली आदि पाकिस्तान चले गये। १५ अगस्त १६४७ ई० को यह देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मे विभक्त हो गया। पाकिस्तान के गवर्नर जेनरल श्री जिना हुए और हिन्दुस्तान के गवर्नर जेनरल लार्ड माउण्ट बेटन। इन दोनो देशो को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक पद दिया गया। हिन्दुस्तान के प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू हुए और देश का शासन भार उनके मन्त्रिमण्डल पर रहा। गवर्नर जेनरल सिर्फ वैधानिक रूप से प्रमुख बने रहे। विधान परिषद भारतीय पालियामेन्ट का काम करने लगी। १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस सर्वत्र धूमधाम से मनाया गया।

देश के बँट जाने पर भी हिन्दू मुसलमान के झगडे का अन्त नहीं हुआ। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच कुछ जन-परिवर्तन करने का सिद्धान्त कांग्रेस और लीग ने स्वीकार कर लिया था। पूर्वी पाकिस्तान मे जो जन-परिवर्तन हुआ, वह बहुत थोडा और शान्तिपूर्वक हुआ। मुगेर जिले के ही हजारो मुसलमान अपना घर-द्वार छोडकर पाकिस्तान चले गये। अधिकतर वे लोग पूर्वी पाकिस्तान में ही गये। दोनों देशो के रेलवे कर्मचारियो तथा कुछ अन्य सरकारी नौकरो ने भी अपनी अपनी सुविधा के अनुसार अपनी नौकरिया रखी या में बदली करा ली। जमालपुर रेलवे कारखाने से ही करीब दो हजार की सख्या में मुसलमान लोग पाकिस्तान चले गये और वैसे ही पाकिस्तान के हिन्दू लोग यहाँ चले आये। पश्चिम पाकिस्तान के जन-परिवर्तन में तो हिन्दू मुसलमान दोनों की भीषण दुर्गति हुई। पश्चिम पाकिस्तान मे हिन्दुओ पर बडे-बडे जुल्म और अत्याचार हुए। उनकी स्त्रियों के साथ तो हद दर्जे का बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया। इसके जवाब में पूर्वी पजाब के हिन्दुओ और सिक्खो से भी जो कुछ करते बना, उन्होने किया। पश्चिमी पाकिस्तान से भागे हुए सैकडो हिन्दू और शरणार्थी मुगेर जिले में भी आये। इसी हिन्दू मुसलमान झगडे के फलस्वरूप ३० जनवरी १६४८ ई० को दिल्ली में भारत के उद्धारकर्त्ता, अहिंसा की मूर्ति विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी की निर्मम हत्या हुई जिससे सारा ससार क्षोभ विह्वल हो उठा।

विभिन्न राजनीतिक दल

भारत की स्वतन्त्रता की लडाई अब समाप्त हो चुकी और भारत एक प्रकार से स्वतन्त्र हो चुका है अब आगे देश में शासन सुव्यवस्था किस प्रकार चले इसी विषय को लेकर देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टिया काम कर रही हैं। जिस समय यह लडाई आरम्भ हुई थी, उस समय देश में इडियन नेशनल कांग्रेस ही एक मात्र ऐसी सस्था थी जो इस सम्बन्ध में कुछ कर रही थी। जब लडाई कुछ आगे बढी तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के भिन्न भिन्न तरीको को लेकर पार्टिया बनने लगी। इसी के फलस्वरूप कांग्रेस के अतिरिक्त उदार दल और क्रान्तिकारी दल का जन्म हुआ। क्रान्तिकारी दल का काम गुप्त रूप से ही

चलता रहा। आगे चलकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदर्शों के आधार पर पार्टियाँ बनीं। १९३४ ई० मे काँगरेस के अन्दर एक समाजवादी दल (सोशलिस्ट पार्टी) की स्थापना हुई। मई मे इस दल का प्रथम अधिवेशन पटने मे हुआ। धीरे-धीरे यह दल बढ़ने लगा और आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश-नारायण, श्री अच्युत पटवर्द्धन, श्री राममनोहर लोहिया, श्री कमलादेवी चट्टोपाध्याय, श्री अरुणा आसफ अली आदि प्रमुख व्यक्ति इसमे शरीक हुए। कम्युनिस्ट पार्टी तो पुरानी थी। पर वह भी इधर बढ़ी। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टियाँ अन्तरराष्ट्रीय पार्टियाँ है और किसी अन्तरराष्ट्रीय निर्णय का प्रभाव उनके भारतीय दलो पर भी पड़ता है। भारतीय समाजवादी दल तो एक प्रकार से स्वतन्त्र दल है, पर कम्युनिस्ट अधिकतर रूसी इशारे पर चलते रहे हैं। गत यूरोपीय महायुद्ध के आरम्भ मे जब रूस की जर्मनी के साथ मित्रता थी और ब्रिटेन के साथ शत्रुता, तो भारतीय कम्युनिस्ट जर्मनी के पक्ष में और ब्रिटेन के खिलाफ बोलते थे। उस समय उनका दल गैर कानूनी करार दे दिया गया था। पर पीछे, जब रूस की जर्मनी के साथ दुश्मनी शुरू हुई और ब्रिटेन के साथ दोस्ती, तो यहाँ के कम्युनिस्टों ने भी अपना रंग बदल लिया। वे ब्रिटेन के पक्के हिमायती बन गये और इस महायुद्ध को जन-युद्ध कहकर ब्रिटेन की मदद देने-दिलाने लगे। उन्होने इसके चलते ब्रिटिश सरकार के प्रति किये गये काँगरेस के आन्दोलन का भी विरोध किया। युद्ध के समय श्री मानवेन्द्र नाथ राय (एम० एन० राय) की रैडिकल डेमोक्रैटिक पार्टी भी ब्रिटेन का साथ देकर काँगरेस का विरोध कर रही थी। उसी समय श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कॉगरेस के अन्दर अग्रगामी दल (फारवार्ड ब्लाक) की स्थापना की। महायुद्ध के समय काँगरेस जिस हद तक ब्रिटिश सरकार के साथ स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रही थी, श्री सुभाष चन्द्र बोस उससे सन्तुष्ट नही थे और वे और भी आगे बढ़कर लड़ाई लड़ना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने इस दल की स्थापना की। हिन्दू-सभा एक सामाजिक संस्था होते हुए भी राजनीति में भाग लेने लगी थी। पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का भी बल बढ़ा। महाराष्ट्रियों द्वारा संगठित यह सस्था, सामाजिक होकर भी, गुप्त रूप से अपना राजनीतिक उद्देश्य रखती थी। पहले इन सभी दलो के लोग काँगरेस के अन्दर रह सकते थे और थे भी, पर पीछे एक-एककर सभी कॉगरेस से अलग हो गये या अलग कर दिये गये।

मुगेर जिला, बिहार प्रान्त के अन्दर उपर्युक्त प्रायः सभी दलों का एक जबरदस्त अखाड़ा रहा है, जो जिले की राजनीतिक चेतना या जागृति का स्पष्ट द्योतक जान पड़ता है। यहाँ की उर्वरा भूमि मे ये सभी दल खूब पनपे। प्रायः इन सभी दलों का अपना सुसंगठित जिला आफिस रहा है और विभिन्न थानों मे इनके कुछ न कुछ कार्यकर्त्ता काम करते रहे हैं। समाजवादी दल ने अपने अखिल भारतीय और प्रांतीय नेताओं की सहायता से संगठन और प्रचार-कार्य बराबर जारी रखा है। १९४६ ई० और फिर १९४८ ई० मे श्री जयप्रकाश नारायण ने जिले भर का दौरा किया और हर जगह बड़ी-बड़ी सभाएँ की। समाजवादी जिले के अन्दर कई जगहों मे किसानों और मजदूरो के बीच काम कर रहे है। जमालपुर का रेलवे मेन्स यूनियन उन्हीके हाथ मे हैं। काँगरेस के कुछ अच्छे कार्यकर्त्ताओं मे श्री रामनारायण चौधरी,

श्री राम बहादुर शर्मा, श्री गीता प्रसाद सिंह आदि समाजवादी दल के ही थे। यहाँ के कुछ समाजवादी कार्यकर्त्ता, प्रान्तीय मजदूर संघ आदि का भी कुछ कार्यभार लिए हुए हैं और उसके पदाधिकारी हैं।

कम्युनिस्टो मे श्री कार्यानन्द शर्मा, माननीय श्री रामचरित्र सिंह के सुपुत्र श्री चन्द्रशेखर सिंह, श्री निरापद मुकर्जी के सुपुत्र श्री सुनील मुकर्जी प्रान्तीय संगठन का कार्य चला रहे हैं। श्री कार्यानन्द जी के लडके श्री सच्चिदानन्द शास्त्री बम्बई में काय कर रहे हैं। बेगूसराय के कम्युनिस्ट नेता श्री कामरेड ब्रह्मदेव ने भी वहा से चुनाव म भाग लिया था, किन्तु पराजित हो गए। कामरेड ब्रह्मदेव इलाके में अच्छे और ईमानदार कार्यकर्त्ता समझे जाते थे, इसीलिए जनता इन्हें स्नेह से देखती थी। अब इन्होंने उस पार्टी मे त्यागपत्र देकर विदा ले ली है। कहते हैं, पार्टी की अनस्थिर नीति के कारण ही वे अलग हुए हैं। जमालपुर के रेलरोड यूनियन पर कम्युनिस्टो का कब्जा है। १९४६ ई० के प्रान्तीय एसेम्बली के चुनाव में श्री कार्यानन्द शर्मा ने बिहार केसरी श्री कृष्ण सिंह का मुकाबला किया था और प्रचार के लिये दल के अखिल भारतीय मन्त्री श्री पी० सी० जोशी बुलाये गये थे। कम्युनिस्टो की मुखालफत प्रान्त में और कहीं नहीं रही। एक सभा में कम्युनिस्टो ने लक्खीसराय के प्रमुख कांगरेसी श्री राजेश्वरी प्रसाद सिंह पर लाठी चला कर उन्हें सख्त घायल कर दिया। उनके दूसरे साथी श्री हरेकृष्ण सिंह भी घायल हुए। इसके जवाब में कुछ लाग श्री कार्यानन्द शमा की खोज मे निकले और उन्हें भी इतनी मार लगी कि महीनो तक वे अस्पताल मे पडे रहे। उनके परिवार के भी कई व्यक्तियो पर मार पडी।

अग्रगामी दल मे अब अधिक कार्यकर्त्ता नहीं रह गये हैं। बेगूसराय के श्री मथुरा प्रसाद मिश्र दल के प्रान्तीय मन्त्री और उसके साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे। पर १९४८ के मध्य में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और कांगरेस मे आ गये। अग्रगामी दल यद्यपि निष्प्राण तथा क्षीण हो गया है, फिर भी श्री सुरेशचन्द्र मिश्र उसे रसायन देते जा रहे हैं।

राष्ट्रीय स्वयसेवक दल ने धीरे धीरे खूब जोर पकड लिया था। प्राय प्रत्येक थाने में उसका संगठन था और अधिकाश थाना में सैकडो की सख्या में उनके स्वयसेवक थे। जगह जगह बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति उस सस्था से सम्बन्ध रखते थे और उसकी सहायता करते थे। महात्मा गांधी जी की हत्या के बाद यह दल गैरकानूनी करार दिये जाने के कारण विघटित हो गया। सम्भवत इस दल ने भी मुगेर जिले मे, बिहार के अन्दर, सबसे अधिक अड्डा जमा लिया था। बिहार एसेम्बली में एक प्रश्न के उत्तर मे सरकार की ओर से राष्ट्रीय स्वयसेवक दलवालो की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न जिला के आकडे बताये गए थे, उनसे पता चलता है कि प्रान्त के अन्दर ५९९ गिरफ्तार व्यक्तियो में ११६ मुगेर जिले में गिरफ्तार किये गये थे। इसके बाद दरभगा जिले का स्थान था, जहाँ ७४ व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। और जिलो की सख्या ५० से नीचे ही थी। मुगेर में बाबू तेजेश्वर प्रसाद के पुत्र श्री-अखिलेश्वर प्रसाद वकील भी इस सिलसिले में पकडे गये थे। महात्मा गांधी की हत्या के बाद हिन्दू-सभा

का काम भी स्थगित हो गया है। रैडिकल डेमोक्रैटिक पार्टी का दफ्तर नाममात्र के लिए बछवाड़ा में है, और उसके कार्यकर्त्ता डा० त्रिवेदी हैं।

मुस्लिम दलों में मुस्लिम लीग, जमायत-उल-उलेमा और मोमीन पार्टी का राजनीति में हाथ था। परन्तु, सर्वत्र प्रधानता लीग की ही थी और प्रायः वे ही लोग चुनाव मे सफलीभूत होते थे। पर अब इस दल का काम भी स्थगित है।

अधिकार में आने के बाद लोगों के बीच कॉंगरेस की कटु आलोचना होने लगी है सही, पर, अभी भी वह एक बलवती संस्था है जिसका अपना ६३ वर्षो का गौरवपूर्व इतिहास है। समाज के सभी तरह के लोग इसमे सम्मिलित है और इसकी धाक जनता के बीच आज भी कायम है।

मुंगेर जिले की चार विभूतियाँ

स्वर्गीय माननीय शाह मोहम्मद जुब्बैर साहब

श्री देवनारायण प्रसाद जायसवाल, बी० ए० [आनर्स]

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की सब से बड़ी विशेषता यह रही है कि इस युद्ध मे हिन्दू और मुसलमान दोनों ने बराबर भाग लिया है। स्वतत्रता की वेदी पर अगर हिन्दुओं ने हँसते-हँसते प्राण उत्सर्ग कर दिये, तो मुसलमानों ने भी खुशी-खुशी अपनी जान कुर्बान कर दी। स्वतन्त्रता के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनो का खून एक धारा मे मिल कर बहा। आजादी के तराने सिर्फ हिन्दुओं के कंठ से ही नही फूटे, बल्कि मुसलमानों के गले से भी निकले। और यही कारण है कि दोनों के सम्मिलित स्वर ने एक ऐसा घोष पैदा किया जिससे ब्रिटिश साम्राज्य की ईंट-ईंट हिल गई। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के जर्जर शरीर से जो रक्त की धारा निकली, उसमे अगरेजी सामतशाही तिनके की तरह बह गई। आज देश मे स्वतन्त्रता के स्वर्णिम प्रभात का आगमन हुआ है। मातृभूमि का अणु-अणु मुखरित है। पर, फिर भी देश की उल्लसित जनता अपने उन अमर शहीदो को भूल नही गई है जिनकी चिता के भस्म से ही स्वतन्त्रता का पौधा पनप सका है। भारत के अनेकानेक शहीदों मे स्व० माननीय शाह मोहम्मद जुब्बैर साहब का नाम चिरस्मरणीय है।

१८८० ई० मे स्व० माननीय शाह मोहम्मद जुब्बैर साहब का जन्म, गया जिला के अरवल नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम था शाह मोहम्मद ईशाक हुसैन। गाँव मे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी तथा हिन्दू और मुसलमान दोनो इनका सम्मान करते थे।

जुब्बैर साहब का बाल्यकाल गाँव मे ही बीता। यहा की शिक्षा समाप्त कर, १६०८ ई० में, कानून की ऊँची शिक्षा पाने के लिए वह इङ्गलैण्ड गये। तीन साल के बाद, १६११ ई० मे बैरिस्टर बनकर वह भारत वापस आ गये और पटने में अपनी बैरिस्टरी आरम्भ की।

बैरिस्टरी करते हुए भी उन्होने सार्वजनिक कार्यो मे बड़ी दिलचस्पी दिखाई। उस समय टर्की पर इटली तथा अन्य बालकन राष्ट्रों ने आक्रमण किया था। जुब्बैर साहब ने इसका घोर विरोध किया। इटली की साम्राज्य-लिप्सा ने उन्हे अत्यधिक उत्तेजित कर दिया और फलस्वरूप अपनी विरोधात्मक भावनाओं को ये जनता मे फैलाने लगे। यहाँ के अङ्गरेज अधिकारियो ने उनके इस कार्य का बहुत विरोध किया। पर फिर भी शाह जुब्बैर साहब का साहस ज्यो का त्यो बना रहा। एक साम्राज्य-लोलुप राष्ट्र का इस तरह निर्भयतापूर्वक विरोध करने के कारण जनता की दृष्टि मे ये बहुत ऊँचे उठ गए।

इसी बीच अपनी ख्याति का इन्हे एक दूसरा सुयोग भी प्राप्त हुआ। पटने ने अखिल भारतीय कॉगरेस समिति के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन हुआ। स्व० माननीय मौलाना मजहरूल हक इस अधिवेशन की स्वागत-समिति के प्रधान थे। उनके नेतृत्व में जुब्बैर साहब ने कॉगरेस-स्वयसेवकों का

सफलतापूर्वक सगठन किया और इस प्रकार उन्हें देश के गण्य-मान्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ ।

१९१८ ई० मे ये पटना से मुंगेर चले आये और यहीं इन्होंने अपनी बैरिस्टरी प्रारम्भ की। कौन जानता था कि यह नवागन्तुक एक दिन निकट भविष्य में जिला की जनता का पूज्य बन जायगा ? किसे विदित था कि यह अजनबी व्यक्ति एक दिन इस जिला के इतना नजदीक आ जायगा कि फिर कभी स्मृति पर से नीचे उतरेगा ही नहीं ।

इनका राजनीतिक जीवन १९१८ ई० के "आरमिस्टिस डे" की घोषणा से आरम्भ होता है। जर्मनी पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में अंगरेज सरकार अपने साम्राज्य में आनन्दोत्सव मना रही थी। शाह जुबैर साहब के दृष्टिकोण में इस विजयोत्सव का सम्बन्ध भारतीय जनता से नहीं था। विजय जर्मनी पर हुई थी अङ्गरेजों की, न कि भारतीयों की, और इसीलिये अङ्गरेज विजयोल्लास से नाच रहे थे। पर सन्तप्त और शापित भारतीय जनता के लिये इस विजय में कौन-सा आनन्द था ? यही कारण था कि शाह जुबैर साहब ने जनता को उत्सवमें सम्मिलित होने से रोका। इस असहयोग-आन्दोलन ने उनके जीवन को पूर्णतः क्रान्ति की ओर मोड दिया और वे उसीकी धारा में बह चले। उन्होंने अपना पेशा छोड़ दिया तथा अङ्गरेजी पोशाक का भी परित्याग कर दिया।

आजादी की लड़ाई की राह पर शाह जुबैर साहब कुछ ही आगे बढ़े थे कि बिहार-केसरी श्री श्रीकृष्ण सिंह ने उनका साथ दिया। राजनीतिक क्षेत्र में डा० श्रीकृष्ण सिंह का सहयोग उनके लिए बड़ा हितकर साबित हुआ। इस तरह वे परस्पर एक दूसरे के बहुत घनिष्ट बन गए। समूचे जिला ने शाह जुबैर के नेतृत्व की सराहना की और इनके योग्य नेतृत्व में ही जिला कांगरेस ने ऐसी उन्नति तथा ख्याति प्राप्त की जो प्रान्त के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। जब आन्दोलन अपने उग्रतम रूप में था, तभी बिहार-केसरी तथा अपने अन्य साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिये गये और इन्हें एक वर्ष का कारावास भोगना पड़ा। कारागृह से निकलने के पश्चात् इनका स्वास्थ्य एकदम गिर गया। हृदय की बीमारी ने भी इन्हें आक्रान्त कर दिया। अपने अस्वस्थ्य शरीर से भी ये कांगरेस का काम उसी उत्साह तथा साहस से करते रहे जिस उत्साह तथा साहस से उसका काम ये पहले किया करते थे। ये १९२३ ई० में पुरुलिया में होनेवाली बिहार प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति मनोनीत हुए।

मुंगेर जिला बोर्ड के इतिहास में इनका नाम १९२४ ई० से आता है। जब कांगरेस ने शासन पर अधिकार कर लिया, तब बिना किसी विरोध के एकमत से ये जिलाबोर्ड के चेयरमैन के पद पर सुशोभित हुए और माननीय श्रीकृष्ण सिंह वाइसचेयरमैन मनोनीत हुए। इन दो निस्स्वार्थ देश-सेवकों में जैसा दृढ़ प्रेम था, वैसा अब बहुत कम पाया जाता है। शाह जुबैर साहब मृत्युपर्यन्त डा० श्रीकृष्ण सिंह को अपना छोटा भाई समझते रहे और उन्हें उसी तरह ही प्यार करते रहे। माननीय श्रीकृष्ण सिंह को भी उनके व्यक्तित्व तथा नेतृत्व पर पूर्ण भरोसा तथा अत्यधिक श्रद्धा थी।

१९२५ ई० मे प्रान्त ने सबसे अधिक सम्माननीय पद इन्हें प्रदान किया और वह था विहार-प्रान्तीय काँगरेस का सभापतित्व। १९२६ ई० में कॉगरेस टिकट पर ये कौसिल आफ स्टेट के लिये सदस्य निर्वाचित हुए। प्रतिक्रियावादी तथा सामन्तशाही मुसलमानो तथा पदाधिकारियों के भगीरथ प्रयत्न के पश्चात् भी ये अत्यधिक संख्या के द्वारा निर्वाचित हुए। कौसिल औफ स्टेट में कांगरेस के प्रतिनिधि के रूप मे ये ही एक मुस्लिम सदस्य थे। जब कॉगरेस ने व्यवस्थापिका सभा से अलग हो जाने का विचार किया, तब इन्होने कौसिल की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। दस वर्ष पहले जिस उद्देश्य को लेकर इन्होंने अपना युद्ध आरम्भ किया था, उसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु १९३० ई० के अक्टूबर मे इन्होने अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये।

ठीक उसी दिन, जिस दिन शाह जुव्बैर साहब की प्राण-लीला समाप्त होने वाली थी, डा० श्री-कृष्ण सिंह कारागृह से मुक्त होकर मुगेर पधार रहे थे। शाह जुव्बैर साहब यद्यपि अत्यन्त बीमार थे, फिर भी स्वयं ड्राइवर को बिहार-केसरी को लाने के लिये गाड़ी स्टेशन ले जाने को कह रहे थे। बिहार-केसरी के प्रति जो इनका चिर-संचित स्नेह था, वह अन्तिम क्षण मे फूट पड़ा। पर कौन जानता था कि उनका अन्त समीप आ रहा है। सभा के विसर्जन के पश्चात् माननीय श्रीकृष्ण सिंह अपने रोग-ग्रस्त भाई तथा गुरु को देखने के लिये गये। पर डा० श्रीकृष्ण सिंह के पहुँचने के कुछ क्षण पहले ही मुगेर के सर्वप्रिय नेता ने अन्तिम साँस ली। निर्माता का नियम कठोर होता है। कुछ ही मिनटोंके विलम्ब के कारण दो अभिन्न मित्र एक दूसरे से मिलने से वंचित रह गये। देश का सच्चा सेवक हमेशा के लिये सो गया।

माननीय शाह मोहम्मद जुव्बैर साहब अपने चरित्र के दृढ़ तथा व्यक्तित्व के प्रभावशाली मनुष्य थे। उनके विचार बहुत ही उच्च तथा संयत थे। वे निर्भीक तथा साहसी थे। उनकी एकनिष्ठा, सच्चाई तथा आकर्षक भावनाओ ने उन्हें सभी वर्गों के लोगो का प्रिय-पात्र बना दिया था। राजनैतिक मतभेदों के होते हुए भी सभी विचारों के व्यक्ति उनका हृदय से सम्मान करते थे। अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण ही ये जिला-कॉगरेस को बुराइयों से बचाते रहे तथा जीवनपर्यन्त उसमे विद्वेष और विभिन्नता के कीटाणुओ को पैदा होने नही दिया। जब तक ये जीवित रहे, इन्होने सफलतापूर्वक संस्था को एकता के सूत्र से आबद्ध रक्खा और व्यक्तिगत विद्वेष, व्यक्तिगत स्वार्थ तथा अधिकार-लिप्सा का संस्था मे कभी प्रवेश नही होने दिया। और यही कारण है कि कॉगरेस की कीर्ति इनके नेतृत्व मे अक्षुण्ण बनी रही। पर विधाता के क्रूर हाथों ने इस पुष्प को बहुत शीघ्र डाली से अलग कर दिया, अन्यथा इसके परिमल से प्रान्त का ही नही, प्रत्युत् देश का कोना-कोना सुवासित हो जाता। फिर भी हमे विश्वास है कि उनकी दिवंगत आत्मा अपनी मातृभूमि को दासता के पाश से मुक्त देख कर प्रसन्न होती होगी।

———:※:———

स्वर्गीय रफीउद्दीन अहमद रिजवी

मुंगेर जिले की राजनीतिक प्रगति के इतिहास में माननीय मौलवी सैयद रफीउद्दीन अहमद रिजवी साहब का नाम सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। इनका जन्म पहली जुलाई १८९५ ई० को, अमरथ नामक एक छोटे से गांव में, हुआ था।

अमरथ एक बहुत पुराना गांव है। मुंगेर जिला के जमुई थाना से दो तीन मील पश्चिम में यह बसा हुआ है। पठान साम्राज्य के विस्तार के समय, जब कि यह देश रसातल को जा रहा था, उसी समय से यह गांव अपना अस्तित्व रखता आया है। सिकन्दरा के नवाब की चट्टी रहने के कारण इस गांव में तथा इसके आस पास मुसलमान ही अधिक हैं। इन मुसलमानों में सैयदों, मलिकों तथा पठानों की विभिन्न शाखायें सम्मिलित हैं। पर, इन मुस्लिम घरानों में सब से प्रतिष्ठित रिजवी खानदान है, जिसकी प्रतिष्ठा बहुत दिनों से है। इसी रिजवी खानदान के एक दीप्तिपूर्ण रत्न हमारे स्वर्गीय माननीय सैयद रफीउद्दीन अहमद रिजवी थे।

इनका बचपन गांव ही में बीता। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा मुंगेर में हुई। १९०९ ई० में, प्रथम श्रेणी में, आपने मुंगेर ट्रेनिंग एकेडेमी से प्रवेशिका की परीक्षा पास की। वह बहुत ही कुशाग्र-बुद्धि और अध्ययनशील थे। १९१२ ई० में इन्होंने आई० एस-सी० तथा १९१५ ई० में बी० ए० की डिगरी प्राप्त की। बी० ए० तक की शिक्षा आपने अलीगढ़ में पाई थी। १९१७ ई० में इलाहाबाद से एल-एल० बी० की डिगरी प्राप्त कर ये मुंगेर लौट आये और यहां ही इन्होंने १९१८ ई० से वकालत प्रारम्भ कर दी।

वकालत के व्यवसाय में इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। वह बड़े वाक्पटु तथा मधुरभाषी थे। यही कारण था कि अपने मुवक्किलों को इन्होंने कभी असन्तुष्ट नहीं होने दिया और अपनी सहृदयता तथा न्याय प्रियता के कारण सभी के हृदय पर शासन करते रहे। गरीब तथा अमीर, सभी इन्हें हृदय से चाहते थे। दीवानी और फौजदारी, दोनों ही अदालतों में अपने पेशे में इनका अच्छा नाम था।

जीवन संघर्ष में रत रहते हुए भी देश-सेवा से इनका सम्बन्ध बराबर बना रहा। व्यावसायिक उलझनों के बीच भी अपने देश की दशा का दयनीय चित्र इनके नेत्रों से क्षणभर के लिये ओझल न हुआ। यही कारण है कि १९२१ ई० से ही प्रान्त के प्रायः सभी राजनीतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी आंदोलनों और कार्य प्रणालियों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। कई वर्षों तक ये मुंगेर वकालतखाना के मन्त्री रहे। १९२४ ई० से ही १९४१ ई० पर्यन्त ये मुंगेर जिला बोर्ड के निर्वाचित सदस्य रहे। तत्पश्चात् काँगरेस के आदेशानुसार इन्होंने त्यागपत्र दे दिया। १९३० ई० में ये मुंगेर जिला बोर्ड के वायस चेयरमैन निर्वाचित हुए तथा १९४१ ई० पर्यन्त उक्त पद से उत्साह एवं अध्यवसाय के साथ बोर्ड की सेवा करते रहे। १९४१ ई० में इन्होंने चेयरमैन के पद को सुशोभित किया और उसी साल अक्टूबर में कांगरेस के आदेशानुसार इस पद का त्याग भी कर दिया।

१९३६ ई० में कठिन प्रतिद्वन्दिता के बीच ये स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में बिहार प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। परन्तु, सदा वे कांगरेस का ही साथ देते रहे। राजनीतिक

विचारों मे साम्य होने कें कारण उस समय काँगरेस और स्वतन्त्र पार्टी का उद्देश्य एक था। वह जब तक इस सभा के सदस्य रहे, हमेशा जनता-जनार्दन की सेवा के भाव हृदय मे छुपाये रहे तथा उसीके हित-कार्य मे संलग्न रहे। जहाँ तक हो सका, इन्होने उन्ही विधानो तथा कानूनों का समर्थन किया जो अधिक से अधिक जनता की भलाई के उपयुक्त थे। यही कारण था कि व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के बीच इनका काफी सम्मान था। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता के अतिरिक्त, विहार गवर्नमेन्ट रिट्रेन्चमेन्ट कमिटी, टेक्स्ट बुक कमिटी, मुगेर म्युनिस्पल बोर्ड, जिला, प्रान्तीय तथा अखिल भारतवर्षीय काँगरेस कमिटी के भी ये कई बार सदस्य रह चुके थे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के अवसर पर, गत युद्ध के विरुद्ध नारे लगाने के फलस्वरूप, १९४१ ई० की १२ वी दिसम्बर को मुंगेर तिलक मैदान मे ये गिरफ्तार कर लिये गये और इन्हे आठ महीने का कठोर कारावास दिया गया।

इस जेल-यात्रा से ही इनका स्वास्थ्य क्रमश: बिगड़ने लगा। हजारीबाग जेल मे ही इन्हे पेट-सम्बन्धी असाध्य रोग हो गया। पैरोल पर आप को मुक्त कर देने की सरकारी आज्ञा हुई; किन्तु, अपने सम्मान के विरुद्ध समझ कर इन्होने इसे नही माना। इधर आपकी दशा दिनानुदिन विगड़ती ही गई और सरकार की चिन्ता भी क्रमश. बढ़ती गई। अन्त मे इन्हे बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिया गया।

पर इस रोग ने एक बार इन्हे पकड़ कर फिर मृत्युपर्यन्त इन्हे नही छोड़ा। जेल से मुक्त होने के पश्चात् कई वर्षो तक बराबर आप उसी रोग से आक्रान्त रहे। आपका स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता ही गया और अन्त में सिर्फ उनचास साल की उम्र मे ही १९४४ ई० की छठी मार्च को इन्होने इस असार ससार को छोड़कर उस लोक को प्रयाण किया।

इनकी सज्जनता तथा निस्स्वार्थ सेवा इन्हे साधारण जन से बहुत ऊपर उठा देती है। ये बड़े अल्पभाषी, शान्त और गम्भीर थे। इनके व्यक्तित्व से रोब टपकता था और इनके मुखमण्डल पर तेज दमकता था। ये अपने कर्त्तव्य के बड़े पक्के थे। ईमान को ये बड़ी चीज मानते थे और सभी पर विश्वास रखते थे। अपने साथ काम करने वालो से ये प्रेमपूर्वक काम लेते थे। ये अच्छे अनुशासक थे। धार्मिक भी ये पूरे थे। परमात्मा की प्रार्थना और कुरान का पाठ इनका दैनिक कार्य था। राजनीति तथा धर्म का पूर्ण समन्वय इनके व्यक्तित्व मे पाया जाता था। सब श्रेणी के लोगों तथा सरकार से इनको पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त थी। १९३० ई० मे इनको पब्लिक प्रोसिक्यूटर का पद प्रदान किया गया। पर शर्त यह थी कि ये जिला काँगरेस कमेटी के सदस्य नहीं रह सकते। इन्होने इस शर्त को नही माना और उस पद को ठुकरा दिया। त्याग का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

स्वतन्त्रता की वेदी पर बलिदान हो जानेवाले अनगिनत देशभक्तो मे इनका भी एक स्थान है। जीवनपर्यन्त ये स्वातन्त्र्य-सग्राम मे लगे रहे और देश को स्वतन्त्रता की अन्तिम मंजिल तक पहुँचा दिया। पर दुर्भाग्यवश अपनी आँखो से ये देश को स्वतन्त्र होते नही देख सके। फिर भी हमे विश्वास है कि भारत माता को बन्धनों से मुक्त देख कर इनकी स्वर्गीय आत्मा आज अवश्य प्रसन्न होती होगी।

स्वर्गीय माननीय नेमधारी सिंह

बुद्ध की करुणा से अभिषिक्त प्रदेश मे विभूतियो की कमी नही, जब कि उस प्रदेश को राष्ट्र पिता बापू की कर्मभूमि तथा देशरत्न की जन्मभूमि होने का गौरव भी प्राप्त है। विहार के वातावरण में अभी तक उन सपूतो की कीर्तिगाथा स्मरणीय है जिनकी स्थूल काया बहुत दिन हुए यहा की मिट्टी में मिल कर एकाकार हो गई।-विहार के इन्ही सपूतों में स्वर्गीय माननीय नेमधारी सिंह जी महोदय का नाम बडे गर्व के साथ लिया जाता है।

गुलाब की सुरभि जिस प्रकार कांटो में मिलती है उसी प्रकार महापुरुषो का आविर्भाव दरिद्रता की गोद में होता है। अन्य महापुरुषो की तरह नेमधारी बाबू का भी प्रादुर्भाव एक गरीब की जीर्ण-शीर्ण झोपडी में हुआ था। इनका जन्म गोगरी थानान्तर्गत चौथा नामक ग्राम मे १८७३ ई० में हुआ था। इनके पिता श्रद्धेय स्वर्गीय बाबू राजाराम सिंह जी एक निर्धन परन्तु प्रतिष्ठित राजपूत परिवार के थे। इनके लालन-पालन का भार पूर्ण रूप से इनकी सती साध्वी माँ पर ही था, जो एक आदर्श महिला थी। बाल्य काल से ही माता के स्नेह की शीतल छाया मे पलने के कारण इनके हृदय में माता की ममता तथा करुणा के स्रोत फूट पडे और फलस्वरूप इनका सम्पूर्ण जीवन ममतापूर्ण तथा करुणाप्लुत रहा।

बचपन से ही ये बडे अध्ययनशील थे। बाल्यक्रीडाओ की चपलताओं के बीच भी इनमें कुछ ऐसे लक्षण प्रतिभासित होते थे जो भविष्य में इनके होनहार होने की ओर सकेत करते थे। इनके पिता सपरिवार खगडिया में आकर बस गये थे और इसीलिये वही इनको प्रारम्भिक शिक्षा दी गई। तत्पश्चात् प्रवेशिका की शिक्षा इन्होने मुगेर मे पायी। कलकत्ता विश्वविद्यालय से आप चतुर्थ स्थान प्राप्त कर प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। एफ० ए० की परीक्षा भी आपने प्रथम श्रेणी में पास की यद्यपि तर्कशास्त्र की आपकी परीक्षा पुस्तिका खो गयी थी। बी० ए० में आपको 'आनर्स' प्राप्त हुआ। इसके बाद इन्होने कुछ दिनो तक स्कूलो में अध्यापन का कार्य बडी सफलतापूर्वक किया। अन्त में पूर्ण सफलता के साथ वकालत की डिगरी प्राप्त कर ये मुगेर वापस लौट आये और वही वकालत करने लगे।

एक वकील के जीवन की जो-जो बुराइया होती है उन सभी से ये परे रहे और यही कारण था कि थोडे ही दिनो में इन्होने सभी समुदायो के बीच लोकप्रियता प्राप्त कर ली। इनकी सादगी, पूर्ण-निष्ठा, सच्चरित्रता तथा दुर्लभ ईमानदारी ने सब पर गहरा प्रभाव डाल रखा था। इनका गौर वर्ण, नाटा कद, सुडौल तथा शान्त मुखमण्डल प्राय सब को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। स्वभाव की उत्कृष्टता तथा शरीर की पुष्टता ने इनके व्यक्तित्व में जादू का प्रभाव भर दिया था। मिष्ट एव अल्प-भाषिता ने तो इनकी ख्याति में और भी चार चाद लगा रखा था। फलस्वरूप अपने पेशे के साथ ही

साधारण मे भी इन्होने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। गार्हस्थ्य जीवन मे रह कर भी इन्होंने साधु-सा जीवन व्यतीत किया और इसीलिये ये देह रहते विदेह कहलाये।

लोकसेवा इनके जीवन का प्रधान व्रत था। जननी जन्मभूमि इनकी आराधना की प्रतिमा थी और स्वतन्त्रता इनका लक्ष्य था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के हित प्रारम्भ से ही इन्होने कॉंगरेस का साथ दिया और अन्त तक उसके सदस्य बने रहे। १६२१ ई० से ही जब-जब सक्रिय आन्दोलन का अवसर आया, इन्होंने उत्साह-पूर्वक उसमे हाथ बंटाया। १६२१ ई० के असहयोग-आन्दोलन के फलस्वरूप बिहार-केसरी माननीय श्रीकृष्ण सिंह तथा उनके अन्य साथियो के जेल चले जाने पर जिला का सारा भार इन्होने ही अपने सबल कन्धो पर उठा रखा था। कई वर्षो तक ये जिला कॉंगरेस कमेटी के सभापति के पद पर आसीन रहे। मातृभूमि के आह्वान पर कई बार उसे दासता के बन्धन से मुक्त करने के प्रयत्न मे आपको कारागार जाना पड़ा। परन्तु इस पर भी आपका साहस नही छूटा प्रत्युत कारागृह की शृङ्खलाओं की तरह उसने भी इन्हे बलपूर्वक जकड़ लिया। राष्ट्रपिता महात्मा गॉंधी के ये अनन्य पुजारी थे और उनके द्वारा निर्धारित नियमों का इन्होने अक्षरश. पालन किया। स्वातंत्र्य-संग्राम के सच्चे सैनिक की तरह उस महान सेनापति के आदेशो का इन्होने जीवन भर पालन किया।

अकर्मण्य बैठा रहना इनको पसन्द नही था और इसीलिये ये सदा अपने को कार्य-व्यस्त रखते थे। नियमपूर्वक प्रतिदिन स्वयम् धुनकी पा रूई धुनना, चर्खा कातना और गीता-पाठ करना ही इनका एकमात्र व्यसन था। ये अपने हाथ के कते सूत का ही कपडा सदा पहना करते थे। आत्म-निर्भरता अथवा स्वावलम्बन का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ? जीवन के विभिन्न गुरुतर कार्यो के बीच इन सामान्य कार्यो का प्रतिपादन कम महत्व नही रखता।

मुगेर शहर की जनता की तो इन्होंने अनुपमेय सेवा की है। १६३४ ई० के भूकम्प मे जिस समय सम्पूर्ण नगर ध्वस्त हो गया था उस समय जिस धैर्य तथा उत्साह के साथ इन्होंने पीड़ित जनता की सेवा की, वह उसके हृदय-पट पर सर्वदा अंकित रहेगी। मुगेर का पुनर्निर्माण हो चुका है फिर भी यहाँ के खडहरो तथा भव्य राजप्रासादों मे उनकी सेवा के इतिहास छिपे पड़े है।

मुगेर जिला बोर्ड का १६ वर्षो तक सदस्य रह कर तथा ४ वर्षो तक चेयरमैन का आसन ग्रहण कर भी इन्होने मुगेर की जनता की अपूर्व सेवा की जो बोर्ड के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी। वृद्धावस्था मे भी जिस सच्ची लगन तथा पूरी ईमानदारी से इन्होने मुगेर जिला बोर्ड का कार्य-संचालन किया उससे जनता तथा बोर्ड के कर्मचारी सभी पूर्ण रूप से इनसे सन्तुष्ट रहे। इनके अधीन बोर्ड की बड़ी उन्नति हुई और उसमे किसी प्रकार की बुराई का प्रवेश न हो सका।

वृद्धावस्था मे कई बार जेल जाने तथा जनहित कार्यो मे लीन रहने के कारण रोगो ने आपको धर दबाया। अत: उनकी चकित्सा के लिये आपको पटना जेनरल अस्पताल की शरण लेनी पड़ी। परन्तु दुर्भाग्यवश अस्पताल मे ही १६४५ ई० के मार्च मे इनका देहावसान हो गया। इनका स्मारक संगमरमर के

पत्थरों या ताव की मूर्तियों से निर्मित नहीं हुआ है, वल्कि इनकी जन सेवा ही इनका चिरस्मरणीय स्मारक है।

इनका पारिवारिक जीवन बडा ही सुखमय था। भ्रातृभक्ति, भ्रातृप्रेम और अपनी सन्तान को समुचित शिक्षा देने की चिन्ता इनकी विशेषता थी। इनके ज्येष्ठ पुत्र डा० रामेश्वर प्रसाद सिंह जी विलायत से खनिज सम्बन्धी ऊँची शिक्षा प्राप्त कर इन दिनों मध्यप्रांतीय सरकार के अधीन एक उच्च पद पर कार्य कर रहे हैं।

देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में आपने जो भाग लिया, वह स्तुत्य है। देश को स्वतन्त्रता के द्वार तक पहुँचाने में इनका भी एक विशिष्ट हाथ रहा। अपने प्रयत्नों के फल का स्वाद इन्हें नहीं मिला और इसी बात का दुःख है। देश को बंधन मुक्त करने के पहले स्वयं इनकी आत्मा बंधन-मुक्त हो गई।

---

[८]

स्वर्गीय धर्मनारायण सिंह

श्री शिवचन्द्र प्रताप नारायण

संवत् १९४१ विक्रम का आश्विन महीना। शुक्ल पक्ष जब रात और दिन दोनों ही प्रकाशमय होते हैं। इसी शुक्ल पक्ष की द्वादशी का एक अमर प्रकाश-रश्मि माधोपुर, मुंगेर के आँगन में उतरी—बाबू धर्मनारायण सिंह का आविर्भाव हुआ।

सन्तान अपनी मातृ पिता की छाया होती है। बाल-धर्मनारायण सिंह भी अपने माता पिता के व्यक्तित्व के ही साकार और सजीव रूप थे। उनके पिता श्री द्वारका प्रसाद ने उनमें अपने उच्चादर्शों की झाँकी देखी और माता ने अपने अरमानों की दुनिया। पर काश! वे अपनी तमन्नायें पूरी होते देख सकते। अभी मुश्किल से एक वर्ष बीत सका होगा कि पिता छोड़ कर चल बसे और कुछ दिनों बाद ही माता ने भी उनकी ही राह ली। जैसे वज्रपात हो गया—उस छः साल के नन्हे से सुकुमार शिशु पर। मगर सोने का निखरा हुआ रूप तो तपने के बाद ही सामने आता है।

खैर, माँ की मृत्यु के बाद लालन पालन का भार उनकी बड़ी बहन पर पड़ा। धर्मनारायण जी की उम्र बहुत कम थी पर थे बड़े चुस्त, चालाक और चञ्चल। खेल-कूद और घुड़सवारी में उनके प्राण बसते थे और वंशी बजाते फिरने की तो जैसे बीमारी ही थी। कहते हैं, उनका घोड़ा हवा से बातें करता था। सारे शहर में अब तक कोई जोड़ न मिला उसका। एक दिन खेल कूद में किसी ने एक पत्थर दे मारा जिसके फलस्वरूप उनकी एक आँख निकम्मी हो गई। सेवा करना उनका स्वभाव-सा था और झूठ

बोलते तो किसीने कभी सुना ही नही। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण शिक्षा "प्राइमरी" तक ही हो सकी। पर महान आत्माओं के सामने परिस्थितियो की दाल नही गलती। कैसी-कैसी परिस्थितियाँ आई और चली गई। दिन-रात की श्वेत और श्यामल परियाँ उड़ती रही—अवाध गति से : और देखते ही देखते जीवन के १७ वर्ष वीत गये। विवाह-संस्कार हुआ। स्वच्छन्द कधो पर घर-परिवार का भार आ पड़ा। जीविका की समस्या उठ खड़ी हुई। वैश्य परिवार में जन्म लेने के फलस्वरूप स्वभावत: आप व्यापार की ओर झुके। सोने-चाँदी का कारवार शुरू किया। मगर जिन्दगी का मिशन जो दूसरा था।

सहसा एनी वीसेन्ट द्वारा स्थापित "थियोसोफिकल सोसाइटी" के प्रचारक से आपका परिचय हो गया। फिर तो किताबों का शौक वढ़ा, और आपने दुनिया भर की अच्छी-अच्छी किताबे पढ़ डाली। किताबों की एक अच्छी खासी लाइब्रेरी-सी हो गई जो आज भी उनके स्मृति-चिन्ह "श्री धर्मनारायण पुस्तकालय" के रूप मे मौजूद है। गीता की अमर वाणी भी कानो मे गूंजी और सोये हुए सस्कार जग उठे। "निष्काम कर्मयोग" के सन्देश से प्रभावित हो आपने जन-सेवा के क्षेत्र मे पदार्पण किया। अव राजनीति जीवन का प्रधान अंग वन गयी और व्यापार आदि गौण हो गये।

१९१४ ई० का जमाना आया। यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया। गाँधी जी ने जनता से लड़ाई मे चन्दा देने की अपील की। चन्दा वसूली मे आपका वहुत वड़ा हाथ रहा। लड़ाई समाप्त होने के वाद "रौलेट एक्ट" के विरुद्ध गाँधी जी के नेतृत्व मे असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ। फिर क्या था? कूद ही तो पड़े आप। उसमे आपने जिस त्याग और अटूट देश-भक्ति का परिचय दिया, वह आजादी के सुनहले इतिहास की अक्षय निधि है। विदेशी-वस्तु-वहिष्कार के रूप मे आपने अपनी दूकान के आठ हजार रुपये के कपड़े तीन हजार मे बेच डाले और न जाने कितने बेशकीमत कपड़े वीच चौराहे पर अग्निदेव को समर्पित कर डाला। लोगो ने विस्मय-विस्फारित आँखो से देखा और दाँतो तले अँगुली दवा ली। पर वे तो आजादी के दीवाने थे। उन्हे क्या? शरीर पर खादी डाल ली, और घर-परिवार को ठुकराकर देश-सेवा के लिये निकल पड़े।

आपने गाँव मे एक पंचायत-सी कायम की थी, जिसमे हिन्दू, मुसलमान, हरिजन सभी परस्पर मिल-जुल कर काम किया करते। पर दुर्भाग्यवश आन्दोलन छिड़ने के वाद ही वह सगठन प्राय: छिन्न-भिन्न सा हो गया। आपके साथ-साथ आपके दो साथियो (शाह मुहम्मद जुब्वैर और श्री श्रीकृष्ण सिह) पर भी मुकदमा चला। एक-एक साल कैद की कड़ी सजा हो गई। उसके वाद से तो जेल घर वन गया और सेल मजाक। जेल से छूटने के वाद आप अपना एक-एक क्षण काँगरेस के काम मे ही देने लगे। माधोपुर, मुंगेर का वारडोली कहलाने लगा। प्राय. जितने नेता आते, सव इन्ही के यहाँ ठहरते। १९२९ ई० मे मुंगेर के विहार-प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन की सफलता का सारा श्रेय आपको ही है। इसी अवसर पर उन्होने स्थानीय तिलक मैदान का निर्माण भी किया। पर देश-सेवा के इस दीवानेपन के फलस्वरूप उत्तरोत्तर उनके घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। देख-रेख के अभाव मे सारा व्यापार-

रोजगार चौपट हो गया। कर्ज लेने पड़े। पच्चास हजार के देनदार हो गये। फिर भी रवैया ज्यों का त्यों रहा। कोई अंतर न पड़ा।

१९२९ ई० ही में पं० नेहरु के सभापतित्व में लाहौर कांगरेस का अधिवेशन हुआ। वहाँ आपको पण्डित जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक नया बल मिला। पर अभी वहाँ से घर आये ही थे कि फिर सरकार का मेहमान बनना पड़ा। इस बार आप पटना कैम्प जेल के "सी" डिवीजन के राजनैतिक बंदी हुए। पूरे छः मास की सजा भुगतनी पड़ी। पर उसके बाद भी चैन कहाँ? १९३२ ई० में जब सत्याग्रह की लड़ाई छिड़ी तो इन्हें इस बार डेढ़ साल की कड़ी सजा के साथ-साथ १०००) रु० जुर्माने भी देने पड़े। इस प्रकार आपने अपने छोटे से जीवन का एक-एक क्षण देश की वेदी पर उत्सर्ग कर दिया।

आप जन्म से ही एक सच्चे स्वयंसेवक थे और इस नाते स्वयंसेवकों से विशेष प्रेम रखते थे। कुछ दिनों तक इस विभाग के जी० ओ० सी० (कप्तान) भी रहे। आपके संरक्षण में संगठन बड़ी तेजी से बढ़ा—दिन दूना, रात चौगुना। कांगरेस में एक मजबूत और सुसंगठित स्वयंसेवक विभाग हो—यह उनकी उत्कट अभिलाषा थी। संभवतः यह उनके ही भगीरथ प्रयत्न और तीव्र इच्छा शक्ति का प्रतिफल है कि आज मुंगेर के कोने-कोने में "कांगरेस सेवादल" की शाखायें जाल की तरह बिछती चली जा रही हैं। उनके सुनहले सपने सत्य होते दीख पड़ रहे हैं। काश! वे आज हमारे बीच होते!

पर हाय रे, भूकम्प!! भूकम्प क्या था,—उस महान विभूति की अग्नि-परीक्षा थी। घर द्वार विध्वस्त होते जा रहे थे। चारों ओर से चीखने चिल्लाने की करुण पुकारें आ रही थीं। उस दृश्य से हृदय जैसे विदीर्ण हो उठा। प्राणों की बाजी लगा दी उन्होंने। कितनों की जानें बचायीं और अन्त में अपने पड़ोस के एक मारवाड़ी के धराशायी होते हुए मकान में घुस पड़े, दो छोटे बच्चों को गोद में लिया और एक वृद्ध स्त्री को आने का संकेत कर आगे बढ़े। ज्यों ही बाहरी दरवाजे तक पहुँचे कि ऊपर की छत गिरी और दोनों बच्चों को गोद में लिये उस वृद्धा स्त्री के समेत उसी के नीचे दबकर प्राण विसर्जन कर दिया। मरते-मरते भी अपनी मातृभूमि की साढ़े तीन हाथ जमीन पर कब्जा कर लिया। मिट्टी हटाये जाने के बाद का दृश्य बड़ा ही रोमाञ्चकारी था। उस अमर शहीद के मृत शरीर पर मारवाड़ी के वे दोनों बच्चे मरे पड़े थे और पीछे उस निरीह वृद्धा की लाश। देखनेवालों के मुंह से बरबस आह निकल पड़ती थी और आँखों से आंसू की बूंदें। दुर्भाग्यवश अथवा सौभाग्यवश उनकी पत्नी भी उसी तरह धरती की गोद में ही दबकर समाधिस्थ हो गईं। परिवार में बच्चों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं बच रहा।

सन्ध्या का समय था। एक ही चिता पर पति पत्नी दोनों की लाशें जल रही थीं—धू-धू कर। लाल पीली लपटें उठ-उठ कर आकाश में विलीन होती जा रही थीं। चारों ओर घोर नीरवता परिव्याप्त थी।

दीपक स्वयं जल-जलकर जग को प्रकाश देता है और बुझ जाता है—यही है उसके जीवन की सार्थकता।

—— o ——

श्रीकृष्ण-सेवा-सदन, मुंगेर के शिलान्यास का एक ग्रुपचित्र

[मध्य में बिहार के भूतपूर्व गवर्नर श्री जयरामदास दौलतराम, दाईं ओर माननीय माल-मन्त्री श्रीकृष्णवल्लभ सहाय तथा आगे से श्री त्रिवेणी सिंह, आई० सी० एस० ।]
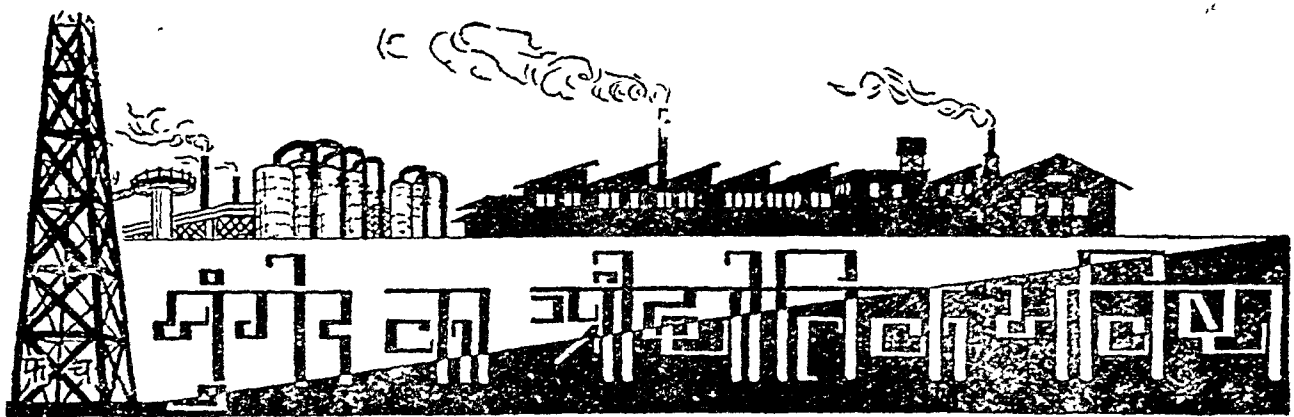
(श्री त्रिवेणी प्रसाद सिह, आई० सी० एस०)

विहार प्रान्त के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण वात है कि उसकी सब से प्रधान नदी गंगा है । गंगा ने विहार को दो भागों मे विभक्त कर दिया है :—मगध और मिथिला । मुगेर तो गंगा के दोनों तटों पर फैला हुआ प्रान्त के केन्द्र मे है । फलस्वरुप इसमे विहार की सारी विशेषतायें मौजूद है । मागधी और मैथिली संस्कारों के साथ-साथ झारखंड का संस्कार भी इस जिले मे मिश्रित है । इस जिले का वेगूसराय सवडिवीजन यदि तिरहुत के अंश-सा प्रतीत होता है तो खगड़िया सबडिवीजन कोसी-क्षेत्र के गुणों और अवगुणो से पूर्ण है । सदर मुगेर तो मगध ही है; किन्तु, जमुई मे छोटानागपुर तथा संथालपरगना की भी कुछ विशेषताये दीख पड़ती है । फिर भी इस जिले के चारों इलाके परस्पर सर्वथा भिन्न ही नहीं है, वरन् आपस मे कुछ-कुछ समानता भी रखते है । गंगा के उत्तर और दक्षिण मे भी बहुत समानता है ।

मुगेर प्राचीन युग से ही विभिन्न साधनों से सम्पन्न रहा है । यदि जिले के सभी साधनों का सम्यक रीति से उपयोग हो तो यह औद्योगिक क्षेत्र मे सारे प्रान्त मे शीर्षग्य हो जा सकता है, जैसे अब तक राजनैतिक क्षेत्र में रहा है ।

सर्वप्रथम जिले के उत्तरी भाग—वेगूसराय को ही लिया जाय । वेगूसराय की कावर झील मे तथा पूरे फड़किया चौर मे मछली बहुत होती है । हसनपुर रोड से लेकर खगड़िया तक जितने भी रेलवे स्टेशन है, सभी स्टेशनो से हजारो मन मछलियाँ कलकत्ते की ओर भेजी जाती है । मछली के व्यापार के विकास के लिए ही खगड़िया मे बर्फ का कारखाना है । बर्फ मछलियों को सड़ने से बचाती है, अतः मछलियों को वर्फ मे रख कर ही चालान किया जाता है । यह सारी मछली खाने के ही काम मे आती है, किन्तु, लोग मछलियो को खाकर उनके काँटो को फेक देते है । उन्हें इसका पता नही है कि मछलियो से उनके काँटे कम मूल्यवान् नही है । मछलियों के काँटों को यों ही फेंक देना देश के धन को फेकना है । यदि सलौना अथवा खगड़िया मे कोई ऐसा कारखाना खुले जिसमे मछलियों के काँटें निकाल कर केवल उनके गूदे को टिन के डब्बो मे बन्द कर चालान किया जाय तथा काँटो को चूर्ण बना कर खाद के काम मे लाया जाय तो बड़ा लाभ हो । काँटो के चूर्ण पर रासायनिक प्रयोग कर उससे विभिन्न प्रकार के खाद तथा अन्य

रासायनिक पदार्थों का निर्माण हो सकता है। इसी एक कारखाने में अन्य पशुओं की हड्डियों का भी चूर्ण बनाया जा सकता है।

इसके सिवा मृत पशुओं के चमड़े से भी एक बहुत बड़े समुदाय को लाभ हो सकता है, यदि चमड़े के उद्योग के लिए भी कोई खास कारखाना खुल सके। बहुधा यह देखा जाता है कि इलाके का सारा चमड़ा बाहरी व्यापारियों के हाथ सस्ते दर पर बेच दिये जाते हैं और वे उनसे विभिन्न प्रकार की उपयोगी वस्तुयें बना कर लाभ उठाते हैं। कलकत्ते की टेंगरा शू फैक्टरी अथवा दयालबाग शू फैक्टरी आदि की भांति उत्तरी मुंगेर में फैक्टरी की व्यवस्था हो सकती है और भांति-भांति के बक्स तथा जूते तैयार किये जा सकते हैं।

मुंगेर के इस उत्तरी भूभाग में नमक बनाने का रोजगार भी अच्छी तरह चल सकता है। इधर की मिट्टी और घर की दीवालों में 'नोनी' बहुत लगती है जिससे सोरा (Nitrel) एकत्रित किया जा सकता है। नमक सत्याग्रह के समय इसी इलाके में नमक बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया था, किन्तु, यह रोजगार भी प्राय ढीला पड़ गया है।

मुंगेर के इस उत्तरी भूभाग में जाड़े के दिनों में बहुत चिड़ियाँ आती हैं और खास-खास जगहों पर बैठती हैं। इन चिड़ियों के विष्टों से नाना प्रकार की औषधियाँ बनाई जा सकती हैं तथा विभिन्न प्रकार के खादों का निर्माण हो सकता है। किन्तु, इन विष्टों को कौन इकट्ठा करे? यदि इन विष्टों का उपयोग हो तो शीघ्र ही इससे एक लाभदायक धन्धा उठ खड़ा हो सकता है। कहा जाता है कि दक्षिण अमेरिका में 'चीनी' नामक भूभाग में समुद्री पक्षियों के विष्टा को एकत्र कर चालान किया जाता है और उस भूभाग का यह एक प्रधान व्यवसाय है। क्या यह व्यवसाय यहाँ नहीं चल सकता?

अब औद्योगिक विकास की दृष्टि से इस जिले के दक्षिणी भूभाग की विशेषताओं पर भी विचार करना आवश्यक है। इतिहास यह कहता है कि खड़गपुर की पहाड़ियों से लोहा और इस्पात निकाला जाता था और इसी लोहे तथा इस्पात से मुंगेर में बन्दूकें बनती थीं। मीरकासिम ने यहीं भारतवर्ष में, पहली बार आधुनिक शस्त्रास्त्रों का कारखाना खोला था और यहीं से इस्ट इण्डिया कम्पनी का सामना किया था। आधुनिक युग में कोयले के बाद यदि किसी अन्य खनिज को महत्व प्राप्त है तो वह लोहा ही है। कील कांटों से लेकर विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र लोहे से ही बनते हैं। खड़्गपुर का खड्ग बड़ा ही प्रसिद्ध होता था। किन्तु, आज यह व्यवसाय न जाने क्यों, एकदम लुप्त सा हो गया है। खड्गपुर की पहाड़ियों के किनारे पत्थरों के असंख्य गड्ढे आज भी मौजूद हैं जिनमें किसी समय लोहे और इस्पात बनते थे। यह ठीक है कि इस्पात या लोहा थोड़ी मात्रा में अच्छा नहीं बन सकेगा, किन्तु जब खनिज प्राप्त है तो बड़े पैमाने पर भी इस व्यवसाय को बढ़ाया जा सकता है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग की तीसरी उपयोगी वस्तुओं में अबरख (अभ्रक) का ही स्थान है और यह खनिज भी दक्षिण मुंगेर में पर्याप्त रूप से प्राप्त है। अबरख का व्यवसाय यद्यपि यहाँ चल रहा है, किन्तु,

स्वयं मुंगेर में इसका कोई खास कारखाना नहीं है। बिना अभ्रक के अनेक विद्युत् यन्त्रो का निर्माण हो नही हो सकता। इसके चूर्ण से मिकेनाइट तैयार होता है और इसकी चद्दरे छप्परो के छाजन तथा अन्य अनेक कामों मे आती है। मुगेर यद्यपि अभ्रक के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु, अभ्रक से जिले को विशेष लाभ नही पहुँच रहा है; हाँ, खान के मालिकों को इससे पैसे अवश्य मिल जाते है।

दक्षिण मुंगर के जंगली तथा पहाड़ी क्षेत्रो मे बहुतेरे और भी पदार्थ है जिनका पूरा उपयोग अभी तक नहां हो सका है। नौवाडीह के आसपास उच्चकोटि की अग्निजित तथा चीनी मिट्टी प्राप्त होती है। किन्तु, इस मिट्टी का कोई उपयोग नही हो रहा है और न निकट भविष्य मे इसके उपयोग का प्रबन्ध ही होने को है। बिहार के मानभूमि जिले मे "बिहार फायर ब्रिक" और "पौटरी लिमिटेड" कम्पनियाँ यह काम कर रही हैं और सम्भवत: फैक्टरी के लोग यहाँ की मिट्टा का भी उपयोग करते होगे; किन्तु, मुगेर में इस दिशा की ओर कोई भी व्यवसायी आगे नही आ रहा है। कहा जाता है कि सन् १९३८–३९ मे ५३ लाख रुपये की चीनी मिट्टी के सामान अन्य देशो से आये थे, पर हमारे प्रान्त में केवल ८६ हजार रुपये के सामान बन सके थे। बड़ा अच्छा होता यदि हम अपनी मिट्टी का उपयोग आप करते।

झाझा की सिमेन्ट और स्लेट फैक्टरी तो ढीले-ढाले तरीके से चलती है। परन्तु यदि यह फैक्टरी मुस्तैदी से चलाई जाय और इसके प्रबन्ध मे कुछ अधिक पूँजी लगाई जाय तो प्रान्त की किसी अन्य फैक्टरी से यहाँ की फैक्टरी कम उपयोगी नही सिद्ध हो।

इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट कोटि के अस्बेष्टस के खनिज भी मुगेर मे किंचित मात्रा मे प्राप्त है। अस्बेष्टस ताप-चालक नही होता। इसीलिए भट्ठो के निर्माण मे इसका प्रयोग होता है। आग बुझानेवालों के वस्त्र भी अस्बेष्टस के ही बनते है, किन्तु,इस खनिज को निकाल कर प्रयोग मे लाने की कोई चेष्टा नही हो रही है। छोटे पैमाने पर इस इलाके के लोग इस ओर भी बढ़ने का प्रयास कर सके तो बड़ा हितकर हो।

उपर्युक्त खनिजो के सिवा सीसा, धातु, चाँदी, अंटीमनी और वंग के खनिज भी इस इलाके में प्राप्त हैं किन्तु, इस दिशा मे भी कुछ नही हो रहा है।

यद्यपि मुंगेर गंगा के किनारे है तथापि यहाँ के दक्षिण भूभाग मे वनवैभव का प्रभाव नहा है। यो तो बिहार प्रान्त मे जंगल प्राय. ९५०० वर्गमील है, किन्तु ७००० वर्गमील जमीदारो के हाथ मे है। मुगेर में सरकारी जंगल एक धूर भी नही है। सरकारी जंगलो का प्रबन्ध तो वन-विभाग द्वारा वैज्ञानिक ढग से हो रहा है, किन्तु जमीन्दारों के जंगलों मे कोई वैज्ञानिक प्रबन्ध नहीं है। ये जमीन्दार जंगलो का सदुपयोग नहीं कर पाते, वरन् इसे काट-काट कर अन्धाधुंध बेचा करते है। कटाई भी प्राय: एक ही जगह हुआ करती है—पौधों को बढ़ने और पल्लवित ही होने का अवसर नही देते। हर्ष की बात है कि सरकार अब जंगलों की ओर ध्यान दे रही है—राष्ट्रीय दृष्टि से इन जंगलों की हिफाजत आवश्यक भी है। जलावन तथा दूसरे कार्यो के लिए लकड़ी की समस्या को हल कराने के लिए सरकार नई योजना शुरू

करना चाह भी रही है। यदि सच पूछा जाय तो जान का व्यवसाय सरकार के सिवा किसी अन्य से हो भी नहीं सकता। आज जो पौधा लगाया गया है, वह चालीस पैंतालिस वर्षों से कम में फल नहीं दे सकता और उसकी जिन्दगी सत्तर सौ वर्षों से कम में नहीं हो सकती। ऐसी दशा में सरकार को छोड़कर किसी अन्य से इतना धीरज धारण करना पार भी नहीं लग सकता है।

मुंगेर के इन जंगलों में लाह का कारबार अभी प्राय नहीं हो रहा है। इन जंगलों में पलास के वृक्षों की अधिकता है और निश्चय ही जंगलों के इन वृक्षों पर लाह के कीड़े रहते होंगे। लाह के अलावा तसर के कीड़े भी जंगलों में पाये जा सकते हैं और इनसे तसर के व्यवसाय को बल मिल सकता है। काष्ठौषधी का भी पता लगाया जा सकता है। जंगलों में अनेक भोजनोपयोगी पदार्थ मिलते हैं जिनमें चिरौंजी, बेर, केन, महुआ, करौंदा आदि का नाम उल्लेखनीय है। फिर भी बहुत से पदार्थों का प्रयोग लोग भूल गए हैं। ऐसे पदार्थों की एक सूची सन् १८७८ ई० में मुंगेर के तत्कालीन पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट मेजर वाकर ने बनाई थी जिसे आप मुंगेर जिला गजेटियर में पा सकते हैं।

एक और नए ढंग का काम है जो सरकारी सहयोग से यहाँ के लोग प्रारम्भ कर सकते हैं। यहाँ गर्म जल के झरनों की कमी नहीं है। इन झरनों के जल के गर्म रहने का कारण कभी तो केवल पृथ्वी के भीतर की ज्वाला हुआ करती है, परन्तु बहुधा यह गर्मी वहाँ की भूमि में रेडियोलेक्टिव पदार्थों के होने से होती है। इसकी खोज अभी तक नहीं हो सकी है। यदि झरनों के निकट की भूमि में रेडियोलेक्टिव पदार्थ निकाले जायें तो झरनों के जल की उपयोगिता की वृद्धि के साथ-साथ रेडियोलेक्टिव तत्वों के निकालने का भी प्रबन्ध हो सकता है। कहना नहीं होगा कि रेडियम चिकित्सा तथा एटम बम के कारण इन तत्वों की महत्ता आज कितनी बढ़ गई है। यदि इन झरनों में रेडियोलेक्टिव तत्व न भी हों तो भी उनमें स्नान करना सर्वदा स्वास्थ्यवर्द्धक, लाभप्रद एवं हितकर होगा।

संसार के किसी भी देश में यदि कावू शृंगी ऋषि, भीमबाँध, ऋषिकुंड, मलुरिया तथा पाँचमर जैसे गर्म जल के झरने होते तो प्राय प्रत्येक झरने के पास एक न एक सुंदर स्पा (Spa) अवश्य बन गया होता जहाँ सैकड़ों लोग स्वास्थ्योन्नति तथा मनोरंजनार्थ जाया करते।

मुंगेर के औद्योगिक भविष्य की एक संक्षिप्त रूपरेखा मैंने रखी है। किन्तु, औद्योगिक विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं होता। देश के औद्योगिक विकास के लिए देश विदेश की औद्योगिक संस्थाओं में विशेष शिक्षण के लिए छात्र भेजे जाने चाहिए, क्योंकि पूँजी के साथ-साथ विशेषज्ञों का होना भी नितान्त आवश्यक है।